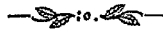


# भा० दि० जैनसंघ-ग्रन्थमाला

इस ग्रन्थमालाका उद्देश्य  
प्राकृत संस्कृत आदि भाषाओंमें निबद्ध दि० जैनागम,  
दर्शन, साहित्य, पुराण आदिका यथासम्भव  
हिन्दी अनुवाद सहित प्रकाशित करना



सञ्चालक  
भा० दि० जैनसंघ

ग्रन्थाङ्क १-८

प्रातिस्थान  
मैनेजर  
भा० दि० जैनसंघ  
चौरासी, मथुरा

मुद्रक—पं० शिवमारायण (उपाध्याय, बी० ए०)  
नया संसार प्रेस भदौनी, वाराणसी ।

Sri Dig. Jain Sangha Granthamala No 1-VIII

**KASAYA-PAHUDAM**  
**VIII**  
**BANDHAK**

BY  
GUNADHARACHARYA

WITH  
CHURNI SUTRA OF YATIVRASHABHACHARYA

AND  
THE JAYADIHAVALA COMMENTARY OF  
VIRASENACHARYA THERE-UPON

*EDITED BY*  
Pandit Phulachandra Siddhantashastri  
*EDITOR MAHABANDHA*  
*JOINT EDITOR DHAVALA.*

Pandit Kailashachandra Siddhantashastri  
Nyayatirtha, Siddhantaratra,  
Pradhanadhyapak, Syadvada Digambara Jain  
Vidyalyaja, Varanasi

*PUBLISHED BY*  
THE SECRETARY PUBLICATION DEPARTMENT  
THE ALL-INDIA DIGAMBAR JAIN SANGHA  
CHAURASI, MATHURA

# Sri Dig. Jain Sangha Granthamala

Foundation year— ]

[ —Vira Niravan Samvat 2468

*Aim of the Series:—*

**Publication of Digambara Jain Siddhanta,  
Darsana, Purana, Sahitya and other works  
in Prakrit Sanskrit etc, possibly with Hindi  
Commentary and Translation**

*DIRECTOR:—*

**SRI BHARATA VARSHIYA  
DIGAMBARA JAIN SANGHA  
NO. 1, VOL. VIII.**

*To be had from:—*

**THE MANAGER  
SRI DIG. JAIN SANGHA,  
CHAURASI, MATHURA,  
U P. ( INDIA )**

Printed by

**PT S N UPADHYAYA B A  
Naya Sansar Press, Bhadaini Valanasi.**

**800 Copies,**

**Price Rs. Twelve only**

## प्रकाशककी ओरसे

कसायपाहुडका आठवाँ भाग पाठकोंके करकमलोंमें अर्पित है। यह भाग कुछ विलम्बसे प्रकाशित होनेका कारण गत वर्षमें उत्पन्न हुई कागजकी कठिनाई है। उसीके कारण इस भागके प्रकाशनमें एक वर्षका विलम्ब हो गया। इस बातकी संभावना हमने सातवें भागके अपने वक्तव्यमें व्यक्त भी कर दी थी।

किन्तु आगेके दो भागोंके लिये कागजकी व्यवस्था कर ली गई है और एक उदारदाता महोदयसे उनके प्रकाशनके लिये आवश्यक साहाय्य भी मिल गया है, अतः आशा है आगेके भाग जल्द ही प्रकाशित हो सकेंगे।

इस भागका प्रकाशन भी भा० दि० जैन संघके अध्यक्ष दानवीर सेठ भागचन्द जी डोंगरगढ़ तथा उनकी दानशीला धर्मपत्नी श्रीमती नर्वदावाईजीके द्वारा प्रदत्त द्रव्यसे हुआ है। सेठ साहबने कुण्डलपुरमें संघके अधिवेशनके अवसर पर इस कार्यके लिये ग्यारह हजार रुपया प्रदान किया था। उसके पश्चात् वामौरामें संघके अधिवेशन पर पुनः पाँच हजार रुपया इस कार्यके लिये प्रदान किया। इसीसे यह प्रकाशन कार्य चालू है। सेठ साहब तथा उनकी धर्मपत्नीकी जिनवाणीके प्रति यह भक्ति तथा दानशीलता अनुकरणीय है।

सेठ साहबकी दानशीलतामें प्रेरणात्मक सहयोग देनेका श्रेय पं० फूलचन्द जी सिद्धान्त-शास्त्रीको है। आप ही जयधवलके सम्पादन तथा मुद्रणका उत्तरदायित्व सहालते हैं। अतः मैं सेठ साहब, सेठानी जी तथा पण्डितजीका आभार प्रकट किये बिना नहीं रह सकता।

जयधवल कार्यालय  
भदौनी, वाराणसी।  
अष्टम निर्वाण दिवस-२४८७



कैलाशचन्द्र शास्त्री  
मंत्री साहित्य विभाग  
भा० दि० जैन संघ

## भा० दि० जैन संघके साहित्य विभागके सदस्योंकी नामावली

### संरक्षक सदस्य

- १३०००) दानवीर सेठ भागचन्द्रजी डोंगरगढ़  
 ८१२५) दानवीर साहू शान्तिप्रसादजी कलकत्ता  
 ५०००) स्व० श्रीमन्त सर सेठ हुकुमचन्द्रजी  
 इन्दौर  
 ५०००) सेठ छदार्म लालजी फिरोजाबाद  
 ३००१) सेठ नानचन्द्र जी हीराचन्द्रजी गांधी  
 उस्मानाबाद

### ( सहायक सदस्य )

- १२५०) श्री सेठ भगवानदास जी मथुरा  
 १०००) ,, बा० कैलाशचन्द्रजी S. D. O. बम्बई  
 १००१) सकल दि० जैन परिवार पञ्चान नागपुर  
 १००१) श्री सेठ श्यामलालजी फर्रुखाबाद  
 १००१) ,, सेठ धनश्यामदासजी सरावगी लालगढ़  
 [ रा०ब० सेठ चुन्नीलालजी के सुपुत्र  
 स्व० निहालचन्द्रजी की स्मृति में ]  
 १०००) श्री लाला रघुवीरसिंहजी जैनाबाच  
 कम्पनी देहली  
 १०००) श्री रायसाहब लाला उल्फतरायजी देहली

- १०००) स्व० लाला महावीरप्रसादजी ठेकेदार ,,  
 १०००) ,, लाला रतनलालजी मादीपुरिये ,,  
 १०००) श्री लाला धूमिल धर्मदासजी ,,  
 १००१) श्रीमती मनोहरीदेवी मातेश्वरी लाला  
 वसन्तलाल फिरोजीलालजी देहली  
 १०००) श्री बाबू प्रकाशचन्द्रजी खण्डेलवाल  
 ग्लासवर्क्स सासनी  
 १०००) श्री लाला छीवरमल शंकरलालजी मथुरा  
 १००१) ,, सेठ गणेशीलाल ध्यानन्दीलालजी  
 आगरा  
 १०००) श्री सकल दि० जैन पञ्चान गया  
 १०००) ,, सेठ सुखानन्द शंकरलालजी मुल्तान-  
 वाले दिल्ली  
 १००१) श्री सेठ भगनमलजी हीरालालजी पाटनी  
 आगरा  
 १०००) स्व० श्रीमती चन्द्रावतीजी, धर्मपत्नी  
 साहू रामस्वरूपजी नजीबाबाद  
 १००१) लाला सुदर्शनलालजी जसवन्तनगर



## विषय-सूची

विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
सङ्गनकपरम	१	नाम और स्वतन्त्रनिर्देशको प्रकृत न करनेके	
कल्पके दो अनुयोगद्वारोंकी सूचना	२	कारणता निर्देश	१६
कल्पका स्वतन्त्र	२	द्रव्यादि पार निर्देशोंका स्वतन्त्ररूप	१६
संज्ञाना स्वतन्त्र	२	निर्देशार्थको स्पष्ट करनेके लिए नगणितिकी	
संज्ञकको द्वन्द्व सीमा नाम निर्देशाचारण	२	निष्कर्ष	२०
अधर्मद्वाराका स्वतन्त्र	२	समंजस्यप्रतिनिमित्तको विषयमें आठ प्रकारके	
कर्मद्वाराका स्वतन्त्र रूप का उसे संज्ञक में	२	निर्देशोंकी सीमांसा	२०
प्राम होनेके कारणका निर्देश	२	एकैकपदनिर्देशका स्वतन्त्ररूप	२६
इस निर्देशकी अपेक्षाके कारणकी प्रतिज्ञा	३	इसके विषयमें २५ अनुयोगद्वारोंकी सूचना	
इस विषयमें स्वतन्त्ररूप	३	और उनका नामनिर्देश	२६
गाथाके पदोंका स्वतन्त्ररूप	४	सङ्कल्पना	२६
यन्त्र अनुयोगद्वारकी सूचनाका	६	संघ और नौसंघसंज्ञक	२७
<b>संक्रम अनुयोगद्वार</b>		उच्छ्र और अनुच्छ्रसीमा	२७
संक्रमके चार प्रकारके आभाके निरूपणकी		अन्य और अज्ञपरमसंज्ञक	२७
सूचना	६	माति, अनादि, धुर और आधुनासंज्ञक	२८
प्रथम प्रकार उदकम और उगने की प्रकार	७	स्वात्मिन्य	२८
उदकम आदि की प्रकार विशेष उदाहरण	७	एक जीवकी अपेक्षा फल	३४
द्वितीय प्रकार निर्देशका विचार	८	एक जीवकी अपेक्षा अन्तर	३६
तृतीय प्रकार नयेके आश्रयमें निर्देशकी		नामा जीवोंकी अपेक्षा भ्रमस्विय	५२
सीमांसा	८	भागभाष	५४
निर्देशार्थका विशेष विचार	११	परिभाष	५६
नोआगतद्रव्यसंज्ञकके दो भेद और उनकी		संज्ञ	५६
सीमांसा	१२	स्पर्शन	५७
प्रकृतमें उपयोगी कर्मद्रव्यसंज्ञकके चार भेद	१४	नामा जीवोंकी अपेक्षा फल	५६
प्रकृतिसंज्ञकके दो भेद		नामा जीवोंकी अपेक्षा अन्तर	६२
<b>१ प्रकृतिसंज्ञक</b>		सन्निवर्ण	६३
प्रकृतिसंज्ञकके धर्मनकी प्रतिज्ञा	१६	भाव	७३
इस विषयमें उपयोगी तीन गाथाएँ और		अन्यग्रहण	७३
उनका स्वतन्त्ररूप	१६	<b>प्रकृतिस्थानसंज्ञक</b>	
उक्त गाथाओंका पदच्छेद	१८	प्रकृतिस्थानसंज्ञक कहने की प्रतिज्ञा	८१
स्वतन्त्रके बीच प्रकार	१८	इस विषयमें मृग सङ्कलीर्तना अर्थना	
चारप्रकारका निवेदन	१९	१२ सूत्रगाथाएँ	८१

विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
उक्त गाथाओंके विषयकी सूचना	८७	वेद और कषायमार्गणमें शून्यस्थानोंका निर्देश	१६१
प्रकृतिस्थानसंक्रमविषयक अनुयोगद्वारोंका नामनिर्देश	८८	सत्कर्मस्थानोंका निर्देश	१६३
स्थानसमुत्कीर्तनामे आई हुई एक गाथा और उसका व्याख्यान	८९	बन्धस्थानोंका निर्देश	१६३
कौन प्रकृतिस्थान प्रकृतिसंक्रमस्थान है और कौन नहीं है इसका सकारण निर्देश	९१	सत्कर्मस्थानोंमें संक्रमस्थानोंका विचार	१६३
प्रकृतिस्थानप्रतिग्रहप्रतिग्रहप्ररूपणा किस संक्रमकस्थानके कौन प्रतिग्रहस्थान हैं इस बातका निर्देश	११४	बन्धस्थानोंमें संक्रमस्थानोंका विचार	१६८
संक्रमस्थानोंके अनुसन्धान करनेके उपायोंका निर्देश	१२३	बन्धस्थानों और सत्त्वस्थानोंमें संक्रमस्थानोंका विचार	१७२
आनुपूर्वी-अनानुपूर्वीसंक्रमस्थानोंका निर्देश	१४४	सत्कर्मस्थानोंमें बन्धस्थानों और संक्रमस्थानोंका विचार	१७४
दर्शनमोहनीयके सद्भावमें प्राप्त होनेवाले और उसके अभावमें प्राप्त होनेवाले संक्रमस्थानोंका निर्देश	१४५	बन्धस्थानोंमें सत्कर्मस्थानों और संक्रमस्थानोंका विचार	१७५
उपशामक और क्षपकसम्बन्धी संक्रमस्थानोंका निर्देश	१४५	संक्रमस्थानोंमें बन्धस्थानों और सत्कर्मस्थानोंका विचार	१७५
मार्गणास्थानोंमें संक्रमस्थान आदिके जाननेकी सूचना	१४७	शेष अनुयोगद्वारोंका दो गाथासूत्रों द्वारा नामनिर्देश	१७६
गुणस्थानोंमें संक्रमस्थान आदिके जाननेकी सूचना करके कालानुयोगद्वारका संकेत गतिमार्गणाके अवान्तर भेदोंमें संक्रमस्थानोंका प्रमाणनिर्देश	१४८	स्थानसमुत्कीर्तना	१७७
मनुष्यगतिमें सम संक्रमस्थान होते हैं इसका निर्देश	१४९	प्रकृतमें सर्वसंक्रमसे लेकर अजघन्य संक्रम तकके अनुयोगद्वार क्यो सम्भव नहीं हैं इसका निर्देश	१७८
एकेन्द्रियादि असंखी पञ्चन्द्रियोंमें कितने संक्रमस्थान होते हैं इसका निर्देश	१५०	सादि आदि चारका निर्देश	१७९
गतिमार्गणामें प्रतिग्रहस्थानों और तद्बन्धस्थानोंके जाननेकी सूचना	१५०	स्वामित्व	१:९
सम्यक्त्व और संयममार्गणामें उक्त विषयका विचार	१५२	एक जीवकी अपेक्षा काल	१८१
लेख्यामार्गणामें उक्त विषयका विचार	१५३	एक जीवकी अपेक्षा अन्तर	१८८
वेदमार्गणामें उक्त विषयका विचार	१५४	नाना जीवोंकी अपेक्षा भंगविषय	२१०
कषायमार्गणामें उक्त विषयका विचार	१५७	भागभाग	२१३
ज्ञानमार्गणामें उक्त विषयका विचार	१५९	परिमाण	२१४
भव्य और आहारमार्गणामें उक्त विषयका विचार	१६०	क्षेत्र	२१४
		स्पर्शन	२१५
		नाना जीवोंकी अपेक्षा काल	२१६
		नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर	२१८
		सन्निकर्ष	२२१
		अल्पबहुत्व	२२२
		<b>भुजगार प्रकृति संक्रम</b>	
		भुजगारके तेरह अनुयोगद्वार	२२९
		समुत्कीर्तना	२२९
		स्वामित्व	२२९

विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
एक जीवकी अपेक्षा काल	२३०	अद्वाच्छेदके दो भेद	२६३
एक जीवकी अपेक्षा अन्तर	२३१	उत्कृष्ट अद्वाच्छेद	२६३
नाना जीवोंकी अपेक्षा भंगविचय	२३२	जघन्य अद्वाच्छेद	२६३
भागभाग	२३२	सर्व अनुयोगद्वारसे लेकर अजघन्य	
परिमाण	२३३	अनुयोगद्वार तक अनुयोगद्वारोंको	
क्षेत्र	२३३	स्थितिविभक्तिके समान जाननेकी सूचना	२६४
स्पर्शन	२३३	सादि, अनादि, ध्रुव और अध्रुव अनु-	
नाना जीवोंकी अपेक्षा काल	२३४	योगद्वारोंकी प्ररूपणा	२६४
नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर	२३५	स्वामितरके दो भेद	२६५
भाव	२३५	उत्कृष्ट स्थितिसंक्रम स्वामित्व	२६५
अल्पबहुत्व	२३५	जघन्य स्थितिसंक्रम स्वामित्व	२६५
<b>पदनिक्षेप प्रकृतिसंक्रम</b>		एक जीवकी अपेक्षा कालके दो भेद	२६७
पदनिक्षेपके तीन अनुयोगद्वार	२३६	उत्कृष्ट स्थितिसंक्रम काल	२६७
समुत्कीर्तना	२३६	जघन्य स्थितिसंक्रम काल	२६८
स्वामित्व	२३७	अन्तर्पानुगमके दो भेद	२७२
अल्पबहुत्व	२३८	उत्कृष्ट स्थितिसंक्रम अन्तर	२७२
<b>वृद्धि प्रकृतिसंक्रम</b>		जघन्य स्थितिसंक्रम अन्तर	२७३
वृद्धिके तेरह अनुयोगद्वार	२३९	नाना जीवोंकी अपेक्षा भंगविचयके दो भेद	२७५
समुत्कीर्तना	२३९	उत्कृष्ट स्थितिसंक्रम भंगविचय	२७५
स्वामित्व	२३९	जघन्य स्थितिसंक्रम भंगविचय	२७६
एक जीवकी अपेक्षा काल	२३९	भागभागके दो भेद	२७७
एक जीवकी अपेक्षा अन्तर व शेषकी सूचना	२४०	उत्कृष्ट स्थितिसंक्रम भागभाग	२७७
नाना जीवोंकी अपेक्षा भंगविचय	२४०	जघन्य स्थितिसंक्रम भागभाग	२७७
नाना जीवोंकी अपेक्षा काल	२४०	परिमाणके दो भेद	२७७
नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर	२४०	उत्कृष्ट स्थितिसंक्रम परिमाण	२७७
भाव	२४०	जघन्य स्थितिसंक्रम परिमाण	२७८
अल्पबहुत्व	२४०	क्षेत्रके दो भेद	२७८
<b>स्थितिसंक्रम</b>		उत्कृष्ट स्थितिसंक्रम क्षेत्र	२७८
स्थितिसंक्रमके दो भेद	२४२	जघन्य स्थितिसंक्रम क्षेत्र	२७९
स्थितिसंक्रम और स्थितिअसंक्रमकी		स्पर्शनके दो भेद	२७९
व्याख्या	२४२	उत्कृष्ट स्थितिसंक्रम स्पर्शन	२७९
अपकर्षणस्थितिसंक्रमका स्वरूप	२४३	जघन्य स्थितिसंक्रम स्पर्शन	२८२
उत्कर्षणस्थितिसंक्रमका स्वरूप	२४३	नाना जीवोंकी अपेक्षा काल के दो भेद	२८४
अद्वाच्छेदकी सूचना	२६२	उत्कृष्ट स्थितिसंक्रम काल	२८४
<b>मूलप्रकृतिस्थितिसंक्रम</b>		जघन्य स्थितिसंक्रम काल	२८५
मूलप्रकृतिस्थितिसंक्रमविषयक अनुयोग-		नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तरके दो भेद	२८७
द्वारोंकी सूचना	२६२	उत्कृष्ट स्थितिसंक्रम अन्तर	२८७
		जघन्य स्थितिसंक्रम अन्तर	२८८
		भाव	२८८



विषय	
अल्पबहुत्वके दो भेद	
स्थितिसंक्रम अल्पबहुत्वके दो भेद	
उत्कृष्ट स्थितिसंक्रम अल्पबहुत्व	
जघन्य स्थितिसंक्रम अल्पबहुत्व	
जीव अल्पबहुत्वके दो भेद	
उत्कृष्ट स्थितिसंक्रम जीव अल्पबहुत्व	
जघन्य स्थितिसंक्रम जीव अल्पबहुत्व	

### भुजगारस्थितिसंक्रम

भुजगारके तेरह अनुयोगद्वारोंकी सूचना	२६०
समुत्कीर्तना	२६०
स्वामित्व	२६१
एक जीवकी अपेक्षा काल	२६१
एक जीवकी अपेक्षा अन्तर	२६५
नाना जीवोंकी अपेक्षा भंगविचय	२६५
भागभाग	२९७
परिमाण	२६७
क्षेत्र-स्पर्शन	२७
नाना जीवोंकी अपेक्षा काल	२६७
नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर	२९७
भाव	२६७
अल्पबहुत्व	२६७

### पदनिक्षेप स्थितिसंक्रम

पदनिक्षेपके तीन अनुयोगद्वारोंकी सूचना	२६८
समुत्कीर्तना	२९८
स्वामित्वके दो भेद	२९८
उत्कृष्ट	२६८
जघन्य	२६६
अल्पबहुत्व	२६६

### वृद्धि स्थितिसंक्रम

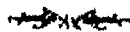
वृद्धिके तेरह अनुयोगद्वारोंकी सूचना	२६६
समुत्कीर्तना	२६६
स्वामित्व	२६६
एक जीवकी अपेक्षा काल	३००
एक जीवकी अपेक्षा अन्तर	३०२
नाना जीवोंकी अपेक्षा भंगविचयसे	
- लेकर भाव तकके अनुयोगद्वारोंकी स्थिति-	
विभक्तिके समान जाननेकी सूचना	३०३

पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
२८८	अल्पबहुत्व	३०३
२८८	स्थानप्ररूपणा	३०३

### उत्तरप्रकृतिस्थितिसंक्रम

उसके विषयमें २४ अनुयोगद्वारोंकी व	
भुजगारादिककी सूचना	३०४
अद्वाच्छेदके दो भेद	३०४
उत्कृष्ट स्थितिसंक्रम अद्वाच्छेद	३०४
जघन्य स्थितिसंक्रम अद्वाच्छेद	३०५
सर्वादि अनुयोगद्वारोंकी स्थितिविभक्तिके	
समान जाननेकी सूचना	३१०
स्वामित्व	३११
उत्कृष्ट स्थितिसंक्रमस्वामित्व	३११
जघन्य स्थितिसंक्रम स्वामित्व	३१२
एक जीवकी अपेक्षा काल	३२३
उत्कृष्ट स्थितिसंक्रम काल	३२३
जघन्य स्थितिसंक्रम काल	३२६
एक जीवकी अपेक्षा अन्तर	३३२
उत्कृष्ट स्थितिसंक्रम अन्तर	३३२
जघन्य स्थितिसंक्रम अन्तर	३३३
नाना जीवोंकी अपेक्षा भंगविचय	३३६
उत्कृष्ट स्थितिसंक्रम भंगविचय	३३६
जघन्य स्थितिसंक्रम भंगविचय	३३७
भागभाग आदिको स्थितिविभक्तिके	
समान जाननेकी सूचना	३३८
नाना जीवोंकी अपेक्षा काल	३३८
उत्कृष्ट स्थितिसंक्रम काल	३३८
जघन्य स्थितिसंक्रम काल	३३९
नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर	३४१
उत्कृष्ट स्थितिसंक्रम अन्तर	३४१
जघन्य स्थितिसंक्रम अन्तर	३४१
सन्निकर्ष	३४२
उत्कृष्ट स्थितिसंक्रम सन्निकर्ष	३४२
जघन्य स्थितिसंक्रम सन्निकर्ष	३४३
भाव	३४६
अल्पबहुत्व	३४६
उत्कृष्ट स्थितिसंक्रम अल्पबहुत्व	३४६
जघन्य स्थितिसंक्रम अल्पबहुत्व	३४८

विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
<b>भुजंगार म्थिनिसंग्रह</b>		<b>श्लोक उपन्य म्थिनिसंग्रह व्यामित्य</b>	३१५
भुजंगारसंक्रम	३५६	श्लोकादेशा वदष्टष्ट म्थिनिसंग्रह व्यामित्य	३२७
कार्यपर	३६०	श्लोकादेशा उपन्य म्थिनिसंग्रह व्यामित्य	३३८
भुजंगार आदि पदोरा कार्य	३६०	आनन्दसूत्र	३६०
इम विषयमेवेत अनुसंग्रहोती म्थिनिसंग्रह	३६०		
म्थुत्कीर्तना	३६०	<b>शुद्धि म्थिनिसंग्रह</b>	
व्यामित्य	३६०	उपमे मीन अनुसंग्रहात्	५०१
एव जीवन्ती कार्येषु च	३६२	शुद्धिना म्थिनिसंग्रह	५०२
एव जीवन्ती कार्येषु आनन्द	३६०	अनुसंग्रहोति नाम श्लो उपन्य म्थिनिसंग्रह	५०२
नामा जीवन्ती कार्येषु म्थिनिसंग्रह	३६१	श्लोकादेशा म्थिनिसंग्रह	५०६
भगवान्नाम	३६२	श्लोकादेशा म्थिनिसंग्रह	५०६
परिमाण	३६२	मन्वन्त	५१०
संग श्लो म्थिनिसंग्रह	३६२	एव जीवन्ती कार्येषु च	५१६
नामा जीवन्ती कार्येषु म्थिनिसंग्रह	३६६	एव जीवन्ती कार्येषु आनन्द	५१५
नामा जीवन्ती कार्येषु आनन्द	३६६	नामा जीवन्ती कार्येषु म्थिनिसंग्रह	५१५
भार	३६५	भगवान्नाम	५१६
आनन्दसूत्र	३६५	परिमाण	५१६
		संग	५१७
<b>पदान्तोप म्थिनिसंग्रह</b>		मन्वन्त	५१८
उपमे मीन अनुसंग्रहात्	३६७	नामा जीवन्ती कार्येषु च	५१८
म्थुत्कीर्तना	३६७	नामा जीवन्ती कार्येषु आनन्द	५१९
उपन्य म्थिनिसंग्रह म्थुत्कीर्तना	३६७	भार	५२०
उपन्य म्थिनिसंग्रह म्थुत्कीर्तना	३६७	आनन्दसूत्र	५२०
व्यामित्य	३६७	शुद्धि म्थिनिसंग्रहात्	५२८
श्लोक वदष्टष्ट म्थिनिसंग्रह व्यामित्य	३६६		







मिरि-जयधवलाहिरियविरह्या-नृष्णिगमुत्तममर्षिणदं

मिरि-भगवंतगुणहरभडारओवड्डं

# क सा य पा हु डं

॥२२॥

मिरि-वीरसेणाहरियविरह्या टीका

## जयधवला

॥२३॥

बंघगो णाम छट्टो अथाहियारो

→॥२३॥←

पणमिय णीमंकरणो पच्चुट्टममुदमंकरये जिणचलणे ।

बंघगमहाहियारं वोच्छं जन्धेव मंकरो लीणो ॥१॥

---

जो विन्दुपयो समुद्रको लाघ गये हैं ऐसे भिन चरणांको निःशंक मनसे नभाहकार करके जिसमें संक्रम अधिकार लीन है ऐसे कथक नामक महाधिकारका व्याख्यान करता है ॥१॥

❀ बंधगे त्ति एदस्स वे अणियोगद्वाराणि । तं जहा—बंधो च संकमो च ।

§ १. एदस्स सुत्तस्स अत्थविचरणं कस्सामो । तं जहा—बंधगे त्ति एदस्स पदस्स पढममूलगाहापडिवद्धस्स अत्थपरूवणे कीरमाणे तत्थ इमाणि वे अणियोगद्वाराणि णादव्वाणि । काणि ताणि त्ति सिस्साहिप्पायमासंकिय बंधो च संकमो चेत्ति तेस्सि णामणिद्देशो कओ । तत्थ जम्मि अणियोगद्वारे कम्मइयवग्गणाए पोग्गल-क्खंधाणं कम्मपरिणामपाओग्गभावेणावट्टिदाणं जीवपदेसेहिं सह मिच्छत्तादिपच्चयवसेण संबंधो पयडि-ट्टिदि-अणुभाग-पदेसभेयभिण्णो परूविज्जइ तमणुयोगद्वारं बंधो त्ति भण्णदे । तहा बंधेण लद्धप्पसरूवस्स कम्मस्स मिच्छत्तादिभेयभिण्णस्स समयाविरोहेण सहावंतर-संकंतिलक्खणो संकमो पयडिसंकमादिभेयभिण्णो जत्थ सवित्थरमणुमग्गिज्जदे तमणि-योगद्वारं संकमो त्ति भण्णदे । एवमेदाणि दोण्णि अणियोगद्वाराणि बंधगमहाहियारे होंत्ति त्ति सुत्तत्थसंगहो । कथमेत्थ संकमस्स बंधगववएसो त्ति णासंकणज्जं, तस्स वि बंधंतन्नावित्तादो । तं जहा—दुविहो बंधो अकम्मबंधो कम्मबंधो चेदि । तत्थाकम्म-बंधो णाम कम्मइयवग्गणादो अकम्मसरूवेणावट्टिदपदेसाणं गहणं । कम्मबंधो णाम कम्मसरूवेणावट्टिदपोग्गलाणमण्णपयडिसरूवेण परिणमणं । तं जहा—सादत्ताए बद्ध-कम्ममंतरंगपच्चयविसेसवसेणासादत्ताए जदा परिणामिज्जइ, जदा वा कसायसरूवेण

\* 'बन्धक' इम अर्थाधिकारके दो अनुयोगद्वार हैं । यथा—बन्ध और संक्रम ।

§ १. अब इस सूत्रका अर्थ कहते हैं । यथा—प्रथम मूल गाथामें 'बन्धक' यह पद आया है । उसके अर्थका व्याख्यान करने पर वहाँ ये दो अनुयोगद्वार जानने चाहिये । वे कौन हैं यह शिष्यका प्रश्न है । इसपर सूत्रमें बन्ध और संक्रम इस प्रकार उनका नाम निर्देश किया है । उनमेंसे जिस अनुयोगद्वारमें कर्मणवर्गणके कर्मरूप परिणमन करनेकी योग्यताको प्राप्त हुए पुद्गल स्कन्धोंका जीव प्रदेशोंके साथ मिथ्यात्व आदिके निमित्तसे प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेशके भेदसे चार प्रकारका सम्बन्ध कहा जाता है उस अनुयोगद्वारको 'बन्ध' कहते हैं । तथा बन्धसे जिन्होंने कर्मभावको प्राप्त किया है और जो मिथ्यात्व आदि अनेक भेदरूप हैं ऐसे कर्मोंका यथाविधि स्वभावान्तर संक्रमणरूप संक्रमका प्रकृति संक्रम आदि भेदोंको लिए हुए जिसमें विस्तार के साथ विचार किया जाता है उस अनुयोगद्वारको संक्रम कहते हैं । इस प्रकार बन्धक नामके महाधिकारमें वे दो ही अनुयोगद्वार होते हैं यह इस सूत्रका समुदायार्थ है ।

शंका—यहाँ पर संक्रमको बन्धक संज्ञा कैसे प्राप्त होती है ?

समाधान—ऐसी आशंका करना ठीक नहीं है, क्योंकि संक्रमका भी बन्धमें अन्तर्भाव हो जाता है । यथा—अकर्मबन्ध और कर्मबन्ध ऐसे बन्धके दो भेद हैं । उनमें से जो कर्मण वर्गणाओंमें से अकर्म रूपसे स्थित परमाणुओंका ग्रहण होता है वह अकर्मबन्ध है और कर्मरूपसे स्थित पुद्गलोंका अन्य प्रकृति रूपसे परिणमना कर्मबन्ध है । उदाहरणार्थ—सातारूपसे बन्धको प्राप्त हुए जो कर्म अन्तरंग कारखके मिलने पर जब असातारूपसे परिणमन करते हैं, या कषायरूपसे

वद्धा कम्मसा बंधावलियं बोलाविय णोकसायसरूवेण संकामिज्जति तदा सो कम्मबंधो उच्चइ, कम्मसरूवापरिचाएणेव कम्मंतरसरूवेण वज्जमाणत्तादो ।

❀ एत्थ सुत्तगाहा ।

§ २. एत्थ एदेसु' बंध-संकमसण्णिदेसु अणियोगदारेसु बंधगे त्ति वीजपदम्मि णिलीणेसु सुत्तगाहा संगहियासेसपयदत्थसारा गुणहराडरियमुहविणग्गया अत्थि तमिदाणि वत्तइस्सामो त्ति वुत्तं होइ । तं जहा—

(५) कदि पयडीओ बंधदि द्विदि-अणुभागे जहण्णमुक्कस्सं ।

संकामेइ कदिं वा गुणहीणं वा गुणविसिद्धं ॥२३॥

§ ३. एदिस्से गाहाण् पुच्छासेणेण सुचिदासेसपयदत्थपरूवणाए अत्थविहासा

बंधे हुए कर्म बंधावलिके बाद जब नोकसायरूपसे परिणमन करते हैं तब वह कर्मबन्ध कहलाता है, क्योंकि कर्मरूपताका त्याग किये बिना ही ये कर्मान्तररूपसे पुनः बंधते हैं ।

विशेषार्थ—'पञ्जदोसविहत्तो' इत्यादि प्रथम मूल गाथामें 'बंधगे चय' यह पद आया है । यहाँ पर इसी पदका व्याख्यान करते हुए चूर्णिमूत्रकारने बन्ध और संकम इन दो अधिकारों के द्वारा उसके व्याख्यान करनेका निर्देश किया है । जो कर्मण वर्गणाएँ आत्मासे सम्बद्ध नहीं हैं उनका बन्धके कारणोंके मिलने पर आत्मासे बन्धका प्राप्त होना ही बन्ध है और बन्धको प्राप्त हुए कर्मोंका यथायोग्य सामग्रीके मिलने पर अन्य सजातीय प्रकृति रूपसे बदल जाना संकम है । इस बन्धक नामक अधिकारमें इन दोनों विषयोंका विस्तारसे वर्णन किया गया है यह उक्त कथनका तात्पर्य है । यद्यपि यहाँ यह शंका उठाई गई है कि बन्धक अधिकारमें बन्धका वर्णन करना तो क्रम प्राप्त है पर इसमें संकमका वर्णन नहीं किया जा सकता, क्यों कि संकम बन्धका भेद नहीं है । इसका जो समाधान किया है उसका आशय यह है कि बन्धके ही दो भेद हैं—अकर्मबन्ध और कर्मबन्ध । इनमेंसे अकर्मबन्धका दूसरा नाम बन्ध है और कर्मबन्धका दूसरा नाम संकम है । इस प्रकार विचार करने पर बन्ध और संकम इन दोनोंका बन्धक अधिकारमें समावेश हो जाता है, अतः एक बन्धक अधिकारद्वारा बन्ध और संकम इन दोनोंका वर्णन करना अनुचित नहीं है ।

❀ इस विषय में सूत्र गाथा ।

§ २. यहाँ पर अर्थान् 'बन्धक' इस वीज पदमें अन्तर्भूत हुए बन्ध और संकम इन दो अनुयोगद्वारोंके विषयमें जिसमें प्रकृत अर्थका सब सार संगृहीत है और गुणधर आचार्यके मुखसे निकली है ऐसी एक गाथा है । यथा—

(५) यह जीव कितनी प्रकृतियोंको व कितनी स्थिति, अनुभाग और जघन्य उत्कृष्टरूप प्रदेशोंको बांधता है । तथा कितनी प्रकृति, स्थिति व अनुभागका और कितने गुणे हीन व कितने गुणे अधिक प्रदेशोंका संक्रमण करता है ॥ २३. ॥

§ ३. इस गाथामें केवल वृच्छा द्वारा जो पूरे प्रकृत अर्थकी प्ररूपणा सूचित की गई है उसका

१. ता० प्रती पदेसु इति पाठः ।

चूर्णिणसुत्तणिवद्धा ति तदणुसारेणैव विवरणं कस्सामो । तं जहा—

\* एदीए गाहाए बंधो च संकमो च सूचिदो होइ ।

§ ४. कुदो ? गाहापुच्चपच्छद्वेसु जहाकमं दोण्हमेदेसिमत्थाणं णिवद्धत्तदंसणादो । एवमेदेण सुत्तेण गाहाए समुदायत्थो परूविदो । संपहि पदच्छेदसुहेणावयवत्थपरूवणं कुणमाणो उवरिमपबंधमाह—

\* पदच्छेदो ।

§ ५. सुगमं ।

\* तं जहा ।

§ ६. सुगमं ।

\* कदि पयडीओ बंधइ ति पयडिबंधो ।

§ ७. कदि पयडीओ बंधइ ति एदम्मि सुत्तपदे केत्तियाओ पयडीओ भोह-णिजपडिवद्धाओ बंधइ, किमेकमाहो दोण्णिण तिण्णिण वा इच्चादिपुच्छामेत्तवावारेण सच्चो पयडिबंधो णिलीणो ति गहेयच्चो, एदस्स देसामासियभावेणावट्टाणादो ।

\* द्विदि-अणुभागे ति द्विदिबंधो अणुभागबंधो च ।

विशेष खुलासा चूर्णिसूत्रोंमें किया है, इसलिए चूर्णिसूत्रोंके अनुसार ही यहाँ व्याख्यान करते हैं। यथा—

\* इस गाथा द्वारा बन्ध और संक्रम ये दो अधिकार सूचित किये गये हैं ।

§ ४. क्यों कि गाथाके पूर्वार्ध और उत्तरार्धमें क्रमसे निबद्धरूपसे ये दो ही अधिकार देखे जाते हैं ।

इस प्रकार इस सूत्रद्वारा गाथाके समुदायार्थका कथन किया । अब पदच्छेदद्वारा प्रत्येक पदके अर्थका कथन करते हुए आगेके प्रबन्धका निर्देश करते हैं—

\* अब पदच्छेद करते हैं ।

§ ५. यह सूत्र सुगम है ।

\* यथा—

§ ६. यह सूत्र भी सुगम है ।

\* 'कदि पयडीयो बंधदि' इस पदसे प्रकृतिबन्धको सूचित किया गया है ।

§ ७. गाथा सूत्रके 'कदि पयडीयो बंधदि' इस पदमें मोहनीयकी कितनी प्रकृतियोंको बाँधता है, क्या एक प्रकृतिको बाँधता है अथवा दो या तीन प्रकृतियोंको बाँधता है इत्यादि पृच्छाविषयक व्यापार द्वारा पूरा प्रकृतिबन्ध अन्तर्भूत है ऐसा यहाँ ग्रहण करना चाहिये, क्योंकि यह पद देशा-सर्वकभावसे अवस्थित है ।

\* 'द्विदि-अणुभागे' इस पदसे स्थितिबन्ध और अनुभागबन्धको सूचित किया गया है ।

§ ८. द्विदि-अणुभागे त्ति गाहापुव्वद्दपडिन्नद्धे सुत्तपदे द्विदिवंधो अणुभागबंधो च णिलीणो त्ति गहेयव्वो, संगहिदसारस्सेदस्स पज्जवट्टियपरूवणाए जौणिभावेणा-  
वट्टाणादो ।

⊗ जहणणमुक्कस्सं ति पदेसबंधो ।

§ ९. जहणणमुक्कस्सं ति गाहापुव्वद्दपडिन्नद्धे वीजपदे पदेसबंधो संगहिओ त्ति गहेयव्वं, किं जहणणमुक्कस्सं वा पदेसग्गेण बंधइ त्ति सुत्तत्थसंबंधावलंबणादो । एव-  
मेत्तिएण पबंधेण गाहापुव्वद्धे पयडि-द्विदि-अणुभाग-पदेसबंधाणं पडिन्नद्धत्तं परूविय संपहि  
गाहापच्छद्दविहाणट्टमाह—

⊗ संकामेदि कदिं वा त्ति पयडिसंकमो च द्विदिसंकमो च अणु-  
भागसंकमो च गहेयव्वो ।

§ १०. कदि पयडीओ मंकामेइ, कदि वा द्विदि-अणुभाए संकामेइ त्ति गाहा-  
पुव्वद्ददो अट्टियारवसेणाट्ठिमबंधादो तिण्हमेदेमिमेत्थ मंगहो ण विरुज्ज्जे ।

⊗ गुणहीणं वा गुणविसिद्धं ति पदेससंकमो सूचिओ ।

§ ११. गुणहीणं वा गुणविसिद्धं ति एट्ठेण वीजपदेण पदेससंकमो सूचिओ,  
किं गुणहीणं पदेसगं मंकामेइ. किं वा गुणविसिद्धमिदि सुत्तत्थसंबंधावलंबणादो ।

§ ८. गाथाके पूर्वार्धमे आये हुए 'द्विदि-अणुभागे' इस सूत्रपदमे स्थितिवन्ध और अनुभाग-  
वन्ध अन्तर्भूत हैं ऐसा यहाँ जानना चाहिये, क्योंकि सारभूत विषयका संग्रह करनेवाला यह  
पद पर्यायार्थिक प्रपरूपाके योनिरूपसे अस्थित है ।

\* 'जहणणमुक्कस्सं' इस पदसे प्रदेशबन्धको सूचित किया गया है ।

§ ९ गाथाके पूर्वार्धमे आये हुए 'जहणणमुक्कस्सं' उस वीजपदमे प्रदेशान्व संग्रहीत है  
ऐसा यहाँ ग्रहण करना चाहिये, क्योंकि यहाँ पर प्रदेशरूपसे जघन्य या उत्कृष्ट कितने प्रदेशोंको  
बोधता है' इस प्रकार सूत्रार्थके सम्वन्धका अवलम्बन लिया गया है । इस प्रकार इतने प्रबन्ध  
द्वारा, गाथाके पूर्वार्धमे प्रकृतिवन्ध, स्थितिवन्ध, अनुभागवन्ध और प्रदेशवन्धका उल्लेख किया है,  
यह धतलाकर अब गाथाके उत्तरार्धका कथन करनेके लिए आगेका सूत्र कहते हैं—

\* 'संकामेदि कदिं वा' इस पदसे प्रकृतिसंक्रम, स्थितिसंक्रम और अनुभाग-  
संक्रमको ग्रहण करना चाहिए ।

§ १०. कितनी प्रकृतियोंका संक्रमण करता है या कितनी स्थिति और अनुभागका संक्रमण  
करता है इस प्रकार यहाँ प्रकरणवशा गाथाके पूर्वार्धका सम्वन्ध हो जानेसे प्रकृति, स्थिति और  
अनुभाग इन तीनोंका संग्रह यहाँ पर विरोधको प्राप्त नहीं होता ।

\* 'गुणहीणं वा गुणविसिद्धं' इस पदसे प्रदेशसंक्रमको सूचित किया गया है ।

§ ११. गाथासूत्रमे आये हुए 'गुणहीणं वा गुणविसिद्धं' इस वीजपदसे प्रदेशसंक्रमका  
सूचन होता है, क्योंकि यहाँपर 'कितने गुणों हीन प्रदेशोंका संक्रमण करता है या कितने गुणों  
अधिक प्रदेशोंका संक्रमण करता है' इस प्रकार गाथा सूत्रके अर्थके सम्वन्धका अवलम्बन  
लिया गया है ।



❀ सो वृण पयडिडिदि-अणुभाग-पदेसबंधो बहुसो परूविदो ।

§ १२. सो उण गाहाए पुव्वद्धम्मि णिलीणो पयडि-डिदि-अणुभाग-पदेसविसओ बंधो बहुसो गंथंतरेसु परूविदो ति तत्थेव तच्चित्थरो दट्ठव्वो, ण एत्थ पुणो परूविज्जेद, पयासियपयासणे फलविसेसाणुवलंभादो । तदो सहाबंधाणुसारेणेत्थ पयडि-डिदि-अणुभाग-पदेसबंधेसु विहासिय समत्तेसु तदो बंधो समत्तो होइ ।

❀ संक्रमे पयदं ।

§ १३. जहा उदेसो तहा णिदेसो ति णायादो बंधसमत्तिसमणंतरं पत्तावसरो संक्रममहाहियारो ति जाणावणट्टमेदं सुत्तमागयं । एवं च पयदस्स संक्रमाहियारस्स उवक्कमो णिक्खेवो णओ अणुगमो चेदि चउच्चिहो अवयारो परूवेयव्वो, अण्णहा तदणुगमोवायाभावादो । तत्थ ताव पंचविहोवक्कमपरूवणट्टमुत्तरसुत्तमोइण्णं—

\* किन्तु उनमेंसे प्रकृतिबन्ध, स्थितिबन्ध, अनुभागबन्ध और प्रदेशबन्धका बहुत चार प्ररूपण किया गया है ।

§ १२. किन्तु गाथाके पूर्वार्धमें जो प्रकृतिबन्ध, स्थितिबन्ध, अनुभागबन्ध और प्रदेशबन्ध अन्तर्भूत हैं ऐसे बन्धका अन्धान्तरोंमें बहुतबार प्ररूपण किया है, इसलिए उसका विस्तृत विवेचन वहीं पर देखना चाहिये । यहाँ पर उसका फिरसे कथन नहीं करते हैं, क्योंकि प्रकाशित हुई वस्तुके पुन. प्रकाशन करनेमें कोई विशेष लाभ नहीं है । इसलिये महाबन्धके अनुसार प्रकृतिबन्ध, स्थितिबन्ध, अनुभागबन्ध, और प्रदेशबन्धका यहाँ व्याख्यान कर लेनेपर बन्ध अनुयोगद्वार समाप्त होता है ।

विशेषार्थ—‘कवि पयडीओ’ इत्यादि गाथामें प्रकृतिबन्ध आदि चार प्रकारके बन्धों और प्रकृतिसंक्रम आदि चार प्रकारके संक्रमोंका निर्देश किया है । यद्यपि गाथाके उत्तरार्धमें प्रकृति, स्थिति और अनुभागपदका स्पष्ट निर्देश नहीं है पर गाथाके पूर्वार्धमें ये पद आये हैं, अतः इनका वहाँ भी सम्बन्ध कर लेनेसे ‘संक्रमेदि कदिं वा इस पदद्वारा प्रकृतिसंक्रम, स्थितिसंक्रम, और अनुभागसंक्रमका सूचन हो जाता है । इस प्रकार चूर्णिसूत्रकारने प्रारम्भमें जो ‘बंधक’ इस अधिकारमें बन्ध और संक्रम इन दोनोंके अन्तर्भाव करनेका निर्देश किया है सो वह इस गाथाके अनुसार ही किया है यह ज्ञात हो जाता है । यद्यपि इस प्रकरणमें चारों प्रकारके बन्धोंका भी निर्देश करना चाहिये था परं नहीं करनेका कारण चूर्णिकारने यह वतलाया है कि उसका अनेकबार कथन किया जा चुका है अतः यहाँ नहीं करते हैं । आशय यह है कि महाबन्ध आदिमें बन्धप्रकरणका विस्तृत विवेचन किया ही है अतः यहाँ उसका निर्देश नहीं किया गया है । तथापि महाबन्धसे यहाँपर इस प्रकरणको पूरा कर लेना चाहिये ।

\* अब संक्रमका प्रकरण है ।

§ १३. उद्देश्यके अनुसार निर्देश किया जाता है इस न्यायके अनुसार बन्ध प्रकरणकी समाप्तिके बाद अब संक्रम महाधिकारका वर्णन अबसर प्राप्त है यह वतलानेके लिये यह सूत्र आया है । इस प्रकार प्रकरणप्राप्त संक्रम अधिकारका उपक्रम, निक्षेप, नय और अनुगम इस रूपसे चार प्रकारके अवतारका कथन करना चाहिये । नहीं तो उसका ठीक तरहसे ज्ञान नहीं हो सकता । इसमें पहले पाँच प्रकारके उपक्रमका कथन करनेके लिये आगेका सूत्र आया है—

✽ संक्रमस्स पंचविहो उवकमो-आणुपुञ्जी णामं पमाणं वत्तच्चदा अत्थाहियारो चेदि ।

§ १४. पयदत्थाहियारस्स सोदारणं बुद्धिविसयपच्चासण्णभावो जेण कीरदे सो उवकमो णाम । वुण सो पंचविहो आणुपुञ्जीआदिभेएण । तत्थाणुपुञ्जी ति विहा—पुञ्जाणुपुञ्जी पच्छाणुपुञ्जी जत्थतत्थाणुपुञ्जी चेदि । तत्थ पुञ्जाणुपुञ्जीए कसायपाहुडस्स पणहारसण्हमत्थाहियाराणं मज्झे पंचमो एसो अत्थाहियारो । पच्छाणुपुञ्जीए एकारसमो । जत्थतत्थाणुपुञ्जीए पढमो विदिओ तदिओ एवं जाव पणहारसमो वा त्ति वत्तच्चं । णाममेदरसं संकमो त्ति गोणपदं, पयडि-ट्टिदि-अणुभाग-पदेससंक्रमसरू-वण्णणादो । पमाणमेत्थ अक्खर-पद-संघाय-पडिच्चित्ति-अणियोगद्धारोहि संखेजं, अत्थदो अणंतमिदि वत्तच्चं । वत्तच्चदा एदस्स ससमयो । एत्थ अत्थाहियारो चउच्चिहो थप्पो, उवरि सुत्तयारेण समुहेणेव परुविससमाणत्तादो । एवमुवकमो गओ ।

✽ संक्रमका उपक्रम पाँच प्रकारका हैं—आनुपूर्वी, नाम, प्रमाण, वक्तव्यता और अर्थाधिकार ।

§ १४. जिससे प्रकृत अर्थाधिकार श्रोताओंके बुद्धिविषय होनेके अनुकूल होता है वह उपक्रम कहलाता है । किन्तु यह आनुपूर्वी आदिके भेदसे पाँच प्रकारका है । उनमेंसे आनुपूर्वीके तीन भेद हैं—पूर्वाणुपूर्वी, पश्चादानुपूर्वी और यत्रतत्रानुपूर्वी । उनमेंसे पूर्वाणुपूर्वीकी अपेक्षा कवायप्राभृतके पन्द्रह अर्थाधिकारोंमेंसे यह पाँचवाँ अर्थाधिकार है । पश्चादानुपूर्वीकी अपेक्षा ग्यारहवाँ अर्थाधिकार है और यत्रतत्रानुपूर्वीकी अपेक्षा पहला, दूसरा, तीसरा इसी प्रकार क्रमसे जाकर पन्द्रहवाँ अर्थाधिकार है ऐसा यहाँ कहना चाहिये । इसका संक्रम यह नाम गौण्यपद है, क्योंकि इसमें प्रकृतिसंक्रम, स्थितिसंक्रम, अनुभागसंक्रम और प्रदेशसंक्रमके स्वरूपवा वर्णन किया गया है । इसका प्रमाण अक्षर, पद, संघात, प्रतिपत्ति और अनुयोगद्वारोंकी अपेक्षा संख्यात है तथा अर्थकी अपेक्षा अनन्त है ऐसा यहाँ कहना चाहिये । वक्तव्यताके तीन भेद हैं । उनमेंसे इसकी स्वसमय वक्तव्यता है । प्रकृत अर्थाधिकारके चार भेद हैं जिनका कथन रथगित करते हैं, क्योंकि आगे सूत्रकार स्वमुखसे ही उनका कथन करनेवाले हैं । इस प्रकार उपक्रमका कथन समाप्त हुआ ।

विशेषार्थ—उप उपसर्ग पूर्वक क्रम धातुसे उपक्रम शब्द बना है । इसका अर्थ है समीपमें जाना । उपक्रमके जो आनुपूर्वी आदि पाँच भेद बतलाये हैं उनको भले प्रकारसे जान लेनेपर श्रोताको प्रकृत अर्थाधिकारका संक्षेपतः पूरा ज्ञान हो जाता है । आनुपूर्वीसे तो यह यह जान लेता है कि यह प्रारम्भसे गिननेपर कितनेवाँ, अन्तसे गिननेपर कितनेवाँ और जहा कहींसे गिननेपर कितनेवाँ अर्थाधिकार है । नामसे प्रकृत प्रकरणका नाम और इसका नामके दस या छह भेदोंमेंसे किसमें अन्तर्भाव होता है यह जान लेता है । प्रमाणसे प्रकृत प्रकरणके परिमाणका ज्ञान हो जाता है । वक्तव्यतासे यह व्याख्यान स्वसमय या परमसमय इनमेंसे किस अपेक्षसे किया जा रहा है यह ज्ञान हो जाता है । तथा अर्थाधिकारसे प्रकृत प्रकरणके अवागन्तर अर्थाधिकारोंका ज्ञान हो जाता है । इस प्रकार जिस अर्थाधिकारका व्याख्यान करनेवाले होते हैं उसका आनुपूर्वी आदि द्वारा पूरा ज्ञान हो जाता है; इसलिये इन सबको उपक्रम कहते हैं । यहाँ पर संक्रम प्रकरणका वर्णन करनेवाले हैं, इसलिये आनुपूर्वी आदि द्वारा उसका उपक्रम बतलाया गया है ऐसा जानना चाहिये ।

❀ एत्थ णिक्खेवो कायच्चो ।

§ १५. एत्थुद्देसे संक्रमस्स णिक्खेवो कायच्चो होइ, अण्णहा अपयदणिरायरण-  
मुहेण पयदत्थजाणावणोवायाभावादो । उच्चं च—

अयगयणिगारण्हं पयदस्स परूवणाणिमित्तं च ।  
संसयविणासण्हं तच्चत्थवहारण्हं च ॥१॥

§ १६. तदो एत्थ णिक्खेवो अवयारेयच्चो त्ति सिद्धं ।

❀ णामसंक्रमो ठवणसंक्रमो दच्चसंक्रमो खेत्तसंक्रमो कालसंक्रमो  
भावसंक्रमो चेदि ।

§ १७. एवमेदे छण्णक्खेवा एत्थ होंति त्ति भणिदं होइ । संपहि एदेसिं  
णिक्खेवाणमत्थपरूवणं थयं काटूण णयाणमवयारो ताव कीरदे, णयविहागे अणवगए'  
तदत्थणिण्णयाणुववत्तीदो ।

❀ षोगमो सव्वे संक्रमे इच्छइ ।

§ १८. कुदो ? दच्चपञ्जायणयद्दयविसयत्तादो । षोदस्स सुत्तस्स तदुभयं विस-  
यत्तमसिद्धं, यदस्ति न तद्वयमतिलंघ्य वर्तते इति नैगमो नैगमो इति वचनात्तिसिद्धेः ।  
तदो सामण्णविसेसणिवंघणा सव्वे णिक्खेवा एदस्स विसए संभवन्ति त्ति सिद्धं ।

\* यहाँपर निक्षेप करना चाहिये ।

§ १५. अब इस स्थलपर संक्रमका निक्षेप करना चाहिये, क्योंकि इसके बिना अप्रकृत  
अर्थका निराकरण करके प्रकृत अर्थके ज्ञान करानेका दूसरा कोई उपाय नहीं है । कहा भी है—  
अप्रकृत अर्थका निवारण करना, प्रकृत अर्थका प्ररूपण करना, संशयका विनाश करना  
और तत्त्वार्थका निश्चय करना इन चार प्रयोजनोंकी सिद्धिके लिये निक्षेप किया जाता है ॥१॥

§ १६ इस लिये यहाँपर निक्षेपका अवतार करना चाहिये यह बात सिद्ध होती है ।

\* नामसंक्रम, स्थापनासंक्रम, द्रव्यसंक्रम, क्षेत्रसंक्रम, कालसंक्रम और  
भावसंक्रम ।

§ १७. इस प्रकार ये छह निक्षेप यहाँपर होते हैं यह उक्त कथनका तात्पर्य है । अब इन  
निक्षेपोंका विशेष व्याख्यान स्थगित करके पहले नयोंका अवतार करते हैं, क्योंकि नयविभागको  
जाने बिना निक्षेपोंका ठीक तरहसे निर्णय नहीं किया जा सकता ।

\* नैगम नय सब संक्रमोंको स्वीकार करता है ।

§ १८. क्योंकि इसका विषय द्रव्य और पर्याय दोनों हैं । यदि कहा जाय कि नैगम नय  
द्रव्य और पर्याय इन दोनोंको विषय करता है यह बात नहीं सिद्ध होती, सो यह कहना भी ठीक  
नहीं है, क्योंकि 'जो है वह दोको उल्लंघनकर नहीं पाया जाता' इस उक्तिके अनुसार जो एकको  
प्राप्त न होकर अनेक अर्थोंको प्राप्त होता है वह नैगम नय है इस निरुक्तिवचनसे नैगमनयका  
द्रव्य और पर्याय दोनोंको विषय करना सिद्ध होता है । इसलिये सामान्य और विशेषकी अपेक्षा  
प्रथुत्त होनेवाले सय निक्षेप इसके विषय रूपसे रूभव हैं यह बात सिद्ध होती है ।

१. ता० प्रतो अणवगए णयविभागे इति पाठः । २. ता० प्रतो षोदस्स तदुभय-इति पाठः ।

### ❀ संगह-वचहारा कालसंकममवर्णेति ।

§ १९. एत्थ संगह-वचहारा मन्वे संकमे इच्छंति चि अहियारसंबंधो कायव्वो, दब्बट्टिएसु मन्वेसिं पामादीणं संभवाविहारादो । णवग्गि कालसंकममवर्णेति । कुदो ? मंगहो ताव संक्खित्तवत्थुमगहणलक्खणो । सामण्णावेक्खणाए एत्ते चेव कालो, ण तत्थ पुव्वावरीभावसंभवो, जेण तम्म संकमो होज्ज चि एदेणाहिप्पाएण कालसंकममवणेइ । वचहारणयस्स वि एवं चेव वत्तवं । णवग्गि कालसंकममवणेइ चि वुत्ते अदीदकालो सो चेव होऊण ण पुणो आगच्छइ, तस्मादीदनादो । ण चाण्णम्मिं आगए संते अण्णस्स संकमो वोत्तुं जुत्तो, अच्चवत्थावचीदो । तम्हा कालसंकममेसो णेच्छइ चि घेत्तवं ।

### ❀ उजुसुदो एदं च ठवरां च अचण्णेइ ।

§ २०. ल्हणं णिक्खेवाणं मज्जे उजुसुदो एदमणंतगएस्सविदं कालसंकमं ठवणा-संकमं च अवणेइ, सेमन्त्तारि संकमे इच्छंति चि वुत्तं होइ । कुदो दोण्णहमेदेसिमण-अधुवगमो ? ण, एदस्सं विसए तद्भावसाग्गिच्छमामण्णाणमभावेण तद्भयसंभवाणुवलंभादो । कथमुजुसुदं पज्जवट्टिए पाम-दब्ब-व्हेत्तसंकमाणं संभवो ? ण, उजुसुदवयणविच्छेद-

\* मंगहनय और व्यवहारनय कालसंकमको स्वीकार नहीं करते हैं ।

§ १९. यहापर मंगह और व्यवहारनय सब संक्रमोंको स्वीकार करते हैं ऐसा प्रकरणके साथ मन्वन्ध कर लेना चाहिये, क्योंकि इव्याधिकनय नामादिक सबको विषय करते हैं ऐसा माननेमें कोई विरोध नहीं आता है । किन्तु ये दोनों नय कालसंकमको स्वीकार नहीं करते, क्योंकि मंगहनय तो मंगह की गटे वस्तुको ग्रहण करता है । परन्तु सामान्यकी अपेक्षा काल एक ही है । उसमें पूर्वकाल और उत्तरकाल ऐसे भेद सम्भव नहीं हैं जिसमें उगका संक्रम होवे । इस प्रकार हम अभियप्रयत्ने संघहनय कालसंकमको नहीं स्वीकार फरता । व्यवहारनयकी अपेक्षा भी इसी प्रकार कथन करना चाहिये । किन्तु व्यवहारनय कालसंकमको नहीं स्वीकार करता ऐसा कहनेपर यह युक्ति देनी चाहिये कि अतीत काल वही होकर फिरसे नहीं आता है, क्योंकि यह वीत चुका है । और अन्य कालके आनेपर अन्य कालका संक्रम कथना युक्त नहीं है, अन्यथा अव्यवस्था होप आता है । इसलिये व्यवहारनय भी कालसंकमको स्वीकार नहीं करता है ऐसा यहाँ ग्रहण करना चाहिये ।

\* ऋजुसूत्रनय इसको और स्थापनासंकमको स्वीकार नहीं करता ।

§ २० ऋजुसूत्रनय वह संक्रमोंसे इन पूर्वमें कहे गये कालसंकमको और स्थापना संक्रमको स्वीकार नहीं करता, जेप चार संक्रमोंको स्वीकार करता है यह उक्त कथनका तात्पर्य है ।

शंका—ऋजुसूत्रनय इन दोनों संक्रमोंको क्यों स्वीकार नहीं करता ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, तद्भावसादृश्यसामान्य ऋजुसूत्रका विषय नहीं होनेसे इन दोनोंको उसका विषय मानना सम्भव नहीं है ।

शंका—ऋजुसूत्रनयमें नाम, द्रव्य और क्षेत्र संक्रम कैसे सम्भव हैं ।

१. ता० प्रती तस्सादीह ( द ) चादा ? य चाणु ( एण ) गि म इति पाठः । २. ता० प्रती -मण्णधुवगमो एदस्स इति पाठः ।

कालभंतरे एदेसिं संभवं पडि विरोहाभावादो ।

❀ सहस्स णामं भावो य ।

§ २१. कुदो ? सुद्धपज्जवट्टियणए एदम्मि सेसणिकखेवाणमसंभवादो । कथमेत्थ णामणिकखेवस्स संभवो ? ण, सदपहाणे एदम्मि तदत्थित्तं [ पडि विरोहाभावादो ] ।

णिकखेवणयपरूवणा गया ।

समाधान—नहीं, क्योंकि वर्तमान कालके भीतर इन संक्रमोंका सद्भाव होनेमें कोई विरोध नहीं आता है ।

❀ नामसंक्रम और भावसंक्रम ये शब्दनयके विषय हैं ।

§ २१ क्योंकि शब्दनय शुद्ध पर्यायार्थिकनय है, इसलिये इसमें शेष निक्षेप असम्भव हैं ।

शंका—इसमें नामनिक्षेप कैसे सम्भव है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि यह नय शब्दप्रधान है, इसलिये इसमें नामनिक्षेप हैं ऐसा स्वीकार कर लेनेमें कोई विरोध नहीं आता है ।

विशेषार्थ—यहाँ संक्रमको नाम, स्थापना, द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव इन छह निक्षेपोंमें घटित करके उनमेंसे किस निक्षेपको कौन नय विषय करता है यह बतलाया है । मुख्य नय पाँच हैं—नैगम, संग्रह, व्यवहार, ऋजुसूत्र और शब्द । जो संकल्प मात्रको ग्रहण करता है वह नैगमनय है इत्यादि रूपसे नैगमनयके अनेक लक्षण हैं । किन्तु यहाँ जो केवल द्रव्य या केवल पर्यायको, विषय न करके दोनोंको विषय करता है वह नैगमनय है, नैगमनयका ऐसा लक्षण स्वीकार कर लेनेसे सभी निक्षेप उसके विषय हो जाते हैं । इसीसे चूर्णिसूत्रकारने नैगमनय सब निक्षेपोंको स्वीकार करता है यह कहा है । यद्यपि संग्रहनय अभेदवादी है और संक्रम दो के विना अर्थात् भेदके विना बन नहीं सकता, इसलिये शुद्ध संग्रहका एक भी संक्रम विषय नहीं है । तथापि कालभेदके सिवा शेष सब भेद अभेददृष्टिसे अशुद्ध संग्रहके विषय हो सकते हैं, इस लिये कालसंक्रमके सिवा शेष सब संक्रम संग्रहनयके विषय बतलाये हैं । अब यहाँ दो प्रश्न होते हैं । प्रथम तो यह कि और भेदोंके समान कालभेद संग्रहनयका विषय क्यों नहीं है और दूसरा यह कि भावसंक्रम पर्यायरूप होनेके कारण वह संग्रहनयका विषय कैसे हो सकता है ? इन दोनों प्रश्नोंका क्रमसे समाधान यह है कि ऐसा नियम है कि वस्तुमें जहाँ तक द्रव्यादि रूपसे भेद हो सकते हैं वहाँ तक वे दृष्टिभेदसे संग्रह और व्यवहारनयके विषय हैं और जहाँसे कालभेद चालू हो जाता है वहाँसे वे ऋजुसूत्रके विषय होते हैं । यतः कालसंक्रम कालभेदके विना हो नहीं सकता, अतः इसे संग्रहनयका विषय नहीं माना है । अब भावनिक्षेप संग्रहनयका विषय क्यों है इसका विचार करते हैं—यद्यपि भाव और पर्याय ये एकार्थवाची शब्द हैं किन्तु द्रव्यके विना केवल पर्याय नहीं पाई जाती । आशय यह है कि पर्यायसे उपलक्षित द्रव्य ही भाव कहलाता है, अतः इस विवक्षासे भावसंक्रम भी संग्रहनयका विषय माना गया है । व्यवहारनय भेदवादी है । पर यह भी कालभेदको स्वीकार नहीं करता और एक कालमें संक्रम बन नहीं सकता, इसलिये कालनिक्षेप व्यवहारनयका भी विषय नहीं माना गया है । किन्तु शेष द्रव्यादि भेद व्यवहारनयमें बन जाते हैं, अतः कालसंक्रमके सिवा शेष सब संक्रम व्यवहारनयके भी विषय बतलाये गये हैं । ऋजुसूत्रनय वर्तमान पर्यायवादी है, इसलिये इसके रहते हुए जो निक्षेप सम्भव हैं वे ऋजुसूत्रके विषय हो सकते हैं शेष नहीं । शब्दनयके विषय नाम और भावनिक्षेप हैं यह स्पष्ट ही है ।

इस प्रकार कौन निक्षेप किस नयके विषय है इसका कथन समाप्त हुआ ।

§ २२. संपत्ति णिक्खेवत्यविहामणट्टमुवरिमं पवंधमाह—

❀ णोआगमदो दब्बसंकमो ठवणिज्जो ।

§ २३. एत्थ णाम-द्ववणा संकमा आगमदो दब्बसंकमो च सुगमा त्ति ण परु-  
विदा । णोआगमदब्बसंकमो पुण ताव ठवणिज्जो, तस्स पयदत्तादो बहुवण्णणिज्जत्तादो  
च । एवमेदं ठविय संपत्ति खेत्तमंकमसरूपपरुवणट्टमुत्तरमुत्तं भणइ—

❀ खेत्तसंकमो जहा उट्टुलोगो संकंतो ।

§ २४. एत्थ 'खेत्तसंकमो जहा' त्ति आसंकिय 'उट्टुलोगो संकंतो' त्ति तस्स  
सरूपणिहेसो कओ । उट्टुलोगणिहेसण तत्थ द्वियजीवाणमिह गहणं कायच्चं, अण्णहा  
उट्टुलोगस्स संकंतिविगेहादो । उट्टुलोगद्वियदेवेषु इहागदेषु उट्टुलोगमंकमो जादो त्ति  
भावत्थो ।

❀ कालसंकमो जहा संकंतो हेमंतो ।

§ २५. जो सो पुच्चमइकंतो हेमंतो सो पडिणियत्तिय आगदो त्ति भणियं  
होइ । कथमइकंतस्स पुणगगमो त्ति णामंकणिज्जं, मारिच्छसामण्णावेक्खाण्ण अइकंतस्स  
वि तस्स पुणगगमणं पडि विगेहाभावादां । अथवा वगिसयालपजाएणावट्टियो जो कालो

§ २२. अब निक्षेपोंक अर्थका विजेप व्याख्यान धरनेके लिये आगेके प्रबन्धका निर्देश  
करते हैं—

❀ नोआगमद्रव्यसंकमका कथन स्थगित करते हैं ।

§ २३. नामसंकम, स्थापनासंकम और आगमद्रव्यसंकमका विवेचन सुगम है, इसलिए  
यहाँ उनका कथन नहीं किया । अब इसके आगे नोआगमद्रव्यसंकमका कथन करना चाहिये  
था किन्तु वह प्रकरण प्राप्त है और उसका बहुत वर्णन करना है इसलिए उसका कथन स्थगित  
करते हैं । उम प्रकार इसे स्थगित करके अब क्षेत्रसंकमके स्वरूपका निर्देश करनेके लिये आगेका  
सूत्र कहते हैं—

❀ क्षेत्रसंकम यथा—ऊर्ध्वलोक संक्रान्त हुआ ।

§ २४. यहाँ पर क्षेत्रसंकम जैसे ऐसी आशंका करके 'उट्टुलोगो संकंतो' इस पदद्वारा  
उसके स्वरूपका निर्देश किया है । सूत्रमें जो 'ऊर्ध्वलोक' पदका निर्देश किया है सो उससे ऊर्ध्व-  
लोकमें स्थित जीवोंका प्रहण करना चाहिए, अन्यथा ऊर्ध्वलोकका संक्रमण होनेमें विरोध आता  
है । ऊर्ध्वलोकमें स्थित देवोंके यहाँ आनेपर वह ऊर्ध्वलोकका संक्रमण कहजाता है यह इस सूत्रका  
भावार्थ है ।

❀ कालसंकम यथा—हेमन्त ऋतु संक्रान्त हुई ।

§ २५. जो हेमन्त ऋतु पहले निकल गई थी वह उन: लौट आई, यह उक्त कथनका  
सादर्थ्य है ।

शंका—व्यतीत हुई हेमन्त ऋतुका फिरसे लौट आना कैसे सम्भव है ?

समाधान—ऐसी आशंका करना ठीक नहीं है, क्योंकि सादृश्यसामान्यकी अपेक्षा  
व्यतीत हुई हेमन्त ऋतुका फिरसे आगमन माननेमें कोई विरोध नहीं आता । अथवा जो

सो तं छंडियुण हेमंतसरूवेण परिणदो त्ति एदस्स अत्थो वत्तव्वो । संपहि आगम-  
भावसंकममुवज्जुत्तत्पाहुडजाणयविसयं सुगमत्तादो अपरूविय णोआगमभावसंकम-  
परूवणट्टमाह—

❀ भावसंकमो जहा संकतं पेम्मं ।

§ २६. एत्थ पेम्मस्स जीवपज्जायत्तादो पत्तभावववएसस्स विसयंतरसंकंती  
भावसंकमो त्ति वेत्तव्वो । प्रसिद्धश्चायं व्यवहारः, तथा हि वक्तारो भवन्ति संक्रान्तमस्य  
प्रेमान्यत्रागुष्मादिति ।

❀ जो सो णोआगमदो दव्वसंकमो सो दुविहो कम्मसंकमो च  
णोकम्मसंकमो च ।

§ २७. जो सो पुव्वं ठविदो णोआगमदव्वसंकमो सो दुवियप्पो कम्म-णोकम्म-  
मेएण, तदुभयवदिरिचणोआगमदव्वस्साणुवर्लभादो । तत्थ पढमस्स बहुवण्णणिज्जत्तादो  
पयदत्तादो च कममुल्लंधिय थोववत्तव्वमेव ताव णोकम्मदव्वसंकमं णिदरिसणमुहेण  
परूवेइ—

❀ णोकम्मसंकमो जहा कइसंकमो ।

§ २८. कथमसंकताणं कट्टदव्वाणमेत्थ संकमववएसो ? न, संक्रम्यतेऽनेन

काल वर्षाकालरूपसे अवस्थित था वह वर्षाकालको छोड़कर हेमन्त रूपसे परिणत हो गया,  
यह इस सूत्रका अर्थ कहना चाहिये ।

जो संक्रमप्राभृतका ज्ञाता है और उसके उपयोगसे युक्त है वह आगमभावसंकमप्राभृत  
है । यतः यह सुगम है अतः इसका कथन न करके अब नोआगमभावसंकमका कथन करनेके लिये  
आगेका सूत्र कहते हैं—

\* भावसंक्रम यथा—प्रेम संक्रान्त हुआ ।

§ २६. यहाँ जीवकी पर्याय होनेसे प्रेमका भावरूपसे निर्देश किया है । उसका अन्य  
विषयरूपसे संक्रमण करना भावसंक्रम है ऐसा यहाँ ग्रहण करना चाहिये । जैसे कि लोकमें यह  
व्यवहार प्रसिद्ध है और वक्ता भी ऐसा कहते हैं कि इसका इससे प्रेम हट कर अन्यत्र संक्रान्त  
हो गया है ।

\* जो नोआगमद्रव्यसंक्रम है वह दो प्रकारका है—कर्मसंक्रम और नोकर्म-  
संक्रम ।

§ २७. जो पहले नोआगमद्रव्यसंक्रम स्थगित कर आये हैं वह कर्म और नोकर्मके भेदसे  
दो प्रकारका है, क्यों कि इन दोके सिवा और नोआगमद्रव्य नहीं पाया जाता । उनसेसे जो पहला  
कर्मनोआगमद्रव्यसंक्रम है उसका वर्णन बहुत है और उसका प्रकरण भी है अतः क्रमको छोड़कर  
जिसके विषयमें थोड़ा कहना है ऐसे नोकर्मद्रव्यसंक्रमका ही उदाहरणद्वारा कथन करते हैं—

\* नोकर्मनोआगमद्रव्यसंक्रम यथा—काष्ठसंक्रम ।

§ २८. शंका—काष्ठ द्रव्योका संक्रमण तो होता नहीं, अर्थात् एक लड़की दूसरी

१. ता०प्रतौ कम्मसंकमो च शोकम्मसंकमो, आ० प्रतौ कम्मसंकमो शोकम्मसंकमो च इति पाठः ।

देशान्तगमिति संक्रमणव्यव्युत्पादनात् । णर्तुतीये अण्णन्थ वा कन्थ वि कट्टाणि ठविय जेणेच्छिदपदेमं गच्छन्ति भो कट्टमओ संकमो कट्टमंकमो ति भणियं होइ । णिदरिसण-  
मेचं चेदं तेणिट्ट-पत्थर-मट्टिया-फलहमंकमाईणं गहणं कायन्वं, णोकम्मदव्यत्तं पटि  
विसेमाभावो ।

लक्ष्मी रूप तो होगो नहीं, फिर इन्हे यहाँ संकम संज्ञा कैसे दी है ?

समाधान—नहीं क्योंकि जिसमें एक देशसे दूसरे देशमें संकमण किया जाता है वह संकम है, मान शब्दको इस व्युत्पत्तिमें उक्त कथन बन जाता है । नदी किनारे या अन्यत्र यहीं प्राणियों स्वरूप जिसमें उच्छिन्न गानकों जाते हैं वह प्राणमण संकम काष्ठमंत्रक है यह उक्त कथनका तात्पर्य है । यह उदाहरणमात्र है इसलिये हमसे श्रुतान्तकम, पापागमकम, मुनिहर्मकम और फलकमकम इत्यादिका प्रहण करना चाहिये, क्यों कि ये सब नोकर्मद्रव्य है, उन क्षपेक्षा प्राणमें इनमें कोई विरोधता नहीं है ।

विशेषार्थ—पहले नामकम आदि छह संकमोंका उल्लेख कर आये हैं । यहाँ पर वर्तमान अर्थ दिया गया है । इनमें से नामकम, स्थापनाकम, आगमद्रव्यकम और आगमभावकम इनके मरल मरल कर भूमिभूतकामने इनका नृत्तासा नहीं किया है । फिर भी यहाँ पर क्रमवार सभीका नृत्तासा किया जाता है । किसीका नाम ऐसा नाम रखना नामकम है । किसी अन्य पदमें 'यह संकम है' ऐसी स्थापना करना स्थापनाकम है । द्रव्यकमके दो भेद हैं—आगमद्रव्यकम और नोआगमद्रव्यकम । जो संकमविषयक शास्त्रना हागा हो किन्तु वर्तमानमें उनके उपयोगसे रहित हो वह आगमद्रव्यकम है । नोआगमद्रव्यकमके दो भेद हैं—कर्मनोआगमद्रव्यकम और नोपरमनोआगमद्रव्यकम । कर्मनोआगमद्रव्यकम संकमको प्राप्त होनेवाला कर्म कहलाता है । यहाँ इस श्रुतयोगद्वारा शरीर विन्तुन विवेचन किया जानेवाला है । नोपरमनोआगमद्रव्यकम वे सहकारी कारण कहलाते हैं जिनके निमित्तमें एक देशसे दूसरे देशमें जानेमें सुगमता हो जाती है । उदाहरणार्थ लक्ष्मीका पुल, नौका, इँटों, पत्थरों व फलकोंका पुल आदि । यद्यपि यहाँ संकम शब्दका अर्थ संकमण फलके समका यह नोकर्म बनलाया है पर कर्मद्रव्यकमका भी इसी प्रकार नोकर्म जान लेना चाहिये । जो कर्मद्रव्यके मानमें सहकारी हागा वह कर्मद्रव्यका नोकर्म कहलाया । उदाहरणार्थ—असानके कर्मपरमाणुओंको मानारूप परिणामानेमें संपत्ति आदि निमित्त पश्यते हैं, इसलिये ये अमानाकर्मके मानाकर्मरूप संकमणके निमित्त कारण हैं । इसी प्रकार मर्षण जान लेना चाहिये । एक क्षेत्रमें दूसरे क्षेत्रमें जाना क्षेत्रकम है । जैसे ऊर्ध्वलोकसे मध्यलोकमें जाना यह क्षेत्रकम है । कालका एक श्रुतको छोड़कर दूसरी श्रुतरूप होना या एक कालके स्थानमें दूसरा काल आ जाने पर भी पूर्ण कालका पुनरागम मानना कालकम है । जैसे वर्षाकालके बाद हेमन्त श्रुत आती है सो यह कालकम है । या हेमन्त श्रुतके बाद शिशिरश्रुत आदि व्यतीत होकर पुनः हेमन्त श्रुतका आना इत्यादि कालकम है । भावकमके दो भेद हैं—आगमभावकम और नोआगमभावकम । जो राकमविषयक शास्त्र को जानना है और उसके उपयोगसे युक्त है वह आगमभावकम है । तथा नोआगमभाव संकममें प्रेम आदिरूप भाव लिये गये हैं । इनका एकसे दूसरेमें संकमित होना यह नोआगम भावकम है । इस प्रकार जो संकमका छह निष्पत्तियों विभाग किया था उसका किस निष्पत्तकी अपेक्षा क्या अर्थ है इसका खुलासा किया ।



§ २९. संपहि पयदकम्मदव्वसंकमसरूवपरूवणट्टमुत्तरसुत्तं भणइ—

❀ कम्मसंकमो चउच्चिहो । तं जहा—पयडिसंकमो द्विसंकमो अणुभागसंकमो पदेससंकमो चेदि ।

§ ३०. मिच्छतादिकजजणणक्खमस्स पोग्गलक्खंधस्स कम्मववएसो । तस्स संकमो कम्मत्तापरिच्चाएण सहावंतरसंकंती । सो पुण दव्वट्टियणयावलंबणेगेगत्तमावण्णो पज्जवट्टियणयावलंबणेण चउप्पयारो होइ पयडिसंकमादिभेएण । तत्थ पयडीए पयडि-अंतरेसु संकमो पयडिसंकमो ति भणणइ, जहा कोहपयडीए माणादिसु संकमो ति । एवं सेसाणं पि वत्तच्चं । एसो चउप्पयारो कम्मसंकमो एत्थ पयदो । तत्थ वि मोहणिज्जकम्मसंबंधिणा संकमचउक्केण पयदं, अण्णेसिमेत्थाहियाराभावादो । एदेणेदस्स अत्थाहियारपरूवणदुवारोणाणुगमो परूविदो । को अणुगमो णाम ? अनुगम्यतेऽनेन प्रकृतोऽधिकार इत्यनुगमः । प्रकृते वस्तुन्यवान्तराणामर्थाधिकाराणां निर्गमं इति यावत् । एवमेदस्स संकममहाहियारस्स उचक्कमादीहि चउहि पयारोहि अहियारो परूविदो । संकमस्सेव सेसचोइसत्थाहियाराणं पि पुध पुध उचक्कमादिपरूवणा किण्ण परूविज्जेदो ? ण, एदस्स सज्झदीवयमावेण ताणं पि तस्सिद्धीए तदपरूवणादो ।

§ २९. अब प्रकरण प्राप्त कर्मद्रव्यसंक्रमका स्वरूप वतलाने के लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

❀ कर्मनोआगमद्रव्यसंक्रम चार प्रकारका है । यथा—प्रकृतिसंक्रम, स्थितिसंक्रम, अनुभागसंक्रम और प्रदेशसंक्रम ।

§ ३०. जो पुद्गलस्कन्ध मिथ्यात्व आदि कार्यके उत्पन्न करनेमें समर्थ हैं वह कर्म कहलाता है । उसका अपनी कर्मरूप अवस्थाका त्याग किये बिना अन्य स्वभावरूपसे संक्रमण करना कर्मसंक्रम कहलाता है । वह यद्यपि द्रव्यार्थिक नयकी अपेक्षासे एक प्रकारका है तथापि पर्यायार्थिक नयकी अपेक्षासे वह प्रकृतिसंक्रम आदिके भेदसे चार प्रकारका है । इनमेंसे एक प्रकृतिका दूसरी प्रकृतियोंमें संक्रम होना प्रकृतिसंक्रम कहलाता है । जैसे क्रोध प्रकृतिका मानादिकमें संक्रमण होना प्रकृतिसंक्रम है । इसी प्रकार शेष संक्रमोंके विषयमें भी कथन करना चाहिये । यह चार प्रकारका कर्मसंक्रम यहाँ पर प्रकृत है । उसमें भी मोहनीयकर्मसम्बन्धी चार संक्रमोंका यहाँ प्रकरण है, क्योंकि दूसरे कर्मोंका यहाँ पर अधिकार नहीं है । इस प्रकार यहाँ पर जो इसके अर्थाधिकारोंका कथन किया है सो इससे इसके अनुगमका कथन कर दिया गया ऐसा जानना चाहिये ।

शंका—अनुगम किसे कहते हैं ?

समाधान—जिससे प्रकृत अधिकारका ज्ञान होता है उसे अनुगम कहते हैं ।

इससे प्रकृत वस्तुमें अवान्तर अधिकारोंका पूरा ज्ञान हो जाता है यह इसका तात्पर्य है । इस प्रकार इस संक्रम महाधिकारका उपक्रम आदि चार प्रकारसे अधिकार कहा ।

शंका—जिस प्रकार संक्रमकी उपक्रम आदि रूपसे प्ररूपणा की है उसी प्रकार शेष चौदह अर्थाधिकारोंकी भी पृथक् पृथक् उपक्रम आदिरूपसे प्ररूपणा क्यों नहीं की ?

समाधान—नहीं, क्योंकि मध्यदीपकरूपसे यहाँ इसका उल्लेख किया है । इससे

१. प्रतियु-काराज्जिगम इति पाठः ।

६३१. संपदि चउण्हमेदांभि संक.माणं मज्जे पयटिगंकमम्म ताव भेदपट्टप्पायणह-  
मुत्तमुत्तमाह—

⊙ पयटिसंकमो दुविहो । तं जहा -- एगेगपयडिसंकमो पयडिड्ढाण-  
संकमो च ।

६३२. एत्थ मूलपयडिसंकमो पात्थि, महावदो चेव मूलपयडीणमणोण्ण-  
विसयसंकंतीण अभावादो । तम्हा उत्तरपयडिगंकमो चेव दुविहो सुत्ते परुविटो । तत्थे-  
रोगपयडिसंकमो णाम पिण्डनादिपयडीणं पुध पुध णिकमणं काऊण संकमगवेमणा ।  
तहा एकम्मि ममण जत्तिगणं पयडीणं संकमसंभवो ताशो एटो काऊण संकमपक्खिवा  
पयटिड्ढाणसंकमो भण्णत्त; टाणमटम्म समुदायवानयम्म राहणादो । एटमुभयपयं  
पयडिसंकमं ताव कचहम्मामो ति जाणावणट्टमुत्तग्गिमुत्तं भण्ह—

⊙ पयटिसंकमे पयदं ।

६३३. पयटि-ट्टिदि-अणुभाग-पदेगसंकमाणं मज्जे पयटिसंकमे ताव पयदमिदि

शेष अधिकारोंकी भी यह विधि निरूत हो जाती है, अतः अन्वय इन रूपमें प्रकृष्टता नहीं की है ।

विशेषार्थ—पिस्सी भी शास्त्रके प्रारम्भमें उच्यते, निवेद, नय और अनुगम इन चारका  
व्याख्यात करना आवश्यक है । इनमें इन शास्त्रमें वर्णित विषय और इनके अधिकार आदिना  
पना लग जाता है । इसी दृष्टिमें चूकिन्मूत्रशरने इन चारका रूपमें अत्रान्तर भेदोंके साथ यहाँ  
वर्णन किया है तथापि संक्रमके जो चार अर्थविचार चलाने हैं वे ही अनुगम रूपदेशको प्राप्त  
होते हैं ऐसा यहाँ जानना चाहिये । यहाँ पर अन्वयमें यह शंका भी गई है कि संक्रमके प्रारम्भमें  
जैसे इन उच्यते आदिना वर्णन किया है उसी प्रकार अन्वय पदार्थोन्निवहति आदि चोदद  
अधिकारोंके प्रारम्भमें उनका वर्णन क्यों नहीं किया । टीकाकारने उनका जो समाधान किया  
है उनका भाव यह है कि जैसे मांसमें रखा हुआ दीपक आगे और पीछे सर्वत्र प्रकाश देता है  
वैसे ही यह महाविचार भवके मध्यमें है अतः यहाँ उनका उल्लेख कर देनेमें सर्वत्र वे अपने  
अपने अधिकारके नामानुसृत जान लेने चाहिए ।

६३१. अब इन चारों संक्रमोंमें आये हुए प्रकृतिसंकमके भेद दिखलानेके लिये आगेका  
सूत्र कहते हैं—

\* प्रकृतिसंकम दो प्रकारका है । यथा—एकैकप्रकृतिसंकम और प्रकृतिस्थानसंकम ।

६३२. यहाँ पर मूल प्रकृतिसंकम नहीं है, क्योंकि, रजभावतो ही मूल प्रकृतियोंका परस्परमें  
संकम नहीं होता, इसलिये सूत्रमें उत्तरप्रकृतिसंकम ही दो प्रकारका बतलाया है । इनमेंसे  
मिथ्यात्व आदि प्रकृतियोंका प्रथम प्रथक् संक्रमका विचार करना एकैकप्रकृतिसंकम कहलाता  
है । तथा एक समयमें जितनी प्रकृतियोंका संक्रम सम्भव है उनका एकत्रित करके संक्रमका  
विचार करना प्रकृतिस्थानसंकम कहलाता है, क्योंकि यहाँ पर समुदायवार्त्ता स्थान शब्दका  
प्रयोग किया है । इन दोनों प्रकारके प्रकृतिसंकमका आगे बतलावेंगे उस बातका ध्यान  
करानेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

\* प्रकृतिसंकम प्रकृत है ।

६३३. संक्रमके प्रकृतिसंकम स्थितिसंकम, अनुभागसंकम और प्रदेशसंकम इन चार

भणिदं होइ । एवं च पयदस्स पयडिसंकमस्स परूवणं कुणमाणो तत्थ पडिचद्धानं गाहासुत्ताणमियत्तावहारणद्दुत्तरसुत्तमाह—

❀ तत्थ तिण्णिण सुत्तगाहाओ हवन्ति ।

§ ३४. तत्थ पयडिसंकमपरूवणावसरे तिण्णिण सुत्तगाहाओ संगहियासेसत्थ-साराओ हवन्ति चि भणिदं होइ । ताओ कदमाओ चि आसंकिण पुच्छासुत्तमाह—

❀ तं जहा ।

§ ३५. सुगमं ।

संकम-उवक्कमविही पंचविहो चउन्विहो य णिक्खेवो ।

णयविही पयदं पयदे च णिग्गमो होइ अड्ढविहो ॥२४॥

§ ३६. एसा पठमा गाहा । एदीए पयडिसंकमस्स उवक्कमो णिक्खेवो णओ अणुगमो चेदि चउन्विहो अवयारो परूविदो, तेण विणा पयदस्स परूवणोवायाभावो । एवमेदिस्से गाहाए समुदायत्थो परूविदो । अवयवत्थं पुण पुरदो चुण्णिणसुत्तसंबंधेणोव परूवइस्सामो । संपहि एत्थुदिद्दुव्हविहणिग्गमसरूवपरूवणद्दुविदियगाहाए अवयारो—

एक्केकाए संकमो दुविहो संकमविही य पयडीए ।

संकमपडिग्गहविही पडिग्गहो उत्तम जहण्णो ॥२५॥

भेदोंमेंसे सर्व प्रथम प्रकृतिसंक्रम प्रकृत है यह उक्त सूत्रका तात्पर्य है । इस प्रकार प्रकरणप्राप्त प्रकृतिसंक्रमका कथन करते हुए उससे सम्बन्ध रखनेवाली गाथाओंका परिमाण निश्चित करनेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

\* इस विषयमें तीन सूत्र गाथाएं हैं ।

§ ३४. यहाँ प्रकृतिसंक्रमके कथनसे सम्बन्ध रखनेवाली तथा सब अर्थके सारका संग्रह कर स्थित हुई तीन सूत्र गाथाएं हैं यह उक्त सूत्रका तात्पर्य है । वे कौनसी हैं ऐसी आशंका करके पूछासूत्र कहते हैं—

\* यथा—

§ ३५. यह सूत्र सुगम है ।

संक्रमकी उपक्रमविधि पाँच प्रकारकी है, निक्षेप चार प्रकारका है, नयविधि भी प्रकृत है और प्रकृतमें निर्गम आठ प्रकारका है ॥२४॥

§ ३६. यह पहली गाथा है । इसके द्वारा प्रकृतिसंक्रमका उपक्रम, निक्षेप, नय और अनुगम यह चार प्रकारका अवतार कहा गया है, क्योंकि इसके बिना प्रकृत विषयका सम्यक् प्रकारसे प्रतिपादन नहीं हो सकता है । इस प्रकार इस गाथाका समुदायार्थ कहा । किन्तु इसके प्रत्येक पदका अर्थ आगे चूर्णिसूत्रके सम्बन्धसे ही कहेंगे । अब इस गाथामें कहे गये आठ प्रकारके निर्गमके स्वरूपका कथन करनेके लिये दूसरी गाथाका अवतार हुआ है—

प्रकृति संक्रम दो प्रकारका है—एक एक प्रकृतिका संक्रम अर्थात् एकैक-प्रकृतिसंक्रम और प्रकृतिकी संक्रमविधि अर्थात् प्रकृतिस्थानसंक्रम । तथा संक्रममें

§ ३७. एत्थ पुक्कट्टे एत्वं पदसंबंधो कायच्चो । तं जहा—पयडीए संकमो दुविहो—  
एगेज्जाए पयडीए संकमो पयडीए संकमविही चेदि । कुट्टो एत्वं ? संकमपदस्स पयडिसइस्स  
य आविच्चीए संबंधावल्लंबणादो । गाहापच्छट्टे सुगमो पदसंबंधो । उभयत्थ वि  
अवयवत्थो उत्रग्गिमुत्तिणमुत्तसंबंधो णि तमपह्विय ममुदायत्थमेत्थ वचाइस्सामो । तं  
जहा—एदीए गाहाए अट्टण्हं णिग्गमाणं मज्जे पयडिसंकमो पयडिट्टाणमंकमो पयडि-  
पडिग्गहो पयडिट्टाणपडिग्गहो च मूचकंठं परुविदा । एदींस्सि पडिवक्कसा वि चत्तारि  
णिग्गमा रुच्चिदा चेव, मच्चोस्सि मप्पडिवक्कसादो वदिग्गेण विणा अण्णयपरुवणोवाया-  
भावादो च । नंपत्ति एत्थेव णिच्छयजणणट्टमुवग्गिगाहामुत्तवयागे—

पयडि-पयडिट्टाणमु संकमो असंकमो तहा दुविहो ।

दुविहो पडिग्गहविही दुविहो अपडिग्गहविही य ॥२६॥

§ ३८. एदीए गाहाए अट्टण्हं णिग्गमाणं णामण्हिमे कोओ होइ । एदिस्से

प्रतिग्रहविधि होती है और वह उचम प्रतिग्रह और जयन्थ प्रतिग्रह ऐसे दो भेद  
रूप होती है ॥२६॥

§ ३७. यहाँ पृथार्थमें इन प्रकार पदोंका सम्बन्ध करना चाहिये । यथा—‘पयडीए संकमो  
दुविहो—एगेज्जाए पयडीए संकमो पयडीए संकमविही च’ इसके ‘पुत्तार चद’ अर्थ हुआ कि  
प्रकृतिमंक्रम दो प्रकारका है— एदीएप्रकृतिमंक्रम और प्रकृतिमंक्रमविधि अर्थात् प्रकृति-  
स्थानमंक्रम ।

शंका—गाथाके पृथार्थमें या अर्थ किस प्रकार निकला है ?

समाधान—गांक्रम पद और प्रकृति शब्द इनकी आशुक्ति करके सम्बन्ध करनेमें उक्त  
अर्थ निकला है ।

गाथाके उत्तरार्थमें पदोंका सम्बन्ध सुगम है । गाथाके पृथार्थ और उत्तरार्थ इन दोनों ही  
स्थलोंमें प्रत्येक पदका अर्थ आगे सूचित्पूर्वक सम्बन्धसे कहा जायगा, इसलिये यहाँ उसका निर्देश  
न करके समुदायार्थको ही बतलाते हैं । यथा—इस गाथामें आठ निर्गमोंमेंसे प्रकृतिमंक्रम, प्रकृति  
स्थानमंक्रम, प्रकृतिप्रतिग्रह और प्रकृतिस्थानप्रतिग्रह इन चारका मुक्तकण्ठ छोकर कथन किया है ।  
तथा इनके प्रतिपक्षभूत जो चार निर्गम हैं उनका भी उक्त द्वारा सूचन किया है, क्योंकि एक तो  
जिसे भी पदार्थ होते हैं वे सब अपने प्रतिपक्षसहित होते हैं और दूसरे व्यतिरेकके बिना केवल  
अन्वयका कथन करना भी सम्भव नहीं है । अब इसी बातका निश्चय करनेके लिये आगेकी  
सूत्रगाथाका प्रवचन हुआ है—

प्रकृति और प्रकृतिस्थानमें मंक्रम और असंकम ये दोनों प्रत्येक दो दो प्रकारके  
हैं । तथा प्रतिग्रहविधि भी दो प्रकारकी है और अप्रतिग्रहविधि भी दो प्रकार  
की है ॥२६॥

§ ३८. इस गाथा द्वारा आठ निर्गमोंका नामनिर्देश किया गया है । किन्तु इस गाथाके

अत्रयवत्थमुवरिमपदच्छेदपरूवणाए चैव वत्तइस्सामो, सुत्तसिद्धस्स पुद्यपरूवणाए फलाभावादो ।

❀ एदाओ तिण्णि गाहाओ पयडिसंक्रमे ।

§ ३९. एवमेदाओ तिण्णि गाहाओ पयडिसंक्रमे पडिचद्धाओ होंति त्ति भण्णिंद होइ । एवमेदासिं पयडिसंक्रमपडिचद्धत्तं णिरूविय पदच्छेदमुहेणेदासिं वक्ख्खाणं कुणमाणो सुत्तपरंघमुत्तरं भण्णइ—

❀ एदासिं गाहाणं पदच्छेदो ।

§ ४०. एत्तो एदासिं गाहाणं पदच्छेदो कायव्वो होदि, अवयवत्थवक्ख्खाणे पयारंतराभावादो त्ति उत्तं होदि ।

❀ तं जहा ।

§ ४१. सुगमं ।

❀ 'संक्रम-उवक्कमविही पंचविहो' त्ति एदस्स पदस्स अत्थो पंचविहो— उवक्कमो आणुपुञ्जी णामं पमाणं वत्तच्चवदा अत्थाहियारो चेदि ।

§ ४२. संक्रम-उवक्कमविही पंचविहो त्ति एदस्स पढमगाहापुव्वद्धावयवपदस्स अत्थो को होइ त्ति आसंक्रिय आणुपुञ्जीआदिभेदेण पंचविहो उवक्कमो एदस्स पदस्स

प्रत्येक पदका अर्थ आगे पदच्छेदका कथन करते समय ही बतलावेंगे, क्योंकि जो बात सूत्रसिद्ध है उसका अलगसे कथन करनेमें कोई लाभ नहीं है ।

\* ये तीन गाथाएं प्रकृतिसंक्रमके विषयमें आई हैं ।

§ ३९. इस प्रकार ये तीन गाथाएं प्रकृतिसंक्रमसे सम्बन्ध रखती हैं यह उक्त सूत्रका तात्पर्य है । इस प्रकार ये तीन गाथाएं प्रकृतिसंक्रमसे सम्बन्ध रखती हैं इसका कथन करके अब पदच्छेदद्वारा इनका व्याख्यान करते हुए आगेके सूत्रोंका निर्देश करते हैं—

\* इन गाथाओंका पदच्छेद ।

§ ४०. अब इससे आगे इन गाथाओंका पदच्छेद करना चाहिये, क्योंकि अन्य प्रकारसे गाथाओंके प्रत्येक पदके अर्थका व्याख्यान करना सम्भव नहीं है यह उक्त सूत्रका तात्पर्य है ।

\* यथा—

§ ४१. यह सूत्र सुगम है ।

\* 'संक्रम-उवक्कमविही पंचविहो' इस पदका अर्थ है कि उपक्रम पाँच प्रकारका है—आनुपूर्वी, नाम, प्रमाण, वक्तव्यता और अर्थाधिकार ।

§ ४२. प्रथम गाथाके पूर्वाधर्म जो 'संक्रम-उवक्कमविही पंचविहो' यह पद आया है सो इसका क्या अर्थ है ऐसी आशंका करके आनुपूर्वी आदिके भेदसे उपक्रम पाँच प्रकारका है यह इस

१. ता० प्रतौ 'एदस्स' इत्यतः सूत्रायास्य टीकाशेन निर्देशः कृतः ।

अन्थो होइ ति णिदिइं । तत्थाणुपुव्वी-णाम-पमाण-वत्तव्वदाणमत्थपरुवणा सुगमा ।  
अत्थाहियारो पुण अट्टविहो होइ, उवरि तथापरुवणादो ।

❀ 'चउन्विहो य णिक्खेवो' ति णाम इवणं वज्जं दव्वं खेत्तं कालो भावो च ।

§ ४३. एत्थेवमहिसंबंधो कायव्वो—'चउन्विहो य णिक्खेवो' ति एदस्स वीजपदस्स अत्थो दव्वं खेत्तं कालो भावो चेदि चउन्विहो णिक्खेवो पयडिसंक्रमविसओ । कुदो ? जम्हा णाम इवणं वज्जं वज्जणीयमिदि । कुदो पुण दोण्हमेदेसि वज्जणं ? ण, तेसिमेत्थेव जहासंभवमत्तंभावदंसणादो सुगमात्तदो वा । तदो दोण्हमेदेसिमवणयणं कारुण दव्व-खेत्त-काल-भावणं गहणं कयं । तत्थागमदो दव्वपयडिसंक्रमो सुगमो, अणुवज्जुत्तत्पाहुडजाणयसरुवत्तादो । णोआगमदो दव्वपयडिसंक्रमो दुविहो—कम्म-णोकम्मभेएण । तत्थ णोकम्मदव्वपयडिसंक्रमो जहा संकंतो णीलुप्पलगंधो ति, णीलुप्पलसहावस्स गंधस्स वासिज्जमाणदव्वंतरेसु संकंतिदंसणादो । कम्मदव्वपयडि-संक्रमो जहा मिच्छत्तादीणं मोहणिज्जपयडीणं अण्णोणं समयाविरोहेण संक्रमो । खेत्तादीणं णिक्खेवाणमत्थो पुव्वं च वत्तव्वो ।

पदका अर्थ है ऐसा इस चूर्णिसूत्रमें निर्देश किया है । सो इनमेंसे आलुपूर्वी, नाम, प्रमाण और वक्तव्यता इनका अर्थ सुगम है । किन्तु जैसा कि आगे कहा जानेवाला है तदनुसार अर्थाधिकार आठ प्रकारका है ।

❀ 'चउन्विहो य णिक्खेवो' पदका अर्थ है कि नाम और स्थापनाको छोड़कर द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव ये चार निक्षेप हैं ।

§ ४३. यहाँ पर इस प्रकार सम्बन्ध करना चाहिये कि प्रथम गायामें जो 'चउन्विहो य णिक्खेवो' यह वीजपद है सो इसका अर्थ है कि प्रकृतिसंक्रमको विषय करनेवाले द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव ये चार निक्षेप हैं ।

शंका—ये चार ही क्यों हैं ?

समाधान—क्यों कि यहाँ पर नाम और स्थापना निक्षेपको छोड़ देना चाहिये ।

शंका—इन दोनोंको यहाँ क्यों छोड़ दिया है ?

समाधान—नहीं, क्यों कि इन दोनोंका इन्हीं चारोंमें यथासम्भव अन्तर्भाव देखा जाता है या वे सुगम हैं, इस लिये इन दोनोंको छोड़कर द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव इनका ग्रहण किया है । इन द्रव्यादि चार निक्षेपोंमें आगमद्रव्यप्रकृतिसंक्रम सुगम है, क्यों कि, जो प्रकृतिसंक्रम-विषयक प्राश्रुतको जानता है किन्तु उसके उपयोगसे रहित है वह आगमद्रव्यप्रकृतिसंक्रम कहलाता है । नोआगमद्रव्यप्रकृतिसंक्रम कर्म और नोकर्मके भेदसे दो प्रकारका है । इनमेंसे नील कमलका गन्ध संक्रान्त हुआ यह नोकर्मद्रव्यप्रकृतिसंक्रमका उदाहरण है, क्यों कि जिन दूसरे द्रव्योंको नील कमलके गन्धसे वासित किया जाता है उनमें उस गन्धका संक्रमण देखा जाता है । आगममें बतलाई हुई विधिके अनुसार मोहनीयकी मिथ्यात्व आदि प्रकृतियोंका परस्परमें संक्रमण होना कर्मद्रव्य-प्रकृतिसंक्रम है । तथा क्षेत्र आदि निक्षेपोंका अर्थ पहलेके समान कहना चाहिये ।

❀ 'णयविहि पयदं' त्ति एत्थ णओ वत्तव्वो ।

§ ४४. णयविहि पयदमिदि जमत्थपदं, एत्थ णओ वत्तव्वो, तेण विणा णिकखेवत्थविसयणिण्णयाणुवत्तदो । तत्थ णेगमो सव्वपयडिसंक्रमे इच्छइ । संगह-वत्तव्वहारा कालसंक्रममत्तव्वेत्ति । एवमुजुसुदो वि । सद्दणयस्स भावणिकखेवो एको चेव । एत्थ दव्वट्टियणयवत्तव्वदाए कम्मदव्वपयडिसंक्रमे पयदं ।

❀ 'पयदे च णिग्गमो होइ अट्टविहो' त्ति पयडिसंक्रमो पयडिअसंक्रमो पयडिट्ठाणसंक्रमो पयडिट्ठाणअसंक्रमो पयडिपडिग्गहो पयडिअपडिग्गहो पयडिट्ठाणपडिग्गहो पयडिट्ठाणअपडिग्गहो त्ति एसो णिग्गमो अट्टविहो ।

§ ४५. पयदे च णिग्गमो होइ अट्टविहो त्ति एत्थ वीजपदे पयडिसंक्रमासंक्रमादि-भेदमिण्णो अट्टविहो णिग्गमो अंतव्वभूदो त्ति भणिदं होइ । तत्थ पयडिसंक्रमो त्ति भणिदे एगेणपयडिसंक्रमो गहेयव्वो, पयडिट्ठाणसंक्रमस्स पुथ परूवणादो । एवं सेसाणं पि सुत्ताणु-सारेण अत्थपरूवणा कायव्वा । संपहि अट्टण्हमेदेसिं सरूवणिदरिसणमुद्देसमेत्तेण कस्सामो । तं कथं ? पयडिसंक्रमो जहा मिच्छत्तपयडीए सम्मत्त-सम्मामिच्छत्तेसु । पयडिअसंक्रमो जहा तिस्से चेव मिच्छाइट्टिमिं सासणसम्माइट्टिमिं सम्मामिच्छाइट्टिमिं वा । पयडिट्ठाण-

\* 'णयविधि पयदं' इस पदके अनुसार यहाँ पर नयका व्याख्यान करना चाहिये ।

§ ४४. प्रथम गायामें 'णयविहि पयदं' यह जो अर्थपद आया है तदनुसार यहाँपर नयका कथन करना चाहिये, क्योंकि इसके बिना निक्षेपोंका अर्थविषयक निर्णय नहीं हो सकता है । द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव इन चार निक्षेपोंमेंसे नैगमनय सब प्रकृतिसंक्रमोंको स्वीकार करता है । संप्रह और व्यवहारनय काल संक्रमको स्वीकार नहीं करते हैं । इसी प्रकार ऋजुसूत्रनय भी कालसंक्रमको स्वीकार नहीं करता है । तथा शब्दनयका एक भावनिक्षेप ही विषय है । इस अधिकारमें द्रव्याधिकनयकी अपेक्षा कर्मद्रव्यप्रकृतिसंक्रमका प्रकरण है ।

\* 'पयदे च णिग्गमो होइ अट्टविहो' इस पदके अनुसार प्रकृतिसंक्रम, प्रकृति-असंक्रम, प्रकृतिस्थानसंक्रम, प्रकृतिस्थानअसंक्रम, प्रकृतिप्रतिग्रह, प्रकृतिअप्रतिग्रह, प्रकृतिस्थानप्रतिग्रह और प्रकृतिस्थानअप्रतिग्रह यह आठ प्रकारका निर्गम है ।

§ ४५. 'पयदे च णिग्गमो होइ अट्टविहो' इस वीजपदमें प्रकृतिसंक्रम और प्रकृतिअसंक्रम आदिके भेदसे आठ प्रकारका निर्गम अन्तर्भूत है यह उक्त कथनका तात्पर्य है । उनमेंसे प्रकृति-संक्रमपदसे एकप्रकृतिसंक्रमको ग्रहण करना चाहिए, क्योंकि प्रकृतिस्थानसंक्रमका अलगसे कथन किया है । उसी प्रकार सूत्रके अनुसार शेष निर्गमोंके अर्थका भी कथन करना चाहिये ।

अब इन आठोंके स्वरूपका निर्देश नाममात्रको करते हैं । यथा—मिथ्यात्व प्रकृतिका सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वमें संक्रमित होना यह प्रकृतिसंक्रमका उदाहरण है । तथा उसी मिथ्यात्वका मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि या सम्यग्मिथ्यादृष्टि गुणस्थानके रहते हुए सम्यक्त्व

१. ता०प्रती कम्मपयडिसंक्रमे इति पाठः ।

मंकमो जहा अट्टावीससंतकम्मियमिच्छाइड्डिमिह सत्तावीसाए । तदसंकमो जहा तत्थेव अट्टावीसाए । पयडिपडिग्गहो जहा मिच्छत्तं मिच्छाइड्डिमि संकसंताणं सम्मत्त-सम्मा-मिच्छत्ताणं । को पडिग्गहो णाम ? संकमाहारे प्रतिगृह्यतेऽस्मिन् प्रतिगृह्णातीति वा पडिग्गहसहस्रुप्पायणादो । तदपडिग्गहो जहा तत्थेव सम्मत्त-सम्माभिच्छत्ताणि । जहा वा दंसण-चरित्तमोहणीयपयडीणमण्णोणं पेक्खिउण पडिग्गहत्ताभावो । पयडिड्डाण-पडिग्गहो जहा मिच्छाइड्डिमि वावीसपयडिममुदायप्पयमेयं पयडिपडिग्गहट्टाणमिदिं । पयडिड्डाणअपडिग्गहो जहा सोलसादीणं टाणाणमण्णदरो । एवमेसो अट्टविहो णिग्गमो परुविदो चुण्णिसुत्तयारेण पयदे च णिग्गमो होट् अट्टविहो त्ति वीजपदावलंबणेण ।

और सम्यग्मिथ्यात्वमें संक्रमित नहीं होना यह प्रकृतिअसंकमका उदाहरण है । अट्टाईस प्रकृतियोंकी सत्तागाले मिथ्यादृष्टिके सत्ताईस प्रकृतियोंका संक्रमित होना यह प्रकृतिस्थानसंकमका उदाहरण है । तथा उसी मिथ्यादृष्टिके अट्टाईस प्रकृतियोंका संक्रमित नहीं होना यह प्रकृतिस्थान-असंकमका उदाहरण है । प्रकृतिप्रतिग्रहका उदाहरण, जैसे—मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमें संक्रमणको प्राप्त हुई सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व इन दो प्रकृतियोंका मिथ्यात्वप्रकृति प्रकृतिप्रतिग्रह है ।

शंका—प्रतिग्रह किसे कहते हैं ?

समाधान—संकमरूप आधारेके मद्भावमें प्रतिग्रह शब्दकी व्युत्पत्तिके अनुसार संक्रमको प्राप्त हुआ द्रव्य जिसमें ग्रहण किया जाता है या जो ग्रहण करता है उसे प्रतिग्रह कहते हैं ।

प्रकृतिअप्रतिग्रहका उदाहरण, जैसे—उसी मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व ये दो प्रकृतियां प्रकृतिअप्रतिग्रह रूप हैं । अथवा दर्शनमोहनीय और चरित्र-मोहनीय ये परस्परमें प्रतिग्रहरूप नहीं हैं, इसलिये दर्शनमोहनीयको कोई भी प्रकृति चरित्रमोहनीय की अपेक्षा प्रकृतिअप्रतिग्रह है और चरित्रमोहनीयको कोई भी प्रकृति दर्शनमोहनीयकी अपेक्षा प्रकृतिअप्रतिग्रह है । प्रकृतिस्थानप्रतिग्रहका उदाहरण—जैसे, मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमें वाईस प्रकृतियोंका समुदायरूप एक प्रतिग्रहस्थान है । प्रकृतिस्थानअप्रतिग्रहका उदाहरण, जैसे सोलह आदि स्थानोंमें से कोई एक स्थान प्रकृतिस्थानअप्रतिग्रह है । इस प्रकार 'पयदे च णिग्गमो होइ अट्टविहो' इस वीजपदके आलम्बनसे चूर्णिसूत्रकारने यह आठ प्रकारका निर्गम कहा है ।

विशेषार्थ—पहले संक्रमका उपक्रम आदि चारके द्वारा कथन करते हुए अन्तमें चूर्णिसूत्रकारने संक्रमके चार अर्थाधिकार बतलाये रहे । उनमें प्रथम अर्थाधिकार प्रकृतिसंक्रम है, इसलिए सर्व प्रथम इसका वर्णन क्रमप्राप्त है । इसीसे इसका पुनः उपक्रम आदि चारके द्वारा निर्देश किया गया है । यह निर्देश केवल चूर्णिसूत्रकारने ही नहीं किया है किन्तु मूलग्रन्थकारने भी किया है । इसके लिये तीन गाथाएं आई हैं । प्रथम गाथामें उपक्रम, निक्षेप और निर्गम (अनुगम) के भेद देकर नययोजना करनेकी सूचना की गई है तथा दूसरी और तीसरी गाथामें निर्गमके विषयमें विशेष खुलासा और निर्गमके अद्यान्तर भेदोंका नामनिर्देश किया गया है । यहाँ यह प्रश्न हो सकता है कि ये गाथाएं केवल प्रकृतिसंक्रमके विषयमें ही क्यों लागू होती हैं, सामान्य संक्रमके विषयमें क्यों नहीं । सो इसका यह खुलासा है कि इन गाथाओंमें स्पष्टतः प्रकृतिसंक्रमके अद्यान्तर भेदोंका ही एकमात्र निर्देश किया है । इससे ज्ञात होता है कि इन गाथाओंका सम्यग्च केवल प्रकृतिसंक्रमसे ही है ।

१. आ० प्रती—मेव पडिग्गहट्टाणमिदि इति पाठः ।



§ ४६. एवं पदमगाहाए पदच्छेदमुहेणमत्थविवरणं कादूण संपहि विदियगाहाए पदच्छेदकरणडुमिदमाह—

❁ 'एक्केकाए संकमो दुविहो संकमविही य पयडीए' त्ति पदस्स अत्थो कायवो ।

§ ४७. पयडि-पयडिड्डाणसंकमेषु पडिवद्वस्सेदस्स विदियगाहापुच्चद्वस्स अवयवत्थविवरणं कस्सामो त्ति पइज्जासुत्तमेदं ।

अब यहाँ क्रमसे चूर्णिसूत्र और टीकाके अनुसार प्रकृतिसंक्रमके विषयमें इन उपक्रम आदिका खुलासा करते हैं—उपक्रमके पाँच भेद हैं—आनुपूर्वी, नाम, प्रमाण, वक्तव्यता और अर्थाधिकार । आनुपूर्वीके तीन भेदोंमेंसे पूर्वानुपूर्वीके अनुसार प्रकृतिसंक्रम यह पहला भेद है । पश्चानुपूर्वीके अनुसार चौथा और यत्रतत्रानुपूर्वीके अनुसार पहला, दूसरा, तीसरा या चौथा भेद है । नामके कई भेद हैं । उनमेंसे इसका गौण्यनाम है । प्रमाण ग्रन्थकी अपेक्षा संख्यात और अर्थकी अपेक्षा अनन्त है । वक्तव्यताके तीन भेद हैं । उनमेंसे इसमें स्वसमयवक्तव्यता है । अर्थाधिकार इसके आठ हैं जो निर्गमका कथन करते समय बतलाये जायेंगे । उपक्रमके बाद दूसरा भेद निक्षेप है । प्रकृतिसंक्रमको द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव इन चार निक्षेपोंमें घटित करके बतलाया है । यद्यपि मूलकर्ताने केवल चार निक्षेपोंकी सूचनामात्र की है । तदनुसार वे चार निक्षेप नाम, स्थापना, द्रव्य और भाव भी हो सकते हैं । पर चूर्णिसूत्रकारने इन चार निक्षेपोंका प्रकृतमें प्रहण न करके द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव इन चार निक्षेपोंका ही प्रहण किया है । मालूम होता है कि संक्रममे नाम और स्थापनाकी उतनी उपयोगिता नहीं है जितनी द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावकी उपयोगिता है । इसीसे प्रकृतमें नाम और स्थापनाको छोड़ दिया गया है । उदाहरणार्थ किसीका प्रकृतिसंक्रम ऐसा नाम रखनेसे या किसीमे यह प्रकृतिसंक्रम है ऐसी स्थापना करनेसे प्रकृत प्रकृतिसंक्रमके समझनेमें विशेष सहायता नहीं मिलती पर द्रव्यादिकके संक्रमसे यथायोग्य कर्म-प्रकृतियोंके संक्रमणमें सहायता मिलती है इसलिये प्रकृतिसंक्रमकी निक्षेप व्यवस्था करते हुए इन चार निक्षेपोंकी यहाँ योजना की है । उदाहरणार्थ बसन्त ऋतुके बाद ग्रीष्म ऋतु आनेपर जीव गर्मीका अधिक अनुभव करता है, इससे जीवको गर्मीजन्य तीव्र वेदना होती है, अतः ऐसे अवसर पर गर्मीका निमित्त पा कर असाताकी उदय व उदीरणा होने लगती है तथा साता कर्मका असाता-रूप संक्रम भी होने लगता है । इसी प्रकार सभी निक्षेपोंके सम्बन्धमें यथायोग्य घटित कर लेना चाहिये । प्रकृतमें नयका इतना ही प्रयोजन है कि इन निक्षेपोंमें कौन निक्षेप किस नयका विषय है । सो इसका विशेष खुलसा पूर्वमें कर आये हैं, अतः यहाँ नहीं किया गया है । अब रहा निर्गम सो प्रकृतमें यह आठ प्रकारका है । विशेष खुलासा इसका स्वयं टीकाकारने ही किया है इस लिये यहाँ इसका खुलासा नहीं किया जाता है । किन्तु यहाँ इतना विशेष जानना चाहिये कि अन्यत्र जिसे अनुगम कहा है वही यहाँ निर्गम शब्द द्वारा कहा गया है ।

§ ४६. इस प्रकार पदच्छेदद्वारा प्रथम गाथाके अर्थका खुलासा करके अब दूसरी गाथाका पदच्छेद करनेके लिये यह आगेका सूत्र कहते हैं—

'एक्केक्काए संकमो दुविहो संकमविही य पयडीए' इस पदका अर्थ करना चाहिये ।

§ ४७. यह प्रतिज्ञा सूत्र है जिसके द्वारा यह प्रतिज्ञा की गई है कि अब प्रकृतिसंक्रम और प्रकृतिस्थानसंक्रम इनसे सम्बन्ध रखनेवाले इस दूसरी गाथाके पूर्वार्थके अर्थका विशेष खुलासा करेंगे ।

ॐ 'एकैकाण' ति एगेगपयडिसंकमो, 'संकमो दुविहो' ति दुविहो संकमो ति भणिदं होइ, 'संकमविही य' ति पयडिहाणसंकमो, 'पयटीण' ति पयडिसंकमो ति भणियं होइ ।

§ ४८. पयटीण संकमो दुविहो—एगेगाण पयटीण संकमो पयटीण संकमविही चेदि गाहापुव्वद्धम्म एवंविहमंघपदुप्पायणट्टमागयस्सेदस्स सुत्तस्स अथो वुचदं । तं जहा—संकमो दुविहो ति दुविहो संकमो ति भणिदं होइ । एगो विदिओ मुत्तावयवो पटमं वक्त्ताणेषव्वो । तदो संकमो अविमिट्ठो ण होइ ति जाणावणट्टं पयटीण ति भणिदं होइ ति एद्रेण चरिममुत्तावयवेणाहिमंघो कायव्वो । तदो पयडि-संकमो दुविहो ति दोण्हं मुत्तावयवाणमत्थमंगहो । मंघहि कथं दुविहत्तमिदि उचे 'एगेगाण' ति एगेगपयडिसंकमो 'संकमविही' य ति पयडिहाणसंकमो इदि पटम-तद्जावयवाणमहिमंघो । कथं पुण एगेकाण ति एत्थियमेत्तेण एगेगपयडिसंकमो विण्णादुं मक्को ? ण, 'पयटीण संकमो' ति उत्तरेण मह मंघद्रेण तदुत्तलद्वीण । तथा 'संकमविही य' ति एत्थत्तणविहिसुरम्म जहण्णुत्तम्म-नव्वदिरिचपयाग्वाचयम्म्यावल्लवणादो पयडिहाणसंकमम्म गहणं पटिवज्जेयव्वं, एगेगपयडिविक्कमाण तदणुत्तलभादो । तम्हा

ॐ 'एकैकाण' इय पदद्वारा एकैकप्रकृतिसंकम और 'संकमो दुविहो' इस पदद्वारा संकम दो प्रकारका है यह कहा गया है । तथा 'संकमविही य' इय पदद्वारा प्रकृतित्थानसंकम और 'पयटीण' इस पदद्वारा प्रकृतिसंकम कहा गया है ।

§ ४८. गाथाके पूर्वार्धमें प्रकृतिसंकम दो प्रकारका है—एकैक प्रकृतिसंकम और प्रकृति-संकमविधि इस प्रकारके सम्बन्धका कथन करनेके लिये आये हुए इस सूत्रका अर्थ कहते हैं । यथा—'संकमो दुविहो' इय पदद्वारा संकम दो प्रकारका है यह कहा गया है । यद्यपि यह गाथा सूत्रका दूसरा अर्थवय है तथापि इसका अर्थ प्रथम व्याख्यान करना चाहिये । किन्तु यहाँ पर सामान्य संकम नहीं लिया गया है यह जतानेके लिये गाथा सूत्रके पूर्वार्धके अन्तमें आये हुए 'पयटीण इय पदके साथ 'संकमो दुविहो' इय पदका सम्बन्ध करना चाहिये । इसलिये प्रकृति-संकम दो प्रकारका है यह गाथानुसूत्रके इन दोनों पदोंका समुच्चयार्थ होता है । अथ यह प्रकृतिसंकम दो प्रकारका कैसे है ऐसा वृद्धनेवर गाथाके प्रथम पद 'एकैकाण' और तृतीय पद 'संकमविही य' इन दोनों पदोंका सम्बन्ध करके इन दोनों पदोंद्वारा क्रममें एकैकप्रकृतिसंकम और प्रकृति-त्थानसंकम ये दो भेद बतलाये गये हैं ।

शंका—एकैकाण इतनेमात्र पदमें एकैकप्रकृतिसंकमका ज्ञान कैसे किया जा सकता है ? समाधान—नहीं, क्योंकि 'पयटीण संकमो' इस उत्तर पदके साथ सम्बन्ध कर लेनेसे उक्त अर्थ प्राप्त हो जाता है ।

तथा 'संकमविही य' इस पदमें आये हुए जवन्व, उत्तट्ट और तद्व्यतिरिक्त प्रकारवाची विधि शब्दका अर्थत्वान लेनेमें प्रकृतित्थानसंकमका ग्रहण करना चाहिए, क्योंकि कि एक एक

१. वी० गा० प्रती -पयडिसंकमो, दुविहो ति 'संकमो दुविहो' ति इति पाठः । २ ता०प्रती 'संकमविही य' इत्यतः सूत्रांशस्य टीकाशेषे निर्देश कृतः ।

एदेहि चदुहि वि पुव्वद्धपडिवद्धसुत्तावयवेहि एगेगपयडिसंकमो पयडिड्डाणसंकमो चेदि वे णिग्गमा परूविदा ।

❀ 'संकमपडिग्गहविहि' त्ति संकमे पयडिपडिग्गहो ।

§ ४९. संकमे संकमस्स वा पडिग्गहविही संकमपडिग्गहविहि त्ति एत्थ समासो पयडोए त्ति अहियारसंबंधो च कायव्वो । सेसं सुगमं ।

❀ 'पडिग्गो उत्तम जहण्णो' त्ति पयडिड्डाणपडिग्गहो ।

§ ५०. कुदो ? जहण्णुक्कस्सवियप्पाणमण्णत्थासंभवादो । एवमेदीए विदियगाहाए एगेगपयडिसंकमो पयडिड्डाणसंकमो पयडिपडिग्गहो पयडिड्डाणपडिग्गहो च मुत्तकंठं परूविदा । तप्पडिवक्खा वि चत्तारि णिग्गमा देसाभासियभावेण सच्चिदा त्ति वेत्तव्वं । संपहि एदेसिं चैव अट्टण्णं णिग्गमाणं फुड्डीकरण्हं तदियगाहाए पदच्छेदो कीरदे—

❀ 'पयडि-पयडिड्डाणेषु संकमो' त्ति पयडिसंकमो पयडिड्डाण-संकमो च ।

प्रकृतिकी विवक्षामें ये जघन्य आदि भेद नहीं हो सकते । इसलिये गाथासूत्रके पूर्वार्धसे सम्बन्ध रखने-वाले इन चारों ही पदोंके द्वारा एकैकप्रकृतिसंक्रम और प्रकृतिस्थानसंक्रम ये दो निर्गम कहे गये हैं ।

विशेषार्थ—गाथाका पूर्वार्ध इस प्रकार है—'एक्केक्काए संकमो दुविहो—संकमविही य पयडोए । इसका निम्न प्रकारसे अन्वय करना चाहिये—पयडोए संकमो दुविहो—एक्केक्काए पयडोए संकमो संकमविही य । इस अन्वयमें 'पयडोए संकमो' इन दो पदोंका दो वार अन्वय किया गया है । तदनुसार गाथाके इस पूर्वार्धका यह अर्थ हुआ कि प्रकृतिसंक्रम दो प्रकारका है—एकैकप्रकृतिसंक्रम और प्रकृतिस्थानसंक्रम । यहाँ 'संकमविही' इस पदका प्रकृतिस्थानसंक्रम इतना अर्थ लिया गया है, क्यों कि इस पदमें आया हुआ 'विधि' शब्द प्रकारवाची है जिससे उक्त अर्थ प्राप्त हो जाता है यह उक्त कथनका तात्पर्य है ।

❀ 'संकमपडिग्गहविही' इस पदसे संक्रमके विषयमें प्रकृतिप्रतिग्रहका ग्रहण किया है ।

§ ४९ संक्रममें या संक्रमकी प्रतिग्रहविधि संक्रमप्रतिग्रहविधि इस प्रकार यहाँपर समास करके 'पयडोए' इस पदका अधिकारवशा सम्बन्ध करना चाहिये । शेष कथन सुगम है ।

❀ 'पडिग्गहो उत्तम जहण्णो' इस पदसे प्रकृतिस्थानप्रतिग्रहका ग्रहण किया है ।

§ ५० क्योंकि जघन्य और उत्कृष्ट ये विकल्प अन्यत्र सम्भव नहीं हैं । इस प्रकार इस दूसरी गाथा द्वारा एकैकप्रकृतिसंक्रम, प्रकृतिस्थानसंक्रम, प्रकृतिप्रतिग्रह और प्रकृतिस्थानप्रतिग्रह इन चार निर्गमोंका मुत्तकण्ठ होकर कथन किया गया है । तथा इनके प्रतिपक्षभूत चार अन्य निर्गम भी देशामर्षकभावसे सूचि । किये गये हैं ऐसा यहाँ ग्रहण करना चाहिये । आशय यह है कि यद्यपि इस दूसरी गाथा द्वारा चार निर्गमोंका ही सूचन किया है किन्तु यह गाथा देशामर्षक है, अतः इससे इनके प्रतिपक्षभूत चार अन्य निर्गमोंका भी ग्रहण हो जाता है । अब इन्हीं आठों निर्गमोंका स्पष्टीकरण करनेके लिये तीसरी गाथाका पदच्छेद करते हैं—

❀ 'पयडि-पयडिड्डाणेषु संकमो' इस द्वारा प्रकृतिसंक्रम और प्रकृतिस्थानसंक्रम का ग्रहण किया है ।

§ ५१. कथमेत्य गाहामुत्तानयवे मंत्रं विवक्ष्यमकाऊण आहारणिदेसो कओ त्ति पासंकणिञ्जं, विसयभावस्स विवक्खियत्तादो । पयडिविसओ एक्को संक्रमो पयडिड्डाण-विसओ अवरो त्ति ।

❊ 'असंक्रमो तथा दुविहो' त्ति पयडिअसंक्रमो पयडिड्डाणअसंक्रमो च ।

§ ५२. असंक्रमो तथा दुविहो त्ति एत्थ 'पयडि-पयडिड्डाणेसु' त्ति अहियारसंबंधो कायव्वो । तेण पयडिअमंक्रम-पयडिड्डाणामंक्रमाणं संगहो कओ होइ ।

❊ 'दुविहो पडिग्गहविहि' त्ति पयडिपडिग्गहो पयडिड्डाणपडिग्गहो च ।

§ ५३. एत्थ वि पुच्चं व अहियारसंबंधेण पयदणिग्गमाणं गहणं कायव्वं ।

❊ 'दुविहो अपडिग्गविही य' त्ति पयडिअपडिग्गहो पयडिड्डाण-अपडिग्गहो च ।

§ ५४. एत्थ वि अहियारसंबंधो पुच्चं व । सेसं सुगमं ।

एवमेदे पयडिसंक्रमस्त अट्ट णिग्गमा परूविदा ।

§ ५१. अंका—तीसरी गाथासूत्रके 'पयडि' इत्यादि अवयवमें सम्बन्धकी विवक्षा किये विना आधारका निर्देश कैसे किया गया है ?

समाधान—ऐसी आशंका करना ठीक नहीं है, क्योंकि यहाँ पर विपर्यय अर्थ विवक्षित है । आशय यह है कि यहाँ पर आधार अर्थमें सप्तमी विभक्तिका निर्देश नहीं किया है किन्तु विपर्यय अर्थमें सप्तमीका निर्देश किया है । जिससे प्रकृतिविपर्यय एक संक्रम और प्रकृतिस्थानविपर्यय दूसरा संक्रम यह अर्थ होता है ।

\* 'असंक्रमो तथा दुविहो' इस द्वारा प्रकृतिअसंक्रम और प्रकृतिस्थानअसंक्रम का ग्रहण किया है

§ ५२ 'असंक्रमो तथा दुविहो' यहाँ पर 'पयडि-पयडिड्डाणेसु' इस पदका अधिकारवशा सम्बन्ध कर लेना चाहिये जिससे उक्त गाथाशब्दद्वारा प्रकृतिअसंक्रम और प्रकृतिस्थानअसंक्रम इन दोनोंका संग्रह किया गया हो जाता है ।

\* 'दुविहो पडिग्गहविही' इस द्वारा प्रकृतिप्रतिग्रह और प्रकृतिस्थानप्रतिग्रहका ग्रहण किया है

§ ५३. यहाँपर भी पूर्ववत् अधिकारोंका सम्बन्ध हो जानेसे प्रकृत निर्गमोंका ग्रहण कर लेना चाहिये ।

\* दुविहो अपडिग्गहविही य इस द्वारा प्रकृतिअप्रतिग्रह और प्रकृतिस्थान-अप्रतिग्रहका ग्रहण किया है ।

§ ५४. यहाँपर भी पूर्ववत् अधिकारवशा सम्बन्ध कर लेना चाहिये । शेष कथन सुगम है ।

इसप्रकार प्रकृतिसंक्रमके ये आठ निर्गम कहे ।

१. आ०प्रतौ तेण पयडिड्डाणपासंक्रमाणं इति पाठः । २. आ०प्रतौ पडिग्गहविहत्ती इति पाठः ।  
३. आ०प्रतौ -णिग्गमाणं कायव्वं इति पाठः ।

§ ५५. एवं पयडिसंकमस्स चउव्विहावयारस्स परूवणं गाहासुत्तावलंबणेण कारुण पयदत्थोवसंहारकरणट्टमिदमाह—

❀ एस सुत्तफासो ।

§ ५६. एसो गाहासुत्ताणमवयवत्थपरामरसो कओ त्ति भणिदं होइ । संपहि परूविदाणमट्टण्हं णिगमाणं मज्झे एगेगपयडिपडिबद्धाणं ताव परूवणं कस्सामो त्ति सुत्तमुत्तरं भणइ—

❀ एगेगपयडिसंकमे पयदं ।

§ ५७. एगेगपयडिसंकमे अंतोमाविदतदसंकमतप्पडिग्गहापडिग्गहे पयदमिदि भणिदं होइ । तत्थ चउवीसमणियोगद्वाराणि होंति । तं जहा—समुक्कित्तणा सव्वसंकमो पोसव्वसंकमो उक्कस्ससंकमो अणुक्कस्ससंकमो जहण्णसंकमो अजहण्णसंकमो सादिय-संकमो अणादियसंकमो धुवसंकमो अद्धुवसंकमो एगजीवेण सामित्तं कालो अंतरं पाणा-जीवेहि भंगविचओ भागाभागो परिमाणं त्वेत्तं पोसणं कालो अंतरं सण्णियासो भावो अप्पावहुअं चेदि । एत्थ ताव समुक्कित्तणादीणमेकारसण्हमणियोगद्वाराणमप्पवण्ण-णिज्जादो सुत्तयारेण अपरूविदाणमुच्चारणाणुसारेण परूवणं वत्तइस्सामो । तं जहा—

§ ५८. समुक्कित्तणाणुगमेण दुविहो णिदेसो—ओघेण आदेसेण य । ओघेण अत्थि सव्वपयडीणं संकमो । एवं चदुसु गदीसु । णवरि पंचिदियतिरिक्खअपज्ज०-

§ ५५. इसप्रकार गाथासूत्रोंके आधारसे प्रकृतिसंक्रमके चार प्रकारके अवतारका कथन करके प्रकृत अर्थका उपसंहार करनेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

❀ यह सूत्रस्पर्श है ।

§ ५६. इसप्रकार यह गाथासूत्रोंके प्रत्येक पदके अर्थका स्पर्श किया यह उक्त कथनका तात्पर्य है । अब पूर्वोक्त इन आठ निर्गमोंसे एकैकप्रकृतिसम्बन्धी निर्गमका कथन करनेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

❀ एकैकप्रकृतिसंक्रमका प्रकरण है ।

§ ५७. जिसमें एकैकप्रकृतिअसंक्रम, प्रकृतिप्रतिग्रह और प्रकृतिअप्रतिग्रह ये अन्तर्भूत हैं ऐसे एकैकप्रकृतिसंक्रमका प्रकरण है यह उक्त सूत्रका तात्पर्य है । सो इस विषयमें चौबीस अनु-योगद्वार हैं । यथा—समुत्कीर्तना, सर्वसंक्रम, नोसर्वसंक्रम, उत्कृष्टसंक्रम, अनुत्कृष्टसंक्रम, जघन्य-संक्रम, अजघन्यसंक्रम, सादिसंक्रम, अनादिसंक्रम, ध्रुवसंक्रम, अध्रुवसंक्रम, एक जीवकी अपेक्षा स्वामित्व, काल और अन्तर तथा नाना जीवोंकी अपेक्षा भंगविचय, भागाभाग, परिमाण, क्षेत्र, स्पर्शन, काल, अन्तर, सन्निकर्ष, भाव और अल्पवहुत्व । इनमेंसे समुत्कीर्तना आदि ग्यारह अनु-योगद्वार अल्प वर्णनीय होनेसे सूत्रकारके द्वारा नहीं कहे गये हैं, अतः उच्चारणके अनुसार उनका कथन करते हैं । यथा—

§ ५८. समुत्कीर्तनानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश । ओघसे मोहनीयकी सब प्रकृतियोंका संक्रम है । इसीप्रकार चारों गतियोंमें जानना चाहिये । किन्तु इतनी

१. आ०प्रती सुत्तयारेण परूवदाण- इति पाठः ।

मणुमथपञ्जतएमु मिन्रत्तस्म अमंकमो । अणुदिसादि जाव सञ्चट्टे चि सम्मत्तस्स असंकमो । एवं जाव अणाहारि चि ।

§ ५९. मञ्च०-णोमञ्चसंकमाणगमेण दुविहो णिहेमो—ओषेण आदेसेण य । ओषेण मञ्चाओ पयडीओ मंकाभेमाणस्स सञ्चसंकमो । तदूणं० णोसञ्चसंकमो । एवं जाव० ।

§ ६०. उफस्स-अणुफस्ससंकमाणगमेण सत्तावीगपयडीओ मंकाभेमाणस्स उफस्स-संकमो । तदूणं अणुफस्ससंकमो । एवं जाव० ।

§ ६१. जहण्ण-अजहण्णसंकमाण० मञ्चजहण्णियं पयडिं मंकाभेमाणस्स जहण्ण-संकमो । तदो उवग्गिमजहण्णसंकमो । का मञ्चजहण्णिया पयटी णाम ? जा जहण्ण-मंस्सविसेसिया । ततो उवग्गिमंस्सविग्गेमिया अजहण्णा णाम, पयडिविसयमंस्साण्

विशेषता है कि पंचेन्द्रियतिर्यंचअपर्याप्त और मनुष्यअपर्याप्त जीवोंमें मिथ्यात्वका संक्रम नहीं होता । तथा अतुदिशसे लेकर सर्वार्थमिद्धि तकके क्षेत्रोंमें मन्थकत्व प्रकृतिका संक्रम नहीं होता । इसीप्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिये ।

**विशेषार्थ—**मिथ्यात्वका संक्रम मन्थकदृष्टि जीवके ही होता है किन्तु पंचेन्द्रियतिर्यंच लक्ष्यपर्याप्त और मनुष्यलक्ष्यपर्याप्त जीवोंके मन्थकत्वकी प्राप्ति सम्भव नहीं, अतः उनके मिथ्यात्वके संक्रमका निषेध किया है । तथा मन्थकत्वका संक्रम उसी मिथ्यादृष्टिके सम्भव है जिनके उसकी सत्ता है । अतः अतुदिशसे लेकर सर्वार्थमिद्धि तकके क्षेत्र मन्थकदृष्टि ही होते हैं, अतः इनके मन्थकत्वके संक्रमका निषेध किया है । शेष कथन सुगम है ।

§ ५९. सर्वसंक्रम और नोसर्वसंक्रमके अनुगमसे निर्देश दो प्रकारका है—ओचनिर्देश और और आदेशनिर्देश । ओचसे नव प्रकृतियोंका संक्रम करनेवाले जीवके सर्वसंक्रम होता है और इससे न्यून प्रकृतियोंका संक्रम करनेवाले जीवके नोसर्वसंक्रम होता है । इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिये ।

§ ६०. उत्कृष्टसंक्रम और अनुत्कृष्टसंक्रमानुगमसे सत्तादेस प्रकृतियोंका संक्रम करनेवाले जीवके उत्कृष्टसंक्रम होता है और इससे न्यून प्रकृतियोंका संक्रम करनेवाले जीवके अनुत्कृष्टसंक्रम होता है । इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिये ।

**विशेषार्थ—**अदृष्टसंक्रमप्रकृतियोंकी सत्तावाले मिथ्यादृष्टिके मिथ्यात्वके सिवा सव प्रकृतियों का संक्रम सम्भव है, इसलिये यह उत्कृष्टसंक्रम है । तथा इसके सिवा शेष सव अनुत्कृष्टसंक्रम है । पर यह ओच प्रत्यक्षा है । आदेशसे जहाँ जैसी प्रकृतियाँ और उनका बन्ध सम्भव हो तदनुसार उत्कृष्ट अनुत्कृष्टका विचार करना चाहिये ।

§ ६१. जघन्यसंक्रम और अजघन्यसंक्रमानुगमकी अपेक्षा सबसे जघन्य प्रकृतिका संक्रम करनेवाले जीवके जघन्यसंक्रम होता है और इससे अधिक प्रकृतियोंका संक्रम करनेवाले जीवके अजघन्य संक्रम होता है ।

**शंका—**सबसे जघन्य प्रकृति इसका क्या तात्पर्य है ?

**समाधान—**जो जघन्य संख्यासे युक्त है वह जघन्य प्रकृति है और इससे अधिक संख्या

जहण्णाजहण्णभावस्स एत्थ विवक्खियत्तादो । एवं जाव अणाहारि त्ति ।

§ ६२. सादिय-अणादिय-धुव-अद्धुवसंकमाणु० दुविहो णि०—ओघेण आदेसेण य । ओघेण मिच्छत्त-सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणं किं सादिओ संकमो किमणादिओ धुवो अद्धुवो वा ? सादि-अद्धुवो । सोलसकसाय-णवणोकसाय० किं सादिओ ४ ? सादि० अणादि० धुव० अद्धुवसंकमो वा । आदेसेण णेरइएस्स सन्वपयडीणं सादि-अद्धुवो संकमो एवं जाव ।

§ ६३. एवमेदेसिं सुगमाणं परूवणमकादूण सामित्तपरूवणट्टसिदमाह—

❀ एत्थ सामित्तं ।

वाली प्रकृतियों अजघन्य कहलाती हैं, क्योंकि यहाँपर प्रकृतिविषयक संख्याकी अपेक्षासे जघन्य और अजघन्य माना गया है ।

इसीप्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिये ।

§ ६२. सादि, अनादि, ध्रुव और अध्रुव संक्रमानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । ओघसे मिथ्यात्व, सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व इनका संक्रम क्या सादि है, क्या अनादि है, क्या ध्रुव है या क्या अध्रुव है ? सादि और अध्रुव है । सोलह कपाय और नौ नोकपायका संक्रम क्या सादि है, क्या अनादि है, क्या ध्रुव है या क्या अध्रुव है ? सादि, अनादि, ध्रुव और अध्रुव चारों प्रकारका है । आदेशसे नारकियोंमें सब प्रकृतियोंका सादि और अध्रुव संक्रम है । इसी प्रकार अनाहारक मार्गणातक जानना चाहिये ।

विशेषार्थ—सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी सत्ता प्राप्त होनेपर ही मिथ्यात्व, सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका संक्रम सम्भव है । किन्तु उक्त दो प्रकृतियोंकी सत्ता अनादि कालसे नहीं पाई जाती, अतः इन तीन प्रकृतियोंका संक्रम सादि और अध्रुव इस तरह दो प्रकारका बतलाया है । अब वहीं सोलह कपाय और नौ नोकपायरूप पचीस प्रकृतियों से इनमें सादि आदि चारों विकल्प सम्भव हैं, क्यों कि इन पचीस प्रकृतियोंका जिन प्रकृतियोंमें संक्रम हो सकता है उनकी जब तक बन्धव्युच्छित्ति नहीं हुई तब तक इनका संक्रम अनादि है । बन्धव्युच्छित्तिके बाद पुनः बन्ध होनेपर इनका संक्रम सादि है । तथा अभव्योंकी अपेक्षा ध्रुव और भव्योंकी अपेक्षा अध्रुव भंग है । यह तो ओघसे विचार हुआ । आदेशसे विचार करने पर एक जीवकी अपेक्षा नरक गति सादि है अतः इस अपेक्षासे सभी प्रकृतियोंके सादि और अध्रुव ये दो भंग ही सम्भव हैं । इसी प्रकार सभी मार्गणाओंमें जहाँ ओघ या आदेश जो व्यवस्था घटित हो जाय वह लगा लेनी चाहिये । उदाहरणार्थ अचञ्चुदर्शनमें ओघ व्यवस्था लागू होती है इसलिये वहाँ ओघके समान प्ररूपणा जाननी चाहिये । अभव्य मार्गणामे सोलह कपाय और नौ नोकपायकी अपेक्षा अनादि और ध्रुव ये दो ही भंग सम्भव हैं । तथा यहाँ मिथ्यात्वका संक्रम होता नहीं, क्यों कि इसकी सजातीय प्रकृतियों सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व इसके नहीं पाई जातीं । भव्यके एक ध्रुव भंगको छोड़कर शेष सब कथन ओघके समान बन जाता है । अब वहीं शेष मार्गणाएँ से उनमें सब कथन नरक गतिके समान है यह उक्त कथनका तात्पर्य है ।

§ ६३. इस प्रकार इन सुगम अनुयोगद्वारोंका कथन न करके चूर्णिसूत्रकार स्वामित्वका कथन करनेके लिये यह आगेका सूत्र कहते हैं—

❀ अब यहाँ स्वामित्वका अधिकार है ।

§ ६४. एदम्भि एगंगपयडिसंक्रमे सामित्तपरुत्तणमिदाणि करगामो त्ति भणिदं होइ ।

⊗ मिच्छत्तस्स संकामओ को होइ ?

§ ६५. मिच्छत्तस्य पयडिसंक्रमस्य सामिओ कदरो' होइ ? किं देवो पेग्इओ मिच्छाइट्ठी सम्माइट्ठी वा ? इवेवमादिविसेसावेकपमेदं पुच्छामुत्तं ।

⊗ पियमा सम्माइट्ठी ।

§ ६६. कुट्ठो ? अण्णत्थं नम्म संकमाभावादो । एदंण सम्माइट्ठी चेव संकामथो होदि ण अण्णो त्ति अण्णजोगववच्छेदो कदो । यो वि सम्माइट्ठी निविहो खइयादि-भेदंण । तत्थं मच्चोमि सम्माइट्ठीणमविसेसेण पयदसामित्ते पयत्ते विसेसपदुप्पायणट्ठमाह—

⊗ वेदगसम्माइट्ठी सच्चो ।

§ ६७. वेदयसम्माइट्ठी सच्चो मिच्छत्तस्य संकामओ होइ । णवरि संकमपाओग्ग-मिच्छत्तसंतकम्मिओ त्ति पयरणवसेणेत्याहियंवंथो कायच्चो, तदण्णत्थं पयदयामित्ता-संभवादो ।

⊗ उवसामगो च पिरासाणो ।

§ ६८. उवसमसम्माइट्ठी च मच्चो जाव णाग्गाणं पडिवज्जट्ठं ताव मिच्छत्तरस

§ ६९. अथ यहाँ एकैग्रकृतिरांक्रमके नियमसे सामित्यका कथन करते हैं यह उक्त सूत्रका तात्पर्य है ।

\* मिथ्यात्वका संक्रामक कौन होता है ?

६५ मिथ्यात्व प्रकृतिके साक्षात् स्वामी घौन जीव है ? क्या देव है या नारकी है, सम्यग्दृष्टि है या मिथ्यादृष्टि है ? इन प्रकार इत्यादि रूपसे विशेषकी अपेक्षा रखनेवाला यह प्रच्छामुत्त है ।

\* नियमसे सम्यग्दृष्टि होता है ।

§ ६६. क्यों कि अन्यत्र मिथ्यात्वका संक्रम नहीं होता । यद्यपि इम सूत्र द्वारा सम्यग्दृष्टि ही संक्रामक होता है मिथ्यादृष्टि नहीं इम प्रकार अन्ययोगव्ययच्छेद कर दिया है तथापि वह सम्यग्दृष्टि भी ज्ञायिक आदिके भेदने तीन प्रकारका है, इसलिये इन सब सम्यग्दृष्टियोंके सामान्यसे प्रकृत सामित्यका प्रसंग प्राप्त होने पर इस नियमकी विशेषताकी बतलानेके लिये अग्रेका सूत्र कहते हैं—

\* वेदकसम्यग्दृष्टियोंमें सब जीव मिथ्यात्वके संक्रामक होते हैं ।

§ ६७. वेदकसम्यग्दृष्टियोंमें सब जीव मिथ्यात्वके संक्रामक होते हैं । किन्तु इतनी विशेषता है कि जिनके संक्रमके योग्य मिथ्यात्वका सत्त्व है वे ही उसके संक्रामक होते हैं इतना प्रकरण वश यहाँपर अर्थका सम्बन्ध कर लेना चाहिये, क्यों कि इसके सिवा अन्यत्र प्रकृत स्वामित्व सम्भव नहीं है ।

\* उपशामक्योंमें भो जो सासादनको नहीं प्राप्त हुए हैं वे मिथ्यात्वके संक्रामक होते हैं ।

§ ६८. सभी उपशामसम्यग्दृष्टि जब तक सासादनको नहीं प्राप्त होते हैं तब तक मिथ्यात्वके

१. आ० प्रतो कदवरो इति पाठः ।



संकामओ होइ । कथमेत्थुवसंतदंसणमोहणिज्जम्मि मिच्छत्तस्स संकमसंभवो त्ति णासंकणिज्जं, उवसंतस्स वि दंसणमोहणिज्जस्स संकमब्भुवगमादो । सासणगुणपडि-  
वणस्स पुण उवसंतदंसणमोहणीयस्स सहावदो चेव दंसणतियस्स संकमो णत्थि त्ति  
घेत्तव्वं ।

❀ सम्मत्तरस्स संकामओ को होइ ?

§ ६९, सुगमं ।

❀ णियमा मिच्छाइही सम्मत्तसंतकम्मिओ ।

§ ७०, एत्थ 'णियमा मिच्छाइड्ढि' त्ति एदेण सेसगुणट्ठाणवुदासो कओ ।  
'सम्मत्तसंतकम्मिओ' त्ति एदेण वि तदसंतकम्मियस्स पडिसेहो दट्ठव्वो । सो  
पयदसंकमस्स सामिओ होइ, तत्थ तदविरोहादो । किमेसो सम्मत्तसंतकम्मिओ

संक्रामक होते हैं ।

शंका—जिसने दर्शनमोहनीयका उपशम कर लिया है उसके मिध्यात्वका संक्रम कैसे सम्भव है ?

समाधान—ऐसी आशंका करना ठीक नहीं है, क्यों कि जिसने दर्शनमोहनीयकी उपशामना की है उसके भी मिध्यात्वका संक्रम स्वीकार किया है ।

किन्तु सासादनगुणस्थानको प्राप्त हुए जीवके यद्यपि दर्शनमोहनीयका उपशम रहता है तो भी उसके स्वभावसे ही दर्शनमोहनीयकी तीन प्रकृतियोंका संक्रम नहीं होता है ऐसा यहाँ ग्रहण करना चाहिये ।

विशेषार्थ—सर्व प्रथम मिध्यात्वके संक्रमका स्वामी वतलाया गया है । ऐसा नियम है कि सम्यग्दृष्टिके ही मिध्यात्वका संक्रम होता है अन्यके नहीं, इसलिये चूर्णिसूत्रमें मिध्यात्वके संक्रमका स्वामी सम्यग्दृष्टिको वतलाया है । उसमें भी ज्ञायिकसम्यग्दृष्टिके तो मिध्यात्वका सत्त्व ही नहीं पाया जाता है अतः उसे छोड़कर शेष सम्यग्दृष्टियोंके ही मिध्यात्वका संक्रम होता है । शेषसे यहाँ वेदकसम्यग्दृष्टि व उपशमसम्यग्दृष्टि जीव लिये गये हैं । वेदकसम्यग्दृष्टियोंमें २८ या २४ प्रकृतियोंकी सत्तावाले वेदकसम्यग्दृष्टि ही मिध्यात्वका संक्रम करते हैं अन्य नहीं इतना विशेष जानना चाहिये । उपशमसम्यग्दृष्टियोंमें भी सासादनसम्यग्दृष्टियोंके सिवा शेष सब मिध्यात्वका संक्रम करते हैं । सासादनसम्यग्दृष्टियोंके भी मिध्यात्वरका उपशम रहता है फिर भी स्वभावसे वे दर्शनमोहनीयका संक्रम नहीं करते ऐसा नियम है । शेष कथन सुगम है ।

❀ सम्यक्त्वका संक्रामक कौन होता है ।

§ ६६, यह सूत्र सुगम है ।

❀ नियमसे सम्यक्त्वकी सत्तावाला मिध्यादृष्टि जीव होता है ।

§ ७०, यहाँ सूत्रमें 'णियमा मिच्छाइही' पद है सो इसके द्वारा शेष गुणस्थानोंका निराकरण कर दिया है । तथा 'सम्मत्तसंतकम्मिओ' इस पद द्वारा जो सम्यक्त्वकी सत्तासे रहित है उसका निषेध जान लेना चाहिये । एक प्रकारका जो मिध्यादृष्टि है वह प्रकृत संक्रमका स्वामी होता है, क्योंकि उसके सम्यक्त्वका संक्रम होनेमें कोई विरोध नहीं आता । क्या यह सम्यक्त्वकी

सच्चावत्थामु संकामओ होइ किं वा अत्थि को वि विसेसो चि आसंकिव तदत्थिचपट्टु  
प्यायणट्टमुत्तरमुत्तं भणइ—

⊗ **शेचरि आवलियपविट्टुसम्मत्तसंतकम्मियं वज्ज ।**

§ ७१. उब्बेल्लणाए चरिमफालिं पादिय द्विदो आवलियपविट्टुसम्मत्तसंत-  
कम्मिओ णाम । तं वज्जिय सेमसच्चावत्थामु सम्मत्तमंतकम्मिओ मिच्छाड्ढी तस्स  
मंकामओ होइ चि एमो विसेसो सुत्तेणेदेण परुविदो ।

⊗ **सम्मामिच्छत्तस्स संकामओ को होइ ?**

§ ७२. सुगमं ।

⊗ **मिच्छाड्ढी उब्बेल्लमाणओ ।**

§ ७३. एदस्स सुत्तस्सत्थो गम्मत्तमामित्तसुत्तस्सेवं वत्त्वो । ण केवलमेमो  
चेव सामिओ, किं तु अण्णो वि अत्थि चि जाणावणट्टमुत्तरमुत्तं—

सत्तावाला मिथ्यादृष्टि जीव सत्र प्रवस्थाओंमें सम्यक्त्वका संक्रामक होता है या इसमें कोई  
विशेषता है इस प्रकारकी आशंका करके उस विशेषताका ज्ञान करनेके लिये आगेका सूत्र  
कहते हैं—

⊗ **किन्तु इतनी विशेषता है कि जिसके सम्यक्त्वकी सत्ता आवलिमें प्रविष्ट  
हो गई है वह सम्यक्त्वका संक्रामक नहीं होता ।**

§ ७१. उद्देलनाके द्वारा सम्यक्त्वकी अन्तिम फालिका पतन करके जो जीव स्थित है वह  
आवलिमें प्रविष्ट हुआ सम्यक्त्वकी सत्तावाला जीव कहलाता है । ऐसे जीवको छोड़कर शेष सब  
अवस्थाओंमें सम्यक्त्वकी सत्तावाला मिथ्यादृष्टि जीव उसका संक्रामक होता है । इस प्रकार उस  
सूत्र द्वारा यह विशेषता कही गई है ।

**विशेषार्थ—**सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवके तो दर्शनमोहनीयकी तीनों  
प्रकृतियोंका संक्रम नहीं होता ऐसा स्वभाव है । सम्यग्दृष्टिके अन्य दो दर्शनमोहनोय प्रकृतियोंका  
तो यथा सम्भव संक्रम सम्भव है पर सम्यक्त्वका संक्रम यहाँ भी नहीं होता । अब रहा केवल  
मिथ्यात्व गुणस्थान से इसमें २८ प्रकृतियोंकी सत्तावाले सब जीवके सम्यक्त्वका संक्रम होता  
रहता है, किन्तु जब इसकी आवलिप्रमाण सत्ता शेष रह जाती है तब उसका संक्रम होना बन्द  
हो जाता है ।

⊗ **सम्यग्मिथ्यात्वका संक्रामक कौन होता है ?**

§ ७२. यह सूत्र सुगम है ।

⊗ **जो मिथ्यादृष्टि सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्देलना कर रहा है वह सम्यग्मिथ्यात्वका  
संक्रामक होता है ।**

§ ७३. जिस प्रकार सम्यक्त्वके स्वामित्वका कथन करनेवाले सूत्रका अर्थ कहा है उसी  
प्रकार इस सूत्रका अर्थ कहना चाहिये । केवल यही स्वामी है ऐसी बात नहीं है किन्तु अन्य जीव  
भी स्वामी है इस प्रकार इस वातके जतानेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

१. आ०प्रतौ सम्मत्सम्मामिच्छत्तसामिच्चसुत्तस्सेव इति पाठः ।

❀ सम्माइटी वा षिरासणो ।

§ ७४. एदस्स वि सुचस्स अत्थो सुगमो, वेदयसम्माइटी सव्वो उवसामओ षिरासाणो चि एदेण मिच्छत्तसामिच्चसुत्तेण सरिसवक्खाणत्तादो । एत्थतणविसेस-पटुप्पायणद्वयुवरिमसुत्तं—

❀ मोत्तुण पढमसमयसम्भामिच्छत्तसंतकम्मियं ।

§ ७५. किमट्टमेसो परिवज्जिदो ? ण, सम्भामिच्छत्तसंतुप्पायणवावदस्स तत्थ संकामणाए वावराभावादो । ण च संतुप्पायणसंकमकिरियाणमकमेण संभवो, विरोहादो ।

§ ७६. एवं दंसणमोहणीयपयडीणं सामिच्चं पटुप्पाइय चारित्तमोहपयडीणं सामिच्चमिदाणि परूवेमाणो तण्णिवंधणमट्टपदं ताव परूवेइ, तेण विणा तच्चिसेस-

\* सासादन गुणस्थानको नहीं प्राप्त हुआ सम्यग्दृष्टि भी सम्यग्मिथ्यात्वका संक्रामक होता है ।

§ ७४. इस सूत्रका भी अर्थ सुगम है, क्योंकि इस सूत्रका व्याख्यान मिथ्यात्वके स्वामित्वका कथन करनेवाले 'वेदयसम्माइटी सव्वो उवसामओ षिरासाणो' इस सूत्रके समान है । अब यहाँ पर जो विशेषता है उसका कथन करनेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

\* किन्तु जो सम्यग्मिथ्यात्वकी सत्ता प्राप्त करनेके प्रथम समयमें स्थित है वह उसका संक्रामक नहीं होता ।

७५. शंका—ऐसे जीवका निषेध क्यों किया है ?

समाधान—नहीं, क्यों कि जो सम्यग्मिथ्यात्वकी सत्ताके उत्पन्न करनेमें लगा हुआ है उसके उस अवस्थामें संक्रमविषयक क्रिया नहीं होती ।

यदि कहा जाय कि सत्त्वका उत्पादन और संक्रम ये दोनों क्रियाएँ एक साथ बन जायंगी सो भी बात नहीं है, क्यों कि ऐसा होनेमें विरोध आता है ।

विशेषार्थ—मिथ्यादृष्टिके सम्यग्मिथ्यात्वका मिथ्यात्वमें और सम्यग्दृष्टिके सम्यग्मिथ्यात्वका सम्यक्त्वमें संक्रम होता है, इस लिये यहाँ सम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि दोनोंको सम्यग्मिथ्यात्वका संक्रामक बतलाया है । उसमें भी क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंके सम्यग्मिथ्यात्वका सत्त्व नहीं होनेसे वे इसके संक्रामक नहीं होते । वेदकसम्यग्दृष्टियोंमें २८, २४ और २३ प्रकृतियोंकी सत्तावाले ही इसके संक्रामक होते हैं अन्य नहीं । उपशमसम्यग्दृष्टियोंमें और तो सबके इसका संक्रम होत. है किन्तु जो २६ प्रकृतियोंकी सत्तावाला जीव था जिसके सम्यग्मिथ्यात्वका सत्त्व संक्रमके योग्य नहीं रहा है ऐसा २७ प्रकृतियोंकी सत्तावाला जीव उपशमसम्यक्त्वको प्राप्त करता है उसके उपशमसम्यक्त्वको प्राप्त होनेके प्रथम समयमें इसका संक्रम नहीं होता । मिथ्यादृष्टियोंमें भी जिसके सम्यग्मिथ्यात्वका सत्त्व आवलीके भीतर प्रविष्ट हो गया है वह इसका संक्रामक नहीं होता । शेष कथन सुगम है ।

७६. उस प्रकार दर्शनमोहनीयकी प्रकृतियोंके संक्रमविषयक स्वामित्वका कथन करके अब चारित्रमोहनीयकी प्रकृतियोंके संक्रमविषयक स्वामित्वका कथन करते हुए सर्वप्रथम इस संक्रमके

जाणणोवायाभावादो ।

✽ दंसणमोहणीयं चरित्तमोहणीए ण संकमइ ।

§ ७७. कुदो ? मिण्णजादित्तादो ।

✽ चरित्तमोहणीयं पि दंसणमोहणीए ण संकमइ ।

§ ७८. एत्थ वि कारणमणंतत्परुविंयं । ण चेदेसिं मिण्णजाईयत्तमभिद्धं, दंसण-  
चरित्तपडिन्नद्वयाणं समाणजाईयत्तविरोहादो । समाणजाईए चैव भंकमो होइ ति कुदो एस  
णियमो ? महावदो ।

✽ अणंताणुवंधी जत्तिथाओ वज्झन्ति चरित्तमोहणीयपयडीओ तासु  
सन्वासु संकमइ ।

§ ७९. कुदो ? समाणजाईयत्तं पडि भेदाभावादो । एद्रेण 'वंथे संकमदि' ति एसो  
वि णाओ जाणाविदो ।

✽ एवं सन्वाओ चरित्तमोहणीयपयडीओ ।

§ ८०. सन्वत्थ ममाणजाईयवज्झमाणपयडीगु संकमपउत्तीए विरोहाभावादो ।

कारणभूत अर्थवत्तका निर्देश करते हैं, क्योंकि उसके बिना उसका विशेष ज्ञान होनेका और कोई  
साधन नहीं है ।

✽ दर्शनमोहनीय चारित्रमोहनीयमें संक्रमण नहीं करता ।

§ ७९. क्योंकि इन दोनोंकी भिन्न जाति है ।

✽ चारित्रमोहनीय भी दर्शनमोहनीयमें संक्रमण नहीं करता ।

§ ८०. यहाँ भी अनन्तर पूर्व कदा दृष्ट्या कारण कहना चाहिये । यदि कदा जाय कि ये  
भिन्न जातिवाली प्रकृतियाँ हैं यह बात नहीं सिद्ध होती सो यह बात भी नहीं है; क्योंकि दर्शन  
और चारित्रसे सन्बन्ध रखनेवाली प्रकृतियोंको एक जातिका होनेसे विरोध आता है ।

गंका—समान जातिवाली प्रकृतिमें ही रांक्रम दांता है यह नियम किस कारणसे है ?

समाधान—स्वभावसे ही ऐसा नियम है ।

✽ अनन्तानुबन्धी, चरित्रमोहनीयकी जितनी प्रकृतियोंका बन्ध होता है उन  
सबमें संक्रमण करती है ।

§ ७९. क्योंकि समान जातिवाली होनेके प्रति इनके कोई भेद नहीं है । इससे बन्धमें  
संक्रमण करती हैं उन न्यायका भी ज्ञान हो जाता है ।

✽ इसी प्रकार चारित्रमोहनीयकी सब प्रकृतियोंके विषयमें जानना चाहिये ।

§ ८०. क्योंकि सबैत्र बंधनेवाली समानजातीय प्रकृतियोंमें संक्रमण प्रवृत्ति होनेसे कोई  
विरोध नहीं आता ।

विशेषार्थ—उक्त कथनका यह तात्पर्य है कि दर्शनमोहनीय और चारित्रमोहनीय ये एक  
जातिकी प्रकृतियाँ न होनेसे इनका परस्परमें संक्रम नहीं होता । हाँ चारित्रमोहनीयकी सब  
प्रकृतियोंका परस्परमें संक्रम सम्भव है फिर भी यह संक्रम बंधनेवाली समानजातीय प्रकृतियोंमें  
ही होता है इतना विशेष नियम है ।

§ ८१. संपहि एदमहुयदमवलंविचय सामित्तरुवणहुमुत्तरसुत्तं भणइ—

❀ ताओ पणुवीसं पि चरित्तमोहणीयपयडीओ अण्णदरस्स संकमंति ।

§ ८२. जेणवमणंतरपरुविदणाएण सजाइयवज्जमाणपयडिपडिग्गहेणं पणुवीस-  
चरित्तमोहणीयपयडीणं संकमसंभवो तेणंदाओ अण्णदरस्स सम्माइडिस्स मिच्छाइडिस्स  
वा संकमंति ति भणिदं होइ ।

एवमोवेषण सामित्तं समत्तं ।

§ ८३. संपहि आदेसपरुवणहुमुत्तरणं वचइस्सामो । तं जहा—सामित्ताणुगसेण  
दुविहो णिदेसो—ओवेषण आदेसेण य । ओवेषण मिच्छच्चसंकांमओ को होइ ? अण्णदरो  
सम्माइडी । सम्मत्तस्स संकमो कस्स ? मिच्छाइडिस्स । सम्मामिच्छच्च-सोलसक-  
णवणोक्कं संकमो कस्स ? अण्णदरस्स सम्माइडिस्स वा मिच्छाइडिस्स वा । एवं चदुसु  
वि गदीनु । णवरि पंचिदियतिगिक्खअपज्जत्त-मणुसअपज्जत्त-अणुडिस्सादि जाव सव्वहे  
ति सत्तावीनंपयडीणं संकमो कस्स ? अण्णदरस्स । एवं जाव० ।

§ ८१. अब इस अर्थपदका आश्रय लेकर स्वामित्वका कथन करनेके लिये आगेका  
सूत्र कहते हैं—

❀ चारित्रमोहनीयकी ये पच्चीस प्रकृतियाँ किसी भी जीवके संक्रम करती हैं ।

§ ८२. यतः पहले यह न्याय बतला आये हैं कि वैवन्नेवाली सजावांच प्रत्येक प्रकृति  
प्रतिग्रहण होनेसे चारित्रमोहनीयकी पच्चीस प्रकृतियोंका प्रत्येक प्रकृतिमें संक्रम सम्भव है अतः  
ये सन्यग्दृष्टि या मिथ्यादृष्टि किसी भी जीवके संक्रम करती हैं यह एक कथनका वारतय है ।

विशेषार्थ—चारित्रमोहनीयकी जिस समय जितनी प्रकृतियोंका बन्ध होता है उस समय  
उनमें सत्तामें स्थित चारित्रमोहनीयकी सब प्रकृतियोंका संक्रम होता है । इस कारण एक साथ  
चारित्रमोहनीयकी सब प्रकृतियोंका संक्रम सम्भव है यह सिद्ध होता है । किन्तु चारित्रमोहनीयका  
बन्ध यथासम्भव मिथ्यादृष्टि और सन्यग्दृष्टि दोनोंके सम्भव है इसलिये इन प्रकृतियोंके संक्रमके  
मिथ्यादृष्टि और सन्यग्दृष्टि दोनों प्रकारके जीव स्वामी हैं ऐसा यहाँ समझना चाहिये ।

इस प्रकार ओषसे स्वामित्वका कथन समाप्त हुआ ।

§ ८३. अब आदेशका कथन करनेके लिये उच्चारणाका बतलाते हैं । क्या—स्वामित्वाणु-  
गमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओषनिर्देश और आदेशनिर्देश । ओषसे मिथ्यात्वका  
संक्रमक कौन होता है ? कोई भी सन्यग्दृष्टि मिथ्यात्वका संक्रमक होता है । सन्यक्त्वका संक्रम  
किसके होता है ? मिथ्यादृष्टिके होता है । सन्यग्मिथ्यात्व, सोलह कथाय और नौ नाक्यायोंका  
संक्रम किसके होता है ? सन्यग्दृष्टि या मिथ्यादृष्टि किसीकी भी होता है । इसी प्रकार चारों  
गणियोंमें जानना चाहिये । किन्तु पंचेन्द्रयतियंचअपयोग, मतुप्यअपयोग और असुदिरासे  
लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें सत्तास प्रकृतियोंका संक्रम किसके होता है ? किसी भी जीवके  
होता है । इसी प्रकार अनाहारक मार्गणातक जानना चाहिये ।

विशेषार्थ—ओष प्ररुपणाका निर्देश स्वयं चूणित्तरकारने किया ही है जिसका  
सुखाला हम पहले कर आये हैं इसी प्रकार यहाँ पर भी ओष प्ररुपणाका सुखाला  
कर लेना चाहिये । मार्गणाओंमें भी जिन मार्गणाओंमें मिथ्यात्व और सन्यक्त्व ये दोनों

१. ता०प्रतां - गडिग्गहेण अ०प्रतां - न्यडिग्गहेण इति पाठः ।

⊗ एयजीवेण कालो ।

§ ८४. सुगममेदमहियारसंभालणसुत्तं ।

⊗ मिच्छत्तरस संक्रामथो केवचिरं कालादो होदि ?

§ ८५. सुगममेदं पुच्छावकं ।

⊗ जहएणेण अंतोमुहुत्तं ।

§ ८६. तं जहा—मिच्छाड्ढी सम्मामिच्छाड्ढी वा सम्मत्तं वेत्तूण सञ्जहणण-  
मंतोमुहुत्तमच्छिय पुणो अणणदग्गुणं पडिचण्णो । लड्ढो जहण्णणंतोमुहुत्तमेत्तो मिच्छत्त-  
संक्रमकालो ।

⊗ उक्कस्सेण छावटिसागरोवमाणि सादिरेयाणि ।

§ ८७. तं जहा—उवसमसम्मत्तपट्टमसमए मिच्छत्तमंक्रमरसादिं काट्ठूण सच्चुक्क-  
स्सियं तदद्धमणुपालिय पुणो वेदयमम्मत्तं पडिचज्जिय छावटिसागरोवमाणि परिभमिय  
तत्थ अंतोमुहुत्तावसेसे दंणणमोहणीयअस्सवणाए अच्चुट्टिदम्मस मिच्छत्तमावत्तियं पवेसिय

अरक्षणें सम्भव हैं यहाँ तो आंव प्ररूपणा जानना चाहिये। उदाहरणार्थ चारों गतियोंमें एक दोनों अरक्षणें हैं। सरुतां हैं अतः यहाँ ओषप्ररूपणा बन जाती है। किन्तु इस मार्गणाके अग्रान्तर भेद मनुष्यगतिमें लक्ष्यपर्याप्त मनुष्य और तिर्यग्जगतिमें लक्ष्यपर्याप्त पचेंद्रिय तिर्यश्च इन दो मार्गणाओंमें एक मिथ्यात्व गुणस्थान ही होता है और मिथ्यात्व गुणस्थानमें मिथ्यात्व प्रकृतिका संक्रम नहीं होता ऐसा नियम है, अतः यहाँ २७ प्रकृतियोंका ही संक्रम बतलाया है। उसी प्रकार देवगतिमें भी अनुदिशामे लेकर सर्वार्थनिद्धि तकके देवोके एक राश्यादृष्टि गुणस्थान ही होता है और सम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें सम्यक्त्व प्रकृतिका संक्रम नहीं होता ऐसा नियम है, अतः यहाँ भी सम्यक्त्वके लिये २७ प्रकृतियोंका संक्रम बतलाया है। इसी प्रकार प्रनादारक मार्गणातक जहाँ जो विप्रेयता सम्भव हो उसे ध्यानमें रखकर जहाँ जितनी प्रकृतियोंका संक्रम सम्भव हो उसका निर्देश करना चाहिये।

⊗ अथ एक जीवकी अपेक्षा कालका अधिकार है ।

§ ८४. अधिकारका निर्देश करनेवाला यह सूत्र सुगम है ।

⊗ मिथ्यात्वके संक्रामकका कितना काल है ?

§ ८५. यह पुच्छासूत्र सुगम है ।

⊗ जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है ।

§ ८६. यथा—मिथ्यादृष्टि वा सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव सम्यक्त्वको ग्रहण करके और सबसे जघन्य अन्तर्मुहूर्त कालतक सम्यक्त्वके साथ रह कर फिर अन्यतर गुणस्थानको प्राप्त हो गया । इस प्रकार मिथ्यात्वका जघन्य संक्रमकाल अन्तर्मुहूर्त प्राप्त हो गया ।

⊗ उत्कृष्ट काल साधिक छायासट सागर है ।

§ ८७. यथा—उपशमसम्यक्त्वके प्रथम समयमें मिथ्यात्वके संक्रमका प्रारम्भ करके और सबसे उत्कृष्ट कालतक उसका पालन करके फिर वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त हुआ । अनन्तर छायासट सागर कालतक उसके साथ परिभ्रमण करके उसमें अन्तर्मुहूर्त काल शेष रहने पर दर्शनमोहनीयकी चूपणाके ।

सम्मामिच्छत्-सम्मत्ताणि खवेमाणस्स अंतोसुहुत्तकालं छावड्डिअन्तरे पयदसंक्रमेण लब्धइ तेणेत्य पुञ्चसुवसमसम्मचं धेत्तूण द्विदस्स अंतोसुहुत्तकालमाणेदूण द्विविदे सादिरेय-  
छावड्डिसागरोचममेत्तो पयदसंक्रमस्स कालो लद्धो, ऊणकालादो अहियकालस्स संखेज-  
गुणत्तुवलंभादो। कधसेदं परिच्छिज्जे ? सम्मामिच्छत्-सम्मत्तकखवणद्धादो उवसमसम्मत्त-  
कालो बहुओ ति पुरदो भण्णमाणप्पावहुआदो । तं जहा—‘दंसणमोहक्खवयस्स सयल-  
अणियड्डिअद्धादो तस्सेव अपुव्वकरणद्धा संखेजगुणा, तत्तो अणंतागुवंधिचिसंजोययस्स  
अणियड्डिअद्धा संखेजगुणा, तस्सेव अपुव्वकरणद्धा संखेजगुणा, तदो दंसणमोहयुव-  
सामेंतयस्स अणियड्डिअद्धा संखेजगुणा, एदस्स चेय अपुव्वकरणद्धा संखेजगुणा, तेखेव  
अपुव्वकरणपढमसमयम्मि कदगुणसेट्ठिणिवखेवो विसेसाहियो, तस्सुवरि उवसमसम्मत्तद्धा  
संखेजगुणा’ ति ।

लिये उद्यत हुआ ऐसा जो जीव मिथ्यात्वकी क्षपणा करता हुआ उसका उदयावलिमे प्रवेश कराके  
सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक्त्वकी क्षपणा कर रहा है उसके छयासठ सागरमें एक अन्तर्मुहूर्त कालतक  
प्रकृत संक्रम नहीं प्राप्त होता, इसलिये वेदकसम्यक्त्वके प्राप्त होनेके पूर्वमें जो अन्तर्मुहूर्त-उपशम  
सम्यक्त्वका काल है उसे लाकर इस वेदकसम्यक्त्वके कालमें मिलाने पर साधिक छयासठ सागर  
प्रमाण प्रकृत संक्रमका काल प्राप्त होता है, क्यों कि यहाँ पर छयासठ सागरमेंसे जितना काल  
घटाया गया है उससे उपशम सम्यक्त्वका जोड़ा गया काल संख्यातगुणा है ।

शंका—यह कैसे जाना जाता है ?

समाधान—सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक्त्वके क्षपणा कालसे उपशमसम्यक्त्वका काल  
बहुत है यह अल्पबहुत्व आगे कहनेवाले हैं, इससे जाना जाता है कि यहाँ जितना काल घटाया  
गया है उससे, जो उपशमसम्यक्त्वका काल जोड़ा गया है, वह संख्यातगुणा है । यथा—‘दर्शन-  
मोहनीयकी क्षपणा करनेवाले जीवके अनिवृत्तिकरणके पूरे कालसे उसीके अपूर्वकरणका काल  
संख्यातगुणा है । उससे अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना करनेवाले जीवके अनिवृत्तिकरणका काल  
संख्यातगुणा है । उससे इसी विसंयोजक जीवके अपूर्वकरणका काल संख्यातगुणा है । उससे दर्शन  
मोहनीयकी उपशमना करनेवाले जीवके अनिवृत्तिकरणका काल संख्यातगुणा है । उससे इसीके  
अपूर्वकरणका काल संख्यातगुणा है । उससे इसीके अपूर्वकरणके प्रथम समयमें की गई गुणश्रेणिका  
निक्षेप विशेष अधिक है । उससे उपशमसम्यक्त्वका काल संख्यातगुणा है ।’ इससे जाना जाता है  
कि वेदकसम्यक्त्वके उत्कृष्ट कालमेंसे जो काल कम किया गया है उससे वेदकसम्यक्त्वके प्राप्त होनेके  
पूर्व प्राप्त हुआ उपशमसम्यक्त्वका काल संख्यातगुणा है ।

विशेषार्थ—यहाँ मिथ्यात्वके संक्रमका जघन्य और उत्कृष्ट काल वतलाया है । यह तो  
पहले ही वतला आये हैं कि मिथ्यात्वका संक्रम सम्यग्दृष्टिके ही होता है, इसलिये सम्यक्त्वका  
जो सबसे जघन्य काल है वह यहाँ मिथ्यात्वके संक्रमका जघन्य काल जानना चाहिये । यतः  
सम्यक्त्वका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त वतलाया है अतः मिथ्यात्वके संक्रमका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त  
प्राप्त होता है । अब रही उत्कृष्ट कालकी बात सो यद्यपि सामान्यसे सम्यक्त्वका उत्कृष्ट काल  
साधिक चार पूर्वकोटि अधिक छयासठ सागर है । पर इसमें ध्यायिकसम्यग्दर्शनका काल भी  
सन्मिलित है अतः इसे छोड़कर केवल वेदकसम्यक्त्वका कुछ कम उत्कृष्ट काल और उपशमसम्यक्त्व

⊗ सम्पत्तस्स संकामओ केवचिरं कालादो होदि ?

‡ ८८. सुगमं ।

⊗ जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ।

‡ ८९. मच्चजहण्णमिच्छन्नकालावलंघणादो ।

⊗ उफस्सेण पत्तिदोवमरस अस्संखेज्जदिभागो ।

‡ ९०. शीघ्रयकवेत्तल्लणकालमाहणादो ।

⊗ सम्मामिच्छत्तस्स संकामओ केवचिरं कालादो होदि ?

‡ ९१. सुगमं ।

⊗ जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ।

‡ ९२. मच्चजहण्णमिच्छन्नसम्मज्जगुणकालमण्णदग्गम माहणादो ।

का उत्कृष्ट काल ही यहाँ पर देना चाहिये, क्योंकि साम्यवत्त्वव्यतिरिक्त मिथ्यात्वका संकाम नहीं होता। जगत् भी संकामवत्त्ववत्त्वे कालमये मिथ्यात्वके आधारलिप्ते प्रवेश करनेके पालसे लेनर सम्यग्मिथ्यात्व श्रौं सम्यक्त्वके सम्मानरूपे प्राप्तः। अतः अतः पर देना चाहिये। इस प्रकार जो भी काल बनना है उस अन्तर्मुहूर्त अधिक उपयुक्त मानना होता है, अतः मिथ्यात्वके संकामका उत्कृष्ट काल इतना बननाया है।

⊗ सम्पत्त्वके संक्रामकका कितना काल है ?

‡ ८८. यह मूत्र सुगम है।

⊗ जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है।

‡ ८९. क्योंकि यहाँ पर मिथ्यात्वके समये जघन्य कालका उपलक्षण लिया है।

⊗ उत्कृष्ट काल पत्त्यके असंख्यानके भागप्रमाण है।

‡ ९०. क्योंकि यहाँ पर सम्यक्त्वकी उद्भेदनाके समये घट्टे कालका प्रमाण लिया है।

विशेषार्थ—सम्यक्त्व प्रकृतिया संक्रामक मिथ्यावृष्टि जीव होता है, अतः मिथ्यात्व गुणस्थानका जो जघन्य काल है वह सम्यक्त्वके संक्रामका जघन्य काल बननाया है। पर उत्कृष्ट कालमें कुछ विशेषता है। यान यह है कि मिथ्यात्व गुणस्थानमें चिरकाल तप. सम्यक्त्वकी मत्ता नहीं पाई जाती। किन्तु सम्यक्त्व प्रकृति उद्भेदना प्रकृति होनेसे उत्कृष्ट उद्भेदनाका कितना काल है उनका सम्यक्त्व प्रकृतिके संक्रामका उत्कृष्ट काल प्राप्त होता है। अतः सम्यक्त्वका उत्कृष्ट उद्भेदना काल पत्त्यके अन्तर्मुहूर्त भागप्रमाण है। अतः सम्यक्त्वका उत्कृष्ट संक्रामकाल भी इतना ही बननाया है। किन्तु उद्भेदनाके अन्तमे जो सम्यक्त्व प्रकृति प्रावलिप्ते प्राप्त हो जाती है तब इतना संक्राम नहीं होता इतना विशेष जानना चाहिये। इसमें सम्यक्त्वके उत्कृष्ट उद्भेदनाकालमेंसे इतना काल कम कर देना चाहिए।

⊗ सम्यग्मिथ्यात्वके संक्रामकका कितना काल है ?

‡ ९१. यह मूत्र सुगम है।

⊗ जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है।

‡ ९२. क्योंकि यहाँपर मिथ्यात्व या सम्यक्त्व गुणस्थानके सबसे जघन्य कालमेंसे किन्हीं एकका ग्रहण किया है



❀ उक्त्स्सेण वेष्ठावट्टिसागरोवमाणि सादिरेयाणि ।

§ ९३. तं जहा—अणादियमिच्छाड्डी पढमसम्मत्तमुष्पाइय विदियसमए पयद-संकमस्सादिं कादूण तत्थ दीहसंतोमुहुत्तकालमच्छिय मिच्छत्तं गंतूण पलिदोवमासंखेज्ज-भागमेत्तमुन्वेत्तेमाणो चरिमफालिमेत्तसम्मामिच्छत्तट्टिदिसंतकम्मे सेसे सम्मत्तं पडिवज्जिय पढमछावट्टिं भमिय तत्थंतोमुहुत्तावसेसे मिच्छत्तं पडिवण्णो पुन्वविहाणेण उन्वेत्तेमाणो पलिदो० असंखे०भागमेत्तकालेण सम्मत्तमुवणमिय विदियछावट्टिमंतोमुहुत्तूणियमणु-पालिय परिणामपच्चएण सिच्छत्तं गदो दीहुच्चेत्तेणकालेणुन्वेत्तेज्जमाणं सम्मामिच्छत्त-मात्तलियं पवेसिय असंकामओ जांओ । लद्धो तीहि पलिदोवमासंखेज्जदिभागेहि सादिरेओ वेष्ठावट्टिसागरोवमकालो सम्मामिच्छत्तसंकामयस्स ।

❀ सेसाणं पि पणुवीसंपयडीणं संकामयस्स तिणिएण भंगा ।

§ ९४. एत्थ सेसग्गहणेणेव सिद्धे पणुवीसंपयडीणमिदि णिद्देसो णिरत्थओ ति पासंकणिज्जं, उहयणयावलंविंसिस्सजणाणुग्गहट्टमणय-वदिरेगेहिं परूवणाए दोसा-

\* उत्कृष्ट काल साधिक दो छ्यासठ सागर है ।

§ ९३. यथा—किसी एक अनादि मिथ्यादृष्टि जीवने प्रथमोपशम सम्यक्त्वको उत्पन्न करके दूसरे समयमें प्रकृत संक्रमका प्रारम्भ किया । फिर वहाँ सर्वोत्कृष्ट अन्तमुहूर्त कालतक रह कर मिथ्यादृष्टमें गया । फिर वहाँ पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण कालतक सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वेलना की । किन्तु ऐसा करते हुए सम्यग्मिथ्यात्वका स्थितिसत्कर्म अन्तिस फालिप्रमाण शेष रहने पर सम्यक्त्वको प्राप्त करके प्रथम छ्यासठ सागर काल तक उसके साथ परिभ्रमण किया । किन्तु इसमें अन्तमुहूर्त कालके शेष रहने पर मिथ्यादृष्टको प्राप्त हुआ । और पूर्वविविधसे पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण कालके द्वारा सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वेलना करके सम्यक्त्वको प्राप्त किया । फिर अन्त-मुहूर्त कम दूसरे छ्यासठ सागर कालतक सम्यक्त्वका पालन करके परिणामवश मिथ्यात्वमे गया । फिर सर्वोत्कृष्ट उद्वेलना का इके द्वारा उद्वेलना करता हुआ सम्यग्मिथ्यात्वको उदयावलिमें प्रवेश कराके असंकामक हो गया । इस प्रकार सम्यग्मिथ्यात्वके संक्रामकका उत्कृष्ट काल पल्यके तीन असंख्यातवें भागोंसे अधिक दो छ्यासठ सागरप्रमाण प्राप्त होता है ।

त्रिनेपार्थ—सम्यग्मिथ्यात्वका संक्रम सम्यक्त्व और मिथ्यात्व इन दोनों गुणस्थानोंमें होता है, इसलिये जघन्य काल प्राप्त करनेके लिये इन दोनों गुणस्थानोंमेंसे किसी एकका जघन्य काल लिया गया है । तथा उत्कृष्ट काल इन दोनों गुणस्थानोंकी अपेक्षासे घटित किया गया है । केवल ध्यान यह रखा गया है कि सम्यग्मिथ्यात्वका निरन्तर संक्रम बना रहे । इस हिसाबसे कालकी गणना करने पर उक्त काल प्राप्त हो जाता है जिसका विस्वारसे निर्देश टीकामें किया ही है ।

\* शेष पच्चीस प्रकृतियोंके संक्रामक जीवके कालकी अपेक्षा तीन भंग होते हैं ।

§ ९४. शंका—यहाँ सूत्रमें 'शेष' पदका ग्रहण करना ही पर्याप्त है । उसीसे 'वाकीकी वची हुई पच्चीस प्रकृतियोंका ग्रहण हो जाता है, इसलिये 'पणुवीसंपयडीणं' इस पदका निर्देश करना निरर्थक है ?

समाधान—ऐसी आशंका नहीं करनी चाहिये, क्योंकि दोनों नयोंका अवलम्बन

भावादे। तस्मा उच्यतेमाणं चाग्निमोक्षणीयपयटीणं पणुवीसुपहं पि संक्रामयस्म निर्दिष्टं भंगा प्रायच्छा । तं ज्ञा—अथाग्निद्वयो अपञ्जवर्गिदो अथाग्निद्वयो सपञ्जवर्गिदो याद्विद्वो सपञ्जवर्गिदो चेद्वि । आग्निद्वयं सुगमं, तन्थ जहण्णकार्गवियपाणमग्भवादे। इत्यन्थ जहण्णकाल्मकार्गणरेगद्वुत्तरमुचावयागे—

६ तन्थ जो सो साद्विद्वो सपञ्जवर्गिदो जहण्णेषु अन्तोसुदुत्तं । उक्त्सेण उक्त्सेणोत्तरपरियद्वुत् ।

६ २३. तन्थ 'जहण्णेषोनासुदुत्तं' इति उच्ये अणंताण्वंशो विनंजोणद्वुत्तं संजुत्तरस्य पुणो वि सन्थजहण्णेण कालेण विनंजोयणाण् वानदस्म जहण्णसंक्रमकालो वेत्तव्यो । मेमाणं पि सन्थोच्यमानणाण् सेटीदो पट्टिद्विद्वस्म अन्तोसुदुत्तेण पुणो वि सन्थोच्यमानणाण् चावदस्म जहण्णकालो वेत्तव्यो । 'उक्त्सेण उक्त्सेणोत्तरपरियद्वुत्' इति उच्ये षोडशकाल-परियद्वुत्कालस्मलं द्वेषणं वेत्तव्यं, अत्रोत्तरपरियद्वुत्स्म समानं उक्त्सेणोत्तरपरियद्वुत्तमिद्वि गहणादो । तन्थाणंताण्वंशोयणाण्ममसंक्रमकाले भण्णमाणे अत्रोत्तरपरियद्वुत्तदि-गमण् पदमसमस्यपाह्य उच्यमानस्यकालस्मन्तरे अणंताण्वंशो विनंजोद्वुत्तं पुणो निम्मे उच्यमानस्यकाले च आवलियादो अन्थि चि आमणं पट्टिद्वेषणत्तर आवलि-

परनेसां शिष्य जनों। अतएव परनें ( १ ) अन्तर पर आवलियाद्वुत्तरने अत्रोत्तर परनें फोड दोष नहीं आता । इसलिये पूर्वोक्त प्रवृत्तियोंमें जो अग्निमोक्षणीययो पञ्चम प्रवृत्तियां होय वनी हैं उनके संक्रमकाल वेत्तव्यो अर्थनामें नील भंग करने चाहिये । यथा—अथाग्निद्वयो, अथाग्निद्वयो यौग सादि-नान्त । इनमेंमें प्रारम्भके दो भंग सुगम हैं, क्योंकि उच्ये जहण्ण और उक्त्से संभेद सम्यक् नहीं है । अब दो जोर बना नीयस भंग है जो उच्ये उच्येण पर उक्त्से कालो विनंश करनेके लिये आगेके सूत्रो अत्रतर एसा है—

\* उनमें जो सादि-नान्त भंग है उमका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है औग उक्त्से काल उपार्थ पुद्गलपरिवर्तनप्रमाण है ।

६ २४. सूत्रमें 'तन्थ जहण्णेषोनासुदुत्तं' ऐसा परने पर उच्ये अणंताण्वंशोयणी विनंशोयणा करके संयुक्त हुए जीवके फिर भी सबसे जघन्य कालद्वारा विनंशोयणा करने पर जो अणंताण्वंशोयणा जघन्य संक्रमकाल प्राप्त होता है यह लेना चाहिये । इसी प्रकार सर्वोपशामनाके बाद श्रेष्ठिमें च्युत होकर अन्तर्मुहूर्तमें फिर भी सर्वोपशामनामें लगे हुए जीवके दोष प्रवृत्तियोंका भी जघन्य संक्रमकाल कहना चाहिये । तथा सूत्रमें 'उक्त्सेण उक्त्सेणोत्तरपरियद्वुत्' ऐसा करने पर उच्ये पुद्गलपरिवर्तनका कुछ कम आधा काल लेना चाहिये, क्योंकि अर्धपुद्गलपरिवर्तनके समीपका काल उपार्थपुद्गलपरिवर्तन काल कहलाता है ऐसा नहीं प्रमाण दिया गया है । उच्ये सर्व प्रथम अणंताण्वंशोयणी उक्त्से संक्रमकालका यथत करते हैं—जघ संसारमें रहनेके लिये अर्धपुद्गलपरिवर्तन काल होय वचै तय उच्ये प्रथम समदमें प्रथमोपशाम सन्धवत्यको उत्पन्न करने उपरामसन्धवत्यके कालके भीतर अणंताण्वंशोयणी विनंशोयणा करावे । फिर उसी उपशामसन्धवत्यके कालमें जब छद् आवलिकाल होय वचै तय उसे सामादन्तं ले जावे और एक

१ ता०प्रवो -वधी [ यं ] विनंजोणद्वुत्तं, आ०प्रवो -वधीणं विनंजोणद्वुत्तं इति पाठः ।

यादिकंतस्स आदी कायव्वा । सेसं सुगमं । एवं सेसाणं पि पयडीणं वतव्वं । णवरि सञ्जीवसामणाए पडिवादपढमसमए संकमस्सादिं कादूण देसूणमद्वपोग्गलपरियइं साहेयव्वं ।

एवमोषेण कालो गओ ।

§ ९६. संपहि आदेसपरूवणइमुच्चारणं वत्तइस्सामो । तं जहा—एयजीवेण कालाणुगमेण दुविहो णिहेसो—ओषेण आदेसेण य । तत्थ ओषेण मिच्छत्तसंक्रामओ केवचिरं० ? जह० अंतोमुहुत्तं, उक्क० छावड्डिसागरो० सादिरेयाणि । असंक्रामओ जह० अंतोमुहुत्तं, उक्क० अद्वपोग्गलपरियइं देसूणं । सम्मत्त०संक्रामओ जह० अंतोमुहुत्तं, उक्क० पल्लिदो० असंखे०भागो । असंक्रामय० जह० अंतोमु०, उक्क० वेछावड्डिसागरो० सादिरेयाणि । सम्मामि०संक्राम० जह० अंतोमु०, उक्क० वेछावड्डिसागरो० सादिरेयाणि ।

आवलिकालके बाद संक्रमका प्रारम्भ करावे । इसके आगेका शेष कथन सुगम है । इसी प्रकार शेष प्रकृतियोंका भी उत्कृष्ट संक्रमकाल कहना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि सर्वोपशामनासे च्युत होनेके प्रथम समयमें संक्रमका प्रारम्भ करके उसका उत्कृष्ट काल कुछ कम अर्धपुद्गल-परिवर्तनप्रमाण साध लेना चाहिये ।

विज्ञेयार्थ—दर्शनमोहनीयकी तीन प्रकृतियोंमेंसे सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका सत्त्व अनादि मिथ्यादृष्टि जीवके नहीं पाया जाता, इसलिये इन तीन प्रकृतियोंके संक्रमकी अपेक्षा अनादि-अनन्त और अनादि-सान्त ये दो विकल्प बनते ही नहीं । वहाँ केवल सादि-सान्त यही एक विकल्प सम्भव है । किन्तु चारित्रमोहनीयकी पच्चीस प्रकृतियोंका अनादि कालसे भव्य और अभव्य दोनोंके सत्त्व पाया जाता है । इसलिये इनकी अपेक्षा संक्रमके अनादि-अनन्त, अनादि-सान्त और सादि-सान्त ये तीनों विकल्प बन जाते हैं । अनादि-अनन्त विकल्प तो अभव्योंके ही होता है, क्योंकि अभव्योंके अनादि कालसे इन पच्चीस प्रकृतियोंका संक्रम होता आ रहा है और अनन्त कालतक होता रहेगा । किन्तु शेष दो विकल्प भव्योंके ही होते हैं । उनमेंसे अनादि-सान्त विकल्प उन भव्योंके होता है जिन्होंने एकवार अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना और चारित्रमोहनीयकी शेष प्रकृतियोंकी उपशामना की है । अब रहा तीसरा विकल्प सो उसका खुलासा टीकामे ही किया है । सुगम होनेसे उसका निर्देश पुनः यहाँ नहीं किया गया है ।

इस प्रकार ओषसे कालका कथन समाप्त हुआ ।

§ ९६. अब आदेशका कथन करनेके लिये उच्चारणको बतलाते हैं । यथा—एक जीवकी अपेक्षा कालानुगमसे निर्देश दो प्रकारका है—ओष निर्देश और आदेश निर्देश । उनमेंसे ओषकी अपेक्षा मिथ्यात्वके संक्रामकका कितना काल है ? जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल साधिक छयासठ सागर है । मिथ्यात्वके असंक्रामकका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल कुछ कम अर्धपुद्गलपरिवर्तनप्रमाण है । सम्यक्त्वके संक्रामकका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल पल्लयके असंख्यातवें भागप्रमाण है ? असंक्रामकका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल साधिक दो छयासठ सागरप्रमाण है । सम्यग्मिथ्यात्वके संक्रामकका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल साधिक दो छयासठ सागरप्रमाण है । असंक्रामकका

अमंका० जह० एगममओ, उक्० अंतोमु० । सोलमक०-णवणोक० मंका०  
 अणादिओ अपज्ज० अणादिओ मपज्ज० नादिओ मपज्ज० । जो सो गादिओ  
 मपज्जमिदो नम्म ह्मो णिदो—जह० अंतोमु०, उक्० उक्वपोनगलपरियट्ठं । अणंताणु०-  
 अमंका०मओ जह० गमयुणावलिया, विगंजोयणाचरिमफालीणं तद्वलंभादो । उक्०  
 आवलिभा मंणुणा, मंजुणपट्टमावलियाणं तद्वलद्वीदो । सेयाणममंका०मय० जह०  
 एगममओ, उक्० अंतोमु०, उवगमनेटीणं तद्वलंभादो ।

जन्म-काल एक समय है और उत्पन्न काल अन्तर्मुहूर्त है । सोलह कथाय और नौ नोटपर्यंके  
 मंत्राकारके फलही अथवा अनादि-अनन्त, अनादि-सान्ना और सादि-न्यन्त ये तीन भंग होते  
 हैं । इनमेंसे जो सादि-सान्ना विकल्प है उसका यह निर्देश है । उसही अथवा जन्म काल  
 अन्तर्मुहूर्त है और उत्पन्न काल इसी पुद्गलपरिवर्तनप्रमाण है । अनन्तानुबन्धियोंके अस्तंजामकका  
 जन्म काल एक समय कम एक आबलिप्रमाण है, क्योंकि विमंजोयणाके अन्तिम फालिके  
 प्राक्कथने यह काल उक्त होता है । उत्पन्न काल पूरी एक आबलिप्रमाण है, क्योंकि अनन्तानु-  
 बन्धियोंमेंसे मंजु-क होनेपर कम आबलिके समय यह काल उक्त होता है । ये प्रक्रमियोंके  
 अस्तंजामकका जन्म काल एक समय है और उत्पन्न काल अन्तर्मुहूर्त है, क्योंकि ये दोनों काल  
 उपरामधर्मियोंमें पाये जाते हैं ।

**विशेषार्थ—**आयमें सब प्रक्रमियोंके मंत्राकारका जन्म और उत्पन्न काल कितना है  
 इसका गुणान्ता पूर्ण चूर्णित्वाके व्याख्यानके समय कर अर्थ है उनी प्रकार यहाँ भी जान लेना  
 चाहिये । यहाँ उन सब प्रक्रमियोंके अस्तंजामकके जन्म और उत्पन्न कालका गुणान्ता करते हैं—  
 मिथ्यात्वका मिथ्यात्व गुणस्थानमें मंत्रम नहीं होता, तबः इस गुणस्थानका जो जन्म  
 अन्तर्मुहूर्त काल है वही मिथ्यात्वके अस्तंजामकका जन्म काल प्राप्त होता है । वही कारण है कि  
 यहाँ मिथ्यात्वके अस्तंजामकका जन्म काल अन्तर्मुहूर्त बतलाया है । तथा सादि-सान्ना विकल्पकी  
 अथवा मिथ्यात्व गुणस्थानका जो उत्पन्न काल उक्त कम अर्धपुद्गलपरिवर्तनप्रमाण है वही  
 यहाँ मिथ्यात्वके अस्तंजामकका उत्पन्न काल प्राप्त होता है । इसीमें मिथ्यात्वके अस्तंजामकका  
 उत्पन्न काल उक्त कम अर्धपुद्गलपरिवर्तनप्रमाण बतलाया है । सम्यक्त्वका मंत्रम सम्यक्त्वके  
 नहीं होता, इसलिये सम्यक्त्व गुणस्थानका जो जन्म काल है वह सम्यक्त्वके अस्तंजामकका  
 जन्म काल प्राप्त होता है । इसीसे सम्यक्त्वके अस्तंजामकका जन्म काल अन्तर्मुहूर्त-  
 प्रमाण बतलाया है । तथा उद्वेलनाके अस्तंजाम प्राप्त हुआ एक समय कम एक आवलि-  
 प्रमाण काल, उपराम सम्यक्त्वका अन्तर्मुहूर्त काल, वेदक सम्यक्त्वका उक्त कम ध्यामठ  
 सागर काल, सम्यग्मिथ्यात्व गुणस्थानका अन्तर्मुहूर्त काल और वेदकसम्यक्त्वका पूरा  
 ध्यामठ सागर काल उन कार्योंका जोड़ साधिक दो ध्यामठ सागर होता है इसीसे  
 सम्यक्त्वके अस्तंजामकका उत्पन्न काल साधिक दो ध्यामठ सागर बतलाया है । यहाँ  
 इतना विशेष जानना चाहिये कि जिस क्रमसे उक्त कालोंका निर्देश किया है उसी  
 क्रमसे उक्त प्राप्त कराना चाहिये । यहाँ सम्यक्त्वकी सत्ता तो है पर मंत्रम नहीं होता ।  
 सम्यग्मिथ्यात्वका मंत्रम सासादन और सम्यग्मिथ्यात्व गुणस्थानमें नहीं होता । सासादनका  
 जन्म काल एक समय और सम्यग्मिथ्यात्व गुणस्थानका उत्पन्न काल अन्तर्मुहूर्त है । इसीसे  
 यहाँ सम्यग्मिथ्यात्वके अस्तंजामकका जन्म काल एक समय और उत्पन्न काल अन्तर्मुहूर्त  
 बतलाया है । अनन्तानुबन्धियोंके विमंजोयणाके अस्तंजाम एक समयकम एक आवलिप्रमाण अन्तिम

§ ९७. आदेसेण षेरइएसु मिच्छत्तंसंकामं जहं अंतोमुं, उक्कं तेचीसं सागरों देसूणाणि । सम्मं जहं एगसमओ, उक्कं पलिदों असंखेभागो । सम्मामिं-अणंताणुंसंकामं जहं एगसमओ, उक्कं तेचीसं सागरोवमाणि । वारस-कसायं-णवणोकसायंसंकामं केवं ? जहं दसवस्ससहस्साणि, उक्कं तेचीसं सागरोवमाणि । पढमादि जाव सत्तमि ति मिच्छंसंकामं जहं अंतोमुं, उक्कं सगट्ठिदी देसूणा । सम्मं णिरओधमंगो । सम्मामिं जहं एगसमओ, उक्कं सगट्ठिदी । एवमणंताणुं चउकस्स । णवरि सत्तमाए जहं अंतोमुहुत्तं । वारसकं-णवणोकं जहं जहण्णट्ठिदी, उक्कं उक्कस्सट्ठिदी ।

फालिके शेष रहनेपर उसका संक्रम नहीं होता, इसलिये अनन्तानुबन्धियोंके असंक्रामकका जघन्य काल एक समयकम एक आवलिप्रमाण बतलाया है। तथा विसंयोजनाके बाद अनन्तानुबन्धियों की पुनः सत्ता प्राप्त होनेपर एक आवलि काल तक उनका संक्रम नहीं होता, इसलिये इनके असंक्रामकका उत्कृष्ट काल एक आवलिप्रमाण बतलाया है। उपशमश्रेणियोंमें बारह कपाय और नौ नोक्रपाय इनमेंसे विवक्षित प्रकृतिका उपशम होनेके द्वितीय समयमें यदि मरकर यह जीव देवगतिमें चला जाता है तो इनके असंक्रामकका एक समय काल प्राप्त होता है। इसीसे यहाँ इनके असंक्रामकका जघन्य काल एक समय कहा है। तथा इन प्रकृतियोंका उपशम काल अन्तमुंहूर्त है। इसीसे यहाँ इनके असंक्रामकका उत्कृष्ट काल अन्तमुंहूर्त बतलाया है।

§ ९७. आदेशकी अपेक्षा नारकियोंमें मिध्यात्वके संक्रामकका जघन्य काल अन्तमुंहूर्त है और उत्कृष्ट काल कुछ कम तेजीस सागर है। सम्यक्त्वके संक्रामकका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल प्रत्येक असंख्यातवें भागप्रमाण है। सम्यग्मिध्यात्व और अनन्तानुबन्धीके संक्रामकका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल तेजीस सागर है। बारह कपाय और नौ नोक्रपायोंके संक्रामकका कितना काल है? जघन्य काल दस हजार वर्ष है और उत्कृष्ट काल तेजीस सागर है। पहली पृथिवीसे लेकर सातवीं पृथिवी तक प्रत्येक नरकमें मिध्यात्वके संक्रामकका जघन्य काल अन्तमुंहूर्त है और उत्कृष्ट काल कुछ कम अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है। सम्यक्त्वका भंग सामान्य नारकियोंके समान है। सम्यग्मिध्यात्वके संक्रामकका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है। इसी प्रकार अनन्तानुबन्धी चतुष्कके संक्रामकका जघन्य और उत्कृष्ट काल जानना चाहिये। किन्तु इतनी विशेषता है कि सातवीं पृथिवीमें जघन्य काल अन्तमुंहूर्त है। बाहर कपाय और नौ नोक्रपायोंके संक्रामकका जघन्य काल अपनी अपनी जघन्य स्थितिप्रमाण है और उत्कृष्ट काल अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है।

विशेषार्थ—यहाँ नरक गति और उसके अवान्तर भेदोंमें मिध्यात्व आदि प्रकृतियोंके संक्रामकका कितना काल है यह बतलाया है। नरक गतिमें सम्यग्दर्शनका जघन्य काल अन्तमुंहूर्त है और उत्कृष्ट काल कुछ कम तेजीस सागर है, इसीसे यहाँ मिध्यात्वके संक्रामकका जघन्य काल अन्तमुंहूर्त और उत्कृष्ट काल कुछ कम तेजीस सागर घटित हो जाता है। इसी प्रकार प्रत्येक पृथिवीमें जघन्य काल अन्तमुंहूर्त और उत्कृष्ट काल कुछ कम अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थिति-प्रमाण घटित कर लेना चाहिये। यहाँ यह प्रश्न हो सकता है कि पहली पृथिवीमें तो सम्यग्दृष्टि जीव भी मरकर उत्पन्न होता है और वह जीवनभर उसके साथ बना रहता है, अतः यहाँ कुछ कमका

§ १८. तिग्मवेगु मिच्छ० संकाम० जह० अंतोमु०, उक्क० तिण्णि पल्लिदोवमाणि देखूणाणि । सम्म० षारम्यभंगो । सम्माप्ति० जह० एगगमओ, उक्क० तिण्णि पल्लिदोवमाणि पल्लिदोवमासंवेज्जदिभागेण भादिरियाणि । अणंताणु० चउक्कस्स जह० एगगसमओ, उक्क० अणंताणुमसंवेज्जा पोग्गलपरियट्ठा । वारसक०-णवणोक० जह०

नियम कैसे लागू होगा, तो इसका गट समाधान है कि यद्यपि पहली पृथिवीमें सम्यग्दृष्टि जीव मरकर उत्पन्न होता है यह वान सही है पर एसा जीव या तो कृतकृत्यवेदकसम्यग्दृष्टि होता है या चायिकसम्यग्दृष्टि, इस लिये जब ऐसे जीवके प्राणिमिथ्यात्वकः सत्त्व ही नहीं पाया जाता तब उसके मिथ्यात्वके संकामकी बात ही करना व्यर्थ है। सम्यक्त्व प्रकृतिके संकामकका जघन्य काल एक समय उद्देलनाकी अपेक्षासे घतलाया है। अर्थात् जिसके सम्यक्त्व प्रकृतिपी उद्देलनामें एक समय बाकी है ऐसा जीव मरकर यदि नरकमें उत्पन्न होता है तो उसके नरकमें सम्यक्त्वके संकामकका जघन्य काल एक समय पाया जाता है। तथा नरकमें सम्यक्त्वके संकामकका उत्कृष्ट काल जो पल्यके अन्तस्त्वान्तरे भागप्रमाण घतलाया है, सो यह उद्देलनाके उत्कृष्ट कालकी अपेक्षासे घतलाया है। उनी प्रकार प्रत्येक पृथिवीमें सम्यक्त्वके संकामकका जघन्य और उत्कृष्ट काल घटित कर लेना चाहिए, क्योंकि प्राणिक कथनसे हममें कोई विशेषता नहीं है। सामान्यसे नरकमें या प्रत्येक पृथिवीमें सम्यग्दृष्टिके संकामकका जघन्य काल एक समय भी सम्यक्त्व प्रकृतिके समान घटित होता है। हाँ उत्कृष्ट कालमें कुछ विशेषता है। बात यह है कि सम्यग्मिथ्यात्वका संकाम सम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि दोनोंके होता है इसलिये नरकमें सम्यग्मिथ्यात्वके संकाम का उत्कृष्ट काल वेनीस सागर वन जाना है। अनन्तानुबन्धीके संकामकका भी उत्कृष्ट काल तेनीस सागर उम्पी प्रकारसे घटित किया जा सकता है, क्योंकि इनका संकाम भी सम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि दोनोंके होता रहता है पर ऐसे जीवके सम्यक्त्व दर्शामें अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना नहीं करनी चाहिये। अथवा केवल मिथ्यादृष्टि शुरुस्थानकी अपेक्षासे घटित करनेमें भी आपत्ति नहीं है, क्योंकि कोई भी नारकी जीवनपर मिथ्यात्वके साथ रह सकता है। पर इसके संकामकका जघन्य काल एक समय इस प्रकार प्राप्त होता है कि जिसमें अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना की है ऐसा कोई एक सम्यग्दृष्टि जीव सासादनमें गया और एक आसक्तिके धाद एक समयतक उसने अनन्तानुबन्धीका संकामण किया। फिर दूसरे समयमें मरकर वह अन्य गतिमें उत्पन्न हो गया तो इन प्रकार इसके नरकमें अनन्तानुबन्धीके संकामकका जघन्य काल एक समय प्राप्त हो जाता है। इसी प्रकार प्रत्येक पृथिवीमें अनन्तानुबन्धीका संकामकी अपेक्षा जघन्य काल एक समय घटित कर लेना चाहिये। किन्तु सातवें नरकमें ऐसे जीवका सासादनमें मरण नहीं होता और मिथ्यात्व। अन्तमुद्दृत काल हुए बिना मरण नहीं होता अतः वहाँ जघन्य काल अन्तमुद्दृत घतलाया है। प्रत्येक नरकमें इसका उत्कृष्ट काल अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है यह स्पष्ट ही है। तथा उक्त प्रकृतियोंके अतिरिक्त जो श्रेय वारह कपाय और नौ नोकप्याय बर्चीं सो इनका सद्भाव नरकमें सर्वदा है और सर्वदा हर हालतमें इनका संकाम होता रहता है, अतः इनका नरकगति और उसके अग्रान्त भेदोंमें जघन्य और उत्कृष्ट जहाँ जो काल प्राप्त है वहाँ वह वन जानेसे उक्त प्रमाण कहा है।

§ १९. तिर्यक्कामिं मिथ्यात्वके संकामकका जघन्य काल अन्तमुद्दृत है और उत्कृष्ट काल कुछ कम तीन पल्य है। सम्यक्त्वके संकामकके जघन्य और उत्कृष्ट कालका भंग नारकियोंके समान है। सम्यग्मिथ्यात्वके संकामकका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल पल्यका असंख्यातर्वा भाग अधिक तीन पल्य है। अनन्तानुबन्धीचतुष्कके संकामकका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अनन्त काल है जो असंख्यात पुद्गलपरिवर्तनप्रमाण है। वारह कपाय और नौ

खुदाभवग्गहर्णं, उक्क० अणंतकालमसंखेज्जा० ।

§ ९९. पंचिदियतिरिक्खतियम्मिं मिच्छ०-सम्म० तिरिक्खोद्यभंगो । सम्मामि०-  
अणंताणु०चउक्कस्स जह० एगसमओ, उक्क० तिण्णिण पल्लिदोवमाणि पुच्चकोट्टिपुवत्तेण-  
व्भहियाणि । वारसक०-णवणोक० जह० खुदाभव० अंतोमुहुत्तं, उक्क० तिण्णिण पल्लिदो०  
पुच्चकोट्टिपुध० ।

नोकषायोके संक्रामकका जघन्य काल लुद्रभवप्रहणप्रमाण है और उत्कृष्ट काल अनन्त काल है जो असंख्यात पुद्गलपरिवर्तनप्रमाण है ।

**विशेषार्थ**—तिर्यञ्चोमें वेदकसम्यक्त्वका जघन्य काल अन्तमुहूर्त और उत्कृष्ट काल कुछ कम तीन पत्य है । इसीसे यहाँ मिथ्यात्वके संक्रामकका जघन्य काल अन्तमुहूर्त और उत्कृष्ट काल कुछ कम तीन पत्य बतलाया है । सम्यक्त्वके संक्रामकका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल पत्यके असंख्यातवें भागप्रमाण तथा सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धीके संक्रामकका जघन्य काल एक समय जिस प्रकार नरकमें घटित करके बतला आये हैं उसी प्रकार यहाँ भी घटित कर लेना चाहिये; क्योंकि उससे इसमें कोई अन्तर नहीं है । जब यह जीव तिर्यच पर्यायमें रह कर पत्यके असंख्यातवें भागप्रमाण काल तक सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वेलना करता रहता है और उद्वेलनाके समाप्त होनेके पूर्व ही मरकर तीन पत्यकी आयुवाले तिर्यञ्चोमें चत्वन हो जाता है । फिर वहाँ सम्यक्त्वके योग्य कालके प्राप्त होने पर सम्यक्त्वको प्राप्त करके सम्यग्मिथ्यात्वकी सत्ताको फिरसे बढ़ा लेता है और वहाँ या तो सम्यग्दृष्टि बना रहता है या मिथ्यात्वमें जाकर उद्वेलना होनेके पूर्व ही पुनः सम्यग्दृष्टि हो जाता है उसके तिर्यञ्च पर्यायके रहते हुए पत्यका असंख्यातवें भाग अधिक तीन पत्य काल तक सम्यग्मिथ्यात्वका संक्रम देखा जाता है । इसीसे यहाँ सम्यग्मिथ्यात्वके संक्रामकका उत्कृष्ट काल उत्कप्रमाण कहा है । तिर्यञ्चगतिसमें सदा रहनेका उत्कृष्ट काल अनन्त काल है जो असंख्यात पुद्गलपरिवर्तनप्रमाण है । इसीसे यहाँ अनन्तानुबन्धीचतुष्क तथा शेष वारह कषाय और नौ नोकषायोके संक्रामकका उत्कृष्ट काल उक्क प्रमाण कहा है । तथा तिर्यञ्च पर्यायमें रहनेका जघन्य काल लुद्रभवप्रहणप्रमाण है । इसीसे यहाँ वारह कषाय और नौ नोकषायोके संक्रामकका जघन्य काल लुद्रभवप्रहणप्रमाण कहा है ।

§ ६६. पंचेन्द्रियतिर्यचत्रिकमे मिथ्यात्व और सम्यक्त्वके संक्रामकका जघन्य और उत्कृष्ट काल सामान्य तिर्यचोके सम. न है । सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धीचतुष्कके संक्रामकका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल पूर्व कोटिपुयक्त्व अधिक तीन पत्य है । वारह कषाय और नौ नोकषायोके संक्रामकका जघन्य काल सामान्य पंचेन्द्रिय तिर्यचमे लुद्रभव-  
प्रहणप्रमाण और शेष दोमें अन्तमुहूर्तप्रमाण है और उत्कृष्ट काल तीनोंमें पूर्वकोटिपुयक्त्व अधिक तीन पत्य है ।

**विशेषार्थ**—पंचेन्द्रियतिर्यचत्रिकका उत्कृष्ट काल पूर्वकोटिपुयक्त्व अधिक तीन पत्य है, इस लिये यहाँ सम्यग्मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धीचतुष्क, वारह कषाय और नौ नोकषायोके संक्रामकका उत्कृष्ट काल उत्कप्रमाण बतलाया है । तथा सामान्य तिर्यचका जघन्य काल लुद्रभव-  
प्रहणप्रमाण और शेष दो प्रकारके तिर्यचोका जघन्य काल अन्तमुहूर्त है । इसीसे यहाँ वारह कषाय और नौ नोकषायोके संक्रामकका जघन्य काल उत्कप्रमाण बतलाया है । शेष कालोके कारणोंका निर्देश पहले कर ही आये हैं इसलिये यहाँ नहीं किया है ।

§ १००. पंचि०तिरिक्खअपज्ज०—मणुसअपज्ज० सम्म०—सम्मामि० जह०  
एगस०, उक्क० अंतोमु० । सोलसक०-णवणोक० जह० खुदाभव०, उक्क० अंतोमु० ।

§ १०१. मणुसतियम्मि पंचि०तिरिक्खभंगो । णवरि वारसक०-णवणोक०  
जह० एगसमओ, उक्क० सगड्ढिदी ।

§ १०२. देवेसु मिच्छ० जह० अंतोमु०, सम्मामि०-अणंताणु०चउक्काणं जह०  
एगस०, उक्क० सव्वेसिं तेत्तीसं सागरो० । सम्मत्त० पारयभंगो । वारसक०-णवणोक०  
पारयभंगो चेव । भवणवासियप्पहुडि जाव उवरिमगेवज्जा त्ति मिच्छ०-सम्मामि०-  
अणंताणु०चउक्कस्स य जह० अंतोमु० एयसमओ, उक्क० सगड्ढिदी । सम्म० पारय-

§ १००. पंचेन्द्रियतिर्यक् अर्थात् और मनुष्य अर्थात् क्रमों में सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व-  
के संक्रामकका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तमुं हूर्त है । तथा सोलह कपाय  
और नौ नोकपायोके संक्रामकका जघन्य काल छुद्रभवग्रहणप्रमाण है और उत्कृष्ट काल अन्तमुं हूर्त-  
प्रमाण है ।

विशेषार्थ—उक्त दोनों मार्गणाओमें सम्यग्दर्शनकी प्राप्ति सम्भव नहीं है, इसलिये यहाँ  
मिथ्यात्वका संक्रम न होनेसे उसका काल नहीं बतलाया है । एक जीवकी अपेक्षा इन दोनों  
मार्गणाओका जघन्य काल खुदाभवग्रहणप्रमाण सौर उत्कृष्ट काल अन्तमुं हूर्त है, इस लिये  
यहाँ सब प्रकृतियोंके संक्रामकका जघन्य काल खुदाभवग्रहणप्रमाण और उत्कृष्ट काल अन्तमुं हूर्त  
प्रमाण बतलाया है । किन्तु सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके संक्रमणके जघन्य कालमें कुछ  
विशेषता है । वात यह है जिसके सम्यक्त्व या सम्यग्मिथ्यात्वके संक्रममें एक समय शेष  
रहा ऐसा जीव मर कर यदि इन मार्गणाओमें उत्पन्न हो तो उसके इन मार्गणाओके रहते हुए उक्त  
प्रकृतियोंके संक्रमका जघन्य काल एक समय भी पाया जाता है । इसीसे यहाँ पर इन दोनों  
प्रकृतियोंके संक्रमका जघन्य काल एक समय बतलाया है ।

§ १०१. मनुष्यत्रिकमें सब प्रकृतियोंके संक्रामकके जघन्य और उत्कृष्ट कालका कथन  
पंचेन्द्रिय तिर्यक्के समान है । किन्तु इतनी विशेषता है कि बारह कपाय और नौ नोकपायोके  
संक्रामकका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अपनी स्थितिप्रमाण है ।

विशेषार्थ—जो उपशामक जीव उपशामश्रेण्डिसे उतरते समय एक समय तक बारह कपाय  
और नौ नोकपायोका संक्रम करता है और दूसरे समयमें मर कर देव हो जाता है उसके  
इनके संक्रमका जघन्य काल एक समय पाया जाता है । इसीसे यहाँ मनुष्य त्रिकमें उक्त  
प्रकृतियोंके संक्रामकका जघन्य काल एक समय बतलाया है । शेष कथन सुगम है ।

§ १०२. देवोंमें मिथ्यात्वके संक्रामकका जघन्य काल अन्तमुं हूर्त है, सम्यग्मिथ्यात्व और  
अनन्तानुवन्धीचतुष्कके संक्रामकका जघन्य काल एक समय है तथा इन सब प्रकृतियोंके  
संक्रामकका उत्कृष्ट काल तेतीस सागर है । सम्यक्त्वका भंग नारकियोंके समान है । बारह कपाय  
और नौ नोकपायोका भंग भी नारकियोंके समान ही है । भवनवासियोंसे लेकर उपरिम त्रैवेयक  
तकके देवोंमें मिथ्यात्वके संक्रामकका जघन्य काल अन्तमुं हूर्त तथा सम्यग्मिथ्यात्व और  
अनन्तानुवन्धी चतुष्कके संक्रामकका जघन्य काल एक समय है । तथा इन सबके संक्रामकका  
उत्कृष्ट काल अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है । सम्यक्त्वका भंग नारकियोंके समान है । तथा



भंगो । वारसक०-णवणोक० जहणुकस्सट्ठिदी भाणिदच्चा । अणुद्दिसादि जाव सच्चट्ठा  
त्ति मिच्छ०-सम्माप्पि०-वारसक०-णवणोक० जहणुकस्सट्ठिदी भाणियच्चा । अणंताणु०  
चलक्कस्स जह० अंतोणु०, उक्क० सगुक्कस्सट्ठिदी । एवं जाव० ।

❀ एयजीवेण अंतरं ।

§ १०३. सुगममेदमहियारसंभालणसुत्तं ।

❀ मिच्छत्त-सम्मत्त-सम्माप्पिच्छत्ताणं संकामयंतरं केवचिरं कालादो  
होदि ?

§ १०४. सुगमं ।

❀ जहणणेण अंतोमुहुत्तं ।

§ १०५. मिच्छत्तसंकामयस्स ताव उच्चदे—एओ सम्माट्ठिी बहुसो दिट्ठमग्गो  
मिच्छत्तं गंतूण पुणो वि परिणामपच्चएण सम्मत्तगुणं सच्चजहणणेण कालेण पड्विणणो,  
लद्धमंतरं । एवं सम्मत्तस्स वि । णवरि सच्चजहणणसम्मत्तकालेणंतरिदो त्ति वत्तच्चं ।  
सम्माप्पिच्छत्तजहणणकालो उवरि विसेसिऊण परुविज्जइ त्ति ण एत्थ तप्परुवणा कीरदे ।

वारह कपाय और नौ नोकपायोंके संक्रामकका जघन्य और उत्कृष्ट काल क्रमसे जघन्य और  
उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण कहना चाहिये । अनुद्दिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें मिथ्यात्व,  
सम्यग्मिथ्यात्व, वारह कपाय और नौ नोकपायोंके संक्रामकका जघन्य और उत्कृष्ट काल क्रमसे  
जघन्य और उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण कहना चाहिये । तथा अनन्तानुबन्धी चतुष्कके संक्रामकका जघन्य  
काल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है । इसी प्रकार अनाहारक  
मार्गोपातक जानना चाहिये ।

विशेषार्थ—पहले ओघसे और नरकादि गतियोंसे कालका स्पष्टीकरण कर आये हैं ।  
उसे ध्यानमें रख कर देवगति और उसके अशान्तर भेदोंमें उसे घटित कर लेना चाहिये । मात्र  
देवगतिमें जहाँ जो विशेषता है उसे ध्यानमें रख कर ही यह काल घटित करना चाहिये ।

❀ अब एक जीवकी अपेक्षा अन्तरका अधिकार है ।

§ १०३. अधिकारका निर्देश करनेवाला यह सूत्र सुगम है ।

❀ मिथ्यात्व, सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके संक्रामकका अन्तरकाल कितना है ?

§ १०४ यह सूत्र सुगम है ।

❀ जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है ।

§ १०५ मिथ्यात्वके संक्रामकके अन्तरकालका खुलासा सर्व प्रथम करते हैं—जिसे मोक्ष-  
मार्गका अनेक द्वार परिचय मिल चुका है ऐसा एक सम्यग्दृष्टि जीव जब मिथ्यात्वमें जाकर और  
परिणामवश फिरसे अति स्वल्प काल द्वारा सम्यक्त्व गुणको प्राप्त होता है तब मिथ्यात्वके  
संक्रामकका जघन्य अन्तरकाल प्राप्त होता है । इसी प्रकार सम्यक्त्वका भी जघन्य अन्तरकाल  
प्राप्त कर लेना चाहिये । किन्तु यह सबसे जघन्य सम्यक्त्वके कालसे अन्तरित होता है ऐसा कथन  
करना चाहिये । सम्यग्मिथ्यात्वके जघन्य अन्तरकालका आगे विशेषरूपसे कथन किया जायगा,  
इसलिये यहाँ उसका कथन नहीं करते हैं ।

⊗ उक्त्सेणे उवड्डुपोग्गलपरियट्टं ।

§ १०६. तं जहा—मिच्छत्तमं कामयस्म ताव उच्चदे—अणादियमिच्छाइट्ठी उवसम-  
सम्मत्तं घेत्तणं छ आवलियाओ अत्थि त्ति सासणं गुणं गंतूणंतरिय देसूणमद्वुपोग्गल-  
परियट्टं परिभमिय अंतोमुहुत्तावसेसे सिज्झिदच्च ए त्ति सम्मत्तगुणं पडिवण्णो, लद्धमुक्क-  
स्संतरं, पोग्गलपरियट्टस्स देसूणद्वमेत्तमादियंतेसु अंतोमुहुत्तमेत्तकालस्स वद्विभवावदंसणादो ।  
एवं सम्मत्तस्स । णवरि देसूणपमाणं पल्लिदोचमांसंखे० भागो, उवसमसम्मत्तं पडिवज्जिय  
मिच्छत्तं गंतूणं तेत्तियमेत्तेण कालेण विणा यम्मत्तस्सुव्वेत्तेल्लेदुससक्रियत्तादो । एवं  
सम्मामिच्छत्तस्स वि वत्तच्चं । संपहि सम्मामिच्छत्तजहण्णसंक्रामयंतरं गयत्रिसेसपटुप्पायणद्ध-  
मुवग्गिसुत्तं भणइ—

⊗ एवरि सम्मामिच्छत्तस्स संक्रामयंतरं जहण्णेण एयसमओ

§ १०७. तं जहा—उवसमसग्माइट्ठी सम्मामिच्छत्तस्स संक्रामओ होऊण ड्ठिदो  
सगट्टाए एगसमयावसेसियाए सासादणभावं गंतूणेयममयमंतरिय पुणो वि तदणंतर-  
समए संक्रामओ जादो, लद्धमेगममयमेत्तमंतरं । अहवा मिच्छाइट्ठी मम्मामिच्छत्तमुव्वेत्तेल्ल-

\* उत्कृष्ट अन्तरकाल उपायं पुद्गलपरिवर्तनप्रमाणं है ।

§ १०६. खुलासा इस प्रकार है । उसमें भी सर्वप्रथम मिथ्यात्वके संक्रामकके उत्कृष्ट अन्तर-  
कालका खुलासा करते हैं—कौड़े एक अनादि मिथ्यादृष्टि जीव उपशमसम्यक्त्वको प्राप्त हुआ और  
छह मयलि कालके शेष रहने पर सासादन गुणस्थानमें जाकर उसने मिथ्यात्वके संक्रमणका  
अन्तर किया । फिर कुछ कम अर्धपुद्गलपरिवर्तनप्रमाण काल तक परिभ्रमण करके जब मुक्त  
होनेके लिये उसे अन्तर्गुहर्त काल शेष वचा तब यह सम्यक्त्व गुणको प्राप्त हुआ । इस प्रकार उत्कृष्ट  
अन्तःकाल प्राप्त हो जाता है । यह पुद्गलपरिवर्तनका कुछ कम आधा इसलिये है, क्योंकि इससे  
प्रारम्भका एक अन्तर्गुहर्त और अन्तका एक अन्तर्गुहर्त कम होता हुआ देखा जाता है । इसी  
प्रकार सम्यक्त्वके संक्रामकके उत्कृष्ट अन्तरकालको घटित करके कहना चाहिये । किन्तु यहाँ कुछ  
कमका प्रमाण पत्त्यका असंख्यातवां भाग है, क्योंकि उपशमसम्यक्त्वको प्राप्त करके और मिथ्यात्वमें  
जाकर तावन्मात्र अर्थात् पत्त्यके असंख्यातवें भागप्रमाण कालके दिना सम्यक्त्वकी उद्वेलना  
नहीं हो सकती । इसी प्रकार सम्यग्मिथ्यात्वके संक्रामकका उत्कृष्ट अन्तरकाल भी कहना चाहिये ।  
अब सम्यग्मिथ्यात्वके संक्रामकके जघन्य अन्तरकालविशेषका कथन करनेके लिये आगेका सूत्र  
कहते हैं—

\* किन्तु इतनी विशेषता है कि सम्यग्मिथ्यात्वके संक्रामकका जघन्य अन्तर-  
काल एक समय है ।

§ १०७. खुलासा इस प्रकार है—कोई एक उपशमसम्यग्दृष्टि जीव सम्यग्मिथ्यात्वका  
संक्रमण करता हुआ स्थित है । उसने अपने सम्यक्त्वके कालमें एक समय शेष रहने पर सासादन  
गुणस्थानमें जाकर एक समय तक सम्यग्मिथ्यात्वके संक्रमणका अन्तर किया और उसके अनन्तर  
समयमें फिरसे उसका संक्रामक हो गया । इस प्रकार सम्यग्मिथ्यात्वके संक्रामकका जघन्य  
अन्तर एक समय प्राप्त हुआ । अथवा सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वेलना करनेवाला जो मिथ्यादृष्टि जीव

माणओ सम्मत्ताहिमुहो होऊणंतरकरणं करिय मिच्छत्तपढमड्ढिदिचरिमसमए सम्मामिच्छत्त-  
चरिमुव्वेणलणफालिं परसरूवेण संकामिय उवसमसम्माड्ढी पढमसमए सम्मामिच्छत्त-  
संतुप्पायणवावारेणेयसमयसंतरिय पुणो विदियसमए संकामओ जादो, लद्धमंतरं ।

❀ अणंताणुबंधीणं संकामयंतरं केवचिरं कालादो होदि ।

§ १०८. सुगमं ।

❀ जहणणेण अंतोमुहुत्तं ।

§ १०९. विसंजोयणचरिमफालिं पादिय अंतरिदस्स पुणो सव्वलहुएण कालेण  
संजुत्तस्स बंधावलियवदिकंतसमए लद्धमंतरं कायव्वमिदि वुत्तं होइ ।

❀ उक्कस्सेण वेळ्ळावटिस्सागरोचमाणि सादिरेयाणि ।

§ ११० तं जहा—पढमसम्मत्तं घेत्तूण उवसमसम्मत्तकालव्भतरे अणंताणुबंधिं  
विसंजोइय वेदयसम्मत्तं पडिवज्जिय पढमळावटिं भमिय तत्थंतोमुहुत्तावसेसे सम्मामिच्छत्तं  
पडिवज्जिय पुणो अंतोमुहुत्तेण सम्मत्तमुवणमिय विदियळावटिमणुपालिय थोवावसेसे  
मिच्छत्तं गदस्स लद्धमंतरं होदि । एत्थ पुच्चमणंताणुबंधिं विसंजोइय डिदस्स उवसम-

सम्यक्त्वके अभिमुख होकर और अन्तरकरण करके मिथ्यात्वकी प्रथम स्थितिके अन्तिम समयमें  
सम्यग्मिथ्यात्वकी अन्तिम उद्वेलना फालिका पररूपसे संक्रमण करके उपशमसम्यग्दृष्टि हो गया है  
वह अपने प्रथम समयमें सम्यग्मिथ्यात्वके सत्त्वके उत्पन्न करनेमें लगा रहनेके कारण एक समय  
तक सम्यग्मिथ्यात्वके संक्रमणा अन्तर करके दूसरे समयमें फिरसे संक्रामक हो गया । इस प्रकार  
सम्यग्मिथ्यात्वके संक्रामकका जघन्य अन्तर एक समय प्राप्त हो जाता है ।

\* अनन्तानुबन्धियोंके संक्रामकका अन्तरकाल कितना है ।

§ १०८. यह सूत्र सुगम है ।

\* जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है ।

§ १०९. कोई एक जीव है जिसने विसंयोजनाकी अन्तिम फालिका पतन करके अनन्तानु-  
बन्धियोंके संक्रमका अन्तर किया । फिर अति स्वल्प काल द्वारा अनन्तानुबन्धियोंसे संयुक्त होकर  
बन्धावलिकालके समाप्त होनेके अनन्तर समयमें पुनः संक्रामक हो गया । इस प्रकार अनन्तानु-  
बन्धियोंके संक्रामकका जघन्य अन्तरकाल प्राप्त करना चाहिये यह उक्त कथनका तात्पर्य है ।

\* उत्कृष्ट अन्तरकाल साधिक दो छयासठ सागर है ।

§ ११०. खुलासा इस प्रकार है—कोई एक जीव है जिसने प्रथमोपशम सम्यक्त्वको ग्रहण  
करके उपशमसम्यक्त्वकालके भीतर अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना की । फिर वेदकसम्यक्त्वको  
प्राप्त करके प्रथम छयासठ सागर काल तक परिभ्रमण किया । फिर उसके अन्तमें अन्तर्मुहूर्त काल  
शेष रहने पर सम्यग्मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ । फिर अन्तर्मुहूर्तमें सम्यक्त्वको प्राप्त करके और उसके  
साथ दूसरे छयासठ सागर काल तक रहा । फिर उसमें थोड़ा काल शेष रहने पर मिथ्यात्वमें गया ।  
इस प्रकार अनन्तानुबन्धियोंके संक्रामकका उत्कृष्ट अन्तरकाल प्राप्त हो जाता है । यहाँ पर प्रारम्भमें  
अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना करके स्थित हुए जीवके जो उपशमसम्यक्त्वका काल शेष बचता

सम्भक्तकालो पच्छिन्नमिच्छत्तजहण्णकालादो वहुथो तेण मिच्छत्तजहण्णकालमेत्तं तत्थ सोदिय मुद्धसेसेण सादिरियत्तं वत्तच्चं ।

☉ सेसाणमेक्खवीसाए पयडीणं संकामयंतरं केवचिरं कालादो होइ ?

§ १११. सुगमं ।

☉ जहण्णेषु एयसमच्चो ।

§ ११२. तं जहा—इगिवीसपयडीणं संकामओ उवसमसेट्ठिमारुहिय अप्पप्पो ठाणे सच्चोवगमं काऊणयत्तमयसंतरिय पुणो विदियसगाए कालं गदो संतो देवेषुप्पण्णपढमसमाए लद्धमंतं करेइ नि वत्तच्चं ।

☉ उक्खस्सेण अंतोमुहुत्तं ।

§ ११३. तं वत्तं ? अणियट्ठिअट्ठाए मरेउजे भागे गत्तूण सच्चवासिमणंतरपरुविदपयडीणं सगमगट्ठाणे मच्चोवगमं काऊण अमंकांमयभावेणंतरिय अणियट्ठि० सुहुम० उवसंत० गुणट्ठाणाणि क्रमेणाणुपालिय पुणो थोटरमाणो मुद्धम० गुणट्ठाणं वीलीणो

है यह अन्तमें प्राप्त हुए मिथ्यात्वके जघन्य कालने बहुत हैं, उनलिये उपशमसम्यक्त्वके पूर्वोक्त कालमेंमे मिथ्यात्वके जघन्य कालको पढाकर उपशमसम्यक्त्वका जो दाल गेप रहे उतना अधिक चढना चाहिये। आशय यह है कि दूसरे छत्रामठ सागरमेंसे यद्यपि अन्तमें प्राप्त हुए मिथ्यत्व गुणरक्षणका जघन्य अन्तमुहूर्त काल घट जाता है पर उस छत्रामठ सागरमें विमंथोजनाके बाद बचे हुए उपशमसम्यक्त्वके कालके मिला देने पर वट छत्रामठ सागरसे कुछ अधिक हो जाता है, उन लिये वहां अनन्तानुबन्धियोंके सक्रमका उत्कृष्ट अन्तरकाल साधिक दो छत्रामठ सागरप्रमाण कडा है ।

\* गेप इक्कीस प्रकृतियोंके संक्रामकका अन्तरकाल कितना है ।

§ १११. यह सूत्र सुगम है ।

\* जघन्य अन्तरकाल एक समय है ।

§ ११२. तुलामा उस प्रकार है—उक्कीस प्रकृतियोंके संक्रामक जिस जीवने उपशमश्रेणि पर चढ़ कर और अपने अपने स्थानमें उनका सर्वोपशम करके एक समय तक उनके संक्रमका अन्तर किया फिर दूसरे समयमें मर कर जो देव हुआ उसके वहां उत्पन्न होनेके पहले समयमें ही उन प्रकृतियोंके संक्रमका अन्तर प्राप्त हो जाता है यह उक्त कथनका तात्पर्य है। आशय यह है कि जिस समयमें जिस प्रकृतिका सर्वोपशम होता है उसके एक समय बाद यदि वह उपशम करनेवाला जीव मर कर देव हो जाता है तो उस प्रकृतिके संक्रमका एक समय अन्तर प्राप्त होता है ।

\* उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है ।

§ ११३. शंका—तो कैसे ?

समाधान—अनिष्टत्तिकरणके कालके संख्यात भागोंको विता कर पहले कहीं गईं सव प्रकृतियोंका अपने अपने स्थानमें सर्वोपसम होनेसे वे अ्संक्रमभावको प्राप्त हो जाती हैं और उरा प्रकार उनके सक्रमका अन्तर करके उसी अन्तरके साथ अनिष्टत्तिकरण, सूक्ष्मसम्पराय और उपशान्तमोह इन तीन गुणस्थानोंको क्रमसे प्राप्त कर फिर उतरते समय सूक्ष्मसम्पराय गुणस्थानको

अणियड्डिभावेणप्यप्पणो ह्वाणे पुणो वि संकामओ जादो, लद्धमंतरंभंतोमुहुचमेत्तं । णवरि लोभसंजलणस्साणुपुव्वीसंकमपारंभेणंतरस्सादिं कादूण पुणो तदुवरमे लद्धमंतरं कायव्वं ।

एवमोघेणंतरं गयं ।

§ ११४. संपहि देसामासियसुत्तेण सूचिदमादेसमोघाणुवादपुरस्सरमुच्चारणमस्सिय परूवेमो । तं जहा अंतराणुगमेण दुविहो णिदेसो—ओघेण आदेसेण य । ओघेण मिच्छ०-सम्म० जह० अंतोमु०, सम्मामि० जह० एगसमओ, उक्क० तिण्हं पि उव्वड्डोग्गलपरियट्ठं । अणंताणु०चउक्कस्स जह० अंतोमु०, उक्क० वेछावड्डिसागरोवमाणि सादिरेयाणि । वारसक०-णवणोक्क० जह० एगसमओ, उक्क० अंतोमुहुत्तं ।

§ ११५. आदेसेण णेरइयं मिच्छ०-सम्म०-अणंताणु०चउक्कस्स जह० अंतोमु०, सम्मामि० एगसमओ, उक्क० तेचीसं सागरो० देसूणाणि । वारसक०-णवणोक्क०-संकामओ णत्थि अंतरं । एवं सच्चणेरइया । णवरि सगड्ढिदा देसूणा ।

विता कर जब अनिवृत्तिकरणको प्राप्त होता है तब अपने अपने उपशम करनेके स्थानमें फिरसे संक्रामक हो जाता है और इस प्रकार इनका अन्तमुहूर्त अन्तरकाल प्राप्त हो जाता है। किन्तु इतनी विशेषता है कि आनुपूर्वी संक्रमके प्रारम्भसे लोभसंज्वलनके संक्रमके अन्तरका प्रारंभ करे जो आनुपूर्वी संक्रमके समाप्त होने तक चालू रहता है। इस प्रकार लोभसंज्वलनके संक्रमका अन्तर आनुपूर्वी संक्रमके प्रारम्भसे उसकी समाप्ति तक कहना चाहिये।

इस प्रकार ओघसे अन्तरकाल समाप्त हुआ ।

§ ११४. अब देशामर्षक सूत्रके द्वारा सूचित होनेवाले आदेशका ओघानुवादपूर्वक उच्चारणके आश्रयसे कथन करते हैं। जो इस प्रकार है—अन्तरानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश। इनमेंसे ओघकी अपेक्षा मिथ्यात्व और सम्यक्त्वके संक्रामकका जघन्य अन्तरकाल अन्तमुहूर्त है सम्यग्मिथ्यात्वके संक्रामकका जघन्य अन्तरकाल एक समय है। तथा तीनोंके संक्रामकका उत्कृष्ट अन्तरकाल उपार्थ पुद्गलपरिवर्तनप्रमाण है। अनन्तानुबन्धीचतुष्कके संक्रामकका जघन्य अन्तर काल अन्तमुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तरकाल साधिक दो छयासठ सागर है। वारह कषाय और नौ नोकषायोंके संक्रामकका जघन्य अन्तरकाल एक समय है और उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तमुहूर्त है।

विशेषार्थ—इन सब अन्तरकालोंका खुलासा चूर्णिसूत्रोंका व्याख्यान करते समय टीकाकार स्वयं कर आये हैं इसलिये वहाँसे जान लेना चाहिये।

§ ११५ आदेशकी अपेक्षा नारकियोंमें मिथ्यात्व, सम्यक्त्व और अनन्तानुबन्धीचतुष्कके संक्रामकका जघन्य अन्तरकाल अन्तमुहूर्त है। सम्यग्मिथ्यात्वके संक्रामकका जघन्य अन्तरकाल एक समय है तथा सभीके संक्रामकका उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ कम तैतीस सागर है। किन्तु यहाँ वारह कषाय और नौ नोकषायोंके संक्रामकका अन्तरकाल नहीं है। इसी प्रकार सब नरकोंके नारकियोंमें अन्तरकालका कथन करना चाहिये। किन्तु उत्कृष्ट अन्तरकाल कहते समय सर्वत्र कुछ कम अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण कहना चाहिये।

३११६. निर्विकल्पेण भिन्नो-नम्मो-नम्मामि० ओषो । अणंताणु० चट्टात्तय  
 जह० अंतोम०, उ० निष्णि पल्लिटो० देवणाणि । धम्मक०-णवणो०क० पण्थि  
 चंतरे । ए० पंचि०तिरि०वदयानियम । णवरि भिन्नो-नम्मो-नम्मामि० जह० अंतोम०  
 एवम०, उ० निष्णि पल्लिटो० पुत्थ० । पंचि०तिरि०अपज०-मणुमथापज०-अणुटिमादि-  
 ज्ञाव मन्वट्ठा चि मन्वपवट्ठीणं पण्थि चंतरे । मणुमनियम्मि पंचिदियतिरिक्कासंगो ।

**विवेचार्थ—**भिन्नात्तय, सम्यक्त्व, सम्यग्भिन्नात्तय और अनन्तानुबन्धीचतुष्टके इनके  
 संक्रामकता जघन्य अन्तरकालका गुणवत्ता जिस प्रकार अंतःप्रवृत्तियोंके समस्त चूर्णित्वोंकी व्यापकता  
 करने हुए किया है उसी प्रकार तथा भी जान लेना चाहिये । तथा इन सबके संक्रामकता उत्कृष्ट  
 अन्तरकाल नरककी उत्कृष्ट भिन्नताके अभावमें क्या है जो अथवा अथवा दृष्टिमें पठित पर लेना  
 चाहिये । अन्तरकालके अन्तर्गत ही लेना जिनमें नरकमें उत्कृष्ट होनेके अन्तर्गत ही उत्कृष्ट  
 सम्यक्त्वकी प्राप्त करते भिन्नात्तयका संक्रामकता । फिर हुए आवर्जित काल धीमे रहने पर यह  
 मानात्तयप्रती प्रती दोहरा उत्कृष्ट अन्तरकाल तथा और फिर तीव्र भर अन्तर्गतक ही रहा ।  
 किन्तु अन्तर्गत ही काल धीमे रहने पर यदि प्रती उत्कृष्ट अन्तरकालका प्राप्त करते फिरमें भिन्नात्तयका  
 संक्राम करने लगता है तो नरकमें भिन्नात्तयके संक्रामकता उत्कृष्ट अन्तरकाल कृत्त कम होने से  
 मानात्तयप्रती जाता है । जो तीव्र नरकमें उत्कृष्ट ही एक समय तक सम्यक्त्वका उत्पलना  
 संक्राम करते दूसरे समयमें अन्तर्गतक ही जाता है और फिर आवृत्तके अन्तर्गत उत्कृष्ट सम्यक्त्व-  
 का प्राप्त करते भिन्नात्तय काल प्राप्त भिन्नात्तयमें जाकर सम्यक्त्वका संक्राम करने लगता है  
 उसके सम्यक्त्वके संक्रामकता उत्कृष्ट अन्तरकाल कृत्त कम होतीय मानात्तय प्राप्त होता है । सम्य-  
 क्भिन्नात्तयके संक्रामकता उत्कृष्ट अन्तरकाल भी इसी प्रकारमें पठित करना चाहिये । किन्तु इसकी  
 विवेचना है कि इस तीव्रता अन्तर्गत सम्यक्त्व उत्कृष्ट परापर इनके दूसरे समयमें ही संक्रामक  
 कृत्ता चाहिये, क्योंकि सम्यग्भिन्नात्तयका संक्राम सम्यक्त्वदृष्टिके भी होता है । अनन्तानुबन्धीकी  
 अपेक्षा यदि प्राप्तमें विवेकीजना कराये और अन्तर्गत भिन्नात्तयमें ले जाय तो कृत्त कम होतीय  
 मानात्तयप्रमाण अन्तरकाल प्राप्त हो जाता है । अथ धीमे रही चारह कथाय और नौ नोकथाय सो इनके  
 संक्रामकता अन्तरकाल उत्कृष्ट अन्तर्गतमें ही सम्भर है और नरकमें उत्कृष्टाद्वेषिते होती नहीं, अतः  
 नरकमें इनके नरकके अन्तरकालका निवेच किया है

३११६. त्रिचंचोमि भिन्नात्तय, सम्यक्त्व और सम्यग्भिन्नात्तयके संक्रामकता अन्तरकाल  
 आवृत्तके समान है । अनन्तानुबन्धीचतुष्टके संक्रामकता जघन्य अन्तरकाल अन्तर्गत है और  
 उत्कृष्ट अन्तरकाल कृत्त कम होने पर है । किन्तु धारक कथाय और नौ नोकथायोंके संक्रामकता  
 अन्तरकाल नहीं है । पंचेन्द्रियतियेचक्रिकमें अन्तरकालका पक्षन इसी प्रकार जानना चाहिये ।  
 किन्तु इसकी विवेचना है कि इनके भिन्नात्तय और सम्यक्त्वके संक्रामकता जघन्य अन्तरकाल  
 अन्तर्गत है । सम्यग्भिन्नात्तयके संक्रामकता जघन्य अन्तरकाल एक समय है । तथा इन सबके  
 संक्रामकता उत्कृष्ट अन्तरकाल पूर्वकोटि प्रथमत्तय अधिक तीन पर्य है । पंचेन्द्रियतियेच अपयामि,  
 मनुष्य अपयामि और अनुद्विषामे लेकर सर्वार्थमिच्छि तकके देय इनमें सब प्रकृतियोंके संक्रामकता  
 अन्तरकाल नहीं है । बात यह है कि इन मार्गणाश्रमोंमें गुणस्थान नहीं बदलता, इसलिये  
 अन्तरकाल नहीं प्राप्त होता । मनुष्यविक्रम पंचेन्द्रिय तियेचके समान भंग है । किन्तु इतनी

१. ता० [ गुणव्योकराय० ] इति पाठः ।

णवरि वारसक०-पवणोक० जह० उक० अंतोमुहुत्तं ।

§ ११७. देवेसु मिच्छ०-सम्म०-अणंताणु०चउक०-सम्मामि० जह० अंतोमु० एगस०, उक० एकवीसं सागरो० देसुणापि । वारसक०-पवणोक० णत्थि अंतरं । एवं भवणादि जाव उवरिमगेवजा त्ति । णवरि सगड्ढिदी देसुणा कायन्वा । एवं जाव० ।

❀ णाणाजीवेहि भंगविचओ ।

§ ११८. सुगममेदमहियात्संभालणसुत्तं । तत्थ ताव अट्टपदं परूवेमाणो सुत्त-मुत्तरं भणह—

❀ जेसिं पयडीणं संतकम्ममत्थि तेसु पयदं ।

§ ११९. कुदो ? अकम्मएहि अक्खवहारादो । एदेणट्टपदेण दुविहो णिदेसो ओघादेसभेएण । तत्थोघपरूवणट्टमाह—

विशेषता है कि इनमें धारह कपाय और नौ नोकपायोंके संक्रामकका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त पाया जाता है । आशय यह है कि इनमें उपशमश्रेणि सम्भव है अतः उक्त २१ प्रकृतियोंके संक्रमका अन्तरकाल वन जाता है ।

**विशेषार्थ—**तिर्यचोमें प्रारम्भमें अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना करके अन्ततक वैसा रहे किन्तु अन्तमे मिथ्यात्वमें चला जाय । यह क्रम तिर्यचगतिमे एक पर्यायमें ही वन सकता है, अतः तिर्यचगतिमें अनन्तानुबन्धी चतुष्कके संक्रामकका उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ कम तीन पल्य कहा है । तथा पंचेन्द्रियतिर्यचत्रिकमें जो मिथ्यात्व, सन्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके संक्रामकका उत्कृष्ट अन्तरकाल पूर्वकोटिपुत्रवत् अधिक तीन पल्य कहा है सो यह उस उस पर्यायके उत्कृष्ट कालकी अपेक्षासे कहा है । इसे नरकके समान यहाँ भी घटित कर लेना चाहिये । शेष कथन सुगम है ।

§ ११७. देवोंमें मिथ्यात्व, सन्यक्त्व और अनन्तानुबन्धीचतुष्कके संक्रामकका जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है । सम्यग्मिथ्यात्वके संक्रामकका जघन्य अन्तरकाल एक समय है और सबके संक्रामकका उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ कम इकतीस सागर है । किन्तु धारह कपाय और नौ नोकपायोंके संक्रामकका अन्तरकाल नहीं है । इसी प्रकार भवनवासियोंसे लेकर उपरिम ग्रैवयक तक जानना चाहिये । किन्तु सर्वत्र उत्कृष्ट अन्तर कहते समय कुछ कम अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थिति कहनी चाहिये । इसी प्रकार अनाहारक मार्गया तक जानना चाहिये ।

**विशेषार्थ—**देवगतिमें उपरिम ग्रैवयक तक ही गुणस्थान परिवर्तन सम्भव है । इसीसे मिथ्यात्व आदि सात प्रकृतियोंके संक्रमका उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ कम इकतीस सागर कहा है । शेष कथन सुगम है ।

❀ अय नाना जीवोंकी अपेक्षा भंगविचयका अधिकार है ।

§ ११८. अधिकारका निर्देश करनेवाला यह सूत्र सुगम है । अय यहाँ अर्थपदके वतलानेकी इच्छासे अ.गेका सूत्र कहते हैं—

❀ जिन प्रकृतियोंकी सत्ता है वे यहाँ प्रकृत हैं ।

§ ११९ कथोंके जो कर्मभायसे रहित हैं उनका प्रकृतमें उपयोग नहीं । इस अर्थपदके अनुसार ओघ और आदेशके भेदसे निर्देश दो प्रकारका है । उनमेंसे ओघका कथन करनेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

⊗ मिच्छत्त-सम्मत्ताणं सव्वजीवा णियमा संकामया च असं-  
कामया च ।

§ १२०. कुदो ? मिच्छत्तस्स संकामयासंकामयाणं सम्माइड्ढि-मिच्छाइड्ढीणं  
सव्वकालमवट्ठाणदंमणादो । एवं सम्मत्तस्स वि । णवरि विवज्जासेण वत्तव्वं ।

⊗ सम्मामिच्छत्त-सोलसकसाय-णवणोकसायाणं च तिरिण्ण भंगा  
कायत्वा ।

§ १२१. तं जहा—सिया मव्वे जीवा संकामया । सिया संकामया च असंकामओ  
च १ । सिया संकामया च असंकामया च २ । धुवसहिदा ३ तिण्णि भंगा ।

एवमोषेण भंगविचयो समतो ।

§ १२२. आदेसपस्वणद्वमुच्चारणं वत्तइस्सामो । तं जहा—मणुसतियस्स  
ओषभंगो । णेइएमु मिच्छ०-सम्म०-सम्मामि०-अणंताणु०-चउरस ओषो । वारसक०-  
णवणोक० णियमा संकामया । एवं मव्वणेइय-तिक्खि-पंचिंदियतिक्खितिय-देवा

⊗ मिथ्यात्व और सम्यक्त्वके सब जीव नियमसे संकामक और असंकामक हैं ।

§ १२०. इगोकि मिथ्यात्वका संकम करनेवाले सम्यक्त्वियोंका और संकम नहीं  
करनेवाले मिथ्यात्वियोंका सर्वथा सद्भाग देया जाता है । इसी प्रकार सम्यक्त्व प्रकृतिकी अपेक्षा  
से भी कारणका कथन करना चाहिये । किन्तु इनकी विशेषता है कि यहाँ विपरीतक्रमसे उक्त  
कारणका कथन करना चाहिये ।

⊗ सम्यग्मिथ्यात्व, सोलह कपाय और नौ नोकपायोंके तीन भंग करना चाहिये ।

§ १२१. मुलामा इस प्रकार है—कदाचित् सब जीव संकामक हैं । कदाचित् बहुत जीव  
संकामक हैं और एक जीव असंकामक है । कदाचित् बहुत जीव संकामक हैं और बहुत जीव  
असंकामक हैं २ । यहाँ इन दो भंगोंमें ध्रुव भंगके मिलाने पर तीन भंग होते हैं ।

विशेषार्थ—उक्त कथनका मार यह है कि मिथ्यात्व और सम्यक्त्वके संकामक और  
असंकामक बहुत जीव तो सदा पाये जाते हैं । किन्तु शेष प्रकृतियोंके विषयमें तीन भंग हैं ।  
कदाचित् सब जीव संकामक हैं यह ध्रुव भंग है । आशय यह है कि शेष प्रकृतियोंके संकामकोंका  
सदा पाया जाना तो सम्यक् है किन्तु असंकामकोंके विषयमें कोई निश्चित नियम नहीं कहा जा  
सकता है । कदाचित् एक ही जीव असंकामक नहीं होता । जब एक भी असंकामक जीव नहीं पाया  
जाता तब उक्त ध्रुव भंग होता है । इसके अतिरिक्त शेष दो भंग स्पष्ट ही हैं ।

इस प्रकार ओषसे भंगविचय समाप्त हुआ ।

§ १२२. अब आदेशका कथन करनेके लिये उच्चारणको बतलाते हैं यथा—मनुष्यत्रिक्रमे  
ओषके समान भंग है । अर्थात् ओषसे जो व्यवस्था चललाई है वह मनुष्यत्रिक्रमे घटित हो जाती  
है । नारकियोंमें मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धीचतुष्कका भंग ओषके  
समान है । किन्तु वारह कपाय और नौ नोकपायोंकी अपेक्षा नियमसे सब जीव संकामक हैं यही  
एक भंग है वात यह है कि इन इक्कीस प्रकृतियोंकी अपेक्षा असंकामकोंका भंग उपरामश्रेणिसे



जाव उवरिमगेवज्जा ति ।

§ १२३. पंचिदियतिरिक्खअपज्ज० सम्म०-सम्मामि० सिया सव्वे संकामया । सिया संकामया च असंकामओ च । सिया संकामया च असंकामया च । सोलसक०-णवणोकसायाणं णियमा संकामया ।

§ १२४. मणुसअपज्जत्त० सम्म०-सम्मामि० संकामयासंकामयाणमट्ट भंगा कायव्वा । सोलसक०-णवणोक० सिया संकामओ । सिया संकामया । अणुहिसादि जाव सव्वट्ठा ति मिच्छ०-सम्मामि०-वारसक०-णवणोक० णियमा संकामया । अणंताणु०चउक्कस्स ओथो । एवं जाव० ।

§ १२५. संपहि भागाभाग-परिमाण-खेत्त-पोसणाणं परूवणट्टसुच्चारणमवलंबेमो । तं जहा—भागाभागाणु० दुविहो णि०—ओघेण आदेसेण य । ओघेण मिच्छ०-संकामया सव्वजीवाणं केव० ? अणंतभागो । असंकाम० अणंतभागा । सम्म०संकाम० सव्वजीवाणं केव० ? असंखे०भागो । असंकामया असंखेज्जा भागा । सम्मामि०-

प्राप्त होता है । पर नरकम उपशमश्रेणि सम्भव नहीं, इसलिये इनकी अपेक्षा यहाँ एक ही भंग वतलाया है । इसी प्रकार सब नारकी, तिर्यञ्चविक, देव और उपरिम त्रैविक तकके देवोंके जानना चाहिये ।

§ १२३. पंचेन्द्रियतिर्यञ्चलन्ध्यपर्याप्तकोंमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके कदाचित् सब जीव संक्रामक हैं । कदाचित् बहुत जीव संक्रामक हैं और एक जीव असंकामक हैं । कदाचित् बहुत जीव संक्रामक हैं और बहुत जीव असंकामक हैं । तथा सोलह कषाय और नौ नोकषायोंके नियमसे सब जीव संक्रामक हैं ।

विशेषार्थ—आशय यह है कि इन जीवोंके मिथ्यात्वका संक्रम और अनन्तानुबन्धी चतुष्कका असंक्रम तो सम्भव ही नहीं, क्योंकि यहाँ अविरतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान नहीं होता । अतः मिथ्यात्वके सिवा शेष प्रकृतियोंकी अपेक्षासे उक्त प्रकारसे भंग वतलाये हैं ।

§ १२४. मनुज्य अपर्याप्तकोंमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके संक्रामक और असंकामकोंके आठ भंग कहने चाहिये । तथा सोलह कषाय और नौ नोकषायोंकी अपेक्षा कदाचित् एक जीव संक्रामक होता है और कदाचित् अनेक जीव संक्रामक होते हैं ये दो भंग होते हैं । तथा अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देव मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व, बारह कषाय और नौ नोकषायोंके नियमसे संक्रामक होते हैं । तथा यहाँ अनन्तानुबन्धीचतुष्कका भंग ओघके समान है । इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिये ।

§ १२५. अब भागाभाग, परिमाण, क्षेत्र और स्पर्शनका कथन करनेके लिये उच्चारणाका अवलम्बन लेते हैं । यथा—भागाभागानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । उनमेंसे ओघकी अपेक्षा मिथ्यात्वके संक्रामक जीव सब जीवोंके कितने भागप्रमाण हैं ? अनन्तवे भागप्रमाण हैं । असंकामक जीव कितने भागप्रमाण हैं ? अनन्त बहुभागप्रमाण हैं । सम्यक्त्वके संक्रामक जीव सब जीवोंके कितने भागप्रमाण हैं ? असंख्यातवे भागप्रमाण हैं ।

१. आ०प्रती संखेजा इति पाठः ।

संक्रामया अमंखेज्जा भागा । अमंक्रामया असंखेज्जदिभागो । सोलसक०-णवणोक०-संक्रामया' अणंता भागा । असंक्रामया अणंतभागो ।

§ १२६. आदेशेण णेरइय० मिच्छ०-सम्म०संक्राम० असंखे०भागो । असंक्रामया असंखेज्जा भागा । सम्मामि०-अणंताणु०४संक्राम० असंखेज्जा भागा । असंक्राम० अमंखे०भागो । वारसक०-णवणोक० णत्थि भागाभागो, संक्रामयाणमेव णिप्पडि-वक्खाणमेत्थ दंस्सणादो । एवं सच्चणेरइय-पंचिंदियतिरिक्खतिय-देवा जाव सहस्सारे त्ति ।

§ १२७. तिरिक्खेसु मिच्छ०-सम्म०-सम्मामि०-अणंताणु०४ ओषं । वारसक०-णवणोक० णत्थि भागाभागो । पंचिंदियतिरिक्खअपज्ज०-मणुसअपज्ज० सम्म०-सम्मामि०-संक्राम० असंखेज्जा भागा । असंक्राम० अमंखे०भागो । सेसपयडीणं णत्थि भागाभागो ।

§ १२८. मणुस्सेसु मिच्छत्त० णारयभंगो । सम्म०-सम्मामि०-सोलसक०-णवणोक० संक्रामया अमंखेज्जा भागा । अमंक्राम० अमंखे०भागो । एवं मणुसपज्ज०-मणुसिणीसु । णवरि मंखेज्जं कायत्वं ।

§ १२९. आणदादि जाव णवणेज्जा त्ति णारयभंगो । णवरि मिच्छ०संक्रामया

अमंक्रामक जीव कितने भागप्रमाण हैं ? अमंख्यात बहुभागप्रमाण हैं । सम्यग्मिथ्यात्वके संक्रामक जीव असंख्यात बहुभागप्रमाण हैं । असंक्रामक जीव असंख्यातवें भागप्रमाण हैं । सोलह कपाय और नौ नोकपायोंके संक्रामक जीव अनन्त बहुभागप्रमाण हैं । असंक्रामक जीव अनन्तवें भागप्रमाण हैं ।

§ १२६. आदेशकी अपेक्षा नारकियोंमें मिथ्यात्व और सम्यक्त्वके संक्रामक जीव असंख्यातवें भागप्रमाण हैं । अमंक्रामक जीव असंख्यात बहुभागप्रमाण हैं । सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धीचतुष्कके संक्रामक जीव असंख्यात बहुभागप्रमाण हैं । असंक्रामक जीव असंख्यातवें भागप्रमाण हैं । यहाँ वारह कपाय और नौ नोकपायोंका भागाभाग नहीं है, क्योंकि नरकमें इनके केवल संक्रामक जीव ही देखे जाते हैं । इसी प्रकार सब नारकी, पंचेन्द्रियतिर्यचत्रिक, सामान्य देव और सहस्रार कल्प तकके देवोंमें जानना चाहिये ।

§ १२७. तिर्यचोंमें मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी अपेक्षा भागाभाग ओषके समान है । तथा यहाँ वारह कपाय और नौ नोकपायोंका भागाभाग नहीं है । पंचेन्द्रियतिर्यचअपर्याप्त और मनुष्यअपर्याप्तोंमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके संक्रामक असंख्यात बहुभागप्रमाण हैं । असंक्रामक असंख्यातवें भागप्रमाण हैं यहाँ शेष प्रकृतियोंका भागाभाग नहीं है ।

§ १२८. मनुष्योंमें मिथ्यात्वका भंग नारकियोंके समान है । सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व, सोलह कपाय और नौ नोकपायोंके संक्रामक असंख्यात बहुभागप्रमाण हैं । असंक्रामक असंख्यातवें भागप्रमाण हैं । इसी प्रकार मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यनियोंके जानना चाहिये । किन्तु इनमें असंख्यातके स्थानमें संख्यातका कथन करना चाहिये ।

§ १२९. आनत कल्पके लेकर नौ प्रवेयक तकका कथन नारकियोंके समान है । किन्तु

१. आ०प्रती०, सोलसक० संक्रामया इति पाठः ।

संखेजा भागा । असंकामया संखे० भागो । अणुदिसादि [जाव] सच्चट्टा त्ति अणंताणु०-  
चउक्कस्स संकामया असंखेजा भागा । असंकाम० असंखे० भागो । णवरि सच्चट्टे संखेज्जं  
कायव्वं । सेसाणं णत्थि भागाभागो । सच्चत्थ कारणं सुगमं । एवं जाव० ।

§ १३०. परिमाणानु० दुविहो णिहेसो—ओघेण आदेसेण य । ओघेण मिच्छत्त०-  
सम्म०-सम्मामि० संकामया दव्वपमाणेण केवडिया ? असंखेजा । सोलसक०-  
णवणोक्क० संकामया केत्तिया ? अणंता । एवं तिरिक्खा० ।

§ १३१. आदेसेण णेरइ० अट्टावीसं पयडीणं संकामया केत्तिया ? असंखेजा ।  
एवं सच्चणेरइय-पंचिदियतिरिक्खतिय-देवा जाव णवगेवजा त्ति । पंचि० तिरि०-  
अपज्ज०-मणुसअपज्ज०-अणुदिसादि जाव अवरइदा त्ति सत्तवीसपयडीणं संकामया  
केत्तिया ? असंखेजा । मणुस्सेसु मिच्छत्तस्स संकामया संखेजा । सेसाणमसंखेजा ।  
मणुसपज्ज०-मणुसिणी-सच्चट्टदेवेसु सच्चपयडीणं संकामया केवडिया ? संखेजा । एवं  
जाव अणाहारि त्ति णेदव्वं ।

§ १३२. खेत्ताणुगमेण दुविहो णिहेसो—ओघेण आदेसेण य । ओघेण मिच्छ०-  
सम्म०-सम्मामि० संकामया केवडि खेत्ते ? लोगस्स असंखे० भागो । एवमसंकामया ।

इतनी विशेषता है कि यहाँ मिथ्यात्वके संक्रामक संख्यात बहुभागप्रमाण हैं और असंक्रामक संख्यातवर्ग भागप्रमाण हैं । अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें अनन्तानुबन्धीचतुष्कके संक्रामक जीव असंख्यात बहुभागप्रमाण हैं । असंक्रामक जीव असंख्यातवर्ग भागप्रमाण हैं । किन्तु इतनी विशेषता है कि सर्वार्थसिद्धिमें असंख्यातके स्थानमें संख्यातका कथन करना चाहिये । यहाँ शेष प्रकृतियोंका भागाभाग नहीं है । सर्वत्र कारण सुगम है । इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिये ।

§ १३०. परिमाणानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेश-  
निर्देश । ओघसे मिथ्यात्व, सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके संक्रामक कितने हैं ? असंख्यात हैं । सोलह कषाय और नौ नोक्पायोंके संक्रामक कितने हैं ? अनन्त हैं । इसी प्रकार तिर्यञ्चोंमें संख्या कहनी चाहिये ।

§ १३१. आदेशसे नारकियोंमें अट्टाईस प्रकृतियोंके संक्रामक जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं । इसी प्रकार सब नारकी, पंचेन्द्रियतिथ्यञ्चक्रिक और नौ त्रैवेयक तकके देवोंमें जानना चाहिये । पंचेन्द्रिय तिथ्यञ्च अपर्याप्त, मनुष्य अपर्याप्त और अनुदिशसे लेकर अपराजित तकके देवोंमें सत्ताईस प्रकृतियोंके संक्रामक जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं । मनुष्योंमें मिथ्यात्वके संक्रामक जीव संख्यात हैं । शेष प्रकृतियोंके संक्रामक जीव असंख्यात हैं । मनुष्यपर्याप्त मनुष्यिनी और सर्वार्थसिद्धि के देवोंमें सब प्रकृतियोंके संक्रामक जीव कितने हैं ? संख्यात हैं । इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिये ।

§ १३२. क्षेत्रानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेश निर्देश । ओघसे मिथ्यात्व, सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके संक्रामक जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकके असंख्यातवर्ग भागप्रमाण क्षेत्रमें रहते हैं । इसी प्रकार उक्त प्रकृतियोंके असंक्रामक जीव भी लोकके

णवरि मिच्छ०असंका० सच्चलोगे । सोलसक०-णवणोक०संकांमया सच्चलोए । असंकांम० लोगस्स असंखे०भागे । एवं तिरिक्खा० । णवरि वारसक०-णवणोकसायाणं असंकांमया णत्थि । सेसगइम्मगणासु सच्चपयडीणं संकांमया जहासंभवमसंकांमया च लोयस्स असंखे०भागे । एवं जाव अणाहारि ति णेदच्चं ।

§ १३३. पोसणाणुगमेण दुविहो णिहोसो—ओषेण आदेसेण य । ओषेण मिच्छ०संकांमएहि केवडियं० ? लोगस्स असंखे०भागो अट्ट चोदसभागा देसुणा । असंकांमएहि सच्चलोओ । सम्म०-सम्मामि० संकांमए० असंकांम० लोगस्स असंखे०-भागो अट्ट चोद० सच्चलोगो वा । सोलसक०-णवणोक०संकांम० सच्चलोगो । असंकां० लोयस्स असंखे०भागो । णवरि अणंताणु०४असंकां० ? अट्ट चोद० देसुणा ।

§ १३४. आदेसेण णेरइय० मिच्छ०संकांम० केव० ? लोगस्स असंखे०भागो । सेसपयडीणं संकांम० दंसणतियअसंकांम० लोयस्स असंखे०भागो छ चोदस० । अणंताणु०४असंकां० खेत्तं । पटमाए खेत्तमंगो । विदियादि जाव सत्तमा ति मिच्छ०-

असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमे रहते हैं । किन्तु इतनी विशेषता है कि मिथ्यात्वके असंक्रामक जीव सब लोकमें रहते हैं । सोलह कषाय और नौ नोकपायोंके संक्रामक जीव सब लोकमें रहते हैं । तथा इनके असंक्रामक जीव लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें रहते हैं । इसी प्रकार तिर्यंचोंके जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि इनमें बारह कषाय और नौ नोकपायोंके असंक्रामक जीव नहीं हैं । इनके अतिरिक्त शेष गति मार्गणाओंमें सब प्रकृतियोंके संक्रामक और यथासम्भव असंक्रामक जीव लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें रहते हैं । इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिये ।

§ १३३. स्पर्शानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओषनिर्देश और आदेशनिर्देश । ओषसे मिथ्यात्वके संक्रामक जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? लोकके असंख्यातवें भागका और त्रस नालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ भाग क्षेत्रका स्पर्श किया है । मिथ्यात्वके असंक्रामकोंने सब लोकका स्पर्श किया है । सम्यक्त्वं और सम्यग्मिथ्यात्वके संक्रामक और असंक्रामक जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रका त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ भागप्रमाण क्षेत्रका और सब लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है । सोलह कषाय और नौ नोकपायोंके संक्रामक जीवोंने सब लोकका स्पर्श किया है । असंक्रामकोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है । किन्तु इतनी विशेषता है कि अनन्तानुबन्धीचतुष्पके असंक्रामकोंने त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है ।

§ १३४. आदेशसे नारकियोंमें मिथ्यात्वके संक्रामक जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है ? लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है । शेष प्रकृतियोंके संक्रामकोंने और तीन दर्शनमोहनीयके असंक्रामकोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम छह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है । अनन्तानुबन्धीचतुष्पके असंक्रामकोंका स्पर्श क्षेत्रके समान है । पहली पृथिवीमें स्पर्श क्षेत्रके समान है । दूसरीसे लेकर सातवीं तक प्रत्येकमें

१ आ०प्रतौ अणंताणु०४ असंखे०भागो अट्ट इति पाठः । २. आ०प्रतौ अणंताणु०४ असंखे० खेत्तं इति पाठः ।

संक्राम० लोगस्स असंखे०भागो । सेसपयडीणं संक्राम० दंसणतियअसंक्राम० लोग० असंखे०भागो एक्क-वे-तिण्ण-चत्तारि-पंच-छचोद्दस० देहणा । अणंताणु०४असंक्राम० खेत्तं ।

§ १३५. तिरिख्वेसु मिच्छ०संक्राम० लोयस्स असंखे०भागो छ चोद्दस० देहणा । असंक्राम० सव्वलोगो । सम्म०-सम्मामि०संक्राम०-असंक्राम० लोयस्स असंखे०भागो सव्वलोगो वा । सोलसक०-णवणोक्क०संक्राम० सव्वलोगो । अणंताणु०४असंक्राम० खेत्तं ।

§ १३६. पंचिंदियतिरिखत्ति ए मिच्छ०संक्राम० लोगस्स असंखे०भागो छ चोद्दस० देहणा । सेसपयडीणं संक्राम० दंसणतियअसंक्राम० लोयस्स असंखे०भागो सव्वलोगो वा । अणंताणु०४असंक्राम० खेत्तं ।

§ १३७. पंचि०तिरि०अपज्ज० सम्म०-सम्मामि०संक्राम०-असंक्राम० सोलसक०-णवणोक्क०संक्राम० लोयस्स असंखे०भागो सव्वलोगो वा । मिच्छ०असंक्राम० एसो' चेव भंगो । एवं मणुसत्ति ए । णवरि मिच्छ०संक्राम० सोलसक०-णवणोक्क०असंक्राम० लोयस्स

मिथ्यात्वके संक्रामकोंने लोकके असंख्यातवे भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है । शेष प्रकृतियोंके संक्रामकोंने और तीन दर्शनमोहनीयके असंक्रामकोंने लोकके असंख्यातवे भाग क्षेत्रका तथा त्रस नालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम एक भाग, कुछ कम दो भाग, कुछ कम तीन भाग, कुछ कम चार भाग, कुछ कम पांच भाग और कुछ कम छह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है । अनन्तानुवन्धी चतुष्कके असंक्रामकोंका स्पर्श क्षेत्रके समान है ।

§ १३५. तिरि०चोमि० मिथ्यात्वके संक्रामकोंने लोकके असंख्यातवे भाग और त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम छह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है । असंक्रामकोंने सब लोक क्षेत्रका स्पर्श किया है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके संक्रामकों और असंक्रामकोंने लोकके असंख्यातवे भाग और सब लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है । सोलह कपाय और नौ नोकपायोंके संक्रामकोंने सब लोकका स्पर्श किया है । अनन्तानुवन्धीचतुष्कके असंक्रामकोंका स्पर्श क्षेत्रके समान है ।

§ १३६. पंचेन्द्रिय तिरिचत्त्रिकमें मिथ्यात्वके संक्रामकोंने लोकके असंख्यातवे भाग और त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम छह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है । शेष प्रकृतियोंके संक्रामकोंने और तीन दर्शनमोहनीयके असंक्रामकोंने लोकके असंख्यातवे भाग और सब लोक प्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है । अनन्तानुवन्धीचतुष्कके असंक्रामकोंका स्पर्श क्षेत्रके समान है ।

§ १३७. पंचेन्द्रिय तिरि०च० अपर्याप्तकोंमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके संक्रामकों और असंक्रामकोंने तथा सोलह कपाय और नौ नोकपायोंके संक्रामकोंने लोकके असंख्यातवे भाग और सब लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है । यहां मिथ्यात्वके असंक्रामकोंका भी यही भंग है । अर्थात् मिथ्यात्वके असंक्रामकोंने भी लोकके असंख्यातवे भाग और सब लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है । इसी प्रकार मनुष्यत्रिकमें जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि मिथ्यात्व के संक्रामकोंने तथा सोलह कपाय और नौ नोकपायोंके असंक्रामकोंने लोकके असंख्यातवे

असंखे०भागो ।

§ १३८. देवेसु मिच्छ०संक्राम० लोयस्स असंखे०भागो अट्ट चोदस० देखणा । सेसपयडीणं संक्राम० दंसणतियअसंक्राम० लोय० असंखे०भागो अट्ट णव चोद० देखणा । अणंताणु०४असंका० लोय० असंखे०भागो अट्ट चोदस० देखणा । एवं भवण०-वाणवंतर-जोहसिएसु । णवरि सगपोसणं कायव्वं ।

§ १३९. सोहम्मीसाण० देवोषं । सणक्कुमारादि जाव सहस्सार ति अट्टावीसं-पयडीणं संक्राम० दंसणतिय-अणंताणु०४असंका० लोयस्स असंखे०भागो अट्ट चोद० देखणा । आणदादि जाव अचुदा ति अट्टानीसं पयडीणं संक्राम० दंसणतिय-अणंताणु०-४ असंक्राम० लोय० असंखे०भागो छ चोदस० देखणा । उवरि खेत्तमंगो । एवं जाव० ।

❀ शाखाजीवेहि कालो ।

§ १४०. सुगममेदमहियारसंभालणसुत्तं ।

❀ सन्वकम्माणं संक्रामया केवचिरं कालादो हौंति ?

§ १४१. एदं पि सुत्तं सुगमं ।

भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श क्रिया है ।

§ १३८. देवोंमें मिथ्यात्वके संक्रामकोंने लोकके असंख्यातवे भाग और त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है । शेष प्रकृतियोंके संक्रामकोंने और तीन दर्शनमोहनीयके असंक्रामकोंने लोकके असंख्यातवे भाग और त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ तथा कुछ कम नौ भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है । अनन्तानुबन्धीचतुष्कके असंक्रामकोंने लोकके असंख्यातवे भाग और त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ भाग-प्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है । इसी प्रकार भवनवासी, व्यन्तर और ज्योतिषी देवोंमें जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि अपना अपना स्पर्श कहना चाहिये ।

§ १३९. सौधर्म और ऐशान कल्पमें सामान्य देवोंके समान स्पर्श है । सनस्कृमारसे लेकर सहस्त्रार कल्प तकके देवोंमें अट्टाईस प्रकृतियोंके संक्रामकोंने तथा तीन दर्शनमोहनीय और अनन्तानुबन्धीचतुष्कके असंक्रामकोंने लोकके असंख्यातवे भागप्रमाण और त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है । आनतसे लेकर अच्युत कल्प तकके देवोंमें अट्टाईस प्रकृतियोंके संक्रामकोंने तथा तीन दर्शनमोहनीय और अनन्तानुबन्धी चतुष्कके असंक्रामकोंने लोकके असंख्यातवे भाग और त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम छह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है । अच्युत स्वर्गसे ऊपर स्पर्श क्षेत्रके समान है । इसी प्रकार अनाहारकों तक जानना चाहिये ।

❀ अब नाना जीवोंकी अपेक्षा कालका अधिकार है ।

§ १४०. यह सूत्र सुगम है, क्योंकि इस द्वारा केवल अधिकारकी संभाल की गई है ।

❀ सब कर्मोंके संक्रामक जीवोंका कितना काल है ।

§ १४१. यह सूत्र भी सुगम है ।

१. ता० प्रती होइ इति पाठः ।

### ❀ सव्वद्धा ।

§ १४२. णाणाजीवे पडुच्च सव्वकम्माणं संकामयपवाहस्स सव्वकालं वोच्छेदा-  
दंसणादो ।

§ १४३. संपहि देसामासियसुत्तेणेदेण सूचिदासेसपरुवणण्डमुच्चारणं वत्तहस्सामो ।  
तं जहा—कालाणुगमेण दुविहो णिहेसो—ओघेण आदेसेण य । ओघेण अट्टावीसंपयडीणं  
संकामया केवचिरं ? सव्वद्धा । मिच्छं-सम्मं-असंकामया सव्वद्धा । सम्मामिं-  
अणंताणुं-उचउकअसंकां जहं एगसमओ समयूणावलिाया, उकं पल्लिदों असंखे-  
भागो । वारसकं-णवणोकं-असंकां जह एगसं, उकं अंतोमुं । एवं चदुसु गदीसु ।  
णवरि मणुसगदिवदिरित्तसेसगदीसु वारसकं-णवणोकं-असंकामया णत्थि । अणंताणुं-  
असंकां जहं एगसमओ । मणुसत्तिए अणंताणुं-असंकां जहं एगसमओ, उकं  
अंतोमुहुत्तं । मणुसपज्जं-मणुसिणीसु सम्मामिं-असंकां जहं एगसमओ, उकं  
अंतोमुहुत्तं । पंचिदियतिरिक्खअपज्जं-अणुहिसादि जाव सव्वद्धा त्ति सत्तावीसं पयडीणं  
संकां केव ? सव्वद्धा । सव्वट्ठे अणंताणुं-उचउकं-असंकामया जहं समयूणावलिाया,  
उकं अंतोमुं । मणुसअपज्जं सम्मं-समामिं-असंकां-असंकां जहं एगसं, उकं

### \* सर्वदा काल है

§ १४२. क्योंकि नाना जीवोंकी अपेक्षा सब कर्मोंके संक्रम करनेवाले जीवोंके प्रवाहका  
कभी भी विच्छेद नहीं देखा जाता है ।

§ १४३. यतः यह सूत्र देशामर्षक है, अतः इससे सूचित होनेवाले अशेष अर्थका कथन  
करनेके लिये उच्चारणको वतलाते हैं । यथा—कालानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ-  
निर्देश और आदेशनिर्देश । अघसे अट्टावीस प्रकृतियोंके संक्रामक जीवोंका कितना काल है ?  
सब काल है । मिथ्यात्व और सम्यक्त्वके असंक्रामक जीवोंका सब काल है । सम्यग्मिथ्यात्वके  
असंक्रामक जीवोंका जघन्य काल एक समय है । अनन्तानुबन्धी चतुष्कके असंक्रामक जीवोंका  
जघन्य काल एक समयकम एक आवलि है । तथा इन दोनोंके असंक्रामक जीवोंका उत्कृष्ट काल  
पत्यके असंख्यात्वं भागप्रमाण है । वारह कषाय और नौ नोकषायोंके असंक्रामकोंका जघन्य  
काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । इसी प्रकार चारों गतियोंमें जानना चाहिये ।  
किन्तु इतनी विशेषता है कि मनुष्यगतिके सिवा शेष गतियोंमें वारह कषाय और नौ नोकषायोंके  
असंक्रामक जीव नहीं हैं । किन्तु इनमें अनन्तानुबन्धीचतुष्कके असंक्रामक जीवोंका जघन्य काल  
एक समय है । मनुष्यनिकमें अनन्तानुबन्धीचतुष्कके असंक्रामक जीवोंका जघन्य काल एक  
समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । मनुष्यपर्याप्त और मनुष्यनियोगे सम्यग्मिथ्यात्वके  
असंक्रामकोंका जघन्य काल एक समय है तथा उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च  
अपर्याप्त और अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोमे सत्ताईस प्रकृतियोंके संक्रामकोंका  
कितना काल है ? सब काल है । सर्वार्थसिद्धिमें अनन्तानुबन्धीचतुष्कके असंक्रामकोंका जघन्य  
काल एक समयकम एक आवलि है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । मनुष्य अपर्याप्तकोंमें  
सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके संक्रामकों और असंक्रामकोंका जघन्य काल एक समय है तथा

पल्लिदो० अयंखे०भागो । सोलसक०णवणोक०मंका० जह० ग्युदाभव०, उक०  
पल्लिदो० असखे०भागो । एवं जाव० ।

उत्कृष्ट काल पत्न्यके अस्संख्यातवें भागप्रमाण है । सोलह फयाग और नौ नोकपायोंके संक्रमणोंका जघन्य काल खुदाभवग्रहणप्रमाण है तथा उत्कृष्ट काल पत्न्यके अस्संख्यातवें भागप्रमाण है । इसी प्रकार अनाहारक मार्गशा तक जानना चाहिये ।

**त्रिषोषार्थ**—नाना जीवोंकी अपेक्षा अष्टांश प्रकृतियोंकी मत्ता और यथासम्भव उनका वन्य सदा पाया जाता है अतः ओषधमे मय प्रकृतियोंके संक्रमण काल सर्वदा बड़ा है । किन्तु अमकमकी अपेक्षा कुछ विशेषता है । वात रूढ़ है कि मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमें मिथ्यात्वका संक्रमण नहीं होता है और सम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें मन्वन्त्वका संक्रमण नहीं होता है । किन्तु उन दोनों गुणस्थानवाले जीव सदा पाये जाते हैं अतः मिथ्यात्व और सम्यग्त्वके अस्संक्रामकोंका काल भी सर्वदा बड़ा है । मन्वन्मिथ्यात्वका संक्रमण सासादन और मित्र गुणस्थानमें नहीं होता है, किन्तु नाना जीवोंकी अपेक्षामें भी सासादनका जघन्य काल एक समय है, अतः मन्वन्मिथ्यात्वके अस्संक्रामकोंका जघन्य काल एक समय बड़ा है । जिन्होंने अनन्तानुबन्धीकी विम्वोजना की है उनके अनन्तानुबन्धीचतुष्करी विसंशोजना करते समय अन्तमें एक समय एक प्रारंभिक काल तक अनन्तानुबन्धीका संक्रमण नहीं होता । इसीमें अनन्तानुबन्धीचतुष्करीके अस्संक्रामकोंका जघन्य काल एक समय कम एक प्रारंभिकप्रमाण बड़ा है । सामादन या मन्वन्मिथ्यादृष्टि गुणस्थानका उत्कृष्ट काल पत्न्यके अस्संख्यातवें भागप्रमाण है । इसीमें मन्वन्मिथ्यात्वके अस्संक्रामकोंका उत्कृष्ट काल पत्न्यके अस्संख्यातवें भागप्रमाण बड़ा है । जिन्होंने अनन्तानुबन्धीचतुष्करी विम्वोजना की है ऐसे जीव मिथ्यात्वमें या सासादनमें गये और वहाँ अनन्तानुबन्धीके संक्रमण होनेके पूर्व ही अन्य इसी प्रकारके जीव वहाँ उत्पन्न हुए । इस प्रकार ऐसे जीव वहाँ उक्त प्रकारसे यदि निरन्तर उत्पन्न होते रहें तो पत्न्यके अस्संख्यातवें भागप्रमाण काल तक ही उत्पन्न हों । मन्वन्ते हैं इससे आगे नहीं, इसीमें यदि अनन्तानुबन्धीचतुष्करीके अस्संक्रामकोंका उत्कृष्ट काल पत्न्यके अस्संख्यातवें भागप्रमाण बड़ा है । बारह कपायों और नौ नोकपायोंके अस्संक्रामकोंका जघन्य काल एक समय उपशमश्रेणामें मरणकी अपेक्षा से और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त प्रत्येक प्रकृतिके उत्कृष्ट उपशमकालकी अपेक्षासे बड़ा है । आशय यह है कि नाना जीवोंने उक्त प्रकृतियोंका उपशम किया और जिस समय जिस प्रकृतिका उपशम किया उसके दूसरे समयमें मरण करने देय हो जाने पर उक्त प्रकृतियोंके अस्संक्रामका जघन्य काल एक समय प्राप्त हो जाता है । इसी प्रकार निरन्तरक्रममें नाना जीवोंने उक्त प्रकृतियोंका यदि उपशम किया तो भी उस उपशमकालका जोड़ अन्तर्मुहूर्तसे अधिक नहीं प्राप्त होता, इसलिये उक्त प्रकृतियोंके अस्संक्रमण उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्तसे अधिक नहीं होता । निम्नलिखित कुछ अपवादोंको छोड़कर यह ओषध व्यवस्था चारों गतियोंमें भी बन जाती है । यह कहाँ क्या अपवाद हैं इनका सकारण उल्लेख करते हैं—उपशमश्रेणिकी प्राप्ति मनुष्यगतिमें ही सम्भव है अतः मनुष्यगतिके सिवा शेष तीन गतियोंमें बारह कपाय और नौ नोकपायोंके अस्संक्रामकोंका निषेध किया है । चारों गतियोंमें अनन्तानुबन्धीचतुष्करीके अस्संक्रामकोंका जा जघन्य काल एक समय बतलाया है सो वह गति परिवर्तनकी अपेक्षासे बतलाया है । उदाहरणार्थ नररूपागतिमें अनन्तानुबन्धीचतुष्करीके अस्संक्रामक नाना जीव एक समय तक रहें और वे दूसरे समयमें मरणकर अन्य गतिमें चले गये तो नररूपागतिमें अनन्तानुबन्धीचतुष्करीके अस्संक्रामकोंका जघन्य काल एक समय बन जाता है । इसी प्रकार शेष तीन गतियोंमें उक्त काल बटित कर लेना चाहिये । या ऐसे नाना



❀ णाणाजीवेहि अंतरं ।

§ १४४. सुगममेदं, अहियारसंभालणमेत्तवावारादो ।

❀ सत्त्वकम्मसंक्रामयाणं एत्थि अंतरं ।

§ १४५. एदस्स विचरणसुचारणामुहेण वत्तइस्सामो । तं जहा—अंतराणुगमेण

जीव, जो एक समयवाद अनन्तानुबन्धीचतुष्कका संक्रम करेंगे, देव, मनुष्य या तिर्यञ्चोमे उत्पन्न हुए हैं तो इनकी अपेक्षा भी उक्त एक समय काल प्राप्त हो जाता है, क्योंकि नरकजातिमें सासादनवाला उत्पन्न नहीं होता और मिथ्यात्वमें जाकर संयोजना करनेवालेका अन्तर्मुहुर्तसे पहिले मरण नहीं होता । यद्यपि सामान्य मनुष्योंकी संख्या असंख्यात है पर अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना करनेवाले मनुष्यत्रिककी संख्या संख्यात ही है । ऐसे जीव यदि मिथ्यात्व और सासादनमें इस क्रमसे उत्पन्न हों जिससे वहाँ अनन्तानुबन्धीचतुष्कके असंक्रामकोंका नैरन्तर्य बना रहे तो ऐसे कालका जोड़ अन्तर्मुहुर्तसे अधिक नहीं हो सकता, अतः उक्त तीन प्रकारके मनुष्योंमें अनन्तानुबन्धीचतुष्कके असंक्रामकोंका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहुर्त कहा है । इसी प्रकार मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यनिर्धोमें सम्यग्मिथ्यात्वके असंक्रामकोंका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहुर्त प्राप्त कर लेना चाहिये, क्योंकि यहाँ नानाजीवोंकी अपेक्षा सासादनका जघन्य काल एक समय और सासादन या सम्यग्मिथ्यात्व गुणस्थानका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहुर्त ही प्राप्त होता है । पंचेन्द्रिय तिर्यच अपर्याप्तकोंके एक मिथ्यादृष्टि गुणस्थान होनेसे इनके मिथ्यात्वका संक्रम सम्भव नहीं और अनुदिरासे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें एक अविरतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान होनेसे इनके सम्यक्त्वका संक्रम सम्भव नहीं, इसीसे इनके सत्ताईस प्रकृतियोंके संक्रमका उल्लेख किया है । सर्वार्थसिद्धिमें संख्यात जीव ही होते हैं, अतः वहाँ अनन्तानुबन्धीचतुष्कके असंक्रामकोंका जघन्य काल एक समय कम एक आवलि और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहुर्त कहा है । मनुष्य अपर्याप्त यह सान्तर मार्गणा है । इसका जघन्य काल खुदाभवग्रहणप्रमाण और उत्कृष्ट काल पर्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है, अतः यहाँ सोलह कषाय और नौ नोकपायोंके संक्रामकोंका जघन्य और उत्कृष्ट काल उक्त प्रमाण कहा है । सम्यक्त्वप्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वके संक्रामकोंका उत्कृष्ट काल ता पर्यके असंख्यातवें भागप्रमाण ही है किन्तु जघन्य कालमें कुछ विशेषता है । बात यह है कि ऐसे नाना जीव जिन्हे सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके संक्रममें एक समय शेष है, लब्धपर्याप्त मनुष्योंमें उत्पन्न हुए और फिर द्वितीयादि समयोंमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका संक्रम करनेवाले अन्य जीव नहीं उत्पन्न हुए तो ऐसी हालतमें लब्धपर्याप्त मनुष्योंमें इन दो प्रकृतियोंके संक्रामकोंका जघन्य काल एक समय बन जाता है । इसी प्रकार इन दो प्रकृतियोंके असंक्रामकोंका जघन्य और उत्कृष्ट काल घटित करना चाहिये । इसी प्रकार अनाहारक मार्गणातक अपनी अपनी विशेषताको समझकर यथासम्भव प्रकृतियोंके संक्रामकों और असंक्रामकोंका काल कहना चाहिये ।

❀ अब नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तरकालका अधिकार है ।

§ १४४. यह सूत्र सुगम है, क्योंकि इसका काम एक मात्र अधिकारकी संहाल करना है ।

❀ सब कर्मोंके संक्रामकोंका अन्तरकाल नहीं है ।

§ १४५. अब उच्चारणा द्वारा इस सूत्रका विवरण करते हैं । यथा—अन्तराणुगमकी अपेक्षा

दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य । ओघेण सञ्चपयडीणं संकामयाणं णत्थि अंतरं । एवं चहुसु गदीसु । णवरि मणुसअपज्ज० सत्तावीसं पयडीणं संकाम० जह० एगसमओ, उक्क० पलिदो० असंखे० भागो । एवं जाव० । णवरि सञ्चत्थ जहासंभवं असंकामयाण-मंतरं<sup>१</sup> गवेसणिज्जं, सञ्चिस्से परूवणाए सप्पडिवक्खत्तदंसणादो<sup>२</sup> ।

✽ सण्णियासो ।

§ १४६. एत्तो सण्णियासो कीरदि त्ति भणिदं होइ । तस्स दुविहो णिद्दे सो ओघादेसमेदेण । तत्थोघपरूवणहुमाह—

✽ मिच्छत्तस्स संकामओ सम्मामिच्छत्तस्स सिया संकामओ सिया असंकामओ ।

§ १४७. तं जहा—मिच्छत्तस्स संकामओ णाम अणावलियपविट्ठसंतकम्मिओ वेदयसम्माइट्ठी उवसमसम्माइट्ठी च णिरासाणो । सो च सम्मामिच्छत्तसंकमे भज्जो,

निर्देश दो प्रकारका हैं—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । ओघसे सब प्रकृतियोंके संकामकोंका अन्तरकाल नहीं है । उसी प्रकार चारों गतियोंमें जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि मनुष्य अर्थात्तमें सत्ताईस प्रकृतियोंके संकामकोंका जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल पत्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है । इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि सर्वत्र यथासंभव असंकामकोंके अन्तरका विचारकर कथन करना चाहिये, क्योंकि सभी परूपणा सप्रतिपत्त देखी जाती हैं ।

विशेषार्थ—ओघसे सब प्रकृतियोंके संकामकोंका सर्वदा सद्भाव होनेसे इनके अन्तर-कालका निषेध किया है । यही बात चारों गतियोंमें भी जानना चाहिये । किन्तु लब्धपर्याप्त मनुष्य यह सान्तर मार्गणा है और उसका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर पत्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है । अतः इसमें जिन सत्ताईस प्रकृतियोंका संकाम सम्भव है उनके संकामकोंका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर पत्यके असंख्यातवें भागप्रमाण बतलाया है । इसीप्रकार अपनी-अपनी विशेषताको जानकर अन्य मार्गणाओंमें अन्तरकाल जानना चाहिये । शेष कथन सुगम है ।

✽ अब सन्निकर्षका अधिकार है ।

§ १४६. अब इसके आगे सन्निकर्षका विचार करते हैं यह उक्त कथनका तात्पर्य है । उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेश निर्देश । उनमेसे ओघका कथन करनेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

✽ मिथ्यात्वका संक्रामक सम्यग्मिथ्यात्वका कदाचित् संक्रामक है और कदाचित् असंकामक है ।

§ १४७. जिसके मिथ्यात्वकी सत्ता उदयावलिके भीतर प्रविष्ट नहीं हुई है वह वेदक-सम्यग्दृष्टि जीव तथा सासादनके विना उपशमसम्यग्दृष्टि जीव मिथ्यात्वका संक्रामक होता है । इसके सम्यग्मिथ्यात्वका संक्राम भजनीय है, क्योंकि प्रथमोपशम सम्यक्त्वके उत्पन्न होनेके प्रथम

१. आ०प्रतौ—संभवं संकामयाणमंतरं इति पाठः । २. ता०—आ०प्रत्योः सञ्चपयडिवक्खत्त-दंसणादो इति पाठः ।

पढमसम्मत्तुपाइयपढमसमए तदभावादो । अण्णत्थ सव्वत्थ वि तदुवलंभादो ।

❀ सम्मत्तस्स असंक्रामओ ।

§ १४८. कुदो ? दोण्हं परोप्परपरिहारेणावड्ढिदत्तादो । एत्थ मिच्छत्तस्स संक्रामओ त्ति अहियारसंवंधो कायव्वो । सुगममण्णं ।

❀ अणंताणुबंधीणं सिया कम्मंसिओ सिया अकम्मंसिओ । जदि कम्मंसिओ सिया संक्रामओ सिया असंक्रामओ ।

§ १४९. एत्थ वि पुवं व अहियारसंवंधो कायव्वो, तेण मिच्छत्तसंक्रामओ सम्माइट्ठी अणंतणुबंधिचउक्कस्स सिया कम्मंसिओ । तेसिमविसंजोयणाए सिया अकम्मंसिओ, विसंजोयणाए णिस्संतीकरणस्स वि संभवादो । तत्थ जइ कम्मंसिओ तो तेसि संक्रमे भयणिक्को, आवलियपविट्ठसंतकम्मियम्मि तदणुवलंभादो इयरत्थ वि तदुवलंभादो त्ति सुत्तथो ।

❀ सेसाएमेक्खवीसाए कम्माणं सिया संक्रामओ सिया असंक्रामओ ।

§ १५०. एत्थ वि पुवं व अहियारसंवंधो । कथमेदेसिमसंक्रामयत्तमेदस्स चे ?

समयमे सम्यग्मिथ्यात्वका संक्रम न होकर वह अन्यत्र सर्वत्र पाया जाता है ।

❀ वह सम्यक्त्वका असंक्रामक है ।

§ १४८. क्योंकि ये दोनों संक्रम एक दूसरेके अभावमें पाये जाते हैं । आशय यह है कि मिथ्यात्वका संक्रम सम्यग्दृष्टि जीवके होता है और सम्यक्त्वका संक्रम मिथ्यादृष्टि जीवके होता है, अतः इनका एक साथ पाया जाना सम्भव नहीं है । इस सूत्रमें 'मिच्छत्तस्स संक्रामओ' इस पदका अधिकारवशा सम्बन्ध कर लेना चाहिये । शेष कथन सुगम है ।

❀ उसके अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी कदाचित् सत्ता है और कदाचित् सत्ता नहीं है । यदि सत्ता है तो वह अनन्तानुबन्धीचतुष्कका कदाचित् संक्रामक है और कदाचित् असंक्रामक है ।

§ १४९. यहाँ भी पूर्ववत् अधिकारवशा 'मिच्छत्तस्स संक्रामओ' पदका सम्बन्ध कर लेना चाहिये । इसलिये यह अर्थ हुआ कि मिथ्यात्वका संक्रामक जो सम्यग्दृष्टि जीव है वह जब तक अनन्तानुबन्धियोंकी विसंयोजना नहीं हुई है तब तक उनकी सत्तावाला है और अनन्तानुबन्धियोंकी विसंयोजना होकर अभाव हो जानेपर उनकी सत्तासे रहित है । अब यदि सत्तावाला है तो उसके इनका संक्रम भजनीय है, क्योंकि अनन्तानुबन्धियोंकी सत्ता आवलिके भीतर प्रविष्ट हो जानेपर उनका संक्रम नहीं पाया जाता । किन्तु अन्यत्र पाया जाता है यह इस सूत्रका अर्थ है । तात्पर्य यह है कि ऐसे जीवके विसंयोजनाकी अन्तिम फालिके पतनके समय एक समय कम एक आवलि काल तक अनन्तानुबन्धीका संक्रम नहीं होता ।

❀ वह शेष इकीस प्रकृतियोंका कदाचित् संक्रामक है और कदाचित् असंक्रामक है ।

§ १५०. यहाँ भी पूर्ववत् अधिकारवशा 'मिच्छत्तस्स संक्रामओ' पदका सम्बन्ध कर लेना चाहिये ।

नव्वोवसमकरणे । ण च मच्चप्पणोवगताणं मंक्रमसंभवो, विरोहादो । जइ एवं, मिच्छत्तस्स वि तत्थ संक्रमो मा होउ, उवसंतत्तं षडि विसेसाभावादो त्ति ? ण, दंसणतियम्मि उदयाभावो चैव उवसमो त्ति महणादो ।

§ १५१. गत्रं मिच्छत्तणिरुंभणेण सेसपयडीणमोघेण सण्णियासं काळण मग्गत्त-सम्पामिच्छत्तादीणमप्पणं कुणमाणो उत्तरसुत्तं भणइ ।

⊗ एवं सण्णियासो कायव्वो ।

§ १५२. एवमेदीए दिस्साए सेसकम्माणं पि सण्णियासो पेद्व्वो त्ति भणिदं होइ ।

शंका—मिथ्यात्वका संक्रामक जीव उक्त उचीस प्रकृतियोंका असंक्रामक कैसे है ?

समाधान—उक्त उचीस प्रकृतियोंका सर्वोपशम हो जानेपर यह उनका असंक्रामक होता है । यदि कहा जाय कि जिन प्रकृतियोंका सर्वोपशम हो गया है उनका भी संक्रम सम्भव है सो यह बात नहीं है, क्योंकि ऐसा माननेमें विरोध आता है ।

शंका—यदि ऐसा है तो मिथ्यात्वका भी वहाँ संक्रम मत होओ, क्योंकि उपशान्तपनेकी अपेक्षा उनसे उसने कोई विशेषता नहीं है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि दर्शनमोहनीयकी तीन प्रकृतियोंमें उनका उदयमें न आना ही उपशम है यह अर्थ लिया गया है ।

विशेषार्थ—सूत्रमें यह बतलाया है कि जो मिथ्यात्वका संक्रामक है वह कदाचित् अपत्यान्यानावरणचतुष्टय आदि २१ प्रकृतियोंका संक्रामक है और कदाचित् अरांक्रामक । जब तक इन उचीस प्रकृतियोंका उपशम नहीं होता तब तक संक्रामक है और उपशम हो जानेपर अरांक्रामक है । इस पर यह शंका हुई कि जो द्वितीयोपशमसम्यग्दृष्टि २१ प्रकृतियोंका उपशम करता है उसके दर्शनमोहनीयद्विकारा भी उपशम रहता है, अतः जैसे उसके २१ प्रकृतियोंका संक्रम नहीं होता वैसे मिथ्यात्वका भी संक्रम नहीं होना चाहिये, इसलिये मिथ्यात्वका संक्रामक उक्त २१ प्रकृतियोंका अरांक्रामक भी है यह कहना नहीं बनता है । इस शंकाका जो समाधान किया है उसका भाव यह है कि दर्शनमोहनीयकी तीन प्रकृतियोंका उदयमें न आना यही उनका उपशम है, अतः उनका उपशम रहते हुए भी संक्रम बन जाता है इसलिये चूर्णिसूत्रकारने जो यह कहा है कि 'जो मिथ्यात्वका संक्रामक है वह शेष २१ प्रकृतियोंका कदाचित् संक्रामक है और कदाचित् अरांक्रामक है' सो इन कथनमें कोई वाधा नहीं आती है । आशय यह है कि उपशमनाके विधानानुसार २१ प्रकृतियोंका सर्वोपशम होता है किन्तु तीन दर्शनमोहनीयका उपशम हो जाने पर भी उनका यथामुम्भव संक्रम और अपकर्षण ये दोनों क्रियाएँ होती रहती हैं, अतः उक्त कथन बन जाता है ।

§ १५१. इस प्रकार मिथ्यात्वको विवक्षित करके शेष प्रकृतियोंका ओषसे सन्निकर्ष बतला कर अब सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व आदि प्रकृतियोंको प्रधान करके आगेका सूत्र कहते हैं ।

\* इसी प्रकार शेष कर्मोंका सन्निकर्ष करना चाहिये ।

§ १५२. इस प्रकार इसी पद्धतिसे शेष कर्मोंके सन्निकर्षका भी कथन करना चाहिये यह उक्त कथनका तात्पर्य है ।

१. ता० प्रती—समवाविरोहादो इति पाठः । २ आ०प्रतो एवमेदीए सेसकम्माण इति पाठः ।  
३ ता०प्रती—कम्माण सण्णियासो इति पाठः ।

§ १५३. संपहि एदेण सुत्तेण सूचिदत्थविवरणंमुच्चारणं वचइस्सामो । तं जहा—सम्मचस्स संकामओ मिच्छं असंकां० । सम्मामि०-वारसक०-णवणोक० णियमा संकामओ । अणंताणु०चउक्खस्स सिया संकामओ सिया असंकामओ ।

§ १५४. सम्मामि० संकामंतो मिच्छं-सम्म०-अणंताणु०४ सिया अत्थि सिया णत्थि । जइ अत्थि, सिया संका० सिया असंका० । वारसक०-णवणोक० सिया संका० सिया असंका० ।

१५३. अब इस सूत्रसे सूचित होनेवाले अर्थका विवरण करनेके लिये उच्चारणाको वतलाते हैं। यथा—जो सम्यक्त्वका संक्रामक है वह मिथ्यात्वका असंक्रामक है; सम्यग्मिथ्यात्व, वारह कषाय और नौ नोकषायोंका नियमसे संक्रामक है तथा अनन्तानुबन्धी चतुष्कका कदाचित् संक्रामक है और कदाचित् असंक्रामक है।

विशेषार्थ—सम्यक्त्वका संक्रम मिथ्यात्वमें होता है किन्तु वहां मिथ्यात्वका संक्रम नहीं होता अतः जो सम्यक्त्वका संक्रामक है वह मिथ्यात्वका असंक्रामक है यह कहा है। सम्यग्मिथ्यात्व, वारह कषाय और नौ नोकषायोंका संक्रम सम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि दोनोंके होता है, अतः सम्यक्त्वके संक्रामकको उक्त प्रकृतियोंका संक्रामक नियमसे वतलाया है। यद्यपि अनन्तानुबन्धीचतुष्कका संक्रम सम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि दोनोंके होता है तथापि जिसने अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विसंयोजना की है उसके मिथ्यात्वमें आनेपर एक आवलिकालतक उनका संक्रम नहीं होता, अतः सम्यक्त्वके संक्रामकको अनन्तानुबन्धीचतुष्कका कदाचित् संक्रामक और कदाचित् असंक्रामक वतलाया है।

§ १५४. जो सम्यग्मिथ्यात्वका संक्रामक है उसके मिथ्यात्व, सम्यक्त्व और अनन्तानुबन्धीचतुष्कका कदाचित् सत्त्व है और कदाचित् सत्त्व नहीं है। यदि सत्त्व है तो वह उनका कदाचित् संक्रामक है और कदाचित् असंक्रामक है। वारह कषाय और नौ नोकषायोंका कदाचित् संक्रामक है और कदाचित् असंक्रामक है।

विशेषार्थ—सम्यग्मिथ्यात्वका संक्रम करनेवाले जिसने अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी विसंयोजना की है और जो दर्शनमोहनीयकी क्षणता करते हुए मिथ्यात्वका क्षय कर चुका है उसके अनन्तानुबन्धीचतुष्क और मिथ्यात्वका सत्त्व नहीं पाया जाता। तथा जो सम्यक्त्वकी उद्वेगनाकर चुका है उसके भी सम्यक्त्वकी सत्ता नहीं पाई जाती है। किन्तु इसके अतिरिक्त सम्यग्मिथ्यात्वका संक्रम करनेवाले शेष सब जीवोंके उक्त प्रकृतियोंकी सत्ता पाई जाती है। सो यह जीव इन प्रकृतियोंका कदाचित् संक्रामक है और कदाचित् असंक्रामक है। मिथ्यात्वका मिथ्यात्व गुणस्थानमें असंक्रामक है और सम्यग्दृष्टि अवस्थामें संक्रामक है। सम्यक्त्वका सम्यग्दृष्टि अवस्थामें असंक्रामक है मिथ्यात्व गुणस्थानमें संक्रामक है। अनन्तानुबन्धीका दो स्थलोंमें असंक्रामक है। शेष सब जगह संक्रामक है। एक तो जब विसंयोजना करते हुए अनन्तानुबन्धीकी सत्ता आवलिप्रविष्ट हो जाती है तब असंक्रामक है और दूसरे जिसने अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना की है ऐसा जीव जब मिथ्यात्वमें जाता है तब एक आवलि काल तक असंक्रामक है। इसी प्रकार वारह कषाय और नौ नोकषायोंका उपशम होनेके पूर्व संक्रामक है और उपशम होने पर असंक्रामक है। किन्तु लोभसंवलनका आनुपूर्वी संक्रमणके प्रारम्भ होनेपर असंक्रामक है। लोभसंवलनसम्बन्धी इस विशेषताका अन्यत्र जहां कहीं उल्लेख न किया हो वहाँ भी इसी प्रकार जान लेना चाहिये।

§ १५५. अणंताणुबंधिकोधं संकामंतो मिच्छ० सिया संका० सिया असंका० । सम्म०-सम्मामि० सिया अत्थि सिया णत्थि । जदि अत्थि, सिया संकाम० सिया असंकाम० । पण्णारसक०-णवणोक० णियमा संकामओ । एवं तिण्हमणंताणुबंधि-कसायाणं ।

§ १५६. अपच्चक्खाणकोधं संकामंतो मिच्छ०-सम्म०-सम्मामि०-अणंताणु०४ सिया अत्थि सिया णत्थि । जइ अत्थि, सिया संकाम० सिया असंकाम० । दस-कसायाणं णियमा संकामओ । लोभसंजलण-णवणोकसायाणं सिया संकाम० सिया असंकाम० । एवं पच्चक्खाणकोहं ।

§ १५५ जो अनन्तानुबन्धी क्रोधका संकामक है वह मिथ्यात्वका कदाचित् संकामक है और कदाचित् असंकामक है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व कदाचित् हैं और कदाचित् नहीं हैं । यदि हैं तो इनका कदाचित् संकामक है और कदाचित् असंकामक है । किन्तु पन्द्रह कपाय और नौ नोकपायोंका नियमसे संकामक है । मान आदि तीन अनन्तानुबन्धियोंका इस प्रकार कथन करना चाहिये ।

विशेषार्थ—अनन्तानुबन्धीका संकम मिथ्यादृष्टि और सम्यग्दृष्टि दोनोंके सम्भव है किन्तु मिथ्यात्वका संकम केवल सम्यग्दृष्टिके ही होता है, अतः जो अनन्तानुबन्धी क्रोधका संकामक है वह मिथ्यात्वका कदाचित् संकामक है और कदाचित् असंकामक है यह कहा है । जो अनादि मिथ्यादृष्टि है या जिस मिथ्यादृष्टिने सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्देलना कर दी है उसके सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व नहीं हैं शेषके हैं । तथा सासादन और मिश्र गुणस्थानमें तो इनका सदभाव नियमसे है । किन्तु एक तो इन दोनों गुणस्थानोंमें दर्शनमोहनीयकी प्रकृतियोंका संकम नहीं होता और दूसरे उद्देलनाके अन्तमें जब इनकी सत्ता आवलिके भीतर प्रविष्ट हो जाती है तब इनका संकम नहीं होता, अतः 'जो अनन्तानुबन्धीका संकामक है वह सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका कदाचित् संकामक है और कदाचित् संकामक नहीं है' यह कहा है । यहाँ इतना विशेष और जानना चाहिये कि सम्यक्त्वका संकम सम्यग्दृष्टि अवस्थामें नहीं होता है । शेष कथन सुगम है ।

§ १५६ जो अप्रत्याख्यानावरण क्रोधका संकामक है उसके मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धीचतुष्क कदाचित् हैं और कदाचित् नहीं हैं । यदि हैं तो इनका कदाचित् संकामक है और कदाचित् असंकामक है । तथापि अप्रत्याख्यानावरण मान आदि दश कपायोंका नियमसे संकामक है । किन्तु लोभ संज्वलन और नौ नोकपायोंका कदाचित् संकामक है और कदाचित् असंकामक है । इसी प्रकार प्रत्याख्यानावरण क्रोधका संकम करने-वाले जीवके जानना चाहिये ।

विशेषार्थ—जिस जीवने अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी विसंयोजना और तीन दर्शनमोहनीयका क्षय कर दिया है उस अप्रत्याख्यानावरणक्रोधके संकामकके ये सात प्रकृतियाँ नहीं पाई जातीं, शेषके पाई जाती हैं । उसमें भी सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके सत्त्वके सम्बन्धमें और भी कई नियम हैं जिनका यथायोग्य पहले विवेचन किया ही है उसी प्रकार यहाँ भी जानना चाहिये । इन सात प्रकृतियोंका सत्त्व रहने पर भी अवस्था विशेषमें इनका संकम होता है और अवस्था विशेषमें इनका संकम नहीं होता, अतः जो अप्रत्याख्यानावरण क्रोधका संकामक है वह इनका कदाचित् संकामक है और कदाचित् संकामक नहीं है यह कहा है । अन्तरकरण करनेके बाद

§ १५७. अपचक्रखणमाणं संक्रामंतो मिच्छ०-सम्म०-सम्मामि०-अणंताणु०  
चउक्काणमपचक्रखणक्रोहभंगो । सत्तकसायाणं णियमा संक्रामओ । चत्तारिकसाय-  
णवणोकसायाणं सिया संक्राम० सिया असंक्राम० । एवं पचक्रखणमाणं ।

§ १५८. अपचक्रखणमायं संक्रामंतो मिच्छ०-सम्म०-सम्मामि०-अणंताणु०  
चउक्काणमपचक्रखणक्रोहभंगो । चत्तारि कसायाणं णियमा संक्रामओ । सत्तक०-  
णवणोक० सिया संक्राम० सिया असंक्राम० । एवं पचक्रखणमायं ।

§ १५९. अपचक्रखणलोभं संक्रामंतो दंसणतिय-अणंताणुवंधिचउक्काणमपच-

आतुपूर्वा संक्रम चालू हो जानेसे लोभसंवलनका संक्रम नहीं होता और अप्रत्याख्यानावरण क्रोधका उपशम होनेके पूर्व ही नौ नोकपायोंका उपशम हो जाता है ऐसा नियम है, अतः अप्रत्याख्यानावरण क्रोधका संक्रम चालू रहते हुए भी उक्त दस प्रकृतियोंका संक्रम होना रुक जाता है । इसीसे यहाँ पर जो अप्रत्याख्यानावरण क्रोधका संक्रामक है वह उक्त प्रकृतियोंका कदाचित् संक्रामक है और कदाचित् असंक्रामक है यह कहा है । किन्तु इसके शेष अप्रत्याख्यानावरण मान आदि दस कपायोंका संक्रम अवश्य होता रहता है, क्योंकि अप्रत्याख्यानावरण क्रोधसे पहले न तो इन दस प्रकृतियोंका अभाव ही होता है और न उपशम ही होता है । प्रत्याख्यानावरण क्रोधकी स्थिति अप्रत्याख्यानावरण क्रोधसे मिलती जुलती है अतः इन दोनोंका कथन एक समान कहा है ।

§ १५७. जो अप्रत्याख्यानावरण मानका संक्रामक है उसके मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धीचतुष्क्रका भंग अप्रत्याख्यानावरण क्रोधके समान है । तथापि यह सात कपायोंका नियमसे संक्रामक है । तथा चार कपाय और नौ नोकपायोंका कदाचित् संक्रामक है और कदाचित् असंक्रामक है । इसी प्रकार प्रत्याख्यानावरण मानका संक्रम करनेवाले जीवके विषयमें जानना चाहिये ।

**विशेषार्थ**—अप्रत्याख्यानावरण मानके पहले अप्रत्याख्यानावरण माया और लोभ, प्रत्याख्यानावरण मान, माया और लोभ तथा संवलन मान और माया इन सात प्रकृतियोंका उपशम नहीं होता, अतः इन प्रकृतियोंका यह जीव नियमसे संक्रामक है यह कहा है । शेष कथन सुगम है ।

§ १५८. जो अप्रत्याख्यानावरण मायाका संक्रामक है उसके मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धीचतुष्क्रका भंग अप्रत्याख्यानावरण क्रोधके समान है । तथापि यह चार कपायोंका नियमसे संक्रामक है । तथा सात कपाय और नौ नोकपायोंका कदाचित् संक्रामक है और कदाचित् असंक्रामक है । इसी प्रकार प्रत्याख्यानावरण मायाका संक्रम करनेवाले जीवके विषयमें जानना चाहिये ।

**विशेषार्थ**—अप्रत्याख्यानावरण मायासे पहले अप्रत्याख्यानावरण लोभ, प्रत्याख्यानावरण माया और लोभ तथा संवलन माया इन चार प्रकृतियोंका उपशम नहीं होता, अतः इन प्रकृतियोंका यह जीव नियमसे संक्रामक है यह कहा है । शेष कथन सुगम है ।

१५९. जो जीव अप्रत्याख्यानावरण लोभका संक्रम करता है उसके तीन दर्शनमोहनीय

कृत्वाणक्रोधभयो । पचक्त्वाणलोभं णियमा संक्रामेद् । दसकसाय-णवणोकसायाणं सिया मंक्रामओ सिया अमंक्राम० । एवं पचक्त्वाणलोभं ।

§ १६०. क्रोधसंजलणं मंक्रामंतो मिच्छ०-मम्म०-मम्मामि०-वाग्गसक०-णवणोक० मिया अत्थि सिया णत्थि । जट अत्थि, मिया संक्रा० मिया असंक्रा० । दोण्हं संजलणाणं णियमा मंक्रामओ । लोभसंजलणस्स मिया मंक्राम० मिया असंक्रा० ।

§ १६१. माणसंजलणं संक्रामंतो मायासंजलणस्स णियमा संक्रामओ । लोभ-संजल० सिया संक्रा० मिया अमंक्रा० । सेमं सिया अत्थि सिया णत्थि । जइ अत्थि, सिया मंक्राम० सिया अमंक्रा० ।

§ १६२. मायासंजलणं मंक्रामंतो लोभसंजल० सिया मंक्रा० सिया असंक्रा० ।

और चार अनन्तानुबन्धियों का भंग अर्थात्त्यानावरण क्रोधके समान है । यह प्रत्याख्यानावरण लोभका नियमसे संक्रामक है । तथा दस कषाय और नौ नोकषायोंका कदाचित् राज्ञानक है और कदाचित् अराज्ञानक है । इसी प्रकार प्रत्याख्यानावरण लोभका संक्राम करनेवाले जीवके विषयमें भी जानना चाहिये ।

**विशेषार्थ**—अप्रत्याख्यानावरण लोभ और प्रत्याख्यानावरण लोभ उनका उपराग एक साथ होता है । अतः एकका संक्रामक दूसरेका संक्रामक नियमसे है यह कहा है । शेष कथन सुगम है ।

§ १६०. जो क्रोधराज्यलनका संक्राम करता है उसके मिथ्यात्व, मग्नकत्व, सम्यग्मिथ्यात्व, शरद कषाय और नौ नोकषाय इनका सत्त्व कदाचित् है और कदाचित् नहीं है । यदि है तो उनका कदाचित् संक्रामक है और कदाचित् अराज्ञानक है । किन्तु यह दो संजलनोका नियमसे संक्रामक है । लोभसंजलनका कदाचित् संक्रामक है कदाचित् अमक्रामक है ।

**विशेषार्थ**—धूपकधेणिकी अपेक्षा क्रोधसंजलनवालेके मिथ्यात्व आदि २४ प्रकृतियोंका सत्त्वनाश हो जाता है यह स्पष्ट ही है । अतः क्रोधसंजलनके संक्रामकके उक्त चोर्वोस प्रकृतियों कदाचित् हैं और कदाचित् नहीं हैं यह बात धन जाती है । इन प्रकृतियोंका सत्त्व रहने पर भी यथायोग्य स्थानमें इनका संक्रम नहीं होता, अन्यत्र होता है, अतः जो संजलन क्रोधका संक्रामक है वह उक्त चोर्वोस प्रकृतियोंका कदाचित् संक्रामक है और कदाचित् अमक्रामक है, यह कहा है । किन्तु इस जीवके संजलन मान और मायाका सत्त्वनाश या उपशम पीछेसे होता है, अतः यह इन दोनों प्रकृतियोंका नियमसे संक्रामक है । तथा लोभसंजलनका आनुपूर्वी संक्रमका प्रारम्भ होनेके पूर्वतक संक्रामक है और उसके बाद असंक्रामक है ।

§ १६१. जो मान संजलनका संक्रामक है वह माया राज्यलनका नियमसे संक्रामक है । वह लोभसंजलनका कदाचित् संक्रामक है और कदाचित् अराज्ञानक है । इसके शेष प्रकृतियों कदाचित् है और कदाचित् नहीं हैं । यदि हैं तो उनका कदाचित् संक्रामक है और कदाचित् अराज्ञानक है ।

**विशेषार्थ**—मानसंजलनके संक्रामकके एक माया संजलन ही ऐसी प्रकृति वचती है जिसका वह नियमसे संक्रम करता है । शेष कथनका खुलासा पूर्ववत् जानना चाहिये ।

§ १६२. जो माया संजलनका संक्रामक है वह लोभ संजलनका कदाचित् संक्रामक है



सेसं सिया अत्थि सिया णत्थि । जदि अत्थि, सिया संका० सिया असंका० ।

§ १६३. लोभसंजलणं संकामेतो मिच्छ०-सम्म०-सम्मामि०-वारसक० सिया अत्थि सिया णत्थि । जइ अत्थि, सिया संका० सिया असंका० । तिण्हं संजलणाणं णवणोकसायाणं च णियमा संकामओ ।

§ १६४. इत्थिवेदं संकामेतो मिच्छ०-सम्म०-सम्मामि०-वारसक०-णवुंसयवेद० सिया अत्थि सिया णत्थि । जइ अत्थि, सिया संका० सिया असंका० । तिण्हं संजलणाणं सत्तणोकसायाणं च णियमा संकामओ । लोभसंजलणस्स सिया संका० सिया असंका० । एवं णवुंसयवेदं पि । णवरि इत्थिवेदस्स णियमा संकामओ ।

और कदाचित् असंक्रामक है । शेष प्रकृतियों कदाचित् हैं और कदाचित् नहीं हैं । यदि हैं तो उनका कदाचित् संक्रामक है और कदाचित् असंक्रामक है ।

**विशेषार्थ**—मायासंज्वलनके संक्रामकके लोभसंज्वलन अवश्य पाया जाता है किन्तु इसका आनुपूर्वीसंक्रामक प्रारम्भ होनेपर संक्रम नहीं होता अतः यह लोभसंज्वलनका कदाचित् संक्रामक है और कदाचित् असंक्रामक है यह कहा है । शेष खुलासा पूर्ववत् जानना चाहिये ।

§ १६३. जो लोभसंज्वलनका संक्रामक है उसके मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और वारह कषाय ये प्रकृतियों कदाचित् हैं और कदाचित् नहीं हैं । यदि हैं तो वह इनका कदाचित् संक्रामक है और कदाचित् असंक्रामक है । किन्तु तीन संज्वलन और नौ नोकषायोका नियमसे संक्रामक है ।

**विशेषार्थ**—आनुपूर्वीसंक्रम अन्तरकरण करनेके बाद प्रारम्भ होता है किन्तु मिथ्यात्व आदि पन्द्रह प्रकृतियोंकी क्षणपूर्व पहले सम्भव है, इसीसे लोभसंज्वलनके संक्रामकके मिथ्यात्व आदि पन्द्रह प्रकृतियोंका कदाचित् सत्त्वं और कदाचित् असत्त्वं बतलाकर उनके संक्रमके विषयमें भी अनियम बतलाया है । अब रहीं शेष तीन संज्वलन और नौ नोकषाय ये वारह प्रकृतियां सो इनकी असंक्रामरूप अवस्था आनुपूर्वी संक्रमके प्रारम्भ होनेके बाद प्राप्त होती है, अतः लोभसंज्वलनके संक्रामकको इनका संक्रामक नियमसे बतलाया है ।

§ १६४. जो स्त्रीवेदका संक्रामक है उसके मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व, वारह कषाय और नपुंसकवेद ये सोलह प्रकृतियां कदाचित् हैं और कदाचित् नहीं हैं । यदि हैं तो इनका कदाचित् संक्रामक है और कदाचित् असंक्रामक है । किन्तु तीन संज्वलन और सात नोकषायोका नियमसे संक्रामक है । तथा लोभसंज्वलनका कदाचित् संक्रामक है और कदाचित् असंक्रामक है । जो नपुंसकवेदका संक्रामक है उसका भी इसी प्रकारसे कथन करना चाहिये किन्तु यह स्त्रीवेदका नियमसे संक्रामक है ।

**विशेषार्थ**—क्षणपूर्वके स्त्रीवेदकी सत्त्वव्युच्छिन्निके पूर्व ही इन मिथ्यात्व आदि सोलह प्रकृतियोंकी सत्त्वव्युच्छिन्निके हो जाती है । इसीसे स्त्रीवेदके संक्रामकके इनके सत्त्वके विषयमें अनियम बतलाकर संक्रमके विषयमें भी अनियम बतलाया है । किन्तु इसके संज्वलन क्रोध आदि तीन संज्वलन और सात नोकषाय इनका संक्रम पीछे तक होता रहता है, इसलिये इसे इन दस प्रकृतियोंका नियमसे पंजामक बतलाया है । अब रहा लोभ संज्वलन सो आनुपूर्वी संक्रम चालू हो जानेके समयसे ही इस संक्रम होना बन्द हो जाता है अतः यह लोभसंज्वलनका कदाचित् संक्रामक है और कदाचित् असंक्रामक है यह बतलाया है । नपुंसकवेदके स्त्रीवेदकी क्षणपूर्व एक समय पूर्व या

§ १६५. पुरिसवेदं संकामंतो तिण्हं संजलणाणं णियमा संकामथो । लोभ-  
संजलणस्स सिया संका० सिया असंका० । सेसं सिया अत्थि सिया पत्थि । जइ  
अत्थि, सिया संका० सिया असंका० ।

§ १६६. हस्सं संकामंतो संजलणतियपुरिसवेद-पंचणोकसायाणं णियमा  
संकामओ । लोभसंजलणस्स सिया संकामओ० । सेसं सिया अत्थि० । जदि अत्थि सिया  
संकामओ सिया असंका० । एवं पंचणोकसायाणं षिं ।

§ १६७. आदेसेण णेइएस्सु मिच्छत्तं संकामंतो सम्मत्तस्स असंकामओ ।  
सम्मासिं सिया संका० सिया असंका० । अणंताणु०चउकं सिया अत्थि० । जइ  
अत्थि सिया संकामओ० । वारसक०-णवणोक० णियमा संकामओ । सम्मत्ताणंताणु०-  
चउक० ओवं । सम्मामिच्छत्तं संकामंतो मिच्छ० सिया संकामओ० । सम्मा०-

उसीके साथ होती हैं अतः नपुंसकवेदका संक्रामक खीवेदका भी नियमसे संक्रामक ठहरता है ।  
शेष कथन पूर्ववत् है ।

§ १६४. जो पुरुषवेदका संक्रामक है वह तीन संव्यलनोंका नियमसे संक्रामक है । लोभ-  
संव्यलनका कदाचित् संक्रामक है और कदाचित् असंक्रामक है । शेष प्रकृतियां कदाचित् हैं और  
कदाचित् नहीं हैं । यदि हैं तो उनका कदाचित् संक्रामक है और कदाचित् असंक्रामक है ।

विशेषार्थ—कोष आदि तीन संव्यलनोंका संक्रम पीछे तक होता रहता है इसलिये पुरुष-  
वेदके संक्रामकका इनका संक्रामक नियमसे बतलाया है । आनुपूर्वी संक्रमके चालू हो जानेके समयसे  
लोभसंव्यलनका संक्रम नहीं होता किन्तु तब भी पुरुषवेदका संक्रम होता रहता है, इसलिये  
पुरुषवेदके संक्रामकके लोभसंव्यलनके संक्रमके विषयमें अनियम बतलाया है । शेष कथन  
सुगम है ।

§ १६६. जो हास्यका संक्रामक है वह तीन संव्यलन, पुरुषवेद और पाँच नोकपायोंका  
नियमसे संक्रामक है । लोभसंव्यलनका कदाचित् संक्रामक है और कदाचित् असंक्रामक है । शेष  
प्रकृतियां कदाचित् हैं और कदाचित् नहीं हैं । यदि हैं तो उनका कदाचित् संक्रामक है और कदाचित्  
असंक्रामक है । इसीप्रकार पाँच नोकपायोंके संक्रामकका आश्रय लेकर कथन करना चाहिये ।

विशेषार्थ—कोष आदि तीन संव्यलन और पुरुषवेदका संक्रम पीछे तक होता रहता है ।  
तथा पाँच नोकपायोंका संक्रम हास्यके संक्रमका सहचारी है । इसीसे हास्यके संक्रामकको उक्त  
प्रकृतियोंका संक्रामक नियमसे बतलाया है । लोभसंव्यलनका संक्रम पूर्वमें ही रुक जाता है तब भी  
हास्यका संक्रम होता रहता है । इसीसे हास्यके संक्रामकके लोभसंव्यलनके संक्रमके विषयमें  
अनियम बतलाया है । शेष कथन सुगम है ।

§ १६७. आदेरासे नारकियेमिं जो मिथ्यात्वका संक्रामक है । वह सम्यक्त्वका असंक्रामक  
है । सम्यग्मिथ्यात्वका कदाचित् संक्रामक है और कदाचित् असंक्रामक है । अनन्तानुबन्धी-  
चतुष्क कदाचित् हैं और कदाचित् नहीं हैं । यदि हैं तो उनका कदाचित् संक्रामक है और  
कदाचित् असंक्रामक है । वरह कपाय और ती नोकपायोंका नियमसे संक्रामक है । सम्यक्त्व और  
अनन्तानुबन्धीचतुष्कके आश्रयसे सन्निकर्षका कथन शोधके रामान है । जो सम्यग्मिथ्यात्वका  
संक्रामक है वह मिथ्यात्वका कदाचित् संक्रामक है और कदाचित् असंक्रामक है । सम्यक्त्व और

अणंताणु०४ सिया अत्थि०, जइ अत्थि सिया संकामओ० । वारसक०-णवणोक० णि२सा संका० । अपच्चक्खाणकोधं संकामेतो मिच्छ०-सम्म०-सम्मामि०अणंताणु०४ सिया अत्थि सिया णत्थि । जइ अत्थि सिया संका० सिया असंका० । एकारसक०-णवणोक० णियसा संकामओ । एवमेकारसक०-णवणोकसायाणं । एवं पढमाए तिरिक्ख-पंचिदियतिरिक्खदुर्गं-देवगदि-देवा सोहम्मादि णवगेवजा ति । विदियादि सत्तमा ति एवं चैव । णवरि अपच्चक्खाणकोधं संकामेतो मिच्छत्तस्स सिया संकाम० सिया असंकाम० । एवं जोणिणी-भवणवासिय-वाणवेतर-जोहसिएसु ।

§ १६८. पंचिदियतिरिक्खअपज०-मणुसअपज० सम्मत्तं संकामेतो सम्मामि०-सोलसक०-णवणोकसायाणं णियसा संकामओ । सम्मामिच्छत्तं संकामेतो सम्मत्तं सिया अत्थि । जदि अत्थि, सिया संकाम० । सोलसक०-णवणोक० णियसा संकामओ । अणंताणु०कोधं संकामेतो सम्मत्त-सम्मामिच्छत्तं सिया अत्थि । जदि अत्थि, सिया संकामओ । पण्णारसक०-णवणोकसायाणं णियसा संकामओ । एवं पण्णारसक०-णवणोकसायाणं ।

अनन्तानुबन्धीचतुष्क कदाचित् हैं और कदाचित् नहीं हैं । यदि हैं तो इनका कदाचित् संक्रामक है और कदाचित् असंक्रामक है । बारह कपाय और नौ नोकपायोंका नियमसे संक्रामक है । जो अप्रत्याख्यानावरण क्रोधका संक्रामक है उसके मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धीचतुष्क कदाचित् हैं और कदाचित् नहीं हैं । यदि हैं तो इनका कदाचित् संक्रामक है और कदाचित् असंक्रामक है । ग्यारह कपाय और नौ नोकपायोंका नियमसे संक्रामक है । इसीप्रकार ग्यारह कपाय और नौ नोकपायोंका आश्रय लेकर कथन करना चाहिये । इसीप्रकार प्रथम पृथिवी, तिर्यञ्च, पंचेन्द्रियतिर्यञ्चद्विक, सामान्य देव और सौधर्मसे लेकर नौ त्रैव्यक तकके देवोंमें जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि जो अप्रत्याख्यानावरण क्रोधका संक्रामक है वह मिथ्यात्वका कदाचित् संक्रामक है और कदाचित् असंक्रामक है । इसी प्रकार पंचेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिनी, भवन-वासी, व्यन्तर और ज्योतिषी देवोंके जानना चाहिये ।

§ १६८. पंचेन्द्रिय तिर्यच अपर्याप्त और मनुष्य अपर्याप्त जीवोंमें जो सम्यक्त्वका संक्रामक है वह सम्यग्मिथ्यात्व, सोलह कपाय और नौ नोकपायोंका नियमसे संक्रामक है । जो सम्यग्मिथ्यात्वका संक्रामक है उसके सम्यक्त्व कदाचित् है और कदाचित् नहीं है । यदि है तो उसका कदाचित् संक्रामक है और कदाचित् असंक्रामक है । सोलह कपाय और नौ नोकपायोंका नियमसे संक्रामक है । अनन्तानुबन्धी क्रोधका जो संक्रामक है उसके सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व कदाचित् हैं और कदाचित् नहीं हैं । यदि हैं तो इनका कदाचित् संक्रामक है और कदाचित् असंक्रामक है । पन्द्रह कपाय और नौ नोकपायोंका नियमसे संक्रामक है । इसी प्रकार पन्द्रह कपाय और नौ नोकपायोंके संक्रामकका आश्रय लेकर सन्निकर्ष कहना चाहिये ।

विशेषार्थ—उक्त दो मार्गशास्त्रोंमें छत्वीस प्रकृतियों को नियमसे हैं । किन्तु सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका सत्त्व पाया भी जाता है और नहीं भी पाया जाता है । उसमें भी जिसके

§ १६०. मणुसतिण ओषं । णवरि मणुसिणीसु पुरिसवेदं संकामंतो छण्णो-  
कसायाणं णियमा संकामओ । अणुदिस० जाव सच्चट्ठा त्ति मिच्छत्तं रांकांमंतो सम्मामि०-  
वारसक०-णवणोक० णियमा संकामओ । अणंताणु०चउकं गिया अत्थि० । जदि अत्थि,  
सिया संकामओ० । एय सम्मामिच्छत्तस। अणंताणु०कोषं संकामंतो मिच्छ०-सम्मामि०-  
पण्णारसक०-णवणोक० णियमा संकामओ । एव तिण्हं कसायाणं । अपच्चक्खाणकोहं  
संकांमंतो मिच्छ०-सम्मामि० सिया अत्थि० । जदि अत्थि, णियमा संकामओ ।  
अणंताणु०४ सिया अत्थि० । जइ अत्थि, सिया संकामओ० । एणारसक०-णवणो-  
कसायाणं णियमा संकामओ । एवमेकारसक०-णवणोकसायाणं । एवं जाव० ।

§ १७०. भावो सच्चत्थ ओदइओ भावो ।

❀ अप्पावहुअं ।

§ १७१. अहियारसंभालणुत्तमेदं । सुगमं ।

❀ सच्चत्थोवा सम्मत्तस्स संकामया ।

सम्यक्त्वका सत्त्व हैं उसके सम्यग्मिथ्यात्वका सत्त्व नियमसे हैं । किन्तु जिसके सम्यग्मिथ्यात्वका सत्त्व हैं उसके सम्यक्त्वका सत्त्व हैं भी और नहीं भी हैं । इसी अपेक्षामें उक्त सन्निकर्ष कहा है ।

§ १६६. मनुष्यत्रिकर्मे सन्निकर्षे ओषके ममानं है । किन्तु दत्तनी विरोधता है कि मनुष्यनियमों जो पुरुषवेदका संक्रामक हैं वह छद्म नोकपायोंका नियमसे संक्रामक हैं । आशय यह है कि इनके दोनोंका संक्रम एक साथ होता है अतः उक्त व्यवस्था धन जाती है । अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धितकके देवोंमें जो मिथ्यात्वका संक्रामक है वृत्त सम्यग्मिथ्यात्व, धारत कपाय और नौ नोकपायोंका नियमसे संक्रामक है । अनन्तानुबन्धीचतुष्क कदाचित् हैं और कदाचित् नहीं हैं । यदि हैं तो उनका कदाचित् संक्रामक है और कदाचित् असंक्रामक है । इसी प्रकार सम्यग्मिथ्यात्वके संक्रामकका आश्रय लेकर सन्निकर्ष कहना चाहिये । जो अनन्तानुबन्धी क्रोधका संक्रामक है वह मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व, पन्द्रह कपाय और नौ नोकपायोंका नियमसे संक्रामक है । इसी प्रकार अनन्तानुबन्धीमान आदि तीन कपायोंके संक्रामकका आश्रय लेकर सन्निकर्ष कहना चाहिये । जो अप्रत्याख्यातावरण क्रोधका संक्रामक है उसके मिथ्यात्व और सम्यग्मिथ्यात्व कदाचित् हैं और कदाचित् नहीं हैं । यदि हैं तो उनका नियमसे संक्रामक है । अनन्तानुबन्धीचतुष्क कदाचित् हैं और कदाचित् नहीं हैं । यदि हैं तो उनका कदाचित् संक्रामक है और कदाचित् असंक्रामक है । ग्यारह कपाय और नौ नोकपायोंका नियमसे संक्रामक है । इसी प्रकार ग्यारह कपाय और नौ नोकपायोंके संक्रामकका आश्रय लेकर सन्निकर्ष कहना चाहिये । इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिये ।

§ १७०. भावका प्रकरण है । सर्वत्र औद्दयिक भाव है ।

❀ अब अल्पवहुत्वका अधिकार है ।

§ १७१. अधिकारका निर्देश करनेवाला यह सूत्र सुगम है ।

❀ सम्यक्त्वके संक्रामक जीव सबसे थोड़े हैं ।

- § १७२. कुदो ? उन्वेळ्लणवावदपल्लिदोवमासंखेज्जभागमेत्तजीवरासिस्स' गहणादो ।  
 \* मिच्छत्तस्स संकामया असंखेज्जगुणा ।  
 § १७३. कुदो ? वेदगसम्माइडिरासिस्स पहाणभावेणेत्य गहणादो ।  
 \* सम्मामिच्छत्तस्स संकामया विसेसाहिया ।  
 § १७४. केत्तियमेत्तेण ? सादिरेयसम्मत्तसंकामयजीवमेत्तेण ।  
 \* अपंताणुबंधीणं संकामया अपंतगुणा ।  
 § १७५. कुदो ? इइंदियरासिस्स पहाणत्तादो ।  
 \* अट्ठकसायाणं संकामया विसेसाहिया ।  
 § १७६. केत्तियमेत्तेण ? चउवीस-तेवीस-वावीस-इगिवीससंतकम्मियजीवमेत्तेण ।  
 \* लोभसंजलणस्स संकामया विसेसाहिया ।  
 § १७७. केत्तियमेत्तेण ? तेरससंकामयमेत्तेण । कुदो ? अट्ठकसाएसु खीणेषु  
 वि जाव अंतरं ण करेइ ताव लोहसंजलणस्स संकमर्दसणादो ।

§ १७२. क्योंकि उद्वेलनामें लगी हुई जो पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण जीवराशि है वह यहाँ ली गई है ।

\* मिथ्यात्वके संक्रामक जीव असंख्यातगुणे हैं ।

§ १७३. क्योंकि यहाँ वेदकसम्यग्दृष्टियोंका प्रधानरूपसे ग्रहण किया है ।

\* सम्यग्मिथ्यात्वके संक्रामक जीव विशेष अधिक हैं ।

§ १७४. शंका—कितने अधिक हैं ?

समाधान—सम्यक्त्वके संक्रामक जितने जीव हैं उतने हैं ।

\* अनन्तालुबन्धीके संक्रामक जीव अनन्तगुणे हैं ।

§ १७५. क्योंकि अनन्तालुबन्धियोंके संक्रामकोंमें एकेन्द्रिय राशिकी प्रधानता है ।

\* आठ कषायोंके संक्रामक विशेष अधिक हैं ।

§ १७६. शंका—कितने अधिक हैं ?

समाधान—चौबीस, तेईस, बाईस और इक्कीसप्रकृतिक सत्त्वस्थानवाले जीवोंका जितना प्रमाण है उतने अधिक हैं ।

\* लोभसंज्वलनके संक्रामक जीव विशेष अधिक हैं ।

§ १७७. शंका—कितने अधिक हैं ?

समाधान—तेरह प्रकृतियोंका संक्रम करनेवाले जीवोंका जितना प्रमाण है उतने अधिक हैं, क्योंकि आठ कषायोंका क्षय हो जाने पर भी जब तक अन्तर नहीं करता है तब तक लोभ-संज्वलनका संक्रम देखा जाता है ।

⊗ णवुंसयवेदस्स संकामया चिसेसाहिया ।

§ १७८. कुदो ? अंतर्करणे कदे लोहसंजलणस्स संकामाभावे वि णवुंसयवेदस्स तत्थ अंतोमुहुत्तकालं मंकमपाओग्गत्तदंसणादो । केत्तियमेत्तो चिसेसो ? चारस-संकामयमेत्तो ।

⊗ इत्थिवेदस्स संकामया चिसेसाहिया ।

§ १७९. कुदो ? णवुंसयवेदे एीणे वि इत्थिवेदस्स अंतोमुहुत्तकालं संकमसंभव-दंसणादो । के०मेत्तो चिसेसो ? एक्काग्गसंकामयजीवमेत्तो ।

⊗ छृण्णोकसायाणं संकामया चिसेसाहिया ।

§ १८०. के०मेत्तेण ? दममंकामयजीवमेत्तेण ।

⊗ पुरिसवेदस्स संकामया चिसेसाहिया ।

§ १८१. छमु कम्मसेमु खीणेमु उवरिदुसमऊणं-दोआवलियमेत्तकालमेदस्स संकमगंभवेण नन्य संचिदच्चदुसंकामयमेत्तेण चिसेसाहियत्तमेन्य गहयच्छं ।

⊗ कोहसंजलणस्स संकामया चिसेसाहिया ।

\* नपुंसकवेदके संक्रामक जीव विशेष अधिक हैं ।

§ १७८. क्योंकि अन्तरकरण करनेके बाद यद्यपि लोभ संज्वलनका संक्रम नहीं होता है तथापि यहाँ अन्तर्मुहूर्त कालतक नपुंसकवेदके संक्रमकी योग्यता देखी जाती है ।

शंका—विशेषका प्रमाण कितना है ।

समाधान—चारह प्रकृतियोंके संक्रामकोंका जितना प्रमाण है उतना है ।

\* स्त्रीवेदके संक्रामक जीव विशेष अधिक हैं ।

§ १७९. क्योंकि नपुंसकवेदका क्षय हो जाने पर भी अन्तर्मुहूर्त काल तक स्त्रीवेदका संक्रम देखा जाता है ।

शंका—विशेषका प्रमाण कितना है ?

समाधान—चारह प्रकृतियोंके संक्रामक जीवोंका जितना प्रमाण है उतना है ।

\* छह नोकपायोंके संक्रामक जीव विशेष अधिक हैं ।

§ १८०. शंका—कितने अधिक हैं ?

समाधान—दस प्रकृतियोंके संक्रामकोंका जितना प्रमाण है उतने अधिक हैं ।

\* पुरुषवेदके संक्रामक जीव विशेष अधिक हैं ।

§ १८१. छह नोकपायोंका क्षय हो जानेपर दो समयकम दो आयुलि काल तक पुरुषवेदका संक्रम सम्भव होनेसे उस कालके भीतर चार प्रकृतियोंके संक्रामकोंका जितना प्रमाण प्राप्त हो उतना यहाँ विशेष अधिक लेना चाहिये ।

\* क्रोधसंज्वलनके संक्रामक जीव विशेष अधिक हैं ।

§ १८२. के०मेत्तेण ? अंतोमुहुत्तसंचिदतिविहसंकामयमेत्तेण ।

❀ माणसंजलणस्स संकामया विसेसाहिया ।

§ १८३. विसेसपमाणमेत्थ दुविहसंकामयमेत्तं ।

❀ मायासंजलणस्स संकामया विसेसाहिया ।

§ १८४. एकस्से संकामयजीवमेत्तेण ।

एवमोघो समत्तो ।

§ १८५. संपहि आदेसेण णिरयगईए पयदप्पावहुअपरुवणह्मुरिसो पवंधो—

❀ णिरयगदीए सच्चन्धोवा सम्मत्तसंकामया ?

§ १८६. कुदो ? सम्मत्तमुच्चेल्लमाणमिच्छाइट्टिरासिस्स गहणादो ।

❀ मिच्छत्तस्स संकामया असंखेज्जगुणा ।

§ १८७. कुदो ? पेरइयवेदयसम्माइड्डीणसुवसमसम्माइट्टिसहिदानमिह गहणादो ।

❀ सम्मामिच्छत्तस्स संकामया विसेसाहिया ।

§ १८८. के०मेत्तेण ? सादरेयसम्मत्तसंकामयमेत्तेण ।

§ १८२. शंका—कितने अधिक हैं ?

समाधान—अन्तर्मुहूर्तमें तीन प्रकृतियोंके संक्रामकोंका जितना प्रमाण संचित हो उतने अधिक हैं ।

❀ मानसंज्वलनके संक्रामक जीव विशेष अधिक हैं ।

§ १८३. क्योंकि दो प्रकृतियोंके संक्रामकोंका जितना प्रमाण है उतना यहाँ विशेष अधिकका प्रमाण जानना चाहिये ।

❀ मायासंज्वलनके संक्रामक जीव विशेष अधिक हैं ।

§ १८४. एक प्रकृतिके संक्रामक जीवोंका जितना प्रमाण है उतने अधिक हैं ।

इस प्रकार ओघप्ररूपया समाप्त हुई ।

§ १८५. अब आदेशसे नरकगतिमें प्रकृत अल्पबहुत्वका कथन करनेके लिये आगेके प्रबन्धका निर्देश करते हैं—

❀ नरकगतिमें सम्यक्त्वके संक्रामक जीव सबसे थोड़े हैं ।

§ १८६. क्योंकि यहाँ सम्यक्त्वकी उद्धेलना करनेवाले मिथ्यादृष्टि जीवोंकी राशिका ग्रहण किया है ।

❀ मिथ्यात्वके संक्रामक जीव असंख्यातगुणे हैं ।

§ १८७. क्योंकि यहाँ उपशमसम्यग्दृष्टियोंके साथ वेदकसम्यग्दृष्टि नारकियोंका ग्रहण किया है ।

❀ सम्यग्मिथ्यात्वके संक्रामक जीव विशेष अधिक हैं ।

§ १८८. शंका—कितने अधिक हैं ?

समाधान—सम्यक्त्वके संक्रामक जीवमात्र अधिक हैं ।

⊗ अणताणुयन्त्रीणं संकामया असंखेज्जगुणा ।

§ १८०. कुदो ? इगिवांस-चउवीससंतकम्मिए मोत्तुण संमग्घणेग्दयगात्तम्म गहणादो ।

⊗ सेसाणं कम्मणं संकामया तुल्ला विसेसाहिया ।

§ १९०. इगिवांस-चउवीससंतकम्मियाणं पि एत्थ पवेग्दंगणादो । एवं णित्थोपो परुविदो । एवं तत्तु पुटवीसु वत्तव्वं ।

⊗ एवं देवगदीए ।

§ १९१. एदम्म विवरणे कंरमाणे समणत्तग्गविदो गच्छो चैव अप्पावत्तान्नापे वत्तव्वो, विसेमाभावादो । भवणादि जाव महम्मारे ति एवं चैव वत्तव्वं । आणदादि जाव णवग्गेवजा ति गच्छव्वोवा नम्म० संकाम० । अणताणु० संकाम० अमंत्ते० गुणा । मिन्त्त० संकाम० विसेसा० । नम्मामि० संकाम० विसेसा० । चाग्गक०-णवणोक्क० संकाम० विसेसा० । अणुद्दिगादि गच्छव्हा ति गच्छव्वोवा अणताणु० संकाम० । मिन्त्त०-नम्मामि० संकाम० विसेसा० । चाग्गक०-णवणोक्क० संकाम० विसे० । जेणेयं नुत्तं देसामागियं तेणेसो गच्छो वि अत्थो एत्थ णिलोणा ति दट्ठव्वो ।

\* अनन्तानुवन्धियोंके संक्रामक जीव अगंत्यातगुणे हैं ।

§ १८६. क्योंकि इकरीस और चौथीस प्रकृतिक सत्त्वधान्याने जीवोंके सिवा भेष सय नारकराशिका यदा प्रदण दिया गया है ।

\* जेप क्रमोंके संक्रामक जीव परस्पर चराचर हैं किन्तु अनन्तानुवन्धियोंके संक्रामकोंसे विशेष अधिक हैं ।

§ १९०. क्योंकि इनमें इकरीस और चौथीस प्रकृतिक सत्त्वधान्याने जीवोंका भी प्रवेश देया जाता है । इस प्रकार सामान्यसे नारकियोंमें सम्यक्त्व आदि प्रकृतियोंके लक्षणधर्मोंका अल्पबहुत्व कटा । इसी प्रकार सानों वृधियियोंमें अल्पबहुत्व पदना चाहिये ।

\* इसी प्रकार देवगतिमें अल्पबहुत्व जानना चाहिये ।

§ १९१. इस मूत्रका व्याख्यान करने पर इससे पूर्वके अल्पबहुत्वालापका पूराका पूरा कथन यहाँ पर भी करना चाहिये, क्योंकि उससे इनमें कोई विशेषता नहीं है । भरतवामियोंसे लेकर महत्कार चलनक इसी प्रकार कथन करना चाहिये । आनसमें लेकर नौ मैत्रेयककके देवोंमें सम्यक्त्वके संक्रामक जीव सबसे थोड़े हैं । इनसे अनन्तानुवन्धीचतुष्टके संक्रामक जीव अगंत्यात गुणे हैं । उनसे मिथ्यात्वके संक्रामक जीव विशेष अधिक हैं । इनसे सग्यमिथ्याचारके संक्रामक जीव विशेष अधिक हैं । इनसे वारह कपाय और नौ नोकपायोंके संक्रामक जीव विशेष अधिक हैं । अरुदिशामें लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें अनन्तानुवन्धीचतुष्टके संक्रामक जीव सबसे थोड़े हैं । इनसे मिथ्यात्व और सम्यग्मिथ्यात्वके संक्रामक जीव विशेष अधिक हैं । इनसे वारह कपाय और नौ नोकपायोंके संक्रामक जीव विशेष अधिक हैं । यतः 'एवं देवगदीए' यह मूत्र देशामर्षेय है अतः यह पूराका पूरा अर्थ इस सूत्रमें गभित है ऐसा जानना चाहिये । अथ तिर्यचगतिमें



संपहि तिरिक्खगदीए अप्पावहुअपरुवणहुमाह ।

✽ तिरिक्खगईए सव्वत्थोवा सम्मत्तस्स संकामया ।

§ १९२. सुगमं ।

✽ मिच्छत्तस्स संकामया असंखेज्जगुणा ।

§ १९३. एत्थ वि कारणमोवसिद्धं ।

✽ सम्मामिच्छत्तस्स संकामया विसेसाहिया ।

§ १९४. केत्तियमेत्ते ण ? सादिरेयसम्मत्तसंकामयमेत्ते ण ।

✽ अणंताणुवंधीणं संकामया अणंतगुणा ।

§ १९५. कुदो ? किंचूणतिरिक्खरासिस्स गहणादो ।

✽ सेसाणं कम्माणं संकामया तुल्ला विसेसाहिया ।

§ १९६. तिरिक्खरासिस्स सव्वस्स चेव गहणादो ।

✽ पंचिदियतिरिक्खत्तिए णारयभंगो ।

§ १९७. पंचिदियतिरिक्ख०-मणुसअपज्जत्तएसु सव्वत्थोवा सम्मत्तसंकामया ।

सम्मामिच्छत्तसंकामया विसेसाहिया । सोलसक०-णवणोक्र० संका० असंखे०गुणा ।

सुत्ते अवुत्तमेदं कधं उच्चदे ? ण, सुत्तस्स सूचणामेत्ते वावारादो ।

अल्पबहुत्वका कथन करनेके लिये आगेके सूत्र कहते हैं—

✽ तिर्यं च गतिमें सम्यक्त्वके संक्रामक जीव सबसे थोड़े हैं ।

§ १६२. यह सूत्र सुगम है ।

✽ मिथ्यात्वके संक्रामक जीव असंख्यातगुणे हैं ।

§ १६३. असंख्यातगुणेका जो कारण ओच प्ररूपणाके समय कहा है वही यहाँ भी जानना चाहिये ।

✽ सम्यग्मिथ्यात्वके संक्रामक जीव विशेष अधिक हैं ।

§ १६४. शंका—कितने अधिक हैं ?

समाधान—सम्यक्त्वके संक्रामक जीवमात्र अधिक हैं ।

✽ अनन्तानुबन्धियोंके संक्रामक जीव अनन्तागुणे हैं ।

§ १६५. क्योंकि यहाँ कुलकम तिर्यं च राशिका ग्रहण किया है ।

✽ शेष कर्मोंके संक्रामक जीव परस्परमें तुल्य हैं तथापि अनन्तानुबन्धियोंके संक्रामकोंसे विशेष अधिक हैं ।

§ १९६. क्योंकि यहाँ पूरी तिर्यं चराशिका ग्रहण किया है ।

✽ पंचेन्द्रिय तिर्यंचत्रिकमें अल्पबहुत्व नारकियोंके समान है ।

§ १६७. पंचेन्द्रियतिर्यं च अपर्याप्त और मनुष्य अपर्याप्त जीवोंमें सम्यक्त्वके संक्रामक जीव सबसे थोड़े हैं । सम्यग्मिथ्यात्वके संक्रामक जीव विशेष अधिक हैं । सोलह कपाय और नौ नोकपायोंके संक्रामक जीव असंख्यातगुणे हैं ।

⊗ मणुसगईए सञ्चत्वोवा मिच्छत्तस्स संकामया ।

§ १९८. सम्माइड्डिरासिपमाणत्तादो ।

⊗ सम्मत्तस्स संकामया असंखेज्जगुणा ।

§ १९९. कारणमुच्चेल्लमाणो पल्लिदोवमाणंखेज्जदिभागमेचो मिच्छाइड्डिरासी गहिदो ति ।

⊗ सम्मामिच्छत्तस्स संकामया विसेसाहिया ।

§ २००. किं कारणं ? अणंतरपरुविदपल्लिदोवमासंखे०भागमेत्तुच्चेल्लणरासी सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणं सरिओ लञ्भइ । पुणो सम्मत्ते उच्चेल्लिदे संते सम्मामिच्छत्तं उच्चेल्लमाणो पल्लिदो०असंखे०भागमेचो मिच्छाइड्डिरासी संखेज्जो सम्माइड्डिरासी च सम्मामिच्छत्तस्स लञ्भइ । एदं कारणेण विसेसाहियत्तं जादं ।

⊗ अणंताणुवंधीणं संकामया असंखेज्जगुणा ।

§ २०१. कुदो ? मणुमिच्छाइड्डिरासिस्स पहाणत्तादो ।

⊗ सेसाणं कम्माणं संकामया ओघो ।

§ २०२. कुदो ? ओघालावं पडि विसेसाभावादो । तदो ओघालावो गिरवसेसमेत्थ

शंका—यह अल्पबहुत्व सूत्रमें नहीं कडा गया है फिर यहाँ क्यों बतलाया जा रहा है ?

समाधान—नहीं क्योंकि सूत्रका भाग सूचना बरजामात्र है ।

\* मनुष्यवृत्तिमें मिथ्यात्वके संक्रामक जीव मवसे थोड़े हैं ।

§ १९८. क्योंकि रथूलएपसे ये मनुष्य सम्यग्दृष्टियोंका जितना प्रमाण है उतने हैं ।

\* सम्यक्त्वके संक्रामक जीव असंख्यातगुणे हैं ।

§ १९९. क्योंकि यहाँ उद्वेलना करनेवाले पत्थके असंख्यातवें भागप्रमाण मिथ्यादृष्टि जीवोंकी राशिका ग्रहण किया है ।

\* सम्यग्मिथ्यात्वके संक्रामक जीव विशेष अधिक हैं ।

§ २००. क्योंकि समनन्तर पूर्व जो पत्थके असंख्यातवें भागप्रमाण जीवराशि कही है वह सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व इन दोनोंके संक्रमकी अपेक्षा समान है किन्तु सम्यक्त्वकी उद्वेलना कर लेनेके बाद पत्थके असंख्यातवें भागप्रमाण ऐसी मिथ्यादृष्टि राशि है जो केवल सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वेलना करती है तथा ऐसे संख्यात सम्यग्दृष्टि जीव भी हैं जो केवल सम्यग्मिथ्यात्वका संक्रम करते हैं, इस कारणसे सम्यक्त्वके संक्रामकोंसे सम्यग्मिथ्यात्वके संक्रामक मनुष्य विशेष अधिक हो जाते हैं ।

\* अनन्तानुबन्धियोंके संक्रामक जीव असंख्यातगुणे हैं ।

§ २०१. क्योंकि यहाँ मनुष्य मिथ्यादृष्टिराशिकी प्रधानता है ।

\* शेष क्रमोंके संक्रामकोंका अल्पबहुत्व ओघके समान है ।

§ २०२. क्योंकि ओघप्ररूपपासे इसमें कोई विशेषता नहीं है, इसलिये पूरेके पूरे ओघ-

कायव्वो । एवं मणुसपज्जत्ता । णवरि जम्हि असंखेज्जगुणं तम्हि संखेज्जगुणं कायव्वं । एवं चेव मणुसिणीसु वि वत्तव्वं । णवरि छण्णोकसाय-पुरिसवेदसंकामया सरिसा कायव्वा ।

एवं गइमग्गणा समत्ता ।

§ २०३. संपहि सेसमग्गणाणं देसामासियभावेणिंदियमग्गणावयवभूदेइदिएसु पयदप्पावहुअपरुवणं कुणमाणो सुत्तमुत्तरं भणइ—

⊗ एइदिपसु सव्वत्थोवा सम्मत्तस्स संकामया ।

§ २०४. सुगमं ।

⊗ सम्मामिच्छत्तस्स संकामया विसेसाहिया ।

§ २०५. सम्मत्तुव्वेल्लणकालादो सम्मामिच्छत्तुव्वेल्लणकालस्स विसेसाहियत्तादो ।

⊗ सेसाणं कम्मणं संकामया तुल्ला अणंतगुणा ।

§ २०६. कुदो ? एइदियरासिस्स सव्वस्सेव गहणादो । एवं जाव अणाहारि त्ति ।

एवमेगपयडिसंकमो समत्तो ।

प्ररूपणाको यहाँ कहना चाहिये । मनुष्य पर्याप्तकोंमें इसी प्रकार अल्पबहुत्व कहना चाहिये, किन्तु इतनी विशेषता है कि जहाँ असंख्यातगुणा कहा है वहाँ संख्यातगुणा कहना चाहिये । मनुष्यनियोगे भी इसी प्रकार कथन करना चाहिये, किन्तु इतनी विशेषता है कि यहाँ छह नोकपाय और पुरुषवेदके संक्रामक जीव एक समान बतलाना चाहिये ।

इस प्रकार गतिमार्गणा समाप्त हुई ।

§ २०३. अब शेष मार्गणाओंके देशामर्पकरूपसे इन्द्रिय मार्गणाके एक भेद एकेन्द्रियोंमें प्रकृत अल्पबहुत्वका कथन करते हुए आगेका सूत्र कहते हैं—

⊗ एकेन्द्रियोंमें सम्यक्त्वके संक्रामक जीव सबसे थोड़े हैं ।

§ २०४. यह सूत्र सुगम है ।

⊗ सम्यग्मिथ्यात्वके संक्रामक जीव विशेष अधिक हैं ।

§ २०५. क्योंकि सम्यक्त्वके उद्वेलना कालसे सम्यग्मिथ्यात्वका उद्वेलना काल विशेष अधिक है ।

⊗ शेष कर्मोंके संक्रामक जीव परस्परमें तुल्य हैं, तथापि सम्यग्मिथ्यात्वके संक्रामकोंसे अनन्तगुणे हैं ।

§ २०६. क्योंकि यहाँ पर समस्त एकेन्द्रिय जीवराशिका ग्रहण किया है । इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिये ।

इस प्रकार एकैकप्रकृतिसंक्रम अधिकार समाप्त हुआ ।

❀ एत्तो पयडिङ्गाणसंकमो ।

§ २०७. एत्तो उवरि पयडिङ्गाणसंकमो सप्पडिवक्खो सगंतोभाविदपयडिङ्गाण-  
पडिग्गहापडिग्गहो परूवेयव्वो त्ति भणिदं होइ ।

❀ तत्थ पुब्बं गमणिज्जा रुत्तसमुत्तिना ।

§ २०८. तम्मि पयडिङ्गाणसंकमे परूविज्जमाणे पुब्बमेव तत्थ ताव पडिङ्गाणं  
गाहासुत्ताणं समुत्तिना कायच्चा त्ति वुत्तं होइ ।

❀ तं जहा ।

§ २०९. सुगममेदं गाहासुत्तावयारावेक्खं पुच्छावकं ।

अट्ठावीस त्रउवीस सत्तरस सोलसेव पराणरसा ।

एदे खलु मोत्तणं सेसाणं संकमो होइ' ॥ २७ ॥

सोलसग वारसट्ठगं वीसं वीसं तिगादिगधिगा य ।

एदे खलु मोत्तणं सेसाणि पडिग्गहा होंति' ॥ २८ ॥

छव्वीस सत्तवीसा य संकमो णियम च्दुसु डाणेसु ।

वावीस पराणरसगे एक्कारस ऊणवीसाए' ॥ २९ ॥

\* अब इससे आगे प्रकृतिस्थानसंक्रमका अधिकार है ।

§ २०७. अब इससे आगे जिसमें प्रकृतिस्थानप्रतिग्रह और प्रकृतिस्थान-अप्रतिग्रहका कथन था जाता है ऐसे प्रकृतिस्थानसंक्रमका अपने प्रतिपक्षके साथ कथन करते हैं यह उक्त कथनका तात्पर्य है ।

\* उसमें सर्व प्रथम गाथासूत्रोंकी समुत्कीर्तना जाननी चाहिये ।

§ २०८. इस प्रकृतिस्थानसंक्रमका कथन करते समय सर्व प्रथम प्रकृतिस्थानसे सम्बन्ध रखनेवाले गाथासूत्रोंकी समुत्कीर्तना करनी चाहिये यह उक्त सूत्रका तात्पर्य है ।

\* यथा—

§ २०९ गाथासूत्रोंके श्रवणतारकी अपेक्षा रखनेवाला यह पुच्छासूत्र सुगम है ।

अट्ठाईस, चौबीस, सत्रह, सोलह और पन्द्रह इन पाँच स्थानोंके सिवा शेष तेईस स्थानोंका संक्रम होता है ॥२७॥

सोलह, वारह, आठ, वीस और तीन अधिक आदि वीस अर्थात् तेईस, चौबीस, पचीस, छव्वीस, सत्ताईस और अट्ठाईस इन दस स्थानोंके सिवा शेष अठारह प्रतिग्रह-स्थान होते हैं ॥२८॥

छव्वीस और सत्ताईस संक्रमस्थानोंका वार्डस, पन्द्रह, ग्यारह और उन्नीस इन चार प्रतिग्रहस्थानोंमें नियमसे संक्रम होता है । ॥२९॥

१. कर्मप्रकृति संक्रम गा० १० । २. कर्मप्रकृति संक्रम गा० ११ । ३. कर्मप्रकृति संक्रम गा० १२ ।

सत्तारसेगवीसासु संकमो णियम पंचवीसाए ।  
 'णियमा चदुसु गदीसु य णियमा दिट्ठीगए तिविहे' ॥३०॥  
 वावीस पणएसगे सत्तग एककारसूणवीसाए ।  
 तेवीस संकमो पुण पंचसु पंचिदिएसु हवे ॥ ३१ ॥  
 चोहसग दसग सत्तग अट्टारसगे च णियम वावीसा ।  
 णियमा मणुसगईए विरदे मिस्से अविरदे य ॥३२॥  
 तेससय णवय सत्तय सत्तासस पणय एकवीसाए ।  
 एगाधिगाए वीसाए संकमो छप्पि सम्मत्ते ॥ ३३ ॥  
 एत्तो अवसेसा संजमहि उवसामगे च खवगे च ।  
 वीसा य संकम दुगे छक्के पणए च बोद्धव्वा ॥ ३४ ॥

पचीसप्रकृतिक संक्रमस्थानका सत्रह और इक्कीस इन दो प्रतिग्रहस्थानोंमें नियम-  
 से संक्रम होता है । यह संक्रमस्थान चारों गतियोंमें तथा दृष्टिगत अर्थात् मिथ्यादृष्टि,  
 सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि इन तीन गुणस्थानोंमें नियमसे होता  
 है ॥३०॥

तेईसप्रकृतिक संक्रमस्थानका बाईस, पन्द्रह, सात, ग्यारह और उन्नीस इन पाँच  
 प्रतिग्रहस्थानोंमें संक्रम होता है । यह संक्रमस्थान संज्ञी पंचेन्द्रियोंमें ही पाया जाता  
 है ॥३१॥

बाईसप्रकृतिक संक्रमस्थानका चौदह, दस, सात, और अठारह इन चार प्रति-  
 ग्रहस्थानोंमें नियमसे संक्रम होता है । यह संक्रमस्थान मनुष्यगतिके रहते हुए विरत,  
 विरताविरत और अविरतसम्यग्दृष्टि इन तीन गुणस्थानोंमें ही पाया जाता है ॥३२॥

इक्कीसप्रकृतिक संक्रमस्थानका तेरह, नौ, सात, सत्रह, पाँच और इक्कीस इन  
 छह प्रतिग्रहस्थानोंमें संक्रम होता है । ये छहों प्रतिग्रहस्थान सम्यक्त्व अवस्थामें ही  
 पाये जाते हैं ॥३३॥

इससे आगेके वाकीके बचे हुए बीस आदि सब संक्रमस्थान और छह आदि सब  
 प्रतिग्रहस्थान संयमयुक्त उपशमश्रेणि और क्षपकश्रेणिमें ही होते हैं । यथा—बीस  
 प्रकृतिक संक्रमस्थानका छह और पाँच इन दो प्रतिग्रहस्थानोंमें संक्रम जानना  
 चाहिए ॥३४॥

१. कर्मप्रकृति संक्रम गा० १३ । २. कर्मप्रकृति संक्रम गा० १४ । ३. कर्मप्रकृति संक्रम  
 गा० १५ । ४. कर्मप्रकृति संक्रम गा० १६ । ५. कर्मप्रकृति संक्रम गा० १७ ।

पंचसु च ऊणवीसा अट्टारस चदुसु होंति वोद्धव्वा ।  
 चोदस ङसु पयडीसु य तेरसयं छक्क-पणगमिहि ॥३५॥  
 पंच-चउक्के वारस एक्कारस पंचगे तिग चउक्के ।  
 दसगं चउक्क-पणगे णवगं च तिगमिहि वोद्धव्वा ॥३६॥  
 अट्ट दुग तिग चउक्के सत्त चउक्के तिगे च वोद्धव्वा ।  
 छक्कं दुगमिहि णियमा पंच तिगे एक्कग दुगे वा ॥३७॥  
 चत्तारि तिग चदुक्के तिणिण तिगे एक्कगे च वोद्धव्वा ।  
 दो दुसु एगाए वा एगा एगाए वोद्धव्वा ॥३८॥

उन्नीसप्रकृतिक संक्रमस्थानका पांच प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थानमें, अटारहप्रकृतिक संक्रमस्थानका चारप्रकृतिक प्रतिग्रहस्थानमें, चौदहप्रकृतिक संक्रमस्थानका छह प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थानमें और तेरहप्रकृतिक संक्रमस्थानका छह और पांच प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थानोंमें संक्रम होता है ऐसा जानना चाहिये ॥३५॥

बारहप्रकृतिक संक्रमस्थानका पांच और चार प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थानोंमें, ग्यारह प्रकृतिक संक्रमस्थानका पांच, तीन और चार प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थानोंमें, दसप्रकृतिक संक्रमस्थानका चार और पाँच प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थानोंमें तथा नौप्रकृतिक संक्रमस्थानका तीनप्रकृतिक प्रतिग्रहस्थानमें संक्रम होता है ऐसा जानना चाहिये ॥३६॥

आठप्रकृतिक संक्रमस्थानका दो, तीन और चारप्रकृतिक प्रतिग्रहस्थानोंमें, सातप्रकृतिक संक्रमस्थानका चार और तीन प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थानोंमें, छहप्रकृतिक संक्रमस्थानका नियमसे दोप्रकृतिक प्रतिग्रहस्थानमें तथा पाँचप्रकृतिक संक्रमस्थानका तीन, एक और दो प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थानोंमें संक्रम होता है ऐसा जानना चाहिये ॥३७॥

चारप्रकृतिक संक्रमस्थानका तीन और चार प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थानोंमें, तीन प्रकृतिक संक्रमस्थानका तीन और एक प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थानोंमें, दोप्रकृतिक संक्रमस्थानका दो और एक प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थानोंमें तथा एकप्रकृतिक संक्रमस्थानका एकप्रकृतिक प्रतिग्रहस्थानमें संक्रम होता है ऐसा जानना चाहिये ॥३८॥

१. कर्मप्रकृति सक्रम गा० १८ । २. कर्मप्रकृति सक्रम गा० १९ । ३. कर्मप्रकृति संक्रम गा० २० । ४. कर्मप्रकृति सक्रम गा० २१ ।

अणुपुव्वमणणुपुव्वं शीणमशीणं च दंसणे मोहे ।  
 उवसामगे च खवगे च संकमे मग्गणोवायां ॥३६॥  
 एक्केक्कमिह य द्वाणे पडिग्गहे संकमे तदुभए च ।  
 भविया वाऽभविया वा जीवा वा केसु ठाणेषु ॥४०॥  
 कदि कमिह होंति ठाणा पंचविहे भावविधिविसेसमिह ।  
 संकमपडिग्गहो वा समाणणा वाध केवचिरं ॥४१॥  
 णिरयगइ-अमर-पंचिंदिएसु पंचेव संकमद्वाणा ।  
 सव्वे मणुसगईए सेसेसु तिगं असगणीसु ॥४२॥  
 चदुर दुगं तेवीसा मिच्छत्ते मिस्सग्गे य सम्भत्ते ।  
 वावीस पणय छक्कं विरदे मिस्से अविरदे य ॥४३॥  
 तेवीस सुक्कलेस्से छक्कं पुण तेउ-पम्मलेस्सासु ।  
 पणयं पुण काऊए णीलाए किग्गहलेस्साए ॥४४॥

अनुपूर्वीसंक्रमस्थान, अनानुपूर्वीसंक्रमस्थान, दर्शनमोहनीयके क्षयसे प्राप्त हुए संक्रमस्थान, दर्शनमोहनीयके क्षयके विना प्राप्त हुए संक्रमस्थान, उपशामकके प्राप्त हुए संक्रमस्थान और क्षपकके प्राप्त हुए संक्रमस्थान इस प्रकार ये संक्रमस्थानोंके विषयमें गवेषणा करनेके उपाय हैं ॥३९॥

प्रतिग्रह, संक्रम और तदुभयरूप एक एक स्थानमेंसे कितने स्थानोंमें भव्य जीव होते हैं, कितने स्थानोंमें अभव्य जीव होते हैं और कितने स्थानोंमें अन्य मार्गणावाले जीव होते हैं ॥४०॥

यथायोग्य पाँच प्रकारके भावोंसे युक्त चौदह गुणस्थानोंमेंसे किस गुणस्थानमें कितने संक्रमस्थान और कितने प्रतिग्रहस्थान होते हैं। तथा किसका कितना काल है ॥४१॥

नरकगति, देवगति और पंचेन्द्रिय तिर्यचोंमें पाँच, मनुष्यगतिमें सब तथा शेषमें अर्थात् एकेन्द्रियों और विकलत्रयोंमें तथा असंज्ञियोंमें तीन संक्रमस्थान होते हैं ॥४२॥

मिथ्यात्वमें चार, सम्यग्मिथ्यात्वमें दो, सम्यक्त्वमें तेईस, विरतमें बाईस, विरताविरतमें पाँच और अविरतमें छह संक्रमस्थान होते हैं ॥४३॥

शुक्ललेश्यामें तेईस, पीत और पद्मलेश्यामें छह तथा कापोत नील और कृष्ण लेश्यामें पाँच संक्रमस्थान होते हैं ॥४४॥

अवगयवेद-एवुंसय-इत्थी-पुरिसेसु चाणुपुव्वीए ।  
 अट्टारसयं एवयं एककारसयं च तेरसया ॥४५॥  
 कोहादी उवजोगे चट्टुसु कसाएसु चाणुपुव्वीए ।  
 सोलस य ऊणवीसा तेवीसा चैव तेवीसा ॥४६॥  
 णाणम्हि य तेवीसा तिविहे एककम्हि एककवीसा य ।  
 अण्णाणम्हि य तिविहे पंचेव य संकमट्टाणा ॥४७॥  
 आहारय-भविएसु य तेवीसं होंति संकमट्टाणा ।  
 अणाहारएसु पंच य एककं ट्टाणं अभविएसु ॥४८॥  
 छ्वीस सत्तवीसा तेवीसा पंचवीस वावीसा ।  
 एदे सुण्णट्टाणा अवगदवेदस्स जीवस्स ॥४९॥  
 उगुवीसट्टारसयं चोदस एककारसादिया सेसा ।  
 एदे सुण्णट्टाणा णवुंसए चोदसा हांति ॥५०॥  
 अट्टारस चोदसयं ट्टाणा सेसा य दसगमादीया ।  
 एदे सुण्णट्टाणा वारस इत्थीसु वोद्धव्वा ॥५१॥

अपगतवेद, नपुंसकवेद, स्त्रीवेद और पुरुषवेदमें क्रमसे अठारह, नौ ग्यारह और तेरह संक्रमस्थान होते हैं ॥४५॥

क्रोधादि चार कषायोंमें क्रमसे सोलह, उन्नीस, तेईस और तेईस संक्रमस्थान होते हैं ॥४६॥

मति आदि तीन प्रकारके ज्ञानोंमें तेईस, एक मनःपर्ययज्ञानमें इक्कीस और तीनों प्रकारके अज्ञानोंमें पाँच ही संक्रमस्थान होते हैं ॥४७॥

आहारक और भव्य जीवोंमें तेईस, अनाहारकोंमें पाँच और अभव्योंमें एक ही संक्रमस्थान होता है ॥४८॥

अपगतवेदी जीवोंमें छत्रीस, सत्ताईस, तेईस, पच्चीस और वारईस ये पाँच संक्रमस्थान नहीं होते ॥४९॥

नपुंसकवेदमें उन्नीस, अठारह, चौदह और ग्यारह आदि शेष सब स्थान अर्थात् कुल मिलाकर चौदह संक्रमस्थान नहीं होते ॥५०॥

स्त्रियोंमें अर्थात् स्त्रीवेदवाले जीवोंमें अठारह और चौदह तथा दस आदि शेष सब स्थान इस प्रकार ये बारह संक्रमस्थान नहीं होते ॥५१॥



चोदसगणवगमादी हवंति उवसामगे च खवगे च ।  
 एदे सुरणद्व्याणा दस वि य पुरिसेसु बोद्धवा ॥५२॥  
 णव अद्व सत्त छक्कं पणग दुगं एककयं च बोद्धवा ।  
 एदे सुरणद्व्याणा पढमकसायोवजुत्तेसु ॥५३॥  
 सत्त य छक्कं पणगं च एककयं च वेव आणुपुब्बीए ।  
 एदे सुरणद्व्याणा विदियकसाओवजुत्तेसु ॥५४॥  
 दिडे सुण्णासुण्णे वेदकसाएसु च वेव द्वाणसु ।  
 मग्गणगवेसणाए दु संकमो आणुपुब्बीए ॥५५॥  
 कम्मंसियद्व्याणेषु य बंधद्व्याणेषु सकमद्व्याणे ।  
 एककेक्केण समाणय बंधेण य संकमद्व्याणे ॥५६॥  
 सादि य जहण्ण संकम कदिखुत्तो होइ ताव एककेक्के ।  
 अविरहिद सांतरं केवचिरं कदिभाग परिमाणं ॥५७॥  
 एवं दव्वे खेत्ते काले भावे य सण्णिवादे य ।  
 संकमणयं णयविदू णेया सुददेसिदमुदारं ॥५८॥

पुरुषोंमें उपनामक और क्षपकसे सम्बन्ध रखनेवाले चौदह और नौ आदि शेष सब स्थान इस प्रकार ये दस संक्रमस्थान नहीं होते ॥५२॥

प्रथम क्रोधकपायसे युक्त जीवोंमें नौ, आठ, सात, छह, पाँच, दो और एक ये सात संक्रमस्थान नहीं होते ॥५३॥

दूसरे मानकपायसे उपयुक्त जीवोंमें क्रमसे सात, छह, पाँच और एक ये चार संक्रमस्थान नहीं होते ॥५४॥

इस प्रकार वेद और कपाय मार्गणामें कितने संक्रमस्थान हैं और कितने नहीं हैं इसका विचार कर लेनेपर इसी प्रकार गति आदि शेष मार्गणाओंमें भी यत्रतत्रानुपूर्वीके क्रमसे इनका विचार करना चाहिये ॥५५॥

मोहनीयके सत्कर्मस्थानोंमें और बन्धस्थानोंमें संक्रमस्थानोंका विचार करते समय एक एक बन्धस्थान और मत्कर्मस्थानके साथ आनुपूर्वीसे संक्रमस्थानोंका विचार करना चाहिये ॥५६॥

सादि, जयन्थ, अन्यत्रहुत्त्व, एक जीवकी अपेक्षा काल, एक जीवकी अपेक्षा अन्तर और भागाभाग तथा इसी प्रकार नाना जीवोंकी अपेक्षा भंगविचय, द्रव्य-

६ २१०. एवमेदाओ वत्तीम सुत्तगाहाओ' पयडिड्डाणसंकमे पडिवट्ठाओ ति उच्चं होइ । एत्थ पढसगाहाए ठाणसमुक्कित्तणा मंगतोभावियपयडिड्डाणसंकमासंकमपडिवट्ठा । विदियगाहाए वि पयडिड्डाणपडिग्गहो तदपडिग्गहो च पडिवट्ठो । पुणो तदणंतरोवरिस-दसगाहाओ एदस्सेदस्स पयडिड्डाणसंकमस्स एत्तियाणि एत्तियाणि पडिग्गहट्टाणाणि हांति ति एवंविहस्स अत्थविसेसस्स सामित्तसहगयस्स परुवणट्टमोदिण्णाओ । पुणो अणुपुव्वमणणुपुव्वमिच्चेदीए तेरसमीए गाहाए पयडिगंकमट्टाणाणं दंसण-चरित्तमोहक्खव-णोवसामणादिविसयविसेसमस्सिदृण समुप्पत्तिकमपरुवणट्टमाणुपुव्विगंकमादिअट्टपदाणि सूचिदाणि । तदणंतरोवरिमगाहा वि गंकमपडिग्गह-तदुभयट्टाणाणं भग्गणट्टदाए गदियादि-चोहसभग्गणट्टाणाणि देसामामियभावेण सूचेदि । तत्तो अणंतरोवरिमगाहासुत्तपुव्वद्व पयदमंकमट्टाणाणमाधारभूदाणि गुणट्टाणाणि सूचिदाणि, तेहि विणा सामित्तपरुवणो-चायाभावादो । पच्छिमट्ठे वि सामित्ताणंतरपरुवणाजोगं कालाणिओगहारं सेसाणिओग-द्वाराणं देसामासियभावेण सूचिदमिदि घेत्तव्वं । पुणो एत्तो उवरिमसत्तगाहासुत्तेहि' गदियादिचोहसभग्गणट्टाणेसु जत्थतत्थाणुपुव्वीए गंकमट्टाणाणं भग्गणा कीरदे । पुणो

प्रमाणानुगम, क्षेत्रानुगम, स्पर्शनानुगम, नाना जीवोंकी अपेक्षा काल, नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर, भाव और गन्निकर्ष इन अनुयोगद्वारोंके आश्रयसे नयके जानकार पुरुष प्रकृतिमंकमविषयक उक्त गाथाओंके उदार अर्थको मूल श्रुतके अनुसार जानें ॥५७-५८॥

§ २१०. इस प्रकार प्रकृतिस्थानसंकमसे सम्बन्ध रखनेवाली ये वत्तीस सूत्रगाथाएँ हैं यह उक्त कथनका तात्पर्य है । इनमेंसे पहली गायामें स्थानोंका निर्देश किया है । उसमें बतलाया है कि कितने प्रकृतिस्थानसंकम हैं और कितने प्रकृतिस्थान असंकम हैं । दूसरी गायामें प्रकृतिस्थान-प्रतिग्रह कितने हैं और प्रकृतिस्थानअप्रतिग्रह कितने हैं यह बतलाया है । फिर इन दो गायामेंके बादकी दस गाथाएँ इस उस प्रकृतिस्थानसंकमके ये ये प्रतिग्रहस्थान होते हैं इस तरहके अर्धविशेष का कथन करनेके लिये आई हैं । साथ ही इनमें अपने अपने स्थानके स्वामीका भी निर्देश किया है । फिर अणुपुव्वमणणुपुव्वं' इत्यादि तेरहवीं गाथा द्वारा दर्शनमोहनीय और चारित्रमोहनीयकी चपट्टा और व्यशमना आदि विषयक विशेषताका आश्रय लेकर प्रकृतिसंकमस्थानोंके उत्पत्तिका क्रम दिखलानेके लिये 'आनुपूर्वीसंकम आदि' आठ स्थान सूचित किये गये हैं । फिर इससे अगली गाथा भी संक्रमस्थान, प्रतिग्रहस्थान और तदुभयस्थान इनकी गवेषणा करनेके लिये देशामर्परूपसे गति आदि चौदह मार्गस्थानोंको सूचित करती है । फिर इससे आगेकी गायामेंके पूर्वार्धमें प्रकृतसंकमस्थानोंके आधारभूत गुणस्थानोंका संकेत किया है, क्योंकि इनका निर्देश किये बिना स्वामित्वका कथन नहीं किया जा सकता है । फिर इसी गायामेंके उत्तरार्धमें स्वामित्वके बाद कथन करने योग्य कालानुयोगद्वारोंका ग्रहण किया है जिससे कि देशामर्परूपसे शेष अनुयोगद्वारोंका सूचन होता है । फिर इससे आगेकी सात गाथाओं द्वारा गति आदि चौदह मार्गस्थानोंमें यत्रतत्रानुपूर्वीके क्रमसे संक्रमस्थानोंका विचार किया गया है । फिर भी इससे आगेकी सात गाथाएँ

१. ता० प्रती वत्तीसगाहाओ इति पाठः । २. ता० प्रती सुत्तगासु तेरि इति पाठः ।

वि उत्रिमिसत्तगाहाओ मग्गणाविसेसे अस्सिऊण सुण्णट्ठाणाणि परूवेति । किं सुण्णट्ठाणं पाम ? जत्थ जं संतकम्मट्ठाणं ण संभवइ तत्थ तस्स सुण्णट्ठाणवत्तएओ । तदपंतरो-  
वरिमाए पुण गाहाए बंध-संकम-संतकम्मट्ठाणाणमण्णोणसण्णियासविहाणं सूचिदं ।  
अवसेसदोगाहाओ गुणट्ठाणसंबंधेण पुव्वपरुविदाणमणिओगदाराणं गुणट्ठाणविवक्खाए  
विणा मग्गणट्ठाणसंबंधेण विसेसेयूणं परूवणट्ठमागदाओ ति णिच्छओ कायओ ।  
एवमेओ गाहासुत्ताणं समुदायत्थो परूविदो । अवयवत्थविवरणं पुण पुरदो वत्तइस्सामो ।

§ २११. संधि सुत्तसमुक्कित्ताणंतंरं तदत्थविवरणं कुणमाणा सुण्णिसुत्तधरो  
सुत्तसुचिदाणमणियोगदाराणं परूवणट्ठमुत्तरसुत्तं भणइ—

❀ सुत्तसमुक्कित्ताए समत्ताए इमे अणियोगदारा ।

§ २१२. गाहासुत्तसमुक्कित्ताणंतंरमेदाणि अणियोगदाराणि पयड्ढिट्ठाणसंकम-  
विसयाणि णादव्वाणि ति भणिदं होइ ।

❀ तं जहा ।

§ २१३. सुगमं ।

❀ ठाणसमुक्कित्ता सव्वसंकमो णोसव्वसंकमो उक्कत्तससंकमो

मार्गणाविशेषोंकी अपेक्षा शून्यस्थानोंका कथन करती हैं ।

शंका—शून्यस्थान किसे कहते हैं ?

समाधान—जहाँ जो सत्कर्मस्थान सम्भव नहीं हैं, वहाँ वह शून्यस्थान कहलाता है ।

फिर इससे आगेकी गायामें बन्धस्थान, संक्रमस्थान और सत्कर्मस्थान इनके परस्परमें सन्निकर्षकी विधि सूचित की गई है । अब रहीं शेष दो गाथाएँ सो वे जिन अनुयोगद्वारोंका गुणस्थानोंके सम्बन्धसे पहले कथन कर आये हैं उनका गुणस्थानोंकी विवेक्षा किये बिना मार्गणाओंके सम्बन्धसे विशेष कथन करनेके लिये आई हैं ऐसा निश्चय करना चाहिये । इस प्रकार यह गाथासूत्रोंका समुच्चयार्थ है जिसका कथन किया । किन्तु उनके प्रत्येक पदका अर्थ आगे कहेंगे ।

§ २११. अब गाथा सूत्रोंकी समुत्कीर्तना करनेके बाद उनके अर्थका विवरण करते हुए चूर्णि-  
सूत्रकार गाथासूत्रोंसे सूचित होनेवाले अनुयोगद्वारोंका कथन करनेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

❀ गाथासूत्रोंकी समुत्कीर्तना करनेके बाद ये अनुयोगद्वार ज्ञातव्य हैं ।

§ २१२. गाथासूत्रोंकी समुत्कीर्तना करनेके बाद प्रकृतस्थानसंकमसे सम्बन्ध रखनेवाले ये  
अनुयोगद्वार ज्ञातव्य हैं यह उक्त सूत्रका तात्पर्य है ।

❀ यथा—

§ २१३. यह सूत्र सुगम है ।

❀ स्थानसमुत्कीर्तना, सर्वसंकम, नोसर्वसंकम, उत्कृष्ट संक्रम, अनुत्कृष्ट संक्रम,

१. आ०प्रती विज्ञेने पुप इति पाठः ।

अणुक्लृप्तसंक्रमो जहणसंक्रमो अजहणसंक्रमो सादियसंक्रमो अणादिय-  
संक्रमो धुवसंक्रमो अद्धुवसंक्रमो एगजीवेण सामित्तं कालो अंतरं एणा-  
जीवेहि भंगविचओ कालो अंतरं सणियासो अप्पावहुअं भुजगारो  
पदणिकखेवो' वड्ढि ति ।

§ २१४. एत्थ द्वाणसमुक्तिनादीणि वट्ठिपज्जंताणि अणियोगद्वाराणि णादच्चाणि  
भवन्ति ति सुत्तथसंवेधो । तत्थ समुक्तिनादीणि अप्पावहुअपज्वसाणाणि चउवीस-  
अणियोगद्वाराणि, भागाभाग-परिमाण-खेत्त-पोयण-भावणुगमाणमेत्थ देसामासयभावेण  
संगहियत्तादो । एवमेद्वाराणि चउवीसमणियोगद्वाराणि सामण्येण सुत्ते परुविदाणि ।  
एदेषु सव्व-णोससव्व-उक्कसाणुक्क-स-जहण्णाजहणणमंक्रममा सणियासो च एत्थ ण  
संभवन्ति, पयड्ढिद्वारणमंक्रमे णिरुद्धे तस्सि संभवाणुवलंभादो । तदो सेससत्तारसअणियोग-  
द्वाराणि एत्थ गहियच्चाणि । पुणो एदेहिंते पुयभूदाणि भुजगारादीणि तिण्णि  
अणियोगद्वाराणि सुत्तणित्ठिद्वाराणि घेत्तच्चाणि । संपहि एवं परुविदसच्चाणियोगद्वारोहि  
गाहासुत्तथविहासणं कुणमाणो चुण्णिमुत्तयागे तत्थ ताव द्वाणसमुक्तिनापरुचणट्ट-  
मुचरिमपवंघमाह ।

✽ द्वाणसमुक्तिना ति जं पदं तस्स विहासा जत्थ एया गाहा ।

जघन्यसंक्रम, अजघन्यसंक्रम, सादिसंक्रम, अनादिसंक्रम, धुवसंक्रम, अधुवसंक्रम, एक  
जीवकी अपेक्षा स्वामित्व, काल और अन्तर, नाना जीवोंकी अपेक्षा भंगविचय, काल,  
अन्तर, सन्निकर्ष, अल्पवहुत्व, भुजगार, पदनिक्षेप और वृद्धि ।

§ २१४. यहाँ स्थानसमुत्कीर्तनासे लेकर वृद्धि पर्यन्त अनुयोगद्वार ज्ञातव्य हैं यह इस  
सूत्रका अभिप्राय है । उनमेंसे समुत्कीर्तनासे लेकर अल्पवहुत्व तक चौबीस अनुयोगद्वार हैं, क्योंकि  
इनमें देशामर्षकभावसे भागाभाग, परिमाण, क्षेत्र, रपरीन और भावानुगमका संग्रह हो जाता है ।  
इस प्रकार ये चौबीस अनुयोगद्वार सामान्यरूपसे सूत्रमें कहे गये हैं । इनमेंसे सर्वसंक्रम,  
नोसर्वसंक्रम, उक्कट्टमंक्रम, अनुक्कट्टमंक्रम, जघन्यसंक्रम, अजघन्यसंक्रम और सज्जिपे ये रात  
अनुयोगद्वार यहाँ सम्भव नहीं हैं, क्योंकि प्रकृतिस्थानसंक्रमके विवक्षित रहते हुए उक्त अनुयोग-  
द्वारोंका पाया जाना सम्भव नहीं है । इसलिये यहाँ पर शेष सत्रह अनुयोगद्वारोंको ग्रहण करना  
चाहिये । तथा इनसे अतिरिक्त भुजगार आदि जो तीन अनुयोगद्वार हैं जो कि सूत्रनिर्दिष्ट हैं उनको  
ग्रहण करना चाहिये । अथ इस प्रकार कहे गये सब अनुयोगद्वारोंके द्वारा गाथासूत्रोंके अर्थका  
विशेष व्याख्यान करनेकी उच्छ्रासे चूर्णिसूत्रकार पहले उन अनुयोगद्वारोंमेंसे स्थानसमुत्कीर्तनाका  
कथन करनेके लिये आगेके प्रबन्धका निर्देश करते हैं—

✽ अथ 'स्थानसमुत्कीर्तना' पदका विशेष व्याख्यान करते हैं जिसमें एक  
गाथा निबद्ध है ।

१. ता०-आ०प्रत्ययः भुजगारो अपपदरो अवद्विशो अवत्त्वओ पदणिकखेवो इति पाठः ।

§ २१५. पुञ्चुत्तानमणियोगद्वाराणमादिम्मि जं पदं ठविदं ठाणसमुक्कित्तणा त्ति तस्स विहासा कीरदि त्ति सुत्तथसंबंधो । तत्थ य एगा गाहा पडिवद्धा त्ति जाणावणद्धं 'जत्थ एया गाहा' पडिवद्धा त्ति भणिदं । संपहि का सा गाहा त्ति आसंकाए इदमाह—

अट्ठावीस चउवीस सत्तरस सोलसेव पणएरसा ।

एदे खलु मोत्तूणं सेसाणं संकमो होइ ॥२७॥

§ २१६. एसा गाहा ठाणसमुक्कित्तणे पडिवद्धा त्ति उत्तं होइ । संपहि एदिस्से गाहाए अर्थविहासणद्धमिदमाह—

❀ एवमेदाणि पंच द्वाणाणि मोत्तूणं सेसाणि तेवीस संकमद्वाणाणि ।

§ २१७. 'एवमेदाणि' त्ति वयणेण गाहासुत्तपुञ्चद्वणिदिद्वाणमट्ठावीसादीणं परामरसो कओ । तेसिं संखाविसेसावहारणद्धं 'पंच द्वाणाणि' त्ति उत्तं । ताणि मोत्तूणं सेसाणि संकमद्वाणाणि होति । तेसिं च संखाणं विसेसणिद्वारणद्धं 'तेवीस' ग्गहणं कर्यं । तदो २८, २४, १७, १६, १५ एदाणि पंच द्वाणाणि असंकमपाओग्गाणि । सेसाणि सत्तावीसादीणि तेवीस संकमद्वाणाणि त्ति सिद्धं । तेसिमंकविण्णासो एसो २७, २६, २५, २३, २२, २१, २०, १९, १८, १४, १३, १२, ११, १०, ९, ८, ७, ६, ५, ४, ३, २, १ । संपहि एदेसिं द्वाणाणं पयडिणिद्देसकरणद्धमुत्तरसुत्तावयारो कीरदे—

§ २१५. पूर्वोक्त अनुयोगद्वारोंके आदिमें जो 'स्थानसमुत्कीर्तना' पद आया है उसका विशेष व्याख्यान करते हैं यह उक्त सूत्रका प्रकरणसंगत अर्थ है । इस विषयमें एक गाथा आई है यह जतानेके लिये सूत्रमें 'जत्थ एया गाहा पडिवद्धा' यह कहा है । अब वह कौनसी गाथा है ऐसी आशंका होने पर उसका निर्देश करते हैं—

'अट्ठाईस, चौबीस, सत्रह, सोलह और पन्द्रह इन पाँच स्थानोंके सिवा शेष तेईस स्थानोंका संक्रम होता है ।'

§ २१६. यह गाथा स्थान समुत्कीर्तन अनुयोगद्वारसे सम्बन्ध रखती है यह उक्त कथनका तात्पर्य है । अब इस गाथाके अर्थका विशेष व्याख्यान करनेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

❀ इस प्रकार इन पाँच स्थानोंके सिवा शेष तेईस संक्रमस्थान हैं ।

§ २१७. चूर्णिसूत्रमें जो 'एवमेदाणि' पद आया है सो इस पदके द्वारा गाथासूत्रके पूर्वार्धमें बतलाये गये अट्ठाईस आदि स्थानोंका निर्देश किया है । उनकी संख्याविशेषका निश्चय करनेके लिये 'पंच द्वाणाणि' यह कहा है । इनके सिवा शेष संक्रमस्थान हैं । उनकी संख्याविशेषका निश्चय करनेके लिये 'तेईस' पदको ग्रहण किया है । इसलिये २८, २४, १७, १६ और १५ ये पाँच स्थान संक्रमके अयोग्य हैं और शेष २७ आदि तेईस संक्रमस्थान हैं यह बात सिद्ध होती है । उनका अंकविन्यास इस प्रकार है—२७, २६, २५, २३, २२, २१, २०, १९, १८, १४, १३, १२, ११, १०, ९, ८, ७, ६, ५, ४, ३, २, और १ । अब इन स्थानोंकी प्रकृतियोंका निर्देश करनेके लिये

१. ता०प्रतौ अद्द (त्थ) - इति पाठः ।

⊗ एतथ पयडिणिहेसो कायच्चो ।

§ २१८. एदेसु अणंतरणिदिट्टुसंक्रमामंक्रमद्वाणेषु एदाहिं पयडोहिं एदं ठाणं होइ ति जाणावणणिमित्तं पयडिणिहेसो कायच्चो ति भणितं होइ । तत्थ ताव अट्टावीस-पयडिद्वाणस्स पयडिणिहेसो सुवोशे ति कादण तदसंक्रमपाओग्गत्ते कारणगवेसणद्धं पुच्छावकमाह —

⊗ अट्टावीसं केण कारयेया या संक्रमइ ?

§ २१९. सुगममेदमासंकावयणं ।

⊗ दंसणमोहणीय-चरित्तमोहणीयाणि एककेफम्मि ए संक्रमंति ।

§ २२०. कुदो ? सहावदो च व तेसिमण्णोण्णपडिग्गहसचीए अभावादो ।

⊗ तदो चरित्तमोहणीयरुस जाओ पयडोओ वज्झंति तत्थ पयुवीसं पि संक्रमंति ।

‘ २२१. यमाणजाइयत्तं पडि विमेयाभावादो । अवज्झमाणियासु किं कारणं गतियं संक्रमां ? ण, तत्थ पांडेग्गहसचीए अभावादो ।

⊗ दंसणमोहणीयरुस उक्खस्सेण दो पयडोओ संक्रमंति ।

आगम सूत्र कहते हैं—

\* यहाँ पर प्रकृतियोंका निर्देश करना चाहिये ।

§ २१८. ये जो नमनन्तरपूर्वे संक्रमस्थान और असंक्रमस्थान बतला प्राये हैं उनमेंसे इन स्थानकी इतनी प्रकृतियाँ हाँती हैं यह जतानेके लिये प्रकृतियोंका निर्देश करना चाहिये यह उक्त सूत्रका तात्पर्य है । उनमें भी अट्टावीस प्रकृतिक स्थानकी प्रकृतियोंका निर्देश सुगम है ऐसा मान कर वह स्थान संक्रमके अयोग्य क्यों न इसके कारणका विचार करनेके लिये पुच्छासूत्र कहते हैं—

\* अट्टावीस प्रकृतिक स्थान किस कारणसे संक्रमित नहीं होता ।

§ २१९. यह आशंक सूत्र सुगम है ।

\* क्योंकि दर्शनमोहनीय और चारित्रमोहनीय ये परस्परमें संक्रम नहीं करतीं ।

§ २२०. क्योंकि स्वभावसे ही इनमें परस्पर प्रतिग्रहरूप शक्ति नहीं पाई जाती है ।

\* इसलिये चाग्निमोहनीयकी जितनी प्रकृतियाँ बंधती हैं उनमें पच्चीस प्रकृतियोंका ही संक्रमित होती है ।

§ २२१. क्योंकि एक जातिकी अपेक्षा उनमें कोई भेद नहीं है ।

शंका—नहीं बंधनेवागी प्रकृतियोंमें संक्रम क्यों नहीं होता ?

समाधान—नहीं क्योंकि उनमें प्रतिग्रहरूप शक्ति नहीं पाई जाती ।

\* तथा दर्शनमोहनीयकी अधिकसे अधिक दो प्रकृतियाँ संक्रमित होती हैं ।

§ २२२. किं कारणं ? अट्टावीससंतकम्मियमिच्छाइट्ठिमि मिच्छत्तपडिग्गहेण सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणं संकंतिदंसणादो ।

\* एदेष कारणेण अट्टावीसाए णत्थि संकमो ।

§ २२३. जेण कारणेण तिण्हं दंसणमोहपयडोणमक्कमेण संकमसंभवो णत्थि तेण कारणेण अट्टावीसाए संकमो णत्थि त्ति मणिदं होइ ।

§ २२४. एवमेत्तिएण पत्रंधेण अट्टावीसपयणिट्टाणस्स असंकमपाओग्गत्ते कारणं परूविय संपहि सत्तावीसपयडिसंकमट्टाणस्स पयडिणिदेसविहासणट्टमिदमाह—

\* सत्तावीसाए काओ पयडीओ ।

§ २२५. सुगममेदं पुच्छसुत्तं ।

\* पणुवीसं चरित्तमोहणीयाओ दोयिण दंसणमोहणीयाओ ।

§ २२२. क्योंकि अट्टाईस प्रकृतियोंकी सत्तावाले मिथ्यादृष्टिके मिथ्यात्व प्रकृति प्रतिग्रहरूप रहती है, उसमें सम्यक्त्वं तथा सम्यग्मिथ्यात्व इन दो प्रकृतियोंका ही संक्रम पाया जाता है। तथा सम्यग्दृष्टिके भी मिथ्यात्व और सम्यग्मिथ्यात्वका ही संक्रम देखा जाता है। आशय यह है कि दर्शनमोहनीयकी तीन प्रकृतियोंका एक साथ संक्रम नहीं होता किन्तु अधिकसे अधिक दो प्रकृतियोंका ही संक्रम पाया जाता है।

\* इस कारणसे अट्टाईस प्रकृतिक स्थानका संक्रम नहीं होता ।

§ २२३. यतः दर्शनमोहनीयकी तीन प्रकृतियोंका युगपत् संक्रम हे ना सम्भव नहीं है अतः अट्टाईस प्रकृतिक स्थानका संक्रम नहीं होता यह उक्त कथनका तात्पर्य है ।

विशेषार्थ—मोहनीयकी अट्टाईस प्रकृतियां मुख्यतया दर्शनमोहनीय और चारित्रमोहनीय इन दो भागोंमें बटी हुई हैं। इनमेंसे दर्शनमोहनीयके तीन और चारित्रमोहनीयके पच्चीस भेद हैं। ऐसा नियम है कि दर्शनमोहनीयका चारित्रमोहनीयमें और चारित्रमोहनीयका दर्शनमोहनीयमें संक्रम नहीं होता, क्योंकि इनकी एक जाति नहीं है। तथापि जिस समय चारित्रमोहनीयकी जितनी प्रकृतियाँ बंधती हैं उनमें उसकी सब प्रकृतियोंका तो संक्रम बन जाता है किन्तु दर्शनमोहकी अपेक्षा एक साथ दो प्रकृतियोंसे अधिकका संक्रम नहीं होता, क्योंकि मिथ्यात्व गुणस्थानमें मिथ्यात्व प्रकृति प्रतिग्रहरूप रहती है, वहाँ उसका संक्रम सम्भव नहीं और सम्यग्दृष्टिके सम्यक्त्वं प्रकृति प्रतिग्रहरूप रहती है, वहाँ उसका संक्रम सम्भव नहीं है। इसीसे प्रकृतमें अट्टाईस प्रकृतिक संक्रमस्थान नहीं होता यह बतलाया है ।

§ २२४. इस प्रकार इतने प्रबन्धके द्वारा अट्टाईस प्रकृतिक स्थान संक्रमके अयोग्य है इसका कारण कह कर अब सत्ताईस प्रकृतिक संक्रमस्थानकी प्रकृतियोंका विधान करनेके लिये यह सूत्र कहते हैं—

\* सत्ताईस प्रकृतिक स्थानकी कौनसी प्रकृतियाँ हैं ?

§ २२५. यह पृच्छासूत्र सुगम है ।

\* चारित्रमोहनीयकी पच्चीस और दर्शनमोहनीयकी दो ये सत्ताईस प्रकृतियाँ हैं ।

२२६. मालमकराय-णवणोकरायमेण पणुवीरं चरित्तमोहणीयपयडीओ गम्मन-गम्मामिन्दत्तमणिणदाओ मिन्दत्त-सम्मामिन्दत्तमणिणदाओ वा दोणिण दंसण-मोहणीयपयडीओ च वेत्तुण सत्तावीसाए संकमट्टाणमुप्पज्जट्ठि ति भणिटं होइ ।

\* छुट्ठीसाए सम्मत्ते उच्चैल्लिदे ।

२२७. सत्तावीरसंकामयमिन्दत्ताइट्टिणा गम्मने उच्चैल्लिदे मंते सेगछ्छवीर-पर्यायमुदायपयमेदं संकमट्टाणमुप्पज्जट्ठि ति मुत्तत्थो । पयारंतरेणावि तप्पदुपायणट्ट-मुत्तगे मुचावयागे—

⊗ अथवा पदमसमयसम्मत्ते उप्पाइदे ।

२२८. पटमगमयविनेनिदं गम्मनं पटमगमयगम्मनं । तस्मि उप्पाइदे पयदसंकमट्टाणमुप्पज्जट्ठि, नत्थ गम्मामिन्दत्तम संकमाभावादे । तं कयं ? छुट्ठीग-मंतकम्मियमिन्दत्ताइट्टिम्य पटमगम्मनुपायणसमए मिन्दत्तकम्मं गम्मन-गम्मामिन्दत्त-मत्तवेण परिणमट्ठि, ण तस्मि समए गम्मामिन्दत्तम संकमसंबवो, पुत्तमणुपपणम्य ताथे चे उप्पज्जमाणम्य तापरिणामविगेहादो संकुप्पायणे चावट्ठम्य जीवम्य संकामण-

२२६. मालक कराय और मी नोकरायके भेदमें कारियमोहनीयपी पक्षीय प्रकृतियों तथा सम्यग्ग और सम्यग्गिभ्यादर या मिथ्यादर और सम्यग्गिभ्यादर ये दो दर्शनमोहनीय ती प्रकृतियों मिलकर सत्तास प्रकृति संकमत्तान होता है यह एक सूत्रका तात्पर्य है ।

\* इन सत्ताईसमेंसे सम्यक्त्वकी उद्वेगना होने पर छुट्ठीस प्रकृतिक संकमस्थान होता है ।

२२७. सत्ताईस प्रकृतियोंके संकामक मिथ्यादृष्टि औरके द्वारा सम्यक्त्वकी उद्वेगना कर लेने पर दोष छुट्ठीस प्रकृतियोंका नमुदायरूप संकमस्थान उत्पन्न होता है यह एक सूत्रका अर्थ है । अथ प्रसंगान्तरे उक्त स्थानके उत्पन्न करनेके लिये ध्यातेवा सूत्र कहते हैं—

\* अथवा सम्यक्त्वके उत्पन्न करनेके प्रथम समयमें छुट्ठीस प्रकृतिक संकम-स्थान होता है ।

२२८. सूत्रमें 'प्रथम समय' पद सम्यक्त्वका विशेषण है और 'सम्यक्त्व' विशेष्य है । इसलिये इस सूत्रका यह आशय है कि प्रथम समयमें सुक सम्यग्दर्शनके उत्पन्न होने पर अर्थात् सम्यग्दर्शनके उत्पन्न होनेके प्रथम समयमें प्रकृत संकमस्थान उत्पन्न होता है, क्योंकि वही सम्यग्गिभ्यादरवा संकम नहीं होता ।

शंका—यो कैसे ?

समाधान—छुट्ठीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला जो मिथ्यादृष्टि जीव प्रयोगोपशम सम्यक्त्वको उत्पन्न करता है उसके प्रथमोपशम सम्यक्त्वके उत्पन्न करनेके प्रथम समयमें मिथ्यादर कर्म सम्यक्त्व और सम्यग्गिभ्यादररूपसे परिणमन करता है । इसलिये उस समय सम्यग्गिभ्यादरका सक्रम सम्भव नहीं है, क्योंकि जो प्रकृति पहले न उत्पन्न होकर उसी समय उत्पन्न हो रही है उसका उसी समय संकमत्त परिणमन माननेमें विरोध आता है । दूसरे जो जीव सत्ताके उत्पन्न करनेमें लगा हुआ है उसके उसी समय संकमकरणी प्रकृति माननेमें विरोध आता है, इसलिये



करणवावारविरोहादो च । तम्हा छव्नीससंतकम्मियस्स पणुवीससंकमट्ठाणे सम्मत्तुप्पत्ति-  
पढमसमए मिच्छत्तस्स संकमपाओग्गत्तसिद्धीए छव्नीससंकमट्ठाणत्तभवो ति सिद्धं ।

✽ पणुवीसाए सम्मत्त-सम्माभिच्छत्तेहि विणा सेसाओ ।

§ २२९. पणुवीसाए संकमट्ठाणस्स काओ पयडीओ ति आसंक्रिय सम्मत्त-  
सम्माभिच्छत्तेहि विणा सेसाओ होंति ति उच्चं । सेसं सुगमं ।

✽ चडवीसाए किं कारणं णत्थि ।

§ २३०. एत्थ संकमो ति पयरणवसेणाहिसंबंधो कायव्वो । सेसं सुगमं ।

छव्नीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले मिथ्यादृष्टिके पच्चीस प्रकृतिक संक्रमस्थानके रहते हुए जब वह सम्यक्त्वकी उत्पत्तिके प्रथम समयमें मिथ्यात्वकी संक्रमके योग्य कर लेता है तब उसके छव्नीस प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है यह सिद्ध हुआ ।

**विशेषार्थ**—यहाँ छव्नीस प्रकृतिक संक्रमस्थान दो प्रकारसे बतलाया है। प्रथम प्रकारमें सोलह कपाय, नौ नाकपाय तथा सम्यग्मिथ्यात्व ये छव्नीस प्रकृतियाँ ली हैं। यह संक्रमस्थान सम्यक्त्वकी उद्देजनाके बाद मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमें प्राप्त होता है। यद्यपि यहाँ सत्ताईस प्रकृतियोंकी सत्ता है तथापि यहाँ मिथ्यात्वका संक्रम सम्मत्त नहीं, इसलिये संक्रमस्थान छव्नीस प्रकृतिक ही होता है। दूसरे प्रकारमें सोलह कपाय, नौ नाकपाय और मिथ्यात्व ये छव्नीस प्रकृतियाँ ली हैं। यह संक्रमस्थान जो छव्नीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला जीव प्रथमोपराम सम्यक्त्वको प्राप्त करता है उसके प्रथम समयमें होता है। यद्यपि यहाँ सत्ता अट्ठाईस प्रकृतियोंकी हो जाती है, तथापि यहाँ प्रथम समयमें सम्यग्मिथ्यात्वका संक्रम नहीं होता, इसलिये यहाँ भी छव्नीस प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है यह उक्त कथनका तात्पर्य है।

✽ पच्चीस प्रकृतिक संक्रमस्थानमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके विना शेष सब प्रकृतियाँ हैं ।

§ २२८ पच्चीस प्रकृतिक संक्रमस्थानकी कौनसी प्रकृतियाँ हैं ऐसी आशंका करके सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके विना शेष सब प्रकृतियाँ हैं यह कहा है। शेष कथन सुगम है।

**विशेषार्थ**—पहले यह बतला आये हैं कि सत्ताईस प्रकृतिक संक्रमस्थानमें चारित्रमोहनोयकी पच्चीस तथा दर्शनमोहनोयकी दो ये सत्ताईस प्रकृतियाँ होती हैं। उनमेंसे दर्शनमोहनोयकी दो प्रकृतियाँ निकाल लेने पर पच्चीस प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है। तथापि वे दो प्रकृतियाँ कौनसी हैं जो सत्ताईस प्रकृतियोंमेंसे निकाली गई हैं। यह एक प्रश्न है। जिसका उत्तर देते हुए चृणिसूत्रमें यह बतलाया है कि वे दो प्रकृतियाँ सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व हैं। जिन्हें निकाल देने पर पच्चीस प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है। आशय यह है कि मिथ्यादृष्टि जीवके जब सम्यग्मिथ्यात्वकी भी उद्देजना हो जाती है तब यह पच्चीस प्रकृतिक संक्रमस्थान प्राप्त होता है। या अनादि मिथ्यादृष्टिके भी मिथ्यात्वके विना यह संक्रमस्थान होता है।

✽ चौबीस प्रकृतिक स्थानका किस कारणसे संक्रम नहीं होता ।

§ २३१. इस सूत्रमें प्रकरणवशा 'संक्रम' इस पदका सम्बन्ध कर लेना चाहिये। शेष कथन सुगम है ।

१. ता० प्रती पाओग्गत्ता सिद्धीए इति पाठः ।

❀ अणंताणुबंधिणो सञ्चे अवणिज्जंति ।

§ २३१. जेण कारणेण अणंताणुबंधिणो सञ्चे जुगवमवणिज्जंति तेण चउवीसाए पयडिद्वानस्स संकमो णत्थि चि सुत्तत्थसंबंधो । तेसिमकमेणावणयणे चउवीससंतकम्मं होदूण तेवीससंकमद्वानमेवुप्पज्जदि चि भावत्थो ।

❀ एदेण कारणेण चउवीसाए णत्थि ।

§ २३२. एदेणाणंतरपरुविदेण कारणेण चउवीसाए णत्थि संकमो चि भणिदं होइ ।

❀ तेवीसाए अणंताणुबंधीसु अवगदेसु ।

§ २३३. अणंताणुबंधीसु विसंजोइदेसु इगिवीसकसाय-दोदंसणमोहणीयपयडीओ घेत्तूण तेवीससंकमद्वानं होदि चि सुत्तत्थो ।

❀ चावीसाए मिच्छत्ते खविदे सम्मामिच्छत्ते सेसे ।

\* क्योंकि सब अनन्तानुबन्धियों निकल जाती हैं ।

§ २३१. यत् सव अनन्तानुबन्धियां युगपत् निकल जाती हैं अतः चौबिस प्रकृतिक स्थानका संक्रम नहीं होता यह इस सूत्रका तात्पर्य है । उन चार अनन्तानुबन्धियोंके एक साथ निकल जाने पर चौबीस प्रकृतिक सत्कर्मस्थान होकर संक्रमस्थान तेईसप्रकृतिक ही उत्पन्न होता है यह उक्त वचनका भावार्थ है ।

\* इस कारणसे चौबीस प्रकृतिक स्थानका संक्रम नहीं होता ।

§ २३२. यह जो अनन्तरपूर्व कारण कह आये हैं उससे चौबीस प्रकृतिक स्थानका संक्रम नहीं होता है यह उक्त वचनका तात्पर्य है ।

विशेषार्थ—चौबीस प्रकृतिकस्थान चार अनन्तानुबन्धियोंकी विसंयोजना होने पर ही प्राप्त होता है अन्य प्रकारसे नहीं । किन्तु इन चौबीस प्रकृतियोंमें दर्शनमोहनीयकी तीन प्रकृतियाँ भी सम्मिलित हैं, अतः चौबीस प्रकृतिक संक्रमस्थान नहीं होता यह कहा है ।

\* चार अनन्तानुबन्धियोंके अपगत होने पर तेईस प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है ।

§ २३३. अनन्तानुबन्धियोंकी विसंयोजना हो जाने पर इफीस कपाय और दो दर्शनमोहनीय इन प्रकृतियोंको लेकर तेईस प्रकृतिकसंक्रमस्थान होता है यह इस सूत्रका अर्थ है ।

विशेषार्थ—आशय यह है कि जब यह जीव चार अनन्तानुबन्धियोंकी विसंयोजना कर लेता है तब चौबीस प्रकृतियोंकी सत्ता और तेईस प्रकृतियोंका संक्रम होता है । यहाँ दर्शनमोहनीयकी दो प्रकृतियोंमेंसे मिथ्यात्व और सम्यग्मिथ्यात्व ये दो प्रकृतियाँ संक्रमयोग्य ली गई हैं । किन्तु ऐसे जीवके मिथ्यात्वमें जाने पर सत्ता तो अट्टाईसकी हो जाती है तथापि संक्रम एक आवलि काल तक तेईसका ही होता रहता है, क्योंकि तब एक आवलि काल तक चार अनन्तानुबन्धियोंका संक्रम नहीं होता ऐसा नियम है । इस अपेक्षासे यहाँ दर्शनमोहनीयकी सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व ये दो प्रकृतियाँ लेनी चाहिये, क्योंकि मिथ्यात्व गुणस्थानमें मिथ्यात्वका संक्रम नहीं होता ऐसा नियम है ।

\* मिथ्यात्वका क्षय हो जाने पर और सम्यग्मिथ्यात्वके शेष रहने पर चाईस प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है ।

§ २३४. तेणेव विसंजोइदाणंताणुवंधीचउक्केण दंसणमोहक्खवणमब्बुट्टिय मिच्छत्ते खविदे इगिवीसकसाय-सम्मामिच्छत्तपयडीओ वेत्तूणेदं संकमट्ठाणमुप्पज्जइ त्ति उत्तं होइ ।

❀ अथवा चउवीसदिसंतकम्मियस्स आणुपुब्बीसंकमे कदे जाव णवुंसयवेदो अणुवसंतो ।

§ २३५. 'चउवीससंतकम्मिय' वयणं सेससंतकम्मियपडिसेहफलं, तत्थ पयद-संकमट्ठाणसंभवाभावादो । 'आणुपुब्बीसंकमे कदे' त्ति वयणमणाणुपुब्बीसंकमपडिसेहइं, तस्स पयदविरोहित्तादो । तत्थ वि णवुंसयवेदे अणुवसंतं चेव पयदसंकमट्ठाणमुप्पज्जइ त्ति जाणावणइं णवुंसयवेदे अणुवसंतं त्ति भण्णिदं । तम्मि उवसंतं पयदसंकमट्ठाणादो हेट्ठिमट्ठाणस्स समुप्पत्तिदंसणादो । ओदरमाणस्स चउवीससंतकम्मियस्स इत्थिवेदे ओकड्ढिदे जाव णवुंसयवेदो अणोकड्ढिदो ताव पयदट्ठाणसंभवो अत्थि । णवारि सो एत्थ ण विवक्खिओ, चट्ठमाणस्सेव पहाणभावेणावलंबियिच्चादो ।

§ २३४. जिसने अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी विसंयोजना की है ऐसा जीव दर्शनमोहनीयकी क्षणिकाके लिये उद्यत होकर जब मिथ्यात्वका क्षय कर देता है तब इकास कषाय और सम्यग्मिथ्यात्व इन प्रकृतियोंको लेकर यह संक्रमस्थान उत्पन्न होता है यह उक्त कथनका तात्पर्य है ।

विशेषार्थ—यद्यपि मिथ्यात्वकी क्षणिकाके बाद सत्ता तेईस प्रकृतियोंकी होती है तथापि सम्यग्दृष्टिके सम्यक्त्व संक्रमके अग्रगण्य होनेसे संक्रम वाईस प्रकृतियोंका ही होता है यह उक्त सूत्र का अभिप्राय है ।

❀ अथवा चौवीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले जीवके आनुपूर्वी संक्रमका प्रारम्भ करने पर जब तक नपुंसकवेदका उपशम नहीं होता है तब तक वाईस प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है ।

§ २३५. सूत्रमें जो 'चउवीससंतकम्मिय' यह वचन दिया है सो इसका फल शेष सत्कर्म-स्थानोंका निषेध करना है, क्योंकि उनके सद्भावमे प्रकृत संक्रमस्थान नहीं हो सक्ता है । सूत्रमें 'आणुपुब्बीसंकमे कदे' यह वचन आनापूर्वी संक्रमका प्रतिषेध करनेके लिये आया है, क्योंकि वह प्रकृतका विरोधी है । उसमें भी नपुंसकवेदका उपशम न होने पर ही प्रकृत संक्रमस्थान उत्पन्न होता है यह बतानेके लिये 'णवुंसयवेदे अणुवसते' यह कहा है, क्योंकि नपुंसकवेदका उपशम हो जाने पर प्रकृत संक्रमस्थानसे नीचेके स्थानकी उत्पत्ति देखी जाती है । उपशमश्रेणिसे उत्तरे समय चौवीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले जीवके ब्यवेदका अपकर्षण होकर जब तक नपुंसकवेदका अपकर्षण नहीं होता है तब तक प्रकृत स्थान सम्भव है, किन्तु वह यहाँ विवक्षित नहीं है, क्योंकि उपशम-श्रेणि पर चढ़नेवाला जीव ही प्रधानरूपसे यहाँ स्वीकार किया गया है ।

विशेषार्थ—उपशमश्रेणिसे यह वाईस प्रकृतिकसंक्रमस्थान दो प्रकारसे बतलाया है । यथा—उपशमश्रेणि पर चढ़ते समय चौवीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले जिस जीवने अन्तरकरण करनेके बाद आनुपूर्वी संक्रमका प्रारम्भ कर दिया है, उसके जब तक नपुंसकवेदका उपशम नहीं होता है तब तक यह वाईस प्रकृतिक संक्रमस्थान प्राप्त होता है । यद्यपि इस जीवके सत्ता इकास कषाय और तीन दर्शनमोहनीय इन चौवीस प्रकृतियोंकी है तथापि इनमेंसे सम्यक्त्व और संबलन

❊ एकवीसाए खीणदंसणमोहणीयस्स अक्खवगाणुवसामगस्स ।

§ २३६. खीणदंसणमोहणीयस्स अक्खवगाणुवसामगस्स इगिवीससंकमद्वाण-  
शुप्पज्जइ ति सुत्तथमंबंधो खवगमुवसामगं च वज्जिययूणण्णत्थे' खीणदंसणमोहणीयस्स  
पयदमंकमद्वाणमंभवो ति भणिदं होइ । किमिदि खवगोवसामगपरिवज्जणं कीरदे ? ण,  
तत्थाणुपुंशीसंकमाद्रिवमेण द्वाणंतरुप्पत्तिदंसणादो । एत्थ खवगोवसामगववएसो  
अणियट्ठिअद्वाए संखेज्जेसु भागोसु गदेसु मंखेज्जदिमे भागे सेसे विवक्खिखओ, तत्थेव  
खवणोवसामणवावारपउत्तिदंसणादो ।

❊ चउवीसदिसंतकम्मियस्स वा णउंसयवेदे उपसंते इत्थिवेदे  
अणुवसंते ।

लोभ इन दो प्रकृतियोंका संक्रम नहीं होता, अतः यहाँ चार्डम प्रकृतिक.संक्रमस्थान प्राप्त होता है ।  
दूसरा प्रश्न यह है कि यह जीव उपशमश्रेणिमे उतरता हुआ खीणवेदका अपकर्षण करनेके बाद  
जय तक नपुंसकवेदका अपकर्षण नहीं करता है तब तक चार्डम प्रकृतिक.संक्रमस्थान होता है ।  
यहाँ आनुपूर्विकसंक्रमके न रहनेसे यद्यपि लोभका संक्रम तो होने लगता है पर अभी नपुंसकवेदका  
संक्रम नहीं प्रारम्भ हुआ है इसलिये चार्डम प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है । इस प्रकार यद्यपि  
उपशमश्रेणिमें चार्डम प्रकृतिक दो संक्रमस्थान होते हैं तथापि चूर्णिकारने चदते समयके एक संक्रम-  
स्थानका ही निर्देश किया है दूसरेका नहीं । दूसरेका क्यों निर्देश नहीं किया इसका कारण वतलाते  
हुए टीकामें जो बुद्ध लिखा है उसका भाव यह है कि उतरते समय जो चार्डम प्रकृतिक संक्रमस्थान  
प्राप्त होता है उसे प्रधान न मानकर उसका उल्लेख नहीं किया है ।

\* जिसने दर्शनमोहनीयका क्षय कर दिया है किन्तु जो क्षयक या उपशमक  
नहीं है उसके इक्कीस प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है ।

२३६ जिसने दर्शनमोहनीयका क्षय कर दिया है किन्तु जो क्षयक या उपशमक नहीं  
है उसके इक्कीस प्रकृतिक संक्रमस्थान उत्पन्न होता है यह इस सूत्रका तात्पर्य है । क्षयक या  
उपशमकको छोड़कर जिसने दर्शनमोहनीयको क्षयण कर दी है ऐसे जीवके अन्यत्र प्रकृत संक्रम-  
स्थान सम्भव है यह उक्त कथनका तात्पर्य है ।

शंका—क्षयक और उपशमकका निषेध क्यों किया है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि क्षयक या उपशमकके आनुपूर्वी संक्रम आदिके कारण दूसरे  
स्थानोंकी उत्पत्ति देखी जाती है ।

प्रकृतमें क्षयक और उपशमक यह संज्ञा अनिश्चितकरणके कालका बहुभाग व्यतीत होकर  
एक भाग शेष रहने पर जो जीव स्थित है उनकी अपेक्षा विवक्षित है, क्योंकि क्षयण और  
उपशमनारूप व्यापारकी प्रवृत्ति यहीं पर देखी जाती है ।

\* अथवा चौबीस प्रकृतिक सत्कर्मवाले जीवके नपुंसकवेदका उपशम होने पर  
और स्त्रीवेदका उपशम नहीं होने पर इक्कीस प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है ।

१. आ० प्रती वज्जियमणण्यत्थ इति पाठ. ।

१ २३७. आणुपुञ्जीसंक्रमवसेण लोभस्सासंक्रामभो, होउण जो द्विओ चउवीस-संतकम्मिओ उवसामओ तस्स चावीससंक्रमपयडीसु णवुंसयवेदे उवसंते इत्थिवेदे चाणु-वसंते इगिवीससंक्रमड्डाणं पयारंतरपडिवद्धमुपज्जइ । जेणेदं सुत्तं देसामासियं तेषु चउवीससंतकम्मियउवसमसम्माइड्डिस्स सासणभावं पडिवणणस्स पढमावलिआए चउवीस-संतकम्मियसम्माभिच्छाइड्डिस्स वा इगिवीससंक्रमड्डाणं पयारंतरपडिग्गहियं होइ । ति वचचवं, तत्थ पयारंतरपरिहारेण पयदसंक्रमड्डाणसिद्धीए णिच्चाहमुवलंभादो । अदो चैय ओदरमाणगस्स वि चउवीससंतकम्मियस्स सत्तसु कम्मेषु ओकड्डिसेऽजाव इत्थि-णवुंसयवेदा उवसंता ताव इगिवीससंतकम्मड्डाणसंभवो सुत्तंतच्छुदो वक्खणोयच्चो ।

१ २३७. आणुपूर्वी संक्रमके कारण लोभ संज्वलनका संक्रम नहीं करनेवाला जो चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला उपशामक जीव है उसके वाईस संक्रम प्रकृतियोंमेंसे नपुंसकवेदका उपशाम होने पर और स्त्रीवेदका उपशाम नहीं होने पर प्रकारान्तरसे इक्कीस प्रकृतिक संक्रमस्थान उत्पन्न होता है । यतः यह सूत्र देशामर्षक है अतः इससे यह भी सूचित होता है कि जो चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला उपशाम सम्यग्दृष्टि जीव सासादन गुणस्थानको प्राप्त होता है उसके पहली आवलि कालके भीतर या चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले सम्यग्मिथ्यादृष्टिके अन्य प्रकारके प्रतिग्रहेके साथ यह इक्कीस प्रकृतिक संक्रमस्थान उत्पन्न होता है, क्योंकि वहाँ पर प्रकारान्तरके परिहार द्वारा प्रकृत संक्रमस्थानकी सिद्धि निर्वाच्यरूपसे पाई जाती है । तथा इससे सूत्रमें अन्तर्भूत हुए इस स्थानका भी व्याख्यान करना चाहिये कि चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला जो जीव उपशामश्रेणिसे उतर रहा है उसके सान नोकपाय कर्मोंका अपकर्षण तो हो गया है किन्तु जब तक स्त्रीवेद और नपुंसकवेद उपशान्त हैं तब तक इक्कीस प्रकृतिक संक्रमस्थान सम्भव है ।

विशेषार्थ—यहाँ पर इक्कीस प्रकृतिक संक्रमस्थान पाँच प्रकारसे बतलाया है । यथा—(१) जो चायिक सम्यग्दृष्टि जीव जब तक अन्य प्रकृतियोंका क्षय नहीं करता या उपशामश्रेणिमें आणुपूर्वी संक्रमको नहीं प्राप्त होता है तबतक इक्कीस प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है । (२) जो चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला जीव उपशामश्रेणि पर चढ़ता है उसके नपुंसकवेदका उपशाम हो जाने पर जब तक स्त्रीवेदका उपशाम नहीं होता तब तक इक्कीस प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है । इस स्थानमें सम्यक्त्व, संज्वलन लोभ और नपुंसकवेदका संक्रम नहीं होता, शेषका होता है । (३) चौबीस प्रकृतियोंकी सत्ता-वाला जो उपशामसम्यग्दृष्टि जीव सासादन गुणस्थानको प्राप्त होता है उसके एक आवलि कालतक इक्कीस प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है । यहाँ पर तीन दर्शनमोहनीय और चार अनन्तानुबन्धी इन सातका संक्रम नहीं होता । (४) चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला जो जीव सिद्ध गुणस्थानको प्राप्त होता है उसके इक्कीस प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है । इसके अनन्तानुबन्धीचतुष्क तो हैं ही नहीं और तीन दर्शनमोहनीयका संक्रम नहीं होता है । (५) जो चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला जीव उपशामश्रेणिसे उतर रहा है उसके और सब कर्मोंके अनुपशान्त हो जाने पर भी जब तक स्त्रीवेद और नपुंसकवेद उपशान्त रहते हैं तब तक इक्कीस प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है । इसके भी चार अनन्तानुबन्धियोंका तो सद्भाव ही नहीं है और सम्यक्त्व, स्त्रीवेद तथा नपुंसकवेदका संक्रम नहीं होता है । इस प्रकार ये पाँच प्रकारसे इक्कीस प्रकृतिक संक्रमस्थान प्राप्त होते हैं । इनमेंसे प्रारम्भके दो संक्रमस्थानोंका तो चूर्णिसूत्रकारने स्वयं उल्लेख किया है किन्तु शेष तीन संक्रमस्थानोंका नहीं किया है । सो चूर्णिसूत्र देशामर्षक होनेसे सूचित हो जाते हैं ऐसा जानना चाहिये ।

ॐ बीसाए एकवीसदिसंतकम्मियस्स आणुपुञ्जीसंकमे कदे जाव एवंसपवेदो अणुवसंतो ।

§ २३८. णवुंसयवेदोवममो किमट्टमेत्थ णेच्छिज्जेदं ? ण, तम्मिं उवसंतं पयद-  
विगेहिंसंकमट्टाणंतरोपपत्तिदंणपादो । तदो एत्तामकस्साय-णवणोक्कमायसमुदायप्पयभेदं  
संकमट्टाणमिगिबोसयंतकम्मियस्सुवसाभगस्स अंतरकणपट्टमसयादो जाव णवुंसय-  
वेदाणुवममो ताव होदि चि मुत्तन्धसंगहो । ओदरमाणसम पुण णवुंसयवेदं उवसंतं  
चेय पयदंसंकमट्टाणमभवो चि एमो वि अत्थो एन्धेव मुत्ते णिर्लोणो चि वक्खणोण्यवो ।

ॐ चउवीसदिसंतकम्मियस्स वा आणुपुञ्जीसंकमे कदे इत्थिवेदे उवसंतो  
छसु कम्मेषु अणुवसंतेषु ।

§ २३९. चउवीसदिमंतकम्मंसियम्मं वा उवगामगस्स पयदंसंकमट्टाणमुपज्ज  
चि मंवंधो । कवंभुदम्म तस्स ? आणुपुञ्जीसंकमे कदे णवुंसयवेदोवगामाणंतंरमिथि-

\* इकीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले जीवके आनुपूर्वी संक्रमका प्रारम्भ हो जाने पर जब तक नपुंसकवेदका उपशम नहीं होता तब तक वांग प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है ।

§ २३८. शंका—यहां पर नपुंसकवेदका उपशम क्यों नहीं लीजिए किया गया है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि उमका उपशम हो जाने पर प्रकृत संक्रमस्थानके निरोधी नुमरे नक्रमस्थानभी उत्पत्ति देवो ज्ञानी है, इसलिए यहाँ नपुंसकवेदका उपशम नहीं रीकार किया गया है ।

इसलिए इकीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले उपशामक जीवके अन्तरकरण करनेके प्रथम समयसे लेकर जब तक नपुंसकवेदका उपशम नहीं होना है तब तक ग्यारह वषाय और नौ नोकपायोंके समुदायरूप यह बीस प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है यह इन सूत्रका समुच्चयार्थ है । किन्तु उपशमश्रेणिसे उत्तरनेवाले जीवके तो नपुंसकवेदके उपशामन रहते हुए ही प्रकृत संक्रमस्थान सम्भव है इन प्रकार यह अर्थ भी इसी सूत्रमें गभित है यह व्याख्यान यहाँ करना चाहिये ।

\* अथवा चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले जीवके आनुपूर्वी संक्रमके बाद स्त्री-वेदका उपशम होकर जब तक छह नोकपायोंका उपशम नहीं हुआ है तब तक बीस प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है ।

§ २३९. अथवा चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले उपशामक जीवके प्रकृत संक्रमस्थान उत्पन्न होता है ऐसा यहाँ सम्भव्य करना चाहिये ।

शंका—यह चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला उपशामक जीव कैसा होना चाहिये जब इसके प्रकृत संक्रमस्थान होता है ?

समाधान—जिसने आनुपूर्वीसंक्रम करके नपुंसकवेदका उपशम करनेके बाद स्त्रीवेदका उपशम तो कर लिया है किन्तु छह नोकपायोंका उपशम कर रहा है उस चौबीस प्रकृतियोंकी

१. ता० प्रती गृ तत्थ (त०) णिं इति पाठः । २. ता० प्रती -द्वारकतयवलभदंसंगादो । इति पाठः ।  
३. ता० प्रती -कम्मियस्स इति पाठः ।

वेदे उवसंते छण्णोकसायाणमुवसामयभावेणावड्ठिदस्स । तत्थं दो दंसणमोहणीयपयडीहिं सह एकारसकसाय-सत्तणोकसायाणं संकमपाओग्गाणमुवलंभादो ।

❀ एगुणचीसाए एक्कवीसदिसंतकम्मंसियस्स णवुंसयवेदे उवसंते इत्थिवेदे अणुवसंते ।

§ २४०. इगिवीससंतकम्मियस्सुवसामगस्स लोमाणुपुव्वीसंकमवसेण समासादिद-  
वीसपयडिसंकमट्टाणस्स कमेण णवुंसयवेदे उवसंते पयदसंकमट्टाणमुप्यज्जइ त्ति सुत्तत्थ-  
संबंधो । ओदरमाणगं पि समस्सियूणेदस्स ट्टाणस्स संभवो समयाविरोहेणाणुगंतव्वो,  
सुत्तस्सेदस्स देसामासयत्तादो ।

❀ अट्टारसएहमेक्कावीसदिकम्मंसियस्स इत्थिवेदे उवसंते जाव छण्णो-  
कसाया अणुवसंता ।

§ २४१. तस्सेव इगिवीससंतकम्मंसियस्स अंतरकरणे कदे णवुंसय-इत्थिवेदेसु

सत्तावाले उपशामक जीवके प्रकृत संक्रमस्थान होता है, क्योंकि यहाँ पर संक्रमके योग्य दो दर्शन मोहनीयके साथ ग्यारह कपाय और सात नोकपाय प्रकृतियां पाई जाती हैं ।

विशेषार्थ—यहाँ पर बीस प्रकृतिक संक्रमस्थान तीन प्रकारसे प्राप्त होता है दो ज्ञायिक सम्यग्दृष्टिके और एक द्वितीयोपशम सम्यग्दृष्टिके । ये तीनों ही संक्रमस्थान उपशमश्रेणियों होते हैं । इनका विशेष खुलासा टीकामें ही किया है अतः यहाँ नहीं करते हैं ।

❀ इकीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले जीवके नपुंसकवेदका उपशम होकर जब तक स्त्रीवेदका उपशम नहीं होता तब तक उन्नीस प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है ।

§ २४० जिस इक्कीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले उपशामक जीवने लोमसंचलनमें होनेवाले आनुपूर्वी संक्रमके कारण बीस प्रकृतिक संक्रमस्थानको प्राप्त कर लिया है उसके क्रमसे नपुंसकवेदके उपशान्त हो जाने पर प्रकृत संक्रमस्थान उत्पन्न होता है यह इस सूत्रका तात्पर्य है । इसी प्रकार उपशमश्रेणियोंसे उतरनेवाले जीवकी अपेक्षासे भी आगमानुसार इस स्थानको जान लेना चाहिये, क्योंकि यह सूत्र देशामर्षक है ।

विशेषार्थ—यहाँ उन्नीस प्रकृतिक संक्रमस्थान दो प्रकारसे बतलाया है । एक तो जो ज्ञायिक सम्यग्दृष्टि जीव उपशमश्रेणियों पर चढ़ रहा है उसके नपुंसकवेदका उपशम हो जाने पर प्राप्त होता है, क्योंकि तब लोमसंचलन और नपुंसकवेदका संक्रम नहीं होता है शेषका होता है । दूसरे यह जीव जब उपशमश्रेणियोंसे उतर कर कुछ नोकपायोंको तो अपकर्षण कर लेता है किन्तु स्त्रीवेद और नपुंसक वेद उपशान्त ही रहते हैं तब प्राप्त है । इसके स्त्रीवेद और नपुंसकवेदका संक्रम नहीं होता शेषका होता है । यद्यपि दूसरा प्रकार चूर्णिसूत्रमें नहीं बतलाया है तथापि यह सूत्र देशामर्षक होनेसे इस स्थानका ग्रहण हो जाता है ।

❀ इकीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले जीवके स्त्रीवेदका उपशम होकर जब तक छह नोकपायोंका उपशम नहीं होता है तब तक अटारह प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है ।

§ २४१. उसी इक्कीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले जीवके अन्तरकरण करनेके बाद नपुंसकवेद

१. ता०प्रतौ तदो दंसणमोहपयडीहि इति पाठः ।

उच्यतेसु जात्र छण्णोकमाया अणुवमंता ताव पयदसंक्रमद्वानमेकारसकमाय-सत्तणोकसाय-पडिवदमुप्पज्जइ, पुच्चुत्तसंक्रमपयडीसु इत्थिवेदस्स वहिन्भावादो । एवमिगिगीम-चउवीस-संतकम्मिण्ण अवलंबिय उचसमसेदीपाओग्गाणि संक्रमद्वानाणि वीगादीणि परुविय संपहि सत्तारसादीणं तिण्हमसंक्रमपाओग्गाणाणमसंभवे कारणणिदंमं जुणमाणो उवरिसं पबंधमाह—

⊗ सत्तारसगहं केण कारणेण एत्थि संकमो ?

‡ २४२. सत्तारमण्हं पयडीणं संक्रमपाओग्गाभावेण संभवो केण कारणेण णत्थि ति पुच्छिदं होइ ।

⊗ खवगो एक्खावीसादो एकपहारेण अट्ट कसाए अवणेदि ।

‡ २४३. खवगो ताव एक्खावीससंतकम्मद्वानादो एकवारणेव अट्ट कसाए अवणेह । एवमवणिदे पयदद्वानुप्पत्ती तत्थ णत्थि ति भणिदं होइ । संपहि एदस्सेव फुडीकट्ट-मुत्तरसुत्तमाह ।

⊗ तदो अट्टकसाएसु अवणिदेसु तेरसगहं संकमो होइ ।

‡ २४४. जेण कारणेण अट्टकसाएसु जुगवमवणिदेसु तेरससंक्रमद्वानमुप्पज्जइ तेण खवगमस्सियुण सत्तारमपयडिद्वानस्य णत्थि संभवो ति मुत्तन्थयंगहो ।

और जीवेदका उपशम होकर जघनक एर नोकरायोस उचशम नहीं होता तघतक भ्यारह कयाय और सात नोकपयोमे सम्भय खनेवाला प्रकृत संक्रमस्थान उत्पन्न होता है, क्योंकि यहाँ पर पूर्वोक्त उन्नीस संक्रम प्रकृतियोंमें से बीवेद प्रकृति और कम हो गई है । आशय यह है कि चढ़ते समय पीछे जो उन्नीस प्रकृतिसंक्रमस्थान बतला आये हैं उनमेंसे बीवेदके कम कर देने पर अठारह प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है । इस प्रकार शरीर और पौषोत्त प्रकृतिक सत्तारमथानोंका आलम्बन लेकर उचशमभ्रणिके योग्य योग्य आदि संक्रमस्थानोंका कथन करके अब जो सत्रह आदि तीन संक्रमके अयोग्य स्थान बतलाये हैं उनका संक्रम क्यों सम्भव नहीं है इसके कारणका निर्देश करनेकी इच्छामें आगेके प्रबंधका निर्देश करते हैं—

\* सत्रह प्रकृतियोंका किस कारणसे संक्रम नहीं होता ।

‡ २४५ सत्रह प्रकृतियोंका संक्रमके योग्य क्यों नहीं है यह हम सूत्रके द्वारा पूछा गया है ।

\* क्योंकि क्षपक जीव इकीस प्रकृतियोंमेंसे एक प्रहारके द्वारा आठ कपायोंका अभाव करता है ।

‡ २४६ क्षपक तो इकीस प्रकृतिक सत्त्वस्थानमें एक बारमें ही आठ कपायोंको निबाल फेंकता है और इस प्रकार निकाल देने पर वहाँ प्रकृत स्थानकी उत्पत्ति नहीं होती है यह उक्त कथनका तात्पर्य है । अब इसी बातको स्पष्ट करनेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

\* हम लिये आठ कपायोंका अभाव कर देने पर तेरहप्रकृतिक संक्रमस्थान होता है ।

‡ २४७. यतः आठ कपायोंका एक साथ अभाव कर देने पर तेरह प्रकृतिक संक्रमस्थान उत्पन्न होता है अतः क्षपक जीवकी अपेक्षा सत्रह प्रकृतिकस्थान सम्भव नहीं है यह इस सूत्रका



❀ उवसामगस्स वि एक्कावीसदिकम्मंसियस्स छसु कम्मेषु उवसंतेसु वारसएहं संकमो भवदि ।

§ २४५. एकवीससंतकम्मियस्सुवसामगस्स वि पयड्डिणाणसंभवो णत्थि ति सुत्तत्थसंबंधो । कुदो ? तस्साणुपुव्वीसंकमवसेण लोभस्सासंकमं कादूणं णवुंस-इत्थिवेदे जहाकममुवसामिय अट्टारससकामयभावेणावड्ढिदस्स छसु कम्मेषु उवसंतेसु वारसएहं पयडीणं संकमुवलंभादो ।

❀ चउवीसदिकम्मंसियस्स छसु कम्मेषु उवसंतेसु चोइसएहं संकमो भवदि ।

§ २४६. चउवीससंतकम्मियस्स वि उवसामगस्स पयड्डिणाणसंभवासंका ण कायव्वा, तस्स वि तेवीससंकमट्टाणादो आणुपुव्वीसंकमादिवसेण चावीस-इगित्रीस-वीस-संकमट्टाणाणि उपाइय समवड्ढिदस्स छसु कम्मेषु उवसंतेसु पुरिसवेदेण सह एकारस-कसाय-दोदंसणमोहपयडीणं संकमपाओग्गभावेणुप्पत्तिदंसणादो ।

❀ एदेण कारणेण सत्तारसएहं वा सोलसएहं वा-पणारसएहं वा संकमो णत्थि ।

§ २४७. एदेणाणंतरपरुविदेण कारणेण सत्तारसएहं पयडीणं संकमो णत्थि । जहा सत्तारसएहमेवं सोलसएहं पणारसएहं च पयडीणं णत्थि चेव संकमो, त्तिपुरिस-

समुदायार्थं ह ।

❀ इक्कीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले उपशामकके भी छह नोकपायोंका उपशम होने पर चारह प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है ।

§ २४५. इक्कीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले उपशामक जीवके भी प्रकृत संक्रमस्थान सम्भव नहीं है यह इस सूत्रका तात्पर्य है, क्योंकि आनुपूर्वी संक्रमके कारण लोभसंवलनका संक्रम न करके तथा नपुंसकवेद और स्त्रीवेदका क्रमसे उपशाम करके अठारह प्रकृतिक संक्रमस्थानको प्राप्त होकर स्थित हुए इस जीवके छह नोकपायोंके उपशान्त होनेपर चारहप्रकृतिक संक्रमस्थान उपलब्ध होता है ।

❀ तथा चौवीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले उपशामक जीवके छह नोकपायोंके उपशान्त होने पर चौदहप्रकृतिक संक्रमस्थान होता है ।

§ २४६. जो चौवीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला उपशामक जीव है उसके भी प्रकृत स्थान सम्भव होगा ऐसी आशंका करना ठीक नहीं है, क्योंकि तेईस प्रकृतिक संक्रमस्थानमेसे आनुपूर्वी संक्रम आदिके कारण नाईस, उक्कीस और वीस प्रकृतिक संक्रमस्थानोंको उत्पन्न करके अवस्थित हुए उसके क्रमसे छह नोकपायोंके उपशान्त हो जानेपर पुरुषवेदके साथ ग्यारह कषाय और दो दर्शन-मोहनीय इन चौदह प्रकृतियोंकी संक्रमप्रायोग्यरूपसे उत्पत्ति देखी जाती है ।

❀ इस कारणसे सत्रह सोलह और पन्द्रह प्रकृतियोंका संक्रम नहीं होता ।

§ २४७. यह जो अनन्तर कारण कह आये है उससे सत्रह प्रकृतियोंका संक्रम नहीं होता है । और जिस प्रकार सत्रह प्रकृतियोंका संक्रम नहीं होता उसीप्रकार सोलह और पन्द्रह

संबंधेण गवेसिज्जमाणणं तेणि गंभवाणुवलंभादो ।

§ २४८. एवं पयदत्थोवगंहारं काळण मंपाहि चोदससंकमट्टाणस्स पयडिण्हिदेस-  
सुहेण परूवणट्टमुचरमुत्तं भणइ—

❁ चोदसएहं चउवीसदिकम्मंसियस्स छुमु कम्मेषु उवसामिदेसु  
पुरिसवेदे अणुवसंते ।

§ २४९. सुगममेदं सुत्तं, अणंतगदीदकारणपस्वणाए गयत्थत्तादो । ओदरमाण-  
संबंधेण वि पयदट्टाणसंभवो एत्थाणुमगियच्चो ।

प्रकृतियोंका भी संक्रम नहीं होता है, क्योंकि तीन पुरुषों (स्वामियों) के सम्बन्धसे विचार करनेपर एक स्थानोंकी संक्रमस्थानरूपसे सम्भावना नहीं उचलच्य होती ।

**विशेषार्थ—**यहां सत्रह, सोलह और पन्द्रह प्रकृतिक स्थानोंका संक्रम क्यों नहीं होता है यह बतलाया है जो द्वायिक सम्यग्दृष्टि जीव क्षपणभेगीपर चढ़ता है उसके जब आठ कर्मायोंका क्षय होता है तब इतीमसे इन्द्रम तेरह प्रकृतिक संक्रम स्थान उत्पन्न होता है, इनलिये तो क्षपण-श्रेणियांले जीवके ये स्थान सम्भव नहीं होनेसे उनका संक्रम नहीं बनता । उपशमश्रेणिकी अपेक्षा भी यदि इतीम प्रकृतियोंकी सत्तापाला उपशमश्रेणि पर चढ़ता है तो पहले यह आनुपूर्वी संक्रमका प्रारम्भ करके २० प्रकृतिक संक्रमस्थान प्राप्त करता है । फिर नपुंसकवेदका उपशम करके १६ प्रकृतिक संक्रमस्थान प्राप्त करता है । फिर स्त्रीवेदका उपशम करके १२ प्रकृतिक संक्रमस्थान प्राप्त करता है । इसके बाद इसके एक साथ छह नोकर्मायोंका उपशम होनेसे बारह प्रकृतिक संक्रमस्थान प्राप्त होता है इनलिये इसके भी सत्रह, सोलह और पन्द्रह प्रकृतिक संक्रमस्थान सम्भव न होनेसे उनका संक्रम नहीं बनता है । अब रहा चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तापाला उपशमक जीव जो इसके प्रारम्भमें तो तेरह प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है, क्योंकि इसके सम्यग्दृष्टप्रकृतिका संक्रम नहीं होता । फिर आनुपूर्वीसंक्रमका प्रारम्भ होने पर बारस प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है । फिर नपुंसकवेद और स्त्रीवेदका उपशम होने पर क्रमसे इतीम और बीस प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है । इसके बाद इसके भी छह नोकर्मायोंका एक साथ उपशम होनेके कारण चौदह प्रकृतिक संक्रमस्थान उत्पन्न होता है । इस प्रकार इसके भी सत्रह, सोलह और पन्द्रह प्रकृतिक संक्रमस्थान सम्भव नहीं होनेसे उनका संक्रम नहीं होता है । यही कारण है कि प्रकृतमें उन तीन संक्रमस्थानोंका निषेध किया है ।

§ २४८. इस प्रकार प्रकृत अर्थका उपनंदाए करके अब चौदह संक्रमस्थानकी प्रकृतियोंके निर्देश द्वारा कथन करनेके लिए आगेका सूत्र कहते हैं—

❁ चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले जीवके छह नोकर्मायोंका उपशम होकर पुरुष वेदका उपशम नहीं होने तक चौदह प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है ।

§ २४९. यह सूत्र सुगम है, क्योंकि अनन्तरपूर्व कारणका कथन करते समय इसका विचार कर चुके हैं । उपशमश्रेणिले उतरनेवाले जीवके सम्यग्दृष्टसे भी यहाँ पर प्रकृत स्थानका विचार कर लेना चाहिये ।

**विशेषार्थ—**यहाँ चौदह प्रकृतिकसंक्रमस्थान दो प्रकारसे बतलाया है । एक चढ़ते समय और दूसरा उतरते समय । चढ़ते समय चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले जिस जीवके क्रमसे आनुपूर्वी संक्रमका प्रारम्भ होकर नपुंसकवेदका उपशम, स्त्रीवेदका उपशम और छह नोकर्मायोंका उपशम हो गया है उसके यह स्थान प्राप्त होता है । तथा उतरते समय अग्रत्याख्यानावरण क्रोध और प्रत्याख्यानावरण

❀ तेरसण्हं चउवीसदिकम्मंसियस्स पुरिसवेदे उवसंते कसाएंसु अणुवसंतेसु ।

§ २५०. तस्सेव चउवीससंतकम्मियस्स चोदससंकाभयभावेणावट्टिदस्सं पुव्वुत्त-  
चोदसपयडीसु पुरिसवेदे उवसंते पयदसंकमट्ठाणसुप्पज्झइ, कसायाणमणुवसमे तदुप्पत्तीए  
विरोहाभावादो । एवं चउवीससंतकम्मियसंबंधेण तेरससंकमट्ठाणसुप्पाइय पयारंतरेणावि  
तदुप्पायणट्टमुत्तरसुत्तमाह—

❀ खवगस्स वा अट्टकसाएस खविदेसु जाव अणाणुपुव्वीसंकमो ।

§ २५१. इगिवीससंतकम्मादो अट्टकसाएसु खविदेसु चदुसंजलण-णवणोकसायाणं  
संकमपाओग्गभावेण परिप्फुडमुवलंभादो । तदो चेव जाव अणाणुपुव्वीसंकमो त्ति उचं,  
आणुपुव्वीसंकमे जादे लोभसंजलणस्स संकमपाओग्गचविणासेण ट्ठाणंतरुप्पत्तिदंसणादो ।

क्रोधका अपकर्षण होकर जब तक पुरुषवेद उपशान्त रहता है तब तक यह स्थान होता है । प्रथम प्रकारमें लोभसंज्वलनके सिवा ग्यारह कपाय, पुरुषवेद और दो दर्शनमोहनीय इन चौदह प्रकृतियोंका संक्रम होता रहता है । तथा दूसरे प्रकारमें बारह कपाय और दो दर्शनमोहनीय इन चौदह प्रकृतियोंका संक्रम होता रहता है ।

\* चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले जीवके पुरुषवेदके उपशान्त और कपायोंके अनुपशान्त रहते हुए तेरहप्रकृतिक संक्रमस्थान होता है ।

§ २५०. चौदह प्रकृतियोंका संक्रम करनेवाले उसी चौबीस प्रकृतिक सत्कर्मवाले जीवके पूर्वोक्त चौदह प्रकृतियोंमेंसे पुरुषवेदके उपशान्त होने पर प्रकृत संक्रमस्थान उत्पन्न होता है, क्योंकि जब तक कपायोंका उपशम नहीं होता तब तक इस स्थानकी उत्पत्ति होनेमें कोई विरोध नहीं आता । इस प्रकार चौबीस प्रकृतिक सत्त्वस्थानके सम्बन्धसे तेरह प्रकृतिक संक्रमस्थानको उत्पन्न करके प्रकारान्तरसे भी उस स्थानको उत्पन्न करनेके लिये आगोका सूत्र कहते हैं—

\* तथा क्षपक जीवके आठ कपायोंका क्षय हो जाने पर जब तक अनातुपूर्वी संक्रमका सञ्जाव है तब तक तेरह प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है ।

§ २५१. क्षपकके सत्ताको प्राप्त इक्कीस प्रकृतियोंमेंसे आठ कपायोंका क्षय होनेपर संक्रमके योग्य चार संज्वलन और नौ नोकपाय ये तेरह प्रकृतियाँ स्पष्ट रूपसे धार्य जाती हैं, इसीलिये जब तक अनातुपूर्वी संक्रम है ऐसा कहा है, क्योंकि आतुपूर्वी संक्रमका प्रारम्भ होनेपर लोभ संज्वलन संक्रमके योग्य नहीं रहनेसे दूसरे संक्रमस्थानकी उत्पत्ति देखी जाती है ।

विशेषार्थ—यहांसे तेरह प्रकृतिक संक्रमस्थान दो प्रकारसे उत्पन्न होता है ऐसा बतलाया है—प्रथम उपशमश्रेणिकी अपेक्षा और दूसरा क्षपकश्रेणिकी अपेक्षा । प्रथम स्थान तो चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले जीवके पुरुषवेदका उपशम होनेपर प्राप्त होता है और दूसरा स्थान आठ कपायोंका क्षय होनेपर प्राप्त होता है । प्रथम प्रकारमें लोभ संज्वलनके सिवा ग्यारह कपाय और दो दर्शनमोहनीय इन तेरह प्रकृतियोंका संक्रम होता रहता है और दूसरे प्रकारमें चार संज्वलन और नौ नोकपाय इन तेरह प्रकृतियोंका संक्रम होता रहता है ।

⊗ धारसग्रहं खवगस्स आणुपुञ्जीसंकमो आहत्तो जाव एवुंसयवेदो अक्खीणो ।

§ २५२. तस्सेव तेरसगं कामयस्स खवगस्स आणुपुञ्जीसंकमो आहत्तो जाव णवुंसयवेदो अक्खीणो ताव वाग्गसण्हं गं कमट्ठाणं होइ चि मुत्तयमंगहो ।

⊗ एककावीसदिकम्मंसियस्स वा छसु कम्मसेसु उपसत्तेसु पुरिसवेदे अणुवसंते ।

§ २५३. एकवीसकम्मंसियस्स वा उवसामयस्स छमु कम्मसेसु उवसंतेसु तं चैव संकमट्ठाणमुप्पज्जइ, पुग्गिसवेदे अणुवगंते तेण गह एकाम्मकमायाणं पग्गिगहादो । ओदरमाणगस्स इगिवीममंतकम्मियस्स पयदगं कमट्ठाणसंभवो वचच्ची, तिविहे कौहे ओकट्ठिदे तद्वलंभादो । चउवीसमंतकम्मियस्स वाग्गसण्हं कमट्ठाणमंभवो णत्थि ।

\* धपक जीवके आनुपूर्वी संक्रमका प्रारम्भ होकर जब तक नपुंसकवेदका क्षय नहीं होता है तब तक वारह प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है ।

§ २५२. तेरह प्रकृतियोंका संक्रम करनेवाले उन्नीस धपक जीवके आनुपूर्वी संक्रमका प्रारम्भ होकर जब तक नपुंसकवेदका क्षय नहीं होता है तब तक वारह प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है यह उक्त सूत्रका नमुन्चयार्थ है ।

\* अथवा इक्कीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले जीवके छह नोकपायोंका उपशम होकर पुरुषवेदके अनुपशान्त रहने हुए वारह प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है ।

§ २५३. अथवा उन्नीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले उपशामक जीवके छह नोकपायोंके उपशान्त हो जानेपर वही संक्रमस्थान उत्पन्न होता है, क्योंकि यहाँ पुरुषवेदका उपशम नहीं होनेसे उसके साथ संक्रमके योग्य ग्यारह कपायोंको ग्रहण किया है । उन्नीस प्रकार उत्तरनेवाले इक्कीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले जीवके प्रष्टम संक्रमस्थानका कथन करना चाहिये, क्योंकि तीन प्रकारके क्रोधयुक्त अपकर्षण होने पर उक्त स्थान उपलब्ध होता है । किन्तु उन्नीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले जीवके वारह प्रकृतिक संक्रमस्थान नहीं प्राप्त होता ।

विशेषार्थ—यहाँ वारह प्रकृतिक संक्रमस्थान तीन प्रकारसे बतलाया है—प्रथम चपक श्रेणिकी अपेक्षा और अन्तके ही उपशमश्रेणिकी अपेक्षा । प्रथम स्थान तो चपक जीवके आनुपूर्वी संक्रमका प्रारम्भ होनेके बाद जब तक नपुंसकवेदका क्षय नहीं होता तब तक प्राप्त होता है । दूसरा स्थान क्षाधिक सम्यग्दृष्टि उपशामकके चढ़ते समय छह नोकपायोंका उपशम होकर जब तक पुरुषवेदका उपशम नहीं होता तब तक प्राप्त होता है और तीसरा स्थान उन्नीस जीवके उत्तरते समय तीन प्रकारके क्रोधोंके अपकर्षण होनेके समयसे लेकर जब तक पुरुषवेद उपशान्त रहता है तब तक प्राप्त होता है । प्रथम प्रकारमें चार संवलय और नौ नोकपाय इन तेरह प्रकृतियोंकी सत्ता हैं पर संवलय लोभके सिवा संक्रम वारहका होता है । दूसरे प्रकारमें सत्ता तो इक्कीस प्रकृतियोंकी है पर संक्रम संवलय लोभके सिवा ग्यारह कपाय और पुरुषवेद इन वारह प्रकृतियोंका होता है । इसी तरह तीसरे प्रकारमें सत्ता तो इक्कीस प्रकृतियोंकी है पर संक्रम वारह कपायका ही होता है ।

१. ब्रा० प्रती—भकमादो रति पाठः ।

ॐ एककारणसहं स्वभावस्य षडंत्यवेदे स्वविदे इतिवेदे अखलीये ।

॥ २५४. स्वभावस्य बहुकारणस्यैवैवमवधारणे तेषामेकान्यथावेगवद्विद्वत्स्य पुणो आपुष्पुष्पिकेनवस्येण सवृष्पाइवद्वारास्यसंकेतव्यस्य षडंत्यवेदे परिक्रमणे इत्यत्र संकेतव्यापुष्पुष्पे, तिमंजलप-शुद्धोत्सवाप्येण तस्य संकेतव्येणयावे ।

ॐ अथवा एककारणस्यैवैवमवधारणे पुरित्वेदे स्वसर्वे अखलीयेऽप्युक्तव्यु ।

॥ २५५. इत्ये । एककारणस्यैवमवधारणे परिक्रमणे वत्परिक्रमणव्यु ।

ॐ चतुर्वीतदिकन्मंसियस्य वा सुविहे कोहे स्वसर्वे कोहसंयत्स्ये अखलीये ।

॥ २५६. चतुर्वीतदिकन्मंसियस्य वा पितृकुलसंकेतव्यापुष्पुष्पे । इत्ये । सुखव्यु-विहायेण तेषामेकान्यथावेगवद्विद्वत्स्य तस्य सुविहयोहोव्यस्येण सुवे कोहसंयत्स्येण एव एकान्यथावेगवद्विद्वत्स्य संकेतव्येणयावे । अत्रैवमवधारणे पुरित्वेदे स्वसर्वे अखलीये, सुखव्युत्स्येण इत्येवमवधारणेणयावेगवद्विद्वत्स्येणयावे ।

यहां बोधपत्तान चर्चिण्युक्तव्ये नहीं कहा है जो चर्चिण्युक्तव्ये वैशाल्यके स्वकारण स्वकारणस्यैव चरित्ये चरित्ये ।

॥ अथवा एककारणस्यैवमवधारणे पुरित्वेदे स्वसर्वे अखलीये एतेषां एवमवधारणे अखलीये संकेतव्येण होता है ।

॥ २५४. तेषां एककारणस्यैवमवधारणे परिक्रमणे वत्परिक्रमणव्यु । इत्ये । सुखव्यु-विहायेण तेषामेकान्यथावेगवद्विद्वत्स्य तस्य सुविहयोहोव्यस्येण सुवे कोहसंयत्स्येण एव एकान्यथावेगवद्विद्वत्स्य संकेतव्येणयावे । अत्रैवमवधारणे पुरित्वेदे स्वसर्वे अखलीये, सुखव्युत्स्येण इत्येवमवधारणेणयावेगवद्विद्वत्स्येणयावे ।

॥ अथवा चतुर्वीतदिकन्मंसियस्य वा सुविहे कोहे स्वसर्वे कोहसंयत्स्ये अखलीये ।

॥ २५५. इत्ये । एककारणस्यैवमवधारणे परिक्रमणे वत्परिक्रमणव्यु ।

॥ अथवा एककारणस्यैवमवधारणे पुरित्वेदे स्वसर्वे अखलीये एतेषां एवमवधारणे अखलीये संकेतव्येण होता है ।

॥ २५६. चतुर्वीतदिकन्मंसियस्य वा पितृकुलसंकेतव्यापुष्पुष्पे । इत्ये । सुखव्यु-विहायेण तेषामेकान्यथावेगवद्विद्वत्स्य तस्य सुविहयोहोव्यस्येण सुवे कोहसंयत्स्येण एव एकान्यथावेगवद्विद्वत्स्य संकेतव्येणयावे । अत्रैवमवधारणे पुरित्वेदे स्वसर्वे अखलीये, सुखव्युत्स्येण इत्येवमवधारणेणयावेगवद्विद्वत्स्येणयावे ।

विशेषार्थ— यहाँ सार्वभौमिक संकेतव्येण वा एककारणस्यैवमवधारणे अखलीये संकेतव्येण होता है । अथवा चतुर्वीतदिकन्मंसियस्य वा सुविहे कोहे स्वसर्वे कोहसंयत्स्ये अखलीये ।

१. कोहसंयत्स्ये अखलीये इत्ये चर ।

❖ दसण्हं खवगस्स इत्थिवेदे खीणे छसु कम्मसेसु अक्खीणेषु ।

§ २५७. दसण्हं संकमद्वाणं खवगस्स होइ ति सुत्तत्थसंबंधो । कम्हि अवत्थाए तं होइ ति उत्ते इत्थिवेदे खीणे छण्णोकसाएसु अक्खीणेषु होइ ति घेत्तच्चं, तत्थ सत्तणोकसाय-संजलणतियस्स संकमोवलंभादो ।

❖ अथवा चउवीसदिकम्मंसियस्स कोधसंजलणे उवसंते सेसेसु कसाएसु अणुवसंतेसु ।

§ २५८. चउवीसदिकम्मंसियस्स दुविहं कोहमुवसामिय एककारसपयडीणं संकमंसामित्तेणावट्ठिदस्स कोहमंजलणोवसमे जादे पयदसंकमद्वाणमुपज्जइ ति सुत्तत्थ-

क्षय होकर जब तक स्त्रीवेदका क्षय नहीं होता तब तक यह संकमस्थान होता है । इसके चार संज्वलन और आठ नोकपाय इन ग्यारह प्रकृतियोंकी सत्ता है पर संकम संज्वलन लोभके बिना ग्यारह प्रकृतियोंका होता है । उपशमश्रेणिकी अपेक्षा प्रथम प्रकर इन्हीं प्रकृतियोंकी सत्तावाले जीवके उपशमश्रेणिकी पर चढ़ते समय प्राप्त होता है । यह स्थान पुरुषवेदके उपशमके बाद होता है । इसमें संज्वलन लोभके बिना ग्यारह कपायोंका संकम होता रहता है । उपशमश्रेणिकी अपेक्षा दूसरा प्रकार चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले जीवके उपशमश्रेणिकी चढ़ते समय प्राप्त होता है । यह स्थान अत्रत्यास्थानावरण क्रोध और अत्रत्यास्थानावरण क्रोध इन दो प्रकारके क्रोधोंके उपशमन्त होने पर प्राप्त होता है । इसमें अत्रत्यास्थानावरण मान, माया, लोभ ये तीन, अत्रत्यास्थानावरण मान, माया, लोभ ये तीन संज्वलन क्रोध, मान, माया ये तीन और दर्शनमोहनीयकी दो इस प्रकार इन ग्यारह प्रकृतियोंका संकम होता रहता है । चौथा स्थान इसी जीवके उतरते समय संज्वलन क्रोधके उपशमन्त रहते हुए प्राप्त होता है । इसके तीनों प्रकारके मान, माया और लोभ ये चो और दर्शनमोहनीयकी दो इन ग्यारह प्रकृतियोंका संकम होता है । इस प्रकार ग्यारह प्रकृतिक संकमस्थानके कुल भेद चार होते हैं यह सिद्ध हुआ ।

\* क्षपक जीवके स्त्रीवेदका क्षय होकर छह नोकपायोंका क्षय नहीं होनेपर दस प्रकृतिक संकमस्थान होता है ।

§ २५७. दस प्रकृतिक संकमस्थान क्षपकके होता है यह इस सूत्रका तात्पर्य है ।

शंका—किस अवस्थाके होने पर वह होता है ?

समाधान—स्त्रीवेदका क्षय होकर छह नोकपायोंके अश्रेण रहते हुए वह होता है ऐसा अर्थ लेना चाहिये, क्योंकि यहाँ सात नोकपाय और तीन संज्वलनोंका संकम उपलब्ध होता है ।

\* अथवा चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले जीवके क्रोध संज्वलनका उपशम होकर शेष कपायोंके अनुपशमन्त रहते हुए दस प्रकृतिक संकमस्थान होता है ।

§ २५८. चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला जो जीव दो प्रकारके क्रोधोंका उपशम कर ग्यारह प्रकृतिक संकमस्थानके स्वामीरूपसे अवस्थित है उसके क्रोध संज्वलनका उपशम हो जाने पर प्रकृत संकमस्थान उत्पन्न होता है यह इस सूत्रका अभिप्राय है । यहाँ सूत्रमे जो 'सेसकसाएसु

संवंधो । एत्थ सेसकसाएसु अणुवसंतेसु त्ति वयणमद्वकसाय-दोदंसणमोहपयडीणं महणडं ।

❀ एवएहं एक्कावीसदिकम्मंसियस्स दुविहे कोहे उवसंते कोहसंजलणेण अणुवसंते ।

§ २५९. इगिवीससंतकम्मियस्स एक्कावीसपयडिसंकमादो लोभाणुपुञ्जी संकमं काऊण क्रमेण णवणोकसाए उवसासिय एकारससंक्रामयभावेणावडिदस्स पुणो दुविहे कोहे उवसंते पयदसंकमट्ठाणमुप्पज्जइ, कोहसंजलणेण सह तिविहमाण-माया-दुविहलोभ-पयडीणं संकमोचलंभादो । ओदरमाणसंवंधेण वि एत्थ पयदसंकमट्ठाणसंभवो वचव्वो, विरोहाभावादो । एत्थ पयारंतरसंभवासंकाणिरायरणडुमुत्तरसुत्तमाह—

❀ चउवीसदिकम्मंसियस्स खवगस्स च णत्थि ।

अणुवसंतेसु' यह वचन दिया है सो यह आठ कषाय और दो दर्शनमोहनीय इन दस प्रकृतियोंके ग्रहण करनेके लिये दिया है ।

विशेषार्थ—यहाँ दस प्रकृतिक संक्रमस्थान दो प्रकारसे बतलाया है—प्रथम क्षपकश्रेणिकी अपेक्षा और दूसरा उपशमश्रेणिकी अपेक्षा । क्षपकश्रेणिकी अपेक्षा स्त्रीवेदका क्षय करके छह नोकषायोंका क्षय करते समय यह स्थान प्राप्त होता है । इस स्थानमें चार संज्वलन और सात नोकषायोंकी सत्ता पाई जाती है किन्तु संज्वलन लोभके बिना शेष दसका संक्रम होता है । उपशमश्रेणिकी अपेक्षा चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले जीवके दूसरा संक्रमस्थान पाया जाता है । यह स्थान जब क्रोधसंज्वलनका उपशम करनेके बाद दो मानोंका उपशम करनेका प्रारम्भ करता है तब प्राप्त होता है । इसके प्रत्याख्यानान्तरण मान, माया और लोभ ये तीन; अप्रत्याख्यानान्तरण मान, माया और लोभ ये तीन; संज्वलन मान और माया ये दो तथा दर्शनमोहनीयकी दो इन दस प्रकृतियोंका संक्रम पाया जाता है ।

❀ इक्कीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले जीवके दो प्रकारके क्रोधका उपशम होकर क्रोधसंज्वलनके अनुपशान्त रहते हुए नौ प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है ।

§ २५६. जो इक्कीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला जीव इक्कीस प्रकृतियोंके संक्रमके बाद लोभमें आनुपूर्वी संक्रमको प्राप्त करके और क्रमसे नौ नोकषायोंका उपशम करके ग्यारह प्रकृतिक संक्रमस्थानको प्राप्त होकर स्थित है उसके दस प्रकारके क्रोधका उपशम होने पर प्रकृत संक्रमस्थान उत्पन्न होता है, क्योंकि उसके क्रोधसंज्वलनके साथ तीन प्रकारके मान, तीन प्रकारकी माया और दो प्रकारके लोभ इन नौ प्रकृतियोंका संक्रम उपलब्ध होता है । उपशमश्रेणिकी उत्तरनेवालेके सम्बन्धसे भी यहाँ पर प्रकृत संक्रमस्थानका कथन करना चाहिये, क्योंकि इसमें कोई विरोध नहीं आता । यहाँ पर यह नौ प्रकृतिक संक्रमस्थान प्रकारान्तरसे भी सम्भव है क्या इस आशंकाके निवारण करनेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

❀ किन्तु चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले उपशमक जीवके और क्षपक जीवके यह स्थान नहीं होता ।

१ २६०. चउवीसदिकम्मंसियस्स ताव पयदगंक्रमद्वाणमंभवो पत्थि, कौहसंजलण-  
मुवगामिय दमण्हं संकामयभावेणावट्टिदम्म तस्स दुविहे माणे उवसंते तत्तो हेट्ठिम-  
द्वाणुप्पनिदंनपादो । सवगम्म वि द्दन्थिवेदमवगण दमगंकामयस्स छमु कम्मेषु खीणेषु  
चउण्हं संकमद्वाणुप्पनिदंनपादो पत्थि पयदगंक्रमद्वाणमंभवो । तम्हा पुच्चुत्तो चेव  
तदुप्पत्तिपयागे णाण्णो नि गिट्ठं ।

ॐ अट्टमहं एकावीसदिकम्मंसियस्स निविहे कोहे उवसंते सेसेसु  
कसाणसु अणुवसंतेसु ।

१ २६१. गिवागमंनकम्मियम्मवगामगम्म विविक्कोदोवगमे नंते गंक्रमद्वाणमैद-  
मुप्पज्ज, नमणंतग्गविविदगंक्रमपयदोसु कौहसंजलणम्म वहिदभावंदमणादो ।

ॐ अत्त्वा चउवीसदिकम्मंसियस्स दुविहे माणे उवसंते माणसंजलणे  
अणुवसंते ।

१ २६०. चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले जीवके प्रथम संक्रमस्थान तो सम्भव नहीं है, क्योंकि क्रोधसंज्वलनका उपशम करने को दस प्रकृतियोंका संक्रम स्थान हुआ जाता है उसके दो प्रकारके मानका उपशम करने पर तो प्रकृतिक संक्रमस्थानके तीसरे स्थानकी उत्पत्ति देयी जाती है । इसी प्रकार क्रोधका छव हो जाने पर दस प्रकृतियोंका संक्रम करनेवाले पाठ जीवके भी छह मोक्षस्थानका छव हो जाने पर चार प्रकृतिक संक्रमस्थानकी उत्पत्ति देयी जाती है, उगलिये उनके प्रकृत संक्रमस्थान सम्भव नहीं है । अतः उसके उत्पत्ति का प्रकार पूर्वोक्त ही है अन्य नई यह बात निश्च होनी है ।

विशेषार्थ—यहां नौ प्रकृतिक संक्रमस्थान दो प्रकारके सत्तावा है । जो दोनों ही प्रकार उपशमश्रेणिकी उपशममे प्राप्त होते हैं । तब उत्पन्न प्रकृतिय की सत्तावाले जीवके दो प्रकारके क्रोध का उपशम हो जाता है किन्तु क्रोधसंज्वलन अनुपशान्त रहता है तब प्रथम प्रकार प्राप्त होता है । इस स्थानमें क्रोधसंज्वलन, तीन मान, तीन माया और संज्वलन लोभके सिवा शेष दो लोभ इन नौ प्रकृतियोंका संक्रम होता है । दूसरा प्रकार उपशमश्रेणिके उत्तरते समय उसी इषीन प्रकृतियोंकी सत्तावाले जीवके प्राप्त होता है । किन्तु इसके संज्वलन क्रोध उपशान्त रहता है और तीन मान, तीन माया तथा तीन लोभ ये नौ प्रकृतियाँ अनुपशान्त होकर इनका संक्रम होता रहता है । इन दो प्रकारोंको छोड़कर अन्य किसी प्रकारमे उस स्थानकी उत्पत्ति सम्भव नहीं है । स्वष्टीकरण मूलमें किया ही है ।

॥ इन्हीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले जीवके तीन प्रकारके क्रोधका उपशम होकर शेष कयायोंके अनुपशान्त रहते हुए आठ प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है ।

१ २६१. उषीम प्रकृतियोंकी सत्तावाले उपशमक जीवके तीन प्रकारके क्रोधका उपशम होने पर प्रकृत संक्रमस्थान उत्पन्न होता है, क्योंकि इससे पूर्वके स्थानमें जो संक्रमरूप प्रकृतियाँ कही हैं उनमेंसे क्रोधसंज्वलनका वहिर्भावं देखा जाता है ।

॥ अथवा चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले जीवके दो प्रकारके मानका उपशम होकर मानसंज्वलनके अनुपशान्त रहते हुए आठ प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है ।

१. आ० प्रती छेडिमाणुप्पत्तिदंनपादो इति पाठः । २. ता० प्रती पयदहाणसमवो इति पाठः ।



§ २६२. क्रोधसंजलणमुत्रसामिय दसण्हं संकामयत्तेणावद्धिदस्स तस्स दुविह-  
माणोवसमे गिरुद्धसंकमद्वाणुप्पत्तिं पडि विरोहाभावादो । एत्थ वि ओदरमाणसंबंधेण  
पयदसंकमद्वाणपरुवणा कायव्वा ।

❊ सत्तण्हं चउवीसदिकम्मंसियस्स तिविहे माणे उवसंते सेसेसु  
कसाएसु अणुवसंतेसु ।

§ २६३. चउवीसदिकम्मंसियस्से त्ति वयणेण इगिवीसकम्मंसियस्स खवगस्स च  
पडिसेहो कओ, तत्थ पयदसंकमद्वाणुप्पत्तीए असंभवादो । तदो चउवीससंतकम्मियस्स  
तिविहे माणे उवसंते तिविहमाय-दुविहलोह-दंसणमोहपयडीओ धेत्तूण पयदसंकम-  
द्वाणमुप्पज्जइ त्ति धेत्तव्वं ।

§ २६२. क्रोधसंज्वलनको उपशमा कर जो दस प्रकृतियोंका संक्रम करते हुए अवस्थित है  
उसके दो प्रकारके मानका उपशम होने पर प्रकृत संक्रमस्थानकी उत्पत्ति होनेमें कोई विरोध नहीं  
आता है । यहाँ पर भी उपशमश्रेणिसे उतरनेवाले जीवके सम्बन्धसे प्रकृत संक्रमस्थानका कथन  
करना चाहिये ।

विशेषार्थ—यहाँ पर आठ प्रकृतिक संक्रमस्थान तीन प्रकारसे बतलाया गया है । ये तीनों  
ही संक्रमस्थान उपशमश्रेणिसे प्राप्त होते हैं । उनसे दो चढ़नेवाले जीवके प्राप्त होते हैं और एक  
उतरनेवाले जीवके प्राप्त होता है । चढ़नेवालोंमें पहला इक्कीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले जीवके और  
दूसरा चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले जीवके होता है । प्रथम स्थान तीनों क्रोधोंके उपशान्त होने पर  
प्राप्त होता है । इसके तीनों मान, तीनों माया और लोभ संज्वलनके बिना दो लोभ इन आठ  
प्रकृतियोंका संक्रम होता रहता है । दूसरा स्थान दो प्रकारके मानके उपशान्त होने पर प्राप्त होता  
है । इसके मान संज्वलन, तीन माया, लोभसंज्वलनके बिना दो लोभ और दो दर्शनमोहनीय इन  
आठ प्रकृतियोंका संक्रम होता रहता है । इन दो स्थानके सिवा जो तीसरा स्थान उतरनेवालेके प्राप्त  
होता है सो वह चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले जीवके ही प्राप्त होता है । इसके तीन माया, तीन  
लोभ और दो दर्शनमोहनीय इन आठ प्रकृतियोंका संक्रम होता रहता है ।

\* चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले जीवके तीन प्रकारके मानका उपशम होकर  
शेष कपायोंके अनुपशान्त रहते हुए सात प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है ।

§ २६३. सूत्रमे 'चउवीसदिकम्मंसियस्स' वचन आया है सो इस द्वारा इक्कीस प्रकृतियोंकी  
सत्ताव ले उपशामकका और क्षयकका निषेध किया है, क्योंकि उसके प्रकृत संक्रमस्थानकी उत्पत्ति  
होना असम्भव है । अतः चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले जीवके तीन प्रकारका मान उपशान्त होने  
पर तीन प्रकारकी माया, दो प्रकारका ल.भ और दो दर्शनमोहनीय प्रकृतियाँ इन आठकी अपेक्षा  
प्रकृत संक्रमस्थान उत्पन्न होता है ऐसा जानना चाहिये ।

विशेषार्थ—सात प्रकृतिक संक्रमस्थान एक ही प्रकारका है जिसका टीकामे ही खुलासा  
किया है ।

॥ अथवा चतुर्विधसदिकम्मसियस्स दुचिहे माणे उवसंते सेसेसु कसाएसु गुवसंतेसु ।

§ २६४. कुदो ? तस्य माणमंजलणेण सह तिविहमाय-दुविहलोभाणं संक्रमदंमणादो । शोयमाणसंबंधेण वि पयदमंक्रमद्व्याणमेत्थाणुमांतव्वं ।

॥ अथवा चतुर्विधसदिकम्मसियस्स तिविहे माणे उवसंते सेसकसाएसु मणुवसंतेसु ।

§ २६५. कुदो ? तस्य तिविहमाय-दुविहलोभाणं मंक्रमदंमणादो ।

॥ अथवा चतुर्विधसदिकम्मसियस्स दुचिहाए मायाए उवसंताए सेसेसु अणुवसंतेसु ।

§ २६६. किं कारणं ? तस्य मायामंजलणेण सह दुविहलोभ-दोर्दंरणमोहपयडीणं संक्रमोवलंभादो ?

\* इक्षीम प्रकृतियोंकी सत्तावाले जीवके दो प्रकारके मानका उपशम होकर शेष कषायोंके अनुपशान्त रहने हुए छह प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है ।

§ २६४ क्योंकि इस संक्रमस्थानमें मान संज्वलनके साथ तीन प्रकारकी माया और दो प्रकारका लोभ इन छह प्रकृतियोंका संक्रम देखा जाता है । उत्तरनेवाले जीवके सम्बन्धसे भी यहाँ पर प्रकृत संक्रमस्थान ज्ञानना चाहिये ।

विशेषार्थ—यहाँ पर छह प्रकृतिक संक्रमस्थान दो प्रकारसे बतलाया गया है । ये दोनों ही स्थान इक्षीम प्रकृतियोंकी सत्तावाले जीवके उपशमश्रेणिये प्राप्त होते हैं । इनमेंसे पहला चतुर्विधसदिके और दूसरा उत्तरनेवाले जीवके होता है । चतुर्विधसदिके दो दो प्रकारके मानका उपशम होने पर होता है । इसके मान संज्वलन, तीन माया और दो लोभ इन छह प्रकृतियोंका संक्रम होता रहता है । तथा उत्तरनेवालेके मान संज्वलनके उपशान्त रहते हुए ही यह स्थान होता है । इसके तीन माया और तीन लोभ इन छह प्रकृतियोंका संक्रम होने लगता है ।

\* इक्षीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले जीवके तीन प्रकारके मानका उपशम होकर शेष कषायोंके अनुपशान्त रहते हुए पांच प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है ।

§ २६५. क्योंकि यहाँ पर तीन प्रकारकी माया और दो प्रकारके लोभका संक्रम देखा जाता है ।

\* अथवा चतुर्विधसदिके सत्तावाले जीवके दो प्रकारकी मायाका उपशम होकर शेष प्रकृतियोंके अनुपशान्त रहते हुए पांच प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है ।

§ २६६. क्योंकि यहाँ पर माया संज्वलनके साथ दो प्रकारके लोभ और दो दर्शनमोहनीय इन पांच प्रकृतियोंका संक्रम देखा जाता है ।

विशेषार्थ—यहाँ पर पांच प्रकृतिक संक्रमस्थान दो प्रकारसे बतलाया है । ये दोनों ही स्थान उपशमश्रेणिये चढ़ते समय प्राप्त होते हैं । पहला स्थान इक्षीस प्रकृतियोंकी सत्तावालेके होता है । इसके और सब प्रकृतियोंका तो उपशम हो जाता है किन्तु तीन माया और दो लोभ

❖ चउअहं खवगस्स छुसु कम्मेषु खीणेषु पुरिसवेदे अक्खीणेषु ।

§ २६७. खवगस्स इत्थिवेदकखयाणांतरमुप्पाइददससंकमट्ठाणस्स पुणो छण्णो-  
कसायसु खीणेषु पयदसंकमट्ठाणमुप्पज्जइ ति सुत्तत्थणिच्छओ ।

❖ अहवा चउवीसदिकम्मंसियस्स तिविहाए मायाए उवसंताए  
सेसेसु अणुवसंतेसु ।

§ २६८. तत्थ दुविहलोह-दोदंसणमोहपयडीणं संकमस्स परिप्फुडमुवलंमादो ।  
एत्थ वि ओदरमाणसंबंधेणेदं संकमट्ठाणमणुमगियव्वं ।

❖ तिरहं खवगस्स पुरिसवेदे खीणेषु सेसेसु अक्खीणेषु ।

च रहते हैं। संबलन लोभका आनुपूर्वी संक्रमके कारण संक्रम नहीं होता। दूसरा स्थान चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावालेके होता है। इसके और सबका उपशम तो हो जाता है किन्तु माया संबलन, दो लोभ और दो दर्शनमोहनीय इन पांच प्रकृतियोंका संक्रम होता रहता है। यहां भी संबलन लोभका संक्रम नहीं होता।

\* क्षपकके छह नोकपायोंका क्षय होकर पुरुषवेदके अक्षीण रहते हुए चार प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है।

§ २६७. श्रीवेदके क्षपके वाद् जिसने दस प्रकृतिक संक्रमस्थान उत्पन्न कर लिया है ऐसे क्षपक जीवके तदनन्तर छह नोकपायोंका क्षय करने पर प्रकृत संक्रमस्थान उत्पन्न होता है यह इस सूत्रका भाव है।

\* अथवा, चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले जीवके तीन प्रकारकी मायाका उपशम होकर शेष प्रकृतियोंके अनुपशान्त रहते हुए चार प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है।

§ २६८. क्योंकि यहां पर दो प्रकारके लोभ और दर्शनमोहनीयकी दो प्रकृतियां इन चारका स्पष्टरूपसे संक्रम उपलब्ध होता है। यहां पर भी उतरनेवाले जीवके सम्बन्धसे यह संक्रमस्थान जान लेना चाहिये।

विशेषार्थ—यहां पर चार प्रकृतिक संक्रमस्थान तीन प्रकारसे बतलाया है। एक क्षपक-श्रेणिकी अपेक्षा और दो उपशमश्रेणिकी अपेक्षा। उपशमश्रेणिके भी प्रथम चढ़नेवालेके और दूसरा उतरनेवालेके होता है। क्षपकश्रेणिके पहला स्थान छह नोकपायोंका क्षय होने पर प्राप्त होता है। इसमें चार संबलन और एक पुरुषवेद इन पांचकी सत्ता रहती है किन्तु संक्रम संबलन लोभके बिना चारका होता है। दूसरा स्थान चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावालेके होता है। इसमें दो लोभ और दो दर्शनमोहनीय इन चार प्रकृतियोंका संक्रम होता रहता है। संबलन लोभका संक्रम नहीं होता। तीसरा स्थान इक्कीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले जीवके उपशमश्रेणिके उतरते हुए तीन प्रकारके लोभके साथ संबलन मायाके संक्रमित करने पर होता है। उस समय इस जीवके तीन लोभ माया संबलन यह चार प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है।

\* क्षपक जीवके पुरुषवेदका क्षय होकर शेष प्रकृतियोंके अक्षीण रहते हुए तीन प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है।

§ २६६. तत्थ निण्हं मंजलणाणं संकमदंसणादो ।

❁ अथवा एककावीसदिकम्मंसियस्स दुविहाए मायाए उचसंताए सेसेसु अणुवसंतेसु ।

§ २७०. तत्थ मायामंजलणेण सह दोण्हं लोहाणं संकमदंसणादो ।

❁ दोण्हं खवगस्स कोहे खविदे सेसेसु अक्खीणेतु ।

§ २७१. माण-मायामंजलणाणं दोण्हं चैव तत्थ मंजलणादो ।

❁ अहवा एककावीसदिकम्मंसियस्स तिविहाए मायाए उचसंताए सेसेसु अणुवसंतेसु ।

§ २७२. तिविहमायोवगमे दुविहलोहस्सेव तत्थ मंजलणादो ।

❁ अहवा चउवीसदिकम्मंसियस्स दुविहे लोहे उचसंते ।

§ २७३. तस्म दुविहलोहोवगमेण दोदंसणमोहपयडीणं चैव मंजलणादो ।

§ २६६. क्योंकि यहाँ पर तीन संवलनोंका संक्रम देखा जाता है ।

\* अथवा इक्कीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले जीवके दो प्रकारकी मायाका उपशम होकर शेष प्रकृतियोंके अनुपगन्त रहते हुए तीन प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है ।

§ २७०. क्योंकि यहाँ पर माया संवलनके साथ दोनों लोभोंका संक्रम देखा जाता है ।

विशेषार्थ—यहाँ पर तीन प्रकृतिक संक्रमस्थान दो प्रकारसे बतलाया है—एक चपकश्रेणिकी अपेक्षा और दूसरा उपशमश्रेणिकी अपेक्षा । चपकश्रेणिके जो स्थान प्राप्त होता है वह पुस्पनेदके जय होनेपर प्राप्त होता है । यहाँ यद्यपि सत्ता चारों संवलनोंकी है तथापि संक्रम संवलन लोभके बिना शेष तीनका होता है । उपशमश्रेणिके प्राप्त होनेवाला स्थान इक्कीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले जीवके प्राप्त होता है । यह जीव जय दो प्रकारकी मायाका उपशम कर लेता है तब यह स्थान होता है । इसमें माया संवलनका और संवलन लोभके सिवा शेष दो लोभोंका संक्रम होता है ।

\* क्षपक जीवके क्रोधका भय होकर शेष प्रकृतियोंके अक्षीण रहते हुए दो प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है ।

§ २७१. क्योंकि यहाँपर मान और माया इन दो संवलन प्रकृतियोंका ही संक्रम देखा जाता है ।

\* अथवा इक्कीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले जीवके तीन प्रकारकी मायाका उपशम होकर शेष प्रकृतियोंके अनुपगन्त रहते हुए दो प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है ।

§ २७२. क्योंकि यहाँ पर तीन प्रकारकी मायाका उपशम होने पर दो प्रकारके लोभका ही संक्रम पाया जाता है ।

\* अथवा चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले जीवके दो प्रकारके लोभका उपशम होनेपर दो प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है ।

§ २७३. क्योंकि इसके दो प्रकारके लोभका उपशम होकर दर्शनमोहनीयकी दो प्रकृतियोंका

एदं दोदंसणमोहपयडिसंकमट्टाणं कस्स होइ त्ति आसंकाए इदमाह—

❀ सुहुमसांपराइय-उवसामयस्स वा उवसंतकसायस्स वा ।

§ २७४. सुगमं ।

❀ एकिस्से संकमो खवगस्स माणे खविदे मायाए अक्खीणाए ।

§ २७५. सुगमं ।

एवं ट्टाणममुक्कित्तणाए पयडिणिहेसो समत्तो ।

एवं पढमगाहाए अत्थो समत्तो ।

§ २७६. संपहि विदियादिगाहाणमत्थो सुगमो त्ति चुण्णिणसुत्ते ण परूविदो । तमिदाणि वत्तइस्सामो—‘सोलसय वारसट्टय० पडिग्गहा होंति।’ एसा विदिया गाहा पयडि-ट्टाणपडिग्गहापडिग्गहपरूवणे पडिचट्टा । तं जहा—गाहापुच्चद्वणिदिट्टाणि सोलसादीणि अपडिग्गहट्टाणाणि णाम १६, १२, ८, २०, २३, २४, २५, २६, २७, २८। एदाणि मोत्तूण सेसाणि वावीसादीणि एयपयडिपज्जंताणि पडिग्गहट्टाणाणि होंति । तेसिमंकविण्णासो

संक्रम उपलब्ध होता है। यह दर्शनमोहनीयकी अपेक्षा दो प्रकृतिक संक्रमस्थान किसके होता है ऐसी आशंका होने पर यह आगेका सूत्र कहते हैं—

❀ सूक्ष्मसम्पराय उपशामक और उपशान्तकपाय जीवके होता है ।

§ २७४. यह सूत्र सुगम है ।

विशेषार्थ—यहाँ दो प्रकृतिक संक्रमस्थान तीन प्रकारसे बतलाया है। इनमेंसे अन्तिम संक्रमस्थानका स्वामो सूक्ष्मसम्पराय उपशामक और उपशान्तकपाय जीव है। शेष कथन सुगम है ।

❀ क्षपक जीवके मानका क्षय होकर मायाके अधीण रहते हुए एक प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है ।

§ २७५. यह सूत्र सुगम है ।

विशेषार्थ—आशय यह है कि उपशामश्रेणियोंमें एक प्रकृतिक संक्रमस्थान सम्भव नहीं है। वह केवल क्षपकश्रेणियोंमें ही प्राप्त होता है जिसका निर्देश चूर्णिसूत्रमें किया ही है ।

इस प्रकार स्थानसमुत्कीर्तना अनुयोगद्वारमें प्रकृतियोंके निर्देशका कथन समाप्त हुआ ।

इस प्रकार पहली गाथाका अर्थ समाप्त हुआ ।

§ २७६. द्वितीयादि गाथाओंका अर्थ सुगम होनेसे चूर्णिसूत्रमें नहीं कहा है। उसे इस समय बतलाते हैं—‘सोलसय वारसट्टय० पडिग्गहा होंति’ यह दूसरी गाथा है जो प्रकृतिस्थानप्रतिग्रह और प्रकृतिस्थान अप्रतिग्रहके कथन करनेमें प्रतिबद्ध है। यथा—गाथाके पूर्वार्धमें निर्दिष्ट किये गये सोलह आदि अप्रतिग्रहस्थान हैं—१६, १२, ८, २०, २३, २४, २५, २६, २७, और २८। इन स्थानोंके सिवा शेष वार्डससे लेकर एक प्रकृति तक प्रतिग्रहस्थान हैं। उनका अंशविन्यास इस प्रकार है—

एसो—२२, २१, १०, १८, १७, १६, १४, १३, ११, १०, ६, ७, ६, ५, ४, ३, २, १ ।  
 सांख्यि गृह्णति पयडिगिहेमो कीरदे । तं जहा—मिच्छत्त-सोलमक० तिण्हं वेदाणमेकदरं  
 हस्स-रदि अग्नि-भोग दोण्हं जुगलाणमण्णदरं भय-दुगुंलाओ च एत्तमेदाओ वावीस-  
 पयडीओ वेत्ता पदमं पडिगगहट्टाणमुप्पज्जइ, अट्ठावीस-सत्तावासाणमण्णदरंस्तकम्मिय-  
 मिच्छइड्डिम्मि जहाकमं यत्तावीम-उच्चवीम-पडिट्टाणमंकमस्स तदाहारत्तेण पडत्ति-  
 दंयणादो । तेणेव वाचीमवंचणेण मम्मत्त-मम्मामिच्छत्ताणि उच्चेल्लिय मिच्छत्तपडिगगह-  
 चोच्छेदे कदे इगिवीसपयडिगहपयडिपडिचट्टं विदियं पटिगगहट्टाणमुप्पज्जइ, एत्थं वि  
 उच्चवीससंतकम्ममहग्गदपणुवागमंकमट्टाणम्याहारभावदंयणादो । अट्ठा वासाणमममा-  
 इड्डिम्मि मिच्छत्तं मोत्तणं सेगपयडीओ वंचमाणस्स पयदपडिगगहट्टाणमुप्पज्जइ, तत्थं वि  
 इगिवीसपयडिपडिगगहपडिचट्टपणुवाग-इगिवीसपयडिट्टाणमंकमोवलंभादो ।

२०, २१, १६, १८, १७, १६, १४, १३, ११, १०, ९, ७, ६, ५, ४, ३, २, १, और १ । अथ इन  
 व्यासोंको प्रकृतियोंका निर्देश करते हैं—मिथ्यात्व, सोलः कषाय, तीन वेदोंमें कोई एक वेद,  
 हान्य-रति या अरति-शोक इन दो युगलोंमेंमें कोई एक युगल, भय और जुगुप्सा इन चारोंस  
 प्रकृतियोंका प्रथम प्रतिग्रहस्थान होता है, क्योंकि अष्टादश और सत्तादश इनमेंमें किसी एक स्थानके  
 सत्तावाले मिथ्यादृष्टि जीवके क्रममें सत्तादश और द्वावीस प्रकृतिप्रधानके संक्रमके आधाररूपसे  
 उन स्थानकी प्रवृत्ति देनी जाती है । चारोंस प्रकृतियोंका वन्ध करनेवाला यही जीव जब सम्बन्ध  
 और सम्बन्धिमिश्रितकी उद्देलना करके मिथ्यात्व प्रकृतिज्ञा प्रतिग्रहरूपमें विच्छेद कर देता है तब  
 कषायोंकी उद्योग प्रकृतियोंमें सम्बन्ध रगनेवाला दूसरा प्रतिग्रहस्थान उत्पन्न होता है क्योंकि यह  
 स्थान भी द्वावीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले मिथ्यादृष्टि जीवके पचीस प्रकृतिक संक्रमप्रधानका आधार  
 देगा जाता है । अथवा मिथ्यात्वके सिवा शेष प्रकृतियोंका वन्ध करनेवाले सामान्यसम्यग्दृष्टिके  
 प्रकृत प्रतिग्रहस्थान उत्पन्न होता है, क्योंकि यहाँ पर भी द्वावीस प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थानसे सम्बन्ध  
 रगनेवाले पचीस प्रकृतिकसंक्रमस्थानका और उद्योगप्रकृतिकसंक्रमस्थानका संक्रम पाया जाता है ।

निशेषार्थ—प्रथमसे दूसरी गायाने अर्थका खुलासा करते हुए प्रतिग्रहस्थान कितने हैं और  
 अतिप्रहस्थान कितने हैं यह बतलाकर किन् प्रतिग्रहस्थानकी कौन कौन प्रकृतियाँ हैं और उनमेंसे  
 किन् प्रतिग्रहस्थानमें किन् किन् संक्रमस्थानका संक्रम होता है यह बतलाया जा रहा है । प्रतिग्रहका  
 अर्थ स्वीकार करना है और प्रकृतिस्थानका अर्थ प्रकृतियोंका समुदाय है । आशय यह है कि  
 जो प्रकृतियोंका समुदाय संक्रमको प्राप्त हुए कर्मोंको स्वीकार करके अपनेरूप परिष्कार लेता  
 है उसे प्रतिग्रहस्थान कहते हैं । इसका दूसरा नाम पतद्वग्रहस्थान भी है सो इससे पड़नेवाले  
 कर्मोंको जो प्रकृतियोंका समुदाय स्वीकार करता है वह पतद्वग्रहस्थान है ऐसा अर्थ लेना चाहिये ।  
 प्रकृतमें मोहनीय कर्मकी अपेक्षा १८ प्रतिग्रहस्थान और १० अप्रतिग्रहस्थान बतलाये हैं ।  
 ऐसा नियम है कि वेषनेवाली प्रकृतियोंमें ही संक्रम होता है और मोहनीयकी एक साथ अधिकसे  
 अधिक २२ प्रकृतियोंका ही वन्ध होता है अतः सबसे उत्कृष्ट प्रतिग्रहस्थान २२ प्रकृतिक ही हो  
 सकता है । यद्यपि सम्बन्ध और सम्बन्धिमिश्रित इन दो प्रकृतियोंका वन्ध नहीं होता तथापि  
 ये प्रतिग्रहरूप स्वीकार की गई है । पर इनमें यह योग्यता सम्यग्दृष्टि जीवके सिवा अन्यत्र नहीं  
 पाई जाती ऐसा नियम है । अतः २२ प्रकृतिक स्थानसे ऊपर तो प्रतिग्रहस्थान ही ही नहीं सकते  
 यह सिद्ध हावा है इसीसे २३, २४, २५, २६, २७ और २८ ये छह अप्रतिग्रहस्थान बतलाये हैं

§ २७७. असंजदसम्मादिडिम्मि एगूणवीसाए पडिग्गहट्टाणं होइ, तस्स सत्तारस-  
बंधपयडीसु सम्मत्त-सम्माभिच्छत्ताणं पडिग्गहत्तेण पवेसदंसणादो । एदम्मि पडिग्गहं-  
ट्टाणम्मि पडिच्चद्वसत्तावीस-च्छवीस-तेवीससंकमट्टाणाणमुवलंभादो । एदेण चैव मिच्छत्तं  
खविय सम्माभिच्छत्तपडिग्गहे णासिदे अट्टारसपडिग्गहट्टाणं होइ, एत्थ वि वावीसपयडि-  
ट्टाणसंकमोवलंभादो । पुणो वि एदेण सम्माभिच्छत्तं खइय सम्मत्तपडिग्गहे वि णासिदे  
सत्तारस०पडिग्गहट्टाणमुप्पज्जइ, इगिवीसकसायपयडीणमेत्थ संकमंताणमुवलंभादो ।

किन्तु इनके अतिरिक्त २०, १६, १२ और ८ ये चार अप्रतिग्रहस्थान और हैं, क्योंकि गुणस्थान  
भेदसे प्रतिग्रहरूप प्रकृतियोंको जोड़ने पर जैसे अन्य प्रतिग्रहस्थान नश्यन्न हो जाते हैं वैसे ये चार  
स्थान नहीं नश्यन्न होते। इसीसे इन्हे अप्रतिग्रहस्थान वतलाया है। इन अप्रतिग्रहस्थानोंके सिवा  
शेष २२, २१, १६, १८, १७, १५, १४, १३, ११, १०, ६, ७, ६, ५, ४, ३, २, और १ ये १८  
प्रतिग्रहस्थान हैं। इनमेंसे २१ प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थान २८ या २७ प्रकृतियोंकी सत्तावाले मिथ्यादृष्टिके  
होता है। जो २८ प्रकृतियोंकी सत्तावाला मिथ्यादृष्टि है उसके २२ प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थानमें २७  
प्रकृतियोंका संक्रम होता है। मिथ्यात्व गुणस्थानमें मिथ्यात्वप्रकृति संक्रमके अयोग्य है, अतः उसे  
छोड़ दिया है। तथा जो २७ प्रकृतियोंकी सत्तावाला है उसके भी २२ प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थानमें २६  
प्रकृतियोंका संक्रम होता है। २१ प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थान २६ प्रकृतियोंकी सत्तावाले मिथ्यादृष्टिके या  
२८ प्रकृतियोंकी सत्तावाले सासादनसम्यग्दृष्टिके होता है। जो २६ प्रकृतियोंकी सत्तावाला मिथ्यादृष्टि  
है उसके २१ प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थानमें २५ प्रकृतियोंका संक्रम होता है। मिथ्यादृष्टिके यद्यपि बन्ध  
तो २२ प्रकृतियोंका ही होता है तथापि उसके सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व इन दो प्रकृतियोंकी  
बद्धता हो जानेके बाद मिथ्यात्व प्रकृति प्रतिग्रह रूप नहीं रहती, अतः २१ प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थान  
मिथ्यादृष्टिके भी बन जाता है। सासादनसम्यग्दृष्टि जीव दो प्रकारके होते हैं। प्रथम तो वे जो  
अनन्तानुबन्धीकी त्रिसंयोजना किये बिना उपशमसम्यक्त्वसे च्युत होकर सासादन गुणस्थानको  
प्राप्त हुए हैं और दूसरे वे जो अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजनाके बाद उपशमसम्यक्त्वसे च्युत होकर  
सासादन गुणस्थानको प्राप्त हुए हैं। २८ प्रकृतियोंकी सत्तावाला जो उपशमसम्यग्दृष्टि जीव सासादन  
गुणस्थानको प्राप्त होता है उसके सासादनमें तीन दर्शनमोहनीयके सिवा शेष २५ प्रकृतियोंका  
संक्रम होता है। तथा जो अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजनाके बाद सासादन गुणस्थानको प्राप्त होते हैं  
उनके सासादनमें एक आवलि काल तक अनन्तानुबन्धीचतुष्क्रमा भी संक्रम नहीं होता, अतः इसके  
एक आवलि कालतक तीन दर्शनमोहनीय और चार अनन्तानुबन्धी इन दातके सिवा इक्कीस  
प्रकृतियोंका संक्रम होता है। इस प्रकार सासादनसम्यग्दृष्टिके २१ प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थानमें २५  
प्रकृतियोंका या २१ प्रकृतियोंका संक्रम होता है यह सिद्ध हुआ।

§ २७७ असंयत सम्यग्दृष्टिके उन्नीस प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थान होता है, क्योंकि उसके सत्रह  
बन्ध प्रकृतियोंमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका प्रतिग्रहरूपसे प्रवेश देखा जाता है। इस प्रतिग्रह  
स्थानमें सत्ताईस, छत्रीस और तेईस प्रकृतिक संक्रमस्थानोंका संक्रम उपलब्ध होता है। और जब  
इसी जीवके मिथ्यात्वका नाश होकर सम्यग्मिथ्यात्व प्रतिग्रहप्रकृति नहीं रहती तब अठारह प्रकृतिक  
प्रतिग्रहस्थान होता है, क्योंकि इसमें भी बाईस प्रकृतिक स्थानका संक्रम उपलब्ध होता है। फिर भी  
इस जीवके सम्यग्मिथ्यात्वका नाश होकर जब सम्यक्त्व भी प्रतिग्रहप्रकृति नहीं रहती तब सत्रह  
प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थान उपलब्ध होता है, क्योंकि उसमें कपाय और नोकपायकी इक्कीस प्रकृतियोंका

सम्मानिच्छाद्विन्मि वि पदं पडिग्गहट्टाणं पणवीस-इगिवीससंकमट्टाणपडिवद्धमणुगंतव्वं ।  
 ३ २७८. संजदांमंजदगुणट्टाणमस्सियुण पणारसपडिग्गहट्टाणमुपज्जेदं, तेग्गविधं  
 वंधमाणस्य तस्स वंधपयडीगु पुव्वं व मत्तावीस-उव्वीम-तेवीससंकमट्टाणाणामाहारभावेण  
 सम्मत-मम्मानिच्छत्तपयडीणं पवेमणादो । पुणो इमेण दंसणमोहकस्सवणमव्भुट्टिय

संकम उपलब्ध होता है । यह सत्रह प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थान सम्यग्मिभ्यात्प्रके भी जानना चाहिये । किन्तु उसके इनमें पचीस और उकीस प्रकृतिक संकमस्थानोंका संकम होता है ।

विशेषार्थ — अचिरतमस्यदृष्टिके १६, १८, और १७, प्रकृतिक तीन प्रतिग्रहस्थान होते हैं । दर्शनमोहनीयकी सत्ताबाले सम्यग्दृष्टिके मिभ्यात्प्र और सम्यग्मिभ्यात्प्र इन दो प्रकृतियोंका संकम अवश्य होता है । मिभ्यात्प्रका संकम तो सम्यग्मिभ्यात्प्र और सम्यक्त्प्र इन दोनोंमें होता है किन्तु सम्यग्मिभ्यात्प्रका संकम केवल सम्यक्त्प्रमें होता है । इस प्रकार सम्यग्मिभ्यात्प्र और सम्यक्त्प्ररूप इन दो प्रतिग्रहप्रकृतियोंको वटां धरनेवाली सत्रह प्रकृतियोंमें मिला देने पर १९ प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थान होता है । किन्तु दर्शनमोहनीयकी क्षणाना प्रारम्भ करके जय दह जीव मिभ्यात्प्रका चय कर देना है तब सम्यग्मिभ्यात्प्र प्रतिग्रहप्रकृति नहीं रहती उसलिये १८ प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थान होता है । और उमी प्रकार जय यह जीव सम्यग्मिभ्यात्प्रका क्षय कर देता है तब सम्यक्त्प्र प्रतिग्रहप्रकृति नहीं रहनेमें १७ प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थान होता है । इस प्रकार अचिरत सम्यग्दृष्टिके कुल तीन प्रतिग्रहस्थान होने हैं यह बात सिद्ध हुई । अब इसके क्रिजने संकमस्थान होने हैं और क्रिजने संकमस्थानोंका किस प्रतिग्रहस्थानमें संकम होता है इसका विचार करते हैं—जो छद्मोस प्रकृतियोंकी सत्ताबाला जीव उपशमसम्पत्त्वयो प्राप्त होता है उसके प्रथम समग्रम सम्यग्मिभ्यात्प्रका संकम न होनेसे छद्मोस प्रकृतिक संकमस्थान होना है । और द्वितीयादि समग्रोमें इसके सम्यग्मिभ्यात्प्रका संकम होने लगनेमें २७ प्रकृतिक संकमस्थान होता है । उमी प्रकार जय यह जीव अनन्तानुबन्धीचतुत्तुत्तकी विसंयोजना करता है तब २३ प्रकृतिक संकमस्थान होता है । ये तीनों संकमस्थान उन्नीस प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थानके रहते हुए सम्भव हैं, क्योंकि इन स्थानोंमें सम्यक्त्प्र और सम्यग्मिभ्यात्प्रकी सत्ता आवश्यक है । इसलिये उन्नीस प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थानमें उन तीन स्थानोंका संकम होता है यह बात सिद्ध होती है । १८ प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थान मिभ्यात्प्रका श्रय होनेपर ही होता है और मिभ्यात्प्रका चय होनेपर संकमस्थान २२ प्रकृतिक पाया जाता है, इसलिये १८ प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थानमें २२ प्रकृतिक स्थानका संकम होता है यह बात सिद्ध होती है । १७ प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थान सम्यग्मिभ्यात्प्रका चय होनेपर होता है और तब संकमस्थान इक्कीसप्रकृतिक पाया जाता है, इसलिये १७ प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थानमें २१ प्रकृतिकस्थानका संकम होता है यह बात सिद्ध होती है । इस प्रकार अचिरत सम्यग्दृष्टिके प्रतिग्रहस्थान और संकमस्थानोंका विचार करके श्रय सम्यग्मिभ्यात्प्रके इनका विचार करते हैं—इस गुणस्थानमें दर्शनमोहकी प्रकृतियोंका संकम नहीं होता और वन्ध सत्रह प्रकृतियोंका होता है, अतः प्रतिग्रहस्थान एक १७ प्रकृतिक ही पाया जाता है । तथापि सत्ता २८ या २४ प्रकृतियोंकी होनेसे संकमस्थान २५ या २१ प्रकृतिक ये दो पाये जाते हैं, क्योंकि २८ या २४ प्रकृतियोंमेंसे दर्शनमोहनीयकी तीन प्रकृतियोंके संकम न होनेसे मिश्रगुणस्थानमें संकमस्थान २५ या २१ प्रकृतिक ही प्राप्त होते हैं ।

१ २७८. संयतासंयत गुणस्थानकी अपेक्षा पन्त्रह प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थान उत्पन्न होता है, क्योंकि तेरह प्रकृतियोंका बन्ध करनेवाले संयतासंयतके बन्धप्रकृतियोंमें पूर्ववत् २७, २६ और २३ प्रकृतिक संकमस्थानोंके आधाररूपसे सम्यक्त्प्र और सम्यग्मिभ्यात्प्र इन दो प्रकृतियोंका प्रवेश और हो जाता है । फिर इसके द्वारा दर्शनमोहनीयकी क्षणके लिये उच्यत होकर मिभ्यात्प्रका



मिच्छते खविदे सम्मामिच्छतेण विणा चोद्दसपडिग्गहट्टाणं होदि । एदेणेव सम्मा-  
मिच्छते खविदे सम्मत्तेण विणा तेरसपडिग्गहो होइ, जहाकममेदेसु वावीस-इगिवीस-  
पयडीणं संकमदंसणादो ।

§ २७९. पमत्तापमत्ताणमेकारसं० पडिग्गहो होइ, तव्वंधपयडीसु पुव्वं व सत्तावीस-  
छव्वीस-तेवीससंकमट्टाणाणं पडिग्गहभावेण सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणं पवेसिदत्तादो ।  
एत्थेव मिच्छत्तं खइय सम्मामिच्छत्तपडिग्गहे णासिदे दसपडिग्गहो होइ । तेणेव  
सम्मामिच्छत्तं खइय सम्मत्तं पडिग्गहभावे कदे णवपयडिपडिग्गहट्टाणं होइ, जहा-  
कममेदेसु वावीस-इगिवीसपयडीणं संकमदंसणादो ।

§ २८०. अपुव्वकरणगुणट्टाणम्मि एक्कारस वा णव वा तेवीस-इगिवीससंकम-  
णाणमाहारभावेण पडिग्गहा होंति, तत्थ पयारंतासंभवादो ।

ज्ञय कर देने पर सम्यग्मिध्यात्वके बिना चौदहप्रकृतिक प्रतिग्रहस्थान उत्पन्न होता है । और जब  
यह जीव सम्यग्मिध्यात्वका भी ज्ञय कर देता है तब तेरहप्रकृतिक प्रतिग्रहस्थान होता है, क्योंकि  
इन दोनों स्थानोंमें क्रमसे २२ और २१ प्रकृतियोंका संक्रम देखा जाता है ।

**विशेषार्थ**—यहां संयतासंयतके प्रतिग्रहस्थान और संक्रमस्थान बतलाते हुए किस प्रतिग्रह-  
स्थानमें किन संक्रमस्थानोंका संक्रम होता है इस बातका निर्देश किया गया है । अविरत-  
सम्यग्दृष्टिके जो संक्रमस्थान बतलाये हैं वे ही संयतासंयतके होते हैं, क्योंकि सत्ता और क्षपणाकी  
अपेक्षासे इन दोनों गुणस्थानोंमें कोई अन्तर नहीं है । किन्तु बन्धकी अपेक्षासे संयतासंयतके चार  
प्रकृतियाँ कम हो जाती हैं । अतः १६, १८ और १७ मेंसे ४ प्रकृतियाँ कम करने पर इसके क्रमसे  
१५, १४ और १३ वे तीन प्रतिग्रहस्थान प्राप्त होते हैं । अब इनमेंसे किसमें कितनी प्रकृतियोंका  
संक्रम होता है सो यह सब कथन अविरतसम्यग्दृष्टिके संक्रमस्थानोंके स्वामित्वको देखकर घटित  
कर लेना चाहिये ।

§ २७६. प्रमत्तसंयत और अमत्तसंयतके ग्यारहप्रकृतिक प्रतिग्रहस्थान होता है, क्योंकि  
इनकी बन्धप्रकृतियोंमें पूर्ववत् सत्ताईस, छव्वीस और तेईस प्रकृतिक संक्रमस्थानोंका प्रतिग्रहपना  
पाया जानेके कारण इन बन्धप्रकृतियोंमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्व इन दो प्रकृतियोंका प्रवेश  
किया गया है । जब इनके मिध्यात्वका ज्ञय होकर सम्यग्मिध्यात्व प्रतिग्रह प्रकृति नहीं रहती तब  
दसप्रकृतिक प्रतिग्रहस्थान होता है । और जब यही जीव सम्यग्मिध्यात्वका ज्ञय करके सम्यक्त्वका  
प्रतिग्रह प्रकृतिरूपसे अभाव कर देता है तब नौप्रकृतिक प्रतिग्रहस्थान होता है, क्योंकि इन दोनों  
प्रतिग्रहस्थानोंमें क्रमसे बाईस और इक्कीस प्रकृतियोंका संक्रम देखा जाता है ।

**विशेषार्थ**—संयतासंयतके बंधनेवाली १३ प्रकृतियोंमेंसे ४ प्रकृतियाँ कम होकर इन दो  
गुणस्थानोंमें ६ प्रकृतियोंका बन्ध होता है, अतः यहाँ ११, १० और ६ प्रकृतिक तीन प्रतिग्रहस्थान  
प्राप्त होते हैं । शेष कथन सुगम है ।

§ २८०. अपूर्वकरण गुणस्थानमें तेईस और इक्कीस प्रकृतियोंके आधारभूत ग्यारह प्रकृतिक  
या नौ प्रकृतिक ये दो प्रतिग्रहस्थान होते हैं, क्योंकि यहाँ पर और कोई दूसरा प्रकार सम्भव  
नहीं है ।

**विशेषार्थ**—अपूर्वकरणमें २४ प्रकृतिक या २१ प्रकृतिक ये दो संक्रमस्थान होते हैं ।  
इसीसे यहाँ २३ प्रकृतिक या २१ प्रकृतिक ये दो संक्रमस्थान और क्रमसे उनके आधारभूत

१ २८१. संपहि उवसमसेदीग चउवीससंतकम्मियससिउण पडिग्गहट्टाणाण-  
 मुप्पत्ति वत्तइस्सामो । तं कथं ? चउवीससंतकम्मियसस उवसमसेदिं चट्ठिय अणियट्ठि  
 गुणट्टाणम्मि पंचविहं वंधमाणस्स सत्तपयडिपडिग्गहो होइ, तत्थ चउसंजलण-पुरिसवेद-  
 सम्मत्त-सम्मामिच्छत्तसमूहस्स तेवीम-वावीम-इगिवीससंकमाणं पडिग्गहत्तदंसणादो ।  
 एदेणेव णवुंस-इत्थिवेदम्वसामिय पुरिसवेदपडिग्गहवोच्छेदे कदे छप्पयडिपडिग्गहो होइ,  
 चदुमंजलण दोदंसणमोहपयडीणमेत्थ वीसाण संक्रमस्साहारभावोवलादो । एत्थेव  
 छण्णोकसाय-पुरिसवेदाणं जहाकमम्वसमेण चोदस-तेरससंकमट्टाणाणमुवर्लभादो च ।  
 पुणो वि एदेण द्दुविहकोहोवसमं काऊण कोहमंजलणपडिग्गहविणासे कए पंचपयडि-  
 पडिग्गहट्टाणमेकारससंकमाहारभूदमुप्पज्जदि । एत्थेव कोहमंजलणोवसमसिउण  
 दससंकमाहारं तं चेव पडिग्गहट्टाणं होदि । तेणेव द्दुविहमाणमुवसामिय माणसंजलण-  
 पडिग्गहवोच्छेदे कदे चउपयडिपडिग्गहट्टाणं होइ । एत्थेव माणसंजलणोवसमे  
 कदे सत्तपयडिसंकमपडिग्गहं तं चेव पडिग्गहट्टाणं होदि ।  
 तेणेव द्दुविहमायोवसमेण मायासंजलणपडिग्गहवोच्छेदे कदे लोभमंजलण-दोदंसणमोह-  
 पयडिपडिग्गहं तिण्हं पडिग्गहट्टाणं पंचपयडिसंकमावेकसं मायासंजलणोवसमेण चदुपयडि-

११ प्रकृतिक और ६ प्रकृतिक ये दो प्रतिग्रहस्थान बनलाये हैं । वहाँ दर्शनमोहनीयकी रूपरूपा न दोनेसे १० प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थान सम्भव नहीं है ।

§ २८१. अब उपशमत्रेणिये चौथीम प्रकृतिक रत्नरथानकी अपेक्षा प्रतिग्रहस्थानोंकी उदरत्ति बनलाते हैं । तथा—जो चौथीम प्रकृतियोंकी सत्ताथाला उपशमत्रेणिये पर चढ़कर अनिष्टतिरस्स गुणस्थानमें पांच प्रकृतियोंका रत्न करता है, उसके सात प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थान होना है, क्योंकि वहाँ पर चार संज्वलन, पुरसवेद, सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व इन सात प्रकृतियोंके समुदायमें तैईम, वार्ईस और उवकीस प्रकृतियोंके संक्रमका प्रतिग्रहपना देखा जाता है । तथा जब यही जीव त्रीवेद और नपुंसकवेदका उपशम करके पुरसवेदकी प्रतिग्रहव्युच्छित्ति कर देता है तब छह प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थान होता है, क्योंकि यहाँपर चार संज्वलन और दो दर्शनमोहनीय ये छह प्रकृतियां चीस प्रकृतियोंके संक्रमके आधाररूपसे उपलब्ध होती हैं । फिर जब यह जीव इन चीस प्रकृतियोंमेंसे छह नाकपाय और पुरसवेदको क्रमसे उपशमा देता है तब चौदह और तेरह प्रकृतिक संक्रमरथान उपलब्ध होते हैं । फिर भी जब यह जीव दो प्रकारके क्रोधको उपशमा देता है तब क्रोधसंज्वलन प्रतिग्रह प्रकृति न रह कर ग्यारह प्रकृतिक संक्रमस्थानका आधारभूत पांच प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थान उत्पन्न होता है । फिर यहीं पर क्रोधसंज्वलनका उपशम कर लेनेपर दस प्रकृतिक संक्रमस्थानका आधारभूत बही प्रतिग्रहस्थान होता है । फिर जब यही जीव दो प्रकारके मानका उपशम करके मानसंज्वलनकी प्रतिग्रहव्युच्छित्ति कर देता है तब आठ प्रकृतिक संक्रमस्थानका आधारभूत चार प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थान उत्पन्न होता है । फिर यहीं पर मानसंज्वलनका उपशम कर लेनेपर सात प्रकृतिक संक्रमस्थानसे सम्यक्त्व रखनेवाला बही प्रतिग्रहस्थान होता है । फिर जब बही जीव दो प्रकारकी मायाका उपशम करके मायासंज्वलनकी प्रतिग्रहव्युच्छित्ति कर देता है तब पांच प्रकृतियोंके संक्रमकी अपेक्षा रखनेवाला या मायासंज्वलनका उपशम हो जानेपर चार प्रकृतियोंके संक्रमकी अपेक्षा रखनेवाला लोभसंज्वलन और दो दर्शनमोहसम्यन्धी तीन प्रकृतिक

संकमावेकखं वा समुवजायदे । एदेणेव दुविहलोहमुवसामिय लोभसंजलणपडिग्गह-  
वोच्छेदे कदे मिच्छत्त-सम्माभिच्छत्तसंकमपाओग्गं सम्मत्त-सम्माभिच्छत्तपडिबद्धं दोण्हं  
पयडिपडिग्गहट्टाणमुप्पज्झइ ।

§ २८२. संपहि इगिवीससंतकम्मियमस्सिऊणुवसमसेदीए संभवंताणं पडिग्गह-  
ट्टाणाणमुप्पत्ती बुच्चदे । तं कथं ? इगिवीससंतकम्मियस्स उवसमसेदिं चट्ठिय अणियट्ठि-  
गुणट्टाणम्मि पंचविहं वंधमाणस्स एक्कावीस-वीस-एगूणवीसपयडिसंकमाहारभूदं पंचपडि-  
ग्गहट्टाणमुप्पज्झइ । पुणो एदेण पुणुंस-इत्थिवेदाणमुवसमं कारुण पुरिसवेदपडिग्गह-  
विणासे कए चउण्हं पडिग्गहट्टाणमट्टारसपयडिसंकमपडिबद्धमुप्पज्झइ । तेणेव सत्त-  
णोकसाय-दुविहकोहोवसमणवाचारेण कोहसंजलणपडिग्गहवोच्छेदे कदे तिण्हं पडिग्गहट्टाणं  
णवपयडिसंकमपडिबद्धमुप्पज्झइ । पुणो कोहसंजलणेण सह दुविहमाणोवसमं कारुण  
माणसंजलणपडिग्गहवोच्छेदे कदे दोण्हं पडिग्गहट्टाणं छप्पयडिसंकमपडिबद्धमुप्पज्झइ ।  
पुणो माणसंजलण-दुविहमायोवसामणेण मायासंजलणपडिग्गहवोच्छेदे कदे एकस्से  
पडिग्गहट्टाणं तिण्हं पयडिसंकमट्टाणपडिबद्धमुप्पज्झइ, मायासंजलणेण सह दुविहलोहस्स  
लोहसंजलणम्मि ताथे संकतिदंसणादो । एवं खवगस्स वि पंचविहबंधगप्पहुडि उवरिम-  
पडिग्गहट्टाणाणं समुप्पत्ती वत्तवा, जहाकमं तत्थ पंच-चटु-ति-दु-एक्कविधबंधट्टाणेसु

प्रतिग्रहस्थान उत्पन्न होता है । फिर जब वही जीव दो प्रकारके लोभका उपशम करके लोभसंज्वलन-  
की प्रतिग्रहव्युच्छित्ति कर देता है तब सिध्यात्व और सम्यग्मिध्यात्वके संक्रमके योग्य सम्यक्त्व  
और सम्यग्मिध्यात्वसम्बन्धी दो प्रकृतिक प्रतिग्रह स्थान उत्पन्न होता है ।

§ २८२. अब इक्कीस प्रकृतिक सत्तास्थानकी अपेक्षा उपरामश्रेणिमें सम्भव प्रतिग्रहस्थानों-  
की उत्पत्तिका विवेचन करते हैं । यथा—जो इक्कीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला जीव उपरामश्रेणिएपर  
चढ़कर अनिवृत्तिकरण गुणस्थानमें पांच प्रकृतिक बन्ध करता है उसके इक्कीस, बीस और उन्नीस  
प्रकृतिक संक्रमस्थानोंका आधारभूत पांच प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थान उत्पन्न होता है । फिर जब यह जीव  
नपुंसकवेद और स्त्रीवेदका उपशम करके पुरुषवेदकी प्रतिग्रहव्युच्छित्ति करता है तब अठारह  
प्रकृतिक संक्रमस्थानसे सम्बन्ध रखनेवाला चार प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थान उत्पन्न होता है । फिर जब  
वही जीव सात नोकपाय और दो प्रकारके क्रोधका उपशम करके क्रोधसंज्वलनकी प्रतिग्रहव्युच्छित्ति  
कर देता है तब उसके नौ प्रकृतिक संक्रमस्थानसे सम्बन्ध रखनेवाला तीन प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थान  
उत्पन्न होता है । फिर जब वही जीव क्रोधसंज्वलनके साथ दो प्रकारके मानका उपशम करके मान-  
संज्वलनकी प्रतिग्रहव्युच्छित्ति कर देता है तब छह प्रकृतिक संक्रमस्थानसे सम्बन्ध रखनेवाला दो  
प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थान उत्पन्न होता है । फिर जब वही जीव मानसंज्वलन और दो प्रकारकी  
मायाका उपशम करके मायासंज्वलनकी प्रतिग्रहव्युच्छित्ति कर देता है तब उसके तीन प्रकृतिक  
संक्रमस्थानसे सम्बन्ध रखनेवाला एक प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थान उत्पन्न होता है, क्योंकि तब माया-  
संज्वलनके साथ दो प्रकारके लोभका लोभसंज्वलनमें संक्रम देखा जाता है । इसीप्रकार चूषक  
जीवके भी पांच प्रकारके बन्धस्थानसे लेकर आगेके प्रतिग्रहस्थानोंकी उत्पत्तिका कथन करना चाहिये,  
क्योंकि वहाँ क्रमसे पांच प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थानमें इक्कीस, तेरह, बारह और न्यारह प्रकृतिक संक्रम

एकवीस-तेरस-चारसोकारसण्हं दस-चउक्काणं तिण्हं दोण्हमेक्किस्से च संकमट्टाणस्त मंक्रंतिदंमणादो । एवमेदीए विदियगाद्वाए पडमगाहापडिगहसंकमट्टाणाणमाहारभूदाणि पडिगहट्टाणाणि सामण्णेण णिदिद्वाणि ।

स्थानोंका, चार प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थानमें दस और चार प्रकृतिक संक्रमस्थानोंका, तीन प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थानमें तीन प्रकृतिक संक्रमस्थानका, दो प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थानमें दो प्रकृतिकसंक्रमस्थानका और एक प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थानमें एक प्रकृतिक संक्रमस्थानका संक्रम देर्या जाता है । इसप्रकार उस दूसरी गाथाद्वारा प्रथम गाथामें कहे गये संक्रमस्थानोंके आचारभूत प्रतिग्रहस्थानोंके सामान्य-रूपमें निर्देश किया है ।

विशेषार्थ—अब यहां गुणस्थानके क्रमसे प्रतिग्रहस्थान, संक्रमस्थान तथा उनकी प्रकृतियोंके क्रमद्वारा निर्देश करते हैं—

गुणस्थान	प्रतिग्रह स्थान	प्रकृतियाँ	संक्रमस्थान	प्रकृतियाँ
मिश्र्यात्व	२२ प्र०	मिश्र्यात्व, नीलह कपाय, तीन वेदोंमेंसे कोई एक, दो युगलोंमेंसे एक युगल, भय और जुगुप्सा	२७ प्र०	मिश्र्यात्वके विना
			२६ प्र०	मिश्र्यात्व और सम्य-क्त्वके विना
	२१ प्र०	मिश्र्यात्वके विना पूर्वोक्त	२५ प्र०	तीन दर्शनमोहके विना
सासादन	२१ प्र०	मिश्र्यात्वके विना पूर्वोक्त किन्तु नपुंसकवेदका ग्रन्थ न होनेसे दो वेदों-मेंसे कोई एक	२५ प्र०	तीन दर्शनमोहके विना
			२१ प्र०	तीन दर्शनमोह व अनन्तानुबन्धी चारके विना
मिश्र	१७ प्र०	पूर्वोक्त २१ मेंसे चार अनन्तानुबन्धीके विना किन्तु वेदमें मात्र पुरुषवेद	२५ प्र०	तीन दर्शनमोहके विना
			२१ प्र०	तीन दर्शनमोह व चार अनन्तानुबन्धीके विना
अधिरत सम्य०	१९ प्र०	पूर्वोक्त १७ में सम्यक्त्व व सम्यग्मिश्र्यात्व मिला देनेपर	२७	सम्यक्त्वके विना
			२६	सम्यक्त्व व सम्य-ग्मिश्र्यात्वके विना
			२३	अनन्तानुबन्धी ४ व सम्यक्त्वके विना
	१८ प्र०	सम्यग्मिश्र्यात्वके विना	२२	पूर्वोक्त ५ व मिश्र्यात्व के विना
	१७ प्र०	सम्यक्त्वके विना	२१	१२ कपाय ६ नोकपाय

गुण०	प्रति०	प्रकृतियां०	संक्रमस्थान०	प्रकृतियाँ
देशविरत	१५ प्र०	पूर्वोक्त १६ मैसे अप्रत्याख्यानावरण ४ के बिना	२७, २६, २३	पूर्ववत्
	१४ प्र०	सम्यग्मि० के बिना	२२ प्र०	पूर्ववत्
	१३ प्र०	सम्यक्त्वके बिना	२१ प्र०	पूर्ववत्
प्रमत्त व अप्रमत्त	११ प्र०	पूर्वोक्त १५ मैसे प्रत्याख्यानावरण ४ के बिना	२७, २६ व २३ प्र०	पूर्ववत्
	१० प्र०	सम्यग्मिथ्यात्वके बिना	२२ प्र०	पूर्ववत्
	९ प्र०	सम्यक्त्वके बिना	२१ प्र०	पूर्ववत्
अपूर्वकरण	११ प्र०	पूर्ववत्	२३ प्र०	पूर्ववत्
	९ प्र०	पूर्ववत्	२१ प्र०	पूर्ववत्
उपशम श्रेणि २४ प्र० सत्कर्मकी अपेक्षा	७ प्र०	चार संज्ञ०, पुरुषवेद, सम्यक्त्व व सम्यग्मिथ्यात्व	२३, २२ व २१ प्र०	२३ पूर्ववत्, २२ सं० लोभके बिना, २१ नपुंसकवेदके बिना
	६ प्र०	पुरुषवेदके बिना	२० प्र०	२३ मैसे नपुंसकवेद, स्त्रीवेद व संज्ञलानलोभ कम कर देने पर
			१४ प्र०	२० मैसे छह नोकषाय कम कर देने पर
			१३ प्र०	१४ मैसे पुरुषवेदके कम कर देने पर
	५ प्र०	क्रोधसंज्ञलानके बिना	११ प्र०	१३ मैसे दो क्रोधोको कम कर देने पर
			१० प्र०	११ मैसे क्रोधसंज्ञलान के कम कर देने पर
	४ प्र०	मानसंज्ञलानके बिना	८ प्र०	दो मान कमकर देनेपर
			७ प्र०	मानसं०कम कर देने पर
	३ प्र०	माया संज्ञलानके बिना	५ प्र०	दो माया कमकर देनेपर
			४ प्र०	मायासं० कमकर देनेपर
२ प्र०	लोभसं० के बिना सम्यक्त्व व सम्यग्मि०	२ प्र०	मिथ्या० व सम्यग्मि०	

६ २८३. मंपहि सत्तावीसादिमंकमट्टाणाणि परिवारीणं द्विविय पादेकमेवेवमंकम-  
ट्टाणाणिरुंभणं काउणेदरुण संकमट्टाणम्म एत्तियणि पटिग्गहट्टाणाणि हांति ति  
जाणावणट्टुवुरिमदमगाहाओ । तत्थ नाव नामिमादिमगाहा छ्वीम सत्तावीसा य ।  
एदीए नदियगाहाणं छ्वीम सत्तावीममंरुमट्टाणाणं पटिग्गहट्टाणाणियमो कीरदे—  
चदुतु चेव पडिग्गहट्टाणेमु छ्वीम-सत्तावीमाणं मंकमो णाणत्थ इदि । एत्थ णियमनहो

गुण	प्रति०	प्रकृतियां	संक्रमस्थान	प्रकृतियां		
उत्तराम हेमि २१ प्रकृतिय मत्कमंरी अपेत्ता	५ प्र०	चार सं० व पुंमवैद	२७ प्र०	१० वगाव नो नोत्राय		
			२० प्र०	सं०लो० विना पूर्वोक्त		
			१५ प्र०	नपुंमवैद विना पूर्वोक्त		
	४ प्र०	पुंमवैदके विना	१८ प्र०	स्त्रीवैद विना पूर्वोक्त		
	३ प्र०	सं०जनक्रोधके विना	६ प्र०	मान नोत्रया० दो क्रोध के विना		
	२ प्र०	सं०जनमानके विना	१ प्र०	दो मानके विना		
उत्तरामेणि	५ प्र०	चार सं० व पुंमवैद	२१ प्र०	पूर्वप्रम		
			१३ प्र०	वा पूर्व आठरुपाय विना		
			१२ प्र०	सं०लो०भ विना		
			११ प्र०	नपुंमवैद विना		
			४ प्र०	चार सं०प्रलम	१० प्र०	स्त्रीवैदके विना
			४ प्र०		४ प्र०	एठ नोत्राय विना
	३ प्र०	सं०जन क्रोध विना	३ प्र०	सं०क्रोध, मान व माया		
	२ प्र०	सं०जन मान विना	२ प्र०	सं० मान व माया		
	१ प्र०	सं०जन माया विना	१ प्र०	सं०जन माया		

६ २८३. अब सत्ताईस आदि संक्रमस्थानोंको क्रमसे रग्यकर प्रत्येक संक्रमस्थानको अपेक्षा  
इस संक्रमस्थानके इतने प्रतिग्रहस्थान होते हैं यह वसतलानके लिये आगेकी वस मायाएँ आई हैं ।  
उनमेंसे छ्वीस सत्तवीसा य' यह पहली गाथा है जो क्रमानुसार तीसरे नम्बरपर प्राप्त होती है ।  
इस तीसरी गाथामें छ्वीस प्रकृतिक और सत्ताईस प्रकृतिक संक्रमस्थानोंके प्रतिग्रहस्थानोंका नियम  
करते हैं—छ्वीस प्रकृतिक और सत्ताईस प्रकृतिक संक्रमस्थानोंका चार प्रतिग्रहस्थानोंमें ही संक्रम  
होता है अन्यत्र नहीं होता । इस गाथामे आया हुआ 'नियम' शब्द पंचमी विभक्तिका एक्यचनान्त

पंचमिएयवयणंतो छंदोभंगमएण पडियतलोवं काऊण रहस्तादेसेण णिहिद्धो । संकम-  
ट्टाणाणमेत्थ णियमो पडिग्गहट्टाणाणमणियमो । तदो तेसु तेवीसाए वि संकमो ण  
विरूद्धदे । एवं सत्तावीस-छव्वीससंकमाहारत्तेणावहारियाणं चउण्हं पडिग्गहट्टाणाणं  
सरूवणिदेसहुं गाहापच्छदो 'वावीस पण्णरसगे० ।' पादेकमेदेसु चदुसु पडिग्गहट्टाणेसु  
छव्वीस-सत्तावीसाणं संकमो होइ ति वुत्तं होइ ।

§ २८४. तत्थ ताव सत्तावीससंतकम्मियमिच्छाइट्टिमि पणुवीसकसाय-सम्मा-  
मिच्छत्तसंकामयमि छव्वीससंकमस्स वावीसपडिग्गहो लब्भदे । पुणो छव्वीससंत-  
कम्मियमिच्छाइट्टिणा उवसमसम्मत्त-संजमासंजमगहणपढमसमए सम्मामिच्छत्तसंकमा-  
भावेण छव्वीससंकमस्स पण्णारस पडिग्गहो होइ । तेरसविहतव्वंधपयडीसु सम्मत्त-  
सम्मामिच्छत्ताणं पवेसादो । तेणेव पढमसम्मत्त-संजमजुगवगहणपढमसमयमि छव्वीस-  
संकमस्स एक्कारस०पडिग्गहो होइ, तत्थ सम्मत्त-सम्मामिच्छत्तेहि सह-चदुकसाय-  
पंचणोकसायाणं पडिग्गहत्तदंसणादो । पुणो पढमसम्मत्तगगहणपढमसमए चट्टमाणस्स  
असंजदसम्माइट्टिस्स एगुणवीसपडिग्गहट्टाणपडिग्गहिओ छव्वीससंकमो होइ, तदवत्थाए  
पडिग्गहट्टाणंतरस्सासंभवदो ।

है, इसलिए छन्द भंग होनेके भयसे अन्तमे प्राप्त हुए 'त' का लोप करके और उसके स्थानमें इत्व का आदेश करके निर्देश किया है । यहां पर संक्रमस्थानोंका नियम किया गया है प्रतिग्रहस्थानोंका नियम नहीं किया गया है, इसलिये इन प्रतिग्रहस्थानोंमें तेईस प्रकृतिक स्थानका संक्रम भी विरोधको नहीं प्राप्त होता है । इस प्रकार सत्ताईस प्रकृतिक और छव्वीस प्रकृतिक संक्रमोंके आधाररूपसे निश्चित किये गये चार प्रतिग्रहस्थानोंके स्वरूपका निर्देश करनेके लिये 'वावीस पण्णरसगे' यह गाथाका उत्तरार्ध कहा है । इन चारों प्रतिग्रहस्थानोंमेंसे प्रत्येकमें छव्वीसप्रकृतिक और सत्ताईस-प्रकृतिक स्थानोंका संक्रम होता है यह उक्त कथनका तत्पर्य है ।

§ २८४. उनमेंसे पचवीस कषाय और सन्धग्मिध्यात्वका संक्रम करनेवाले सत्ताईस प्रकृतियोंकी सत्तावाले मिथ्यादृष्टिके छव्वीस प्रकृतिक संक्रमस्थानका वाईसप्रकृतिक प्रतिग्रहस्थान प्राप्त होता है । फिर जो छव्वीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला मिथ्यादृष्टि जीव उपशमसन्धक्त्व और संयमासंयमको एकसाथ प्राप्त करता है उसके प्रथम समयमें सन्धग्मिध्यात्वका संक्रम नहीं होनेसे छव्वीस प्रकृतिक संक्रमस्थानका पन्द्रहप्रकृतिक प्रतिग्रहस्थान प्राप्त होता है, क्योंकि संयतासंयतके बंधनेवाली तेरह प्रकारकी प्रकृतियोंमें सन्धक्त्व और सन्धग्मिध्यात्वका प्रतिग्रहरूपसे प्रवेश देखा जाता है । तथा वही छव्वीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला मिथ्यादृष्टि जीव जब प्रथम सन्धक्त्व और संयम इन दोनोंको एक साथ ग्रहण करता है तब उसके प्रथम समयमें छव्वीस प्रकृतिक संक्रम-स्थानका ग्यारह प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थान होता है, क्योंकि वहां पर सन्धक्त्व और सन्धग्मिध्यात्वके साथ चार कषाय और पांच नोकषाय ये ग्यारह प्रतिग्रह प्रकृतियाँ देखी जाती हैं । पुनः प्रथम सन्धक्त्वका ग्रहण करनेके प्रथम समयमें विद्यमान हुए असंयतसन्धदृष्टि जीवके उन्नीसप्रकृतिक प्रतिग्रहस्थानसे सन्धन्व रस्नेवाला छव्वीस प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है, क्योंकि उस अवस्थामें दूसरा प्रतिग्रहस्थान नहीं हो सकता है ।

§ २८५. संपत्ति सत्तावीणाए उच्यते—अट्टावीणसंतकम्पियमिच्छाहट्टिमि सत्तावीणसंकमो वावीणसपयट्टिपडिगहट्टिमईकथो समुप्पज्जइ । पुणो उवगममम्मत्तगहण- विदियममयप्पहट्टि जाव अणंताणव्वंथीणं विगंजोयणा णत्थि ताव संजदाणंजद-मंजद- अमंजदमम्माइट्टिगुणट्टाणेषु सत्तावीणसंकमस्स जहाकमं पण्णारसेकारर-गग्गूणवीस- पडिग्गहा होति । एवं तदियगाहाए अत्थो समत्तो ।

§ २८६. सत्ताग्गेस्सवीणासु—पंचवीणाए संकमो कम्मि पट्टिग्गहट्टाणांमि होइ त्ति आगंकिय 'सत्ताग्गेस्सवीणासु' त्ति उत्तं । एदेसु दोसु पट्टिग्गहट्टाणेषु पणुवीणाए संकमो णिवट्ठो त्ति उत्तं होइ । एत्थ वि णियमसदो पट्टिग्गहट्टाणेषु संकमट्टाणाव-

§ २२५. अत्र सत्ताइय प्रकृतिक संक्रमस्थानके प्रतिग्रहस्थान कर्तव्ये—अट्टार्य प्रकृतियोंकी सत्तागले मिथ्यादृष्टि के धार्य प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थानका विषयभूत सत्ताइयप्रकृतिक संक्रमस्थान उत्पन्न होता है । पुनः उपरामसम्पत्तिके प्रत्यक्ष करनेके दूसरे समयमें लेखर उच्ये तदा अनन्ता-नुयन्त्रियोंकी विस्मयोजना नहीं होती है तत्र तदा न्ययतास्यत, संयत और प्रसंयतसंयन्त्रदृष्टि शुगल्यानोंमें सत्ताइय प्रकृतिक संक्रमस्थानके क्रमसे पन्द्रहप्रकृतिक, ग्यारहप्रकृतिक और उन्नोस प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थान उत्पन्न होते हैं ।

विशेषार्थ—यहाँ पर प्रकृतिसंक्रमस्थानके तिलस्त्रिंसे ग्यारहें हुं ३२ गाथा जोमेंसे तीसरी गाथाका व्याख्यान किया गया है । इस गाथामें लेकर १२वीं गाथा तक १० गाथाओंमें विस संक्रमस्थानके क्लिने प्रतिग्रहस्थान है यह बतलाया गया है । उनमेंसे तीसरी गाथामें २३ प्रकृतिक और २६ प्रकृतिक संक्रमस्थानोंके २०, १६, १५, और ११ प्रकृतिक चार प्रतिग्रहस्थान बतलाये गये हैं सो इनका विशेष वृत्तान्त टीकामें किया है । इस तीसरी गाथाके पूर्वार्थमें 'णियम' पद आया है । यह 'नियमान्' इस पंचमी विभक्तिके एक कथनका रूप है । प्राकृतके नियमानुसार आदि, मध्य और अन्तमें आये हुए वर्णों और स्वरोंका लोप हो जाता है, अतः इन पदमें 'त्' का लोप करके फिर छन्दोभंग दोषको टालनेके लिये हल्य कर दिया गया है । उमलिये 'णियम' यह 'नियमान्' का रूप जानना चाहिये यह उक्त कथनका तात्पर्य है । यह 'नियम' पद संक्रमस्थानों का नियम करता है कि इन दो संक्रमस्थानोंके ये चार ही प्रतिग्रहस्थान होते हैं अन्य नहीं, किन्तु प्रतिग्रहस्थानोंका नियम नहीं करता है । ये चार प्रतिग्रहस्थान इन दो संक्रमस्थानोंके तो होते ही हैं किन्तु इनके सिवा अन्य संक्रमस्थान भी इन प्रतिग्रहस्थानोंमें सम्भव हो सकते हैं । यथा अनन्तानुबन्धीकी विस्मयोजनाके बाद जो तैइस प्रकृतिक संक्रमस्थान प्राप्त होता है उसके उन्नोस, पन्द्रह और ग्यारहप्रकृतिक तीन प्रतिग्रहस्थान होते हैं । उस प्रकार गाथामें आये हुए नियम पदसे संक्रमस्थानोंका नियम किया गया है प्रतिग्रहस्थानोंका नहीं यह उक्त कथनका तात्पर्य है ।

इस प्रकार तीसरी गाथाका अर्थ समाप्त हुआ ।

§ २८६. अत्र 'सत्ताग्गेस्सवीणासु' इस चौथी गाथाका व्याख्यान करते हैं—पंचवीस प्रकृतिक संक्रम विस प्रतिग्रहस्थानमें होता है ऐसी आशंका करके सत्रह प्रकृतिक और इक्कीस प्रकृतिक इन दो प्रतिग्रहस्थानोंमें होता है ऐसा कहा है । इन दो प्रतिग्रहस्थानोंमें पचीस प्रकृतिक संक्रम निरुद्ध है यह उक्त कथनका तात्पर्य है । यहाँ भी गाथामें 'नियम' शब्द आया है सो वह इस संक्रमस्थानके



हारणफलो पुञ्चं व पडियतलोवादिबिहाणेण णिदिट्ठो दट्ठञ्चो । तत्थ छञ्चीससंत-  
कम्मियमिच्छाइड्डिस्स वावीसविहं बंधमाणयस्स इगिवीसपडिग्गहालंघणो होऊण  
पणुवीसकसायसंकमो होइ । अहवा अणंताणुवंघी अविसंजोएदुण ड्ढिउवसमसम्माइड्डिस्स  
आसाणं पडिवज्जिय इगिवीसबंधमाणस्स पणुवीससंकमो इगिवीसपडिग्गहपडिवदो होइ,  
तत्थ सहावदो दंसणतियस्स संकम-पडिग्गहसत्तीणमभावादो । पुणो अट्ठावीससंतकम्मिय-  
मिच्छाइड्डि-सम्माइड्डिणमण्णदरस्स सम्मामिच्छत्तं पडिवज्जिय सत्तारसपयडोओ  
बंधमाणस्स पणुवीससंकमो सत्तारसपडिग्गहपडिग्गहिओ होइ, एत्थ वि दंसणतियस्स  
संकमभावादो । एवं पडिग्गहट्ठाणविसेसविसयत्तेणावहारियस्स पणुवीससंकमट्ठाणस्सं  
गइगयविसेसणिद्वारणट्ठमिदमाह—‘णियमा चट्ठसु गदीसु य’ णियमा णिच्छएण चट्ठसु  
वि गइसु पणुवीससंकमट्ठाणमवट्ठिदं दट्ठञ्चं, अण्णदरगइविसयणियमाभावादो । एत्थेव  
गुणट्ठाणगयसामित्तविसेसणिद्वारणट्ठमाह—‘णियमा ‘दिट्ठीगए तिविहे’ गुणट्ठाणमादीदो  
पहुडि तिविहे गुणट्ठाणे मिच्छाइड्डि-सासणसम्माइड्डि-सम्मामिच्छादिड्डि ति दिड्डि-  
विसेसणविसिट्ठत्तादो दिट्ठीगए पयदसंकमट्ठाणसंभवो णाण्णत्थ, तत्थेव तदुप्पत्तिणियम-  
दंसणादो । एदेण ‘दिट्ठीगय’ विसेसणेण संजदासंजदादीणमुवरिमगुणट्ठाणं उदासो

ये ही प्रतिग्रहस्थान हैं यह वतलानेके लिए दिया है । तथा इस नियम शब्दके ‘न्’ का लोप और  
ह्रस्व विधि पूर्ववत् जान लेना चाहिये । जो छञ्चीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला मिथ्यादृष्टि जीव यहाँस  
प्रकृतियोंका बन्ध करता है उसके इक्कीस प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थानके रहते हुए पञ्चीस प्रकृतिक संक्रमस्थान  
होता है । अथवा अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी विसंयोजना किये बिना जो उपशमसम्यग्दृष्टि जीव  
सासदन गुणस्थानको प्राप्त होकर इक्कीस प्रकृतियोंका बन्ध करता है उसके इक्कीस प्रकृतिक  
प्रतिग्रहस्थानसे सम्बन्ध रखनेवाला पञ्चीस प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है, क्योंकि वहाँपर स्वभावसे  
ही दर्शनमोहकी तीन प्रकृतियोंमें संक्रम और प्रतिग्रहरूप शक्तिका अभाव है । पुनः अट्ठाईस  
प्रकृतियोंकी सत्तावाला जो मिथ्यादृष्टि या सम्यग्दृष्टि जीव सम्यग्मिथ्यात्वको प्राप्त होकर सत्रह  
प्रकृतियोंका बन्ध करता है उसके सत्रह प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थानसे सम्बन्ध रखनेवाला पञ्चीस प्रकृतिक  
संक्रमस्थान होता है, क्योंकि यहाँपर भी दर्शनमोहकी तीन प्रकृतियोंका संक्रम नहीं होता है ।  
इस प्रकार प्रतिग्रहविशेषके विपर्ययसे निश्चय किये गये पञ्चीस प्रकृतिक संक्रमस्थानका  
गतिसम्यग्बन्धी विशेषताका निश्चय करनेके लिये गायामें ‘णियमा चट्ठसु गदीसु य’ यह कहा है ।  
आशय यह है कि यह पञ्चीस प्रकृतिक संक्रमस्थान नियमसे चारों गतियोंमें होता है ऐसा जानना  
चाहिये, क्योंकि यह अमुक गतिमें ही होता है ऐसा कोई नियम नहीं है । तथा यहाँपर गुणस्थानों  
की अपेक्षा स्वामित्व विशेषका निर्धारण करनेके लिये ‘णियमा दिट्ठीगए तिविहे’ यह कहा है ।  
यहाँ गायामे दृष्टि विशेषण होनेसे आदिके तीन मिथ्यादृष्टि सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्या-  
दृष्टि गुणस्थानोंका ग्रहण होता है । इन तीन गुणस्थानोंमें ही प्रकृत संक्रमस्थान सम्भव है  
अन्यत्र नहीं, क्योंकि इन्हीं तीन गुणस्थानोंमें इस संक्रमस्थानकी उत्पत्ति देखी जाती है । यहाँ जो  
यह ‘दृष्टिगत’ विशेषण दिया है सो इससे संयतासंयत आदि आगेके गुणस्थानोंका निषेध कर

१. ता०प्रतौ पडिग्गहट्ठाणविसेसविययत्तेणावहारियस्स पणुवीससंकमट्ठाणविसेसविसयत्तेणावहारियस्स  
पणुवीससंकमट्ठाणस्स इति पाठः ।

कओ। 'तिविह' विसेसणेण च असंजद० गुणद्वान्णस्म वडिग्गहट्टाण्यिदो कओ। एवं चउत्थ-  
गाहाए अत्थपरूवणा समत्ता।

§ २८७. 'वाचीस पण्णरसगे०' एमा पंचमी गाहा तेवीससंक्रमद्वान्णस्स पडिग्गहट्टाण्यपरूवणद्वमागया। एदिस्से अत्थविवरणं कस्सामो—तेवीससंक्रमो पंचसु द्वाणेसु होइ ति एत्थ संबंधो। तेसिं पंचसंखाविसेसियाणं पडिग्गहट्टाणाणं सरूव-  
णिद्वारणद्वं 'वाचीसादि' वयणं। कथमेत्थ वाचीसाए तेवीससंक्रमोवलंभो? ण, अणंताणुवंधी-  
विसंजोयणाणुस्सरसंजुचमिच्छादिद्विपडमसमयप्पट्टि आबलियमेत्तकालमणंताणुवंधीणं  
संक्रमाभावेण तेवीससंक्रामयस्स तदुवलंभविरोहाभावादो। पण्णरसगे पयदसंक्रमद्वान्ण-  
संभवो संजदासंजदम्मि दट्टय्यो, विसंजोइद्वानंताणुवंधिचउत्तसंजदासंजदस्स पण्णारस-  
पडिग्गहट्टाणाधारत्तेण तेवीससंक्रमद्वान्णपउत्तिदंसणादो। एवं सत्तगे वि पयदसंक्रमद्वान्ण-  
संभवो जोजेयव्वो। णवरि चउवीससंतकम्मियाणियद्विम्मि अंतरकरणादो हेट्टा तदुप्पत्ती  
वत्तव्वा, अणाणुपुब्बीमंक्रामयस्स तस्स तदविरोहादो। एत्तारखणवीसासु पयदजोयणा एवं

दिया है और 'त्रिविध' इस विनेपण द्वारा असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानका विषय बर दिया है।

विशेषार्थ—आशय यह है कि मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टिके २१ प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थानमें तथा सम्यग्मिथ्यादृष्टिके १७ प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थानमें २५ प्रकृतियोंका संक्रम होता है। पक्षीस प्रकृतिक संक्रमस्थानके ये दो ही प्रतिग्रहस्थान हैं अन्य नहीं यह उक्त कथनका तात्पर्य है।

इस प्रकार चौथी गायके अर्थका कथन समाप्त हुआ।

§ २८७. 'वाचीस पण्णरसगे०' यह पांचवी गाय है जो तेईस प्रकृतिक संक्रमस्थानके प्रतिग्रहस्थानोंका कथन करनेके लिये आई है। अब इस गायका अर्थ लिखते हैं—तेईस प्रकृतिक संक्रम पांच स्थानोंमें होता है ऐसा यहां समग्रथ करना चाहिये। उन पांच संख्यासे विगेपताको प्राप्त हुए प्रतिग्रहस्थानोंके स्वरूपका निश्चय करनेके लिये गायामें 'वाचीस' अर्थात् वचन दिया है।

शंका—वाईस प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थानमें तेईस प्रकृतिक संक्रम कैसे उपलब्ध होता है।

समाधान—नहीं, क्योंकि अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना पूर्वक उससे संयुक्त हुए मिथ्यादृष्टिके प्रथम समयसे लेकर एक आवलि कालतक अनन्तानुबन्धियोंका संक्रम नहीं होनेसे तेईस प्रकृतियोंका संक्रम करनेवाले जीवके वाईस प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थान पाये जानेमें कोई विरोध नहीं आता है।

पन्द्रह प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थानमें प्रकृत संक्रमस्थानका सम्भव संयतासंयतके जानना चाहिये, क्योंकि जिसने अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी विसंयोजना की है ऐसे संयतासंयतके पन्द्रह प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थानके आधाररूपसे तेईस प्रकृतिक संक्रमस्थानकी प्रवृत्ति देखी जाती है। इसी प्रकार सात प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थानमें भी प्रकृत संक्रमस्थानको घटित कर लेना चाहिये। किन्तु इतनी विशेषता है कि चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले अनिवृत्तिकरणमें अन्तरकरण किया करनेके पहले इसी स्थानकी उत्पत्ति कहनी चाहिये, क्योंकि जिसने आनुपूर्वी संक्रमका प्रारम्भ नहीं किया है उस जीवके सात

चेव कायव्वा । णवरि पमत्तापमत्तापुव्वकरणोवसामगगुणट्ठाणेषु असंजदसम्मादिट्ठिट्ठाणे च जहाकमं तदुभयसंभवो त्ति वत्तव्वं, णव-सत्तारसविहवंधएसु तेषु चउवीससंतकम्मिएसु तदुभयाधारतेवीससंकममुप्पत्तीए णाइयत्तादो । एवंमेदेसु पंचसु पडिग्गहट्ठाणेषु तेवीस-संकमट्ठाणणियमो त्ति जाणावणट्ठं पंचग्गहणमेत्थ कयं । एत्थेव विसेसंतरपट्ठुपायणट्ठं 'पंचिदिएसु' त्ति वयणं । तेण पंचिदिएसु चेव तेवीससंकमो णाणणत्थे त्ति वेत्तव्वं । तत्थ वि सण्णपंचिदिएसु चेव णासण्णीसु । कुत एतत् ? व्याख्यानतो विशेषप्रतिपत्तेः ।

एवं पंचमगाहाए अत्थो समत्तो ।

§ २८८. 'चोइसय-दसय-सत्तय०'-एदेसु चदुसु पडिग्गहट्ठाणेषु वावीससंकम-णियमो दट्ठवो त्ति गाहापुव्वट्ठे संबंधो । कथमेदेसिं संभवो त्ति उत्ते उच्चदे—संजदा-संजदस्स दंसणमोहक्खवणमव्वट्ठिय णिस्सेसीकयमिच्छत्तकम्मस्स सम्माभिच्छत्तेण विणा

प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थानके आश्रयसे तेईस प्रकृतिक संक्रमस्थानके होनेमें कोई वाधा नहीं आती है । ग्यारह प्रकृतिक और उन्नीस प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थानोंमें प्रकृत संक्रमस्थानकी योजना इसी प्रकार करनी चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि प्रमत्तसंयत, अप्रमत्तसंयत और अपूर्वकरण उपशामक इन तीन गुणस्थानोंमें तथा असंयतसम्यग्दष्टि गुणस्थानमें क्रमसे वे दोनों सम्भव हैं ऐसा यहाँ कथन करना चाहिये, क्योंकि जो तौ और सत्रह प्रकृतियोंका बन्ध कर रहे हैं और जिनके चौबीस प्रकृतियोंकी सत्ता है उनके इन दोनों प्रतिग्रहस्थानोंके आश्रयसे तेईस प्रकृतिक संक्रमस्थानकी उत्पत्ति मानना सर्वथा न्यायसंगत है । इस प्रकार इन पाँच प्रतिग्रहस्थानोंमें तेईस प्रकृतिक संक्रमस्थानका नियम है यह जतानेके लिये गाथामें 'पंच' पदका ग्रहण किया है । तथा यहाँ पर दूसरी विशेषताक कथन करनेके लिये पंचिदिएसु, वचन दिया है । इससे यह तेईस प्रकृतिक संक्रमस्थान 'पंचिन्द्रियोंके ही होता है अन्यके नहीं ऐसा यहाँ ग्रहण करना चाहिये । उसमें भी संज्ञी पंचेन्द्रियोंके ही होता है असंज्ञियोंके नहीं होता इतना विशेष जानना चाहिये ।

शंका—यह कैसे जाना ?

—समाधान—व्याख्यानसे विशेषका ज्ञान होता है, यह नियम है । तदनुसार प्रकृतमें भी यह तेईस प्रकृतिक संक्रमस्थान संज्ञियोंके ही होता है असंज्ञियोंके नहीं होता यह विशेष जाना जाता है ।

विशेषार्थ—इस पाँचवी गाथामें तेईस प्रकृतिक संक्रमस्थानका २२, १९, १५, ११ और ७ प्रकृतिक पाँच प्रतिग्रहस्थानोंमें संक्रम होता है यह बतलाया गया है । उसमें भी यह संक्रमस्थान संज्ञियोंके ही होता है अन्यके नहीं होता इतना विशेष जानना चाहिये ।

इस प्रकार पाँचवी गाथाका अर्थ समाप्त हुआ ।

§ २८८. अब 'चोइसय-दसय-सत्तय०' इस छठी गाथाका अर्थ कहते हैं—चौदह, दस, सात और अठारह इन चार प्रतिग्रहस्थानोंमें बाईस प्रकृतिक संक्रमका नियम जानना चाहिये यह इस गाथाके पूर्वाधका तात्पर्य है । इनका यहाँ कैसे सम्भव है ऐसा पूछनेपर कहते हैं—दर्शन-मोहनीयकी चपयाके लिये उद्यत होकर जिसने मिथ्यात्वका ज्ञय कर दिया है उस संयतासंयतके

चोद्दसपडिग्गहो होऊण वावीससंकमद्वानुमुप्पज्जइ । एवं सेसाणं पि वत्तच्चं, पमत्तापमत्त-  
मंजदाणियद्विगुणद्वानुविरदसम्माइद्वीगु जहाकम्मं तदुप्पत्तीदो । कथमणियद्विद्वाने  
वावीससंकममंभवो ति णामंकाणिज्जं, आणुपुञ्जीसंकमे चउवीससंतकम्मियस्स तद-  
विरोहादो । एत्थेव गइविमयणियमावहारणद्विमिदं वयणं 'णियमा मणुमगईण ।' कुदो  
एण णियमो ? सेमगईणु दंमणमोहवत्तवणाण आणुपुञ्जीसंकमस्स वा अमंभवादो ।  
एत्थेव गुणद्वानुगयमामिचविसेसावहारणद्विमिदमाह—'विरदे मिस्से अचिरदे य ।'  
मंजदामंजदमि पयदमंक्रमद्वानुमस्स तेरसपडिग्गहमंभवो पमत्तापमत्तापुञ्जकरणेसु णव-  
भणिदं होइ ॥६॥

§ २८९. 'तेरमय णवय सत्तय०'—एत्थ एगाधिमाए वीमाए संकमो तेरसादिमु  
छसु पडिग्गहद्वानेसु होइ ति मुत्तथमंभवो । कथमेदेसिं संभवो ? वुच्चदे—खदयसम्माइद्वि-  
मंजदामंजदमि पयदमंक्रमद्वानुमस्स तेरसपडिग्गहमंभवो पमत्तापमत्तापुञ्जकरणेसु णव-

सम्यग्मिथ्यात्वके विना चोद्दह प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थानके साथ चाहेम प्रकृतिक संक्रमस्थान उत्पन्न  
होता है । इसी प्रकार दोष प्रतिग्रहस्थानके विषयमें भी वधन करना चाहिये, क्योंकि क्रमसे  
प्रमत्ताप्रमत्तासंयतके दम प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थानके रहते हुए, अनिशुचितकरण गुणस्थानमें सात  
प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थानके रहने हुए और अचिरतसम्बन्धदृष्टिके अठारह प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थानके रहते  
हुए चाहेम प्रकृतिक संक्रमस्थानकी उत्पत्ति होती है ।

शंका—अनिशुचितकरण गुणस्थानमें चाहेम प्रकृतिक संक्रम कैसे सम्भव है ?

समाधान—यह आश्चर्य करना ठीक नहीं है, क्योंकि आनुपूर्वी नरकका प्रारम्भ हो  
जानेपर चौबीस प्रकृतिचौबीस सत्ताधामों जीवके चाहेम प्रकृतिक संक्रमस्थानके होनेमें कोई विरोध नहीं  
आता है ।

चर्चपर गतिविषयक नियमका निश्चय करनेके लिये 'णियमा मणुमगईण' पद दिया है ।

शंका—यह नियम किम कारणसे क्रिया गया है ?

समाधान—क्योंकि मनुष्यगतिके सिवा शेष गतियोंमें दर्शनमोहकी क्षणमा और आनुपूर्वी-  
संकम सम्भव नहीं है ।

चर्चापर गुणस्थानसम्यग्धी स्थामित्वविशेषका निश्चय करनेके लिये 'विरदे मिस्से अचिरदे  
य' पद कहा है । इसका यह आशय है कि ये प्रतिग्रहस्थान संयतासंयत, संयत और असंयत-  
सम्यग्दृष्टि इन गुणस्थानोंमें ही होते हैं ।

विशेषार्थ—इम छठी गाथामें चाहेम प्रकृतिक संक्रमस्थानके फौन-फौन प्रतिग्रहस्थान होते हैं  
और वे किस गतिमें तथा किस किस गुणस्थानमें होते हैं यह बतलाया है । गुणस्थानोंका बल्लेख  
गाथामें 'विरदे मिस्से अचिरदे य' इस रूपमें किया है । यहाँ मिश्रसे विरताविरत लिया है, क्योंकि  
चोद्दह प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थान विरताविरतके ही पाया जाता है ।

§ २८९. अब 'तेरमय णवय सत्तय०' इस सातवीं गाथाका अर्थ कहते हैं—इफीस प्रकृतिचौ-  
बीस संक्रम तेरह आदि छह प्रतिग्रह स्थानोंमें होता है यह इस गाथा सूत्रका तात्पर्य है । इनका यहाँ  
क्रमे सम्भव है । बतलाते हैं—सायिकसम्यग्दृष्टि संयतासंयतके प्रकृत संक्रमस्थानका तेरहप्रकृतिक

पयडिपडिगहसंभवो असंजदसम्माइडिड्डाणे अणियट्टिकरणपविट्टखवगोवसामगेसु च जहाकमं सत्तारस-पंचपडिगहहट्टाणसंभवो, इगिवीससंतकम्मिएसु तेसु तदुप्पचिविसेसा-भावादो । संतकम्मियमस्सिरुणाणियट्टिड्डाणम्मि सत्तपयडिपडिगहहट्टाणसंभवो, आणुपुव्वी-संकमं काऊण णवुंसयवेदे उवसामिदे तत्थ सत्तपडिगहहट्टाणपडिबद्धेकावीससंकमट्टाणुब-लंभादो । सासणसम्माइडिड्डिम्मि एकवीसपडिगहहट्टाणसंभवो वत्तव्वो, अणंताणुवंधि-विसंजोयणापरिणदउवसमसम्माइडिड्डिम्मि सासणगुणं पडिवण्णे तप्पट्ठमावळियाए तदुव-लद्धीदो । संपहि एदेसिं पडिगहहट्टाणाणमाधारभूदगुणट्टाणविसेसावहारणट्टिमिदमाह—  
'छप्पि सम्मत्ते' इदि । एदाणि छप्पि पडिगहहट्टाणाणि सम्भतोवल्लिखए चेव गुणट्टाणे  
होति णाण्णत्थ संभवन्ति त्ति उचं होइ । कधं पुण सासणसम्माइडिड्डिस्स सम्माइडि-  
ववएसो ? ण दंसणतियस्स उदयाभावं पेक्खियूण तस्स सम्माइडिड्डिचोवयारादो ॥७॥

प्रतिग्रहस्थान सम्भव है । प्रमत्तसंयत, अप्रमत्तसंयत और अपूर्वकरणमें प्रकृतसंकमस्थानका नौ प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थान सम्भव है । असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें तथा अनिवृत्तिकरणमें प्रविष्ट हुए क्षपक और उपशामकके क्रमसे सत्रह प्रकृतिक और पाँच प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थान सम्भव है । अर्थात् असंयत सम्यग्दृष्टिके सत्रह प्रकृतिक तथा अनिवृत्तिकरणगुणस्थानवर्ती क्षपक और उपशामकके पाँच प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थान हैं, क्योंकि इक्कीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले उक्त जीवके उक्त प्रतिग्रहस्थानोंकी उत्पत्ति होनेमें कोई बाधा नहीं आती है । तथा चौबीस प्रकृतिक सत्कर्मकी अपेक्षा अनिवृत्तिकरण गुणस्थानमें सात प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थान सम्भव है, क्योंकि आनुपूर्वी संक्रमको करके नपुंसकवेदका उपशाम कर लेनेपर वहाँ सातप्रकृतिक प्रतिग्रहस्थानसे सम्बन्ध रखनेवाला इक्कीस प्रकृतिक संक्रमस्थान उपलब्ध होता है । इसीप्रकार इक्कीस प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थानका सम्भव सासादनसम्यग्दृष्टिके कहना चाहिये, क्योंकि जिस उपशामसम्यग्दृष्टिने अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी विसंयोजना की है उसके सासादन गुणस्थानको प्राप्त होनेपर उसकी प्रथम ध्यावलिके भीतर उक्त प्रतिग्रहस्थान व संक्रमस्थान पाया जाता है । अब इन प्रतिग्रहस्थानोंके आधारभूत गुणस्थान-विशेषोंका अवधारण करनेके लिये 'छप्पि सम्मत्ते' पद कहा है । ये छह प्रतिग्रहस्थान सम्यक्त्वसहित गुणस्थानोंमें सम्भव हैं अन्यत्र सम्भव नहीं है यह इस कथनका तात्पर्य है ।

शंका—यहाँ सासादनसम्यग्दृष्टिको सम्यग्दृष्टि यह संज्ञा कैसे दी है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि सासादन गुणस्थानमें दर्शनमोहनीयकी तीन प्रकृतियोंका उदय नहीं होता यह देखकर उपचारसे उसे सम्यग्दृष्टि संज्ञा दी है ।

विशेषार्थ—प्रकृतिसंक्रमस्थानकी इस सातवीं गाथामें इक्कीस प्रकृतिक संक्रमस्थानके कितने प्रतिग्रहस्थान और कौन कौन स्वामी हैं यह बतलाया है । स्वामीका निर्देश करते हुए गाथामें केवल 'सम्मत्ते' पद दिया है । जिसका अर्थ होता है कि इक्कीस प्रकृतिक संक्रमस्थानके ये छहों प्रतिग्रहस्थान सम्यग्दृष्टिके होते हैं । तथापि इनमेंसे इक्कीस प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थानके रहते हुए इक्कीस प्रकृतिक संक्रमस्थान सासादन सम्यग्दृष्टिके भी होता है, इसलिये यह प्रश्न हुआ कि सासादन सम्यग्दृष्टिको सम्यग्दृष्टि कैसे कहा जाय ? टीकामें इसका यह समाधान किया गया है कि सासादनमें तीन दर्शनमोहनीयका उदय नहीं होता है और इस अपेक्षासे उसे उपचारसे सम्यग्दृष्टि कहा जा सकता है । इस प्रकार यद्यपि इक्कीस प्रकृतिक संक्रमस्थानके रहते हुए इक्कीस प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थान सम्यग्दृष्टिके बन जाता है तथापि इन छह प्रतिग्रहस्थानोंमें एक सत्रह प्रकृतिक

§ २९०. 'एत्तो अवसेसा' पयडिट्टाणसंकमा वीसादयो पयडिट्टाणपडिग्गहा च छक्क-पणगादयो संजमग्ग्हि संजमोवलक्खिण्णसु चैव गुणट्टाणेषु होंति णाण्णत्थ, तेसि तत्थेव णियमदंसणादो । तत्थ वि खवगोवसमसेटीसु चैव होंति चि जाणावण्हं 'उवसासामगे च खवगे च' इदि भणिदं । एवं सामण्णेण परुविय संपहि एदस्सेव विसोसिऊण परूवण्हमिदमाह 'वीसा य संकमदुगे' । वीसाए संकमो दोसु चैव पडिग्गहट्टाणेषु होइ । काणि ताणि दोपडिग्गहट्टाणाणि चि आसंकाए 'छक्के पणगे च बोद्धव्वा' चि भणिदं । तं कथं ? चउवीससंतकम्मिएणुवसमसेहिं चडिय णनुंसय-इत्थिवेदोवसमं काऊण पुरिसवेदपडिग्गहवोच्छेदे कदे सम्मत्त-सम्मामिच्छत्त-चउंसंजलण-सणिणदछप्पयडिपडिग्गहपडिबद्धो वीसपयडिसंकमो होइ । पुणो इग्गिवीससंतकम्मिएणु-वसमसेहिं चडिय आणुपुव्वीसंकमे कदे वीसपयडिसंकमो पंचपयडिपडिग्गहपडिबद्धो समुप्पज्जइ । तम्हा छक्के पणगे च वीसाए संकमो चि सिद्धं ॥८॥

प्रतिग्रहस्थान भी सम्मिलित हैं । यह प्रतिग्रहस्थान सम्पन्नाष्टि और सम्यग्मिथ्याष्टि इन दोनोंके सम्भव हैं और इन दोनोंके इसमें इक्कीस प्रकृतियोंका संक्रम भी सम्भव है । यद्यपि स्थिति ऐसी है तथापि गायामं या उसकी टीकामें सम्यग्मिथ्याष्टिके इस संक्रम व प्रतिग्रहस्थानका निर्देश नहीं किया गया है । इसका निर्देश क्यों नहीं किया गया है इसके दो कारण हो सकते हैं । प्रथम तो यह कि सम्यक्त्वके ग्रहण करनेसे उसके प्रतिपक्षी भाषका भी ग्रहण हो जाता है, इनलिये यद्यपि पृथक्से निर्देश नहीं किया है तथापि उसका ग्रहण हो जाता है और दूसरा यह कि गौण समभंकर उसे छोड़ दिया है । तथापि गायामं आया हुआ 'सम्मत्तो' पद देशामपेक होनेसे उसका ग्रहण हो जाता है ।

§ २९०. अब 'एत्तो अवसेसा०' इस आठवीं गाथाका अर्थ लिखते हैं—ये पूर्वमें जितने भी संक्रमस्थान और प्रतिग्रहस्थान कह आये हैं उनके सिवा वीस आदिक जितने संक्रमस्थान हैं और छह, पाँच आदिक जितने प्रतिग्रहस्थान हैं वे सब संयमसे युक्त गुणस्थानोंमें ही होते हैं । अन्यत्र नहीं होते हैं, क्योंकि उनके वहीं होनेका नियम देखा जाता है । उसमें भी ये चपकश्रेणि और उपशमश्रेणिमें ही होते हैं, इसलिये इस बातके जतानेके लिये गायामें 'उवसासामगे च खवगे च' पाठ कहा है । इस प्रकार सामान्यरूपसे कथन करके अब इसी बातका विशेषरूपसे कथन करनेके लिये गायामें 'वीसा य संकमदुगे' पाठ कहा है । इसका यह आशय है कि वीस प्रकृतिक संक्रम दो प्रतिग्रहस्थानोंमें होता है । वे दो प्रतिग्रहस्थान कौनसे हैं ऐसी आशंका होने पर 'छक्के पणगे च बोद्धव्वा' यह पद कहा है । खुलासा इस प्रकार है—जो चोरीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला जीव उपशमश्रेणि पर चढ़कर नपुंसकवेद और स्त्रीवेदका उपशम करके पुरुषवेदकी प्रतिग्रहव्युच्छ्रित कर देता है उसके सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और चार संभ्वलन इन छह प्रकृतियोंके प्रतिग्रहरूप स्थानसे सम्यन्ध रखनेवाला वीस प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है । तथा इक्कीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला जो जीव उपशमश्रेणि पर चढ़कर आनुपूर्वी संक्रमका प्रारम्भ कर देता है उसके पाँच प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थानसे सम्यन्ध रखनेवाला वीस प्रकृतिक संक्रमस्थान व्यपन्न होता है । अतएव छह और पाँच प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थानमें वीस प्रकृतियोंका संक्रम होता है यह बात सिद्ध हुई ॥८॥

§ २९१. 'पंचसु च ऊणवीसा०' एसा णवमी गाहा १९, १८, १४, १३ चउण्हमेदेसि संकमड्डाणाणं पडिग्गहड्डाणपरूवणट्टमागया । तत्थ ताव 'पंचसु च ऊणवीसा' ति भणिदे पंचसु पयडीसु पडिग्गहभावमावण्णासु एऊणवीसाए संकमो होइ ति घेत्तव्वं । काओ ताओ पंच पयडीओ ? पुरिसवेद-चउसंजलणसण्णिदाओ, इगिवीससंतकम्मियाणियद्विउवसामगस्स लोभासंकमाणंतरमुवसाभिदणनुंसयवेदस्स तप्पडि-

**विशेषार्थ—**प्रकृतिसंकमस्थानकी इस आठवीं गाथामे दो वातें बतलाई हैं। प्रथम बात तो यह बतलाई है कि अब तक जितने संकमस्थान और प्रतिग्रहस्थान कहे गये हैं उनके सिवा आगे जितने भी संकमस्थान और प्रतिग्रहस्थान कहे जायगे वे सब उपशमश्रेणि और क्षपकश्रेणिमे ही होते हैं। तथा दूसरी यह बात बतलाई गई है कि २० प्रकृतिक संकमस्थानका छह और पांच प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थानोंमें संकम होता है अन्यत्र नहीं। किन्तु श्वेताम्बर परम्परामें प्रसिद्ध कर्मप्रकृतिमें इस बीस प्रकृतिक संकमस्थानके प्रतिग्रहस्थान दो न बतलाकर ७, ६ और ५ प्रकृतिक तीन बतलाये हैं। इस मतभेदका कारण क्या है अब इस पर विचार कर लेना आवश्यक है। यह तो दोनों परम्पराओंमें समानरूपसे स्वीकार किया है कि उपशमश्रेणिमें अन्तरकरण क्रिया कर लेनेके बाद दूसरे समयसे आनुपूर्वी संकमका प्रारम्भ होता है। किन्तु आनुपूर्वी संकमके क्रमके विषयमे दोनों परम्पराओंमें थोड़ा मतभेद मिलता है। यतिवृषभ आचार्य ने अपनी चूर्णिमें बतलाया है कि अन्तर करनेके बाद प्रथम समयसे लेकर छह नोकपायोंका क्रोधमें संकम<sup>१</sup> होता है अन्य किसीमें संकम नहीं होता है। किन्तु श्वेताम्बर परम्परामें प्रसिद्ध कर्मप्रकृतिके उपशमनाकरणीकी गाथा ४७ की चूर्णिमें लिखा है कि 'पुरुषवेद' की प्रथम स्थितिमें दो आवलि शेष रहने पर आगालका विच्छेद हो जाता है किन्तु अनन्तरवर्ती आवलिमेंसे उदीरणा होती रहती है। तथा उसी समयसे लेकर छह नोकपायोंके द्रव्यका पुरुषवेदमें संकम नहीं होता है।<sup>१</sup> इस मतभेदसे यह स्पष्ट हो जाता है कि कषायप्राभृतके अनुसार तो नपुंसकवेद और स्त्रीवेदका उपशम हो जानेके बाद पुरुषवेदकी प्रतिग्रहव्युच्छिन्ति हो जाती है किन्तु कर्मप्रकृतिके अनुसार नपुंसकवेद और स्त्रीवेदका उपशम हो जानेके बाद भी पुरुषवेदमें प्रतिग्रहशक्ति बनी रहती है। यही कारण है कि कषायप्राभृतमें बीस प्रकृतिक संकमस्थानके ६ प्रकृतिक और ५ प्रकृतिक ये दो प्रतिग्रहस्थान बतलाये हैं और कर्मप्रकृतिमें बीस प्रकृतिक संकमस्थानके ७, ६ और ५ प्रकृतिक तीन संकमस्थान बतलाये हैं।

§ २९१. 'पंचसु च ऊणवीसा०' यह नौवीं गाथा १९, १८, १४ और १३ इन चार संकमस्थानोंके प्रतिग्रहस्थानका कथन करनेके लिये आई है। वहाँ गाथामें जो 'पंचसु च ऊणवीसा' पद कहा है सो इससे प्रतिग्रहरूप पांच प्रकृतियोंमे उन्नीस प्रकृतिक संकम होता है यह अर्थ लेना चाहिये। वे पांच प्रकृतियां कौन सी हैं? पुरुषवेद और चार संजलन ये पांच प्रकृतियां हैं जो प्रकृतमें प्रतिग्रहरूप हैं, क्योंकि श्वकीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले अनिवृत्तिकरण उपशामक जीवके लोभ संजलनका संकम न होनेके बाद नपुंसकवेदका उपशम हो जानेपर पांच प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थानसे सम्बन्ध रखने वाला उन्नीस प्रकृतिक संकमस्थान देखा जाता है। 'अट्टारस चट्टसु०' यह

१. अंतरादो दुसमयकदादो पाये छुएणोक्साए कोये संहुहदि श अएण्हि कग्हि वि । कषाय० उपशा. जु. ६७९०

२. पुरिसवेयस्स पढमद्वितिते दुयावलिअसेसाए आगालो वोड्ढिन्तो । अयंतरावलिगातो उदीरणा एत्ति, तादे छएह नोकसायाण संछोभो यत्थि पुरिसवेदे, सजलयेसु सहुभन्ति । कर्मप्र० उपशा. गा. ४७ जु.

वद्वेज्जनीससंक्रमणोवर्लंभादो । 'अद्वारस चदुसु०' एसो सुत्तस्स विदियावयवो  
अद्वारसपयडिसंक्रमस्स चदुसु पडिग्गहृण्येति संभवावहारणफलो, तेणेवित्थिवेदोवसमं  
करिय पुरिसवेदपडिग्गहृण्येदे कदे चउसंजलणपयडिपडिवद्वे पयदसंक्रमणो-  
वर्लंभादो । 'चोदस लुसु०' एदेण वि सुत्तस्स तइज्जावयवेण चोदससंक्रमणस्स लुसु  
पयडिसु पडिवद्वत्तं परुविदं, चउवीससंतकम्मियाणियडिउवसामयस्स पुरिसवेदणवक-  
वंधोवसामणावत्थाए चउसंजलण-दोदंसणमोहसण्णिदलुप्पयडिपडिग्गहेण पुरिसवेदे-  
कारसकसाय-दोदंसणमोहपयडिपडिवद्वचोदससंक्रमणोवर्लंभादो । 'तेरसयं लुक्क-  
पणगग्ग्हि' एदेण वि चउत्थावयवेण तेरससंक्रमणस्स लुक्क-पणएसु णिवंधणत्तं  
परुविदं । तत्थ ताव समणंतरपरुविदचोदससंक्रामएण पुरिसवेदोवसमे कदे तेरसपयडि-  
संक्रमो लुप्पयडिपडिग्गहृण्येतिओ समुप्पज्जइ, पुव्वुत्तपडिग्गहृण्येति लुप्पं पि तत्थ  
तहावद्वान्णदंसणादो । एदस्स चे चोहसंजलणपडमट्टिदीए तिसु आवलियासु समयूणासु  
सेसासु तेरससंक्रमणं पंचपयडिपडिग्गहृण्येतिओ समुप्पज्जइ । अथवा अणियडिखवगेण  
अद्वकसाएसु खविदेसु पंचपडिग्गहृण्येतिओ तेरससंक्रमणमुवलम्भइ ॥९॥

गाथाका दूसरा पद अठारह प्रकृतिक संक्रमस्थानका चार प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थानसे संक्रम होता  
है यह अवधारण करानेके लिए दिया है, क्योंकि वही पूर्वोक्त जीव जय स्त्रीवेदका उपशम  
करके पुरुषवेदकी प्रतिग्रहव्युत्पत्ति कर देता है तब उसके चार संज्ञलनरूप प्रतिग्रहस्थानसे सम्बन्ध  
रखनेवाला प्रकृतिक संक्रमस्थान उपलब्ध होता है । गाथाके 'चोदस लुसु०' इस तीसरे चरण  
द्वारा भी चोदह प्रकृतिक संक्रमस्थान छह प्रतिग्रह प्रकृतियोंसे प्रतिग्रह है यह बतलाया है, क्योंकि  
चोदसी प्रकृतियोंकी सत्तावाले अनिष्टकारण उपशामकरके पुरुषवेदके नवकवन्धकी उपशामना  
करते समय चार संज्ञलन और दो दर्शनमोहनीय इन छह प्रकृतियोंके प्रतिग्रहरूपसे पुरुषवेद,  
ग्यारह कपाय और दो दर्शनमोहनीय प्रकृतियोंसे सम्बन्ध रखनेवाला चोदह प्रकृतिक संक्रमस्थान  
उपलब्ध होता है । गाथाके 'तेरसयं लुक्क-पणगग्ग्हि' इस चौथे चरण द्वारा भी तेरह प्रकृतिक  
संक्रमस्थान छह और पाँच प्रतिग्रह प्रकृतियोंमें प्रतिग्रह है यह बतलाया है । यहाँपर समनन्तर  
पूर्व कहे गये चोदह प्रकृतियोंके संक्रामक जीवके द्वारा पुरुषवेदका उपशम कर लेने पर छह  
प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थानसे सम्बन्ध रखनेवाला तेरह प्रकृतिक संक्रमस्थान उत्पन्न होता है, क्योंकि  
पूर्वोक्त छह प्रतिग्रह प्रकृतियों इस तेरह प्रकृतिक संक्रमस्थानके समय पूर्ववत् अवस्थित देखी  
जाती हैं । तथा इसी जीवके जय क्रोध संज्ञलनकी प्रथम स्थितिमें एक समय कम तीन आवली  
काल शेष रह जाता है तब पाँच प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थानसे सम्बन्ध रखनेवाला तेरह प्रकृतिक  
संक्रमस्थान उत्पन्न होता है । अथवा अनिष्टकारण गुणस्थानवर्ती कृपकके द्वारा आठ कपायोंका  
क्षय कर देने पर पाँच प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थानसे सम्बन्ध रखनेवाला तेरह प्रकृतिक संक्रमस्थान  
प्राप्त होता है ॥ ९ ॥

**विशेषार्थ—**इस गाथामें १९, १८, १४ और १३ इन चार संक्रमस्थानोंका किस किस  
प्रतिग्रहस्थानमें संक्रम होता है यह बतलाया है । विशेष खुलासा टीकामें किया ही है । किन्तु



§ २९२. 'पंच चउक्के वारस०' एसा दसमगाहा १२, ११, १०, ९ चउण्ह-  
 मेदेसि संकमट्टाणाणं पडिग्गहट्टाणपरूवट्टमागया । तत्थ पढमावयवेण वारससंकमट्टाणस्स  
 पंच-चट्टुक्सण्णिणदपडिग्गहट्टाणेषु संभवावहारणं कीरदे, इगिवीससंतकम्मियखवगोव-  
 सामगेषु जहाकमं लोभासंकम-छण्णोकसायोवसामणपरिणदेसु तहाविहसंभवोवलंभादो ।  
 'एकारस पंचगे०' एदेण च विदियावयवेण पंच-तिग-चट्टुक्सण्णिणदेसु तिसु पडिग्गह-  
 ट्टाणेषु एकारसपयडिसंकमस्स विसयावहारणं कीरदे । तं कधं ? खवगस्स णवुंसयवेदे  
 खीणे पंचपडिग्गहट्टाणाहारमेकारससंकमट्टाणमुप्पज्जह । अहवा चउवीसदिकम्मंसिएण  
 दुविहकोहोवसमं काळण कोहसंजलणपडिग्गहवोच्छेदे कदे तमेव संकमट्टाणं  
 तेणेव पडिग्गहट्टाणेण पडिग्गहदिसुवजायदे, तत्थ माण-माया-लोहसंजलण-सम्मत्त-  
 सम्मामिच्छत्ताणं कोहसंजलण-तिविहमाण-तिविहमाय-दुविहलोभ-मिच्छत्त-सम्मामिच्छत्त-  
 समुहारद्वयदसंकमट्टाणस्साहारभावोवलंभादो । पुणो इगिवीससंतकम्मिओवसामणेण

यहां एक बातका निर्देश कर देना आवश्यक प्रतीत होता है । बात यह है कि यहां अठारह प्रकृतिक  
 संक्रमस्थानका चार प्रकृतिक एक प्रतिग्रहस्थान बतलाया है किन्तु कर्मप्रकृतिमें १८ प्रकृतिक  
 संक्रमस्थानके ५ और ४ ये दो प्रतिग्रह स्थान बतलाये हैं । २१ प्रकृतियोंकी सत्तावाले जीवके  
 आनुपूर्वी संक्रमका प्रारम्भ हो जानेके बाद नपुंसकवेद और स्त्रीवेदका उपशम हो जानेपर यह  
 अठारह प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है । तब कपायप्राभूतके अनुसार पुरुषवेद प्रतिग्रह प्रकृति  
 नहीं रहती, अतः चार प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थान ही प्राप्त होता है किन्तु कर्मप्रकृतिके अनुसार उसमें  
 जब तक छह नोकषायोंका संक्रम होता रहता है तब तक पांच प्रकृतिक और उसके बाद चार  
 प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थान प्राप्त होता है । इस प्रकार मतभेदका यह कारण जानना चाहिये ।

§ २९२. 'पंच-चउक्के वारस०' यह दसवीं गाथा १२, ११, १० और ९ इन चार संक्रम-  
 स्थानोंके प्रतिग्रहस्थानोंका कथन करनेके लिये आई है । वहां गाथाके प्रथम चरणद्वारा बारह प्रकृतिक  
 संक्रमस्थानके पांच प्रकृतिक और चार प्रकृतिक ये दो प्रतिग्रहस्थान सम्भव हैं यह अवधारण  
 किया गया है, क्योंकि जो क्षपक आनुपूर्वी संक्रमका प्रारम्भ हो जानेके कारण लोभसंञ्चलनका  
 संक्रम नहीं कर रहा है उसके बारह प्रकृतिक संक्रमस्थानका पांच प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थान उपलब्ध  
 होता है और इक्कीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला जो उपशामक छह नोकषायोंका उपशमन कर रहा  
 है उसके बारह प्रकृतिक संक्रमस्थानका चार प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थान उपलब्ध होता है । 'गाथाके  
 एकारस पंचगे०' इस दूसरे चरण द्वारा यह निश्चय किया गया है कि ग्यारह प्रकृतिक संक्रम-  
 स्थानका पांच, चार और तीन प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थानोंमें संक्रम होता है, क्योंकि क्षपक जीवके  
 नपुंसकवेदका क्षय कर देने पर ग्यारह प्रकृतिक संक्रमस्थानका आधारभूत पांच प्रकृतिक प्रतिग्रह-  
 स्थान उत्पन्न होता है । अथवा चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला जो उपशामक जीव दो प्रकारके  
 क्रोधका उपशम करके क्रोध संञ्चलनकी प्रतिग्रह व्युत्पत्ति कर देता है उसके उसी पूर्वोक्त प्रति-  
 ग्रहस्थानसे सम्बन्ध रखनेवाला वही पूर्वोक्त संक्रमस्थान उत्पन्न होता है, क्योंकि वहाँ पर क्रोध-  
 संञ्चलन, तीन मान, तीन माया, दो लोभ, मिथ्यात्व और सम्यग्मिथ्यात्व इनके समूह रूप  
 प्रकृत संक्रमस्थानका आधारभूत मान संञ्चलन, माया संञ्चलन, लोभ संञ्चलन, सम्यक्त्व और  
 सम्यग्मिथ्यात्व इन पांच प्रकृतिरूप प्रतिग्रहस्थान उपलब्ध होता है । तथा इक्कीस प्रकृतियोंकी

१. आ०प्रती - संजलयस्स सम्मत्त- इति पाठः । २. ता०प्रती सम्मत्तसम्मादडीयं इति पाठः ।

णवणोकसायोवसमे कदे तिविहकोह-माण-माया-दुविहलोहपयडिसमुदायणप्यण-  
मेकारसपयडिसंक्रमणं चदुसंजलणपडिग्गहविसयं होऊण समुप्यज्झं । एदस्स चेव  
कोहसंजलणपडिमट्टिदीए तिणहमावलियाणं समयूणाणमवसेसे दुविहं कोहं तत्थासंक्रामेऊण  
माणसंजलणसरूवेण संक्रामेमाणस्स तक्काले तिण्हं संजलणपयडीणं पडिग्गहभावेण  
एकारसंक्रमणमुप्यज्झं । 'दसगं चउक्क-पणगे'—दसपयडिसंक्रमो चउक्क-पणयपडिग्गह-  
द्वानविसए पडिणियदो त्ति दट्ठव्वो । तत्थ ताव चउवीससंतकम्मिएण तिविहकोहोवसमे  
कदे तिविहमाण-माया-दुविहलोह-मिच्छत्त-सम्मामिच्छत्तसण्णिणददसपयडिसंक्रमो माण-  
माया-लोहसंजलण-सम्मत्त-सम्मामिच्छत्तपंचपयडिपडिग्गहद्वानाहिद्वानो समुप्यज्झं ।  
एदस्स चेव माणसंजलणपडिमट्टिदीए समयूणावलयितियमेत्तावसेसे' दुविहं माणमेत्था-  
संक्रामेऊण मायासंजलणे संछुहमाणयस्स माया-लोहसंजलण-सम्मत्त-सम्मामिच्छत्त-  
चउपयडिपडिग्गहावेक्खो दसपयडिसंक्रमो होइ । अहवा खवणेण इत्थिवेदे खविदे  
दसपयडिसंक्रमणं चउसंजलणपयडिपडिग्गहपडिवट्ठमुप्यज्झं । 'णवगं च तिगग्गिह  
वोद्धव्वा' एदेण चउत्थावयवेण णवसंक्रमणस्स तिण्हं पयडीणं पडिग्गहमावो  
परूविदो । तं जहा—इगिवीससंतकम्मिएण दुविहकोहोवसमे कदे कोहसंजलण-

सत्तावाला जो उपशामक जीव नौ नोकपायोंका उपशाम कर देता है उसके प्रतिग्रहरूप चार  
संज्वलनोंका विपयभूत तीन प्रकारका क्रोध, तीन प्रकारका मान, तीन प्रकारकी माया और दो  
प्रकारका लोभ इन प्रकृतियोंका समुदायरूप ग्यारह प्रकृतिक संक्रमस्थान उत्पन्न होता है । यही  
जीव जब क्रोध संज्वलनकी प्रथम स्थितिमें एक समय कम तीन आवलि शेष रहने पर इसमें दो  
प्रकारके क्रोधका संक्रम न करके केवल मान संज्वलनका संक्रम करता है तब तीन  
संज्वलन प्रकृतियोंके प्रतिग्रहरूपसे ग्यारह प्रकृतिक संक्रमस्थान उत्पन्न होता है । 'दसगं  
चउक्क-पणगे' यह गाथाका तीसरा चरण है । इसमें चार प्रकृतिक और पाँचप्रकृतिक  
प्रतिग्रहस्थानके विपयरूपसे दस प्रकृतिक संक्रमस्थान प्रतिनियत है यह बतलाया गया है ।  
खुलासा इस प्रकार है—जो चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला जीव तीन प्रकारके  
क्रोधका उपशाम कर देता है उसके तीन प्रकारका मान, तीन प्रकारकी माया, दो प्रकार  
का लोभ, मिथ्यात्व और सम्यग्मिथ्यात्व इन दस प्रकृतियोंका संक्रम मान, माया और  
लोभ संज्वलन तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व इन पाँच प्रतिग्रहरूप प्रकृतियोंके आधारसे उत्पन्न  
होता है । तथा जब यही जीव मान संज्वलनकी प्रथम स्थितिमें एक समयकम तीन अवलि कालके  
शेष रह जानेपर इसमें दो प्रकारके मानके संक्रमका अभाव करके माया संज्वलनमें संक्रम करता है  
तब मायासंज्वलन, लोभसंज्वलन, सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व इन चार प्रतिग्रहरूप प्रकृतियोंकी  
अपेक्षा रखनेवाला दस प्रकृतिक संक्रमस्थान उत्पन्न होता है । अथवा जब चपक जीव क्षीवेदका  
क्षय कर देता है तब प्रतिग्रहरूप चार संज्वलन प्रकृतियोंसे सम्बन्ध रखनेवाला दस प्रकृतिक  
संक्रमस्थान उत्पन्न होता है । गाथाके 'एवगं च तिगग्गिह वोद्धव्वा' इस चौथे चरण द्वारा नौ प्रकृतिक  
संक्रमस्थानका तीन प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थान होता है यह बतलाया है । यथा—इक्कीस प्रकृतियोंकी  
सत्तावाले जिस जीवने दो प्रकारके क्रोधका उपशाम कर दिया है उसके क्रोध संज्वलन, तीन प्रकारका

१. आ०प्रतौ—समयूणावलयिपत्तियमेत्तावसेसे इति पाठः ।

तिविहमाण-माया-दुविहलोहपयडिसंकमो तिसु संजलणपयडीसु लब्भदे, ताहे कोह-संजलणणवक्कवंधस्स संकमं मोत्तूण पंडिग्गहिच्चाभावादो ॥१०॥

§ २९३. 'अट्ट दुग तिग चदुक्के०' एसां एकारसमी गाहा ८, ७, ६, ५ एदेसिं चउण्हं संकमट्टाणाणं पडिग्गहणियमपरूवणट्टमागया । तत्थ पढमावयचो अट्टपयडि-संकमस्स दुग-तिग-चदुक्केसु पडिग्गहट्टाणेसु पडिबद्धपरूवणट्टमागजो । इगिवीस-चउवीससंतकम्मियोवसामगेसु जहाकमं तिविहकोह-दुविह-माणोवसमेण परिणदेसु तिग-चउक्कपडिग्गहट्टाणपडिबद्धपढमसमयअट्टपयडिसंकमट्टाणसुवलब्भदे, इगिवीससंतकम्मियस्स माणसंजलणपढमट्टिद्वीए समयूणावलियतियमेच्चावसेसाए दुविहमाणं तथासंक्रामिय संजलणमायाए संखुहमाणस्स माणसंजलणपडिग्गहसत्तिचिरहेणं माया-लोभसंजलणाणं दोण्हमेव पडिग्गहभावेण अट्टपयडिसंकमो लब्भइ । 'सत्त चदु०'—सत्तपयडिसंकमो चदुक्के तिगे च पडिणियदो बोद्धव्वो । चउवीससंतकम्मियस्स तिविहमाणोवसमाणंतरं चउण्हं पडिग्गहभावेण सत्तपयडिसंकमो लब्भदे । एदस्स चैव समयूणावलियतियमेच्चा-मायासंजलणपढमट्टिदिवारयस्स मायासंजलणपडिग्गहस्स विरामेण तिण्हं पडिग्गहत्त-

मान, तीन प्रकारकी माया और दो प्रकारका लोभ इन नौ प्रकृतियोंकी तीन संव्वलन प्रकृतियोंमें संक्रम उपलब्ध होता है, क्योंकि तब क्रोधसंव्वलनके नवकवन्धका संक्रम तो होता है पर उसमें प्रतिग्रहपनेका अभाव रहता है ॥१०॥

विशेषार्थ—इस दसवीं गाथा द्वारा १२, ११, १० और ९ इन चार संक्रमस्थानोंके प्रतिग्रहस्थान बतलाये हैं । विशेष खुलासा टीकामें ही किया है ।

§ ३९३. 'अट्ट दुग तिग चदुक्के०' यह ग्यारहवीं गाथा ८, ७, ६ और ५ इन चार संक्रम-स्थानोंके प्रतिग्रहस्थानोंका कथन करनेके लिये आई है । उसमें भी गाथाका प्रथम चरण आठ प्रकृतिक संक्रमस्थानका दो, तीन और चार प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थानोंसे सम्बन्ध है यह बतलानेके लिये आया है । इक्कीस प्रकृतियोंकी या चौबीस प्रकृतियोंकी सत्ता रखनेवाले जिन उपशामक जीवोंने तीन प्रकारके क्रोध और दो प्रकारके मानका उपशम कर लिया है उनके प्रथम समयमें क्रमसे तीन प्रकृतिक और चार प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थानोंसे सम्बन्ध रखनेवाला आठ प्रकृतिक संक्रमस्थान प्राप्त होता है, क्योंकि जो इक्कीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला जीव मान संव्वलनकी प्रथम स्थितिमें एक समय कम तीन आवलि कालके दोष रह जाने पर दो प्रकारके मानका उसमें संक्रम न करके संव्वलन मायामें संक्रम करता है उसके मान संव्वलनमें प्रतिग्रहरूप शक्ति न रहनेके कारण मायासंव्वलन और लोभसंव्वलन इन दो प्रकृतियोंके प्रतिग्रहरूपसे आठ प्रकृतिक संक्रमस्थान उपलब्ध होता है । 'सत्त चदु०' इत्यादि गाथाका दूसरा चरण है । इस द्वारा चार प्रकृतिक और तीन प्रकृतिक इन दो प्रतिग्रहस्थानोंमें सात प्रकृतियोंका संक्रम प्रतिनियत जानना चाहिए । यथा—चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले जीवके तीन प्रकारके मानका उपशम होनेके बाद चार प्रकृतियोंके प्रतिग्रहरूपसे सात प्रकृतिक संक्रमस्थान प्राप्त होता है । तथा इसी जीवके मायासंव्वलनकी एक समय कम तीन आवलिप्रमाण प्रथम स्थिति शेष रहने पर माया संव्वलनमें प्रतिग्रह शक्ति न रहनेसे तीन प्रकृतिक

१. ता०प्रतौ दुविह माणं इति पाठः । २. आ०प्रतौ—संजलणविग्गहसत्तिचिरदेण इति पाठः ।

संभवो ढट्टञ्चो । 'छक्कं दुग्ग्हि णियमा'—छण्हं संकमो णियमा दुग्ग्हि पटिच्चट्टो षोड्ढञ्चो, एग्गञ्चोयट्टिकम्ममियम्म द्दुविहमाणोवसमसिग्गुण तद्दुवल्लोदीदो । 'पंच तिगे एक्कं दुगे वा'—पंचसंक्रमो तिगे दुगे एक्कं वा होइ ति सुत्तव्यसंपंधो । तत्थ ताव चउवीमसंतकम्मिण्ण द्दुविहमायोवसमे कदे मायासंजलण-द्दुविहलोह-भिच्छत्त-सम्मा-भिच्छत्तपंचपयडिगंक्रमो लोहसंजलण-ग्गमत्त-ग्गमामिच्छत्तविहपटिग्गहावेक्खो नमु-प्पज्जदि । पुणो इमिवायसंतकम्मियोवसामणेण विहमाणोवसमे कदे विहमाय-द्दुविहलोहसण्णित्पंचपयडिगंक्रमो माया - लोहसंजलणद्दुविहपटिग्गहट्टाणावल्लंघणो नमुप्पत्ता । एद्दन्न चैव मायासंजलणपटमट्टिदीण, नमयूणावल्लियतियमेचावसेते ढुविहं मायमसंक्रामियं लोहसंजलणम्मि संदुहमाणम्म एग्गपयटिपटिग्गहपटिच्चट्टो पंचपयडिग्गण-संकमो होइ ॥११॥

§ २०४. 'चत्तारि तिग-चट्टक्के०' एसा चारममो गाहा ४, ३, २, १ चट्टण्ह-मेदेमि संक्रमट्टाणागं पटिग्गहणियमपक्खणट्टुमागया । एदिम्मसे पटमावयवो चट्टुपयडि-संकमम्मस तिग-चट्टक्केसु पडिच्चट्टं पक्खेदि, खवरास्य छण्णोकमायपरिक्खए चट्टण्हं

प्रतिग्रहस्थानरा सदभाव जानता चाहिये । 'छक्कं दुग्ग्हि णियमा' यह गाथाका तीसरा चरण है । इस द्वारा छट्ट प्रकृतियोंका सञ्चन नियमसे दो प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थानसे सन्वन्ध रखनेवाला जानता चाहिये, क्योंकि उचरीय प्रकृतियोंकी सत्तावासे जीसके दो प्रकारके मानके उपशमका आशय लेकर उक्त संक्रम व प्रतिग्रहस्थानकी उपलब्धि होती है । 'पंच तिगे एक्कं दुगे वा' यह गाथाका चौथा चरण है । तीन, दो और एक प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थानोंमें पांच प्रकृतियोंका संक्रम होता है यह इस सूत्रप्रचरनरा कारण है । उसमें सर्वप्रथम जो चौथी प्रकृतियोंकी सत्तावाला जीव दो प्रकारकी मायाका उपशम कर लेता है उनके लोभ संजलन, सन्वत्वर और सम्यग्मिथ्यात्व इस तीन प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थानसे सन्वन्ध रखनेवाला मायासंजलन, दो प्रकारका लोभ, मिथ्यात्व और सम्यग्मिथ्यात्व यह पांच प्रकृतिक संक्रमस्थान उत्पन्न होता है । तथा उचरीय प्रकृतियोंकी सत्तावाला जो उपशामक जीव तीन प्रकारके मानका उपशम कर देता है उसके माया संजलन और लोभ संजलन इस दो प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थानसे सन्वन्ध रखनेवाला तीन प्रकारकी माया और दो प्रकारका लोभ यह पांच प्रकृतिक संक्रमस्थान उत्पन्न होता है । तथा यही जीव जब माया संजलनकी प्रथम स्थितिमें एक समय क्षय तीन आवलि काल शेष रहने पर दो प्रकारकी मायाका माया संजलनमें संक्रम न करके लोभ संजलनमें संक्रम करने लगता है तब एक प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थानसे सन्वन्ध रखनेवाला पांच प्रकृतिक संक्रमस्थान उत्पन्न होता है ॥ ११ ॥

विशेषार्थ—इस गाथामें आठ प्रकृतिक, सात प्रकृतिक, छह प्रकृतिक और पांच प्रकृतिक इन चार संक्रमस्थानोंके कौन कौन प्रतिग्रहस्थान हैं यह बतलाया है । विशेष खुलासा टीकामें किया ही है ।

§ २१४. 'चत्तारि तिग चट्टक्के०' यह चारहवीं गाथा ४, ३, २ और १ इन चार संक्रम-स्थानोंके प्रति ग्रहस्थानोंके नियमका कथन करनेके लिये आई है । इस गाथाका प्रथम चरण चार प्रकृतिक संक्रमस्थानका तीन और चार प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थानोंसे सन्वन्ध है यह बतलाती है, क्योंकि

१. ता०प्रती मायमो (म) गम्मामिय, आ०प्रती मायमोसकामिय इति पाठः ।

चदुसु संकमोवलंभादो चउवीसादिकम्मंसियस्स तिविहमायोवसमे चदुण्हं तिसु संकमोवल-  
लद्धीदो च । 'तिण्णि तिगे एकगो च वोद्धव्वा' खवगस्स पुरिसवेदपरिक्खए तिण्हं  
तिसु संकमदंसणादो इगिवीस०उवसामगस्स दुविह-मायोवसमे तिण्हमेक्किस्से पडिग्गहत्त-  
दंसणादो च । 'दो दुसु एक्काए वा' खवगस्स कोहे णिल्लेविदे इगिवीससंतकम्मियस्स  
च तिविहे मायोवसमे जादे जहाकमं दोण्हं दुसु एक्किस्से च संकमोवलंभादो चउवीसादि-  
कम्मंसियस्स वि दुविहलोहोवसमे जादे दोण्हं दुसु संकमस्स संभवोवलंभादो । 'एगा  
एगाए वोद्धव्वा', संजलणमाणे खविदे परिप्फुडमेव तदुवलंभादो ॥१२॥

एक तो जिस क्षपकने छह नोकपायोंका क्षय कर दिया है उसके चार प्रकृतियोंका चार प्रकृतियोंमें संक्रम उपलब्ध होता है और दूसरे चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले जीवके तीन प्रकारकी मायाका उपशम हो जाने पर चार प्रकृतियोंका तीन प्रकृतियोंमें संक्रम उपलब्ध होता है । 'तिण्णि तिगे एकगो च वोद्धव्वा' यह गाथाका दूसरा चरण है । इस द्वारा तीन प्रकृतिक संक्रमस्थानका तीन और एक प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थानमें संक्रम होता है यह बतलाया गया है, क्योंकि एक तो क्षपक जीवके पुंस्यवेदका क्षय हो जाने पर तीन प्रकृतियोंका तीन प्रकृतियोंमें संक्रम देखा जाता है और दूसरे इक्कीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले उपशामक जीवके दो प्रकारकी मायाका उपशम हो जानेपर तीन प्रकृतिक संक्रमस्थानका एक प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थान देखा जाता है । 'दो दुसु एक्काए वा' यह गाथाका तीसरा चरण है । इस द्वारा दो प्रकृतिक संक्रमस्थानका दो और एक प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थानमें संक्रम होता है यह बतलाया है, क्योंकि क्षपक जीवके क्रोधका नाश हो जाने पर दो प्रकृतियोंका दो प्रकृतियोंमें और इक्कीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले उपशामक जीवके तीन प्रकारकी मायाका उपशम हो जाने पर दो प्रकृतियोंका एक प्रकृतिमें संक्रम उपलब्ध होता है तथा चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले जीवके भी दो प्रकारके लोभका उपशम हो जानेपर दो प्रकृतियोंका दो प्रकृतियोंमें संक्रम उपलब्ध होता है । 'एगा एगाए वोद्धव्वा' इस द्वारा एक प्रकृतिक संक्रमस्थानका एक प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थानमें संक्रम होता है यह बतलाया है, क्योंकि क्षपक जीवके संज्वलन मानका क्षय हो जानेपर स्पष्ट रूपसे उक्त संक्रमस्थान और प्रतिग्रहस्थान उपलब्ध होता है ॥१२॥

**विशेषार्थ—**इस गाथा द्वारा चार प्रकृतिक, तीन प्रकृतिक, दो प्रकृतिक और एक प्रकृतिक संक्रमस्थानोंके कौन कौन प्रतिग्रहस्थान हैं इसका खुलासा किया है । अब संक्रमस्थानों और प्रतिग्रहस्थानोंकी उक्त १० गाथाओंमें कही गई विशेषताका ज्ञान करनेके लिए कोष्ठक दिया जाता है—

सत्तास्था०	संक्रमस्था०	प्रकृतियाँ	प्रतिग्रहस्था०	प्रकृतियाँ	स्वामी
२८ प्र०	२७ प्र०	मिथ्यात्वके विना सब	२२ प्र०	मिथ्यादृष्टिके वैधनेवाली २२ प्रकृतियाँ	२८ प्रकृतियोंकी सत्तावाला मिथ्या-दृष्टि
२८ प्र०	२७ प्र०	सम्यक्त्वके विना सब	१९ प्र०	अविरत सम्य-ग्दृष्टिके वैधनेवाली १७ प्रकृतियाँ व सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व	अविरत सम्य-ग्दृष्टि

संक्रमांशः	संक्रमणः	प्रकृतियां	वर्तिमानं	प्रकृतियां	स्वामी
२८ प्र०	२७ प्र०	सम्यक्त्वके विना	१५ प्र०	अप्रत्याग्यानावरण ४ के विना पूर्वोक्त १९	देशविरत
२८ प्र०	२७ प्र०	॥	११ प्र०	प्रत्याग्यानावरण ४ के विना पूर्वोक्त १५	संगम
२७ प्र०	२६ प्र०	सम्यक्त्वके विना सम्यग्मिथ्यात्व	२२ प्र०	मिथ्यादृष्टि के धर्मनेताली २२ प्रकृतियां	मिथ्यादृष्टि २७ प्रकृतियोंकी सत्ता याला
२८ प्र०	२६ प्र०	सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके विना सम	१९ प्र०	पूर्वोक्त १९ प्र०	अविनाश के प्रथम समयमें
२८ प्र०	२६ प्र०	॥	१५ प्र०	पूर्वोक्त १५ प्र०	देवादि के प्र० समय में
२८ प्र०	२६ प्र०	॥	११ प्र०	पूर्वोक्त ११ प्र०	समयके ॥ ॥
२६ प्र०	२५ प्र०	२५ कथाय	२१ प्र०	२१ कथाय	२२ प्र० वा अन्य करनेवाला मिथ्या दृष्टि
२८ प्र०	२५ प्र०	२५ कथाय	२१ प्र०	२१ प्र० का वन्द्यक	सासाधन सम्य०
२८ प्र०	२५ प्र०	२५ कथाय	१७ प्र०	१७ प्र० का वन्द्यक	सम्यग्मिथ्यादृष्टि
२८ प्र०	२३ प्र०	चार अनन्तानु-बन्धी व मिथ्यात्व के विना २३ प्र०	२२ प्र०	पूर्वोक्त	एक अवलोककाल तक मिथ्यादृष्टि
२४ प्र०	२३ प्र०	चार अनन्तानु-बन्धी व सम्यक्त्वके विना	१९ प्र०	पूर्वोक्त	विसंश्लेषक अवि-रत सम्यग्दृष्टि

सत्तास्था०	संक्रमस्था०	प्रकृतियां	प्रतिग्रहस्था०	प्रकृतियां	स्वामी
२४ प्र०	२३ प्र०	चार अनन्तानु- बन्धी व सम्यक्त्व के बिना	१५ प्र०	पूर्वोक्त	विसंयो० देशविरत
२४ प्र०	२३ प्र०	” ”	११ प्र०	पूर्वोक्त	विसंयो० प्रमत्त, अग्र०अपू०संयत
२४ प्र०	२३ प्र०	” ”	७	चार संज्वलन, पुरुषवेद सम्यक्त्व व सम्यग्भि०	अनिवृत्तिकरंण उपशा०
२३ प्र०	२२ प्र०	चार अनन्तानु- बन्धी मिथ्यात्व व सम्यक्त्व के बिना .	१८ प्र०	पूर्वोक्त १९ में से सम्यग्मिथ्यात्वके कम कर देने पर	जिसने मिथ्यात्व की क्षण कर दी है ऐसा अविरत सम्यग्दृष्टि
२३ प्र०	२२ प्र०	” ”	१४ प्र०	१८ में से अग्रत्या० ४ के कम कर देने पर	मिथ्यात्वका क्षणक देशविरत
२३ प्र०	२२ प्र०	” ”	१० प्र०	१४ मेंसे प्रत्याख्या ४ के कम कर देने पर	मिथ्यात्वका क्षणक प्रमत्त व अग्रमत्त
२४ प्र०	२२ प्र०	अनन्तानु० ४, सम्यक्त्व व संज्व- लन लोभके बिना २२ प्र०	७ प्र०	पूर्वोक्त ७ प्र०	अनिवृत्ति० उपशा०
२८ प्र०	२१ प्र०	अनन्तानुबन्धी ४ व ३ दर्शन- मोहके बिना	२१ प्र०	पूर्वोक्त २१ प्र०	सासादन सम्य० के एक आवलि तक
२१ प्र०	२१ प्र०	” ”	१७ प्र०	पूर्वोक्त १७ प्र०	ज्ञायिक अविरतस०
२१ प्र०	२१ प्र०	” ”	१३ प्र०	देशविरतके बंधने वाली १३ प्र०	ज्ञायिक० देशवि०
२१ प्र०	२१ प्र०	” ”	९ प्र०	चार संज्व, ५ नोकपाय	प्रथम आदि तीन क्षायिक सम्यग्दृष्टि
२४ प्र०	२१ प्र०	४अनन्ता०,सम्य- क्त्व, संज्व० लोभ व नपुंसकवेदके बिना २१ प्र०	७ प्र०	पूर्वोक्त ७ प्र०	अनिवृत्ति० उपशा०

सत्तास्था०	संक्रमस्था०	प्रकृतिया	प्रतिग्रहास्था०	प्रकृतियां	रामी
२१ प्र०	२१ प्र०	१२ कपाय ९ नोकपाय	५ प्र०	चार संज्वलन व पुरुषवेद	श्रेयक या उपशामक के अनिवृत्ति० के प्रारंभ से
२४ प्र०	२० प्र०	४अनन्ता०,सम्य- क्त्व,संज्व० लोभ, नपुंसक वेद व स्त्रीवेदके विना २० प्र०	६ प्र०	चार संज्व०, सम्य० व सम्य- गिमिथ्यात्व	अनिवृत्ति उपशा०
२१ प्र०	२० प्र०	४ अनन्ता० ३ दर्शनमोह व संज्व० लोभके विना २० प्र०	५ प्र०	४ संज्वलन व पुरुषवे०	.. ,
२१ प्र०	१९ प्र०	पूर्वांक २० मैसे नपुंसकवेदके कम करनेपर १९ प्र०	५ प्र०	" "	" "
२१ प्र०	१८ प्र०	१९ मैसे स्त्रीवेदके कम करने पर १८ प्र०	४ प्र०	४ संज्वलन०	" "
२४ प्र०	१४ प्र०	पुरुषवेद,११ कपाय, मिथ्यात्व व सम्यगिमिथ्यात्व ये १४	६ प्र०	४ संज्व०, सम्य- क्त्व व सम्य- गिमिथ्यात्व ये ६प्र०	" "
२४ प्र०	१३ प्र०	पूर्वांक १४ मैसे पुरुषवेद कम कर देने पर १३ प्र०	६ प्र०	" "	" "
२४ प्र०	१३ प्र०	" "	५ प्र०	मान आदि ३ संज्व०; सम्यक्त्व व सम्यगिमिथ्यात्व	" "
१३ प्र०	१३ प्र०	४ संज्व० व ९ नोकपाय	५ प्र०	४ संज्वलन व पुरुषवेद	अनिवृत्ति०क्षपक
१३ प्र०	१२ प्र०	लोभके विना ३ संज्व०व ९ नोक- पाय ये १२ प्र०	५ प्र०	" "	" "



सत्तास्था०	सक्रमस्था०	प्रकृतियां	प्रतिक्रहस्था०	प्रकृतियां	स्वामी
२१ प्र०	१२ प्र०	संज्ञ० लोभ के बिना ११ कषाय व पुरुषवेद ये १२ प्र०	४ प्र०	४ संज्ञलन	अनिवृत्ति० उपशा०
१२ प्र०	११ प्र०	लोभके बिना ३ संज्ञ० व नपुंसक वेदके बिना ८ नोकषाय ये ११ प्र०	५ प्र०	४ संज्ञ० व पुरुषवेद	अनिवृत्ति० क्षपक
२४ प्र०	११ प्र०	१ क्रोध, ३ मान, ३ माया, २ लोभ, मिथ्यात्व व सम्य- ग्मिथ्यात्व ये ११ प्र०	५ प्र०	मान आदि ३ संज्ञ; सम्यक्त्व व सम्यग्मि० ये ५ प्र०	अनिवृत्ति० उपशा०
२२ प्र०	११ प्र०	तीन क्रोध, तीन मान, तीन माया व दो लोभ	४ प्रकृ०	४ संज्ञलन	क्षायिक सम्य- गृष्टि उपशामक अनिवृत्ति
२१ प्र०	११ प्र०	" "	३ प्रकृ०	मान आदि ३ संज्ञलन	" "
२४ प्र०	१० प्र०	३ मान, ३ माया, २ लोभ मिथ्यात्व व सम्यग्मिथ्यात्व	५ प्र०	मान आदि ३ संज्ञलन, सम्यक्त्व व सम्यग्मिथ्यात्व	उपशामक अति०
२४ प्र०	१० प्र०	" "	४ प्र०	माया व लोभ संज्ञलन व दो दर्शनमोह	" "
११ प्र०	१० प्र०	६ नोकषाय, पुरुषवेद व लोभ के बिना ३ संज्ञ०	४ प्र०	चार संज्ञलन	क्षपक "
२१ प्र०	९ प्र०	१ क्रोध, ३ मान ३ माया व २ लोभ	३ प्रकृ०	मान आदि ३ संज्ञलन	क्षायिक सम्य० अनिवृत्ति उप- शामक
२४ प्र०	८ प्र०	१ मान, ३ माया २ लोभ, मिथ्यात्व व सम्यग्मिथ्यात्व	४ प्र०	माया आदि २ संज्ञलन, सम्यक्त्व व सम्यग्मिथ्यात्व	अनिवृत्ति० उप- शामक

सत्ताख्या०	संक्रमणख्या०	प्रकृतियां	प्रतिप्रकृत्या०	प्रकृतियां	स्वामी
२१ प्र०	८ प्र०	३ मान, ३ माया य २ लोभ	३ प्र०	मान आदि ३ संञ्चलन	ज्ञायिक सम्य० अनिर्गृही० उप- शासक
२१ प्र०	८ प्र०	" "	२ प्र०	माया व लोभ संञ्चलन	" "
२५ प्र०	७ प्र०	३ माया, ३ लोभ मिश्रित्वात् य सम्यग्मिथ्यात्व	४ प्र०	माया आदि २ संञ्च०, सम्यक्त्व य सम्यग्मि०	अनिर्गृही० उपशासक
२५ प्र०	७ प्र०	" "	३ प्र०	संञ्च० लोभ, सम्यक्त्व य सम्यग्मिथ्यात्व	" "
२१ प्र०	६ प्र०	१ मान, ३ माया य २ लोभ	२ प्र०	माया व लोभ संञ्चलन	ज्ञायिक सम्य- वृष्टि अनिर्गृही० उपशासक
२५ प्र०	५ प्र०	१ माया, २ लोभ, मिथ्यात्व य सम्यग्मिथ्यात्व	३ प्र०	लोभसंञ्च०, सम्य- य सम्यग्मि०	अनिर्गृही० उप- शासक
२६ प्र०	५ प्र०	३ माया य २ लोभ	२ प्र०	माया व लोभ संञ्चलन	ज्ञायिक सम्य० अनि० उप०
२६ प्र०	५ प्र०	" "	१ प्र०	संञ्चलन लोभ	" "
५ प्र०	४ प्र०	पुन्यत्रयं य लोभ के विना तीन संञ्चलन	४ प्र०	४ संञ्चलन	ज्ञापक अनि०
२४ प्र०	४ प्र०	२ लोभ, मिथ्यात्व य सम्यग्मिथ्यात्व	३ प्र०	१ लोभ, सम्य० य सम्यग्मिथ्यात्व	उपशम स० अनि० उपशासक
४ प्र०	३ प्र०	लोभ के विना ३ संञ्चलन	३ प्र०	मान आदि ३ संञ्चलन	ज्ञापक अनि०
२१ प्र०	३ प्र०	१ माया य २ लोभ	१ प्र०	संञ्चलन लोभ	ज्ञायिक स० अनि० उपशासक
३ प्र०	२ प्र०	मान य माया संञ्चलन	२ प्र०	माया व लोभ संञ्चलन	ज्ञापक अनि०
२१ प्र०	२ प्र०	दो लोभ	१ प्र०	लोभ संञ्चलन	ज्ञायिक स० अनि० उपशासक

§ २९५. एवमेतिहण गाहासुत्तसंबंधेण संक्रमद्व्याणाणं पडिग्गहद्व्याणेषु गियमं कादूण संपहि तं मग्गणोवायभूदाणसत्थपदाणं परूवणद्वुत्तरं गाहासुत्तमोहणं—‘अणुपुव्वमणुपुव्वं’—पयडिद्व्याणसंक्रमे परूवणिज्जे पुव्वमेव इमे संक्रमद्व्याणाणं मग्गणोवाया अणुगतंत्वा, अण्णहा तत्त्विसयणिण्णयाणुप्पत्तीदो । के ते ? अणुपुव्वं अणुपुव्वमिच्चादओ । तत्थाणुपुव्विसंक्रमो एको, अणाणुपुव्विसंक्रमो विदिओ, दंसणमोहस्स खयमस्सियूण तदियो, तदक्खयमवलंबिय चउत्थो, चरिच्चमोहोवसामगविसए पंचमो, चरिच्चमोहक्खवणणिबंधणो छट्ठो एवमेदे संक्रमद्व्याणाणं मग्गणोवाया णादव्वा भवंति । एदेहि पुव्वुत्तसंक्रमद्व्याणाणं पडिग्गहद्व्याणाणमुप्पत्ती साहेयव्वा त्ति उत्तं होइ ।

§ २९६. एत्थाणुपुव्वीसंक्रमविसए संक्रमद्व्याणाणवेसणे कीरमाणे चउवीससंतकम्मियेवसामगस्स ताव वावीस-इगिवीसादओ पुव्वुत्तक्रमेणाणुमग्गिदव्वा । तेसि पमाणमेदं—२२, २१, २०, १४, १३, ११, १०, ८, ७, ५, ४, २ । इगिवीससंतकम्मियस्स

सत्तास्था०	संक्रमस्था०	प्रकृतियां	प्रतिग्रहस्था०	प्रकृतियां	स्वामी
२४ प्र०	२ प्र०	मिथ्यात्व व सम्यग्मिथ्यात्व	२ प्र०	सम्यक्त्व व सम्यग्मिथ्यात्व	सूक्ष्मसांपराय व उपशांतमोह उपशामक
२ प्र०	१ प्र०	संज्वलन माया	१ प्र०	संज्वलन लोभ	क्षपक अनिश्रुति

§ २९५. इस प्रकार इतने गाथासूत्रोंके सम्बन्धसे संक्रमस्थानोंका प्रतिग्रहस्थानोंमें नियम करके अब इस नियमका अन्वेषण करनेके उपायभूत अर्थपदोंका कथन करनेके लिये आगेका गाथासूत्र आया है—‘अणुपुव्वमणुपुव्वं’ प्रकृतिस्थानोंके संक्रमका कथन करते समय सर्व प्रथम संक्रमस्थानोंके अन्वेषणके ये उपाय जानना चाहिये, अन्यथा उनका समुचित निर्याय नहीं किया जा सकता है ।

शंका—वे अन्वेषण करनेके उपाय कौनसे हैं ?

समाधान—आनुपूर्वी और अनानुपूर्वी इत्यादिक । उनमेंसे आनुपूर्वीसंक्रम यह प्रथम उपाय है, अनानुपूर्वीसंक्रम यह दूसरा उपाय है, दर्शनमोहके क्षयके आश्रयसे प्राप्त होनेवाला तीसरा उपाय है, दर्शनमोहके क्षयके न होनेसे सम्बन्ध रखनेवाला चौथा उपाय है, चारित्रमोहनीय की उपशमनाको विषय करनेवाला पाँचवाँ उपाय है और चारित्रमोहकी क्षपणाके निमित्तसे होनेवाला छठा उपाय है । इस प्रकार ये संक्रमस्थानोंके अनुसंधान करनेके उपाय जानने चाहिये । इनके द्वारा पूर्वोक्त संक्रमस्थानों और प्रतिग्रहस्थानोंकी उत्पत्ति साथ लेनी चाहिये वह उक्त कथनका तात्पर्य है ।

§ २९६. अब यहाँपर आनुपूर्वीसंक्रम विषयक संक्रमस्थानोंका अन्वेषण करने पर चौबीस प्रकृतिथोंकी सत्तावाले उपशामकके पूर्वोक्त क्रमसे २२, २१ आदि प्रकृतिक संक्रमस्थान जानना चाहिये । उनका प्रमाण यह है—२२, २१, २०, १४, १३, ११, १०, ८, ७, ५, ४ और २ ।

वि चीसेकोणवीसपहुडयो तेणेव विहाणेणाणुगंतव्वा । तेसिं पमाणमेदं—२०, १०, १८, १२, ११, ९, ८, ६, ५, ३, २ । खवगस्स वि चारससंकमट्टाणणपहुडि एदाणि संकमट्टाणाणि दट्टव्वाणि—१२, ११, १०, ४, ३, २, १ । अणाणुपुञ्जीविसयाणं पि संकमट्टाणाणमणुगमो कायव्वो । तेसिमेसा ठवणा—२७, २६, २५, २३, २२, २१, १३ । एत्थेवोदरमाणमस्सियूण संभवताणं संकमट्टाणाणमणुगमणा कायव्वा, तेसिमणाणुपुञ्जिविसयाणमिह परूवणाए विरोहाभावादो ।

२०७. संधि 'झीणमझीणं च दंसणे मोहे' इचोदमत्थपदमवलंबियं संकमट्टाणाणं मग्गणे कीरसाणे तत्थ ताव दंसणमोहक्खयमस्सियूण इगिवीससंतकम्मियाणुपुञ्जी-संकमट्टाणाणि चैव इगिवीससंकमट्टाणम्भहियाणि लम्भंति । एत्थेव खवगरोडिपाओग्ग-संकमट्टाणाणि वि चत्तव्वाणि, सच्चेसिमेव तेसिं दंसणमोहक्खयपच्छाकालभावीणं तण्णिवंधणत्तसिद्धीदो । तदपरिक्खए च सत्तावीमादिसंकमट्टाणाणि इगिवीसपजंताणि संभवति ति चत्तव्वं । चउवीससंतकम्मियाणुपुञ्जीसंकमट्टाणाणि वि एत्थेव पवेसियव्वाणि ।

§ २०८. संधि उवसामगे च खवगे च' एदमत्थपदमवलंबिय संकमट्टाणमग्गणाए चउवीस-इगिवीससंतकम्मियोवसामग-खवगोसु जहाक्कमं तेवीस-इगिवीसपहुडिसंकम-

इक्कीम प्रकृतियोंकी सत्तावाले जीवके भी उसी विधिमे २० और १९ आदि प्रकृतिक संकमस्थान जानना चाहिये । उनका प्रमाण यह है—२०, १६, १८, १२, ११, ६, ८, ६, ५, ३ और २ । क्षयक जीवके भी चारह प्रकृतिक संकमस्थानसे लेकर ये संकमस्थान जानना चाहिये—१२, ११, १०, ४, ३, २ और १ । इसी प्रकार अनानुपूर्वी संकमस्थानोंका भी विचार करना चाहिये । उनकी रथापना इस प्रकार है—२७, २६, २५, २३, २२ २१ और १३ । तथा यहीं पर उपशमश्रेणीसे उतरनेवाले जीवकी अपेक्षा भी जो संकमस्थान सम्भव हैं उनका विचार करना चाहिये, क्योंकि वे अनानुपूर्वीको विषय करते हैं इसलिये उनका यहाँ कथन करनेमें कोई विरोध नहीं आता है ।

§ २६७. अथ 'झीणमझीणं च दंसणे मोहे' इस अर्थपदकी अपेक्षा संकमस्थानोंका विचार करनेपर इक्कीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले जीवके जो पहले अनानुपूर्वीसंकमस्थान कह आये हैं उनमे इक्कीस प्रकृतिक संकमस्थानके मिला देने पर वे सबके सब दर्शनमोहके क्षयकी अपेक्षा संकमस्थान प्राप्त होते हैं । तथा क्षयश्रेणिके योग्य संकमस्थान भी यहीं पर कहने चाहिये, क्योंकि वे सब दर्शनमोहनीयके क्षय होनेके बाद होते हैं, इसलिये वे भी तन्मिसक्त सिद्ध होते हैं । और दर्शनमोहके क्षयके अभावमें सत्ताईस प्रकृतिक संकमस्थानसे लेकर इक्कीस प्रकृतिक संकमस्थान तक छह होते हैं ऐसा कहना चाहिये । तथा चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले जीवके जो अनानुपूर्वी संकमस्थान होते हैं उनका समावेश भी यहीं पर कर लेना चाहिये । अर्थात् २४ प्रकृतियों की सत्तावाले जीवके जितने संकमस्थान होते हैं वे भी दर्शनमोहके क्षयके अभावमें होते हैं अतः उनकी गणना भी दर्शनमोहके क्षयके अभावमें होनेवाले संकमस्थानोंमे हो जाती है ।

§ २६८. अथ 'उवसामगे च खवगे च' इस अर्थपदकी अपेक्षा संकमस्थानोंका विचार करने पर चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले उपशामकके और इक्कीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले उपशामक

१. ता०—आ०प्रत्योः २, १ इति पाठः । २. ता०—आ०प्रत्योः—मद्वपदमवलंबिय इति पाठः ।

ट्टाणाणि वत्तव्वाणि, खवगोवसमसेटिपाओग्गसंकमट्टाणाणं सव्वेसिमेत्थेवं संभवदंसणादो । ओदरमाणमस्सियूण वि उवसमसेटोए संकमट्टाणाणि लब्भंति । तं जहा—चउवीससंत-  
कम्मिओ सुहुमोवसंतगुणट्टाणेसु दुविहसंकासगो अट्टाक्खएण परिवडमाणगो अणियट्टि-  
गुणट्टाणपवेसकाले चैय दुविहं लोहं लोहसंजलणम्मि संकामेइ । तदो तत्थ चटुण्हं  
संकमो तिसु पयडीसु पडिग्गहभावभावण्णाणु संभवइ । पुणो जहाकमं तिविहमाय-  
तिविहमाण—तिविहकोह—सत्तणोकसाय—इत्थि—णतुंसयवेदाणमोकड्डणवावारेण परिणदस्स  
तस्सेव अट्टण्हमेकारसण्हं चोइसण्हमेक्कावीसाए वावीसाए तेवीसाए च संकमट्टाणाणि  
उप्पज्जंति—४, ८, ११, १४, २१, २२, २३ । एवमिगिणीवीससंतकम्मियस्स वि  
परिवडमाणयस्स संकमट्टाणाणमुप्पत्ती वत्तव्वा । ताणि च एदाणि—२, ६, ९, १२,  
१९, २०, २१, सव्वेसिमेदाणं पडिग्गहट्टाणजोयणा च जाणिय कायव्वा ॥१३॥

और क्षपकके क्रमसे तेईस प्रकृतिक आदि और इक्कीस प्रकृतिक आदि संक्रमस्थान कहने चाहिये, क्योंकि क्षपक और उपशमश्रेणिके योग्य सभी संक्रमस्थान यहाँपर लिये गये हैं । तथा उपशम-  
श्रेणिके उतरनेवाले जीवकी अपेक्षा भी उपशमश्रेणिके संक्रमस्थान प्राप्त होते हैं । यथा सूक्ष्मसान्द्राय  
और उपशान्तकपाय गुणस्थानोंमें दो प्रकृतियोंका संक्रम करनेवाला चौबीस प्रकृतियों की  
सत्तावाला जो जीव एन गुणस्थानोंका काल समाप्त होनेसे गिरकर अनिष्टतिकरण गुणस्थानमें  
प्रवेश करता है उसके उस समय ही दो प्रकारके लोभका लोभ संवत्तलमें संक्रम करता है,  
इसलिये वहाँ प्रतिग्रहभावको प्राप्त हुई तीन प्रकृतियोंमें चार प्रकृतियोंका संक्रम होता है । फिर  
क्रमसे जब वही जीव तीन प्रकारकी माया, तीन प्रकारका मान, तीन प्रकारका क्रोध, सात  
नोकषाय, स्त्रीवेद और नपुंसकवेद इनका अपकर्षण करता है तब उसीके आठ, ग्यारह, चौदह,  
इक्कीस, बाईस और तेईस प्रकृतिक संक्रमस्थान उत्पन्न होते हैं । पूर्वोक्त सब स्थान ये हैं—४, ८,  
११, १४, २१, २२ और २३ । इसी प्रकार जो इक्कीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला जीव उपशमश्रेणिके  
च्युत होता है उसके भी संक्रमस्थानोंकी उत्पत्ति कहनी चाहिये । वे ये हैं—२, ६, ९, १२, १९, २०  
२१ । इन सब स्थानोंके प्रतिग्रहस्थानोंकी योजना जानकर कर लेना चाहिये ॥१३॥

**विशेषार्थ**—२७ प्रकृतिक संक्रमस्थानसे लेकर १ प्रकृतिक संक्रमस्थान तक जितने संक्रम  
स्थान हैं उनमेंसे पहले तो इस बातका विचार करना चाहिये कि इनमेंसे कितने संक्रमस्थान तो  
आनुपूर्वी क्रमसे उत्पन्न होते हैं और कितने आनुपूर्विके दिना उत्पन्न होते हैं । अन्तरकारणके  
परचात्त कर्मोंकी होनेवाली उपशमना या क्षपणके अनुसार उत्तरोत्तर हीन क्रमको लिये हुए जो  
संक्रमस्थान उत्पन्न होते हैं वे आनुपूर्वी क्रमसे उत्पन्न हुए संक्रमस्थान कहलाते हैं और शेष  
अनानुपूर्वी संक्रमस्थान कहलाते हैं । इसी प्रकार जो संक्रमस्थानों और प्रतिग्रहस्थानोंके अन्वेषण  
करनेके अन्य उपायोंका निर्देश किया है सो उनका भी स्वरूप जान लेना चाहिये । उनके स्वरूपके  
कथन करनेमें कोई विशेषता न होनेसे यहाँपर हमने उसका निर्देश नहीं किया है । अब यहाँ  
आनुपूर्वी और अनानुपूर्वी क्रमसे प्राप्त होनेवाले संक्रमस्थानोंका सरलतासे ज्ञान करानेके लिये  
कोष्ठक दिया जाता है—

१. आ०प्रतौ—मेवत्थ इति पाठः । २. ता०प्रतौ तदो ति चटुण्हं, आ०प्रतौ तदो त्व चटुण्हं  
इति पाठः । ३. ता०—आ०प्रत्यो. ३ इति पाठः ।

१२००. एवमेदीए गाहाए संवमट्टाणाणं मग्गणोवाययदाणि अत्थपदाणि परविय संपहि संकम-पटिग्गह-नदुभयट्टाणाणमादेमपरवणट्टं गदियादिचोत्तमग्गण-ट्टाणाणि परवेमाणो गाहासुत्तमत्तं भणए—'एक्केसिंहि य ट्टाणे' एक्केसिंहि ट्टाणे संकम-पटिग्गह-नदुभयभेदभिण्णे गदियादिचोत्तमग्गणट्टाणविसेमिदजीवाणं गवेमणे कीग्गमाणे तत्थ केसु ट्टाणेसु भवमिद्विया जीवा होंति, केसु वा ट्टाणेसु अभवमिद्विया जीवा होंति, नेत्तमग्गणट्टाणविसेमिदा वा जीवा केसु ट्टाणेसु होंति ति पुच्छा कदा भवदि । एवमेदीए गाहाए भवियानवियमग्गणाणं पार्माणेनं काट्ठण नेमग्गणाणं च 'जीवा वा' इदि एदेण नामग्गणवयणेण संगहो कटो दट्टल्लो । एत्थ भवियाभवियजीवेसु

अनुपूर्वी			अनापूर्वी		
२१ प्र० उपश्लो० संख० प्रसि०	२४ प्र० उपश्लो० संख० प्रसि०	२२ प्र० संख० प्रसि०	संख० प्रसि०	उत्तरा० संखिमे संखेवा. न. संख०	उत्तरा० संखिमे पदनेशाना. संख०
२०	२३	१०	२२, २३, २४, २५	४	१
१९	२२	११	२२, २३, २४, २५	४	२
१८	२१	१२	२२, २३, २४, २५	४	३
१७	२०	१३	२२, २३, २४, २५	४	४
१६	१९	१४	२२, २३, २४, २५	४	५
१५	१८	१५	२२, २३, २४, २५	४	६
१४	१७	१६	२२, २३, २४, २५	४	७
१३	१६	१७	२२, २३, २४, २५	४	८
१२	१५	१८	२२, २३, २४, २५	४	९
११	१४	१९	२२, २३, २४, २५	४	१०
१०	१३	२०	२२, २३, २४, २५	४	११
९	१२	२१	२२, २३, २४, २५	४	१२
८	११	२२	२२, २३, २४, २५	४	१३
७	१०	२३	२२, २३, २४, २५	४	१४
६	९	२४	२२, २३, २४, २५	४	१५
५	८	२५	२२, २३, २४, २५	४	१६
४	७	२६	२२, २३, २४, २५	४	१७
३	६	२७	२२, २३, २४, २५	४	१८
२	५	२८	२२, २३, २४, २५	४	१९
१	४	२९	२२, २३, २४, २५	४	२०

१२११. इस प्रकार इस गाथा द्वारा संव मट्टाणाणोके अन्वेषणके उपायभूत अर्थवर्दीवा कथन करके अथ संवमग्गानो, प्रणिमट्टाणानो और तट्टुभयग्गानोका आदेशकी श्रमत्ता कथन करनेके लिए आगेका सूत्र कहने हैं—अथ 'एक्केसिंहि य ट्टाणे' इस द्वारा संकम, प्रणिमट्ट और तट्टुभय-रूप भेदोमे अनेक भेदोको प्राप्त हुए एक एक स्थानमें गति खादि चौदह मार्गणाथो गले जीवोका विचार करने पर उनमेंमे कित स्थानोमें भव्य जीव होते हैं, कित स्थानोमें अभाव्य जीव होते हैं और कित स्थानोमें श्रेय मार्गणाथले जीव होते हैं यह पुच्छा की गई है । इस प्रकार इस गाथामें भव्य और अभाव्य मार्गणाथ नाम निर्देश करके श्रेय मार्गणाथोका 'जीवा वा' इस सामान्य पचनद्वारा समग्र किया गया है ऐसा जानना चाहिये । इस गाथामें भव्य और अभाव्य जीवोके

काणि द्वाणाणि ह्येति त्ति अमणिदूण केसु द्वाणेषु भवियाभवियजीवा ह्येति त्ति भणतस्साहिप्पाओ मगगद्वाणाणं संकमद्वाणेषु गवेसणे कदे वि मगगद्वाणेषु संकम-  
द्वाणाणि गवेसिदाणि ह्येति त्ति एदेणाहिप्पाएण तहा णिहेसो कदो त्ति घेतन्वो, इच्छा-  
वसेण तेसिमाधाराधेयभावोववचीदो ॥१४॥

§ ३००. एवमेदेण गाहासुत्तेण परूविदमगगद्वाणाणं संकमद्वाणाणं गुणद्वाणेषु  
वि मगगणा कायन्वा त्ति जाणावणद्वमुवरिमगाहासुत्तमोद्दण्णं—'कदि कम्मि ह्येति  
ठाणा०' एत्थ पंचविहो भाववियप्पो ओदइयादिभेदेण तस्स विसेसो मिच्छाइद्विप्पहुडि  
जाव अजोगिकेवल्लि त्ति एदाणि गुणद्वाणाणि, पंचविहभावे अस्सियूण तेसिमवद्विदत्तादो ।  
तत्थ कम्मिह गुणद्वाणे कदे कदि संकमद्वाणाणि ह्येति केत्तियाणि वा पडिग्गहद्वाणाणि  
ह्येति त्ति एदेण सुत्तेण पुच्छा कदा भवदि । तत्थ ताव ओदइयभावरिणदे मिच्छाइद्वि-  
गुणद्वाणे सचावीसादीणि चत्तारि संकमद्वाणाणि ह्येति—२७, २६, २५, २३ ।  
पडिग्गहद्वाणाणि पुण दोण्णि चैव तत्थ संभवति, वावीस-इग्गिवीसाणि मोत्तूण्णेसिं

कितने स्थान होते हैं ऐसा न कहकर जो 'कितने स्थानोंमें भव्य और अभव्य जीव होते हैं' ऐसा  
कहा गया है सो यद्यपि इस कथन द्वारा मार्गणास्थानोंका संक्रमस्थानोंमें विचार करनेकी सूचना  
की गई है तथापि मार्गणास्थानोंमें संक्रमस्थानोंके अन्वेषण करनेके अभिप्रायसे ही उस प्रकारका  
निर्देश किया गया है यह अर्थ यहाँ लेना चाहिये, क्योंकि इच्छावश उनमें आधार-आधेयभाव  
की उत्पत्ति होती है ॥१४॥

विशेषार्थ—पूर्वमें जो संक्रमस्थानों, प्रतिग्रहस्थानों और तदुभयस्थानोंकी सूचना की गई है  
सो उनमेंसे भव्य, अभव्य और अन्य मार्गणावाले जीवोंके कौन स्थान कितने होते हैं इसके ज्ञान  
करनेकी इस गाथामें सूचना की गई है । यद्यपि गाथामें यह निर्देश किया गया है कि 'संक्रम, प्रतिग्रह  
और तदुभयरूप एक एक स्थानमेंसे किन् स्थानोंमें भव्य, अभव्य या अन्य मार्गणावाले जीव  
होते हैं, इसका विचार करना चाहिये, तथापि इसका आशय यह है कि भव्य, अभव्य या अन्य  
मार्गणाओंमें जहाँ जितने स्थान सम्भव हों उनका विचार कर लेना चाहिये ।' ऐसा अभिप्राय  
त्रिठानेके लिए यद्यपि विभक्ति परिवर्तन करना पड़ता है । पर ऐसा करनेमें कोई आपत्ति नहीं आती ।  
साथ ही इससे ठीक अर्थका ज्ञान करनेमें सुगमता जाती है, इसलिये अर्थ करते समय यह परिवर्तन  
किया गया है ।

§ ३००. इस प्रकार इस गाथासूत्रके द्वारा कहे गये मार्गणास्थानों और संक्रमस्थानोंका  
गुणस्थानोंमें भी विचार करना चाहिये यह जतानेके लिये आगेका गाथासूत्र आया है—'कदि कम्मि  
ह्येति ठाणा०' इसमें औद्दयिक आदिके भेदसे पाँच प्रकारके भावोंका निर्देश किया है । मिथ्यात्वसे  
लेकर अयोगिकेवली तक जो चौदह गुणस्थान हैं वे इन्हींके भेद हैं, क्योंकि पाँच प्रकारके भावोंका  
आश्रय लेकर ही वे अवस्थित हैं । उनमेंसे किस गुणस्थानमें कितने संक्रमस्थान और कितने प्रति-  
ग्रहस्थान होते हैं यह इस गाथासूत्र द्वारा पुच्छा की गई है । उनमेंसे औद्दयिक भावरूप मिथ्यात्व  
गुणस्थानमें तो सत्ताईस प्रकृतिक आदि चार संक्रमस्थान होते हैं—२७, २६, २५, और २३ । किन्तु  
वहाँ प्रतिग्रहस्थान दो ही होते हैं, क्योंकि वहाँ वाईस और इक्कीस प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थानोंके स्थान

तत्थासंभवादो । तद्वा विदियगुणद्वारेण पारिणामियभावपरिणदे पणुवीसेकवीससंक्रम-  
द्वारेण २५, २१, इगिवीसपडिग्गहद्वारेण च होइ २१ । एदीए दिसाए सेसगुणद्वारेणु  
वि पयदमग्गणा समयविरोहेण कायव्वा । एदेण सामित्तिण्णद्वारेण वि सच्चिदो दडुव्वो,  
गुणद्वारेणवदिरेणेण सामित्तसंवघारिहाणमण्णेसिमणुवलद्धीदो । तदो चेव तदणंतरपरूवणा-  
जोग्गसस कालाणुगमसस सेसाणियोगद्वारेण देसामासियभावेण परूवणावीजमिदमाह—  
'समाणणा वाघ केवचिरं' केवचिरं कालमेक्केक्कसस संक्रमद्वारेणसस समाणणा होइ  
किमेगसमयं दो वा समए इच्चादिकालविसेसावेक्खमेदं पुच्छासुत्तमिदि घेत्तव्वं ॥१५॥

§ ३०१. एवमेदाओ दो गाहाओ गुणद्वारेण-मगगणद्वारेणु संक्रम-पडिग्गह-तदुभय-  
द्वारेणपरूणाए तप्पडिचद्धसामित्तादिअणियोगद्वारेण च वीजपदभूदे परूविय संपहि  
मगगणद्वारेणु जत्थतत्थाणुपुव्वीए संक्रमद्वारेणामुवारिमसत्तागाहाहिं मग्गणं कुणमाणो  
तत्थ ताव पढमगाहाए गदिमग्गणाविसए संक्रमद्वारेणामियत्तावहारणं कुणइ—'णिरय-  
गइ-अमर-पंचिदिएसु०' एदिस्से गाहाए पुव्वद्वेण णिरय-देवगइ-पंचिदियतिरक्खेसु पंचणहं  
संक्रमद्वारेण संभवावहारणं कयं दडुव्वं । काणि ताणि पंच संक्रमद्वारेणणि ? सत्तावीस-  
छवीस-पणुवीस-तेवीस-इगिवीससपिण्णद्वारेण—२७, २६, २५, २३, २१ । कत्थमेत्थ

अन्य प्रतिग्रहस्थान सम्भव नहीं हैं । तथा पारिणामिक भावरूप दूसरे गुणस्थानमें पच्चीस और  
इक्कीस प्रकृतिक २५, २१ ये दो संक्रमस्थान और उक्कीस प्रकृतिक २१ एक प्रतिग्रहस्थान होता है ।  
शेष गुणस्थानोंमें भी उसी प्रकार यथानिधि प्रकृत विषयका विचार कर लेना चाहिये । इस कथनसे  
स्वामित्वका निर्देश भी सूचित हुआ जानना चाहिये, क्योंकि गुणस्थानोंके सिवा स्वामित्वके  
योग्य अन्य वस्तु नहीं पाई जाती है । फिर इसके बाद कथन करनेके योग्य कालानुयोगद्वारेणका  
निर्देश करनेके लिये 'समाणणा वाघ केवचिरं' यह पद कहा है जो देशामर्षकरूपसे शेष अनुयोग-  
द्वारोंको सूचित करनेके लिये वीजभूत है । एक एक संक्रमस्थानकी कितने कालतक प्राप्ति होती है ।  
क्या एक समय तक होती है या दो समय तक होती है इत्यादि रूपसे कालविशेषकी अपेक्षा  
रखनेवाला यह पृच्छासूत्र जानना चाहिये ॥१५॥

विशेषार्थ—इस गायामें संक्रमस्थानों और प्रतिग्रहस्थानोंके स्वामी व कालके जान लेनेकी  
तो स्पष्ट सूचना की है किन्तु शेष अनुयोगद्वारों की सूचना नहीं की है । तथापि यह सूत्र देशामर्षक  
है अतः उनका सूचन हो जाता है ।

§ ३०१. इस प्रकार गुणस्थानों और मार्गस्थास्थानोंमें संक्रमस्थानों, प्रतिग्रहस्थानों और  
तदुभयस्थानोंके कथनसे सम्बन्ध रखनेवाली और इन संक्रमस्थान आदिसे सम्बन्ध रखनेवाले  
स्वामित्व आदि अनुयोगद्वारोंके वीजभूत इन दो गायामें कथन करके अब मार्गस्थास्थानोंमें  
यत्रतत्रानुपूर्वकं हिसाबसे आगेकी सात गायामें द्वारा संक्रमस्थानोंका विचार करते हुए उसमें भी  
सर्व प्रथम गायामें गतिमार्गामें संक्रमस्थानोंके प्रमाणका निश्चय करते हैं—'णिरयगइ-  
अमर-पंचिदिएसु०' इस गायामें पूर्वार्धद्वारा नरकगति, देवगति और पचेन्द्रिय तियेचोमै पाँच  
संक्रमस्थान सम्भव हैं यह वतलाया गया है ।

शंका—वे पाँच संक्रमस्थान कौनसे हैं ?

समाधान—सत्ताईस, छवीस, पच्चीस, तेईस, और इक्कीस ये पाँच संक्रमस्थान हैं—  
२७, २६, २५, २३, २१ ।



पंचिदियग्गहणेण चउगइसाहारणेण तिरिक्खाणमेव पडिवत्ती ? ण, पारिसेसियण्णाएण तत्थेव तप्पउत्तीए विरोहाभावादो । किमेवं चैव मणुसगईए वि होदि त्ति आसंकाए उच्चरमाह—‘सव्वे मणुसगईए’ मणुसगईए सव्वाणि वि संकमट्ठाणाणि संभवन्ति त्ति उच्चं होइ, सव्वेसिमेव तत्थ संभवे विरोहाभावादो । एत्थ ओघपरूवणा अणूणाहिया वचन्वा । पंचिदियंतिरिक्खेसु कथं होइ त्ति आसंकाए इदुत्तरं—‘सेसेसु तिगं’ । सेसग्गहणेण एइदिय-विगल्लिदियाणं गहणं कायव्वं, तेसु सत्तावीस-छव्वीस-पणुवीस-सण्णिदसंकमट्ठाणतियमेव संभवइ । एवमसण्णिपंचिदिएसु वि वचत्तव्वं, विसेसाभावादो त्ति पदुप्पायणट्ठमिदं वयणं—‘असण्णीसु’ । असण्णिपंचिदिएसु वि संकमट्ठाणतियमेवाणंतर-परूविदं संभवइ त्ति उच्चं होइ । अहवा ‘सेसेसु तियं असण्णीसु’ त्ति उच्चे सेसग्गहणेणा-सण्णिविसेसिदेण एइदिय-विगल्लिदियाणमसण्णिपंचिदियाणं च संगहो कायव्वो, तेसि सव्वेसिमसण्णित्तं पडि भेदाभावादो । तदो तेसु संकमट्ठाणतियमेवाणंतरपरूविदं होइ त्ति घेत्तव्वं । एत्थ णिरयादिगईसु संभवताणं पडिग्गहट्ठाणाणं च जहागममणुगमो

शंका—इस गाथामें जो ‘पंचिदिय’ पदका ग्रहण किया है सो यह चारों गतियोंमें साधारण है । अर्थात् पंचेन्द्रिय चारों गतियोंके जीव होते हैं फिर उससे केवल तिर्यंचोंका ही ज्ञान कैसे किया गया है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि पारिशेष न्यायसे तिर्यंचोंमें ही इस पदकी प्रवृत्ति माननेमें कोई विरोध नहीं आता है ।

क्या इसी प्रकार मनुष्य गतिमें भी संक्रमस्थान होते हैं ? इस प्रकारकी शंकाके होनेपर उसके उत्तररूपमें ‘सव्वे मणुसगईए’ यह सूत्रवचन कहा है । मनुष्यगतिमें सभी संक्रमस्थान सम्भव हैं यह इसका तात्पर्य है, क्योंकि वहाँ पर सभी संक्रमस्थानोंके होनेमें कोई विरोध नहीं आता है । यहाँ मनुष्यगतिमें ओघप्ररूपणा न्यूनाधिकतासे रहित पूरी कहनी चाहिए ।

अब पंचेन्द्रिय तिर्यंचोंसे अतिरिक्त तिर्यंचोंमें कौनसे संक्रमस्थान होते हैं ऐसी आशंका होनेपर उसके उत्तररूपमें ‘सेसेसु तिगं’ यह सूत्रवचन कहा है । यहाँ शेष पदसे एकेन्द्रिय और विकलेन्द्रियोंका ग्रहण करना चाहिये, क्योंकि उनमें सत्ताईस, छव्वीस और पच्चीस प्रकृतिक तीन संक्रमस्थान ही सम्भव हैं । तथा इसी प्रकार अस्संज्ञी पंचेन्द्रियोंमें भी कथन करना चाहिये, क्योंकि एकेन्द्रियों और विकलेन्द्रियोंके कथनसे इनके कथनमें कोई विशेषता नहीं है । इस प्रकार इस बातका कथन करनेके लिये सूत्रमें ‘असण्णीसु’ वचन दिया है । अस्संज्ञी पंचेन्द्रियोंमें भी पूर्वमें कहे गये तीन संक्रमस्थान ही होते हैं यह उक्त कथनका तात्पर्य है । अथवा ‘सेसेसु तियं असण्णीसु’ इस वचनमें जो ‘शेष’ पदका ग्रहण किया है सो इससे अस्संज्ञी विशेषणसे युक्त एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय और अस्संज्ञी पंचेन्द्रियोंका संग्रह करना चाहिये, क्योंकि अस्संज्ञित्वकी अपेक्षा इन सत्रमें कोई भेद नहीं है । इसलिये उनमें वे ही तीन संक्रमस्थान होते हैं जिनका पूर्वमें उल्लेख कर आये हैं ऐसा यहाँ जानना चाहिये । यहाँ पर नरकादि गतियोंमें प्रतिग्रहस्थानोंका यद्यपि गाथासूत्रमें उल्लेख नहीं किया है तथापि आगमानुसार उनका विचार कर लेना चाहिये । तथा इसी प्रकार तदुभयस्थानोंका

१. आ०प्रतौ वचन्वा । अहवा पंचिदिय- इति पाठः । २. ता०प्रतौ वयणं असण्णिपंचिदिएसु इति पाठः ।

कायव्यो । तदो नदुभयद्वयाणि च परवेयव्याणि । एवं कए गडभगवणा समप्यह । एत्थेव काईदिय-जोग-सण्णिमग्गणाणं च संगहो कायव्यो, सुत्तस्सेदस्स देसामासियचादो ॥१६॥

भी कथन कर लेना चाहिये । इस प्रकार कथन करने पर गतिमार्गणा समाप्त होती है । यहाँ पर काय, इन्द्रिय, योग और संज्ञी मार्गणावा भी समाप्त करना चाहिये क्योंकि यह सूत्र देशामर्पक है ॥१६॥

**विशेषार्थ—**इस गायामंत्रमें चारों गतियोंमेंसे किन्तमें कितने संक्रमस्थान होते हैं इसका स्पष्ट उल्लेख किया है । उनमें भी निचैच गतियोंमें एकेंद्रियोंके कितने, विकलेन्द्रियोंके कितने और अक्षरितियोंके कितने संक्रमस्थान होते हैं इसका भी उल्लेख किया है । उनमें निर्देशसे काय, इन्द्रिय, योग और संज्ञी मार्गणामें यहाँ कितने संक्रमस्थान होते हैं उनका भी ज्ञान हो जाता है इसलिये देशामर्पक रूपमें इस सूत्रद्वारा उन मार्गणाओंका भी यहाँ संकलन करनेके लिये निर्देश किया है । मूलाना इस प्रकार है—काय मार्गणाके स्वयं और व्रत ये दो भेद हैं । इनमेंसे स्वयं एकेन्द्रिय ही होते हैं और शेष सब व्रत होते हैं, इनमें मनुष्य भी सम्मिलित हैं । इसलिये स्वयंवरोंके २८, २७ और २६ ये तीन संक्रमस्थान तथा व्रतोंके सब संक्रमस्थान प्राप्त होते हैं, क्योंकि एकेंद्रियोंके उक्त तीन और मनुष्योंके सब संक्रमस्थान वतलाये हैं । इन्द्रिय मार्गणाके एकेंद्रिय, द्वीन्द्रिय आदि पाँच भेद हैं । सो गायामंत्रमें एकेंद्रिय और विकलेन्द्रिय अर्थात् द्वीन्द्रिय, प्रोन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय शीघ्रोंके २७, २६ और २५ ये तीन संक्रमस्थान होते हैं इसका स्पष्ट निर्देश किया ही है । अब रहे पंचेन्द्रिय सो उनमें तिसैच पंचेन्द्रिय और शेष तीन गतियोंके सब जीव सम्मिलित हैं अतः इनके भी सब संक्रमस्थान प्राप्त होते हैं । योगके रश्मि रूपसे तीन भेद हैं और मनुष्योंके ये तीनों योग सम्भर हैं अतः प्रत्येक योगमें सब संक्रमस्थान सम्भव हैं यह सिद्ध होता है । यह तो इत्या नामान्य विचार क्रिन्तु योगोंके उत्तर भेदोंभी अपेक्षासे विचार करने पर मनोयोगके चारों भेदोंमें और व्रतन योगके चारों भेदोंमें सब संक्रमस्थान सम्भव हैं, क्योंकि इनका सचच मिश्रयाव गुणस्थानमें लेकर उदाहृतकषाय गुणस्थान तक पाया जाना सम्भव है, इसलिये उनमें सब संक्रमस्थान बन जाते हैं । अब रहे काययोगके मात भेद सो आद्वारिककाययोग पर्याप्त प्रस्थामें मनुष्योंके भी सम्भव है और मनुष्योंके सब संक्रमस्थान वतलाये हैं इसलिये इनमें सब संक्रमस्थान बन जाते हैं । आद्वारिकमिश्रकाययोग प्रथम, द्वितीय और चतुर्थ गुणस्थानकी अपर्याप्त अवस्थामें मनुष्य और तिर्यचोंके ही होता है । यहाँ मनयोगकेवली गुणस्थान अविवक्षित है । किन्तु ऐसी दशामें २७, २६, २५, २३ और २१ ये पाँच संक्रमस्थान सम्भव हैं शेष नहीं, इसलिये आद्वारिक मिश्रकाययोगमें ये पाँच संक्रमस्थान प्राप्त होते हैं । इसी प्रकार वैकिकमिश्रकाययोग और कामगुणकाययोगमें भी जानना चाहिये, क्योंकि इन योगोंका सम्बन्ध भी अपर्याप्त दशासे है तथा देवोंके ये ही संक्रमस्थान होते हैं अन्य नहीं । वैकिक काययोग देव और नारकियोंके होता है, इसलिये देव और नारकियोंके जो भी संक्रमस्थान होते हैं वे वैकिक काययोगमें भी प्राप्त होते हैं । अब रहे आहारक और आहारकमिश्रकाययोग सो ये दोनों योग प्रमत्तसंयत गुणस्थानमें तो होते ही हैं माय ही या तो वेदकसम्यग्दृष्टि प्रमत्तसंयतके होते हैं या ज्ञायिक सम्यग्दृष्टि प्रमत्तसंयतके होते हैं । इसलिये उनमें २७, २३, और २१ ये तीन ही संक्रमस्थान सम्भव हैं ऐसा जानना चाहिये । तथा संज्ञी मार्गणाके संज्ञी और असंज्ञी ये दो भेद हैं । सो इनमेंसे असंज्ञियोंके २७, २६ और २५ ये संक्रमस्थान होते हैं यह तो गायामें ही वतलाया है । तथा मनुष्य संज्ञी ही होते हैं और मनुष्योंके सब संक्रमस्थान वतलाये हैं इसलिये संज्ञियोंके भी सब संक्रमस्थान सम्भव हैं यह बात सहज फलित हो जाती है । इस प्रकार इस गायामंत्रसे काय आदि पूर्वोंके चार गायामंत्रोंमें कहाँ कितने संक्रमस्थान होते हैं यह कथन देशामर्पकभावसे सूचित हो जाता है यह बात सिद्ध हुई ।

§ ३०२. एवं गहमग्गणमंतोभाविदेकाइंदिय-जोग-सण्णियाणुवादं परूविय संपहि सम्मत्त-संजमग्गणगयविसेसपट्टुप्पायट्टुमुत्तरसुत्तं भणइ—‘चदुर दुगं तेवीसा०’ एत्थ जहासंखमहिंसंबंधो कायव्वो । मिच्छत्ते चत्तारि संकमट्टाणाणि, मिस्सगे दोण्णि, सम्मत्ते तेवीसं संकमट्टाणाणि होंति । तत्थ मिच्छइट्टिमि सत्तावीस-छव्वीस-पणुवीस-तेवीससण्णिदाणि चत्तारि संकमट्टाणाणि होंति—२७, २६, २५, २३ । सम्मामिच्छइट्टिमि पणुवीस-इगिवीससण्णिदाणि दोण्णि संकमट्टाणाणि भवन्ति—२५, २१ । सम्म-त्तोवलक्खियगुणट्टाणे सव्वसंकमट्टाणसंभवो सुगमो । कथमेत्थ पणुवीससंकमट्टाणसंभवो चि णासंकणिज्जं, अट्टावीससंतकम्मियोवसमसम्माइट्टिपच्छायदसासणसम्माइट्टिमि तदुवलंमादो । कथमेदस्स सम्माइट्टिवचएसो चि ण पच्चवट्टाणं कायव्वं, दत्तुत्तरत्तादो । गाहापच्छे वि जहासंखं णायावलंबणेण संबंधो जोजेयव्वो । तत्थ विरदे वावीस संकमट्टाणाणि होंति, संजमोवलक्खियगुणट्टाणेसु पणुवीससंकमट्टाणं मोत्तूण सेसाणं

यद्यपि गाथामें केवल संक्रमस्थानोंका ही निर्देश क्रिया है प्रतिग्रहस्थानों और तदुभयस्थानोंका निर्देश नहीं किया है तथापि संक्रमस्थानोंका ज्ञान, हो जाने पर प्रतिग्रहस्थानों और तदुभयस्थानोंका ज्ञान सहज हो जाता है इसलिये उनका अलगसे निर्देश नहीं किया है इतना जानना चाहिये ।

§ ३०२. इस प्रकार गति मार्गणा और, उनके भीतर आई हुई काय, इन्द्रिय, योग और संज्ञी मार्गणाओंका कथन करके अब सम्यक्त्व और संयमगत विशेषताका कथन करनेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—‘चदुर दुगं तेवीसा०’ इनमें क्रमसे सम्बन्ध करना चाहिये । आशय यह है कि मिथ्यात्वमे चार, मिश्रमें दो और सम्यक्त्वमें तेईस संक्रमस्थान होते हैं । उनमेंसे मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमें सत्ताईस, छव्वीस, पचीस और तेईस प्रकृतिक ये चार संक्रमस्थान होते हैं २७, २६, २५, २३ । सम्यग्मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमें पच्चीस और इक्कीस प्रकृतिक दो संक्रमस्थान होते हैं २५, २१ । तथा सम्यक्त्व सहित गुणस्थानोंमें सब संक्रमस्थान सम्भव हैं सो यह कथन सुगम है ।

**शंका**—सम्यक्त्व सहित गुणस्थानोंमें पच्चीस प्रकृतिक संक्रमस्थान कैसे सम्भव है ?

**समाधान**—ऐसी आशंका करना ठीक नहीं है, क्योंकि अट्टाईस प्रकृतियोंकी सत्तावाला जो उपशमसम्यग्दृष्टि जीव पीछेसे सासादनसम्यक्त्वमें वापिस आता है उसके पच्चीस प्रकृतिक संक्रमस्थान पाया जाता है ।

**शंका**—इसे सम्यग्दृष्टि संज्ञा कैसे दी गई है ?

**समाधान**—ऐसी आशंका करना भी ठीक नहीं है, क्योंकि इसका उत्तर दिया जा चुका है । आशय यह है कि एक तो उपशमसम्यक्त्वके कालके भीतर ही सासादन सम्यक्त्वकी प्राप्ति होती है और दूसरे इसके सासादन गुणस्थानके प्राप्त हो जाने पर भी दर्शनमोहनीयकी तीन प्रकृतियोंका अनुदय बना रहनेके कारण मिथ्यात्व भाव प्रकट नहीं होता है इसलिये सासादन-सम्यग्दृष्टिको सम्यग्दृष्टि संज्ञा दी है । गाथाके उत्तरार्धमें भी यथासंख्य न्यायका अवलम्बन लेकर पदों का सम्बन्ध कर लेना चाहिये । यथा—विरतके वाईस संक्रमस्थान होते हैं क्योंकि संयमसे युक्त गुणस्थानोंमें पच्चीस प्रकृतिक संक्रमस्थानके सिवा शेष सभी संक्रमस्थान पाये जाते हैं ।

सव्वेसिमेव संभवोवलंभादो । एदं संजमसामण्णावेक्खाए भणिदं । संजमविसेसविचक्खाए पुण सामाइय-छेदोवट्ठावणसुद्धिसंजमेसु चावीसण्हं पि संकमट्टाणाणं संभवो पाण्णत्थ । तं कथं ? परिहारसुद्धिसंजमम्मि २७, २३, २२, २१ एदाणि चत्तारि संकमट्टाणाणि मोत्तूण सेसाणि सव्वानि वि सुण्णट्टाणाणि । सुहुम०-जहाक्खाद० संजमेसु वि संकमट्टाण-मेक्कं चैव संभवइ, चउवीससंतकम्मियमस्सियूण तत्थ दोण्हं पयडीणं संकमोवलंभादो । मिस्सग्गहणमेत्थ संजमासंजमस्स संगहट्टुं । तदो तम्मि पंच संकमट्टाणाणि होंति त्ति संबंधो । ताणि च एदाणि—२७, २६, २३, २२, २१' । असंजमोवलक्खिए गुणट्टाणे इमाणि चैव पणुवीसम्भहियाणि संभवंति त्ति सुत्ते छक्कणिहेसो कओ । ताणि चेदाणि—२७, २६, २५, २३, २२, २१ ॥१७॥

§ ३०३. एवं समत्त-संजममगगणासु संकमट्टाणाणमियत्तासंभवं णिद्वारिय लेस्सा-मगगणाए तदियत्तासंभवावहारणट्टमुत्तरसुत्तं भणइ—'तेवीस सुक्कलेस्से०' सुक्कलेस्सापरिणदे जीवे तेवीसं पि संकमट्टाणाणि भवंति, तत्थ तस्संभवे विरोहाभावादो । तेउ-पम्मलेस्सासु पुण सत्तावीसादीणमिगिवीसपज्जंताणं संभवदंसणादो छक्कणियमो—२७, २६, २५, २३, २२, २१' । 'पणयं पुण काऊए' काउलेस्साए पंचैव संकमट्टाणाणि होंति, अणंतर-

यद् कथन सामान्य संयमकी अपेक्षासे किया है । संयमविशेषोंकी अपेक्षासे तो सामायिक और छेदोपस्थापनासुद्धिसंयममे वाईस ही संकमस्थान सम्भव हैं किन्तु अन्य संयमोंमें ये वाईस संकमस्थान सम्भव नहीं हैं । जैसे परिहारसुद्धिसंयममे २७, २३, २२ और २१ इन चार संकम-स्थानोंके सिवा शेष सब संकमस्थान नहीं होते । सूक्ष्मसम्परायसंयम और यथाख्यातसंयममे भी केवल एक संकमस्थान सम्भव है, क्योंकि चौबीस प्रकृतिक सत्कर्मवाले जीवकी अपेक्षा वहाँ दो प्रकृतियोंका संकम उपलब्ध होता है । सूत्रमें मिश्र पद संयमासंयमके संग्रह करनेके लिये ग्रहण किया है, इसलिये संयमासंयम गुणस्थानमे पाँच संकमस्थान होते हैं ऐसा समझ करना चाहिये । वे पाँच संकमस्थान २७, २६, २३, २२ और २१ ये हैं । तथा असंयम सहित गुणस्थानोंमें पच्चीस प्रकृतिक संकमस्थानके साथ ये पूर्वोक्त पाँच ही संकमस्थान होते हैं, इसलिये सूत्रमें 'छद्' पदका निर्देश किया है । वे छद् संकमस्थान २७, २६, २५, २३, २२ और २१ ये हैं ॥१७॥

विशेषार्थ—इस गाथा द्वारा मिथ्यादृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि, सम्यग्दृष्टि, विरत, विरताविरत और अचिरत जीवोंमेंसे प्रत्येकके कितने संकमस्थान होते हैं इसका निर्देश किया है ।

§ ३०३. इस प्रकार सम्यक्त्व मार्गणा और संयम मार्गणामें संकमस्थानोंके परिमाणका निर्धारण करके अत्र लेख्यामार्गणामें संकमस्थानोंके परिमाणका निश्चय करनेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—'तेवीस सुक्कलेस्से०' शुक्ललेख्यावाले जीवोंमें तेईस ही संकमस्थान होते हैं, क्योंकि वहाँ पर इनके होनेमें कोई विरोध नहीं आता । पीतलेख्या और पद्मलेख्यामे तो सचाईससे लेकर शकनीस तक ही संकमस्थान देखे जानेसे छहका नियम किया है—२७, २६, २५, २३, २२ और २१ । 'पणयं पुण काऊए' कापोत लेख्यामें पाँच ही संकमस्थान होते हैं, क्योंकि पीछे जो छद् संकमस्थान

१. आ० प्रतौ २७, २६, २५, २३, २२, २१ इति पाठः । २. ता० प्रतौ १३ इति पाठः ।

परुविदद्वाणेषु वाचीसाए वहिम्भावदंसणादो । कुदो वुण तत्थ तव्वंहिम्भावो ? ण, सुहचिलेस्साविसयस्स तस्स तदण्णत्थ उत्तिविरोहादो । एवं णील्लेस्साए किण्हलेस्साए च वत्तव्वं, विसेसाभावादो । एवं लेस्सामग्गणाए संकमद्वाणाणुगमो समत्तो ॥१८॥ :

§ ३०४. 'अवगयवेद-णवुंसय०' एसा गाहा वेदमग्गणाए संकमद्वाणामियत्ता-परुवणद्दमागया । एत्थ अट्टारसादीणमवगदवेदादोहि जहासंखमहिसंबंधो कायव्वो । कुदो एदं णव्वदे ? 'आणुपुव्वीए' इदि सुत्तवयणादो । तत्थावगदवेदजीवम्मि अट्टारस-संकमद्वाणाणि संभवन्ति, सत्तावीसादीणं पंचण्हं एत्थ सुण्णद्वाणत्तोवएसादो—२७, २६, २५, २३, २२ । तदो एदाणि मोत्तूण सेसाखमवगदवेदमग्गणाए संभवो ति तेसिमिमो णिद्वेसो कीरदे—चउचीससंतकम्मिओवसामगो पुरिसवेदोदएण सेट्ठिमारूढो अणियद्विद्वाणम्मि लोभस्सासंकमगो' होळण कमेण णउंस-इत्थिवेद-छण्णोकसायाणमुव-

वतला आये हैं उनमेंसे बाईस प्रकृतिक संक्रमस्थान कापोत लेश्यामें नहीं पाया जाता ।

शंका—बाईस प्रकृतिक संक्रमस्थान कापोत लेश्यामें क्यों नहीं पाया जाता ?

समाधान—नहीं, क्योंकि बाईसप्रकृतिक संक्रमस्थान तीन शुभ लेश्याओंके सद्भावमें ही होता है, इसलिये उसकी अन्य लेश्याओंके रहते हुए प्रष्टुत्ति माननेमें विरोध आता है ।

इसी प्रकार नीललेश्या और कृष्णलेश्यामें भी उक्त पांच संक्रमस्थान होते हैं ऐसा कथन करना चाहिये, क्योंकि कापोतलेश्यासे इन दोनों लेश्याओंमें एतद्विषयक कोई विशेषता नहीं है ।

विशेषार्थ—शुक्ललेश्या प्रारम्भके ग्यारह गुणस्थानोंमें ही सम्भव है, इसलिये इसमें सब संक्रमस्थान वतलाये हैं । पद्मलेश्या और पीतलेश्या प्रारम्भके सात गुणस्थानों तक ही सम्भव हैं किन्तु इन सात गुणस्थानोंमें २७, २६, २५, २३, २२ और २१ ये छह संक्रमस्थान ही सम्भव हैं, इसलिये इन लेश्याओंमें ये छह संक्रमस्थान वतलाये हैं । अब रहीं तीन अशुभ लेश्याएँ सो एक तो वे प्रारम्भके चार गुणस्थानों तक ही पाई जाती हैं और दूसरे इनके सद्भावमें दर्शनमोहनीयकी क्षणाय सम्भव नहीं है, इसलिये इन तीन लेश्याओंमें २२ प्रकृतिक संक्रमस्थानके सिवा २७, २६, २५, २३ और २१ ये पाँच संक्रमस्थान वतलाये हैं ।

इस प्रकार लेश्यामार्गणामें संक्रमस्थानोंका विचार समाप्त हुआ ॥१८॥

§ ३०४. 'अवगयवेद-णवुंसय' यह गाथा वेदमार्गणामें संक्रमस्थानोंके परिमाणका कथन करनेके लिये आई है । यहाँ पर अठारह आदि पदोंका अवगदवेद आदि पदोंके साथ क्रमसे सम्बन्ध करना चाहिये ।

शंका—यह कैसे जाना जाता है ?

समाधान—सूत्रमें आये हुए 'आनुपूर्वी' इस वचनसे जाना जाता है । उनमेंसे अपगत-वेदी जीवके अठारह संक्रमस्थान सम्भव हैं, क्योंकि यहाँ सचाईस आदि पाँच स्थान नहीं होते ऐसा आगमका उपदेश है । वे पाँच शून्यस्थान ये हैं—२७, २६, २५, २३ और २२ । यतः इन पाँच संक्रम-स्थानोंके सिवा शेष सब संक्रमस्थान अपगतवेदमार्गणामें सम्भव हैं अतः यहाँ उनका निर्देश करते हैं—जो चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला उपशामक जीव पुरुषवेदके उदयसे श्रेणि पर चढ़ता है वह अनिष्टत्तिकरण गुणस्थानमें पहुँचकर पहले लोभसंज्वलनके संक्रमका अभाव करता है फिर

सामाणाए परिणदो अवगदवेदत्तमुवणमिय चोदसण्हं संकामगो होइ १ । पुणो पुरिसवेद-  
णवक्कंघमुवसामिय तेरसण्हं संकामयत्तमुवगओ २ दुविहकोहोवसामाणाए एकारस-  
संकामयत्तं पडिवण्णो ३ कोहसंजलणोवसामणवावारेण दसण्हं संकामयत्तमणुपालिय ४  
दुविहमाणोवसामाणाए परिणमिय अट्टण्हं संकामयभावमुवगओ ५ माणसंजलणोवसामाणाए  
सत्तण्हं संकामओ होलण ६ दुविहमायमुवसामिय पंचण्हं संक्रमस्स सामिओ जादो ७ ।  
पुणो मायासंजलणोवसामाणाणंतरं चउण्हं संकामयत्तमुवणमिय ८ दुविहलोहोवसामाणा-  
वावदो दोण्हं संकामओ जायदे ९ । एवमेदाणि णव्वंसंक्रमट्टाणाणि पुरिसवेदोदइल्ल-  
चउवीससंतकम्मियमस्सियूणावगयवेदट्टाणम्मि लभंति ।

§ ३०५. संपदि इगिवीससंतकम्मिओवसामगसस पुरिसवेदोदएण सेदिं चट्ठिदस्स  
आणुपुच्चीसंक्रमाणंतरमुवसामिदणुंसय-इत्थिवेद-छण्णोकसायस्स वारससंक्रमट्टाणमवगद-  
वेदपडिवट्टमुपज्जइ । पुणो दुविहकोह-दुविहमाण-दुविहमायापयडोणमुवसामणपज्जाएण  
परिणदस्स जहाकमं णवण्हं छण्णं तिण्हं संक्रमट्टाणाणि समुपज्जंति । एवमेदाणि  
चत्तारि चैव संक्रमट्टाणाणि एत्थ लभंति, सेसाणं पुणरुत्तभावदंसणादो । एदाणि  
पुन्विन्लेहि सह मेलाविदाणि तेरस संक्रमट्टाणाणि होति । पुणो तस्सेव णउंसयवेदोदएण  
सेदिं चट्ठिदस्स आणुपुच्चीसंक्रमाणंतरमुवसामिद-णुंसय-इत्थिवेदस्स वेदपरिणामविरहेणाव-

क्रमसे नपुंसकवेद, स्त्रीवेद और छह नोकपायोका उपशम करनेके बाद अपगतवेदी होकर चौदह  
प्रकृतियोंका संक्रामक होता है १ । फिर पुरुषवेदके नवकवन्धका उपशम करके तेरह प्रकृतियोंका  
संक्रामक होता है २ । फिर दो प्रकारके क्रोधका उपशम हो जाने पर ग्यारह प्रकृतिक संक्रमस्थान-  
को प्राप्त होता है ३ । फिर क्रोधसंवलनके उपशमन द्वारा दस प्रकृतिक संक्रमस्थानको प्राप्त करके ४  
दो प्रकारके मानका उपशम करके आठ प्रकृतिक संक्रमस्थानको प्राप्त होता है ५ । फिर मान-  
संवलनका उपशम हो जाने पर सात प्रकृतिक संक्रमस्थानको प्राप्त करके ६ अनन्तर दो प्रकारकी  
मायाको उपशमा कर पाँच प्रकृतिक संक्रमस्थानका स्वामी होता है ७ । फिर माया संवलनके  
उपशमानेके बाद चार प्रकृतिक संक्रमस्थानको प्राप्त करके ८ अनन्तर दो प्रकारके लोभका उपशम  
हो जाने पर दो प्रकृतियोंका संक्रामक होता है ९ । इस प्रकार जो चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला  
जीव पुरुषवेदके उदयसे उपशमश्रेणि पर चढ़ कर अपगतवेदी होता है उसके अपगतवेदस्थानमे  
ये नौ संक्रमस्थान प्राप्त होते हैं ।

§ ३०५. अथ पुरुषवेदके उदयसे श्रेणिपर चढ़े हुए इक्कीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले उपशामक  
जीवके आनुपूर्वी संक्रमके बाद नपुंसकवेद, स्त्रीवेद और छह नोकपायोका उपशम हो जाने पर  
अपगतवेदसे सन्धन्ध रखनेवाला चारह प्रकृतिक संक्रमस्थान उत्पन्न होता है । फिर दो प्रकारके  
क्रोध, दो प्रकारके मान और दो प्रकारकी माया इन प्रकृतियोंके उपशमभावसे परिणत हुए जीवके  
क्रमसे नौ, छह और तीन प्रकृतिक संक्रमस्थान उत्पन्न होते हैं । इस प्रकार यहाँ ये चार ही संक्रम-  
स्थान प्राप्त होते हैं, क्योंकि शेष संक्रमस्थान पुनरुक्त देखे जाते हैं । इन चारको पहिलेके नौ संक्रम-  
स्थानोंमे मिला देनेपर तेरह संक्रमस्थान होते हैं । फिर जब यही नपुंसकवेदके उदयसे श्रेणिपर  
चढ़कर आनुपूर्वीसंक्रमके बाद नपुंसकवेद और स्त्रीवेदका उपशम करके वेदपरिणामसे रहित होकर

गदवेदभावमुवगयस्स संकमट्टारसपयडिपडिबद्धमेकं चैव पुणरुत्तभावविरहिदमुवल्लभइ, एत्तो उवरिमाणं पुणरुत्तभावदंसणादो । एदस्स चैव सेठीदो ओदरमाणयस्स वारसकसाय-सत्तणो कसायाणमोक्कड्डुणावावदस्स पयदमग्गणाविसयमेगूणवीससंकमट्टाणमपुणरुत्त-मुप्पज्जदे, तेणेदेसिं दोणहं संकमट्टाणाणं पुव्विल्लेहि सह मेलणे कदे पण्णारस संकम-ट्टाणाणि होंति । एवं चैव णवुंसयवेदोदयसहगदचउवीससंतकम्मियस्स वि चट्ठणोव-यरणवावदस्स दोणहमपुणरुत्तसंकमट्टाणाणमुप्पत्ती वत्तव्वा, तत्थ जहाकमं पुच्चुत्तपदेसु वीसेक्कवीसाणमवगदवेदसंबंधेण समुप्पज्जंताणमुवल्लंभादो । एदाणं पुव्विल्लसंकमट्टाणाण-मुवरि पक्खेवे कदे सत्तारससंकमट्टाणाणि पयदविसए लद्धाणि भवंति । खवगस्स वि पुरिस-णवुंसयवेदोदइल्लस्स चउक्कदसगप्पहुडोणि अवगदवेयसंकमट्टाणाणि पुणरुत्ताणि चैव समुप्पज्जंति । णवरि सव्वपच्छिममेक्किस्से संकमट्टाणमपुणरुत्तमुवल्लभदे । तदो एदेण सह अट्टारससंकमट्टाणाणि अवगदवेदजीवपडिबद्धाणि भवंति ।

§ ३०६. संपहि णवुंसयवेदमग्गणाए णव संकमट्टाणाणि होंति त्ति विदिओ सुत्तावयवो । तत्थ सत्तावीसादोणि इगित्रीसपज्जंताणि छ संकमट्टाणाणि सेठीदो हेट्टा चैव णिरुद्धवेदोदयम्मि लभंति । इगिवीससंतकम्मियोवसामगस्स आणुपुव्वीसंकम-मस्सियूण वीससंकमट्टाणमेत्थोवल्लभदे । पुणो णवुंसयवेदोदएण सेट्ठिमारूढस्स खवगस्स अट्टकसायक्खवणेण तेरससंकमट्टाणमुवल्लभइ । तस्सेवाणुपुव्वीसंकमपरिणदस्स

अपगतवेदभावको प्राप्त हो जाता है तब उसके मात्र अठारह प्रकृतिक संक्रमस्थान अपुनरुक्त उपलब्ध होता है क्योंकि इससे आगेके संक्रमस्थान पुनरुक्त देखे जाते हैं । तथा जब यही जीव श्रेष्ठिसे उतरते समय बारह कषाय और सात नोकषायोंका अपकर्षण कर लेता है तब इसके प्रकृत मार्गणाका विषयभूत अपुनरुक्त बीस प्रकृतिक संक्रमस्थान उत्पन्न होता है । अतः इन दो संक्रम-स्थानोंको पूर्वोक्त तेरह संक्रमस्थानोंमें मिलाने पर पन्द्रह संक्रमस्थान होते हैं । तथा इसी प्रकार नपुंसकवेदके उदयके साथ चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले जीवके भी चढ़ते और उतरते समय दो अपुनरुक्त स्थानोंकी उत्पत्ति कहनी चाहिये, क्योंकि वहां पर क्रमसे पूर्वोक्त स्थानोंमें अपगतवेदके सम्बन्धसे बीस प्रकृतिक और इक्कीस प्रकृतिक ये दो स्थान उत्पन्न होते हुए उपलब्ध होते हैं । इन स्थानोंको पूर्वोक्त संक्रमस्थानोंमें मिला देने पर प्रकृत विषयमें सत्रह संक्रमस्थान लब्ध होते हैं । पुरुषवेद और नपुंसकवेदके उदयवाले क्षपक जीवके भी अपगतवेद सम्बन्धी क्रमसे चार आदि और दस आदि संक्रमस्थान पुनरुक्त ही उत्पन्न होते हैं । किन्तु इतनी विशेषता है कि सबके अन्तमें एक प्रकृतिक संक्रमस्थान अपुनरुक्त उपलब्ध होता है । इसलिये इसके साथ अपगतवेदी जीवसे सम्बन्ध रखनेवाले अठारह संक्रमस्थान होते हैं ।

§ ३०६. अब नपुंसकवेद मार्गणां नौ संक्रमस्थान होते हैं इस आशयके सूत्रके दूसरे चरणका व्याख्यान करते हैं—उन नौमेंसे सत्ताईससे लेकर इक्कीस तकके छ संक्रमस्थान तो श्रेष्ठि पर नहीं चढ़नेके पूर्व ही प्रकृत वेदके उदयमें प्राप्त होते हैं । तथा इक्कीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले उपशामक जीवके आनुपूर्वी संक्रमके आश्रयसे बीस प्रकृतिक संक्रमस्थान भी यहाँ पाया जाता है । फिर नपुंसकवेदके उदयसे श्रेष्ठिपर चढ़े हुए क्षपक जीवके आठ कषायोंका क्षय हो जानेसे तेरह

वारमसंकमट्टाणमुप्पज्झइ । एवं पयटमग्गणाविसग्ग णव जेव संकमट्टाणाणि होतिं ति तिग्गं—२७, २६, २५, २३, २२, २१, २०, १३, १२ । सेसाणमेत्थ संभवो णत्थि ।

§ ३०७. इत्थिवेदस्मि एत्तरग्गसंकमट्टाणाणि होतिं चि तदियं' सुत्तावयव-  
मत्थियुण संकमट्टाणाणमेत्तं चैव परत्तणा कायत्त्वा । णवरि णवुंगयवेदोपडिन्नत्तणव-  
संकमट्टाणाणमृवरि एग्गणवीरिणारगसंकमट्टाणाणमद्वियाणमुवलंभो वत्त्वो, इग्गिवीम-  
संतकम्मिओवनामग-उवजोसु णिरुद्वेदोदएण णवुंगयवेदोवसामण-उववणपरिणदेसु  
जहाकमं नद्वलंभादो । पुग्गिणवेदोदयग्गि त्तरग्गसंकमट्टाणाण परववस्स चउत्थसुत्ता-  
वयवस्स वि परवणाए एग्गो चैव कमां । णवरि दोएहमपुच्चसंकमट्टाणाणमुवलंभो एत्थ  
वत्त्वो, इग्गिवीमसंतकम्मियोवनामग-उवजोसु पयद्वेदोदएणित्थिवेदोवसामण-उववण-  
वावदेसु जहाकममट्टारम-उवसंकमट्टाणाणं एत्थ संभवोत्तलंभादो ॥१७॥

§ ३०८. एवं वेदमग्गणाए संकमट्टाणाणमणुगमं काउण संघट्ठि कसायमग्गणा-  
विसग्ग तदणुगमं कृणमाणो मुनामुचरं भणइ—'कोहादो उवजोसो' एत्थ कोहादो  
उवजोसो नि वयणेण कसायमग्गणाए संकमट्टाणाणं परवणं कग्गामो ति पड्ज्जा

प्रतिक संक्रमस्थान प्राप्त होता है । क्या उन्नीके "गानुपूर्वी" संक्रमका प्रारम्भ ही जानेकर चारह  
प्रतिक संक्रमस्थान प्राप्त होता है । इस प्रकार प्रकृत मार्गणमें नौ ही संक्रमस्थान होते हैं यह  
बान सिद्ध होनी है - २७, २६, २५, २३, २२, २१, २०, १३ और १२ । शेष संक्रमस्थान यहाँपर  
संभर नहीं हैं ।

§ ३०७. श्रीवेदमें स्याद संक्रमस्थान होते हैं इस नीतिसे मूत्र वचनके आशयसे संक्रम-  
स्थानोंका पूर्वीक प्रकारसे ही कथन करना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि नपुंसकवेदसे  
सम्बन्ध रखनेवाले नौ संक्रमस्थानोंके साथ इन्द्रवेदमें इग्गीस और स्याद प्रकृतिक ये दो संक्रम-  
स्थान अधिक उल्लेख होते हैं ऐसा कहना चाहिये, क्योंकि इन्कीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले  
उपशामक और चपक जैसीके नपुंसकवेदका उपशाम और चपक ही जानेपर विवक्षित वेदके उद्देशके साथ  
क्रमसे उक्त दोनों स्थान उल्लेख होते हैं । पुस्तकके उद्देशमें तैरह संक्रमस्थानोंका कथन करनेवाले  
मूत्रके चौथे चरणकी प्रकृतियोंमें भी यही क्रम जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि दो  
नये संक्रमस्थानोंका सम्बन्ध यहाँपर कहना चाहिये, क्योंकि इन्कीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला जी  
उपशामक या चपक जीव प्रकृत वेदका उद्देश रहने हुए श्रीवेदकी उपशामना या चपका करता है  
उपने यहाँ पर क्रमसे श्रुतारट और दस प्रकृतिक ये दो संक्रमस्थान उल्लेख होते हैं ॥१७-॥

विशेषार्थ—इस उन्नीसवीं गाथा द्वारा वेद मार्गणारी अपेक्षा विचार करते हुए अपगतवेद,  
नपुंसकवेद, श्रीवेद और पुस्तकवेदमें कहां वितने संक्रमस्थान होते हैं इसका स्पष्ट निर्देश किया है ।  
विशेष खुलासा टीकामें आ चुका है, इसलिये इस विषयमें और अधिक नहीं लिखा जाता है ।

§ ३०८. इस प्रकार वेदमार्गणामें संक्रमस्थानोंका विचार करके श्रव कपाय मार्गणमें  
उनका विचार करने हुए आगेका मूत्र कहने हैं—'कोहादो उवजोसो' यहाँ सूत्रमें प्राये हुए 'कोहादो  
उवजोसो' वचन द्वारा कपायमार्गणामें संक्रमस्थानोंका कथन करेंगे यह प्रतिज्ञा की गई है । इस



कया । एवं पइण्णं काऊण कोहादिसु चट्टसु कसाएसु परिवाहीए संकमट्टाणगवेसणा कीरदे । एत्थं जहासंखणाएणाहिसंबंधो कायव्वो त्ति जाणावणइमाणुपुञ्जीए त्ति उत्तं । तं जहा—कोहकसायम्मि सोलस संकमट्टाणाणि होंति, माणकसायोदयम्मि ऊणवीस संकमट्टाणाणि भवंति, सेसेसु दोसु वि कसाओवजोगेसु पादेक्कं तेवीससंकमट्टाणाणि भवंति त्ति । तत्थ ताव कोहकसायम्मि सोलसण्हं संकमट्टाणाणं संबवो उच्चदे । तं जहा—सत्तावीसादीणि इगिवीसपज्जंताणि संकमट्टाणाणि सेट्ठीदो हेट्टा चेव मिच्छाइट्ठि-आदिगुणट्टाणेसु जहासंभवं लब्भंति । पुणो चउवीससंतकम्मियोवसामगस्स कोहकसायोदएण उवसमसेट्ठिं चट्ठिदस्स तेवीस-वावीस-इगिवीससंकमट्टाणाणि पुणरुत्ताणि होदूण पुणो वीस-चोदस-तेरससंकमट्टाणाणि लब्भंति णाण्णाणि, कोहकसायम्मि णिरुद्धे एत्तो उवरिमाणमसंभवादो । इगिवीससंतकम्मियोवसामगमस्सियूण पुण एगूण-वीसट्टारस-वारसेकारससंकमट्टाणाणि लब्भंति, हेट्ठिमाणं पुणरुत्ताणमसंगहादो । उवरिमाणं च णिरुद्धकसायोदयम्मि संभवाभावादो । खवगस्स वि णिरुद्धकसायोदइल्लस्स दस-चउक्क-तियसंकमट्टाणाणि अपुणरुत्ताणि लब्भंति, हेट्ठिभोवरिमाणं पुञ्जुत्तण्णाएण वहिम्भाव-दंसणादो । एवमेदाणि सोलस संकमट्टाणाणि कोहकसायम्मि लब्भंति त्ति सिद्धं—

प्रकारकी प्रतिज्ञा करके क्रोधदि चार कपायोंमें क्रमसे संक्रमस्थानोंका विचार करते हैं । यहां 'यथासख्य, न्यायके अनुसार पदोंका सम्यन्ध करना चाहिये यह जतानेके लिये सूत्रमें 'आतुपूर्वी' पद कहा है । सुलासा इस प्रकार है—क्रोध कपायमें सोलह संक्रमस्थान होते हैं, मान कपायके उदयमें उन्नीस संक्रमस्थान होते हैं तथा शेष दो कपायोंके सद्भावमे भी प्रत्येकमे तेईस संक्रमस्थान होते हैं । अत्र सर्वप्रथम क्रोध कपायमे सोलह संक्रमस्थानोंका सद्भाव वतलाते हैं । यथा—सत्ताईससे लेकर इक्कीस तक जितने भी संक्रमस्थान हैं वे श्रेणि चढ़नेके पूर्व ही मिथ्यादृष्टि आदि गुणस्थानोंमें यथासम्भव पाये जाते हैं । फिर जो चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तात्राला उपशामक जीव क्रोध कपायके उदयसे उपशामश्रेणि पर चढ़ा है उसके यद्यपि तेईस, वाईस और इक्कीस प्रकृतिक तीन संक्रमस्थान पुनरुक्त होते हैं तथापि वीस, चौदह और तेरह ये तीन संक्रमस्थान अपुनरुक्त प्राप्त होते हैं । इसके इनके अतिरिक्त अन्य संक्रमस्थान नहीं प्राप्त होते, क्योंकि क्रोध कपायके रहते हुए इनसे आगेके स्थानोंका पाया जाना सम्भव नहीं है । इक्कीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले उपशामकके आश्रयसे मात्र उन्नीस, अठारह, बारह और ग्यारह प्रकृतिक चार संक्रमस्थान प्राप्त होते हैं, क्योंकि इनसे पूर्वके संक्रमस्थान पुनरुक्त होनेसे उनका यहाँपर संग्रह नहीं किया गया है । और ग्यारह प्रकृतिक संक्रमस्थानसे आगेके संक्रमस्थान विवक्षित कपायके उदयमे सम्भव नहीं हैं । इसी प्रकार चारके भी विवक्षित कपायका उदय रहते हुए दस, चार और तीन प्रकृतिक अपुनरुक्त संक्रमस्थान प्राप्त होते हैं, क्योंकि पूर्वोक्त न्यायके अनुसार नीचे और ऊपरके संक्रमस्थानोंका संग्रह न करके उन्हें अलग कर दिया है । अर्थात् दस प्रकृतिक संक्रमस्थानसे पूर्वके जितने संक्रमस्थान यहाँ सम्भव हैं वे तो पुनरुक्त समझ कर छोड़ दिये गये हैं और तीन प्रकृतिक संक्रमस्थानसे आगेके संक्रमस्थानोंका यहाँ पाया जाना सम्भव न होनेसे उन्हें छोड़ दिया है । इस प्रकार क्रोधकपायमे

१. ता०-आ०प्रत्योः जंथ इति पाठः । २. ता०प्रतौ पञ्चाणि आ०प्रतौ पञ्चाणि इति पाठः ।

२७, २६, २६, २३, २२, २१, २०, १०, १८, १४, १३, १२, ११, १०, ४, ३ ।

३००. माणकसायोद्ग वि एदाणि चैव णवद्व-दोपयडिसंकमद्वेषुअहियाणि  
एगुणवीमसंदाविसेमियाणि होति, इगिवीमसंतकम्मियोवसामगम्मि दुविह[कोह]-कोह  
संजलणोवसामणपरिक्कमं जहाकमं माणोदगण न्ह णवद्वपयडिसंकमद्वेषुवलंभादो ।  
सुवरास्य च कोहसंजलणपरिक्कमं दोणं पयटीणं संकंतिदग्गणादो । एवं माणकसायो-  
दयम्मि एगुणवीमसंकमद्वेषुणाणि होति ण सेसाणि, तेमिगेत्थ गुणद्वेषुणचोवग्गणादो ।  
सेसकयाग्गु दोमु नि पादेक्कं तेवीम संकमद्वेषुणाणि होति, तेमि तत्थ संभवे विरोहा-  
भावादो । एत्थाकयाद्दिमु संकमद्वेषुणमेक्कं चैव लब्भेदं, चउवीमसंतकम्मियोवसामगसस  
उवसंतकयागुणद्वेषुणाणि दोणं पयटीणं संकमोवलंभादो ॥२०॥

३१०. एवं कसायमगणं समाणिय पाणमग्गणाणयविसेसपदुप्पायणद्वमुत्तर-  
मुत्तमाह—'णाणमिह य तेवीसा०' गन्थ निविहणाणग्गणेण मदि-सुदोहिणाणाणं  
संगहो कायच्चो, तेवीमसंकमद्वेषुणाणाणमण्णेमिमसंभवादो । कधमेत्थ पणुवीस-  
संकमद्वेषुणसंभवाो ति पासंकियत्वं, मम्मामिन्नाइडिमि तदुवलंसंभवादो । कधं  
ये तोइ संकमग्गण प्राप्प होति हो च मित्त होता हो—२७, २६, २५, २३, २२, २१, २०, १९,  
१८, १५, १३, १२, १०, ४ और ३ ।

३२०. मान कपायरे उदयमे भी मोलड तो मे ही तथा नो, आठ और दो प्रकृतिक तीन  
और उन प्रकार कृत उन्नीम संकमग्गण होति हैं, क्योंकि जो उक्कीम प्रकृतियोंकी सत्तावाला  
उपशामक क्षेत्र तो प्रजातके धो-न और धो-नसंरक्षणका उपशाम कर देता है उसके क्रमसे मान-  
कपायका उदय रहते हुए नो प्रकृतिक और आठ प्रकृतिक सं संकमग्गण पाये जाते हैं । तथा  
क्षेत्रके क्रोधसंरक्षणका क्षेत्र ही जानवर दो प्रकृतिक संकमग्गण देया जाता है । इस प्रकार  
मानकपायका उदय रहते हुए केवल उन्नीम संकमग्गण होते हैं जो संकमग्गण नहीं होते, क्योंकि  
यहाँ उनका अभाव देया जाता है ऐसा उपदेश है । जो दो कपायोंके सङ्गवर्ग भी प्रत्येकमे तेईस  
संकमग्गण होते हैं, क्योंकि उनके यहाँ होनेमें कोई विरोध नहीं आता है । यहाँ पर कपाय रहित  
जीवोंके संकमग्गण एक ही उपशाम होता है, क्योंकि चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले उपशामक  
जीवोंके उपशामकपाय गुणस्थानमें केवल दो प्रकृतियोंका संकम पाया जाता है ॥२०॥

३३०. इस प्रकार कपायसार्गगात्रा कथन समाप्त करके अब ज्ञानसार्गगात्रा सम्बन्धी  
विशेषताका कथन करनेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—'णाणमिह य तेवीसा०' इस गाथा सूत्रमे  
तीन प्रकारके ज्ञानका ग्रहण करनेसे मतिज्ञान, श्रुतज्ञान और अवधिज्ञान इन तीन ज्ञानोंका संग्रह  
करना चाहिये, क्योंकि तैईस संकमग्गणोंका आधार अन्य ज्ञान नहीं हो सकते ।

शंका—उन तीन ज्ञानोंमें पचास प्रकृतिक संकमग्गण कैसे सम्भव है ?

समाधान—ऐसी आशंका नहीं करनी चाहिये, क्योंकि सम्यग्मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमें  
उमकी उपलब्धि होती है ।

१. ता०प्रती -राणमसंभवादो इति पाठः ।

मिस्सणाणस्स सण्णाणंतम्भावो ? ण, असुद्धंणयाहिप्पाएण तस्स तदंतम्भावविरोहा-  
भावादो । कधमोहिणाणम्मि पढमसम्मत्तग्गहणपढमसमयलद्धप्पसरूवस्स छव्वीस-  
संकमट्ठाणस्स संभवो ? ण एस दोसो, देव-णेरइएसु तग्गहणपढमसमए चेव तण्णाणस्स  
सरूवोवलंभसंभवादो । 'एकम्मि एकवीसा य' एकम्मि मणपज्जवणाणे एकवीससंखा-  
वच्छिण्णाणि संकमट्ठाणाणिं होंति, तत्थ पणुवीस-छव्वीसाणमसंभवादो । 'अण्णाणम्मि-  
य तिविहे पंचेव य संकमट्ठाणा ।' कुदो ? तत्थ सत्तावीसादीणमिगिवीसपज्जंतसंकमट्ठाणाणं  
वावीसवह्निम्भावेण पंचसंखावहारियाणं समुवलंभादो । एत्थ चक्खु-अचक्खु-ओहि-  
दंसणीसु पुध परूवणा ण कया, तेसिमोवपरूवणादो भेदाभावादो मदि-सुदोहिणाण-  
परूवणाहि चेव गयत्थत्तादो वा । तदो तत्थ पादेक्कं तेवीससंकमट्ठाणसंभवो  
अणुगंतव्वो ॥२१॥

१३११. एवं णाणमग्गणं संगतोभाविददंसणाणुवादं परिसमाणिय संपहि  
भवियाहारमग्गणासु संकमट्ठाणगवेसणट्ठमुत्तरं गाहासुत्तोइण्णं—'आहारय-भविएसु य०'  
आहारमग्गणाए भवियमग्गणाए च तेवीस संकमट्ठाणाणि भवंति, सव्वेसिं तत्थ संभवे

शंका—मिश्रज्ञानका सम्यग्ज्ञानमे अन्तर्भाव कैसे हो सकता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि अशुद्ध नयके अभिप्रायसे मिश्रज्ञानका सग्यग्ज्ञानमें अन्तर्भाव  
करनेमें कोई विरोध नहीं आता है ।

शंका—प्रथम सम्यक्त्तको प्राप्त होनेके प्रथम समयमें प्राप्त होनेवाला छव्वीस प्रकृतिक  
संकमस्थान अवधिज्ञानमे कैसे सम्भव है ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि देव और नारकियोंमें प्रथम सम्यक्त्तको ग्रहण  
करनेके प्रथम समयमें ही अवधिज्ञानकी स्वरूप प्राप्ति सम्भव है और इसीसे अवधिज्ञानमें छव्वीस  
प्रकृतिक संकमस्थान बन जाता है ।

'एकम्मि एकवीसा य' एक मनःपर्ययज्ञानमें इक्कीस संकमस्थान होते हैं, क्योंकि इसमें  
पक्कीस और छव्वीस प्रकृतिक संकमस्थान सम्भव नहीं है । तथा 'अण्णाणम्मि य तिविहे पंचेव  
य संकमट्ठाणा' तीन प्रकारके अज्ञानोंमें पांच ही संकमस्थान होते हैं, क्योंकि वहाँ वाईसके बिना  
सत्ताईससे लेकर इक्कीस तक पांच ही संकमस्थान पाये जाते हैं । यहाँपर चल्हुदर्शन, अचल्हुदर्शन  
और अवधिदर्शनमें अलगसे प्ररूपणा नहीं की है, क्योंकि इनके कथनमे ओष कथनसे कोई भेद  
नहीं पाया जाता । अथवा मतिज्ञान, श्रुतज्ञान और अवधिज्ञानकी प्ररूपणा द्वारा ही इनमें कितने  
संकमस्थान होते हैं इसका ज्ञान हो जाता है, अतएव इन तीन दर्शनोंमेंसे प्रत्येकमें तेईस  
संकमस्थान सम्भव हैं यह जान लेना चाहिये ।

१३११. इसप्रकार ज्ञानमार्गणा और उसमें गर्भित दर्शनमार्गणाके कथनको समाप्त करके  
अब भव्य और आहार मार्गणाओंमें संकमस्थानोंका विचार करनेके लिये आगेका गाथासूत्र कहते  
हैं—'आहारय-भविएसु य०' आहारमार्गणा और भव्यमार्गणामें तेईस संकमस्थान होते हैं,

१. ता०-आ०प्रत्वोः शोसुद्ध- इति पाठः । २. आ०प्रत्वौ -संखा वड्ढिहाणिसंकमट्ठाणाण्यि  
इति पाठः । ३. ता०प्रत्वो गयत्थादो इति पाठः ।

विरोहाभावाद्दे । 'अणाहागसु पंचैव संकमट्टाणाणि हंति, सत्तावीसादीणमिषिवीस-  
पञ्जताणं चैव त्रिवीसवज्जाणं तत्थ संभवोवलंभादे । 'एयट्टाणं अभविणसु' । कुट्ठो ?  
पणुवामसंकमट्टाणस्सेयस्समेव तत्थ संभवदंमणादे ॥२२॥

३१२. एवमेतिण्ण पत्रंधेण भग्नाष्टांगेसु संकमट्टाणाणं भवेयणं काट्टण  
संपहि तेसु चैव सुष्णष्टांगपरुष्यणं कृणमाणो सेयमग्गणाणं देसामासयभावेण वेद-  
कमायमग्गणासु तप्पस्वणट्टमुवगिमं गाहामुत्तपवंधमाह—'छन्वीस मत्तवीसा' २६, २७,  
२६, २३, २२ एवमेदाणि पंच संकमट्टाणाणि अवगदवेदविसण्ण ण संभवति । तदो  
एदाणि तत्थ सुष्णष्टाणाणि नि वेनच्चाणि, जत्थ जं संकमट्टाणमग्गभवद्द तत्थ तस्स  
सुष्णष्टाणवत्तण्णान्द्वेषणादे ॥२३॥

३१३. 'उणुवीसट्टासग्गं' १०, १८, १४, ११, १०, ९, ८, ७, ६, ५, ४,  
३, २, १ एवमेदाणि चोदम संकमट्टाणाणि णनुंसयवेदे सुष्णष्टाणाणि हंति ति  
सुत्तयसंभादे । सेमं सुग्गं ॥२४॥

३१४. 'अट्टाग्ग चोदग्गं' १८, १४, १०, ९, ८, ७, ६, ५, ४, ३, २, १  
एवमेदाणि चोदम संकमट्टाणाणि इत्थिचेदविसण्ण सुष्णष्टाणाणि हंति ति भण्णिदं होइ ।

क्योंकि इन मार्गणाश्रोंमें सब संक्रमस्थानोंके पांच जानने की विरोध नहीं आता । अनाहारकर्म  
पांच ही संक्रमस्थान होते हैं, क्योंकि चोदकर चोदके नियम सत्तावीससे लेकर एकस पर्वन्त पांच  
संक्रमस्थान ही उपलब्ध होते हैं । तथा 'अष्टांग अभविणसु' अभवियोंके एक संक्रमस्थान होता है,  
क्योंकि इनमें एक पर्वान् प्रकृतिक संक्रमस्थान ही देखा जाता है ॥२२॥

३१२. इस प्रकार इनमें कथन द्वारा मार्गणाश्रानोंमें संक्रमस्थानोंका विचार करके अथ  
उन्हीं मार्गणाश्रोंमें अष्टांगस्थानोंका कथन करनेकी उन्नामे यनः वेद और पचास मार्गणा श्रेण  
मार्गणाश्रोंके देशामर्षरूपमें प्रकण की गई हैं अतः उन्हीं मार्गणाश्रोंमें अष्टांग स्थानोंका कथन  
करनेके लिये आगेका माध्याम्य कहते हैं—'द्वितीय सत्तावीसा' अपगतवेदमें २६, २७, २५, २३  
और २२ ये पांच संक्रमस्थान सम्भव नहीं हैं, इसलिये ये वहाँ अष्टांग स्थानरूप जानने चाहिये,  
क्योंकि जहाँ जो संक्रमस्थान सम्भव होता है वहाँ उसे अष्टांगस्थान संता ही गई है । आशय यह  
है कि ये पांच संक्रमस्थान वेदवर्तन जीवके ही पाये जाते हैं इसलिये अपगतवेदमें इनका अभाव  
घनलाया है ॥२३॥

३१३. उणुवीसट्टासग्गं' १९, १८, १४, ११, १०, ९, ८, ७, ६, ५, ४, ३, २ और १ इस  
प्रकार ये चोदक संक्रमस्थान नपुंसकवेदमें अष्टांगस्थान हैं यह इस सूत्रका तात्पर्य है । श्रेण कथन  
सुगम है । आशय यह है कि नपुंसकवेदमें २० प्रकृतिक संक्रमस्थान तकके सब और २३ तथा १२  
प्रकृतिक ये दो इस प्रकार कुल नौ संक्रमस्थान ही पाये जाते हैं श्रेण नहीं, इसलिये श्रेणका यहाँ  
नियम किया है ॥२४॥

३१४. 'अट्टाग्ग चोदग्गं' १८, १४, १०, ९, ८, ७, ६, ५, ४, ३, २ और १ इस प्रकारके  
ये चारह संक्रमस्थान श्रीवेदमें अष्टांगस्थान होते हैं यह उक्त कथनका तात्पर्य है । श्रेण कथन सुगम

१. ता०प्रती पञ्जताणं इति पाठः । २. ता०प्रती संकमट्टाणाणि इति पाठो नास्ति ।  
२१

सुगममण्णं ॥२५॥

§ ३१५. 'चोद्दसग णवगमादी' १४, ९, ८, ७, ६, ५, ४, ३, २, १ एवमेदाणि दस संक्रमणानि उवसामग-खवगपडिवद्वाणि पुरिसवेदविसए सुण्णट्ठाणाणि होंति त्ति गाहासुत्तथसंगहो । सुगममन्यत् ॥२६॥

§ ३१६. 'णव अट्ट सत्त छक्कं' ९, ८, ७, ६, ५, ४, ३, २, १ एवमेदाणि सत्त संक्रमणानि कोहकसायोजुत्तेसु सुण्णट्ठाणाणि होंति त्ति सुत्तथसमुच्चओ ॥२७॥

§ ३१७. 'सत्तय छक्कं पणगं च०' ७, ६, ५, ४, ३, २, १ एवमेदाणि चत्तारि माण-कसायोजुत्तेसु सुण्णट्ठाणाणि होंति त्ति भणिदं होइ । सेसदोकसाएसु णत्थि एसो विचारो, सव्वेसिमेव संक्रमणानं तत्थासुण्णभावदंसणादो ॥२८॥

§ ३१८. एवमेदीए दिसाए सेसमग्गणासु वि सुण्णट्ठाणगवेसणा कायच्चा त्ति पटुप्पायणइमुवरिमगाहासुत्तमाह—'दिट्ठे सुण्णासुण्णे०' वेद-कसायमग्गणासु सुण्णा-सुण्णट्ठाणपविभागेसु पुञ्चुत्तकमेण दिट्ठे संते पुणो एदीए दिसाए गदियादिमग्गणासु वि जत्थतत्थाणुपुञ्चीए संक्रमणानं सुण्णासुण्णभावगवेसणा कायच्चा त्ति सुत्तथ-संवंधो ॥२९॥

हैं। आशय यह है कि स्त्रीवेदमें उन्नीस प्रकृतिकस्थान तकके सब तथा १३, १२ और ११ प्रकृतिक ये तीन इसप्रकार कुल ग्यारह संक्रमस्थान पाये जाते हैं शेष नहीं, इसलिये शेषका यहाँ निषेध किया है ॥२५॥

§ ३१५. 'चोद्दसग णवगमादी' १४, ९, ८, ७, ६, ५, ४, ३, २ और १ इस प्रकार ये दस संक्रमस्थान पुरुषवेदी उपशासक और क्षपकजीवोंके शून्यस्थान होते हैं यह इस गाथासूत्रका समुच्चयार्थ है। शेष कथन सुगम है। आशय यह है कि पुरुषवेदमें पन्द्रह प्रकृतिक स्थान तकके सब तथा १३, १२, ११ और १० प्रकृतिक ये चार इस प्रकार कुल १३ संक्रमस्थान होते हैं शेष नहीं, इसलिये शेषका यहाँ निषेध किया है ॥२६॥

§ ३१६. 'णव अट्ट सत्त छक्कं' ९, ८, ७, ६, ५, ४, ३, २ और १ इस प्रकार ये सात संक्रमस्थान क्रोधकषायवाले जीवोंमें शून्यस्थान होते हैं यह इस सूत्रका समुच्चयार्थ है। आशय यह है कि क्रोध कषायमें १० प्रकृतिक संक्रमस्थान तकके सब तथा ४ और ३ प्रकृतिक ये दो इस प्रकार कुल १६ संक्रमस्थान होते हैं शेष नहीं, इसलिये शेषका यहाँ निषेध किया है ॥ २७ ॥

§ ३१७. 'सत्त य छक्कं पणगं च०' ७, ६, ५ और १ इस प्रकार ये चार संक्रमस्थान मान-कषायवाले जीवोंमें शून्यस्थान होते हैं यह उक्त कथनका तात्पर्य है। आशय यह है कि मानकषायमें इन चारके सिवा शेष सब संक्रमस्थान होते हैं, इसलिये यहाँ चार स्थानोंका निषेध किया है। किन्तु शेष दो कषायोंमें यह विचार नहीं है, क्योंकि वहाँ पर सभी संक्रमस्थान अशून्यभावसे देखे जाते हैं ॥२८॥

§ ३१८ इस प्रकार इसी पद्धतिसे शेष मार्गणाओंमें भी शून्यस्थानोंका विचार कर लेना चाहिये यह दिखलानेके लिये अब आगेका गाथासूत्र कहते हैं—दिट्ठे सुण्णासुण्णे० वेद और कषाय मार्गणां शून्यस्थानों और अशून्यस्थानोंके विभागका पूर्वोक्त क्रमसे विचारकर लेनेके बाद फिर इसी पद्धतिसे गति आदि मार्गणाओंमें भी यत्रतत्रानुपूर्वीके क्रमसे संक्रमस्थानोंके सङ्काव और असङ्कावका विचार कर लेना चाहिये यह इस सूत्रका अभिप्राय है ॥२९॥

§ ३१९. एवं गदिआदिमगणासु संकमहाणाणं संभवगवेसणमण्णय-वदिरेगेहिं काट्ठण संपहि वंध-संकम-संतकम्महाणाणमेग-दुसंजोगकमेण णिकंभणं काट्ठण सण्णियास-पुरुवणदुमुवरिमगाहासुत्तमाह—'कम्मणियट्ठाणेषु य०' एसा गाहा ट्ठाणसमु-क्कित्तणाए ओषादेसेहि समुक्कित्तिदाणं संकमहाणाणं पडिणियदपडिग्गहट्ठाणपडिवट्ठाणं वंध-संतट्ठाणेषु मग्गणाविहिं परुवेदि । एटिस्से अत्यविचरणं कस्सामो । तं जहा—कम्मणियट्ठाणाणि णाम संतकम्महाणाणि । ताणि च मोहणीए अट्ठावीस-सत्तावीस-छवीस-चउवीस-नेवीस-वावीसोःवीस-तेग्ग-वाग्ग-एत्तरस-पंच-चदुक्क-ति-दु-एकपयडि-पडिवट्ठाणि । तेमिमेसा टवणा—२८. २७. २६, २४, २३, २२, २१, १३, १२, ११, ७, ४, ३, २. १ । वंधट्ठाणाणि च वावीस-द्विग्वीस-सत्तास-तेरस-णव-पंच-चदुक्क-ति-दु-एकमण्णिदाणि २२, २१, १७, १३, ९, ७, ४, ३, २, १ एवमेदाणि परिवार्डीए टविय पादेवमेदेषु सत्तावीसादिसंकमहाणाणं संभवगवेसणा कायव्वा त्ति गाहासुचपुत्रद्वे ममुवयन्थो । 'एक्केक्केण समाणय' एवं भण्णिदे वंध-संतट्ठाणेषु मक्केक्केण नह 'समाणय' सम्पगानुपूव्यानयेन्वर्थः । वंध-संतट्ठाणाणि पुत्र० आधार-भृदाणि इविय तेषु संकमहाणाणि णेदव्वाणि त्ति भावत्यो ।

§ ३२०. नन्थ ताव संतकम्महाणेषु संकमहाणाणं गवेसणा कीरदे । तं कथं ? मिच्छादिट्ठिस्स वा सम्मादिट्ठिस्स वा अट्ठावीसगंतकम्मं होऊण सत्तावीससंकमो होइ ? ।

§ ३१९. इम प्रकर गति आदि मार्गगाथोंमें कदां कितने संकमस्थान सम्भव हैं इसका अन्वय और व्यवहारिक दृष्टि विचार करके अत्र वन्धस्थान, संकमस्थान और सत्कर्मस्थान इन्हें एकत्रयोग और दोर्मयोगके क्रममें विवक्षित करते मन्त्रिहरका कथन करनेके लिये आगेका गाथासूत्र कहते हैं—'कम्मणियट्ठं गुणु व' स्थानसमुत्कीर्तना अनुयोगद्वारमं जो संकमस्थान प्रोच और आदेशमें कहे गये हैं तथा जो प्रतिनियत प्रतिपदस्थानोंसे सम्बन्ध रखते हैं वे वन्धस्थानों और सत्कर्मस्थानोंमें कदां कितने होते हैं इम बातका कथन यह गाथा करती है । अत्र इस गाथाके अर्थका उग्रान्वयान करते हैं । यथा—कमांशिरुस्थान यह सत्कर्मस्थानका दूसरा नाम है । वं मोहनीयकर्ममें अट्ठाईस, सत्ताईस, छवीस, चौबीस, तेईस, चाईस, उक्कीस, तेह, बारह, ग्यारह, पाच चार, तीन, दो और एक इनती प्रकृतियोंमें प्रति द्र हैं । उनकी अंकोंद्वारा यह स्थापना है—२८, २७, २६, २४, २३, २२, २१, १३, १२, ११, ५, ४, ३, २ और १ । और वन्धस्थान चाईस, उक्कीस, सत्रह, तेरह, नौ, पांच, चार, तीन, दो और एक प्रकृतिक होते हैं—२२, २१, १७, १३, ९, ७, ४, ३, २ और १ । इम प्रकार इन्हों क्रमसे स्थापित करके उनमेंसे प्रत्येकमें सत्ताईस प्रकृतिक आदि सम्भव संकमस्थानोंका विचार करना चाहिये यह इस गाथासूत्रके पृथार्थका समुच्चयार्थ है । तथा गाथाके उत्तरार्थमें 'एक्केक्केण समाणय' ऐसा कहने पर वन्धस्थानों और सत्कर्मस्थानोंमेंसे एक एकके साथ 'समाणय' अर्थात् भले प्रकार इस आनुपूर्वीसे वन्धस्थानों और सत्कर्मस्थानोंको आधाररूपसे अलग अलग स्थापित करके उनमें संकमस्थानोंको जानना चाहिये यह इसका भावार्थ है ।

§ ३२०. उनमेंसे सर्वप्रथम सत्कर्मस्थानोंमें संकमस्थानोंका विचार करते हैं । यथा—मिथ्यादृष्टि या सत्पद्दृष्टि जीवके अट्ठाईस प्रकृतियोंकी सत्ता होकर सत्ताईस प्रकृतियोंका संकम

मिच्छाइद्विणा सम्मत्तुवेल्लणवावदेण सम्मत्तस्स समयूणावलयमेत्तगोवुच्छावसेसे कदे अट्टावीससंतेण सह छव्वीससंकमो होइ २ । अहवा छव्वीससंतकम्मिएण पढमसम्मत्ते उप्पाइदे अट्टावीससंतकम्माहारं<sup>१</sup> छव्वीससंकमट्टाणमुप्पज्जइ । अविंसजोइदाणंताणुवंधिणा उवसमसम्माइद्विणा सासणगुणे पडिवण्णे अट्टावीससंतकम्मिएण सम्मामिच्छत्ते वा पडिवण्णे अट्टावीससंतकम्मसहगदं पणुवीससंकमट्टाणमुप्पज्जइ ३ । अणंताणुवंधी विसंजोइय संजुत्तमिच्छाइद्विपढमावल्याए तेवीसपयडिसंकमट्टाणमट्टावीससंकमट्टाण-पडिवट्टमुप्पज्जइ । अहवा अणंताणु० विसंजोयणाचरिमफालिं संकामियं समयूणावलय-मेत्तगोवुच्छावसेसे वट्टमाणस्स तमेव संकमट्टाणं तेणेव संतकम्मट्टाणेणाहिद्विदमुप्पज्जदि ४ । अणंताणु० विसंजोयणापुरस्सरं सासणगुणं पडिवण्णस्स आवलयमेत्तकालमट्टावीस-संतकम्मेण सह इगिवीससंकमट्टाणमुप्पज्जइ ५ । एवमेदाणि पंच संकमट्टाणाणि अट्टा-वीससंतकम्मियस्स होंति ।

§ ३२१. संपहि सत्तावीसाए उचदे—अट्टावीससंतकम्मियमिच्छाइद्विणा सम्मत्ते उव्वेल्लिदे सत्तावीससंतकम्मं वेत्तूणं छव्वीससंकमो होइ १ । पुणो तेणेव सम्मामिच्छत्त-मुव्वेल्लंतैण समयूणावलयमेत्तगोवुच्छावसेसे कए सत्तावीससंतकम्मेण सह पणुवीस-

होता है १ । जो मिथ्यादृष्टि जीव सम्यक्त्वकी उद्वे लना कर रहा है उसके सम्यक्त्वकी गोपुच्छाके एक समयकम एक आवलिप्रमाण शेष रहने पर अट्टाईस प्रकृतिक सत्त्वस्थानके साथ छव्वीस प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है २ । अथवा जो छव्वीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला जीव प्रथम सम्यक्त्व-को उत्पन्न करता है उसके प्रथम सम्यक्त्वके उत्पन्न करनेपर अट्टाईस प्रकृतिक सत्कर्मका आधार-भूत छव्वीस प्रकृतिक संक्रमस्थान उत्पन्न होता है । जिस उपशमसम्यग्दृष्टिने अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना नहीं की है उसके सासादनगुणस्थानको प्राप्त होने पर या अट्टाईस प्रकृतियोंकी सत्तावाले जीवके सम्यग्मिथ्यात्वको प्राप्त होने पर अट्टाईस प्रकृतिक सत्कर्मके साथ पच्चीस प्रकृतिक संक्रमस्थान उत्पन्न होता है ३ । जो सम्यग्दृष्टि जीव अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना करके फिर मिथ्यात्वमें जाकर उससे संयुक्त होता है उसके प्रथम आवलिमें अट्टाईस प्रकृतिक सत्कर्मसे सम्बन्ध रखनेवाला तेईस प्रकृतिक संक्रमस्थान उत्पन्न होता है । अथवा अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजनाकी अन्तिम फालिका संक्रम करनेके बाद एक समयकम एक आवलिप्रमाण गोपुच्छाके शेष रहने पर उसी सत्कर्मके आधारसे वही संक्रमस्थान उत्पन्न होता है ४ । जो अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजनापूर्वक सासादनगुणस्थानको प्राप्त होता है उसके एक आवलिप्रमाण कालतक अट्टाईस प्रकृतिक सत्कर्मके साथ इक्कीस प्रकृतिक संक्रमस्थान उत्पन्न होता है ५ । इस प्रकार ये पांच संक्रमस्थान अट्टाईस प्रकृतिक सत्कर्मवाले जीवके होते हैं ।

§ ३२१. अब सत्ताईस प्रकृतिक सत्कर्मवालेके कितने संक्रमस्थान होते हैं यह बतलाते हैं — अट्टाईस प्रकृतियोंकी सत्तावाले मिथ्यादृष्टि जीवके सम्यक्त्वकी उद्वे लना कर लेने पर सत्ताईस प्रकृतिक सत्कर्मके साथ छव्वीस प्रकृतिक संक्रमस्थान उत्पन्न होता है १ । फिर सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वे लना करते हुए उसी जीवके एक समय कम एक आवलिप्रमाण गोपुच्छाके शेष रहने पर

१. आ०प्रतौ -हाइड्रु इति पाठः । २. ता०प्रतौ संकामय इति पाठः । ३. ता०-आ०प्रत्योः मोत्तूण इति पाठः ।

संक्रमणमुपपन्नं २ । एवं मत्तावीसमंतकम्मे णिरुद्धे दोषिण चैव संक्रमणानि  
होति ।

३२२. संपहि लब्धीयाण उच्यते—अणादियमित्वाद्द्विरम मादिलब्धीसमंत-  
कम्मियम्म वा लब्धीसमंतकम्मं होऊण पणुवीसमंतकमट्टाणमेवकं चैव लब्धेदे, तत्थ  
पयारंतम्मंदाभावादो ।

३२३. संपहि चउदीसमंतकम्मियम्म संक्रमणगवेसणा कीरदे—अणंताणु-  
वधिचिमंजोयणापग्णिदमम्माइट्टिमि चउदीसमंतकम्मं होऊण तेवीससंक्रमो होइ १ । पुणो  
तेणैव उवममोदिमरुट्टेणंतम्पणपाणंगरमाणुपुत्तानंक्रमे कट्टे वावीससंक्रमो होइ २ ।  
तेणैव णसुंमयवेदोवममे कट्टे इगिवांससंक्रमो जायदे ३ । इत्थिवेदोचममे वीरसंक्रमो  
होइ ४ । तम्मं चण्णोकरायाणामनुवमागणमम्मिचुण चोदससंक्रमो होइ ५ । पुसि-  
वेदोवममणाए तंमसंक्रमट्टाणमुपपन्नं ६ । दुविहकोहोचममेणेरागससंक्रमो होइ ७ ।  
कोहसंजलणोचममम्मिचुण दमपहं संक्रमो जायदे ८ । दुविहमाणोचममेणे अट्टुपहं  
संक्रमो होइ ९ । माणसंजलणोचममणाए मचपहं संक्रमो जायदे १० । दुविहमाणोचमम-  
मम्मिचुण पंचसंक्रमो जायदे ११ । मायासंजलणोचममे चउपहं संक्रमो होइ १२ ।  
दुविहमाणोचममणाए मित्तलन-गम्मामित्तलनपयारणं दोषहं चैव संक्रमो जायदे १३ ।

सनाहंम प्रकृतिक मन्त्रमेके साथ पशुम प्रकृतिक संक्रमस्थान उत्पन्न होता है २ । इस प्रकार  
सनाहंम प्रकृतिक मन्त्रमेके उत्पन्न हुए दो ही संक्रमस्थान होते हैं ।

३२२. अत्र पशुम प्रकृतिक मन्त्रमंत्राहोरे कितने संक्रमस्थान होते हैं यह बतलाते हैं—  
अनादिमिभ्याहृष्टिके वा लब्धीसमंतकम्मियम्मोरी मत्तासणे सादि मिभ्याहृष्टिके लब्धीसमंतक  
मन्त्रमेके साथ केवल एक पशुम प्रकृतिक संक्रमस्थान प्राप्त होता है, क्योंकि यहाँ पर और कोई  
दूसरा प्रकार सम्भव नहीं है ।

३२३. अत्र चौथीस प्रकृतिक मन्त्रमंत्राले जो वने संक्रमस्थानोंका विचार करते हैं—जिनसे  
अनन्तानुसन्धीयो विमयोजना पर ही हैं ऐसे मन्त्रमन्त्रि जीवके चौथीस प्रकृतिक सन्त्रमेके साथ  
होम प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है १ । फिर उनी जीवके उपशमप्रेणिए पर चउकर अन्तकरणके बाद  
श्रुतपुत्री संक्रमका प्रारम्भ करने पर सार्धम प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है २ । फिर उनी जीवके  
सुपुंसकवेवका उपशम कर लेने पर इककीस प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है ३ । स्त्रीवेदका उपशम  
कर लेने पर बीस प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है ४ । उनीके छह नोकपायोके उपशमका आश्रय  
लेकर चौदह प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है ५ । पुस्येदका उपशम हो जानेपर तेरह प्रकृतिक संक्रम-  
स्थान होता है ६ । दो प्रकारके कोयके उपशम हो जानेसे ग्यारह प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है ७ ।  
कोयसंजलनके उपशमका आश्रय लेकर दस प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है ८ । दो प्रकारके मानका  
उपशम हो जानेसे आठ प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है ९ । मानसंजलनका उपशम हो जाने पर  
सात प्रकृतिक संक्रमस्थान उत्पन्न होता है १० । दो प्रकारके मायाके उपशमका आश्रय लेकर पांच  
प्रकृतिक संक्रमस्थान उत्पन्न होता है ११ । मायासंजलनका उपशम होने पर चार प्रकृतिक संक्रम-  
स्थान होता है १२ । और दो प्रकारके लोभका उपशम होने पर मिभ्याहृष्ट और सम्बन्धिमिभ्याहृष्ट



एवं चउवीससंतकर्ममिण णिल्लहे तेरससंकमड्डाणाणि लब्धमंति । णवरि ओदरनाणसस्सियुण लब्धमाणाणि ड्डाणाणि एत्थेव पुणकृतभावेण पविड्डाणि । चउवीससंतकर्मियसंस्सामिच्छाड्डिस्स इगिवीससंकमड्डाणं दंसणमोहक्खवगस्स मिच्छचत्तरिमफालिपदाणांतरमुचलब्धमाणवावीसड्डाणं च पुणकृतमेवे चि ण पुत्र परुविदाणि ।

§ ३२४. संपहि चउवीससंतकर्मिएण दंसणमोहक्खवणमभुट्टिय मिच्छे खविदे तेवीससंतकम्मं होलण वावीससंकमो होइ ? । तेणेव सम्मामिच्छत्तं खवेत्तेण समयुणावलयिनेचयोवुच्छावसेसे कए तेणेव संतकम्मेण सहिदइगिवीससंकमड्डाणमुप्यज्जइ ? । एवं तेवीसाए दोगिण चैव संकमड्डाणाणि भवंति ।

§ ३२५. तस्सेव णिस्सेसिदसम्मामिच्छत्तस्स वावीससंतकम्मसहगयन्निगिवांससंकमड्डाणमेक्कं चैव लब्धे, तत्थणणमंमवाणुवर्लसादो ।

§ ३२६. खड्यमम्माइड्डिमिण इगिवीससंतकम्ममिगिवीससंकमड्डाणाणुविदुमुप्यज्जइ ? । पुणो इगिवीससंतकम्मिएण उवसमसेडिमसहिय आणुपुव्वांसकमे कदे वीममंकमड्डाणमेक्कवीससंतकम्माहारमुप्यज्जइ ? । उवरि जागिउण णेद्वं । एवं पीदि एक्कीयाए शरमसंकमड्डाणाणि लब्धमंति ? २, णमुंस-इतिवेद-उगणोकमाय-पुरिसवेद-

इन दो प्रकृतियोंका ही संक्रमण होता है ? ३ । इस प्रकार चौबीस प्रकृतिक सत्कर्मके सद्भावमें वेरह संक्रमस्थान उपलब्ध होते हैं । यहाँ इतना विशेष और ससन्नता चाहिए कि परशमंशेस्से उरनेवाले जीवका आश्रय लेकर प्राप्त होनेवाले संक्रमस्थान पुनरुक्त होनेके क्षण उनका इन्होंने अन्तर्भाव हो गया है । तथा चौबीस प्रकृतियोंकी सत्त्वजाले सन्धिमिध्याहृष्टि जीवके आश्रुद्ध्या इक्कीस प्रकृतिक संक्रमस्थान और दर्शनमोहकी क्षरणा करनेवाले जीवके निध्यात्वकी अन्तिम फालिके पवनके बाद प्राप्त हुअ बार्डेस प्रकृतिक संक्रमस्थान पुनरुक्त ही हैं इस लिये वे अलगसे नहीं कई हैं ।

§ ३२४. अब जो चौबीस प्रकृतियोंकी सत्त्वजाला जीव दर्शनमोहकी क्षरणा करनेके लिये उचत होता है उसके सिध्यात्वका ज्ञय हो जाने पर वेईस प्रकृतिक सत्कर्मके साथ चाईस प्रकृतिक संक्रमस्थान प्राप्त होता है ? । सन्धिमिध्यात्वका ज्ञय करते हुए उसी जीवके उत्तरी एक समय का एक आवलिप्रमाख गोबुच्छा कर देने पर उसी वेईस प्रकृतिक सत्कर्मके साथ इक्कीस प्रकृतिक संक्रमस्थान उत्पन्न होता है ? । इस प्रकार वेईस प्रकृतिक सत्कर्मके सद्भावमें दो ही संक्रमस्थान होते हैं ।

§ ३२५. फिर वही जीव जब सन्धिमिध्यात्वका ज्ञय कर देना है तब उसके बार्डेस प्रकृतिक सत्कर्मके साथ केवल एक इक्कीस प्रकृतिक संक्रमस्थान प्राप्त होता है, क्योंकि यहाँ पर अन्य सीक स्थान नहीं उपलब्ध होता है ।

§ ३२६. ज्ञापिकसन्दृष्टि जीवके इक्कीस प्रकृतिक संक्रमस्थानसे सन्धन्व रखनेवाला इक्कीस प्रकृतिक सत्कर्मस्थान उत्पन्न होता है ? । फिर इक्कीस प्रकृतिक पत्क्रमेवाले जीवके परशमंशेणिर चट्ट कर आनुपूर्वी संक्रमका शरम्म कर देने पर बीसप्रकृतिक संक्रमस्थानका आवासरूप इक्कीस प्रकृतिक सत्कर्मस्थान उत्पन्न होता है ? । आगे जान कर कथन करना चाहिये । इस प्रकार कथन करने पर इक्कीस प्रकृतिक सत्कर्मस्थानके बारह संक्रमस्थान प्राप्त होते हैं ? २, क्योंकि

दुविहकोह-कोहमंजलण-दुविहमाण-( माण ) मंजलण-दुविहमाय-मायसंजलणाणमुवसमेण  
जहाकमेगृणवीसादिसंकमद्वानाणमिगिगीमसंतकम्माहाराणमुवलंभादो । पुणो खवगेण  
अट्टकमायखवणवावदेण समयुणावलियमेत्तगोपुच्छवसेसे कदे तेरससंकमद्वानमिगिगीस-  
संतकमसंवंधेण समुवल्लभम् । एवं सव्वसमासेण तेरससंकमद्वानाणि इगिगीससंतकम्म-  
पडिचट्ठाणि भवन्ति १३ ।

§ ३२७, पुणो अट्टकमागमु णिल्लेविदेसु तेरससंतकम्मसंवद्धं तेरसपयडिसंकम-  
द्वानमुप्यज्जदि १ । तेणेव समाणिदंतरकरणेण आपुपुञ्जीसंकमे कदे वागससंकमद्वानं  
तेरससंतकम्मसहगयमुप्यज्जदि २ । एवमेदाणि दोण्णि तेरससंतकम्मियस्स संकमद्वानाणि ।

§ ३२८, एद्वेणेव णसुंसयवेदे खविदे वारससंतकम्मं होऊणेफारससंकमद्वान-  
मुवल्लभम् । इत्थिवेदे खविदे एफारससंतकम्मं होऊण दससंकमो ल्लभम् । छण्णो-  
कमायक्खवणानंतरं पंचसंतकम्मं होऊण चदुण्हं संकमो जायदे । पुरिसवेदे णवकवंधे  
खविदे चत्तारि संकममाणि होऊण तिण्हं संकमो जायदे । कोहसंजलणे खविदे तिण्णि  
संतकममाणि दोण्हं संकमो माणमंजलणे खविदे दोण्णि संकममाणि एणपयडिसंकमो  
च जायदे । एवं संकमद्वानेणु संकमद्वानाणमणुगामो कदो ।

नपुंसकवेद, स्त्रीवेद, ऋग नोऋषाय, पुत्रवेद, दो प्रकारका कथ, क्रोधसंजलन, दो प्रकारका  
मान मानसंजलन, दो प्रकारकी माया और मायासंजलन इन प्रकृतियोंका उपशम होनेसे  
प्रथमे उच्यते प्रकृतिक सत्कर्मस्थानके आधारमे उच्यते प्रकृतिक आदि संकमस्थान उपलब्ध  
होते हैं । फिर आठ कथायोंकी धारणा करनेवाले रूपके एक समय कम एक आयलिप्रमाण  
गोपुच्छके दोप रहने पर उच्यते प्रकृतिक सत्कर्मस्थानके सम्बन्धमे तेरह प्रकृतिक संकमस्थान  
उत्पन्न होता है । इन प्रकार उच्यते प्रकृतिक सत्कर्मस्थानमे सम्बन्ध रहनेवाले कुल तेरह संकम-  
स्थान होते हैं १३ ।

§ ३२७. पुनः आठ कथायोंका क्षय हो जाने पर तेरह प्रकृतिक सत्कर्मसे सम्बन्ध रखनेवाला  
तेरह प्रकृतिक संकमस्थान उत्पन्न होता है १ । फिर उनी जीवके अन्तरकरण करनेके बाद प्रानुपूर्वी  
संक्रमका प्रारम्भ कर देने पर तेरह प्रकृतिक सत्कर्मसे सम्बन्ध रखनेवाला चारह प्रकृतिक संकम-  
स्थान उत्पन्न होता है । २ । इन प्रकार तेरह प्रकृतिक सत्कर्मवालेके ये दो संकमस्थान होते हैं ।

§ ३२८. पुनः उनी जीवके द्वारा नपुंसकवेदका क्षय कर देने पर चारह प्रकृतिक सत्कर्मके  
साथ ग्यारह प्रकृतिक संकमस्थान उपलब्ध होता है । स्त्रीवेदका क्षय कर देने पर ग्यारह प्रकृतिक  
सत्कर्म होकर दस प्रकृतिक संकमस्थान प्राप्त होता है । छठ नोऋषायोंका क्षय हो जाने पर पाँच  
प्रकृतिक सत्कर्म होकर चार प्रकृतिक संकमस्थान प्राप्त होता है । पुत्रवेदके नवकवन्धका क्षय हो  
जाने पर चार प्रकृतिक सत्कर्म होकर तीन प्रकृतिक संकमस्थान प्राप्त होता है । क्रोधसंजलनका  
क्षय हो जाने पर तीन प्रकृतिक सत्कर्मके साथ दो प्रकृतिक संकमस्थान और मानसंजलनका  
क्षय हो जाने पर दो प्रकृतिक सत्कर्मके साथ एक प्रकृतिक संकमस्थान उत्पन्न होता है । इस  
प्रकार सत्कर्मस्थानोंमें संकमस्थानोंका विचार किया ।

§ ३२९. संपहि बंधद्वानेषु तदणुगमं वचहरसामो । तं जहा—अट्टावीससंत-  
कम्मियमिच्छाइट्टिमि वावीसबंधद्वानं होऊण सत्तावीससंकमो होइ १ । तेणेव सम्मत्ते  
उव्वेल्लिदे छव्वीससंकमो होइ, बंधद्वानं पुण तं चेव २ । सम्मामिच्छते उव्वेल्लिदे तेणेव  
बंधद्वानेण सह पणुवीससंकमो होइ ३ । अणंताणुबंधी विसंजोएदूण मिच्छंतं गदस्स  
पढमावलिआए वावीसबंधेण सह तेवीससंकमो होइ ४ । एवं वावीसबंधद्वानमि चत्तारि  
संकमद्वानाणि लुद्धाणि ।

§ ३३०. सासणसम्माइट्टिमि इगिवीसबंधद्वानं होदूण पणुवीससंकमद्वान-  
मुप्पज्जदि १ । अणंताणु० विसंजोयणापुरस्सरं सासाणं गुणं पडिवणणस्स पढमावलिआए  
इगिवीसबंधद्वानमिगिवीससंकमद्वानाहिट्टियमुप्पज्जदि २ । एवमिगिवीसबंधद्वानमि  
दोणिण चेव संकमद्वानाणि होंति ।

§ ३३१. सम्मामिच्छाइट्टिमि सत्तारसबंधो होऊण अणंताणुबंधिविसंजोयणाविसं-  
जोयणावसेण इगिवीस-पचवीससंकमद्वानाणि होंति २ । अट्टावीससंतकम्मियासंजदसम्मा-  
इट्टिमि सत्तारसबंधेण सह सत्तावीसपयडिद्वानसंकमो होइ ३ । उवसप्रसम्मत्तगगहणपढम  
समयमि वट्टमाणस्स तस्सेव छव्वीससंकमद्वानं होइ ४ । अणंताणु० विसंजोयणमस्सियूणं

§ ३२६. अब्ब बन्धस्थानोंमें उनका अनुगम करके वतलाते हैं । यथा - अट्टाईस प्रकृतिक  
सत्कर्मवाले मिथ्यादृष्टिके बाईस प्रकृतिक बन्धस्थान होकर सत्ताईस प्रकृतिक संक्रमस्थान होता  
है १ । इसी जीवके द्वारा सम्यक्त्वकी उद्देखना कर देने पर छव्वीसप्रकृतिक संक्रमस्थान होता है  
किन्तु बन्धस्थान वही रहता है २ । सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्देखना कर देने पर उसी बन्धस्थानके साथ  
पचीस प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है ३ । अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना करके मिथ्यात्वको प्राप्त  
हुए जीवके प्रथम आवल्लिमे बाईस प्रकृतिक बन्धस्थानके साथ तेईस प्रकृतिक संक्रमस्थान होता  
है ४ । इस प्रकार बाईस प्रकृतिक बन्धस्थानमें चार संक्रमस्थान प्राप्त हुए ।

§ ३३०. सासादनसम्यग्दृष्टि जीवके इक्कीस प्रकृतिक बन्धस्थान होकर पचवीस प्रकृतिक  
संक्रमस्थान उत्पन्न होता है १ । तथा अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजनापूर्वक सासादनको प्राप्त हुए  
जीवके प्रथम आवल्लिमें इक्कीस प्रकृतिक बन्धस्थानसे सम्बन्ध रखनेवाला इक्कीस प्रकृतिक  
संक्रमस्थान उत्पन्न होता है २ । इस प्रकार इक्कीस प्रकृतिक बन्धस्थानमें दो ही संक्रमस्थान  
होते हैं ।

§ ३३१. सम्यग्मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमें सत्रह प्रकृतिक बन्धस्थान होकर इक्कीस प्रकृतिक  
और पचीस प्रकृतिक ये दो संक्रमस्थान होते हैं । इनमेंसे जिसने पूर्वमें अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना  
की है उसके इक्कीस प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है और जिसने अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना  
नहीं की है उसके पचवीस प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है २ । अट्टाईस प्रकृतियोंकी सत्तावाले  
असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें सत्रहप्रकृतिक बन्धस्थानके साथ सत्ताईस प्रकृतिक संक्रमस्थान  
होता है ३ । उपशामसम्यक्त्वको ग्रहण करनेके प्रथम समयमें विद्यमान उसी जीवके छव्वीस  
प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है ४ । अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजनाका आश्रय करके तेईस प्रकृतिक



§ ३३४. चउवीससंतकम्मिप्राणियट्टिगुणट्टाणम्मि पंचपयडिबंधट्टाणेण सह तेवीससंकमो होइ १ । तत्थेवाणुपुव्वीसंकमवसेण वावीससंकमो होइ २ । णवुंसयवेदोवसामणाए इगिवीससंकमो ३ । इत्थिवेदोवसामणाए वीरुससंकमो होइ ४ । पुणो इगिवीससंतकम्मिओवसामणेणाणुपुव्वीसंकमं काऊण णवुंसयवेदे उवसामिदे एगूणवीसं संकमो होइ ५ । तेणेव इत्थिवेदे उवसामिदे अट्टारससंकमो होइ ६ । खवगेण अट्टकसाएसु खविदेसु तेरससंकमो जायदे ७ । अंतरकरणं करिय आणुपुव्वीसंकमे कदे वारससंकमो होइ ८ । णवुंसयवेदे खविदे एकारससंकमो जायदे ९ । इत्थिवेदक्खवणाए दससंकमो जायदे १० । एवं पंचपयडिबंधट्टाणम्मि दस संकमट्टाणाणि भवंति ।

§ ३३५. संपहि चउण्हं बंधट्टाणम्मि संकमट्टाणगवेसणा कीरदे—चउवीससंतकम्मियोवसामणेण छण्णोकसायाणमुवसामणाए कदाए गिरुद्धबंधट्टाणेण सह चौहससंकमट्टाणमुपपज्जइ १, तदवत्थाए पुरिसवेदवंधुवरसदंसणादो । तत्थेव पुरिसवेदे उवसामिदे तेरससंकमो जायदे २ । इगिवीससंतकम्मिएण छण्णोकसाएसु उवसामिदेसु वारससंकमो होइ ३ । पुरिसवेदोवसमे एकारससंकमो होइ ४ । खवगेण छण्णोकसाएसु खविदेसु चउण्हं संकमो होइ ५ । पुरिसवेदे खविदे तिण्हं संकमो जायदे ६ । एवं चउच्चिहबंधगम्मि छच्चेव संकमट्टाणाणि भवंति, पुरिसवेदोदए गिरुद्धे अण्णेसिमणुव-

§ ३३४. चौवीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले अनिवृत्तिकरण गुणस्थानमें पाँच प्रकृतिक बन्धस्थानके साथ तेईस प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है १ । वहीं पर आनुपूर्वीसंक्रमके कारण चाईस प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है २ । नपुंसकवेदका उपसम हो जाने पर इक्कीस प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है ३ । स्त्रीवेदका उपसम हो जाने पर बीस प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है ४ । फिर इक्कीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले उपशामक जीवके द्वारा आनुपुत्री संक्रमका प्रारम्भ करनेके बाद नपुंसकवेदका उपशम कर लेने पर उन्नीस प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है ५ । उसीके द्वारा स्त्रीवेदका उपशम कर देने पर अठारह प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है ६ । ऋषकेके द्वारा आठ कर्मायोंका क्षय कर देने पर तेरह प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है ७ । अन्तरकरण करनेके बाद आनुपूर्वी संक्रमका प्रारम्भ कर लेने पर बारह प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है ८ । नपुंसकवेदका क्षय कर देनेपर ग्यारह प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है ९ । स्त्रीवेदका क्षय कर देनेपर दस प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है १० । इस प्रकार पाँच प्रकृतिक बन्धस्थानमें दस संक्रमस्थान होते हैं ।

§ ३३५. अब चार प्रकृतिक बन्धस्थानमें संक्रमस्थानोंका विचार करते हैं—चौवीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले उपशामक जीवके द्वारा छह नोकर्मायोंका उपशम कर लेने पर विवर्चित बन्धस्थानके साथ चौदह प्रकृतिक संक्रमस्थान उत्पन्न होता है १, क्योंकि इस अवस्थामें पुरुषवेदके बन्धका अभाव देखा जाता है । वहीं पर पुरुषवेदका उपशम हो जाने पर तेरह प्रकृतिक संक्रमस्थान उत्पन्न होता है २ । इक्कीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले जीवके द्वारा छह नोकर्मायोंका उपसम कर देने पर बारह प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है ३ । पुरुषवेदका उपशम हो जाने पर ग्यारह प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है ४ । ऋषकेके द्वारा छह नोकर्मायोंका क्षय कर देने पर चार प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है ५ । पुरुषवेदका क्षय कर देने पर तीन प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है ६ । इस प्रकार चार प्रकृतिक बन्धस्थानमें छह ही संक्रमस्थान होते हैं, क्योंकि 'पुरुषवेदके उदयके सद्भावमें

लंभादे । सेसवेदोदयविचक्राण पुण तिपुरिससंबंधेण वीसट्टारसादिसंक्रमणानां संभवो अणुगतंत्वो ।

§ ३३६. संपत्ति तिबिहबंधद्वारेण संक्रमणानां परूवणा कीरदे—चउवीस-  
मंतकम्मिएण कोहमंजलणबंधवोच्छेदे कदे सेममंजलणतियबंधाहिद्धियमेकारससंक्रमणानां  
होइ १ । कोहमंजलणे उवगामिदे दयमंक्रमो जायदे २ । इगिवीसमंतकम्मिएण दुविह-  
कोहोवगमे कदे णवणं मंक्रमो होइ ३ । कोहमंजलणे उवसामिदे अट्टणहं संक्रमो  
होइ ४ । स्वगणेण कोहमंजलणबंधवोच्छेदे कदे तिणहं मंक्रमो, कोहमंजलणणवक-  
बंधमंजामयम्मि नदुत्तंभादो ५ । तेणेव कोहमंजलणे णिसंतीकए दोणहं संक्रमण-  
भूपज्जदि ६ ।

§ ३३७. संपत्ति दुविहबंधपरत्त उवदे—चउवीससंतकम्मियोवसामयेण दुविह-  
माणोवगमे कदे अट्टणहं मंक्रमणामुवजायदे १ । तेणेव माणसंजलणोवसमे कदे  
मचणहं मंक्रमो जायदे २ । इगिवीसमंतकम्मियोवगामयेण दुविहमाणोवगमे कदे छणहं  
मंक्रमो होइ ३ । माणसंजलणोवगमे कदे पंचणहं मंक्रमो जायदे ४ । स्वगणेण माण-  
संजलणबंधवोच्छेदे कदे तणणवकबंधमंक्रममन्मिएण दोणहं संक्रमो होइ ५ । तम्मि चेव  
णिसंतीकए एहिस्से मंक्रमो जायदे ६ । एवमेत्थ वि छणहं संक्रमणानां संभवो  
दट्टंत्वो ।

अन्य संक्रमणानां का पाया ज्ञाना सम्भव नहीं है । किन्तु जेव वेदोंके उदयकी विविक्षा होनेपर तो  
तीन पुरुषोंके मन्वन्वयमे तीन, 'प्राठ' प्राणि संक्रमस्थान सम्भव हैं उनका विचार कर लेना चाहिए ।

§ ३३६. अथ तीन प्रकृतिक मन्वस्थानमे संक्रमस्थानोंका कथन करते हैं—चौवीस  
प्रकृतियोंकी सत्तायाने जीवके द्वारा क्रान्तसंजलनकी वन्धव्युच्छित्ति कर देने पर शेष संजलन-  
सम्बन्धी तीन प्रकृतिक मन्वस्थानके साथ ग्यारह प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है १ । क्रोधसंजलनका  
उपशम कर देने पर दस प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है २ । उन्कीस प्रकृतियोंकी सत्तायाने जीवके  
द्वारा दो प्रकारके क्रोधका उपशम कर देने पर नौ प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है ३ । क्रोधसंजलनका  
उपशम कर देने पर आठ प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है ४ । चक्रक जीवके द्वारा क्रोधसंजलनकी  
वन्धव्युच्छित्ति कर देने पर तीन प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है, क्योंकि क्रोध संजलनके नवक  
वन्धके संक्रम करने पर उन् स्थानकी उपलब्धि होती है ५ । उसी जीवके द्वारा क्रोध संजलनके  
निःसत्त्व कर देने पर दो प्रकृतिक संक्रमस्थान उपलब्ध होता है ६ ।

§ ३३७. अथ दो प्रकृतिक मन्वस्थानयाने जीवके संक्रमस्थान वतलाते हैं—चौवीस  
प्रकृतियोंकी सत्तायाने उपशमक जीवके द्वारा दो प्रकारके मानका उपशम कर देने पर आठ  
प्रकृतिक संक्रमस्थान उत्पन्न होता है १ । उसी जीवके द्वारा मानसंजलनका उपशम कर देने पर  
सात प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है २ । इन्द्रकीस प्रकृतियोंकी सत्तायाने उपशमकके द्वारा दो  
प्रकारके मानका उपशम कर देने पर छह प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है ३ । मानसंजलनका उपशम  
कर देने पर पाँच प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है ४ । चक्रके द्वारा मानसंजलनकी वन्धव्युच्छित्ति  
कर देने पर उनके नवकवन्धके संक्रमके आश्रयसे दो प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है ५ ।  
वयो नरकरके निःसत्त्व कर देने पर एक प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है ६ । इस प्रकार यहाँपर

३३८. एगपयद्धिवंधणिरुद्धे पंच संकमट्टाणाणि लब्धंति । तं जहा—चउवीस-संतकम्मियोवसामगस्स दुविहमायोवसमे मायसंजलणणवगवंधेण सह पंचण्हं संकमो १ । मायासंजलणोवसमे चउण्हं संकमो २ । इगिवीससंतकम्मियस्स दुविह-मायोवसमे मायासंजलणणवकवंधेण सह तिण्हं संकमो ३ । तम्हि उवसामिदे दोण्हं संकमो ४ । खवगस्स लोभसंजलणवंधयस्स मायासंजलणसंकमो एको चैव लब्भदे ५ । एवं बंधट्टाणेसु संकमट्टाणाणं परूवणा कया ।

§ ३३९. एवमेगसंजोगपरूवणं काऊण संपहि 'बंधेण य संकमट्टाणे' इदि सुत्ताव-यवमवलंविद्य दुसंजोगपरूवणं वत्तइस्सामो । तत्थ ताव बंध-संतट्टाणाणं दुसंजोगमाहार-भूदं काऊण संकमट्टाणगवेसणा कोरदे । तं जहा—अट्टावीससंतकम्मं वावीसबंधट्टाणं च अण्णोणसहगयमाहारभूदं कादूण एदाणि संकमट्टाणाणि भवंति २७, २६, २३ । पुणो अट्टावीससंतकम्ममिगिवीसबंधट्टाणं च सहभूदमाघारं काऊण पणुवीस-इगिवीस-सण्णिदाणि दोण्णि संकमट्टाणाणि लब्धंति २५, २१ । तं चैव संतट्टाणं सत्तारस-बंधसहगदमस्सिऊण २७, २६, २५, २३ एदाणि चत्तारि संकमट्टाणाणि संभवति । तम्मि चैव कम्मंसियट्टाणम्मि तेरस-णवविहबंधट्टाणसहगयम्मि पादेक्कं सत्तावीस-

भी छह ही संक्रमस्थान सम्भव जानने चाहिये ।

§ ३३८. एक प्रकृतिक बन्धस्थानके सद्भावमें पाँच संक्रमस्थान प्राप्त होते हैं । यथा—चौकीस प्रकृतियोंकी सत्ताबाले उपशामक जीवके दो प्रकारकी मायाका उपशाम हो जाने पर मायासंज्वलनके नवक बन्धके साथ पाँच प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है १ । मायासंज्वलनके उपशाम हो जाने पर चार प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है २ । इक्कीस प्रकृतियोंकी सत्ताबाले जीवके दो प्रकारकी मायाका उपशाम हो जाने पर मायासंज्वलनके नवकबन्धके साथ तीन प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है ३ । नवकबन्धका उपशाम कर देने पर दो प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है ४ । तथा क्षपक जीवके लोभसंज्वलनका बन्ध होते हुए मायासंज्वलनका संक्रमरूप एक ही संक्रमस्थान प्राप्त होता है ५ । इस प्रकार बन्धस्थानोंमें संक्रमस्थानोंका कथन किया ।

§ ३३९. इस प्रकार एकसंयोगी भंगोंका कथन करके अब 'बंधेण य संकमट्टाणे' इस सूत्र वचनका अवलम्बन लेकर दो संयोगी स्थानोंका कथन करते हैं । उसमें भी बन्धस्थान और सत्कर्मस्थान इन दोनोंके संयोगको आधारभूत मानकर संक्रमस्थानोंका विचार करते हैं । यथा—अट्टाईस प्रकृतिक सत्कर्मस्थान और बाईस प्रकृतिक बन्धस्थान इन दोनोंके परस्पर संयोगको आधारभूत करके २७, २६ और २३ प्रकृतिक ये तीन संक्रमस्थान होते हैं । पुनः अट्टाईस प्रकृतिक सत्कर्मस्थान और इक्कीस प्रकृतिक बन्धस्थान इन दोनोंके संयोगको आधारभूत करके पच्चीस और इक्कीस प्रकृतिक दो संक्रमस्थान प्राप्त होते हैं २५, २१ । उसी सत्कर्मस्थानको सत्रहप्रकृतिक बन्धस्थानके साथ प्राप्त करके २७, २६, २५ और २३ प्रकृतिक ये चार संक्रमस्थान सम्भव हैं । तेरह और नौ प्रकृतिक बन्धस्थानोंके साथ प्राप्त हुए उसी सत्कर्मस्थानके सद्भावमें प्रत्येकमें

छन्दोम-तेर्वांससृष्टिदाणि तिष्ठिण संक्रमणानि लभन्ति २७, २६, २३ । उवरिम-  
 वंशद्वारेणु गिरुद्रमंतकम्मद्वारेणमभवो णत्थि । एवमेदेण कमेण एककेणतंतकम्मद्वारेण  
 जहामंभवं सन्धवंशद्वारेणु संजोडिय तत्थ संक्रमणानिभियचामंभवो भग्गणिज्जो ।  
 अब्बन्ना वंशद्वारेणं धुवं क्कदृण जहामंभवमंतकम्मद्वारेणु संजोडिय तत्थ मंभवताणं  
 संक्रमणानाणं गवेमगा कापव्वा । तं क्कधं ? अट्टावीमंतकम्मं वार्वाणवंशद्वारेणं च  
 होऊण २७, २६, २३ । एदाणि तिष्ठिण संक्रमणानि भवन्ति । तम्मि चैव वंशद्वारेण  
 मन्वावीमंतकम्ममहाए २६, २५ एदाणि दोणि संक्रमणानि भवन्ति । छन्दोमंतं  
 वार्वाणवंशो च होऊण पन्वीसंतकम्मद्वारेणमेक्कं चैव लभ्भइ २५ । एवं वार्वाणवंश-  
 मट्ठमणु मंतकम्मद्वारेणु संक्रमणपरिचयः कया ।

३४०. संपत्ति इगिर्वीमवंशद्वारेणमट्टावीमंतकम्मं च होऊण पन्वीस-  
 सृष्टिदाणि दोणि संक्रमणानि भवन्ति २५, २१ । इगिर्वीमवंशद्वारेणं १९, २६ णत्थि  
 जण्णो संतकम्मवियणो । अट्टावीमंतं गच्छामवंशो च होऊण २७, २६, २५, २३  
 एदाणि संक्रमणानि भवन्ति । चउवीमंतं मन्वाणवंशो च होऊण २३, २२, २१  
 एदाणि संक्रमणानि भवन्ति । पुणो तम्मि चैव वंशद्वारेणं तेर्वांससृष्टिदाणेण मट्ठ  
 मदे वार्वाण-इगिर्वीमसंक्रमणानि लभन्ति २२, २१ । पुणो तम्मि चैव वंशद्वारेणं

सन्नाम, इच्छीम और वेदम प्रकृतिक तीन संक्रमणान प्राप्त होते हैं २७, २६, २३ । इनके  
 प्राप्ति के वन्धस्थानोंमें विचित्र ०० प्रकृतिक संक्रमणान सम्भव नहीं है । इस प्रकार इन क्रमसे  
 एक एक संक्रमणान प्राप्त गथासंभव मत्र वन्धस्थानोंमें साथ संयोग करके यहाँ पर संक्रमणानोंके  
 परिमाणका विचार कर लेना चाहिये । यथा वन्धस्थानोंमें ध्रुव करके और उगसे गथासंभव  
 संक्रमणानोंका संयोग करके यहाँपर सम्भव संक्रमणानोंका विचार कर लेना चाहिये । यथा—  
 अट्टावीम प्रकृतिक संक्रमणान और वार्वाण प्रकृतिक वन्धस्थान होकर २७, २६ और २३ प्रकृतिक  
 ये तीन संक्रमणान होते हैं । उसी क्रमप्रधानके सन्नाम प्रकृतिक संक्रमणानके साथ प्राप्त होनेपर  
 २५ और २१ प्रकृतिक ये दो संक्रमणान होते हैं । इच्छीम प्रकृतिक संक्रमणान और वार्वाण  
 प्रकृतिक वन्धस्थान होकर एक पन्वीस प्रकृतिक संक्रमणान प्राप्त होता है २५ । इस प्रकार वार्वाण  
 प्रकृतिक वन्धस्थानके साथ प्राप्त हुए संक्रमणानोंमें संक्रमणानोंका क्रम विचार ।

३४०. इच्छीम प्रकृतिक वन्धस्थान और अट्टावीम प्रकृतिक संक्रमणान होकर पन्वीस  
 और इच्छीम प्रकृतिक दो संक्रमणान होते हैं २५, २१ । इच्छीम प्रकृतिक वन्धस्थानके सहायके अन्य  
 संक्रमणानका विचार नहीं होता । अट्टावीम प्रकृतिक संक्रमणान और वार्वाण प्रकृतिक वन्धस्थान  
 होकर २७, २६, २१ और २३ प्रकृतिक ये चार संक्रमणान होते हैं । पन्वीस प्रकृतिक संक्रमणान  
 और मन्वाण प्रकृतिक वन्धस्थान होकर २३, २२ और २१ प्रकृतिक ये तीन संक्रमणान होते हैं । पुनः  
 वेदम प्रकृतिक संक्रमणानके साथ उसी वन्धस्थानके प्राप्त होने पर वार्वाण प्रकृतिक और इच्छीम  
 प्रकृतिक संक्रमणान होते हैं २५, २१ । पुनः वार्वाण प्रकृतिक संक्रमणानके साथ उसी वन्ध-

१. ता.प्रती २४ इति पाठः ।



वावीससंतकम्मेण सह गदे इगिवीससंकमट्टाणमेक्कं चैव होइ, तत्थ पयारंतरासंभवादो । पुणो इगिवीससंतं सत्तारसबंधो च होऊण इगिवीससंकमट्टाणमेक्कं चैव लब्भइ, णत्थि अण्णो वियप्पो । एवमुवरिमबंधट्टाणेषु वि जहासंभवं संतकम्मट्टाणविसिसेदेषु पादेक्कं संकमट्टाणसंभवो गवेसणिज्जो ।

§ ३४१. संपहि अण्णो दुसंजोगपयारो उच्चदे । तं जहा—'बंधेण य संकमट्टाणे' बंधट्टाणेहि सह संकमट्टाणाणि समाणय ? कम्मिहि त्ति पुच्छिदे कम्मंसियट्टाणेषु त्ति अहिसंबंधो कायव्वो । संतकम्मियट्टाणाणि आहारभूदाणि ठयिय तेषु बंध-संकमट्टाणाणं दुसंजोगो णेदव्वो त्ति उच्चं होइ । एदं च देसामासयं तेण बंधट्टाणेषु संत-संकमट्टाणाणं दुसंजोगो समाणयेव्वो, संकमट्टाणेषु च बंध-संतट्टाणाणं दुसंजोगो सम्ममाणुपुव्वीए णेदव्वो त्ति ।

§ ३४२. एत्थ तव संतकम्मट्टाणेषु बंध-संकमट्टाणाणं दुसंजोगस्स समाणा विही उच्चदे । तं जहा—अट्टावीससंतकम्ममाहारं काऊण २२, २१, १७, १३, ९ बंधट्टाणाणि २७, २६, २५, २३, २१ एदाणि च संकमट्टाणाणि लब्भंति । सत्तावीस-संतकम्मे णिरुद्धे २२ बंधो २६, २५ संक्रमो च लब्भइ । छव्वीससंतकम्ममि वावीस-बंधो पणुव्वीससंकमो च लब्भइ । एवमुवरिमसंतकम्मट्टाणेषु वि जहासंभवं बंध-संकम-ट्टाणाणं दुसंजोगो अणुगंतव्वो ।

स्थानके प्राप्त होने पर इक्कीस प्रकृतिक एक ही संक्रमस्थान होता है, क्योंकि यहाँ पर और कोई दूसरा प्रकार सम्भव नहीं है। पुन. इक्कीस प्रकृतिक सत्कर्मस्थान और सत्रह प्रकृतिक बन्धस्थान होकर इक्कीस प्रकृतिक एक ही संक्रमस्थान प्राप्त होता है, क्योंकि यहाँ अन्य त्रिकल्प सम्भव नहीं है। इसी प्रकार यथासम्भव सत्कर्मस्थानोंसे युक्त आगेके बन्धस्थानोंमें भी अलग अलग संक्रम-स्थानोंका विचार कर लेना चाहिये।

§ ३४१ अब अन्य प्रकारसे दो संयोगी प्रकारका कथन करते हैं। यथा—'बंधेण य संकमट्टाणे' बन्धस्थानोंके साथ संक्रमस्थानोंको ले आना चाहिये। कहाँ ले आना चाहिए ? सत्कर्मस्थानोंमें ऐसा यहाँ सम्बन्ध कर लेना चाहिये। अर्थात् सत्कर्मस्थानोंको आधार रूपसे स्थापित कर उनसे बन्धस्थानों और संक्रमस्थानोंके दो संयोगको घटित कर लेना चाहिये यह उक्त कथनका तात्पर्य है। यतः यह बचन देशामर्षक है अतः बन्धस्थानोंमें सत्कर्मस्थानो और संक्रमस्थानोंका दो संयोग घटित कर लेना चाहिये। तथा संक्रमस्थानोंमें बन्धस्थानों और सत्कर्मस्थानोंका दो संयोग भले प्रकार आनुपूर्वीक्रमसे घटित कर लेना चाहिये।

§ ३४२. यहाँ सर्व प्रथम सत्कर्मस्थानोंमें बन्धस्थानों और संक्रमस्थानोंके दो संयोगको घटित कर लेनेकी विधि कहते हैं। यथा—अट्टाईस प्रकृतिक सत्कर्मस्थानको आधार करके २२, २१, १७, १३ और ९ प्रकृतिक ये पाँच बन्धस्थान और २७, २६, २५, २३ और २१ प्रकृतिक ये पाँच संक्रमस्थान प्राप्त होते हैं। सत्ताईस प्रकृतिक सत्कर्मस्थानके रहते हुए २२ प्रकृतिक बन्धस्थान तथा २६ और २५ प्रकृतिक संक्रमस्थान प्राप्त होते हैं। छव्वीस प्रकृतिक सत्कर्मस्थानके रहते हुए व्वाईस प्रकृतिक बन्धस्थान और पच्चीस प्रकृतिक संक्रमस्थान प्राप्त होता है। इसी प्रकार आगेके सत्कर्मस्थानोंमें भी यथासम्भव बन्धस्थानों और संक्रमस्थानोंके दो संयोगको जान लेना चाहिये।

६ ३४३. संपहि बंधद्वारेणु सेमदुगसंजोगो णिज्जेदे । तं जहा—२२ बंधो होऊण २८, २७, २६ संतकम्मद्वारेणु २७, २६, २५, २३ संकमद्वारेणु च ल्ळंमंति । इगिबोसबंधद्वारेणुमि २८ संतकम्मं २५, २१ संकमद्वारेणु च भवंति । सत्तारसबंधद्वारेणुमि २८, २४, २३, २२, २१ संतकम्मद्वारेणु २७, २६, २५, २३, २२, २१ संकमद्वारेणु च भवंति । एवमुव्वरिमबंधद्वारेणु वि एक्केणिरुंभं काळण तत्थ सेमदुगसंजोगो जहामंभवमणुमग्गणिज्जो जाव एक्किस्से बंधद्वारेणुमिदि ।

६ ३४४. संपहि संकमद्वारेणु बंध-संतद्वारेणुं दुमंजोगस्साणयणकमो उच्चदे । तं जहा—मत्तावीमसंक्रमे णिरुद्धे अट्टावीसमंतं २२, १७, १३, ९ बंधद्वारेणु च भवंति । छ्वीससंकमद्वारेणुमि २८, २७ संतकम्मद्वारेणु २२, १७, १३, ९ बंधद्वारेणु च भवंति । पणुवीससंकमद्वारेणुमि २८, २७, २६ संतकम्मद्वारेणु २२, २१, १७ बंधद्वारेणु च भवंति । २३ संकमद्वारेणु २८, २४ संतद्वारेणु २२, १७, १३, ९, ५ बंधद्वारेणु च भवंति । एवमुव्वरिमसंकमद्वारेणुं पि पादेक्कं णिरुंभं काळण तत्थ संतकम्मद्वारेणुं बंधद्वारेणुं च दुमंजोगविमिद्वारेणुं णेद्वारेणुं जाव एगसंकमद्वारेणुं चि । एवं णीदे दुमंजोगपरूपणा समत्ता होइ । एमो च सच्चो अट्टीदगात्तागुत्तपबंधो संकम-पडिग्गह-तदुभयद्वारेणुममुक्कित्तणाए सामित्तगन्धिणीए पडिक्कद्वो,

६ ३४३. एव बन्धस्थानेति शेष दो संयोगी स्थानोक्ता विचार करते हैं । यथा वार्द्धिम प्रकृतिक बन्धस्थान दो ३२, २७ और २६ प्रकृतिक तीन सत्कर्मस्थान और २७, २६, २५ और २३ प्रकृतिक चार संकमस्थान प्राप्त होते हैं । इतनीम प्रकृतिक बन्धस्थानमें २२ प्रकृतिक सत्कर्मस्थान तथा २५ और २१ प्रकृतिक संकमस्थान होते हैं । सत्रद प्रकृतिक बन्धस्थानमें २२, २४, २३, २२ और २१ प्रकृतिक सत्कर्मस्थान और २७, २६, २५, २३, २२ और २१ प्रकृतिक संकमस्थान होते हैं । इसी प्रकार एक प्रकृतिक बन्धस्थानके प्राप्त होनेतक आगेके बन्धस्थानोंमेंसे भी एक एकको विदक्षित करके उसमें यथासम्भव शेष दो संयोगी स्थानोंका विचार कर लेना चाहिये ।

६ ३४४. अब संकमस्थानोंमें बन्धस्थानों और सत्कर्मस्थानोंके दो संयोगके लानेका क्रम कहते हैं । यथा—सत्तार्द्धिम प्रकृतिक संकमस्थानके सत्कार्यमें २२ प्रकृतिक सत्कर्मस्थान और २२, १७, १३ और ९ प्रकृतिक बन्धस्थान होते हैं । छद्गीम प्रकृतिक संकमस्थानमें २२ और २७ प्रकृतिक सत्कर्मस्थान और २२, १७, १३ और ९ प्रकृतिक बन्धस्थान होते हैं । पन्चीस प्रकृतिक संकमस्थानमें २२, २७ और २६ प्रकृतिक सत्कर्मस्थान तथा २२, २१ और १७ प्रकृतिक बन्धस्थान होते हैं । २३ प्रकृतिक संकमस्थानमें २२ और २४ प्रकृतिक सत्कर्मस्थान तथा २२, १७, १३, ९ और ५ प्रकृतिक बन्धस्थान होते हैं । उस प्रकार एक प्रकृतिक संकमस्थानके प्राप्त होने तक आगेके सब संकमस्थानोंमेंसे भी प्रत्येकको विदक्षित करके उसमें सत्कर्मस्थानों और बन्धस्थानोंके दो संयोगी स्थानोंका विचार कर लेना चाहिये । इस प्रकार विचार करनेपर दो संयोगी रूपरेखा समाप्त होती हैं । ३० यह सब अतीत गाथासुत्रोंका कथन स्वामित्वको सूचित करनेवाले संकमस्थानों,

१. ता०प्रती एवमुव्वरि संकमद्वारेणुं इति पाठः ।
२. आ०प्रती संकमद्वारेणु इति पाठः ।
३. ता०प्रती -गन्धणीए ? आ०प्रती -गन्धणाए इति पाठः ।

आधादेसेहि तपरूवणाए चैव गिवद्वाणमदीदसव्वगाहाणमुवलंभादो ।

§ ३४५. संपहि जत्थतत्थाणुपुञ्चीए सेसाणमणियोगद्वाराणं णामणिदेसकरणहु-  
सुवरिमगाहासुत्तारं दोण्हमवयारो—‘सादिय जहण्ण संकमं’ एत्थ सादि-जहण्ण-  
ग्गहणेण सादि-अणादि-धुव-अद्धुव-सव्व-णोसव्व-उक्कसाणुक्कस्स-जहण्णाजहण्णसंकम-  
सण्णिदाणमणियोगद्वाराणं संगहो कायव्वो, देसामासयभावेणेदस्सवद्वाणादो । संकमग्गहण-  
भेदेसिमणियोगद्वाराणं पयडिट्ठाणसंकमविसयत्तं स्र्चेदि । ‘कदिखुत्तो’ एवं उत्ते  
एक्केक्कमि संकमद्वाणम्मि कदिगृणो जीवरासी होइ ति पुच्छिदं हवइ । एदेणप्पा-  
वहुआणिओगद्वारं स्र्चिदं । ‘अविरहिद’ग्गहणेण एयजीवेण कालो, ‘सांतर’ग्गहणेण वि  
एयजीवेणंतरं स्र्चिदं, ‘केवचिरं’ गहणेण दोण्हं पि त्रिसेसणादो । ‘कदिभाग परिमाणं’  
इच्चेदेण भागाभागस्स संगहो कायव्वो, सव्वजीवरासिस्स कइत्थओ भागो केरिं  
संकमद्वाणाणं संकामयजीवरासिपमाणं होइ ति पुच्छाए अवलंबणादो ॥३१॥

§ ३४६. ‘एवं दव्वे खेत्ते’ अत्र ‘एवं’ इत्यनेन नानाजीवसंबंधिनो भंगविचयस्य

प्रतिग्रहस्थानों और तदुभयस्थानोंके कथनसे सम्बन्ध रखता है, क्योंकि ओष और आदेशसे इसके कथन करनेसे ही अतीत सब गाथाओंका व्यापार देखा जाता है ।

§ ३४७. अत्र यत्रतत्रानुपूर्वीके क्रमसे शेष अनुयोगद्वारोंके नामका निर्देश करनेके लिये ही आगेके दो गाथासूत्र आये हैं—‘सादिय जहण्ण संकमं’ इसमें जो ‘सादि जहण्ण’ पदका ग्रहण किया है सो इससे सादि, अनादि, धुव, अधुव, सर्व, नोसर्व, उत्कृष्ट, अनुत्कृष्ट, जघन्य और अजघन्यसंकम संज्ञावाले अनुयोगद्वारोंका संग्रह करना चाहिये, क्योंकि देशामर्षकभावसे यह पद अवस्थित है । ‘संकम’ पद, ये अनुयोगद्वार प्रकृति संक्रमस्थानसे सम्बन्ध रखते हैं, यह सूचित करता है । ‘कदिखुत्तो’ ऐसा कहनेपर एक एक संक्रमस्थानमें कितनीगुणी जीवराशि होती है यह पृच्छा की गई है । इससे अल्पबहुत्व अनुयोगद्वार सूचित होता है । ‘अविरहिद’ पदके ग्रहण करनेसे एक जीवकी अपेक्षा काल और ‘सांतर’ पदके ग्रहण करनेसे भी एक जीवकी अपेक्षा अन्तर ये अनुयोगद्वार सूचित होते हैं, क्योंकि ‘केवचिरं’ पदके ग्रहण करनेसे यह ‘अविरहिद’ और ‘सांतर’ इन दोनोंका विशेषण है यह सिद्ध होता है । तथा ‘कदिभाग परिमाणं’ इसद्वारा भागाभागका संग्रह करना चाहिये, क्योंकि इस पदमें किन संक्रमस्थानोंके संक्रान्त जीवराशिका प्रमाण सब जीवराशिका कितना भाग है इस पृच्छाका अवलम्बन लिया गया है ।

विशेषार्थ—आशय यह है कि इस ३१ वीं गाथामें संक्रमप्रकृतित्थानसे सम्बन्ध रखनेवाले सादि संकम, अनादि संकम, धुव संकम अधुव संकम, सर्वसंकम, नोसर्वसंकम, उत्कृष्टसंकम, अनुत्कृष्टसंकम, जघन्यसंकम, अजघन्यसंकम, अल्पबहुत्व, एक जीवकी अपेक्षा काल, एक जीवकी अपेक्षा अन्तर और भागाभाग इन अनुयोगद्वारोंकी सूचना की गई है । अर्थात् इतने अनुयोगद्वारोंके द्वारा प्रकृतिसंकमस्थानका वर्णन करना चाहिये यह इसका अभिप्राय है ।

§ ३४६. ‘एवं दव्वे खेत्ते’ इस गाथामें आये हुए ‘एवं’ इस पद द्वारा नाना जीवोंसम्बन्धी

संग्रहः । 'द्वे' इच्छेदेण सुत्तावयवेण दन्वपमाणाणुगामो । 'खेत्त'ग्गहणेण खेत्ताणुगामो च, पोसणाणुगामो च 'काल'ग्गहणेण वि कालंतराणं पाणाजीवविसयाणं संगहो कायव्वो । 'भाव'ग्गहणं भावाणिओगहारम्म संगहणफलं । एत्थाहियरणणिहेसो तच्चिसयपरूवणाए तदाहार-भावपदुप्पायणफलोत्ति दद्वच्चो । 'मण्णिवाद्' ग्गहणं च सण्णियासाणियोगहारस्स सूचना-मेत्तफलं । 'च' सद्दो वि भुजगार-पदणिकवेव-वट्ठीणं सपभेदाणं मंगाहओ, तेहि विणा पयदपरूवणाए अमंपुप्पभावावत्तीदो । एवमेदेहि अणेयणयग्गहणणिलीणाणिओगदारेहि 'मंक्रमणयं' पयटिमंक्रमगाइमानुणांमहिप्पायं णयविदु णयण्हं 'णेया' णयदु 'सुददेसिदं' मूलसुत्तसंदंभमंसंदिग्गिदपरूवणोवायं 'उदारं' अत्थमंभीरं सुचाहिप्पायं णयदु । त्ति उच्चं होइ । अद्दवा 'मंक्रमणयं' मंक्रमनीतकविधानं णयविदु नयजं 'णेया' नयेत्प्रकाशये-दित्थयं । एवं णीदं मंक्रमविनिगाहाणमन्थो परिगमत्तो होइ ।

१३४७. एत्ता गाहासुत्तचिदाणमणियोगदाराणं विहासणदुमुच्चारणाए सह चुण्णिमुत्ताणुगमं क्रम्मामो । तं जहा—द्वाणममुक्तिनाए दृविहो णिहेसो—ओघादेस-भेदेण । तन्थोघेण अन्थि २७, २६, २५, २३, २२, २१, २०, १९, १८, १४, १३, १२, ११, १०, ९, ८, ७, ६, ५, ४, ३, २, १ एदेसि संकामणा । एवं

संग्रहिकया संस्रह विना गया है । 'द्वे' इस सूत्रवचनद्वारा द्वयप्रमाणाणुगमका 'खेत्त' पदके प्रहण करनेसे चेतानुगम और स्पर्शानुगमका तथा 'वाल' पदके प्रहण करनेसे भी नाना जीव सम्बन्धी फल और अन्तर अनुयोगद्वारोंका संग्रह करना चाहिये । सूत्रमें 'भाव' पदका प्रहण भाव अनुयोगद्वारके संग्रह करनेके लिये किया है । इस गाथामें जो उक्त सब पदोंका निर्देश अधिकरण-रूपसे किया है सो उभय उभय विषयका कथन करने समय यह अनुयोगद्वार आधार हो जाता है यह दिग्बलानेके लिये किया है ऐसा यहाँ जानना चाहिये । 'सण्णियाद्' पदका प्रहण सन्निकर्ष अनुयोगद्वारको सूचित करनेके लिये किया है । सूत्रमें 'च' शब्द भी अपने भेदोत्तरहित भुजगार, पदनिचेष और बुद्धि इन तीनोंका संग्रह करनेके लिये आया है, क्योंकि इनके बिना प्रकृत प्ररूपणके अधूरी रहनेकी आशंका आती है । इस प्रकार अनेक गहन नयोंके विषयभूत इन अनुयोगद्वारोंके द्वारा 'मंक्रमणयं' अर्थात् प्रकृतिसंक्रमविषयक गाथा सूत्रोंके अभिप्रायको 'णयविदु' अर्थात् नयके जानकार 'णेया' अर्थात् जान । तात्पर्य यह है कि 'सुददेसिदं' अर्थात् मूल सूत्रके सन्दर्भमें दिव्यज्ञाने गये प्ररूपणोंके उवाचको, जो उदार अर्थात् अर्थगम्भीर है ऐसे सूत्रके अभिप्रायको जानें यह उक्त कथन का तात्पर्य है । अथवा 'संक्रमणयं' अर्थात् संक्रमसे प्राप्त हुए विधानको 'णयविदु' अर्थात् नयके जानकार पुरुष 'णेया' अर्थात् प्रकाशित करें यह उक्त कथनका तात्पर्य है । इस प्रकार ले जाने पर संक्रमविषयक घृतिगाथाओंका अर्थ समाप्त होता है ।

१३४७. अब इससे आगे गाथामूत्रोंके द्वारा सूचित होनेवाले अनुयोगद्वारोंका व्याख्यान करनेके लिये उच्चारणके माथ चूर्णिसूत्रोंका परिशीलन करते हैं । यथा—स्थान समुत्कीर्तनाकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश । उनमेंसे ओघकी अपेक्षा २७, २६, २५, २३, २२, २१, २०, १८, १८, १४, १३, १२, ११, १०, ९, ८, ७, ६, ५, ४, ३, २ और १ इन स्थानोंके

१. ता०प्रती पयदिगाहासकमनुत्ताए— इति पाठ । २. आ०प्रती णयविदो णयण्हो इति पाठ । ३. ता०प्रती णयविदु नयशा, आ०प्रती णयविदो नयजा इति पाठ ।

मणुससति । णवरि मणुसिणीसु चोदससंकमो णत्थि । अहवा ओयरमाणमस्सिऊण अत्थि ।

§ ३४८. आदेसेण णेरइएसु अत्थि २७, २६, २५, २३, २१ संकामया । एवं सव्वणेरया तिरिक्ख-पंचिदियतिरिक्खतिय-देवा जाव णवगेवज्जा त्ति ।

§ ३४९. पंचि०तिरिक्खअपज्ज०-मणुसअपज्ज० अत्थि २७, २६, २५ संकामया । अणुदिसादि जाव सव्वट्ठे त्ति अत्थि २७, २३, २१ संकामया । एवं जाव अणाहारि त्ति ।

§ ३५०. सव्व-णोसव्व-उक्कस्साणुक्कस्स-जहणणाजहणसंकमाणमेत्थ णत्थि संभवो,

संक्रामक जीव हैं । इसी प्रकार तीन प्रकारके मनुष्योंमें जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि मनुष्यनियोंमें चौदह प्रकृतिक संक्रमस्थान नहीं होता है । अथवा उतरनेवाले मनुष्यनी जीवोंके होता है ।

**विशेषार्थ**—ओचसे तो उक्त सभी स्थानोंके संक्रामक जीव हैं । मनुष्यगतिमें सामान्य मनुष्य और मनुष्य पर्याप्त इनके उक्त सब संक्रमस्थान सम्भव हैं । केवल मनुष्यनियोंके उपशम-श्रेणि पर चढ़ते समय १४ प्रकृतिक संक्रमस्थान नहीं होता, क्योंकि जो २४ प्रकृतियोंकी सत्तावाला जीव उपशम श्रेणि पर चढ़ता है उसीके ६ नोकवायोंका उपशम होने पर १४ प्रकृतिक संक्रमस्थान पाया जाता है । किन्तु खोवेदके उदयके साथ उपशमश्रेणि पर चढ़े हुए ऐसे जीवके छह नोकवाय और पुरुषवेदका एक साथ उपशम होता है इसलिये इसके १४ प्रकृतिक संक्रमस्थान नहीं पाया जाता । हाँ उपशमश्रेणिसे उतरते समय जब १४ प्रकृतियोंका संक्रम होने लगता है तब मनुष्यनीके १४ प्रकृतिक संक्रमस्थान अवश्य प्राप्त हो जाता है । इसीसे यहाँ मनुष्यनीके उपशमश्रेणि पर चढ़ते समय १४ प्रकृतिक संक्रमस्थानका निषेध किया है ।

§ ३४८. आदेशसे नारकियोंमें २७, २६, २५, २३ और २१ प्रकृतिक संक्रमस्थानोंके संक्रामक जीव हैं । इसी प्रकार सब नारकी, तिर्यञ्च, पंचेन्द्रियतिर्यञ्चत्रिक और सामान्य देवोंसे लेकर नौ प्रवेयक तकके देव इनके कथन करना चाहिये ।

**विशेषार्थ**—इन मार्गणाओंमें ये ही संक्रमस्थान होते हैं, अतः यहाँ इनके संक्रामक जीव बतलाये हैं । किन्तु इननी विशेषता है कि द्वितीयादि नरकोंमें, तिर्यञ्चिनियोंमें और भवनत्रिकोंमें व सौधर्म ऐशान कल्पकी देवियोंमें २१ प्रकृतिक संक्रमस्थान क्षणकी अपेक्षा घटित न करके अनन्तानुबन्धीके विसंयोजक जीवोंकी अपेक्षा सासादन गुणस्थानमें एक आवालिकाल तक जानना चाहिये, क्योंकि इन मार्गणाओंमें चायिक सम्यग्दर्शनकी प्राप्ति सम्भव नहीं है । इसलिये यहाँ दर्शनमोहनीयकी क्षणकी अपेक्षा २१ प्रकृतिक संक्रमस्थान नहीं प्राप्त होता यह सिद्ध होता है ।

§ ३४९. पंचेन्द्रियतिर्यञ्च अपर्याप्त और मनुष्य अपर्याप्तमें २७, २६ और २५ प्रकृतिक स्थानोंके संक्रामक जीव हैं । अनुदिशसे लेकर सर्वाथिसिद्धि तकके देवोंमें २७, २३, और २१ प्रकृतिक स्थानोंके संक्रामक जीव हैं । इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिये ।

**विशेषार्थ**—अनुदिशादिकमें २८ प्रकृतियोंकी सत्तावालेके २७ प्रकृतिक, २४ प्रकृतियोंकी सत्तावालेके २३ प्रकृतिक और २१ प्रकृतियोंकी सत्तावालेके २१ प्रकृतिक संक्रमस्थान होते हैं । रोष कथन सुगम है ।

§ ३५०. यहाँ प्रकृतिसंक्रमस्थानमें, सर्वसंक्रम, नोसर्वसंक्रम, उक्कट संक्रम, अनुक्कट संक्रम,

गिरुद्वेयसंकमट्टाणम्मि उकस्साणुकस्सादिपदभेदाणमसंभवादो ।

§ ३५१. सादि-अणादि-ध्रुव-अद्धुवाणुगमेण दुविहो गिहेसो—ओघेण आदेसेण य । ओघेण पणु० संकाम० किं सादि० ४ ? सादि० अणादि० ध्रुवा अद्धुवा वा । सेसट्टाणसंकामया सव्वे सादि-अद्धुवा । आदेसेण णेरइय० सव्वसंकमट्टाणार्ण संकामया सादि-अद्धुवा । एवं जाव अणाहारि त्ति ।

☞ एत्तो पदाणुमाणियं सामित्तं णेयञ्चं ।

§ ३५२. एदस्स सामित्तपरूवणावीजपदभूदसुत्तस्स अत्थविवरणं कस्सामो ।

जघन्य संकम और अजघन्य संकम ये अनुयोगद्वारा सम्भव नहीं हैं, क्योंकि विवक्षित एक संकम-स्थानमें उत्कृष्ट, अनुत्कृष्ट इत्यादि भेद सम्भव नहीं हैं ।

विशेषार्थ—नात्यर्थ यह है कि जिस संकमस्थानमें जितनी प्रकृतियाँ परिगणित की गई हैं उसमें उतनी ही प्रकृतियाँ होती हैं, इसलिये प्रकृतिसंकमस्थानोंमें इन भेदोंका निषेध किया है ।

§ ३५१. सादि, अनादि, ध्रुव और अद्रुवानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ-निर्देश और आदेशनिर्देश । ओघसे पचीस प्रकृतिक स्थानके संकामक जीव क्या सादि होते हैं, क्या अनादि होते हैं, क्या ध्रुव होते हैं या क्या अध्रुव होते हैं ? सादि, अनादि, ध्रुव और अध्रुव चारों प्रकारके होते हैं । शेष स्थानोंके संकामक सब जीव सादि और अध्रुव होते हैं । आदेशसे नारकियोंमें सब संकमस्थानोंके संकामक जीव सादि और अध्रुव होते हैं । इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिये ।

विशेषार्थ—चात यह है कि पचीस प्रकृतिक संकमस्थान अनादि व सादि दोनों प्रकारके मिथ्यादृष्टियोंके व भव्य, और अभव्य इन दोनोंके सम्भव हैं, अतः यहाँ सादि आदि चारों विकल्प वन जाते हैं । किन्तु शेष स्थानोंकी यह चात नहीं है, क्योंकि वे सब स्थान मादाचित्क हैं, अतः उनमें सादि और अध्रुव के ही दो विकल्प पटित होते हैं । इसी प्रकार सब मार्गणाओंमें उक्त प्रकारसे सादि आदि प्ररूपणा लगा लेना चाहिये । इनका सरलतासे ज्ञान होनेके लिये कोष्ठक दे रहे हैं—

मार्गणा	२५ प्र०	शेष स्थान
मिथ्या०	सादि आदि ४	सादि व अध्रुव
अद्रुव०	"	"
भव्य	ध्रुवके विना ३	"
अभव्य०	अनादि व ध्रुव	×
शेष	सादि व अध्रुव	जहाँ जो सम्भव है वे सादि व अध्रुव

\* अब आगे आनुपूर्वी आदि अर्थपदोंके द्वारा अनुमान किये गये स्वामित्वको जानना चाहिए ।

§ ३५२. अत्र स्वामित्व प्ररूपणाके वीजभूत इस सूत्रका व्याख्यान करते हैं । यथा—इससे

तं कथं ? एत्तो उवरि सामिचमवसरपत्तं णेदव्वं । कथं णेदव्वं इदि पुच्छिदे पदाणुमाणिंयं पुव्वुत्ताणि अत्थपदाणि आणुपुव्वीसंकमादीणि णिव्वंघणं कादूण णेदव्वमिदि उत्तं होइ । संपहि एदेण समप्पिदत्थविचरइमुच्चारणं वचइस्सामो । तं जहा—सामित्ताणुगमेण दुविहो णिहेसो—ओघेणादेसेण । ओघेण २७, २६, २३ संकमो कस्स ? अण्णदरस्स सम्माइड्डिस्स वा मिच्छाइड्डिस्स वा । २५ संकमो कस्स ? मिच्छा० सासण० सम्मामि० वा । २१ संकमो कस्स ? सासण० सम्मामिच्छाइड्डिस्स सम्मादिड्डिस्स वा । चावीस-चीसप्पहुडि जाव एकस्से संकमो कस्स ? अण्णदरस्स सम्माइड्डिस्स । एवं मणुसतिण्ण । णवरि मणुसिणीसु १४ संकमसामित्तं णत्थि । अहवा ओयरमाणमस्सियूण चउवीस-संतकम्मियोवसामयस्स सामित्तं वत्तव्वं ।

§ ३५३. आदेसेण णेरइय० २७, २६, २३ कस्स ? अण्णद० सम्माइड्डि० मिच्छाइड्डि० । २५, २१ कस्स ? ओघं । एवं पढमपुढवि-तिरिक्ख-पंचिदियतिरिक्ख २-देवगदिदेवा सोहम्मादि जाव णवणेवज्जा त्ति । एवं विदियादि जाव सत्तमि त्ति । णवरि इगिवीससंकमो सम्माइड्डिस्स णत्थि । एवं जोणिणी-भरण०-त्राण-जोदिसिया त्ति । पंचिदियतिरिक्खअपज्ज०-मणुसअपज्ज०-अणुदिसादि सव्वडा त्ति अप्पय्पणो

आगे स्वामित्व अक्षर प्राप्त है, इसलिए उसे जानना चाहिये । कैसे जानना चाहिए ऐसा पूछनेपर पदानुमानित अर्थात् आनुपूर्वी, संक्रम आदि अर्थपदोंको निमित्त करके जानना चाहिए यह एक कथनका तात्पर्य है । अब इससे प्राप्त हुए अर्थका विवरण करनेके लिए उच्चारणाको बतलाते हैं । यथा—स्वामित्वानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश । ओघसे २७, २६ और २३ प्रकृतिक संक्रमस्थान किसके होते हैं ? अन्यतर सम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टिके होते हैं । २५ प्रकृतिक संक्रमस्थान किसके होता है ? मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टिके होता है । २१ प्रकृतिक संक्रमस्थान किसके होता है ? सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि और सम्यग्दृष्टिके होता है । २२ और २० प्रकृतिक संक्रमस्थानोंसे लेकर एक प्रकृतिक संक्रमस्थान तकके सब संक्रमस्थान किसके होते हैं ? अन्यतर सम्यग्दृष्टिके होते हैं । इसी प्रकार मनुष्यत्रिकर्म जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि मनुष्यनियोंमें १४ प्रकृतिक संक्रमस्थानका स्वामित्व नहीं है । अथवा उपशमश्रेणीसे उतरनेवाले जीवकी अपेक्षा चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले उपशमक स्त्रीवेदीके १४ प्रकृतिक संक्रमस्थानका स्वामित्व कहना चाहिए ।

§ ३५३. आदेशसे नारकियोंमें २७, २६ और २३ प्रकृतिक संक्रमस्थान किसके होते हैं ? अन्यतर सम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टिके होते हैं । २५ और २१ प्रकृतिक संक्रमस्थान किसके होते हैं ? इनका स्वामित्व ओघके समान है । इसी प्रकार प्रथम पृथिवीके नारकी, तिर्यच, पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च, पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च पर्याप्त, देवगतिमें सामान्य देव और सौधर्म कल्पसे लेकर नौ भ्रैवेयक तकके देवोंमें जानना चाहिए । इसी प्रकार दूसरे नरकसे लेकर सातवें नरक तकके नारकियोंमें जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि इन नारकियोंमें सम्यग्दृष्टिके इक्कीस प्रकृतिक संक्रमस्थान नहीं होता । इसी प्रकार पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च योनिनी, भवनवासी, व्यन्तर और ज्योतिषी देवोंमें जानना चाहिये । पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्त, मनुष्य अपर्याप्त और अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें अपने अपने तीन संक्रमस्थान किसके होते हैं ? अन्यतरके होते हैं । इसी प्रकार

तिणिण दृणाणि कस्स ? अण्णदरम्म । एवं जाव ।

§ ३५४. एवं सामितं समाणिय संपहि कालाणियोगहारपरुवणट्टमुत्तग्मुत्ताव-  
यायो कीग्दे—

⊗ एयजीवेण कालो ।

§ ३५५. मामितपरुवणाणंतग्मेयजीवविसओ कालो परुवेयव्वो चि पइआगुत्तमेदं ।

⊗ सत्तवीसाण संकामथो केवचिरं कालादो होइ ?

§ ३५६. पुच्छागुत्तमेदं सुग्गं ।

⊗ जहणणेण अतोमुहुत्तं ।

§ ३५७. एगो जहणकालो मिच्छाइद्विस्स पणुवीससंकामयम्म उवसमम्मत्तं  
घेनुण विदियसमयपणुट्टि सत्तावीससंकामयभावेण जहणमंतोमुहुत्तमेत्तकालमच्छिय  
पुणो उवममम्मत्तकालभंनरे चैय अणंताणुवंधी विग्गोइय नेवीससंकामयत्तेण  
परिणयम्म समुवल्लभदे । अथवा सम्ममिच्छाइद्विस्स सम्मत्तं मिच्छत्तं वा गंतूण तत्थ  
सव्वजहणमंतोमुहुत्तमच्छिय पुणो परिणामपच्चएण गम्माभिच्छत्तमुवगयन्म एगो  
कालो गहियव्वो । यपहि तद्वक्कम्मकालपरुवणट्टमुत्तग्मुत्तं भणइ—

⊗ उक्कस्सेण वेद्धावट्टिसागरोवमाणि सादिरैयाणि तिपल्लिदोवमस्सं

अनाहारक माग्गं ताक जानना चादिये ।

§ ३५४. इस प्रकार ध्यामिन्वकी समाप्त करके अथ फालानुयोगद्वाराका कथन करनेके लिए  
आगेके सूत्रोंका अतार करते हैं—

\* एक जीवकी अपेक्षा कालका अधिकार है ।

§ ३५५. म्यामित्यविययक प्ररूपणाके बाद एक जीवविययक कालका कथन करना चादिये  
इस प्रकार यह प्रतिष्ठान्त्र है ।

\* सत्ताईस प्रकृतिक संक्रामकका कितना काल है ?

§ ३५६. यह पृच्छामूत्र सुग्गं है ।

\* जघन्य काल अन्तर्मुहुत्तं है ।

§ ३५७. जो पच्चीस प्रकृतियोंका संक्रम करनेवाला मिथ्यादृष्टि जीव उपशमसम्यक्करणको  
प्राप्त करके दूसरे समयमें लेकर सत्ताईस प्रकृतियोंका संक्रम करता हुआ जघन्य अन्तर्मुहुत्तं कालतक  
वहाँ रहकर पुनः उपशमसम्यक्करणके कालके भीतर ही अनन्तानुबन्धीकी चिन्तयोजना करके तैरिम  
प्रकृतिक संक्रमस्थानको प्राप्त होजाता है उसके सत्ताईस प्रकृतिक संक्रमस्थानका यह जघन्य काल  
प्राप्त होता है । अथवा जो सम्यगिमिथ्यादृष्टि जीव सम्यक्करण या मिथ्यात्तको प्राप्त होकर और वहाँ  
सबसे जघन्य अन्तर्मुहुत्तं कालतक रहकर फिर परिणामवशात् सम्यगिमिथ्यात्त्व गुणस्थानको प्राप्त होता  
है उसके यह जघन्य काल ग्रहण करना चादिये । अब इस संक्रमस्थानके उत्कृष्ट कालका कथन करनेके  
लिए आगेका सूत्र कहते हैं—

\* उत्कृष्ट काल पण्यके असंख्यातवें भागसे अधिक दो छथासठ सागर-

१. आ०—बो०प्रत्योः पल्लिदोवमस, ता०प्रती [ ति ] पल्लिदोवमस इति पाठः ।



असंखेज्जदिभागेण ।

§ ३५८. तं जहा—एगो अणादियमिच्छाइट्ठी उवसमसम्मत्तं पडिवज्जिय सत्तावीससंक्रामओ होऊण मिच्छत्तं गदो पल्लिदोवमासंखेज्जभागमेत्तकालमुव्वेल्लणावावारेणच्छिय अविणट्टसंकमपाओग्गसम्मत्तसंतकम्मेण सम्मत्तं पडिवण्णो पढमछावट्ठिं परिभमिय तदवसाणे मिच्छत्तं गंतूण पुव्वं व पल्लिदोवमासंखेज्जभागमेत्तकालसम्मत्तुव्वेल्लणावावदो तदुव्वेल्लणचरिमफालीए सह सम्मत्तमुव्वगओ । विदियछावट्ठिं परिभमणं काऊण तप्पज्जवसाणे मिच्छत्तं गओ । पुणो वि दीहुव्वेल्लणकालेण सम्मत्तमुव्वेल्लिय छव्वीससंक्रामओ जादो । एवं तीहि पल्लिदोवमासंखेज्जदिभागेहि सादियेयवेछावट्ठि-सागरोवममेत्तो सत्तावीससंकमुक्कस्सकालो लद्धो । संपहि छव्वीससंक्रामयजहणुक्कस्सकाल-परूवणट्टमुत्तरसुत्तमोइणं—

❀ छव्वीससंक्रामओ केवचिरं कालादो होइ ?

§ ३५९. सुगमं ।

❀ जणणेण एगसम्मओ ।

· ३६०. तं जहा—णिसंतकम्मियमिच्छाइट्ठिस्स पढमसम्मत्तगहणपढमसयम्मि सव्वीससंक्रामयभावमुव्वगयस्स पुणो विदियसमए सम्मामिच्छत्तं संक्रामेमाणस्स

काल प्रमाण है ।

§ ३५८. खुलासा इस प्रकार है—कोई एक अनादि मिथ्यादृष्टि जीव उपशम सन्यक्त्वको प्राप्त करके और सत्ताईस प्रकृतियोंका संक्रामक होकर मिथ्यात्वमें गया । फिर पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण कालतक उद्वेलनाक्रियामें लगा रहा और सम्यक्त्वसत्कर्मके संक्रमकी योग्यताका नाश होनेके पूर्व ही सम्यक्त्वको प्राप्त होगया । फिर प्रथम छयासठ सागर कालतक परिभ्रमण करके अन्तमे मिथ्यात्वमें गया और पहलेके समान पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण कालतक सम्यक्त्वकी उद्वेलना करता रहा । किन्तु उसकी उद्वेलनाकी अन्तिम फालिके साथ ही सम्यक्त्वको प्राप्त होगया । फिर दूसरे छयासठ सागर कालतक परिभ्रमण करके उसके अन्तमे मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ । फिर सबसे बड़े उद्वेलनाकालके द्वारा सम्यक्त्वकी उद्वेलना करके छव्वीस प्रकृतियोंका संक्रामक होगया । इस प्रकार सत्ताईस प्रकृतियोंके संक्रामकका उत्कृष्ट काल पल्यके तीन असंख्यातवें भागोंसे अधिक दो छयासठ सागर प्राप्त हुआ । अब छव्वीस प्रकृतियोंके संक्रामकके जघन्य और उत्कृष्ट कालका कथन करनेके लिए आगेका सूत्र कहते हैं—

\* छव्वीस प्रकृतिक संक्रामकका कितना काल है ?

§ ३५९. यह सूत्र सुगम है ।

\* जघन्य काल एक समय है ।

§ ३६०. खुलासा इस प्रकार है—सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी सत्तासे रहित जो मिथ्यादृष्टि जीव प्रथम सम्यक्त्वको ग्रहण करके उसके प्रथम समयमें छव्वीस प्रकृतिक संक्राम-

सत्तावीससंक्रमो होइ चि छव्वीससंक्रमजहणकालो पयसमयमेत्तो लब्धभे । अहवा जो मिच्छत्तपट्टमट्टिदीए दुचरिमसमयम्मि गम्मत्तमुच्चेल्लिय एगसमयछव्वीससंक्रामओ होऊण से काले सम्मत्तं पडिवज्जिय सत्तावीससंक्रामओ जाओ तस्स छव्वीससंक्रमकालो जहणणओ पयसमयमेत्तो लब्धभे चि वत्तञ्चं ।

⊗ उक्कसेण पल्लिदोवमस्स असंखेज्जट्ठिभागो ।

१३६१. नं कयं ? अट्टावीससंक्रमियमिच्छाद्विस्स गम्मत्तमुच्चेल्लियूण पुणो सम्मामिच्छत्तमुच्चेल्लेमाणस्स मच्चो चेव तदुच्चेल्लणकालो छव्वीससंक्रामयस्स उक्कसेणकालो होइ । नो च पल्लिदोवमासंखेज्जट्ठिभागसेत्तो । पवग्गि सम्मामिच्छत्तमुच्चेल्लणकालो समयाहिओ छव्वीससंक्रामयस्स उक्कसेणकालो वत्तञ्चो, तदुच्चेल्लणचरिमफालि मिच्छत्तपट्टमट्टिदिचरिमसमए संक्रामिय मम्मत्तं पडिवज्जणम्मि तदुवलंभादो । संपहि पणुवीससंक्रामयकालपरुत्तणट्टमुत्तं भणइ—

⊗ पणुवीसाए संक्रामए तिण्णि भंगा ।

१३६२. नं जहा—अणादिओ अपज्जवग्गिदो अणादिओ सपज्जवसिदो मादिओ सपज्जवसिदो चेदि पणुवीसाए संक्रामयस्स तिण्णि भंगा । तत्थाभव्वजीवस्स पट्टमो भंगो । भव्वजीवस्स गम्मत्तुप्पायणाए विट्ठिओ भंगो । तस्सेव हेट्ठा परिचदिदस्स तदिओ

स्थानकी प्राप्त होगया । पुनः दूसरे समयमें सन्धग्गिमिथ्यात्वका संक्रामक होकर सत्ताईस प्रकृतिक संक्रमस्थानकी प्राप्त हुआ उसके छत्रनीस प्रकृतिक संक्रमस्थानता जघन्य काल एक समय प्राप्त होता है । अथवा जो जीव मिथ्यात्वकी प्रथम स्थितिके उपान्त्य समयमें सन्धक्त्वकी उद्वेलना करके एक समय तक छत्रनीस प्रकृतिक संक्रमस्थानका ग्यामी होकर उसके बाद दूसरे समयमें सन्धक्त्वकी प्राप्त होकर सत्ताईस प्रकृतियोंका संक्रामक हुआ उसके छत्रनीस प्रकृतिक संक्रमस्थानका जघन्य काल एक समय प्राप्त होता है ऐसा यहाँ कहना चाहिए ।

\* उत्कृष्ट काल पत्त्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है ।

१३६१ नुलामा इम प्रकार है—अट्टाईस प्रकृतियोंकी सत्तायाला जो मिथ्यादृष्टि जीव सन्धक्त्वकी उद्वेलना करके पुनः सन्धग्गिमिथ्यात्वकी उद्वेलना कर रहा है उसके सन्धग्गिमिथ्यात्वकी उद्वेलनामें जितना काल लगता है वह नभी काल छत्रनीस प्रकृतिक संक्रामकका उत्कृष्ट काल होता है जो कि पत्त्यके असंख्यातवें भागप्रमाण होता है । किन्तु इतनी निम्नेपता है कि सन्धग्गिमिथ्यात्वके उक्त उद्वेलना कालमें एक समय अधिक करके छत्रनीस प्रकृतिक संक्रामकका उत्कृष्टकाल कहना चाहिये, क्योंकि जो जीव मिथ्यात्वकी प्रथम स्थितिके अन्तिम समयमें सन्धग्गिमिथ्यात्वकी उद्वेलना की अन्तिम फालिका संक्रम करके सन्धक्त्वकी प्राप्त होता है उसके उक्त उत्कृष्ट काल प्राप्त होता है । अब पच्चीस प्रकृतियोंके संक्रामकके कालका कथन करनेके लिए आगेका सूत्र कहते हैं—

\* पचीस प्रकृतिक संक्रामकके तीन भङ्ग हैं ।

१३६२. यथा—अनादि-अनन्त, अनादि-सान्त और सादि-सान्त । इस प्रकार पचीस प्रकृतिक संक्रामक जीवकी अपेक्षा तीन भङ्ग हैं । उनमेंसे अभव्य जीवके पहला भङ्ग होता है । भव्य जीवके सन्धक्त्वके उत्पन्न करनेपर दूसरा भङ्ग होता है और उसी जीवके सन्धक्त्वसे च्युत होनेपर तीसरा भंग होता है । यहाँ तीसरे भंगमें जघन्य और उत्कृष्ट विकल्प सम्भव होनेसे उसका निर्णय करनेके

भंगो । एत्थ तदियभंगो जहण्णुक्कस्सवियप्पसंभवादो तण्णिण्णयपरूपणट्टमुत्तरसुत्तं—

✽ तत्थ जो सो सादिओ सपज्जवसिदो जहण्णेण एगसमओ ।  
उक्कस्सेण उवड्डुपोगलपरियट्टं ।

§ ३६३. एत्थ ताव जहण्णकालपरुवणा कीरदे—जो छवीससंक्रामयमिच्छाइड्डी सम्मामिच्छत्तमुव्वेत्तेमाणो उव्वसमसम्मत्ताहिमुहो होऊण मिच्छत्तपढमड्डीए दुचरिम-समयम्मि सम्मामिच्छत्तचरिमफालिं मिच्छत्तसरुवेण संक्रामिय पुणो चरिमसमयम्मि पणुवीससंक्रामो होऊण से काले पुणो वि छवीससंक्रामओ जादो तस्स लद्धो पयद-जहण्णकालो । अहवा अट्टावीससंतकम्मियउव्वसमसम्माइड्डी सत्तावीससंक्रामओ उव्वसमसम्मत्तद्वाए एगसमओ अथि त्ति सासणभावं पडिवण्णो पणुवीससंक्रामयभावेणेग-समयमच्छिय पुणो विदियसमए मिच्छत्तमुवणमिय सत्तावीससंक्रामओ जादो ; अथवा चउवीससंतकम्मिय उव्वसमसम्माइड्डी सगद्वाए समयाहियावलयमेत्तसेसाए सासणभावं पडिवण्णो अणंताणुबंधीणं बंधावलयं वोलाविय एगसमयं पणुवीससंक्रामओ जादो तदर्णांतरसमए मिच्छत्तं पडिवज्जिय सत्तावीससंक्रामओ जादो सद्धो सुत्तुत्तजहण्णकालो । उक्कस्सेणुवड्डुपोगलपरियट्टुपरुवणा कीरदे । तं जहा—अड्डुपोगलपरियट्टुदिसमए सम्मत्तं पडिवज्जिय तत्थ जहण्णमंतोमुहुत्तमच्छिय मिच्छत्तं गंतूण सच्चलहुं सम्मत्त-

लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

✽ उनमेंसे जो सादि-सान्त भंग है उसका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल उपार्धपुद्गलपरिवर्तनप्रमाण है ।

§ ३६३. यहाँ सर्व प्रथम जघन्य कालका कथन करते हैं—छवीस प्रकृतियोंके संक्रामक जिस मिथ्यादृष्टि जीवने सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वेलेना करते हुए उपशमसम्यक्त्वके अभिमुख होकर मिथ्यात्वकी प्रथम स्थितिके द्विचरम समयमें सम्यग्मिथ्यात्वकी अन्तिम फालिका मिथ्यात्वरूपसे संक्रमण किया । पुनः अन्तिम समयमें पचीस प्रकृतियोंका संक्रामक होकर तदनन्तर समयमें फिरसे छवीस प्रकृतियोंका संक्रामक हो गया । उसके प्रकृत जघन्य काल प्राप्त हुआ । अथवा अट्टाईस प्रकृतियोंकी सत्तावाला जो उपशम सम्यग्दृष्टि जीव सत्ताईस प्रकृतियोंका संक्रमण करते हुए उपशमसम्यक्त्वके कालमें एक समय शेष रहने पर सासादनभावको प्राप्त होकर एक समय तक पचीस प्रकृतियोंका संक्रामक रहा । पुनः दूसरे समयमें मिथ्यात्वको प्राप्त होकर सत्ताईस प्रकृतियोंका संक्रामक हो गया उसके पचीस प्रकृतिक संक्रमस्थानका जघन्य काल एक समय प्राप्त हुआ । अथवा चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला जो उपशम सम्यग्दृष्टि जीव अपने कालमें एक समय अधिक एक आवलि शेष रहने पर सासादनभावको प्राप्त हुआ । पुनः अनन्तानुबन्धियोंकी बन्धावलि की विताकर एक समय तक पचीस प्रकृतियोंका संक्रामक हो गया और तदनन्तर समयमें मिथ्यात्वको प्राप्त होकर सत्ताईस प्रकृतियोंका संक्रामक हो गया उसके सूत्रोक्त जघन्य काल प्राप्त हुआ । अब पचीस प्रकृतिक संक्रामकके उपार्धपुद्गलपरिवर्तनप्रमाण उत्कृष्ट कालका कथन करते हैं । यथा—कोई एक जीव उपार्धपुद्गलपरिवर्तन कालके प्रथम समयमें सम्यक्त्वको प्राप्त हुआ और वहाँ सर्वसे जघन्य अन्तमुहूर्त काल तक रहकर मिथ्यात्वमें गया । पुनः वहाँ सम्यक्त्व और

सम्प्राप्तिच्छत्ताणि उच्चेल्लिय पणुवीससंकामओ जादो । पुणो उवट्टपोगलपरियट्टं परिभमिय अंतोमुट्टत्तावसेसे संसारं सम्मत्तं पडिवण्णो तस्स ताधे पणुवीससंकमो णस्सदि चि पयदुक्कस्सकालो लट्ठो । संपहि तेवीसगंकमट्टाणस्स जहण्णुकस्सकालणिहालगुत्तमुत्तरं पबंधमाह—

❁ तेवीसाए संकामओ केवचिरं कालादो होइ ।

§ ३६४. सुगमं

❁ जहण्णेषु अंतोमुट्टत्तं, पयसमओ वा ।

§ ३६५. एत्थ ताव अंतोमुट्टत्तपरवणा कीरदे । तं जहा—उवसमसम्माहट्ठो अणंताणु० विगंजोहय तेवीससंकामओ जादो । तदो जहण्णमंतोमुट्टत्तकालमच्छिय उवसमसम्मत्तट्टाए छावाल्यावसेसाए सासणगुणं पडिवज्जिय इगिवीससंकामओ जादो तस्स लट्ठो तेवीसगंकमजहण्णकालो अंतोमुट्टत्तमेत्तो । संपहि पयसमयपरवणा कीरदे । तं [जहा—एगो चउवीससंतकम्मिओ उवसमसम्माहट्ठो समयुणावलियमेत्तावसेसाए उवसमसम्मत्तट्टाए मामणसम्मत्तं पडिवण्णो इगिवीसगंकामओ जादो । कमेण भिच्छत्त-मुवगओ एगसमयं तेवीसगंकामओ होदुण तदणंतगसमयम्मि अणंताणुबंधिसंकमणावसेण सत्तावीससंकामओ जादो लट्ठो पयसमयमेत्तो पयदजहण्णकालो ।

सम्यग्मिथ्यात्वकी उट्टे लना करके पचवीस प्रकृतियोंका संक्रामक हो गया । पुनः उवार्ध पुद्गल परिवर्तनप्रमाण काल तक परिश्रमण करके जब संसारमें रहनेका काल अन्तर्मुहूर्त शेष रह गया तब सम्यक्त्वकी प्राप्ति हुआ उसके उस समय पचवीस प्रकृतिक संक्रमस्थान नष्ट हो जाता है, इसलिये उस जीवके प्रकृत उत्कृष्ट काल प्राप्त हुआ । अब तैर्हस प्रकृतिक संक्रमस्थानके जघन्य और उत्कृष्ट कालका विचार करनेके लिये आगेकी सूत्ररचनाका निर्देश करते हैं—

❁ तैर्हस प्रकृतिक संक्रामकका कितना काल है ?

§ ३६४. यह सूत्र सुगम है ।

❁ जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त या एक समय है ।

§ ३६५. यहाँ सर्वे प्रथम अन्तर्मुहूर्तकालका कथन करते हैं । यथा—कोई एक उपशम-सम्यग्दृष्टि जीव अनन्तानुबन्धियोंकी विगयोजना करके तैर्हस प्रकृतियोंका संक्रामक हो गया । अनन्तर जघन्य अन्तर्मुहूर्त काल तक यहाँ रहा और उपशमसम्यक्त्वके कालमें छह आवलि शेष रहने पर नाम्नादन गुणस्थानको प्राप्त होकर श्पीस प्रकृतियोंका संक्रामक हो गया उसके तैर्हस प्रकृतिक संक्रमस्थानका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त प्राप्त हुआ । अब जघन्य काल एक समयका कथन करते हैं । यथा—कोई एक चौथीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला उपशमसम्यग्दृष्टि जीव उपशमसम्यक्त्वके कालमें एक समयक एक आवलि शेष रहने पर सासादन गुणस्थानका प्राप्त होकर श्पीस प्रकृतियोंका संक्रामक हो गया पुनः क्रमसे मिथ्यात्वमें जावर और एक समय तक तैर्हस प्रकृतियोंका संक्रामक होकर तदनन्तर समयमें अनन्तानुबन्धियोंका संक्रम होने लगनेके कारण सत्ताईस प्रकृतियोंका संक्रामक हो गया उसके प्रकृत जघन्य काल एक समय प्राप्त हुआ ।

❀ उक्कस्सेण छावट्टिसागरोवमाणि सादिरेयाणि ।

§ ३६६. तं जहा—एओ मिच्छाइड्डी पढमसम्मत्तं पडिचजिय उवसमसम्मत्त-  
कालम्भन्तरे चैय अणन्ताणुग्धिचउक्कं विसंजोइय अंतोमुहुत्तकालं. तेवीससंक्रमणुपालिय  
वेदयसम्मत्तमुवणमिय छावट्टिसागरोवमाणि परिभमिय तदवसाणे दंसणमोहमखवणाए  
परिणमिदो मिच्छत्तं खविय वावीससंक्रामथो जादो । तदो पुव्विल्लेणुवसमसम्मत्तकाल-  
म्भन्तरभाविणा अंतोमुहुत्तेण मिच्छत्तचरिमफालिपदणादो उवरिमकदकरणिज्जचरिसमसय-  
पज्जत्तंतोमुहुत्तणेण सादिरेयाणि छावट्टिसागरोवमाणि तेवीससंक्रामयस्स उक्कस्सकालो होह ।

❀ वावीसाए वीसाए एग्गवीसाए अट्टारसएहं तेरसएहं वारसएहं  
एक्कारसएहं दसएहं अट्टएहं सत्तएहं पंचणहं चउएहं तिणहं दोएहं पि कालो  
जहएणोण एयसमओ, उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ।

§ ३६७. वावीसाए ताव उचदे—एओ चउवीससंतकम्मिओ उवसमसेहिं चट्टिय  
अंतरकरणाणंतरमाणुपुव्वीसंक्रमेण परिणदो एयसमयं वावीससंक्रामगो होदूण विदिय-  
समए कालं काऊण देवेसुववजिय तेवीससंक्रामथो जादो । एसो वावीसाए जहण्णकालो ।

❀ उत्कृष्ट काल साधिक छयासठ सागर है ।

§ ३६६. खुलासा इस प्रकार है—काई एक मिथ्यादृष्टि जीव प्रथम सम्यक्त्वको प्राप्त  
करके उपशम सम्यक्त्वके कालके भीतर ही अनन्तानुवन्धीचतुष्ककी विसंयोजना करके अन्तर्मुहूर्त  
काल तक तेईसप्रकृतिक संक्रमस्थानको प्राप्त हुआ । पुनः वेदक सम्यक्त्वको प्राप्त होकर और  
छयासठ सागर काल तक परिभ्रमण करके उसके अन्तमें दर्शनमोहनीयधी क्षपणाके लिये उद्यत  
हो मिथ्यात्वका क्षय करके वाईस प्रकृतियोंका संक्रामक हो गया । इस प्रकार इस जीवके जो  
पूर्वोक्त उपशम सम्यक्त्वके कालके भीतर तेईस प्रकृतिक संक्रमस्थानका अन्तर्मुहूर्त काल प्राप्त हुआ  
है उसमेंसे मिथ्यात्वकी अन्तिम फालिके पतन समयसे लेकर कृतकृत्यवेदकके अन्तिम समय  
तकका जितना काल है उसे घटा देने पर जो शेष काल बचता है उससे अधिक छयासठ सागर  
काल तेईस प्रकृतिक संक्रामकका उत्कृष्ट काल होता है ।

❀ वाईस, वीस, उचीस, अठारह, तेरह, बारह, ग्यारह, दस, आठ, सात, पाँच,  
चार, तीन और दो प्रकृतिक संक्रामकका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट  
काल अन्तर्मुहूर्त है ।

§ ३६७. सर्व प्रथम वाईस प्रकृतियोंके संक्रामकके कालका कथन करते हैं—कोई एक  
चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला जीव उपशमश्रेणि पर चढ़ा और अन्तरकरणके बाद आनुपूर्वी  
संक्रमसे परिणत होकर एक समय तक वाईस प्रकृतियोंका संक्रामक हुआ । पुनः दूसरे समयमें  
भरकर और देवोंमें उत्पन्न होकर तेईस प्रकृतियोंका संक्रामक हो गया । इस प्रकार यह वाईस  
प्रकृतिक संक्रमस्थानका जघन्य काल है । अब इस स्थानका अन्तर्मुहूर्त प्रमाण जो उत्कृष्ट काल  
है उसका दृष्टान्त देते हैं—कोई एक दर्शनमोहकी क्षपणा करनेवाला जीव मिथ्यात्वका क्षय करके

१. ता०—आ०प्रत्यो-चदुवावीससकामओ इति पाठः ।

२. ता०प्रतौ एयसमओ ( ए ) इति पाठः ।

उकस्सेणंतोमुहुत्तपरूवणाए णिदरिसणं—एगो दंसणमोहक्खवओ मिच्छत्तं खविय सम्मामिच्छत्तखवणद्वाए वावीससंकामओ जादो जाव चरिमफालिपदणसमओ त्ति एसो च कालो अंतोमुहुत्तमेओ ।

§ ३६८. संपहि वीसाए उच्चदे । तं जहा—तत्थ जहण्णेणोसमओ त्ति उत्ते एको इगिवीससंकामओ उवसमसेदिं चडिय लोभस्सासंकामगो होदूण एयसमयं वीससंकममणुपालिय तदणंतरसमयम्मि कालं काऊण देवेसुववज्जिय इगिवीससंकामओ जादो । लद्धो एयसमओ । उकस्सेणंतोमुहुत्तमिदि उत्ते एको इगिवीससंतकम्मिओ णवुंसयवेदोदएण उवसमसेदिं चडिय अंतरकरणं कादूणाणुपुञ्जीसंकमवसेण वीसाए संकामओ जादो । तदो तस्स णवुंसयवेदोवसमणकालो सव्वो चेय पयदुक्कस्सकालो होइ ।

§ ३६९. संपहि एगूणवीससंकमद्वानस्स जहण्णुक्कस्सकालिणणयं कस्सामो । तं जहा—इगिवीससंतकम्मिओ उवसमसेदीमारूढो अंतरकरणं समाणिय णउंसयवेद-मुवसामिऊण ऊणवोसाए संकामओ जादो । विदियममए कालगओ देवेसुववज्जो इगिवीससंकामओ जादो तस्स लद्धो एगसमओ । तस्सेव णवुंसयवेदमुवसामिय इत्थि-वेदोवसामणावावदस्स तदुवसामणकालो सव्वो चेय पयदुक्कस्सकालो होइ त्ति वत्तव्वं ।

सम्यग्मिथ्यात्नका क्षय होनेके कालमें अन्तिम फालिके पतनके समय तक बाईस प्रकृतिक संक्रम-स्थानका स्वामी रहा उसके यह काल अन्तर्मुहूर्त होता है । इसीसे बाईस प्रकृतिक संक्रमस्थानका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कहा है ।

§ ३६८. अब वीस प्रकृतिक संक्रमस्थानके कालका विचार करते हैं । यथा—उसमें भी जो जवन्य काल एक समय कड़ा है उसका खुलासा करते हैं—कोई एक इक्कीस प्रकृतियोंका संक्रामक जीव उपशमश्रेणिय पर चढ़कर और लोभका असंक्रामक होकर एक समय तक वीस प्रकृतियोंके संक्रमको प्राप्त हुआ । पुनः तदनन्तर समयमें मरा और देव होकर इक्कीस प्रकृतियोंका संक्रामक हो गया । इस प्रकार वीस प्रकृतिक संक्रमस्थानका जवन्य काल एक समय प्राप्त हो गया । अब जो उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कहा है उसका खुलासा करते हैं—कोई एक इक्कीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला जीव नपुंसकवेदके उदयसे उपशमश्रेणिय पर चढ़ा । पुनः अन्तरकरण करके आनुपूर्वी संक्रमके वशसे यह वीस प्रकृतियोंका संक्रामक हो गया । अनन्तर उसके नपुंसकवेदके उपशम करनेका जितना काल है वह सब प्रकृत स्थानका उत्कृष्ट काल है ।

§ ३६९. अब उन्नीस प्रकृतिक संक्रमस्थानके जवन्य और उत्कृष्ट कालका निर्णय करते हैं । यथा—कोई एक इक्कीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला जीव उपशमश्रेणिय पर चढ़ा । फिर अन्तरकरण करके और नपुंसकवेदका उपशम करके उन्नीस प्रकृतियोंका संक्रामक हो गया । तथा दूसरे समयमें मरकर देवोमें उत्पन्न हुआ और इक्कीस प्रकृतियोंका संक्रामक हो गया । इस प्रकार इसके उन्नीस प्रकृतिक संक्रमस्थानका जवन्य काल एक समय प्राप्त हुआ । तथा वही जीव जब नपुंसकवेदका उपशम करके स्त्रीवेदका उपशम करने लगाता है तब स्त्रीवेदके उपशम करनेमें जितना काल लगता है वह सब प्रकृत स्थानका उत्कृष्ट काल होता है ऐसा यहाँ कहना चाहिये ।

१. ता०प्रतौ वेत्तव्वं इति पाठः ।

§ ३७०. संपहि अट्टारससंकमट्टाणस्स जहण्णुकस्सकालपरूवणा कीरदे । तं जहा—  
इगिवीससंतकम्मिओवसामओ णवुंसय-इत्थिवेदमुवसामिय एयसमयमट्टारससंकामओ  
होऊण तदणंतरसमए कालं कादूण देवेसुववज्जिय इगिवीससंकामओ जादो लद्धो  
पयदसंकमट्टाणजहण्णकालो । तस्सेव जाव छण्णोकसाया अणुवसंता ताव तदुवसामण-  
कालो सव्वो चेय पयदुकस्सकालो होइ ।

§ ३७१. संपहि तेरससंकमट्टाणस्स जहण्णुकस्सकालपरूवणा कीरदे—चउवीस-  
संतकम्मिओवसामओ जहाकमं णवणोकसाए उवसामिय एयसमयं तेरससंकामओ जादो ।  
तदणंतरसमए कालं काऊण तेवीससंकमओ जादो तस्स पयदजहण्णकालो होइ ।  
खवगो अट्टकसाए खविय जाव आपुणुव्वीसंकमं णाठवेइ ताव पयदुकस्सकालो घेतव्वो ।

§ ३७२. संपहि वारससंकमट्टाणजहण्णुकस्सकालपरूवणा कीरदे । तं जहा—  
इगिवीससंतकम्मिओवसामगो जहाकममुवसामिदद्धणोकसाओ एयसमयवारससंकामओ  
जादो । विदियसमए कालं कादूण देवेसुववण्णो इगिवीससंकामओ जादो । लद्धो  
एगसमओ । उक्कसेणंतोमुहुत्तमेत्तकालपरूवणोदाहरणं—एगो संजदो चारित्तमोहक्खवणाए  
अब्भुट्ठिदो आपुणुव्वीसंकमे कादूण तदो जाव णवुंसयवेदं ण खवेइ ताव विवक्खिय-  
संकमट्टाणुकस्सकालो होइ ।

§ ३७०. अब अठारह प्रकृतिक संक्रमस्थानके जघन्य और उत्कृष्ट कालका कथन करते हैं ।  
यथा—जो इक्कीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला उपशामक जीव नपुंसकवेद और स्त्रीवेदका उपशाम  
करके एक समयके लिये अठारह प्रकृतियोंका संक्रामक हो कर तदनन्तर समयमें मर कर और  
देवोंमें उत्पन्न हो कर इक्कीस प्रकृतियोंका संक्रामक हो गया उसके प्रकृत स्थानका जघन्य काल  
एक समय प्राप्त हुआ । तथा उसीके जबतक छह नोकषायोंका उपशाम नहीं हुआ तब तक उपशाममें  
लगनेवाला जितना भी काल है वह प्रकृत स्थानका उत्कृष्ट काल होता है ।

§ ३७१. अब तेरह प्रकृतिक संक्रमस्थानके जघन्य और उत्कृष्ट कालका कथन करते हैं—  
चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला जो उपशामक जीव क्रमसे नौ नोकषायोंका उपशाम करके एक  
समयके लिये तेरह प्रकृतियोंका संक्रामक हुआ और तदनन्तर समयमें मरकर तेईस प्रकृतियोंका  
संक्रामक हुआ उसके प्रकृत स्थानका जघन्य काल प्राप्त होता है । तथा जो चूपक जीव आठ  
कषायोंका क्षय करके जब तक आनुपूर्वी संक्रमका प्रारम्भ नहीं करता है तब तक प्रकृत स्थानका  
उत्कृष्ट काल ग्रहण करना चाहिये ।

§ ३७२. अब बारह प्रकृतिक संक्रमस्थानके जघन्य और उत्कृष्ट कालका कथन करते हैं ।  
यथा—जो इक्कीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला उपशामक जीव क्रमसे आठ कषायोंका उपशाम करके  
एक समयके लिये बारह प्रकृतियोंका संक्रामक हो गया और दूसरे समयमें मर कर तथा देव  
होकर इक्कीस प्रकृतियोंका संक्रामक हो गया उसके उक्त स्थानका जघन्य काल एक समय प्राप्त  
हुआ । अब इस स्थानका उत्कृष्ट काल जो अन्तर्मुहूर्त कहा है उसका उदाहरण यह है—कोई एक  
संयत जीव चारित्रमोहनीयकी चूपणाके लिये उद्यत होकर और आनुपूर्वी संक्रमको करके अनन्तर  
जब तक नपुंसकवेदका चय नहीं करता है तब तक विवक्षित संक्रमस्थानका उत्कृष्ट काल होता है ।

१. आःप्रतौ -द्वारससंकमट्टाणस्स इति पाठः ।

३७३. मंपहि एयारमसंक्रामयजहण्णुक्कस्सकालपरुचणा कीरदे । तं जहा—  
इगितीमसंतकम्मिओ उवसामओ जहाकममुवसामिदणवणोकमाओ एयसमयमेकारस-  
मंक्रामओ होऊण तदणंतरसमण कालं कादण देवो जादो तस्स लद्धो एयममयमेचो  
पयदमंक्रमणजहण्णकालो । एवगो णवुंमयवेदं खवेदण जावित्थिवेदं ण खवेइ ताव  
पयदुक्कमकालो होइ ।

३७४. मंपहि दमंक्रमणपडिचट्टजहण्णुक्कमकालपरुचणा कीरदे । तं  
जहा—चउवीरसंतकम्मिओवसामिओ तिविहकोहोवसामणाण पणिदो एयममयं दस-  
मंक्रामओ जादो, विदियममण देवेमुवचजिय तेवीरसंक्रामओ मंजादो, लद्धो पयद-  
मंक्रमणजहण्णकालो । उक्कस्सकालो पुण खवगम्ल छणोक्रमायखवणदामेचो धेत्तवो ।

३७५. अट्टमंक्रमणजहण्णुक्कस्सकालविहासणं कस्सामो । तं जहा—चउवीर-  
संतकम्मिओवसामओ द्विहमाणमुवसामिय एयममयमट्टमंक्रामओ होदण विदियममण  
कालमदो देवेमुवचणो लद्धो पयदजहण्णकालो । उक्कस्सकालपरुचणाणिदग्गिणं—  
एगो इगितीमसंतकम्मिओवसामगो क्रमेण णवणोकमाए तिविहं च कोहमुवसामिय  
अट्टमंक्रामओ जादो । नत्थंतामुद्वुनमंउऊण द्विहमाणोवसामणाण छणं संक्रामओ  
जाओ, लद्धो णिकदमंक्रमणुक्कस्सकालो द्विहमाणोवसामणदामेचो ।

३७६. अय एयारठ प्रणित्थितं संक्रामकं जघन्यं और उत्कृष्टं कालका कथनं परते हैं ।  
यथा—जो इक्कीस प्रकृतियोंकी संक्रामक जीव उपशामक जीव क्रमसे नी नोकरायाँका उपशाम करके  
एक समयके लिये एयारठ प्रकृतियोंका संक्रामक हो कर तदुत्पन्न समयमें मर कर देव हो जाता  
है उनके प्रकृत संक्रमस्थानका जघन्य काल एक समय प्राप्त होता है । तथा जो चक्रक जीव नष्ट  
वेदका जघन करके जब तक एतौवेदका क्षय नहीं करता है तबतक प्रकृत स्थानका उत्कृष्ट काल होता है ।

३७७. अय दम प्रकृतिक संक्रमस्थानं जघन्यं और उत्कृष्टं कालका कथनं परते हैं ।  
यथा—जो चौबीस प्रकृतियोंकी संक्रामक जीव तीन प्रकारके क्रोधाके उपशाम भावसे  
परिणत होकर एक समयके लिये दम प्रकृतियोंका संक्रामक हुआ और दूसरे समयमें देवोंमें  
उत्पन्न होकर तैर्दम प्रकृतियोंका संक्रामक हुआ उनके प्रकृत संक्रमस्थानका जघन्य काल प्राप्त होता  
है । तथा चक्रक जीवके छद्म नोकरायाँकी क्षयणामें जितना काल लगे उनना उम एयारठका उत्कृष्ट  
काल लेना चाहिये ।

३७८. अय आठ प्रकृतिक संक्रमस्थानके जघन्य और उत्कृष्ट कालका व्याख्यानं परते हैं ।  
यथा—जो चौबीस प्रकृतियोंकी संक्रामक जीव दो प्रकारके मानका उपशाम करके  
एक समयके लिये आठ प्रकृतियोंका संक्रामक हो कर और दूसरे समयमें मर कर देवोंमें उत्पन्न  
हुआ उनके प्रकृत स्थानका जघन्य काल एक समय प्राप्त होता है । अथ जो अन्तर्मुहने प्रमाण  
उत्कृष्ट काल कदा है उनका दृष्टान्त देते हैं—जो इक्कीस प्रकृतियोंकी संक्रामक जीव  
क्रमसे नी नोकरायाँ और तीन प्रकारके क्रोधाका उपशाम करके आठ प्रकृतियोंका संक्रामक हो गया  
है । फिर वहाँ अन्तर्मुहने काल तक रह कर जो दो प्रकारके मानका उपशाम हो जाने पर छद्म  
प्रकृतियोंका संक्रामक हो गया है उसके दो प्रकारके मानके उपशाम करनेमें जितना काल लगता है  
तबतक एव विचित्र संक्रमस्थानका उत्कृष्ट काल प्राप्त होता है ।



§ ३७६. संपहि सत्संक्रामयजहण्णुक्कस्सकालणिण्णयविहाणं वचइस्सामो—जहण्णकालो ताव चउवीससंतकम्मिओवसामयस्स तिविहमाणोवसामणाए परिणदस्स विदियसमए चैव कालं कादूण देवेसुववण्णस्स लब्भदे । उक्कस्सकालो पुण तस्सेव दुविहमायोवसामणाए वावदस्स जाव तदणुवसमो त्ति ताव अंतोमुहुत्तमेत्तो लब्भदे ।

§ ३७७. संपहि पंचसंक्रामयजहण्णुक्कस्सकालपरूवणा कीरदे । तं जहा—तेणेव सत्संक्रामेण दुविहमायोवसामणाए कदाए एयसमयं ‘पंचसंक्रामओ होदूण विदियसमए भवक्खएण देवो जादो तस्स पयदजहण्णकालो होइ । उक्कस्सकालो पुण इग्गिवीससंतकम्मियोवसामगस्स तिविहमायोवसमणपरिणदस्स जाव दुविहमायाणु समो ताव होइ ।

§ ३७८. चउण्हं संक्रामयस्स जहण्णुक्कस्सकालणिरूवणा कीरदे । तत्थ ताव जहण्णकालपरूवणोदाहरणं—चउवीससंतकम्मियोवसामगो मायासंजलणुवसामिय चउण्हं संक्रामओ जादो, तत्थेयसमयमच्छिय विदियसमए जीविदद्वाक्खएण देवो जादो तस्स पयदजहण्णकालो होइ । उक्कस्सकालो वि तस्सेव मरणपरिणामविरहियस्स मायासंजलणोवसमप्पहुडि जाव दुविहलोहाणुवसमो त्ति ताव अंतोमुहुत्तमेत्तो होइ ।

§ ३७९. तिण्हं संक्रामयस्स जहण्णुक्कस्सकालपरूवणा कीरदे । तं जहा—

§ ३७६ अथ सात प्रकृतिक संक्रामकके जघन्य और उत्कृष्ट कालके निर्णय करनेकी विधि वतलाते हैं—जो चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला उपशामक जीव तीन प्रकारके मानका उपशाम करके और दूसरे समयमें मर कर देवोंमें उत्पन्न हुआ है उसके प्रकृत स्थानका जघन्य काल प्राप्त होता है । तथा इसी जीवके दो प्रकारकी मायाका उपशाम करते हुए जब तक उनका उपशाम नहीं होता है तब तक उक्त स्थानका अन्तर्मुहूर्त प्रमाण उत्कृष्ट काल प्राप्त होता है ।

§ ३७७. अथ पाँच प्रकृतिक संक्रामकके जघन्य और उत्कृष्ट कालका कथन करते हैं । यथा—वही सात प्रकृतियोंका संक्रामक जीव दो प्रकारकी मायाका उपशाम करके एक समयके लिए पाँच प्रकृतियोंका संक्रामक हो गया । फिर दूसरे समयमें आयुका क्षय हो जानेसे देव हो गया । इस प्रकार इस जीवके प्रकृत स्थानका जघन्य काल प्राप्त होता है । तथा इक्कीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला जो उपशामक जीव तीन प्रकारकी मायाका उपशाम कर रहा है उसके जब तक दो प्रकारकी मायाका उपशाम नहीं हुआ है तब तक प्रकृत स्थानका उत्कृष्ट काल होता है ।

§ ३७८ अथ चार प्रकृतिक संक्रामक जीवके जघन्य और उत्कृष्ट कालका कथन करते हैं । उसमें भी सर्व प्रथम जघन्य कालका उदाहरण देते हैं—जो चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला उपशामक जीव माया संबलनका उपशाम करके चार प्रकृतियोंका संक्रामक हो गया और वहाँ एक समय तक रहकर दूसरे समयमें आयुका क्षय हो जानेसे देव हो गया है उसके प्रकृत स्थानका जघन्य काल प्राप्त होता है । तथा मरणके परिणामसे रहित इसी जीवके माया संबलनका उपशाम होकर जब तक दो प्रकारके लोभका उपशाम नहीं होता तब तक उनके उपशाम करनेमें जो अन्तर्मुहूर्त काल लगता है वह प्रकृत स्थानका उत्कृष्ट काल होता है ।

§ ३७९. अथ तीन प्रकृतिक संक्रामक जीवके जघन्य और उत्कृष्ट कालका कथन करते हैं ।

इगिर्वीमंतकम्मिओवमामिओ दुविहमागोवगामणाण् पणिणो तिण्हं संकामओ जादो । विदियसमण् देवेसुववण्णो तस्म लद्धो पयदज्जहण्णकालो । उपरसकालो पुण चरित्त-  
मोहकसवयम्म कोहमंजलणमउपणकालो मच्चो चय होइ ।

§ ३८०. संपदि दोण्हं संकामयस्स जहण्णुत्तस्सकालपरिक्खमा करीदं । तं जहा—  
चउवीमंतकम्मिओवमामिओ आणुपृथ्वीमंरुमादिपरिवाटीण् दुविहल्लोत्तमुवमामिय मिच्छत्त-  
मम्मामिच्छत्ताणमोयममयं संकामओ होउण विदियसमण् भवक्काण्ण देवभावमुणओ  
तस्म णिरुद्धज्जहण्णकालो होइ । तस्सेव दुविहल्लोत्तोत्तमपक्कटिं जाव ओयमणाण-  
मुत्तमनांपगइयत्तरिमममओ णि ताव पयदुत्तस्सकालो होइ ।

§ ३८१. संपदि इगिर्वीमंतकानयजहण्णुत्तस्सकालपदुत्पायणट्ठं मुत्तमाह—

⊗ पण्णवीसाण् संकामओ केचच्चिरं कालादो होइ ?

§ ३८२. मुगमं ।

⊗ जहण्णोत्तेयस्समओ ।

§ ३८३. नं दथं ? चउवीमंतकम्मियउत्तं नामयस्स णयुंनयवेदोदगामणावरेण  
लद्धप्पमन्वयस्स पयदसंरुमट्टाणाण् मरणदत्तेण विदियमण्ण विणाओ जादो, लद्धो

यथा—जो ज्वकीम प्रकृतियोंकी सत्तावाला उपशासक जीव जो प्रकारकी भाषाके उपवास भाषाके  
परिणत होकर तीन प्रकारकी भाषा प्राप्त करता है और दूसरे समयमें मग्नर देवीमें उत्पन्न हुआ  
है उसके प्रकृत स्थानका जन्म काल प्राप्त होता है । तथा प्राणिशरीरकी उत्पत्ति करनेवाले जीवके  
सोयमंजलनकी उत्पत्ति का जन्म काल है प्रकृत मरण प्रकृत उत्पत्ति का जन्म काल है ।

§ ३८०. पय हो प्रकृतिक संकामयके जपन्य और उत्पत्ति पापका विचार करने हैं ।  
यथा—जो ज्वकीम प्रकृतियोंकी सत्तावाला उपशासक जीव प्रकृतियों में मग्न आदि परिवादीके प्रकृ-  
ति हो प्रकारके लोभका उपवास करने मिच्छत्त और मग्गिमिच्छत्तका एक समयके लिये संता-  
पक होता है और दूसरे समयमें प्राणका शय हो जानेके कारण देवभावको प्राप्त हो जाता है उसके  
प्रकृत स्थानका जन्म काल होता है । तथा उत्ती कीमके जो प्रकारके लोभका उपवास होनेके समयमें  
लेकर उत्तरने समय मुत्तमनामनाय मुग्गस्थानके प्राणिक समय तक जितना काल होता है यह मय  
प्रकृत स्थानका उत्पत्ति काल होता है ।

§ ३८१. अब ज्वकीम प्रकृतियोंके संकामक जीवके जपन्य और उत्पत्ति कालका पथन करनेके  
लिये आगेका सूत्र रहने हैं—

⊗ इक्कोस प्रकृतिक संकामकका कितना काल है ?

§ ३८२. नह मूत्र मुगम है ।

⊗ जपन्य काल एक समय है ।

§ ३८३. तुतासा इम प्रकार है—जो ज्वकीम प्रकृतियोंकी सत्तावाला उपशासक जीव  
नयुंनयवेदका उपवास हो जानेके कारण इस संकामस्थानको प्राप्त हुआ है और मरण जानेके कारण

१. ता०-शा०प्रत्योः दुविदिहकोदोवममप्यट्टि इति पाठः ।  
२. ता०प्रती -कम्मिओ (य) उव, -शा०प्रती -कम्मिओ उर- इति पाठः ।

एगसमओ । चउवीससंतकम्मियउवसमसम्माइडिस्स वि एगसमयं सासणगुणपडिवत्तिवसेण पयदजहणकालसंभवो वत्तवो ।

❀ उक्खस्सेण तेत्तीससागरोवमाणि सादिरेयाणि ।

१ ३८४. तं जहा—देवणेरइयाणमण्णदरपच्छायदस्स चउवीससंतकम्मियस्स गब्भादिअट्टवस्साणमंतोसुहुत्तम्भहियाणमुवरि सव्वलहुं दंसणमोहक्खवणाए परिणमिय इगिवीससंकमं पारमिय देख्खणपुव्वकोडिं संजमभावेण विहरिय कालं कादूण विजयादिसु समरुणतेत्तीससागरोवममेत्तदेवायुगमणुपालिय तत्तो चइय पुव्वकोडाउगमणुस्सपज्जाएण परिणमिय सव्वजहण्णंतोसुहुत्तावसेसे सिज्झिदव्वए ख्वयसेदीमारोहणेणट्ठकसायक्खवणाए तेरससंक्रामयभावमुवणयस्स दोअंतोसुहुत्तम्भहियट्टवस्सपरिहीणविपुव्वकोडीहि सादिरेय-तेत्तीससागरोवममेत्तुकस्सकालोवलद्धी जादा ।

❀ चोदसएहं णवरहं छुएहं पि कालो जहएणेण्येयसमओ ।

१ ३८५. तत्थ चोदससंक्रामयस्स जहण्णकालपरूवणोदाहरणं—एक्को चउवीस-संतकम्मिओवसामिओ अट्टणोकसाए उवसामिय एयसमयचोदससंक्रामओ जादो । विदियसमए भवक्खएण देवेसु उप्पण्णो, लद्धो पयदजहणकालो । णवण्हं संक्रामयस्स

जिसके दूसरे समयमें प्रकृत संक्रमस्थानका विनाश हो गया है उसके इस संक्रमस्थानका जघन्य काल एक समय प्राप्त होता है । इसी प्रकार जो चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला उपशामसम्यग्दृष्ट जीव एक समयके लिये साक्षात्त गुणस्थानको प्राप्त होता है उसके भी प्रकृत स्थानका जघन्य काल एक समय कहना चाहिये ।

\* उत्कृष्ट काल साधिक तेतीस सागर है ।

१ ३८४. खुलासा इस प्रकार है—जो चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला जीव देव या नरक पर्यायसे आकर तथा गर्भसे लेकर आठ वर्ष और अन्तर्मुहूर्तके बाद अतिशीघ्र दर्शनमोहकी क्षण करके इक्कीस प्रकृतियोंका संक्रामरु हो गया है । फिर कुछ कम पूर्वकोटि काल तक संवमके साथ विहार करके जो मरा और विजयादिकमें एक समय कम तेतीस सागर काल तक देव पर्यायके साथ रहा है । फिर वहाँसे च्युत होकर जिसने एक पूर्वकोटि आयुके साथ मनुष्य पर्यायको प्राप्त किया है । फिर वहाँ जब सिद्ध होनेके लिये सबसे जघन्य अन्तर्मुहूर्त काल शेष रहा तब जिसने ज्ञपक्-श्रेणी पर चढ़कर और आठ कषायोंका क्षय करके तेरह प्रकृतिक संक्रमस्थानको प्राप्त कर लिया है उसके प्रकृत संक्रमस्थानका उत्कृष्ट काल दो अन्तर्मुहूर्त और आठ वर्ष कम तथा दो पूर्वकोटि अधिक तेतीस सागर प्राप्त होता है ।

\* चौदह, नौ और छह प्रकृतियोंके संक्रामकका भी जघन्य काल एक समय है ।

१ ३८५. उसमेंसे चौदह प्रकृतिक संक्रामकके जघन्य कालका कथन करनेके लिये उदाहरण देते हैं—जो चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला उपशामक जीव आठ नौ कषायोंका उपशाम करके एक समयके लिये चौदह प्रकृतियोंका उपशामक हो गया है और दूसरे समयमें आयुका क्षय हो जानेसे देवोमि उत्पन्न हुआ है उसके प्रकृत स्थानका जघन्य काल एक समय प्राप्त होता है । अब नौ प्रकृ-

१. ता०प्रतौ -हीणो वि, आ०प्रतौ -हीणे वि इति पाठः ।

जहण्णकालपरुवणाए णिदग्गिमणं—एगो इगिवीससंतकम्मिओवसासगो दुविहकौहोव-  
मामणाए परिणदो एयनमयं णवसंकामओ होउण विदियसमए कालं कादण देवो  
जादो, लद्धा पयदजहण्णदा । छण्हं संकामयस्स जहण्णकालपरुवणाए, तां चैव  
इगिवांससंतकम्मिओवनामिओ णवसंकमट्ठाणादो कौहयंजलणाणवकबंधेण सह दुविह-  
माणोविसामणाए परिणामिय एयसमयं छण्हं संकामगो जादो, विदियसमए कालं कादण  
देवो जादो तम्म लद्धो णिरुद्धजहण्णकालो ।

⊗ उक्त्स्तेण दो आवलियाओ समयूणाओ ।

§ ३८६. चोहमसंकामयम्म ताव उवट्ठे । गो चैव जहण्णकालमामिओ पुगिस्स-  
वेदणवकबंधमुवसामेतो नमयूणदोआवलियमेचकालं नोएससंकामओ होइ । एगो चैव  
कमो णवण्हं छण्हं पि उक्त्स्सकालपरुवणाए । णवरि मगजहण्णकालसामिओ जहाकमं  
कोह-माणसंजलणणवकबंधोविसामणापरिणदो पयदुक्त्स्सकालसामिओ होइ ति वत्तव्वं ।  
मेदए परुविय एत्थेव पयानंतरसंभवपदुप्पायणट्ठमुवग्गिममुत्तमांडण्णं—

⊗ अथवा उक्त्स्तेण अंतोमुहुत्तं ओयरमाणस्स लज्जमइ ।

निर्दिष्टे संक्रामकके जघन्य कालका कथन करनेके लिये उदाहरण देते हैं—जो उन्नीम प्रकृतियोंकी  
सन्तानाला कोटि एक उपशमक जीव हो। प्रकारके कोशमा उपशम करके एक नमयके लिये नौ  
प्रकृतियोंका संक्रामक हो गया है। उनमें दूसरे समयमें भरकर देव हो जाने पर प्रकृत स्थानका जघन्य  
काल एक समय प्राप्त होता है। अब छठ प्रकृतियोंके संक्रामकके जघन्य कालका कथन करते हैं—  
वही उन्नीम प्रकृतियोंकी सन्तानाला उपशमक जीव नौ प्रकृतिक संक्रमस्थानमेंमे क्रोधमंज्वलनके  
नवक बन्धके साथ दो प्रकारके मानका उपशम करके जब एक नमयके लिए छठ प्रकृतियोंका  
संक्रामक हो जाता है और दूसरे समयमें भरकर देव हो जाता है तब उसके प्रकृत स्थानका जघन्य  
काल प्राप्त होता है ।

⊗ उत्कृष्ट काल एक समय कम दो आवलि प्रमाण है ।

§ ३८६ सर्व प्रथम चौदह प्रकृतिक संक्रामकके उत्कृष्ट कालका कथन करते हैं—चौदह  
प्रकृतिक संक्रामकके जघन्य कालका निर्देश करते समय जो स्वामी घतलाया है वही जीव यदि भरकर  
देव नहीं होता किन्तु पुरुषवेदके नवक बन्धका उपशम करता है तो एक समय कम दो आवलि  
काल तक चौदह प्रकृतियोंका संक्रामक होता है। तथा नौ प्रकृतियों और छठ प्रकृतियोंके संक्रामकके  
उत्कृष्ट कालका कथन करते समय भी यही क्रम जानना चाहिये। किन्तु अपने अपने जघन्य कालका  
स्वामी जीव यदि दूसरे समयमें भर कर देव न होकर क्रमसे क्रोधमंज्वलन और मानसंज्वलनके  
नवकबन्धका उपशम करता है तो क्रमसे प्रकृत स्थानोंके उत्कृष्ट कालका स्वामी होता है, उस प्रकार  
यहां उनना विशेष कथना चाहिये। इस प्रकार इसका कथन करके अब यहीं पर जो प्रकारान्तर  
सम्भव है उनका कथन करनेके लिये श्रागेका सूत्र आया है—

⊗ अथवा उत्कृष्ट काल अन्तमुहूर्त है जो उपशमश्रेणिसे उत्तरनेवाले जीवके  
प्राप्त होता है ।

१. आ०प्रती पयदजहण्णा इति पाठः ।

§ ३८७. तं जहा—चउवीससंतकम्मिओवसामयस्स सच्चोवसमं कादूण हेट्ठा ओयरमाणस्स चारसकसायाणमोक्कड्डणाए वावदस्स जाव सत्तणोक्सायाणमणोक्कड्डणा ताव चोदससंक्रामयस्स उक्कसकालो होइ । एवं छण्हं णवण्हं पि वत्तच्चं । णवरि इगिबीससंतकम्मिओवसामयस्स सच्चोवसामणादो पडिवदिदस्स जहाकमं तिविहमाय-माणणमोक्कड्डणपरिणदावत्थाए परूवेयच्चं । संपहि एकस्से संकमड्डाणस्स जहण्णुक्कस्स-कालणिरूवणहुमुत्तरसुत्तं भणइ—

❀ एकस्से संकामओ केवचिरं कालादो होइ ?

§ ३८८. सुगमं ।

❀ जहण्णुक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ।

§ ३८९. खत्रयस्स माणसंजलणक्खवणाए एयसंक्रामयत्तमुवगयस्स मायासंजलण-क्खवणकालो अंतोमुहुत्तमेचो एकस्से संक्रामयकालो होइ । सो च कोहमाणोदएण चट्टिदस्स जहण्णो मायोदएण चट्टिदस्स उक्कसो होदि त्ति वेत्तच्चो ।

§ ३९०. एवमोघेण सच्चसंक्रमड्डाणाणं कालपरूवणं कादूण संपहि आदेस-परूवणहुमुत्तारणं वत्तइस्सामो । तं जहा—आदेसेण णेरइय, सत्तावीस-पंचवीससंक्रामयाणं जहं एयसमओ, उक्कस्सेण तेचीसं सागरोवमाणि । २६ ओघं । २३ जहं एगसं,

§ ३९७. खुलासा इस प्रकार है—सर्वोपराम करके श्रेणिसे नीचे उतरनेवाले चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले उपशामक जीवके वारह कपायोंके अपकर्षणमें व्यापृत रहते हुए जब तक सात नोकपायोंका अपकर्षण नहीं होता तब तक उसके चौदह प्रकृतिक संक्रमस्थानका उत्कृष्ट काल होता है । तथा इसी प्रकार छह और नौ प्रकृतिक संक्रामकके उत्कृष्ट कालका भी कथन करना चाहिये । किन्तु इतनी विवेकता है कि जो इक्कीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला उपशामक जीव सर्वोपरामनासे च्युत हो रहा है उसके क्रमसे तीन प्रकारकी माया और तीन प्रकारके मानका अपकर्षण करने पर प्रकृत स्थानोंके उत्कृष्टकालका कथन करना चाहिये । अब एक प्रकृतिक संक्रमस्थानके जघन्य और उत्कृष्ट कालका कथन करनेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

❀ एक प्रकृतिक संक्रामकका कितना काल है ?

§ ३९८. यह सूत्र सुगम है ।

❀ जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ।

३९८. जो क्षपक जीव मान संञ्चलनका क्षय करनेके बाद एक प्रकृतिका संक्रामक हो गया है उसके माया संञ्चलनके क्षण करणमें जो अन्तर्मुहूर्त काल लगता है वह एक प्रकृतिके संक्रामकका काल है । किन्तु वह क्रोध और मानके उदयसे क्षपकश्रेणि पर चढ़े हुए जीवके जघन्यरूप होता है और मायाके उदयसे चढ़े हुए जीवके उत्कृष्टरूप होता है ऐसा यहाँ ग्रहण करना चाहिये ।

३९९. इस प्रकार आघसे सब संक्रमस्थानोंके कालका कथन करके अब आदेशका कथन करनेके लिये उच्चारणाको धतलाते हैं । यथा—आदेशे नारकियेमें सत्ताईस और पच्चीस प्रकृतिक संक्रामकका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल तेतीस सागर है । छवीस प्रकृतिक

उक० तेत्तीसं सागरो० अंतोमुहुत्तूणाणि । २१ संका० जह० एयस०, उक० सागरो-  
वमाणि देखणाणि । एवं पढमाए । पवरि उक० सगद्धिदी । विदियादि जाव सचमा  
त्ति एवं चैव । पवरि सगद्धिदी वचन्वा । २१ संका० जह० एयस०, उक० अंतोमुहुत्तं ।

संक्रामकका काल ओघके समान है । तेईस प्रकृतिक संक्रामकका जघन्य काल एक समय है और उच्छ्रष्ट काल अन्तर्मुहूर्तकम तेतीस सागर है । तथा इक्कीस प्रकृतिक संक्रामकका जघन्य काल एक समय है और उच्छ्रष्ट काल कुछ कम एक सागर है । इसी प्रकार प्रथम पृथिवीमें कइना चाहिये । किन्तु इतनी विरोधता है कि उच्छ्रष्ट काल अपनी रियतिप्रमाण कइना चाहिये । दूसरी पृथिवीसे लेकर सातवीं पृथिवी तक कालका कथन इसी प्रकार करना चाहिये । किन्तु इतनी विरोधता है कि यहां पर उच्छ्रष्ट काल अपनी अपनी स्थितिप्रमाण कइना चाहिये । तथा इन पृथिवियोंमें इक्कीस प्रकृतिक संक्रामकका जघन्य काल एक समय है और उच्छ्रष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ।

विशेषार्थ—अन्य गतिका जो जीव सम्यक्त्वकी उहेलनामें एक समय जेप रहने पर मर कर नरकमें उत्पन्न हुआ है, उसके नरकमें २७ प्रकृतिक संक्रमस्थानका जघन्य काल एक समय प्राप्त होता है । यह २७ प्रकृतिक संक्रमस्थानकी जघन्य काल विषयक ओघ प्ररूपण। प्रथमादि सातों नरकोंमें घटित हो जाती है । तथा जो सातवें नरकवा नारकी जीव जीवनेके प्रारम्भमें व अन्तमें २८ प्रकृतियोंकी सत्तावाला मिथ्यादृष्टि रहता है और मध्यमें पूरे काल तक अन्तानुबन्धकी विमंथोजना किये बिना बंदकसम्यग्दृष्टि हो जाता है, उसके २७ प्रकृतियोंके संक्रामकका उच्छ्रष्ट काल ३३ सागर प्राप्त होता है । आशय यह है कि ऐसे जीवोंको जीवन भर २८ प्रकृतियोंकी सत्तावाला बनाये रखनेके साथ सासादन और मिश्र गुणस्थानमें नहीं ले जाना चाहिये । तब जाकर २७ प्रकृतिक संक्रमस्थानका यह उच्छ्रष्ट काल प्राप्त होता है । सातवें नरकमें यह उच्छ्रष्ट काल इसी प्रकार घटित करना चाहिये । किन्तु जेप नरकोंमें उम कालको अपनी अपनी आयु प्रमाण कइना चाहिये । इतनी विरोधता है कि छठे नरक तकके जीवोंको अन्तमें मिथ्यात्वमें ले जानेका कोई कारण नहीं है, क्योंकि वहां तकके नारकियोंका सम्यग्दर्शनके रहते हुए भी, मरण होता है । २५ प्रकृतियोंके संक्रामकका जघन्य काल एक समय जिस प्रकार ओघ प्ररूपणमें घटित पर आये हैं उसी प्रकार यहाँ भी घटित कर लेना चाहिये । तथा सामान्यसे नारकीकी उच्छ्रष्ट आयु तेतीस सागर होती है अतः उम स्थानका उच्छ्रष्ट काल तेतीस सागर कहा है । प्रथमादि नरकोंमें भी इस स्थानके जघन्य और उच्छ्रष्ट कालका इसी प्रकार प्राप्त कर लेना चाहिये । केवल उच्छ्रष्ट काल अपनी अपनी आयु-प्रमाण कइना चाहिये । इक्कीस प्रकृतिक संक्रमस्थानके जघन्य और उच्छ्रष्ट कालका जो क्रम ओघसे बतलाया है वह क्रम यहाँ नरकमें भी सामान्यसे या प्रत्येक नरकमें बन जाता है, इसलिये यहाँ इस स्थानका काल ओघके समान होता है यह निर्देश किया है । तेईस प्रकृतिक संक्रमस्थानका जघन्य काल एक समय जिस प्रकार ओघसे घटित कर आये हैं उनी प्रकार वहा नरकमें भी घटित कर लेना चाहिये । किन्तु उच्छ्रष्ट कालमें कुछ विरोधता है । बात यह है कि सामान्यसे नरकायु तेतीस सागरसे अधिक नहीं होती, अतः तेईस प्रकृतिक संक्रमस्थानका उच्छ्रष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कम तेतीस सागर और प्रत्येक नरककी अपेक्षा अन्तर्मुहूर्त कम अपनी अपनी उच्छ्रष्ट आयुप्रमाण प्राप्त होता है । २१ प्रकृतिक संक्रमस्थानका जघन्य काल एक समय सासादन गुणस्थानकी अपेक्षासे और उच्छ्रष्ट काल कुछ कम एक सागर चायिकसम्यग्दर्शनकी अपेक्षासे प्राप्त होता है, अतः सामान्यसे नरकमें व प्रथम नरकमें यह कथन इसी प्रकारसे बन जाता है । किन्तु द्वितीयादि नरकोंमें चायिक सम्यग्दृष्टि नहीं पैदा होते, अतः वहाँ उच्छ्रष्ट काल मिश्र गुणस्थानकी अपेक्षासे घटित करना चाहिये । इसीसे द्वितीयादि नरकोंमें २१ प्रकृतिक संक्रमस्थानका उच्छ्रष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कहा है ।

§ ३९१. तिरिक्खेसु २७ संका० जह० एयस०, उक्क० तिण्णि पलिदोवमाणि पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागेण<sup>१</sup> सादिरैयाणि । २६ संका० ओवभंगो । २५ संका० जह० एगस०, उक्क० अणंतकालमसंखेज्जा पोगगलपरियड्ढा । २३ संका० जह० एयस०, उक्क० तिण्णि पलिदोवमाणि देवणाणि । २१ संका० जह० एयस०, उक्क० तिण्णि पलिदो० । एवं पंचिदियतिरिक्खतिय०३ । णवरि २७, २५ संका जह० एयस०, उक्क० तिण्णि पलिदोवमाणि पुच्चकोट्टिपुधत्तेणभहियाणि । जोणिणीसु २१ संका० जह० एयस०, उक्क० अंतोमुहुत्तं । पंचिदियतिरिक्खअपज्ज०-मणुसअपज्ज० २७, २६, २५ संका० जह० एयस०, उक्क० अंतोमुहुत्तं ।

§ ३९२. मणुसतिए २७, २५, २३ पंचिदियतिरिक्खभगो । २१ संका० जह०

§ ३९१. तिरिक्खेमे २७ प्रकृतिक संक्रामकका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल पल्यके असंख्यातवर्षे भागसे अधिक तीन पल्य है । २६ प्रकृतिक संक्रामकका काल ओवके समान है । २५ प्रकृतिक संक्रामकका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अनन्त काल है जो कि असंख्यात पुद्गलपरिवर्तनप्रमाण है । २३ प्रकृतिक संक्रामकका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल कुछ कम तीन पल्य है । तथा २१ प्रकृतिक संक्रामकका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल तीन पल्य है । इसी प्रकार पंचेन्द्रिय तिरिक्खत्रिकमे जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि इनमे २७ और २५ प्रकृतिक संक्रामकका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल पूर्वकोटि पृथक्त्व अधिक तीन पल्य है । योनिनी तिरिक्खेमे २१ प्रकृतिक संक्रामकका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तमुहूर्त है । पंचेन्द्रिय तिरिक्खे अपर्याप्त और मनुष्य अपर्याप्तकोमे २७, २६ और २५ प्रकृतिक संक्रामकका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तमुहूर्त है ।

**विशेषार्थ—**यहां तिरिक्खगतिमें और उसके अवान्तर भेदोंमें सम्भव संक्रमस्थानोंका काल बतलाया गया है सो यहां सम्भव स्थानोंके जघन्य कालका खुलासा जिस प्रकार नरकगतिमें कर आये हैं उसी प्रकार यहां पर भी कर लेना चाहिये । अब रही उत्कृष्ट कालकी बात सो उसका खुलासा करते हैं—कोई एक २८ प्रकृतियोंकी सत्तावाला मिथ्यादृष्टि तिरिक्ख है जिसे सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वेलना करते हुए पल्यका असंख्यातवर्षा भाग काल हो गया है । फिर यह जीव तीन पल्यकी आयुवाले तिरिक्खेमे उत्पन्न हुआ और वहाँ इनकी उद्वेलनाको पूरा करनेके पूर्व ही वह सम्यग्दृष्टि हो गया और अन्त तक सम्यग्दृष्टि बना रहा तो इस प्रकार तिरिक्खेमे २७ प्रकृतिक संक्रमस्थानका उत्कृष्ट काल पल्यका असंख्यातवर्षा भाग अधिक तीन पल्य बन जाता है । सादिसान्त विकल्पकी अपेक्षा तिरिक्खगतिमें निरन्तर रहनेका काल अनन्त, काल है । इसीसे पक्षीस प्रकृतिक संक्रमस्थानका उत्कृष्ट काल उक्त प्रमाण बतलाया है । तिरिक्खेमे अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजनसे युक्त वेदक सम्यक्त्वका उत्कृष्ट काल कुछ कम तीन पल्य प्राप्त होता है । इसीसे यहाँ २३ प्रकृतिक संक्रमस्थानका उत्कृष्ट काल उक्त प्रमाण कहा है । तथा तिरिक्खेमे त्रायिकसम्यग्दृष्टि भी पैदा होते हैं, इसलिये तिरिक्खगतिमें २१ प्रकृतिक संक्रमस्थानका उत्कृष्ट काल तीन पल्य कहा है । शेष कथन सुगम है ।

§ ३९२. मनुष्यत्रिकमे २७, २५ और २३ प्रकृतिक संक्रामकका काल पंचेन्द्रिय तिरिक्खेके

१ ता०प्रती - पलिदोवमाणि असंखेज्जभागेण इति पाठः ।

एयसमओ, उक्० तिष्ठिण पक्षिद्रोवमाणि पुञ्चकोडितिभागेण मादिरैयाणि । मणुमिपीरु पुञ्चकोडी देवणा । सेसमोचं । णवरि मणुस्तिणी० १४ संका० पत्थि । १२ जहण्णुक्सेण अंतोमुहुत्तं । अथवा दोण्हं पि ओयरमाणस्स जह० एयसमओ, उक्० अंतोमुहुत्तं ।

३०३. देवेषु २७, २३, २१ संका० जह० एयसमओ, उक्० तेत्तीसं सागरोवमाणि । २६ संका० ओषभंगो । २५ जह० एयसमओ, उक्० एकक्तीसं सागरोवमाणि । एवं भवणादि जाव णवगेवजा ति । णवरि सगट्टिदी । अण्णं च भवण०-वाण०-जोइसि० २१ जह० एयसमओ, उक्० अंतोमु० । अणुदिमादि जाव सञ्चट्टा ति २७, २३ जह० अंतोमुहुत्तं, उक्० सगट्टिदी । २१ जह० जहण्णट्टिदी, उक्० उक्कस्सट्टिदी । णवरि सञ्चट्टे जहण्णुक्सेभेदो पत्थि । एवं जाव० ।

समान है । २१ प्रकृतिक संक्रामकका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल एक पूर्वकोटिका त्रिभाग अधिक तीन पत्थि है । किन्तु मनुष्यनियोगे २१ प्रकृतिक संक्रमस्थानका उत्कृष्ट काल एक एक पूर्वकोटिप्रमाण है । जेप कथन ओषके समान है । किन्तु इतनी विधेयता है कि मनुष्यनियोगे १४ प्रकृतिक संक्रमस्थान नहीं है और १२ प्रकृतिक संक्रमस्थानका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । अथवा उपशमश्रणिसे उत्तरतेजाले मनुष्यनी जीवकी अपेक्षा दोनो ही स्थानोंका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ।

विशेषार्थ—एक पूर्वकोटिकी आयुवाले जिस मनुष्यने त्रिभागमें आयुका बन्ध करके क्षात्रिक मन्थरदर्शन उपाजित किया है और फिर मरकर जो तीन पत्थिकी आयुवाले मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ है उसके इतने काल तक मनुष्योंमें २१ प्रकृतिक संक्रमस्थान देखा जाता है अतः मनुष्योंमें २१ प्रकृतिक संक्रमस्थानका उत्कृष्ट काल एक पूर्वकोटिका त्रिभाग अधिक तीन पत्थि कहा है । किन्तु यह अर्थथा मनुष्यनियोगे नहीं बन सकती, क्योंकि सौर्यदेवियोंमें सम्पन्नदि जीव मरकर नहीं उत्पन्न होता है, इसलिये मनुष्यनियोगे २१ प्रकृतिक संक्रमस्थानका उत्कृष्ट काल एक एक पूर्वकोटि कहा है । मनुष्यनीके उपशमश्रणिमें चढ़ते समय १० प्रकृतिक संक्रमस्थान नहीं प्राप्त होता किन्तु शपकश्रणिमें ही प्राप्त होता है, इसलिये मनुष्यनीमें १२ प्रकृतिक संक्रमस्थानका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कहा है । किन्तु इसके उपशमश्रणिसे उत्तरते समय १२ और १४ प्रकृतिक दोनो संक्रमस्थान बन जाते हैं और इन स्थानोंका उपशमश्रणिमें जघन्य काल एक समय तथा उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है, अतः यहाँ भी इनका एक प्रमाण काल कहा है । जेप कथन सुगम है ।

१ ३६१. देवोंमें २५, २३ और २१ प्रकृतिक संक्रामकका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल तेत्तीस सागर है । २६ प्रकृतिक संक्रामकका भंग ओषके समान है । २५ प्रकृतिक संक्रामकका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल एकतीस सागर है । इन्ही प्रकार भवनवासिधेसे लेकर नौ प्रवेयक तकके देवोंमें जानना चाहिये । किन्तु इतनी विधेयता है कि अपनी-अपनी उत्कृष्ट स्थिति कहनी चाहिये । दूसरे भवनवामी, व्यन्तर और ज्योतिषी देवोंमें २१ प्रकृतिक संक्रामकका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । अनुदिशासे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें २७ और २३ प्रकृतिक संक्रामकका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल अपनी-अपनी स्थितिप्रमाण है । २१ प्रकृतिक संक्रामकका जघन्य काल जघन्य स्थितिप्रमाण है और उत्कृष्ट काल उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है । किन्तु इतनी विधेयता है कि सर्वार्थसिद्धिसे अपनी स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट भेद नहीं है । इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिये ।



❀ एत्तो एयजीवेण अंतरं ।

§ ३९४. एत्तो उवरि जहावसरपत्तमेयजीवेणंतरं भणिस्सामो ति पइज्जासुत्तमेदं ।

❀ सत्तावीस-छव्वीस-तेवीस-इगिवीससंक्रामणंतरं केवचिरं कालादो होदि ? जहणणेण एयसमओ, उक्कस्सेण उवड्डुपोगलपरियट्टं ।

§ ३९५. तं जहा—सत्तावीसाए जह० एयसमओ ति एदस्स अत्थे भणणमाणे एओ सत्तावीससंक्रामओ उवसमसम्माइट्ठी सगद्धाए एयसमओ अत्थि ति सासणगुणं पड्विवज्जिय एयसमयं पणुवीसं संक्रमेणंतरिय पुणो मिच्छाइट्ठीभावेण सत्तावीससंक्रामओ जादो, लद्धं पयदजहणणंतरं । अहवा सत्तावीससंक्रामओ मिच्छाइट्ठी समत्तमुव्वेलेमाणो

विशेषार्थ—गुणस्थानका परिवर्तन नीचे प्रवेयक तक ही सम्भव है और यहाँ तक मिथ्यादृष्टि जीव मरकर उत्पन्न होता है, इसलिये पच्चीस प्रकृतिक संक्रमस्थानका उत्कृष्ट काल २१ सागर कहा है। भवनवासी आदि तीन प्रकारके देवोंमें चायिक सम्यग्दृष्टिका उत्पन्न होना सम्भव नहीं है, इसलिये इनमें मिश्र गुणस्थानकी अपेक्षा २१ प्रकृतिक संक्रमस्थानका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कहा है। जो २८ प्रकृतियोंकी सत्तावाला सम्यग्दृष्टि जीव अनुदिश आदिमें उत्पन्न हुआ है और अन्तर्मुहूर्तमें जिसने अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना कर दी है उसके २७ प्रकृतिक संक्रमस्थान का जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त प्राप्त होता है। इसी प्रकार जिसने आयुमें अन्तर्मुहूर्त काल शेष रहने पर अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना की है उसके तेईस प्रकृतिक संक्रमस्थानका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त प्राप्त होता है। यहाँ यद्यपि भवनत्रिकमें भी २३ प्रकृतिक संक्रमस्थानका उत्कृष्ट काल अपनी-अपनी स्थितिप्रमाण बतलाया है पर यह काल अन्तर्मुहूर्त कम जानना चाहिये, क्योंकि इन देवोंमें सम्यग्दृष्टिकी उत्पत्ति सम्भव नहीं है। तथा अन्य प्रकारसे सतत २३ प्रकृतिक संक्रमस्थान यहाँ बन नहीं सकता है। शेष कथन सुगम है।

\* अब इससे आगे एक जीवकी अपेक्षा अन्तरका अधिकार है।

§ ३९४. अब इस कान्तानुयोगद्वारके वाद अवसरप्राप्त एक जीवकी अपेक्षा अन्तरका कथन करते हैं इस प्रकार यह प्रतिज्ञा सूत्र है। अर्थात् इस सूत्रद्वारा एक जीवकी अपेक्षा अन्तरके कहनेकी प्रतिज्ञा की गई है।

\* सत्ताईस, छव्वीस, तेईस और इक्कीस प्रकृतिक संक्रामकका कितना अन्तर काल है ? जघन्य अन्तर काल एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर काल उपार्धपुद्गल-परिवर्तनप्रमाण है।

§ ३९५. सुलासा इस प्रकार है—सर्व प्रथम सत्ताईस प्रकृतिक संक्रामकका जघन्य अन्तर काल एक समय है इसका अर्थ कहते हैं—किसी एक सत्ताईस प्रकृतिक संक्रामक उपशमसम्यग्दृष्टि जीवने उपशमसम्यक्त्वके कालमें एक समय शेष रहने पर सासादन गुणस्थानको प्राप्त होकर और एक समय तक पच्चीस प्रकृतियोंका संक्रम करके एक समयके लिये सत्ताईस प्रकृतियोंके संक्रमका अन्तर किया। फिर वह मिथ्यादृष्टि होकर सत्ताईस प्रकृतिक संक्रामक हो गया। इस प्रकार प्रकृत स्थानका जघन्य अन्तरकाल एक समय प्राप्त हो गया। अथवा किसी एक सत्ताईस प्रकृतिक संक्रामक मिथ्यादृष्टि जीवने सम्यक्त्वकी उद्वेजना करते हुए सम्यक्त्वके अभिमुख हो कर अन्तरकरण

सम्मत्ताहिमुहो होलणंतरं करिय मिच्छत्तपढमट्टिदिदुचरिमसमए सत्तावीससंक्रामयभावेण सम्मत्तचरिमफालिं मिच्छत्तसुवरि संक्रामिय तदो चरिमसमयम्मि छञ्चीससंक्रमेणंतरिय सम्मत्तं पडिवण्णपढमसमयम्मि पुणो वि सत्तावीससंक्रामयभावेण परिणदो तस्स लद्धमंतरं । उक्क० उवट्टपोग्गलपरियट्टपस्वणा कीरदे । तं कथं ? एगो अणादियमिच्छाइट्ठी अट्टपोग्गलपरियट्टसादिसमये उवसमसम्मत्तं पडिवज्जिय सच्चलहं मिच्छत्तं गंतूण सच्च-जहण्णुव्वेन्नलणकालेण सम्मत्तमुव्वेन्निय सत्तावीसाए अंतरमुप्पाइय देसणमट्टपोग्गल-परियट्टं परियट्टिय सच्चजहण्णंतोमुहुत्तावसेसे सिञ्जिद्वए त्ति उवसमसम्मत्तं पडिवण्णो तस्स विट्ठियसमए सत्तावीसं संक्रामेमाणस्स लद्धमंतरं होइ ।

१ ३०६. संपहि छञ्चीसाए जहण्णेण्येयसमयमंतरपरुवणा कीरदे । तं जहा—उव्वेन्निलदसम्मत्तसंतकम्मो छञ्चीससंक्रामओ उवयससम्मत्ताहिमुहो होट्टण मिच्छत्तपढम-ट्टिदिदुचरिमसमए सम्मामिच्छत्तचरिमफालिं मिच्छत्तसरुवेण संक्रामिय तदणंतरसमए वि पणुवीमसंक्रमेणंतरिय उवसमसम्मत्तं पडिवण्णपढमसमयम्मि पुणो छञ्चीससंक्रामओ जादो, लद्धमेगसमयमेत्तं जहण्णंतरं । उक्कसंतरं पुण अट्टपोग्गलपरियट्टादिसमए

क्रिया की। अन्तर मिथ्यात्वकी प्रथम स्थितिके उपान्त्य समयमें सत्ताईस प्रकृतियोंका संक्रम करते हुए सम्यक्त्वकी अन्तिम फालिका मिथ्यात्वमें संक्रम क्रिया। फिर अन्तिम समयमें उसने छञ्चीस प्रकृतियोंके संक्रम द्वारा एक समयके लिये सत्ताईस प्रकृतियोंके संक्रमका अन्तर क्रिया। फिर सम्यक्त्वको प्राप्त करके उसके प्रथम समयमें वह फिरसे सत्ताईस प्रकृतिक संक्रामक हो गया। इन प्रकार इनके सत्ताईस प्रकृतिक संक्रमका जघन्य अन्तर काल एक समय प्राप्त हुआ। अब उपार्ध पुद्गल परिवर्तनप्रमाण उत्कृष्ट अन्तरका कथन करते हैं। यथा—किसी एक अनादि मिथ्या-दृष्टि जीवने अर्धपुद्गलपरिवर्तनके प्रथम समयमें ही उपशम सम्यक्त्वको प्राप्त कर, अतिशीघ्र मिथ्यात्वमें जाकर, सबसे जघन्य उद्वेलन कालके द्वारा सम्यक्त्वकी उद्वेलना करके सत्ताईस प्रकृतिक संक्रमका अन्तर उत्पन्न क्रिया। फिर वह कुछ कम अर्ध पुद्गल परिवर्तन काल तक परिभ्रमण करता रहा और जब सिद्ध होनेके लिये सबसे जघन्य अन्तर्मुहूर्त काल श्रेय रहा तब वह उपशम-सम्यक्त्वको प्राप्त हो गया और उसके दूसरे समयमें वह सत्ताईस प्रकृतियोंका संक्रम करने लगा। इस प्रकार प्रकृत स्थानका उत्कृष्ट अन्तरकाल प्राप्त हो गया।

१ ३६६. अब छञ्चीस प्रकृतिक संक्रमस्थानके जघन्य अन्तर एक समयका कथन करते हैं। यथा—जिसने सम्यक्त्वकी उद्वेलना कर दी है ऐसे किसी एक छञ्चीस प्रकृतियोंका संक्रमण करनेवाले जीवने सम्यक्त्वके अभियुक्त होकर मिथ्यात्वकी प्रथम स्थितिके द्विचरम समयमें सम्यग्मिथ्यात्वकी अन्तिम फालिको मिथ्यात्वरूपसे संक्रमित क्रिया। फिर तदनन्तर समयमें अर्थात् मिथ्यात्व गुणस्थानके अन्तिम समयमें पञ्चीस प्रकृतियोंके संक्रमण द्वारा एक समयके लिये छञ्चीस प्रकृतियोंके संक्रमणका अन्तर करके उपशम सम्यक्त्वको प्राप्त किया और उसको प्राप्त करनेके प्रथम समयमें वह फिरसे छञ्चीस प्रकृतियोंका संक्रमण करने लगा। इस प्रकार छञ्चीस प्रकृतिक संक्रमस्थानका जघन्य अन्तर एक समय प्राप्त हो जाता है। अब उत्कृष्ट अन्तर कालका खुलासा करते हैं—किसी एक जीवने अर्धपुद्गलपरिवर्तनके प्रथम समयमें ही उपशम सम्यक्त्वको प्राप्त

उवसमसम्मत्तं पडिवज्जिय सव्वलहुं मिच्छत्तं गंतूण सव्वजहणुण्वेत्थणकालेण सम्मत्त-  
मुव्वेत्थिय छव्वीससंक्रामओ होदूण सव्वलहुएण कालेण सम्मामिच्छत्तमुव्वेत्थिय  
पणुव्वीससंक्रमेणंतरिय पोग्गलपरियट्टद्धं देत्थणं परिभमिय अंतोमुहुत्तावसेसे संसारे  
उवसमसम्मत्तं पडिवज्जिय छव्वीसं संक्रामेमाणस्स लद्धमंतरं होइ ।

§ ३९७. तेवीसाए जहणणेोर्यसमयमेत्तंतेरे भण्णमाणे चउवीससंतकम्मिओवसम-  
सम्माइट्ठी तेवीससंक्रामओ तदद्दाए एयसमओ अत्थि त्ति सासणभावं गंतूण इगिवीस-  
संक्रमेणंतरिय विदियसमए मिच्छत्तगमणेण तेवीससंक्रामओ जादो, लद्धमंतरं होइ ।  
अहवा तेवीससंक्रामओ उवसमसेट्ठिमारुहिय अंतरकरणपरिसमत्तिसमणंतरमेवाणुव्वी-  
संक्रममाटविय एयसमए वावीससंक्रमेणंतरिय विदियसमए देवेसुववण्णो तेवीससंक्रामओ  
जादो, लद्धं जहणणमंतरमेयसमयमेत्तं । उक्कस्सेणुव्वट्ठपोग्गलपरियट्टंतरपरुव्वणं कस्सामो ।  
अद्धपोग्गलपरियट्टादिसमए सम्मत्तं पडिवज्जिय उवसमसम्मत्तकालभंतरं चेय अणंताणु-  
चउकं विसंजोइय तेवीससंक्रमस्सादिं काऊण उवसमसम्मत्तद्दाए छावलियमेत्तावसेसाए  
आसाणं पडिवण्णो इगिवीससंक्रमेणंतरिय पुणो मिच्छत्तं गंतूण उव्वट्ठपोग्गलपरियट्टमेत्त-

किया । फिर अतिशीघ्र मिथ्यात्वमें जाकर और सबसे जघन्य उद्वेलन कालके द्वारा सम्यक्त्व-  
की उद्वेलना करके वह छव्वीस प्रकृतियोंका संक्रामक हो गया । फिर अति स्वल्प कालके द्वारा  
सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वेलना करके पचवीस प्रकृतियोंके संक्रमण द्वारा छव्वीस प्रकृतियोंके संक्रमणका  
अन्तर किया । फिर वह कुछ कम अर्धपुद्गलपरिवर्तन काल तक परिभ्रमण करता रहा और जब  
संसारमें रहनेका काल अन्तमुं हूँत शेष रहा तब वह उपशम सम्यक्त्वको प्राप्त होकर एक समयके लिये  
छव्वीस प्रकृतियोंका संक्रामक हो गया । इस प्रकार प्रकृत स्थानका उत्कृष्ट अन्तर प्राप्त हो जाता है ।

§ ३९७. अब तेईस प्रकृतिक संक्रमस्थानके जघन्य अन्तर एक समयका कथन करते हैं—  
जो चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला उपशम सम्यग्दृष्टि जीव तेईस प्रकृतियोंका संक्रम कर रहा है  
उसने उपशम सम्यक्त्वके कालमें एक समय शेष रहने पर सासादन गुणस्थानको प्राप्त होकर  
इक्कीस प्रकृतियोंके संक्रमणद्वारा एक समयके लिये तेईस प्रकृतियोंके संक्रमका अन्तर किया ।  
फिर दूसरे समयमें मिथ्यात्वमें चले जानेसे वह फिरसे तेईस प्रकृतियोंका संक्रामक हो गया । इस  
प्रकार प्रकृत स्थानका जघन्य अन्तर एक समय प्राप्त हो जाता है । अथवा कोई एक तेईस प्रकृतियोंका  
संक्रमण करनेवाला जीव उपशमश्रेणि पर चढ़ा और अन्तरकरणकी समाप्तिके बाद ही आतुपूर्वी  
संक्रमका प्रारम्भ करके एक समयके लिये उसने चाईस प्रकृतियोंके संक्रमण द्वारा तेईस प्रकृतियोंके  
संक्रमका अन्तर किया । फिर दूसरे समयमें वह देवोंमें उत्पन्न होकर तेईस प्रकृतियोंका संक्रामक  
हो गया । इस प्रकार प्रकृत स्थानका जघन्य अन्तर एक समय प्राप्त हो जाता है । अब इस स्थानके  
उपार्धपुद्गलपरिवर्तनप्रमाण उत्कृष्ट अन्तरका कथन करते हैं—किसी एक जीवने अर्धपुद्गल-  
परिवर्तन कालके प्रथम समयमें सम्यक्त्वको प्राप्त करके और उपशम सम्यक्त्वके कालके भीतर ही  
अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विसंयोजना करके तेईस प्रकृतियोंके संक्रमका प्रारम्भ किया । फिर उपशम  
सम्यक्त्वके कालमें छह आवलि शेष रहने पर वह सासादन गुणस्थानको प्राप्त हुआ और इक्कीस  
प्रकृतियोंके संक्रम द्वारा तेईस प्रकृतियोंके संक्रमका अन्तर करके वह मिथ्यात्वमें गया । फिर वहां

कालमाविद्धकुलालचक्रं व परिभमिय सञ्चजहण्णंतोमुहुत्तावसेसे संसारे उवसमसम्मत्तं वेचण वेदग्भावं पडिवज्जिय खवगसेदिमारोहणद्धं अणंताणु० विसंजोइय तेवीससंक्रामओ जादो, लद्धमुक्कस्संतरं होइ ।

§ ३९८. इगिवीसाए जहण्णेयसमओ उच्चदे—एगो इगिवीससंतकम्मिओ उवसमसेदि चट्टिय अंतरकरणपरिसमत्तीए लोहासंकमवसेणेयसमयं वीससंकमेणंतरिय कालगदो देवो होऊणिगिवीससंक्रामओ जादो, लद्धं पयदजहण्णंतरं । संपहि उक्कस्संतरं उच्चदे । एगो अणादियमिच्छाइड्डी अद्धपोग्गलपरियट्टादिसमए पढमसम्मत्तं पडिवज्जिय तत्कालमंत्रे चैय अणंताणु०चउकं विसंजोइय उवसमसम्मत्तद्धाए छावलियमेत्तावसेसाए सासादणभावमामादिय इगिवीससंक्रामयभावेणावलियमेत्तकालं गालिय तदणंतरसमए पणुवीससंक्रमेणंतरिय तदो मिच्छत्तेणद्धपोग्गलपरियट्टमेत्तकालं परियट्टिय सञ्चजहण्णंतो-मुहुत्तमेत्तावसेसे सिद्धिद्वए दंसणमोहं खविय इगिवीससंक्रामओ जादो. लद्धमिगिवीस-संक्रामयस्स देसूणद्धपोग्गलपरियट्टमेत्तमुक्कस्संतरं । एवमेदेसिं चउण्हं संक्रमट्टाणणं जहण्णुक्कस्संतरं विसयणिणणयं काऊण संपहि पणुवीससंक्रमट्टाणस्स तदुभयणिस्सवणद्ध-मुवरिमसुत्तं भणइ—

धुमाये गये कुन्हारके चक्केके समान कुञ्ज कम अर्धपुद्गलपरिवर्तनप्रमाण काल तक परिभ्रमण करता रहा और जब संसारमें रहनेका सबसे जघन्य अन्तर्मुहूर्त काल गेप वचा तब वह उपशम सम्यक्त्वको प्राप्त हुआ और वेदक सम्यक्त्वको प्राप्त करके क्रमसे क्षपकक्षेणि पर चढ़नेके लिये अन्तानुवन्धीकी विसंयोजना करके तेईस प्रकृतियोंका संक्रामक हो गया । इस प्रकार तेईस प्रकृतिक संक्रमस्थानका उत्कृष्ट अन्तर प्राप्त हो जाता है ।

§ ३९८. अब इक्कीस प्रकृतिक संक्रमस्थानके जघन्य अन्तर एक समयका कथन करते हैं—एक इक्कीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला जीव उपशमक्षेणि पर चढ़ा और उसने अन्तरकरणकी समाप्ति होनेपर लोभका संक्रम न होनेसे एक समयके लिये बीस प्रकृतियोंके संक्रमणद्वारा इक्कीस प्रकृतियोंके संक्रमका अन्तर किया । फिर वह मरा और देव होकर इक्कीस प्रकृतियोंका संक्रामक हो गया । इस प्रकार प्रकृत स्थानका जघन्य अन्तर एक समय प्राप्त हो जाता है । अब उत्कृष्ट अन्तरका कथन करते हैं—एक अनादि मिथ्यादाष्ट जीवने अर्धपुद्गलपरिवर्तनप्रमाण कालके प्रथम समयमें उपशमसम्यक्त्व प्राप्त करके उसी कालके भीतर अन्तानुवन्धीचतुष्ककी विसंयोजना की । फिर उपशमसम्यक्त्वके कालमें छह आवलि गेप रहने पर सासादन गुणस्थानको प्राप्त होकर एक आवलि काल तक इक्कीस प्रकृतियोंका संक्रमण करता रहा । फिर तदनन्तर समयमें पचीस प्रकृतियोंके संक्रमद्वारा इक्कीस प्रकृतियोंके संक्रमका अन्तर किया । फिर मिथ्यात्वके साथ कुछ कम अर्धपुद्गलपरिवर्तनकाल तक परिभ्रमण किया और जब सिद्ध होनेके लिये सबसे जघन्य अन्तर्मुहूर्त काल गेप रहा तब दर्शनमोहनीयका क्षय करके इक्कीस प्रकृतियोंका संक्रामक हो गया । इस प्रकार इक्कीस प्रकृतियोंके संक्रामकका कुलकम अर्धपुद्गलपरिवर्तनप्रमाण उत्कृष्ट अन्तरकाल प्राप्त होजावा है । इस प्रकार इन चार संक्रमस्थानोंके जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर कालका निर्णय करके अब पचीस प्रकृतिक संक्रमस्थानके उक्त दोनों अन्तर कालोका निर्णय करनेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

१. ता०प्रतौ —करण परिसमत्तीए इति पाठः । २. आ०प्रतौ —मेचमिस्संतरं इति पाठः ।

❖ पणुवीससंक्रामयंतरं केवचिरं कालादो होइ ?

§ ३९९. सुगमं ।

❖ जहएणेण अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण वेळ्ळावडिसागरोवमाणि सादिरैयाणि ।

§ ४००. एत्थ ताव जहण्णंतरं वुच्चदे । तं जहा—एओ सम्मामिच्छइड्डी पणुवीससंक्रामयभावेणावडिदो परिणामपच्चएण सम्मत्तं मिच्छत्तं वा परिणमिय तत्थ सव्वजहण्णंतोमुहुत्तमेत्तकालं सत्तावीससंक्रमेणंतरिय पुणो सम्मामिच्छत्तमुवणमिय पणुवीससंक्रामओ जादो, लद्धमंतरं । संपहि उक्कस्संतरपरुवणं कस्सामो—अणणदरो मिच्छइड्डी पणुवीससंक्रामओ उवसमसम्मत्तं पडिवज्जिय अविवक्खियसंक्रमद्धानेणंतरिय पुणो मिच्छत्तं गंतूण सव्वुक्कस्सेणुव्वेळ्ळणकालेण सम्मत्त-सम्मामिच्छत्तमुव्वेळ्ळमाणो उवसमसम्मत्ताहिमुहो होदूण अंतरकरणं करिय मिच्छत्तपढमड्ढिदिचरिमसमए सम्मामिच्छत्तचरिमफालिं संक्रामिय तदणंतरसमए सम्मत्तं पडिवज्जिय पढमछावडिं परिभमिय तदवसाणे मिच्छत्तं गंतूण पलिदोवमासंखेज्जभागमेत्तकालं सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताण-मुव्वेळ्ळणवावारेणच्छिय तदो पयदाविरोहेण सम्मत्तं घेत्तूण विदियछावडिमणुपालिय तदवसाणे पुणो वि मिच्छत्तं गंतूण दीहुव्वेळ्ळणकालेण सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणि

\* पचीस प्रकृतिक संक्रामकका कितना अन्तरकाल है ?

§ ३९९. यह सूत्र सुगम है ।

\* जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तरकाल साधिक दो छयासठ सागर है ।

§ ४००. अब यहाँ सर्वे प्रथम जघन्य अन्तरकालका कथन करते हैं । यथा—पचीस प्रकृतियोंका संक्रम करनेवाला कोई एक सम्यग्मिध्याहृष्टि जीव परिणामवशा सम्यक्त्वको या मिध्यात्वको प्राप्त हुआ और वहाँ उसने सबसे जघन्य अन्तर्मुहूर्त कालतक सत्ताईस प्रकृतियोंके संक्रम द्वारा पचीस प्रकृतियोंके संक्रमका अन्तर किया । फिर वह सम्यग्मिध्यात्वको प्राप्त होकर पचीस प्रकृतियोंका संक्रामक हो गया । इस प्रकार पचीस प्रकृतिक संक्रमस्थानका जघन्य अन्तर प्राप्त हो जाता है । अब उत्कृष्ट अन्तरकालका कथन करते हैं—किसी एक पचीस प्रकृतियोंके संक्रामक मिध्याहृष्टि जीवने उपशमसम्यक्त्वको प्राप्त करके अविश्लित संक्रमस्थानके द्वारा प्रकृत संक्रमस्थानका अन्तर किया । फिर वह मिध्यात्वमें जाकर सबसे उत्कृष्ट उद्वेलेना कालके द्वारा सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वकी उद्वेलेना करता हुआ उपशम सम्यक्त्वके अभिमुख हुआ । फिर अन्तरकरणको करके मिध्यात्वकी प्रथम स्थितिके चरम समयमें सम्यग्मिध्यात्वकी अन्तिम फालिका संक्रमण करके तदनन्तर समयमें सम्यक्त्वको प्राप्त हुआ । फिर प्रथम छयासठ सागर काल तक परिभ्रमण करके उसके अन्तमें मिध्यात्वको प्राप्त हुआ । फिर पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण काल तक सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वकी उद्वेलेना करते हुए जिससे प्रकृतमें विरोध न पड़े इस ढंगसे सम्यक्त्वको प्राप्त हुआ । फिर दूसरे छयासठ सागर काल तक सम्यक्त्वका पालन करके उसके अन्तमें फिरसे मिध्यात्वमें गया और वहाँ सबसे दीर्घ उद्वेलेनकालके द्वारा सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वकी उद्वेलेना करके

उन्वेव्लिऊण पणुवीससंक्रामओ जादो, लद्धं तीहि पलिदोवमासंखेजभागेहि सादिरैय-  
वेछावट्टिसागरोवममेत्तं पणुवीससंक्रामयस्स उक्कस्संतरं । संपहि वावीसादिसंक्रमणान-  
मंतरपरुवणद्धमुत्तरसुत्तं भणइ—

❀ वावीस-वीस-चोदस-तेरस-एक्कारस-दस-अद्ध-सत्त-पंच-चदु-दोएणि-  
संक्रामयंतरं केवचिरं कालादो होदि ?

§ ४०१. सुगमं ।

❀ जहएणेण अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण उवडुपोग्गलपरियट्टं ।

§ ४०२. वावीसाए ताव जहणंतरपरुवणा कीरदं—एक्को चउवीससंतकम्मिओव-  
सामओ लोभासंक्रमसेण वावीसाए संक्रामओ होदण पुणो णनुंसयवेदमुवसामिय  
अंतरिदो उवरं चदिय पुणो हेड्डा ओदरिय इत्थिवेदोक्कट्टणाणंतरं वावीससंक्रामओ  
जादो, लद्धमंतरं जहणणेत्तोमुहुत्तमेत्तं । एवं वीसाए । णवरि इगिवीससंतकम्मियस्स  
वत्तन्वं । चोदससंक्रामयस्स वि एवं चेव । णवरि चउवीससंतकम्मियस्स छण्णोक्कसायोव-  
सामणाए चोदमसंक्रमस्सादिं काट्टण पुरिसवेदोवसामणाए अंतरिदस्स पुणो हेड्डा ओदरिय  
तिविहक्कोहोक्कट्टणाणंतरं लद्धमंतरं कायन्वं । एवं तेरससंक्रामयस्स । णवरि पुरिसवेदोव-  
पचीस प्रकृतियोंका संक्रामक नां गया । इम प्रकार पचीस प्रकृतियोंके संक्रामकका उत्कृष्ट अन्तर  
पत्थके तीन अस्तंख्यात्वं भागोंसे अधिक नां छयासठ सागर प्राप्त होता है । अत्र वाईस आदि  
संक्रमस्थानोके अन्तरका कथन करनेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

\* वाईस, वीस, चौदह, तेरह, ग्यारह, दस, आठ, सात, पाँच, चार और दो  
प्रकृतिक संक्रामकका कितना अन्तरकाल है ?

§ ४०१. चह सूत्र सुगमं ।

\* जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तरकाल उपार्घ्यपुद्गलपरिवर्तन  
प्रमाण है ।

§ ४०२. अय सर्वप्रथम वाईस प्रकृतिक संक्रमस्थानके जघन्य अन्तरका कथन करते हैं—  
एक चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला उपशामक जीव] लोभका संक्रम न होनेके कारण वाईस  
प्रकृतियोंका संक्रामक हो गया । फिर जिसने नपुंसकवेदका उपशाम करके वाईस प्रकृतियोंके संक्रमका  
अन्तर किया । फिर ऊपर चूड़कर और उतरकर स्त्रीवेदके अपकर्षणके बाद जो वाईस प्रकृतियोंका  
संक्रामक हो गया उसके वाईस प्रकृतियोंके संक्रामकका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त प्राप्त होता है ।  
वीस प्रकृतिक संक्रामकका जघन्य अन्तर भी इसी प्रकार प्राप्त होता है । किन्तु यह अन्तर इक्कीस  
प्रकृतियोंकी सत्तावाले जीवके कहना चाहिये । चौदह प्रकृतिक संक्रामकका जघन्य अन्तर भी इसी  
प्रकार प्राप्त होता है । किन्तु जो चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला जीव छह नोकपायोंके उपशाम द्वारा  
चौदह प्रकृतियोंके संक्रमका प्रारम्भ करके फिर पुरुषवेदके उपशाम द्वारा उसका अन्तर करता है  
उसके उपशामश्रेणिते नीचे उतरने पर तीन प्रकारके क्रोधका अपकर्षण होनेके बाद यह अन्तर प्राप्त  
करना चाहिये । इसी प्रकार तेरह प्रकृतिक संक्रामकका भी जघन्य अन्तर प्राप्त होता है । किन्तु

१. आ० प्रती -मुहुत्तं इति पाठः ।

सामणाए लद्धप्पसरूवस्स पयदसंकमट्ठाणस्स दुविहकोहोवसामणाए अंतरपारंभो वत्तव्वो । तदो हेट्ठा ओदरिय पुणो वि सव्वलहुं चटिय पुरिसवेदे उवसामिदे लद्धमंतरं कायव्वं । एसो चैव कमो एकारससंकमस्स वि । णवरि दुविहकोहोवसामणाए लद्धप्पसरूवस्सेदस्स कोहसंजलणोवसामणाणंतरमंतरिदस्स पुणो ओदरमाणावत्थाए तिविहमाणोकड्डुणेण लद्धमंतरं कायव्वं । एवं दससंकामयस्स वि । णवरि कोहसंजलणोवसामणाए लद्धप्पलाहस्सेदस्स दुविहमाणोवसामणेणंतरं कादूणुवरिं चटिय पुणो हेट्ठा ओदरिय पुणो वि सव्वलहुमुवरिं चट्टिदस्स कोहसंजलणोवसामणाणंतरं लद्धमंतरं कायव्वं । एवमट्ठुहं संकामयस्स । णवरि दुविहमाणोवसामणाए सणुवलद्धसंकमस्सेदस्स माणसंजलणोवसामणेणंतरस्सादिं कादूण पुणो ओदरमाणस्स तिविहमायोक्कड्डुणाए अंतरपरिसमची कायव्वा । एवं सत्तसंकामयस्स वि वत्तव्वं । णवरि माणसंजलणोवसामणाणंतरमुवलद्धसरूवस्सेदस्स दुविहमायोवसामणाए अंतरपारंभं कादूणुवरिं चटिय हेट्ठा ओदरिय पुणो वि सव्वलहु-मुवरिं चट्टिदस्स सणुद्देसे लद्धमंतरं कायव्वं । एवं चैव पंचसंकामयजहुणंतरपरुवणा वि । णवरि दुविहमायोवसामणाणंतरमुवजादसरूवस्सेदस्स मायासंजलणोवसामणाणंतर-मंतरिदस्स समयाचिरोहेण लद्धमंतरं कायव्वं । एवं चैव चउएहं संकामयस्स वि वत्तव्वं ।

पुरुषवेदका उपशम हो जाने पर जिसने तेरह प्रकृतिक संक्रमस्थान प्राप्त कर लिया है उसके दो प्रकारके क्रोधका उपशम हो जाने पर प्रकृत संक्रमस्थानके अन्तरके प्रारम्भ होनेका कथन करना चाहिये । फिर इस जीवको नीचे उतारकर और अतिशीघ्र फिरसे चढ़कर पुरुषवेदका उपशम कर लेनेपर प्रकृत स्थानका अन्तर प्राप्त करना चाहिये । ग्यारह प्रकृतिक संक्रमस्थानके अन्तरका भी इसी क्रमसे कथन करना चाहिये । किन्तु दो प्रकारके क्रोधका उपशम होने पर इस स्थानको प्राप्त करके फिर क्रोध संज्वलनका उपशम होनेके बाद इस स्थानका अन्तर प्राप्त करे । फिर उपशमश्रेणिसे उतरते समय तीन प्रकारके मानका अपकर्षण करके इस स्थानका अन्तर प्राप्त करना चाहिये । [ दस प्रकृतिक संक्रमस्थानका अन्तर भी इसी प्रकार होता है । किन्तु क्रोध संज्वलनका उपशम होने पर इस स्थानको प्राप्त करके फिर दो प्रकारके मानका उपशम होनेके बाद इस स्थानका अन्तर प्राप्त करे । फिर ऊपर चढ़कर और नीचे उतरकर फिरसे अतिशीघ्र ऊपर चढ़े और क्रोधसंज्वलनका उपशम करके अन्तर प्राप्त करे । इसी प्रकार आठ प्रकृतियोंके संक्रामकका भी अन्तर प्राप्त होता है । किन्तु दो प्रकारके मानका उपशम हो जाने पर इस स्थानको प्राप्त करके मानसंज्वलनका उपशम करनेके बाद अन्तरका प्रारम्भ किया । फिर उतरते समय तीन प्रकारकी मायाका अपकर्षण करके अन्तरकी समाप्ति की । इसी प्रकार सात प्रकृतियोंके संक्रामकके अन्तरका कथन करना चाहिये । किन्तु मानसंज्वलनका उपशम हो जाने पर इस स्थानको प्राप्त करके फिर दो प्रकारकी मायाका उपशम हो जाने पर अन्तरका प्रारम्भ किया । फिर ऊपर चढ़कर और नीचे उतरकर फिरसे अतिशीघ्र ऊपर चढ़े और अपने स्थानमे पहुँचकर अन्तर प्राप्त करे । पाँच प्रकृतियोंके संक्रामकके जघन्य अन्तरका कथन भी इसी प्रकार करना चाहिये । किन्तु दो प्रकारकी मायाका उपशम होनेके बाद इस स्थानको प्राप्त करके फिर माया संज्वलनका उपशम होनेके बाद इस स्थानका अन्तर करे और यथाविधि विवक्षित स्थान पर आकर अन्तरको प्राप्त करे । इसी प्रकार चार प्रकृतियोंके संक्रामकका भी अन्तर कहना चाहिये । किन्तु माया संज्वलनका उपशम हो जाने

पवत्रि मायामंजलणोवसामाणांतरमासादिद्वयस्वस्वेदरम द्विविहलोहांवसामाणाए  
अंतरसादि कादृण पुणो ओदरमाणावत्थाए अणियट्टिपहमसमए लद्धमंतरं कायच्चं ।  
एवं दोण्हं संकामयस्स । पवत्रि इगिवीससंतकम्मियसंबंधेण सच्चजहणंतोमुहुत्तमेत्त-  
मंतरमणुशंतच्चं । एवं जहणणंतरपरुवणा कदा ।

१४०३. संपहि उःस्संतरे भण्णमाणे तत्थ ताव वावीसाए उच्चदे । तं जहा—  
एको अणादियमिच्छाहट्ठी अद्धपोगलपरियट्टादिसमए पढमसम्मत्तमुप्पाइय वेदगसम्मत्तं  
पडिवज्जिय अणताणुवंचिविचमंजोयणापुरस्सरं दंमणतियमुवगामिय सच्चलहुमुवसमसेडि-  
मारुहो । पुणां ओदरमाणो इण्यिवेदोक्कट्टणाणंतं वावीससंयमट्टाणास्मादिं कादृण  
अंतरिदो देण्णद्धपोगलपरियट्टमेत्तकालं परिभमिऊण तदो अंतोमुहुत्तावसेसे सिज्जिद्धव्वए  
त्ति सम्मत्तुप्पायणपुरस्सरं दंमणमोहन्नपवणं पट्टविय मिच्छत्तचरिमफालीपट्टणाणंतं  
वावीससंयकामओ जादो, लद्धमंतरं होइ । एवं वीसादिससंयकमट्टाणाणं पि उक्कस्संतं  
परुव्वेयच्चं । पवत्रि सच्च्वेसिमुवगसमंटीए चट्टमाणोदरमाणावत्थासु जहासंभवमादिं  
कादृणंतग्गिदस्स पुणो उवगससेडिमोहणेण लद्धमंतरं कायच्चं । तेरसेण्णारस-दस-चदु-  
दोण्णणंयकमट्टाणाणं च चववसंटीए लद्धमंतरं कायच्चमिदि । संपहि एणस्से संकमट्टाणस्स  
अंतराभावंपदुपायणट्टमुत्तरगुत्तमाह—

पर एत रथानको प्राप्त करके फिर दो प्रकारके लाभका उपशम हो जाने पर अन्तरका प्रारम्भ करे  
और फिर उपशमश्रेणिके उतरने समय अनिश्रुतिपरणके प्रथम समयमें अन्तरको प्राप्त करना  
चाहिये । इसी प्रकार दो प्रकृतियोंके संक्रमकका अन्तर प्राप्त होता है । किन्तु इसीस प्रकृतियोंकी  
सत्तावाले जीवके सम्बन्धसे इसका अन्तर उचने जवन्व अन्तर्मुहूर्तप्रमाण जानना चाहिये । इस  
प्रकार जवन्व अन्तरका कथन समाप्त हुआ ।

१४०३. अब उत्कृष्ट अन्तरका कथन करते हैं । उसमें भी सर्वप्रथम वाईस प्रकृतिक  
संक्रमस्थानका अन्तर कहते हैं । यथा—एक प्रनादि मिथ्यादृष्टि जीवने अर्धपुद्गलपरिवर्तनके  
प्रथम समयमें प्रथम सम्यक्त्वको प्राप्त करके वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त किया । फिर अन्तानुगन्धीकी  
विसंयोजनपूर्वक तीन दर्शनगोहनीयका उपशम करके अतिशीघ्र उपशमश्रेणि पर चढा । फिर  
वहीने उतरते समय स्त्रीव्यवहार अपवर्षण करके वाईस प्रकृतिक संक्रमस्थानका प्रारम्भ किया और  
उसका अन्तर करके कुट्ट कम अर्धपुद्गलपरिवर्तन बालक परिभ्रमण करता रहा । फिर सिद्ध होनेमें  
अन्तर्मुहूर्त काल शेष रहने पर सम्यक्त्वकी उत्पत्तिपूर्वक दर्शनगोहनीयकी क्षणका प्रारम्भ करके  
मिथ्यादृष्टिकी अन्तिम फालिके पतनके बाद वाईस प्रकृतियोंका संक्रमक हो गया । इस प्रकार  
वाईस प्रकृतिक संक्रमस्थानका उत्कृष्ट अन्तर प्राप्त हो जाता है । इसी प्रकार धीरा प्रकृतिक आदि शेष  
संक्रमस्थानोंके उत्कृष्ट अन्तरका भी कथन करना चाहिये । किन्तु उपशमश्रेणि पर चढने या उतरनेकी  
अपर्यायमें सभी रथानोंके यथासम्भय प्राप्त करके अन्तरका प्रारम्भ करे और फिर अन्तमें उपशमश्रेणि  
पर आरोहण करके अन्तर ले आवे । तथा तेरह, ग्यारह, दस, चार और दो प्रकृतिक संक्रमस्थानोंका  
क्षपकश्रेणिके उत्कृष्ट अन्तर प्राप्त करना चाहिये । अब एक प्रकृतिक संक्रमस्थानके अन्तरका कथन  
करनेके लिये आगेका मूल कहते हैं—

१. आ०प्रती अंतरभाव— इति पाठः ।



ॐ एचिकरुसे संकामयरुस एत्थि अंतरं ।

§ ४०४. कुदो ? खवयसेदिम्मि लद्धप्पसरुवत्तादो । संपहि उचसेससंकमट्टाणाण-  
मंतरपरुवणं कुणसाणो सुत्तमुत्तरं भणइ—

ॐ सेसाणं संकामयाणमंतरं केवचिरं कालादो होइ ?

§ ४०५. सुगमं ।

ॐ जहएणेण अंतोमुहुत्तं, उक्करुसेण तेत्तीसं सागरोवमाणि सादिरेयाणि ।

§ ४०६. एत्थ सेसग्गहणेणूणवीसट्टारस-नारस-णव-छ-त्तिग्गसण्णिदाणमिगिवीस-  
संतकम्मियसंबंधिसंकमट्टाणाणं गहणं कायव्वं । एदेसिं च जहएणुक्कसंतरपरुवणमेदेण  
सुत्तेण कीरदे । तं जहा—इगिवीससंतकम्मियोवसामगो उवसमसेटीए अंतरकरणसमत्ति-  
समणंतरमेवाणुपुव्विसंकममाहविय तदो णवुंसयवेदोवसामणाए एणूणवीससंकामओ  
होदूण इत्थिवेदोवसामणाकरणंतरस्सादिं कादूण पुणो तस्थेव लद्धप्पसरुवस्स अट्टारस-  
संकमस्स छण्णोकसायोवसामणाए अंतरमुप्पादिय तम्मि चेव वारससंकममाहविय पुणो  
पुरिसवेदोवसमेणंतराविय तदो दुविहकोहोवसामणाणंतरं लद्धप्पसरुवस्स णवण्हं संकम-  
ट्टाणस्स कोहसंजलणोवसामणाणंतरमंतरं पारभिय पुणो तत्थ दुविहमाणोवसामणाए

\* एक प्रकृतिक संक्रामकका अन्तरकाल नहीं है ।

§ ४०४. क्योंकि इस स्थानकी प्राप्ति क्षणश्रेणियोंमें होती है । अब पहले जिन संक्रमस्थानों-  
का अन्तर कह आये हैं उनके सिवा बचे हुए संक्रमस्थानोंके अन्तरका कथन करते हुए आगेका  
सूत्र कहते हैं—

\* शेष स्थानोंके संक्रामकोंका कितना अन्तरकाल है ?

§ ४०५. यह सूत्र सुगम है ।

\* जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तरकाल साधिकं तेतीस  
सागर है ।

§ ४०६. इस सूत्रमें जो 'शेष' पद ग्रहण किया है सो उससे इक्कीस प्रकृतिक संक्रमसे  
सम्बन्ध रखनेवाले उन्नीस, अठारह, बारह, नौ, छह और तीन प्रकृतिक संक्रमस्थानोंका ग्रहण करना  
चाहिये । इस सूत्र द्वारा इन स्थानोंके जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरका कथन किया गया है । खुलासा  
इस प्रकार है—जो इक्कीस प्रकृतियोंकी सत्तावाता उपशामक जीव उपशामश्रेणियोंमें अन्तरकरणकी  
समाप्तिके बाद ही आनुपूर्वी संक्रमका प्रारम्भ करता है । फिर नपुंसकवेदका उपशाम कर लेनेपर  
उन्नीस प्रकृतियोंका संक्रमक हो जाता है और स्त्रीवेदका उपशाम करके प्रकृत स्थानके अन्तरका प्रारम्भ  
करता है । फिर वहीं पर अठारह प्रकृतिक संक्रमस्थानको प्राप्त करके छह नोकषायोंकी उपशामना  
द्वारा इस स्थानके अन्तरका प्रारम्भ करता है । फिर वहींपर बारह प्रकृतिक संक्रमस्थानको प्राप्त  
करके पुरुषवेदकी उपशामनाद्वारा इस स्थानका अन्तर करता है । फिर दो प्रकारके क्रोधका उपशाम  
करनेके बाद नौप्रकृतिक संक्रमस्थानको प्राप्त करके संज्वलन क्रोधके उपशामद्वारा इस स्थानके  
अन्तरका प्रारम्भ करता है । फिर वहींपर दो प्रकारके मानका उपशाम हो जाने पर छहप्रकृतिक

१. ता०प्रती देस्साणि इति पाठः ।

लद्धप्लाहस्त छण्हं संक्रमस्य माणसंजलणोवसामणत्रिहाणेतंरमाहविय तत्तो द्विविह-  
मायोवसामणाए तिण्हं संक्रममाहविय मायामंजलणोवसामणाए तदंतरस्सादिं कादृण  
उवरिं चट्टिय पुणो हेट्टा ओयरमाणो निविहमाय-निविहमाण-तिविहकोह-सचणोकसायो-  
कट्टणाणंतरं जहाकमं छण्हं णवण्हं चारणणं एगुणवीसाए च संक्रमट्टाणाणमंतरं  
समाणेइ । सेसाणं पुण हेट्टा ओयरिय पुणो वि मन्वलह्मुवरिं चट्टिउण मगमगविसण  
अंतरं ममाणेइ । गदं जहणणंतरं ।

१८०७. उक्कमंतरपरुवणमिदाणि कस्सामो—देव-णेग्इयाणमणपदरो चउवीस-  
संनकम्मिओ वेदममम्माइट्टी पुव्वकोडाउअमणुग्गेमुप्पजिय गन्धादिअद्वुवरसाणमुवरि  
सचवलह्ं विसुद्धो होउण संजमं पट्टिवजिय दंमणमोहणीयं यविय उवसमसेडिमारुडो  
तिण्हमट्टारसण्हं चट्टमाणो चैव अंतरमुप्पाइय छण्हं णवण्हं चारणणहमेगुणवीसाए च  
ओयरमाणो अंतरमुप्पाइय समांहण्णो देसुणपुव्वकोटिमेत्तकालं संजममणुपालिय कालं  
कादृण तेचींसागरोवमाउग्गु देवेमुववण्णो । क्रमेण तत्तो लुट्टो संतो पुव्वकोडाउअ-  
मणुग्गेमुप्पण्णो अंतोमुट्टुचावसेमे उवसमसेडिमारुट्टिय जहाकमं सन्वेसिमंतरं ममाणेदि ।  
णववि चारणण्हं तिण्ह च संक्रमट्टाणम्य गवगसेट्टीए लद्धमंतरं कायव्वं ।

एवमांघेण नन्वसंक्रमट्टाणाणमंतरपरुवणा कया ।

संक्रमस्थानको प्राप्त करके मानसंज्ञानके उपशमना इम स्थानके अन्तरका प्रारम्भ करता है ।  
किर एो प्रकारकी मायाका उपशम हो जाने पर तीन संक्रमस्थानको प्राप्त करना है । किर उपर चढ़  
कर और नीचे उतरकर तीन प्रकारकी माया, तीन प्रकारका मान, तीन प्रकारका क्रोध और सात  
नोःपाय इनका अपकरण करने पर क्रमसे एउ, नौ, वाग्द और उन्नीस प्रकृतिक संक्रमस्थानोंके  
अन्तरको प्राप्त कर लेता है । तथा नीचे उतर कर और फिरसे अतिशीघ्र उपशमश्रेणी पर चढ़कर  
दोय स्थानोंका भी अपने अपने स्थानमें अन्तर प्राप्त कर लेता है । गद जन्य अन्तर है ।

१८०७ अत्र इम समय दट्टुट्ट अन्तरका कथन करते हैं—देव और नारकियोंमेंसे कोई  
एक चौबीस प्रकृतियोंकी मत्ताथाला वेदक मन्वदृष्टि जीव पूर्व कोटिकी आयुवाले मनुष्योंमें  
उत्पन्न हुआ । किर गर्भसे लेकर आठ वर्ष हो जाने पर अतिशीघ्र विशुद्ध होकर संयमको प्राप्त हुआ ।  
किर दर्शनमोहनीयका क्षय करके उपशमश्रेणी पर चढ़ा । इम प्रकार उपशमश्रेणी पर चढ़ते हुए  
तीन और अष्टादश प्रकृतिक संक्रमस्थानका अन्तर उत्पन्न करके तथा एउ, नौ, बारह और उन्नीस  
प्रकृतिक संक्रमस्थानका उतरते समय अन्तर उत्पन्न करके क्रमसे यह जीव प्रथमतः ष प्रमत्तसंयत  
हो गया । किर कुछ कम पूर्व कोटि काल तक संयमका पालन करके मरु और तंतीस सागरकी  
आयुवाले देवोंमें उत्पन्न हो गया । किर क्रमसे यहाँसे न्युत होकर पूर्वकोटिकी आयुवाले मनुष्योंमें  
उत्पन्न हुआ । किर अन्तर्मुहूर्त दोय रहने पर उपशमश्रेणीपर चढ़कर क्रमसे भव स्थानोंका अन्तर  
प्राप्त करता है । किन्तु इनकी विनोपता है कि बारह और तीन प्रकृतिक संक्रमस्थानका अन्तर  
क्षयश्रेणियोंमें प्राप्त करना चाहिये ।

इस प्रकार ओघसे सब संक्रमस्थानोंके अन्तरका कथन किया ।

§ ४०८. एण्हमादेसपस्वणण्डमुच्चारणं वत्तइस्सामो । तं जहा—आदेसेण णिरयगइए णेरएसु २७, २६, २३ संक्रा० अंतरं केव० ? जह० एंगसमओ, उक्क० तेत्तीसं सागरोवमाणि देसूणाणि । एवं २५, २१ । णवरि जह० अंतोमूहुत्तं । एवं सव्वणेरइयं । णवरि सगइिदी देसूणा ।

§ ४०९. तिरिवस्सेसु २७, २६, २३ संक्रामयंतरमोवं । एवं २१ । णवरि जह० अंतोमू० । २५ जह० अंतो०, उक्क० तिण्णि पल्लिदोवमाणि सादिरेयाणि । एवं पंचिदि०-तिरिवसतिय० ३ । णवरि सगइिदी । पंचिदियतिरिवसअपज०-मणुसअपज०-अणुदिसादि जाव सव्वइे चि तिण्हं ट्ठाणाणं पत्थि अंतरं ।

§ ४०८. अब आदेशका कथन करनेके लिये उच्चारणको बतलाते हैं । यथा—आदेशसे नरकगतिये नारकियोमें २७, २६ और २३ प्रकृतिक स्थानोंके संक्रामकका अन्तरकाल कितना है ? जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर है । इसी प्रकार २५ और २१ प्रकृतियोंके संक्रामकोंका अन्तरकाल जानना चाहिये । किन्तु इन स्थानोंके संक्रामकोंका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है । इसी प्रकार सब नारकियोमें जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि कुछ कम अपनी-अपनी स्थिति कहनी चाहिये ।

विशेषार्थ—यहाँ सर्वत्र २७ प्रकृतिक आदि संक्रमस्थानोंका जघन्य अन्तर एक समय ओषके समान घटित कर लेना चाहिये । किन्तु २१ प्रकृतिक संक्रमस्थानके जघन्य अन्तरमें ओषसे कुछ विशेषता है । वात यह है कि नरकगतिये उपशमश्रेणिका प्राप्त होना सम्भव नहीं है इसलिये यहाँ २१ प्रकृतिक संक्रमस्थानका जघन्य अन्तर एक समय नहीं प्राप्त होकर अन्तर्मुहूर्त प्राप्त होता है जो अन्तर्मुहूर्तके भीतर दो बार अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजनापूर्वक मिश्र गुणस्थान प्राप्त करानेसे घटित होता है । शेष कथन सुगम है ।

§ ४०९. तिर्यञ्चोमें २७, २६ और २३ प्रकृतियोंके संक्रामकका अन्तरकाल ओषके समान है । इसी प्रकार २१ प्रकृतियोंके संक्रामकका अन्तरकाल जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि इस स्थानका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है । तथा २५ प्रकृतियोंके संक्रामकका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक तीन पत्य है । इसी प्रकार पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चत्रिकमें जानना चाहिये । किन्तु अपनी-अपनी स्थिति कहनी चाहिये । पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्त, मनुष्य अपर्याप्त और अनुद्दिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें तीन स्थानोंका अन्तर नहीं है ।

विशेषार्थ—तिर्यञ्चोमें २१ प्रकृतिक संक्रमस्थानका जघन्य अन्तर नरकगतिके समान प्राप्त होता है, इसलिये इसका ओषके समान निर्देश न करके अलगसे विधान किया है, क्योंकि तिर्यञ्चगतिये भी उपशमश्रेणिकी प्राप्ति सम्भव न होनेसे यहाँ २१ प्रकृतिक संक्रमस्थानका जघन्य अन्तर एक समय घटित नहीं हो सकता है । जो २६ प्रकृतियोंकी सत्तावाला तिर्यञ्च जीव २५ प्रकृतियोंका संक्रमण कर रहा है उसने उपशमसम्यक्त्वको प्राप्त करके २८ प्रकृतियोंकी सत्ता प्राप्त की । फिर वह सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्दलना होनेके पूर्व ही तीन पत्यकी आयुवाले तिर्यञ्चोमें उत्पन्न हुआ और वहाँ यथासम्भव अतिशीघ्र सम्यग्मिथ्यात्वके संक्रमके अन्तिम समयमें उपशम सम्यक्त्वपूर्वक वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त हुआ । फिर पत्यका असंख्यातवों भागप्रमाण काल रहने पर वह मिथ्यात्वमें गया और अन्तर्मुहूर्त काल शेष रहने पर वह

§ ४१०. मणुसतियस्स ओघो । णवरि जम्मि अद्धपोग्गलपरियइं तम्मि पुच्चकोट्टिपुवत्तं । जम्मि तेत्तीसं सागरोवमाणि तम्मि पुच्चकोट्टी देस्साण' । णवरि सत्तावीस-उच्चवीस-पण्णवीस-तेत्तीस-इग्गिवीससंका० पंचिदियतिरिक्खभंगो ।

§ ४११. देवाणं णारयभंगो । णवरि एगत्तीमं सागरोवमाणि देस्साणाणि । एवं

पुनः उपशम सम्यक्त्वको प्राप्त हुआ । फिर जीवनके अन्तिम समयमें वह साम्राज्यमें जाकर पश्चिम प्रकृतियोंका संक्रामक हो गया । इन प्रकार पश्चिम प्रकृतिक संक्रामकका उत्पन्न अन्तरकाल साधिक तीन पत्त्र प्राप्त होना है । यहाँ नाविकसे विनना काल लिया गया है इसका कर्ता उत्तम नहीं मिलता, इसलिए यहाँ हमने उमका निर्देश नहीं किया है । तथापि वह पत्त्रके अस्तित्वमें भाग-प्रमाण होना चाहिये । पंचेन्द्रियतियंसा अर्थात् आदिमें विवक्षित संक्रामस्थानकी प्राप्ति दो बार सम्भव नहीं है, इसलिये यहाँ सम्भव संक्रमस्थानोंके अन्तरका निषेध किया है । शेष कथन सुगम है ।

§ ४१०. मनुष्यत्रयं अन्तर आचके समान है । किन्तु इतनी विशेषता है कि जहाँ अर्धपुद्गलपरिवर्तनकालप्रमाण अन्तरकाल कदा है यहाँ पूर्वकोट्टिप्रत्यक्षप्रमाण अन्तरकाल पहना चाहिये । और जहाँ तेतीस सागरप्रमाण अन्तरकाल कदा है यहाँ पर पुत्र कम एक पूर्वकोट्टिप्रमाण अन्तरकाल पहना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि सत्तावीस, उच्चवीस, पण्णवीस, तेत्तीस और इक्कीस प्रकृतियोंके संक्रामकोंका अन्तर पंचेन्द्रियनियंत्रोंके समान है ।

विशेषार्थ—मनुष्य गतिमें सभी संक्रमस्थान सम्भव है । उनमेंसे चार २२, २०, १४, १३, ११, १०, ८, ७, ५ और २ प्रकृतिक संक्रमस्थानोंका जन्म अन्तर से आचके समान बन जाता है । किन्तु उत्पन्न अन्तर उपार्धपुद्गलपरिवर्तनप्रमाण नहीं प्राप्त होता, क्योंकि मनुष्यकी कायस्थिति पूर्वकोट्टिप्रत्यक्ष अर्थात् तीन पत्त्र है । इसलिये मनुष्योंमें इन स्थानोंका उत्पन्न अन्तर पूर्वकोट्टिप्रत्यक्षप्रमाण ही प्राप्त होता है, क्योंकि उक्त संक्रमस्थानोंका उत्पन्न अन्तरकाल उपशमश्रेणिकी अपेक्षासे ही वक्षित किया जा सकता है । इसलिए ऐसे जीवोंके उत्तम भोगभूमिके मनुष्योंमें उत्पन्न करना ठीक नहीं है । उन्नीसे मूलमें यह कहा है कि जिन स्थानोंका उत्पन्न अन्तर अर्धपुद्गलपरिवर्तनप्रमाण कदा है उनका वह अन्तर पूर्वकोट्टिप्रत्यक्षप्रमाण कदा चाहिये । उसी प्रकार ऋषि मनुष्योंमें १६, १८, १२, ६, ६ और ३ इन संक्रमस्थानोंका जन्म अन्तर से आचके समान बन जाता है । तथापि उत्पन्न अन्तर कुछ कम पूर्वकोट्टिप्रमाण ही प्राप्त होता है, क्योंकि उक्त संक्रमस्थान या तो साधिकसम्यक्त्वके उपशमश्रेणिकी प्राप्ति होते हैं या उनमेंसे कुछ स्थान चपकश्रेणिकी भी प्राप्ति जाते हैं । इसलिये एक पर्यायमें ही दो बार श्रेणिक चक्राकर इन स्थानोंका यथाविधि अन्तर प्राप्त करना चाहिये । विधि का निर्देश पहले ही किया जा चुका है । उन्नीसे मूलमें यह कहा है कि जिन स्थानोंका उत्पन्न अन्तर साधिक तेतीस सागर कदा है उनका वह अन्तर कुछ कम पूर्वकोट्टिप्रमाण कदा चाहिये । अब रहे २७, २६, २५, २३ और २१ प्रकृतिक संक्रमस्थान सो इनका अन्तर पंचेन्द्रिय तिर्यक्षोंके समान मनुष्योंमें भी बन जाता है, अतः मनुष्योंमें इनके इन स्थानोंके अन्तरकालसे पंचेन्द्रिय तिर्यक्षोंके समान जाननेकी सूचना की है । शेष कथन सुगम है ।

§ ४११. देवोका भंग नारकियोंके समान है । किन्तु इतनी विशेषता है कि नारकियोंमें जहाँ कुछ कम तेतीस सागर उत्पन्न अन्तर कदा है यहाँ इनमें कुछ कम इक्कीस सागर उत्पन्न

१. आ०प्रती पुच्चकोट्टिदेस्साणि इति पाठः ।

भवणादि जाव उवरिमगेवजा त्ति । णवरिं सगद्धिदी देसुणा । एवं जाव० ।

❀ णाणाजीवेहि भंगविचओ ।

§ ४१२. अहियारसंभालणसुत्तमेदं सुगमं । एत्थेव अट्टपरुवणहट्टमुत्तरसुत्त-  
मोहणं—

❀ जेसिं पयडीओ अत्थि तेसु पयदं ।

§ ४१३. कुदो ? अकम्मेहि अच्चवहारादो ।

❀ सच्चवीवा सत्तावीसाए छुव्वीसाए पणुवीसाए तेवीसाए एकवीसाए  
एदेसु पंचसु संकमडाणेसु णियमा संकामगा ।

§ ४१४. एत्थ सच्चजीवग्गहणमेदिस्से परुवणाए णाणाजीवविसयत्तपटुप्पायणफलं ।  
सत्तावीसादिग्गहणाभियारसंकमडाणवुदासट्टं । णियसग्गहणमणियमवुदासट्टहेण पयदट्टाण-  
संकामयाणं सच्चकालमत्थित्तजाणावणफलं । तदो एदेसिं पंचण्हं संकमडाणाणं संकामया  
जीवा सच्चकालमत्थि त्ति भणिदं होइ ।

अन्तर कहना चाहिये । इसी प्रकार भजनवासियोंसे लेकर उपरिम ग्रैवेयक तकके देवोंमें जानना चाहिये । किन्तु सर्वत्र कुछ कम अपनी स्थिति कहनी चाहिये । इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिये ।

**विशेषार्थ**—देवोंमें नौ अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें अन्तर काल नहीं पाया जाता है, क्योंकि यहां पर जो भी संक्रमस्थान पाये जाते हैं उनका एक पर्यायमें दो बार पाया जाना सम्भव नहीं है । इसीसे सामान्य देवोंमें उत्कृष्ट अन्तर काल कुछ कम इकतीस सागरप्रमाण बतलाया है, क्योंकि यह अन्तरकाल नौ ग्रैवेयकतक ही पाया जाता है और उनकी उत्कृष्ट स्थिति इकतीस सागर ही है । शेष कथन सुगम है ।

❀ अब नाना जीवोंकी अपेक्षा भंगविचयका अधिकार है ।

§ ४१२. अधिकारका निर्देश करनेवाला यह सूत्र सुगम है । अब इसी विषयमें अर्थपदका कथन करनेके लिये आगेका सूत्र आया है—

❀ जिनके प्रकृतियोंका सत्त्व है उनका यहाँ अधिकार है ।

§ ४१३. क्योंकि कर्मरहित जीवोंसे प्रयोजन नहीं है ।

❀ सब जीव सत्ताईस, छुव्वीस, पच्छीस, तेईस और इक्कीस इन पाँच संक्रम-  
स्थानोंमें नियमसे संक्रामक हैं ।

§ ४१४. यह प्ररूपणा नाना जीवविषयक है यह दिखलानेके लिये इस सूत्रमें 'सच्च जीव' पदका ग्रहण किया है । इतर संक्रमस्थानोंका निषेध करनेके लिये 'सत्तावीस' आदि पदोंका ग्रहण किया है । अनियमका निषेध करके प्रकृत संक्रमस्थानोंका सर्वकाल अस्तित्व रहता है इस बातका ज्ञान करानेके लिये 'नियम' पदका ग्रहण किया है । इसलिये इन पाँच संक्रमस्थानोंके संक्रामक जीव सर्वदा पाये जाते हैं यह इस सूत्रका भाव है ।

ॐ सेसेसु अटारससु संकमहाणेषु भजियन्वा ।

१४१५. कुदो ? तेसिमद्वयवचित्तदंयणादो । एत्य भंगपमाणमेदं—३८७४-२०४८९ । एनमोयो समत्तो ।

ॐ ओष अटारह संकमस्थानोंमें जीव भजनीय हैं ।

१४१५. क्योंकि इन स्थानोंका अधुरचना देखा जाता है । वहाँ पर भंगोंका प्रमाण ३८७४२०४८९ है ।

विशेषार्थ—गोहर्नय चर्मके २७ प्रकृतिक आदि जो तैरैम संकमस्थान हैं उनमेंसे २७, २६, २५, २३ और २१ संकमस्थानको बहुतमे जीव संसारमें सर्वथा पाये जाते हैं, अतः ये पाँचों ध्रुवस्थान हैं । तथा दोय स्थानोंकी अपेक्षा नदि हुए तो य भी एक और कभी अनेक जीव होते हैं, इसलिये वे ध्रुवस्थान हैं । अर इन सब स्थानोंके ध्रुव भंगके साथ एक संयोगी आदि कुल भंगोंके प्राप्त करने पर वे सब ३८७४२०४८९ होते हैं । यथा—

- १ ध्रुव भंग जो २७, २६, २५, २३ और २१ संकमस्थानोंकी अपेक्षाने प्राप्त होता है
- २ चार्डम संकमस्थानके भंग
- ३ ध्रुवभंग सहित २२ संकमस्थानके भंग
- ३ × २ = ६ धीम संकमस्थानके प्रत्येक व संयोगी भंग
- ३ × ३ = ९ ध्रुवभंग सहित २६ व २० संकमस्थानके सब भंग
- ६ × २ = १२ उग्रीस संकमस्थानके प्रत्येक व संयोगी सब भंग
- ६ × ३ = १८ ध्रुवभंग सहित २३, २० व १८ संकमस्थानके सब भंग
- २७ × २ = ५४ अटारह संकमस्थानके प्रत्येक व संयोगी सब भंग
- २७ × ३ = ८१ ध्रुवभंग सहित २२, २०, १६ व १८ संकमस्थानके सब भंग
- ८१ × २ = १६२ चौदह संकमस्थानके प्रत्येक व संयोगी सब भंग
- ८१ × ३ = २४३ ध्रुवभंग सहित २२ से १४ तकके पूर्वोक्त संकमस्थानोंके सब भंग
- २४३ × २ = ४८६ तैरह संकमस्थानके प्रत्येक व संयोगी सब भंग
- २४३ × ३ = ७२९ ध्रुवभंग सहित २२ से १३ तकके पूर्वोक्त संकमस्थानोंके सब भंग
- ७२९ × ३ = २१८७ चारह संकमस्थानके प्रत्येक व संयोगी भंग
- ७२९ × ३ = २१८७ ध्रुवभंग सहित पूर्वोक्त २२ से १२ संकमस्थान तकके सब भंग
- २१८७ × २ = ४३७४ ग्यारह संकमस्थानके प्रत्येक व संयोगी सब भंग
- २१८७ × ३ = ६५६१ ध्रुवभंग सहित पूर्वोक्त २२ से ११ संकमस्थान तकके सब भंग
- ६५६१ × २ = १३१२२ दस संकमस्थानके प्रत्येक व संयोगी सब भंग
- ६५६१ × ३ = १९६८३ ध्रुवभंग सहित पूर्वोक्त २२ से १० संकमस्थान तकके सब भंग

§ ४१६. संपहि आदेसपरुवणड्डमुचारणं वत्तइस्सामो । आदेसेण गेरइयएसु पंचण्हं  
ट्टाणाणं संकां० णियमा अत्थि । एवं पढमपुढवि-तिरिक्खइ-देवा सोहम्मादि जाव

१६६८३ × २ = ३६३६६	नौसंक्रमस्थानके प्रत्येक व संयोगी सब भंग
१६६८३ × ३ = ५६०४९	ध्रुवभंग सहित पूर्वोक्त २२ से ६ संक्रमस्थान तकके सब भंग
५६०४९ × २ = ११८०९८	आठ संक्रमस्थानके प्रत्येक व संयोगी सब भंग
५६०४९ × ३ = १७०१४७	ध्रुवभंग सहित पूर्वोक्त २२ से ८ संक्रमस्थान तकके सब भंग
१७०१४७ × २ = ३४०२९४	सात संक्रमस्थानके प्रत्येक व संयोगी सब भंग
१७०१४७ × ३ = ५१०४४१	ध्रुवभंग सहित पूर्वोक्त २२ से ७ संक्रमस्थान तकके सब भंग
५१०४४१ × २ = १०२०८८२	छह संक्रमस्थानके प्रत्येक व संयोगी सब भंग
५१०४४१ × ३ = १५३१३२३	ध्रुवभंग सहित पूर्वोक्त २२ से ६ संक्रमस्थान तकके सब भंग
१५३१३२३ × २ = ३०६२६४६	पाँच संक्रमस्थानके प्रत्येक व संयोगी सब भंग
१५३१३२३ × ३ = ४५९२९६९	ध्रुवभंग सहित पूर्वोक्त २२ से ५ संक्रमस्थान तकके सब भंग
४५९२९६९ × २ = ९१८५९३८	चार संक्रमस्थानके प्रत्येक व संयोगी सब भंग
४५९२९६९ × ३ = १३७७८९०७	ध्रुव भंगसहित पूर्वोक्त २२से ४ संक्रमस्थान तककेसब भंग
१३७७८९०७ × २ = २७५५७८१४	तीन संक्रमस्थानके प्रत्येक व संयोगी सब भंग
१३७७८९०७ × ३ = ४१३०६७२१	ध्रुव भंगसहित पूर्वोक्त २२ से ३ संक्रमस्थान तकके सब भंग
४१३०६७२१ × २ = ८२६१३४४२	दो संक्रमस्थानके प्रत्येक व संयोगी सब भंग
४१३०६७२१ × ३ = १२३९२०६३	ध्रुव भंगसहित पूर्वोक्त २२ से २ संक्रमस्थान तकके सब भंग
१२३९२०६३ × २ = २४७८४१२६	एक संक्रमस्थानके प्रत्येक व संयोगी सब भंग
१२३९२०६३ × ३ = ३७१७६१८९	ध्रुव भंगसहित पूर्वोक्त २२से १ संक्रमस्थान तककेसब भंग

सूचना—२२ संक्रमस्थानको प्रथम मानकर ये उत्तरोत्तर भंग लाये गये हैं । अतः आगे जो २० आदि एक एक संक्रमस्थानके भंग बतलाये गये हैं उनमें उस उस स्थानके प्रत्येक भंग और उस स्थान तकके सब स्थानोंके द्विसंयोगी आदि भंग सम्मिलित हैं । ये भंग विवक्षित स्थानसे पीछेके सब स्थानोंके भंगोंको दोसे गुणा करने पर बत्पन्न होते हैं । तथा इन भंगोंमें पीछे पीछेके स्थानोंके भंग मिला देने पर वहाँ तकके सब भंग होते हैं । ये भंग विवक्षित स्थानसे पीछेके सब स्थानोंके भंगोंको तीनसे गुणा करने पर बत्पन्न होते हैं । पश्चादानुपूर्वी या पत्रत्रानुपूर्वीके क्रमसे भी ये भंग लाये जा सकते हैं ।

इस प्रकार ओष प्ररूपणा समाप्त हुई ।

§ ४१६. अब आदेशका कथन करनेके लिए लच्छारणाको बतलाते हैं । आदेशसे नारिकियोंमें पाँच संक्रमस्थानोंके संक्रामक जीव नियमसे हैं । इसी प्रकार प्रथम पृथिवी, तिर्यचत्रिक, देव और सौधर्म कल्पसे लेकर नौ त्रैवेयक तकके देवोंमें जानना चाहिए । दूसरी पृथिवीसे लेकर

णवगेवज्जा त्ति । विदियादि जाव सत्तमा त्ति एवं चैव । णवरि इगिचीससंक्रामया भयणिज्जा । भंगा ३ । एवं जोणिणि०-भवण०-वाण०-जोदिसिएसु । पंचिदियतिरिक्ख-अपज्ज० तिणिण ट्टाणाणि णियमा अत्थि । मणुसतिये ओधभंगो । मणुसअपज्ज० सव्वपद-संक्रामया भयणिज्जा । तत्थ भंगा २६ । अणुदिसादि जाव सव्वट्टा त्ति २७, २३, २१ संक्रामया णियमा अत्थि । एवं जाव ।

§ ४१७. एत्थ ताव भागाभाग-परिमाण-खेत्त-फोसणाणं देसामासयसुत्तेणेण सूचिदानुसुच्चारणाणुगमं कस्सामो । तं जहा—भागाभाग० दुविहो णिदेसो—ओघेण आदेसेण यं । ओघेण पणुवीससंक्रामया सव्वजीवाणमणंता भागा । सेससव्वपदसंक्रामया अणंतिमभागो । एवं तिरिक्खेसु । आदेसेण खेरइय० २५ संक्रा० असखेज्जा भागा । सेसमसंखे० भागो । एवं सव्वणेरइय-सव्वपंचिदियतिरिक्ख-मणुस-मणुसअपज्ज०-देवा जाव सहस्सार त्ति । मणुसपज्ज०-मणुसिणी० २५ पय० संक्रा० संखेज्जा भागा । सेस०

सातवीं पृथिवी तक भी इसी प्रकार जानना चाहिये । किन्तु यहाँ इक्कीस प्रकृतियोंके जीव भजनीय हैं, अतः ध्रुव भंगके साथ तीन भंग होते हैं । इसी प्रकार योनिनीतिर्यच, भवनवासी, व्यन्तर और ज्योतिपी देवोंमें जानना चाहिये । पंचेन्द्रिय तिर्यच अपर्याप्तकोंमें तिन स्थानवाले जीव नियमसे हैं । मनुष्यत्रिकोमें ओघके समान भंग हैं । मनुष्य अपर्याप्तकोंमें सब सम्भव पदोंके संक्रामक जीव भजनीय हैं । यहाँ भंग २६ होते हैं । अनुदिशसे लेकर सर्वाथिसिद्धि तकके देवोंमें २७, २३ और २१ प्रकृतिक संक्रमस्थनवाले जीव नियमसे हैं । इसी प्रकार अनाहारक मार्ग्यातक जानना चाहिये ।

त्रिशोपार्थ—दूसरीसे लेकर सातवीं पृथिवी तकके नारकी, योनिनी तिर्यच, भवनवासी, व्यन्तर और ज्योतिपी देवोंमें २१ प्रकृतिक संक्रमस्थानके एक और नाना जीवोंकी अपेक्षा दो भंग होते हैं तथा इनमें शेष स्थानोंकी अपेक्षा एक ध्रुव भंग मिला देनेपर तीन भंग हो जाते हैं । लब्धपर्याप्त मनुष्योंमें २७, २६ और २५ ये तीन संक्रमस्थान होते हैं जो कि भजनीय हैं, अतः इनके २६ भंग प्राप्त होते हैं । शेष कथन सुगम है । तीन स्थानोंके ध्रुवभंगको छोड़कर शेष २६ भंग किस प्रकार आते हैं इसका ज्ञान पूर्वमें कही गई संदृष्टिसे ही हो जाता है ।

§ ४१७. यत्त 'खाणाजीवेहि भंगविचओ' यह सूत्र देसामर्पक है, अतः इससे सूचित होनेवाले भागाभाग, परिमाण, क्षेत्र और दर्शन इन अनुयोगद्वारोंकी उच्चारणाका अनुगम करते हैं । यथा—भागाभागानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । उनमेंसे ओघकी अपेक्षा पच्चीस प्रकृतियोंके संक्रामक जीव सब जीवोंके अनन्त बहुभागप्रमाण हैं और शेष सब पदोंके संक्रामक जीव अनन्तवें भागप्रमाण हैं । इसी प्रकार तिर्यचोंमें भागाभाग जानना चाहिये । आदेशकी अपेक्षा नारकियोंमें २५ प्रकृतियोंके संक्रामक जीव असंख्यात बहु-भागप्रमाण हैं । तथा शेष पदोंके संक्रामक जीव असंख्यातवें भागप्रमाण है । इसी प्रकार सब नारकी, सब पंचेन्द्रिय तिर्यच, मनुष्य, मनुष्य अपर्याप्त, देव और सहस्सार स्वर्ग तकके देवोंमें भागाभाग जानना चाहिये । मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यनियोंमें २५ प्रकृतियोंके संक्रामक जीव संख्यात बहुभागप्रमाण हैं । तथा शेष पदोंके संक्रामक जीव संख्यातवें भागप्रमाण हैं । आन्त

१. ता०प्रतौ ओघादेसभेदेण इति पाठः । अत्रेऽपि बाहुल्येन ता०प्रतौ एवमेव पाठः ।

२. आ०प्रतौ तिरिक्खमणुसअपज्ज० इति पाठः ।



संखे०भागो । आणदादि जाव णवगेवजा चि २६ संका० असंखे०भागो । २७ संखेजा भागा । सेसं संखे०भागो । अणुहिसादि जाव सव्वट्ठा चि २७ संखेजा भागा । सेसं संखे०भागो । एवं जाव० ।

§ ४१८. परिमाणानु० दु० णिहसो—ओघेण आदेसेण य । ओघेण २७, २६, २३, २१ संका० केचिया ? असंखेजा । २५ संका० के० ? अणंता । सेस० संका० संखेजा । आदेसेण णेरइय० सव्वपदसंका० असंखेजा । एवं सव्वणेरइय०-सव्वपंचिंदिय-तिरिक्ख-मणुसअपज्ज०-देवा जाव अवराइद चि । एवं तिरिक्खा० । णवरि २५ संका० अणंता । मणुसेसु २७, २६, २५ संका० असंखेजा । सेससंका० संखेजा । मणुसपज्ज०-मणुसिणीसु सव्वपदसंका० संखेजा । एवं सव्वट्ठे । एवं जाव० ।

§ ४१९. खेत्तानु० दुविहो णि०—ओघेण आदेसेण य । ओघेण णणुवीसंका० केवडि खेत्ते ? सव्वलोगे । सेससंका० लोग० असंखे०भागे । एवं तिरिक्खा० । सेसमग्गणसु सव्वपदसंका० लोग० असंखे०भागे । एवं जाव० ।

कल्पसे लेकर नौ ग्रंथेयक तकके देवोंमें २६ प्रकृतियोंके संक्रामक जीव असंख्यातवें भागप्रमाण हैं । २७ प्रकृतियोंके संक्रामक जीव संख्यात बहुभागप्रमाण हैं । तथा शेष स्थानोंके संक्रामक जीव संख्यातवें भागप्रमाण हैं । अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें २७ प्रकृतियोंके संक्रामक जीव संख्यात बहुभागप्रमाण हैं । तथा शेष स्थानोंके संक्रामक जीव संख्यातवें भागप्रमाण हैं । इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिये ।

§ ४१८. परिमाणानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश । ओघकी अपेक्षा २७, २६, २३ और २१ प्रकृतियोंके संक्रामक जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं । २५ प्रकृतियोंके संक्रामक जीव कितने हैं ? अनन्त हैं । शेष संक्रामस्थानोंके संक्रामक जीव कितने हैं ? संख्यात हैं । आदेशकी अपेक्षा नारक्तियोंमें सब पदोंके संक्रामक जीव असंख्यात हैं । इसी प्रकार सब नारकी, सब पंचेन्द्रिय तिर्यक्, मनुष्य अपर्याप्त, सामान्य देव तथा अपराजित कल्प तकके देवोंमें जानना चाहिये । इसी प्रकार तिर्यचोंमें जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि इनमें २५ प्रकृतियोंके संक्रामक जीव अनन्त हैं । मनुष्योंमें २७, २६ और २५ प्रकृतियोंके संक्रामक जीव असंख्यात हैं । तथा शेष पदोंके संक्रामक जीव संख्यात हैं । मनुष्यपर्याप्त और मनुष्यनिर्धोमें सब पदोंके संक्रामक जीव संख्यात हैं । इसी प्रकार सर्वार्थसिद्धिमें जानना चाहिए । इसी प्रकार अनाहारक मार्गणातक जानना चाहिये ।

§ ४१९. क्षेत्रानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । ओघकी अपेक्षा पञ्चस प्रकृतियोंके संक्रामक जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं । सब लोकमें रहते हैं । तथा शेष पदोंके संक्रामक जीव लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें रहते हैं । इसी प्रकार तिर्यचोंमें जानना चाहिये । शेष मार्गणाओंमें सब पदोंके संक्रामक जीव लोकके असंख्यातवें भाग-प्रमाण क्षेत्रमें रहते हैं । इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिये ।

§ ४२०. पोसणाणु० दृविहो णिदेसो—ओघेण आदेसेण य । ओघेण २७, २५ संका० केव० फोसिदं ? लोम० अमंखे० भागो अट्टचोदस० सव्वलोगो वा । २५ संका० सव्वलोगो । २३, २१ लोम० अमंखे० भागो अट्टचोदस० । सेमं खेत्तमंगो ।

§ ४२१. आदेसेण पेग्गह्य० २७, २६, २५ संका० लोम० असंखे० भागो छचोदस० देग्गणा । २३, २१ संका० खेत्तं । विदियादि जाव सत्तमा ति एवं चैय । णवरि मगपोसणं । पटमाण खेत्तमंगो ।

§ ४२२. निग्गिक्खेसु २७, २६ संका० लोम० असंखे० भागो सव्वलोगो वा । २५ संका० खेत्तं । २३ लोम० अमंखे० भागो छचोदस० । २१ लोम० अमंखे० भागो पंचचोदस० भागा वा देग्गणा । पंचिदियतिरिक्खतिथि० २७, २६, २५ संका० लोम० अमंखे० भागो सव्वलोगो वा । सेमं तिग्गिक्खोषं । पंचि० ति० रि० अपज्ज०-मणुय० अपज्ज०

विशेषार्थ—जयपि गेमी वरुं मानणामं हँ जिनमं २५ प्रकृतियोंके संक्रमकोंका क्षेत्र सब लोक प्राप्त होता है । तथापि यहाँ केवल नियंत्रोंका ही निर्देश किया है सो इसका कारण यह है कि यहाँ चरित्र गुणचरित्र वाच गतिर्योंकी अपेक्षाने ही अनुयांगद्वारोंका वर्णन किया जा रहा है । और चार गतिर्योंमें तिर्यञ्चगतिके जीव ही गेमे हैं जिनका क्षेत्र सब लोक है । इसीसे यहाँ नियंत्रों-में ही ओषके समान पचरीम प्रकृतिक संक्रमस्थानवाले जीवोंका क्षेत्र बतलाया है । शेष कथन सुगम है ।

§ ४२०. स्वर्शन-सुगम ही अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—श्रौचनिर्देश और प्रादेशनिर्देश । श्रौचही अपेक्षा २७ और २६ प्रकृतिक संक्रमस्थानवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्वर्शन किया है ? लोकके अमंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रका, वसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ भागप्रमाण क्षेत्रका और सब लोकप्रमाण क्षेत्रका स्वर्शन किया है । २५ प्रकृतिक संक्रमस्थानवाले जीवोंने सब लोकका स्वर्शन किया है । २३ और २१ प्रकृतिक संक्रमस्थानवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रका व वसनालीके चौदह भागोंमें से कुछ कम आठ भागप्रमाण क्षेत्रका स्वर्शन किया है । तथा शेष पर्यंतका स्वर्शन क्षेत्रके समान है ।

§ ४२१. आदेशही अपेक्षा नारकियोंमें २७, २६ और २५ प्रकृतिक संक्रमस्थानवाले जीवोंने लोकके अमंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रका और वसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम छह भागप्रमाण क्षेत्रका स्वर्शन किया है तथा २३ और २१ प्रकृतिक संक्रमस्थानवाले जीवोंका स्वर्शन क्षेत्रके समान है । दूसरीमें लोकर मातवीं पृथिवी तक इमी प्रकार जानना चाहिये । किन्तु उतनी विशेषता है कि श्रयना श्रयना स्वर्शन कःना चाहिये । पहिली पृथिवीमें स्वर्शन क्षेत्रके समान है ।

§ ४२२. तिर्यञ्चोंमें २७ और २६ प्रकृतिक संक्रमस्थानवाले जीवोंने लोकके अमंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रका और सब लोकप्रमाण क्षेत्रका स्वर्शन किया है । २५ प्रकृतिक संक्रमस्थानवाले जीवोंका स्वर्शन क्षेत्रके समान है । २३ प्रकृतिक संक्रमस्थानवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रका और वसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम छह भागप्रमाण क्षेत्रका स्वर्शन किया है । २१ प्रकृतिक संक्रमस्थानवाले जीवोंने लोकके अमंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रका और वसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम पाँच भागप्रमाण क्षेत्रका स्वर्शन किया है । पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चनिकमें २७, २६ और २५ प्रकृतिक संक्रमस्थानवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रका और सब लोकप्रमाण क्षेत्रका स्वर्शन किया है । शेष स्थानोंका स्वर्शन सामान्य तिर्यञ्चोंके समान है । पंचेन्द्रिय

तिष्णपदेहि लोग० असंखे०भागो सव्वलोगो वा । मणुसतिए २७, २६, २५ संका० पंचिदियतिरिक्खमंगो । सेसं खेत्तं ।

§ ४२३. देवेषु २७, २६, २५ संका० लोग० असंखे०भागो अट्टचोदस० देसूणा । २३, २१ संका० लोग० असंखे०भागो अट्टचोदस० देसूणा । एवं सोहम्मसाणे । एवं भवण०-वा०-जोदिसि० । णवरि सगफोसणं कायव्वं । सणकुमारादि जाव सहस्सार ति सव्वपदसंका० लोग० असंखे०भागो अट्टचोदस० देसूणा । आणदादि जाव अच्चुदा ति सव्वपदेहि लोग० असंखे०भागो छचोदस० देसूणा । उवरि खेत्तमंगो । एवं जाव० ।

§ ४२४. संपहि णाणाजीवसंबंधिकालपरूवणट्टमुवरिमं चुण्णिमुत्तमाह—

❀ गाणाजीवेहि कालो ।

§ ४२५. अहियारसंभालणमुत्तमेदं सुगमं ।

❀ पंचण्हं ट्ठाणाणं संकामया सव्वद्धा ।

§ ४२६. एत्थं पंचण्हं ट्ठाणाणमिदि वयणेण सत्तावीस-छव्वीस-पणुवीस-

तिर्यञ्च अर्थात्त और मनुष्य अर्थात्तफोमे तीन पदवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रका और सब लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । मनुष्यत्रिकमें २७, २६ और २५ प्रकृतिक संक्रमस्थानवाले जीवोंका स्पर्शन पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चोंके समान है । तथा शेष पदोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है ।

§ ४२३. देवोंमें २७, २६ और २५ प्रकृतिक संक्रमस्थानवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रका और व्रसनालीके चौदह भागोंसे कुछ कम आठ व कुछ कम नौ भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । २३ और २१ प्रकृतिक संक्रमस्थानवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रका और व्रसनालीके चौदह भागोंसे कुछ कम आठ भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । इसी प्रकार सौधर्म व ऐशान कल्पमें जानना चाहिये । तथा इसी प्रकार भवनवासी, व्यन्तर और ज्योतिष्क देवोंमें कहना चाहिये । किन्तु सर्वत्र अपना अपना स्पर्शन कहना चाहिये । सनत्कुमार कल्पसे लेकर सहस्वार कल्प तक सब पदोंके संक्रामक देवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रका और व्रसनालीके चौदह भागोंसे कुछ कम आठ भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । आनतसे लेकर अच्युत तक सब पदोंके संक्रामक देवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रका और व्रसनालीके चौदह भागोंसे कुछ कम छह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । इससे आगेके देवोंमें स्पर्शन क्षेत्रके समान है । इसी प्रकार अनाहारक मार्ग्यातक जानना चाहिये ।

§ ४२४. अथ नाना जीवसम्बन्धी कालका कथन करनेके लिये आगेका चूर्णिसूत्र कहते हैं—

❀ अब नाना जीवोंकी अपेक्षा कालका अधिकार है ।

§ ४२५. अधिकारकी संभाल करनेवाला यह सूत्र सुगम है ।

❀ पांच संक्रमस्थानोंके जीव सदा पाये जाते हैं ।

§ ४२६. इस सूत्रमें जो 'पंचण्हं ट्ठाणाणं' वचन दिया है सो इससे सत्ताईस, छव्वीस, पचीस,

तेवीस-इगिचीसंक्रमणार्णं गहणं कायव्वं । तेसिं संकामया सच्चकालं होंति चि भणिदं होइ । मंपहिं सेमपदाणं कालणिद्वारणदुमुत्तरमुचावयारो—

☞ सेसाणं द्वाणाणं संकामया जहणणेण एगसमओ, उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ।

§ ४२७. एत्थ सेसगहणेण वाचीसादीणं संक्रमणार्णं गहणं कायव्वं । तेसिं जहणकालो एयममयेत्तो, उवमसेट्ठिमि विवक्खित्तयसंक्रमणसंकामयत्तेणेय-सामयं परिणट्ठाणं केत्तियाणं पि जीवाणं विदियसमए मरणपरिणामेण तदुवलंभादो । उक्कस्सकात्तो अंतोमुहुत्तं, तेसिं चैव विवक्खित्तयसंक्रमणार्णमंकामयोवसामयाणमुवरिं<sup>१</sup> चदंताणमण्णेहि चट्ठणोवयरणवावदेहि अणुमंघिदसंताणाणमविच्छेदकालस्स समालंघणादो । पव्वरि तेस्स-वाग्गम-एक्कारम-दस-चदु-तिण्णि-दोएणिणसंकामयाणं खवगोवसामयो अस्सिउण उक्कस्सकालपट्टवणा कायव्वंवा । एत्थतणमेगगहणेण एक्कस्से वि संक्रमणार्णसस गहणाह्वयमं तण्णिणयरणद्वारंण तत्थतणविसेमपदुप्यायणदुमुवरिमसुत्तमोइण्णं—

☞ णव्वरि एक्कस्से संकामया जहणणुक्कस्सेणंतोमुहुत्तं ।

तेहंस और इक्कीन संक्रमणार्णका प्रदण करना चाहिए । उनके संक्रमक जीव सर्वदा होते हैं यह उक्त कथनवा तात्पर्य है । अत्र शेष पदके चालवा निर्धारण करनेके लिए आगेके सूत्रका अरन्तर करते हैं—

\* शेष स्थानोंके संक्रमकोंका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ।

§ ४२७. यहाँ पर शेष पदके प्रदण करनेसे यार्हम आदि संक्रमस्थानोंका प्रदण करना चाहिए । उनका जघन्य काल एक समयमात्र है, क्योंकि उपशमश्रेणियों विवक्षित संक्रमस्थानके संक्रमरूपसे एक समय : क परिणत हुए जितने ही जीवोंका दूसरे समयमें मरण हो जानेसे उक्त काल उपलब्ध होता है । उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्तप्रमाण है, क्योंकि विवक्षित संक्रमस्थानोंके संक्रमकभावसे उपशमश्रेणिएर चढ़नेवाले उन्हीं जीवोंका उपशमश्रेणिएर चढ़नेवाले अन्य जीवोंके साथ प्राप्त हुई परस्परका विच्छेद नहीं होनेरूप कालका अरन्तरल लिया गया है । किन्तु इतनी विशेषता है कि वेरु, धारद, ग्यारु, दस, चार, तीन और दो स्थानोंके संक्रमकोंका क्षपक और उपशमक जीवोंके आभयसे उत्कृष्ट कालका कथन करना चाहिए । यहाँ पर सूत्रमें 'शेष' पदके प्रदण करनेसे एक प्रकृतिक संक्रमस्थानका भी प्रदण प्राप्त होने पर उसके निराकरण द्वारा एक स्थानसम्बन्धी विशेषताका कथन करनेके लिए आगेका सूत्र अरन्तरित हुआ है—

\* किन्तु इतनी विशेषता है कि एक प्रकृतिक स्थानके संक्रमकोंका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ।

१. ता०प्रती एगसमय इति पाठः । २. आ०प्रती तेसिं च इति पाठः । ३. ता०प्रती —सामयाण-मुवरि इति पाठः ।

§ ४२८. एत्थ एक्किस्से संकामयाणं जहण्णकालो कोह-भाणाणमण्णदरोदएण चट्ठिदाणं मायासंक्रामयाणमणुसंधिदसंताणाणमंतोमुहुत्तमेत्तो होइ । उक्कस्सकालो पुण मायासंक्रामयाणमणुसंधिदपवाहाणं होइ चि वत्तव्वं । एवमोघो समत्तो ।

§ ४२९. आदेसेण शेरइय० सव्वपदसंका० सव्वद्धा । एवं पढमपुढवि-तिरिक्ख-पंचिदियतिरिक्खदुग्-पंचि०तिरि०अपज्ज०-देवगादिदेवा सोहम्मादि जाव सव्वट्टुसिद्धि ति । विदियादि जाव सत्तमा ति एवं चेव । णवरि २१ संका० जह० एयसमओ, उक्क० पल्लिदो० असंखे०भागो । एवं जोणिणी-भवण०-वाण०-जोदिसिया ति । मणुसंतिए ओधबंधो । मणुसअपज्ज० सव्वप्रदाणं जह० एयसमओ, उक्क० पल्लिदो० असंखे०भागो । एवं जाव० ।

❀ णाणाजीवेहि अंतरं ।

४३०. सुगमं ।

❀ बावीसाए तेरसएहं बारसएहं एक्कारसएहं दसएहं चट्टुएहं ति एहं दोएहमेक्किस्से एदेसिं णवएहं ठाणाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ?

§ ४३१. सुगमं ।

❀ जहण्णोण एयसमओ, उक्कस्सेण छुम्मासा ।

§ ४२८. यहाँ पर एक प्रकृतिक संक्रामकोंका जघन्य काल क्रोध और मानमें से अन्यतर प्रकृतिके उदयसे चढ़े हुए तथा माया प्रकृतिका संक्रम करनेवाले जीवोंके प्राप्त हुए प्रवाहकी अपेक्षा किये बिना अन्तर्मुहूर्त होता है । परन्तु उत्कृष्ट काल अविच्छिन्न प्रवाहकी विवक्षासे माया प्रकृतिका संक्रम करनेवाले जीवोंके कहना चाहिये । इस प्रकार श्रेष्ठ प्ररूपणा समाप्त हुई ।

§ ४२९. आदेशसे नारकियोंमें सब पदोंके संक्रामक जीवोंका काल सर्वदा है । इसी प्रकार पहिली पृथिवी, सामान्य तिर्यञ्च, पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चद्विक, पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्त, देवगतिमें सामान्य देव और सौधर्म कल्पसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें जानना चाहिए । दूसरी पृथिवीसे लेकर सातवीं पृथिवी तकके नारकियोंमें इसी प्रकार जानना चाहिए । किन्तु इतनी विशेषता है कि २१ प्रकृतियोंके संक्रामकोंका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है । इसी प्रकार योनिनी तिर्यञ्च, भवनवासी, व्यन्तर और ज्योतिषी देवोंमें जानना चाहिए । मनुष्यत्रिकमें ओधके समान भङ्ग है । मनुष्य अपर्याप्तकोंमें सब पदोंके संक्रामकोंका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है । इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिए ।

❀ अब नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तरकालका अधिकार है ।

§ ४३०. यह सूत्र सुगम है ।

❀ बावीस, तेरह, बारह, ग्यारह, दस, चार, तीन, दो और एक प्रकृतिक इन नौ स्थानोंके संक्रामकोंका अन्तरकाल कितना है ?

§ ४३१. यह सूत्र सुगम है ।

❀ जघन्य अंतर एक समय है और उत्कृष्ट अंतर छः महीना है ।

§ ४३२. वावीसाए ताव जहण्णेणयसमओ, उक्क० छम्मासमेत्तमंतरं होइ, दंसणमोहक्खवणपट्टवणाए णाणाजीवावेक्खजहण्णुकस्संतराणं तेत्तियमेत्तपरिमाणामुव-  
लंभादो । एवं तेरसादीणं पि वचच्चं, खवयसेहीए लद्धसरूवाणमेदेसिं णाणाजीवावेक्खाए  
जहण्णुकस्संतराणं तप्पमाणाणमुवल्लदीदो । एत्थ चोदओ भणइ—खेदं घडदे, एक्कारसण्हं  
चउण्हं च सादिरियवस्समेत्तुकस्संतग्दंसणादो । तं जहा—एक्कारसण्हं ताव पुरिसवेदोदएण  
खवयसेहिमारुद्धस्स आणुपुञ्जीसंकमाणंतरं णवुंसयवेदक्खवणाए परिणदस्स णाणाजीव-  
समूहस्स एक्कारसण्हंमो होइ । पुणो इत्थिवेदक्खवणाए अंतरिय छम्मासमंतरमणुपालिय  
तदवसाणे णवुंसयवेदोदए सेट्टिमारुद्धस्स णवुंसय-इत्थिवेदा अकमेण खीयंति त्ति एक्कारस-  
मंकमाणुप्पत्तीए दसण्हं संकमो समुप्पजइ । तदो एत्थ वि छम्मासमंतरं लब्भइ । पुणो  
इत्थिवेदोदएण चट्टिदस्स णवुंसयवेदे स्त्रीणे पच्छा अंतोमुहुत्तेणित्थिवेदो खीयदि त्ति  
तत्थेकारमयंकमस्स लद्धमंतरं होइ । तदो एक्कारससंक्रामयस्स वासं सादिरियमुक्कस्संतरं  
लब्भइ । पुरिसवेदोदएण खवगसेहिं चट्टिदस्स छण्णोकसायक्खवणाणंतरं चउण्हं  
संक्रामयस्समादिं कादृण तदो पुरिसवेदं खविय छम्मासमंतरिय इत्थिवेदोदएण चट्टिदस्स  
सत्तणोकसाया जुगवं परिवर्णीयंति चदुण्णमणुप्पत्तीए पुणो वि छम्मासमेत्तमंतरं

§ ४३२. चईस प्रकृतिक संक्रमस्थानका जघन्य अन्तर एक समय हें और उत्कृष्ट अन्तर  
छः महीना हें, क्योंकि दर्शनमांडनीयकी क्षणिकाकी प्रस्थापनामें नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्य  
और उत्कृष्ट अन्तर तक प्रमाण पाया जाना है । इसी प्रकार तेरह प्रकृतिक आदि संक्रमस्थानोंका  
भी अन्तरकाल कइना चाहिये, क्योंकि क्षणिकक्षेत्रमें प्राप्त हुए इन स्थानोंका नाना जीवोंकी  
अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर तत्प्रमाण उपलब्ध होता है ।

शंका—यहाँ पर शंकाकार कइता है कि यह कथन नहीं बनता, क्योंकि ग्यारह और चार  
प्रकृतिक स्थानोंका साधिक एक वर्षप्रमाण उत्कृष्ट अन्तर देखा जाता है । यथा—पुरुषवेदके उदयसे  
क्षपकश्रेणपर चढ़े हुए तथा आनुपूर्वी संक्रमके बाद नपुंसकवेदकी क्षपणा करनेवाले नाना  
जीवसमूहके ग्यारह प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है । पुनः स्त्रीवेदकी क्षपणाका अन्तर दैकर और छः  
माह तक अन्तरका पालनकर उसके अन्तमें नपुंसकवेदके उदयसे श्रेणपर चढ़े हुए जीवके स्त्रीवेद  
आर नपुंसकवेदका युगपत् क्षय होता है, इसलिए ग्यारह प्रकृतिक संक्रमस्थानकी उत्पत्ति न होकर दस  
प्रकृतिक संक्रमस्थान उत्पन्न होता है । इसलिये यहाँ पर भी छह माहप्रमाण अन्तर पाया जाता  
है । फिर स्त्रीवेदके उदयसे क्षपकश्रेण पर चढ़े हुए नाना जीवोंके नपुंसकवेदका क्षय हो जानेपर  
अन्तर्ग्रहणके बाद स्त्रीवेदका क्षय होता है, इसलिये यहाँ पर ग्यारह प्रकृतिक संक्रमस्थानका अन्तर  
प्राप्त हो जाता है । अतः ग्यारह प्रकृतिक संक्रमस्थानका उत्कृष्ट अन्तर साधिक एक वर्ष प्राप्त होता  
है । तथा जो नाना जीव पुरुषवेदके उदयसे क्षपकश्रेण पर चढ़े हैं उनके छह नोकपाथोंका क्षय  
होने पर चार प्रकृतिक संक्रमस्थानका प्रारम्भ होता है । फिर पुरुषवेदका क्षय करके और छह माहका  
अन्तर प्राप्त करके स्त्रीवेदके उदयसे क्षपकश्रेण पर चढ़ने पर सात नोकपाथोंका एक साथ क्षय होता  
है । यहाँ पर चार प्रकृतिक संक्रमस्थानकी उत्पत्ति नहीं होनेसे फिर भी छह माहप्रमाण अन्तर

होइ । एवं णवुंसंयवेदोदएण चट्ठिदस्स वि णाणाजीवसमूहस्स छम्मासंतरसमुप्पत्ती वत्तञ्चा । पुणो पुरिसवेदोदएण चट्ठाविदे लद्धमंतरं होइ त्ति चउण्हं वि पासं सादिरेयं उक्कसंतर-भावेण लब्भइ । तदो एदेसिं छम्मासमेत्तरपरूवयं सुत्तमिदं ण जुत्तमिदि ? ण, पुरिस-वेदोदयकखवयस्स सुत्ते विवक्खियत्तादो । णवुंसय-इत्थिवेदोदयकखवयाणं किमड्डमविवक्खा कया ? ण, बहुलमप्पसत्थवेदोदएण खवयसेदिसमारोहणसंभवाभावपदुप्पायण्हं सुत्ते तदविवक्खाकरणादो ।

§ ४३३. संपहि उचसेसाणमद्दुवभाविसंकमट्ठाणाणमंतरग्गवेसणद्दुववरिमसुत्तावयारो-

❀ सेसाणं णवण्हं संकमट्ठाणाणमंतरं कैचचिरं कालादो होइ ?

§ ४३४. सुगमं ।

❀ जहएणं एयसओ , उक्कस्सेण संखेज्जाणि चस्साणि ।

§ ४३५. एत्थ सेसग्गहणेण २०, १९, १८, १४, ९, ८, ७, ६, ५, एदेसिं संकमट्ठाणाणं संगहो कायव्वो । णवग्गहणेण वि उवरिमसुत्ते भणिससमाणधुवभाविच्च-संकमट्ठाणवुदासो दट्ठव्वो । एदेसिं च उवसमसेदिसंबंधीणं जह० एयसमओ, उक्क०

प्राप्त हो जाता है । इसी प्रकार जो नाना जीव नपुंसकवेदके उदयसे क्षपकश्रेणि पर चढ़ते हैं उनकी अपेक्षा भी छह माहप्रमाण अन्तरकी उत्पत्ति कहनी चाहिये । फिर पुरुषवेदके उदयसे क्षपकश्रेणि पर चढ़ाने पर अन्तर प्राप्त होता है । इस प्रकार चार प्रकृतिक संक्रमस्थानका भी उत्कृष्ट अन्तर साधिक एक वर्ष प्राप्त होता है, इसलिये इन दोनों स्थानोंके छह माहप्रमाण उत्कृष्ट अन्तरका कथन करनेवाला यह सूत्र युक्त नहीं है ?

**समाधान**—नहीं, क्योंकि सूत्रमे पुरुषवेदकी क्षपणा करनेवाले नाना जीव विवक्षित हैं, इसलिए इस अपेक्षासे उक्त स्थानोंका उत्कृष्ट अन्तर छह माहप्रमाण ही प्राप्त होता है ।

**शंका**—यहां पर नपुंसकवेद और स्त्रीवेदके उदयसे क्षपकश्रेणि पर चढ़े हुए जीवोंकी अविचक्षा क्यों की गई है ?

**समाधान**—नहीं, क्योंकि अधिकतर अप्रशस्त वेदके उदयसे क्षपकश्रेणिपर चढ़ना सम्भव नहीं है इस बातका कथन करनेके लिये सूत्रमें उक्त जीवोंकी अविचक्षा की गई है ।

§ ४३३. अब उक्त संक्रमस्थानोंसे जो शेष अध्रुव संक्रमस्थान बचे हैं उनके अन्तरकालका विचार करनेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

❀ शेष नो संक्रमस्थानोंका अन्तरकाल कितना है ?

§ ४३४. यह सूत्र सुगम है ।

❀ जघन्य अन्तरकाल एक समय है और उत्कृष्ट अन्तरकाल संख्यात वर्ष है ।

§ ४३५. इस सूत्रमें 'शेष' पदके ग्रहण करनेसे २०, १६, १५, १४, ९, ८, ७, ६, और ५ इन संक्रमस्थानोंका संग्रह करना चाहिये । तथा 'णव' पदके ग्रहण करनेसे अगले सूत्रमें जो ध्रुव भावको प्राप्त हुए संक्रमस्थान कहे जानेवाले हैं उनका निराकरण हो जाता है ऐसा यहां जानना चाहिये । उपरामश्रेणिसम्बन्धी इन स्थानोंका जघन्य अन्तरकाल एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर-

वासपुधत्तमेत्तमंतरं होइ, तदारोहणविरहकालस्स तेत्तियमेत्तस्स णिन्वाहमुवलद्धीदो । सुत्ते  
संखेज्वस्सगहणेण वासपुधत्तमेत्तकालविसेसपडिवत्ती । कुदो ? अविरुद्धाहरियवक्खाणादो ।

❀ जेसिमविरह्दिकालो तेसिं णत्थि अंतरं ।

§ ४३६. सुगममेदं सुत्तं ।

एवमोयो समचो ।

§ ४३७. आदेशेण णेरुद्धसञ्चपदाणं णत्थि अंतरं, णिरंतरं। एवं पढमपुढवि-तिरिक्ख-  
पंचिदियतिरिक्ख-पंचिं-तिरिं-अपज्ज-देवगादिदेवा सोहम्मादि जाव सञ्चट्ठा ति ।  
विदियादि सत्तमा ति एवं चेव । णवरि २१ जहं एयसमओ, उक्कं पलिदो० असंखे०-  
भागो । एवं जोणिणी-भवण०-त्राण०-जोदिसिं० । मणुसुत्तिएओघं । णवरि मणुसिणी०  
वासपुधत्तं । मणुसअपज्ज० सञ्चपदसंका० जहं एयसमओ, उक्कं पलिदो० असंखे०-  
भागो । एवं जाव० ।

❀ सण्णियासो णत्थि ।

§ ४३८. कुदो ? एकम्मि मंकमट्टाणे णिरुद्धे सेससंकमट्टाणाणं तत्थासंभवादो ।

§ ४३९. भावो मच्चत्थ ओदुद्धो भावो ।

काल वर्षप्रत्यक्ष है, क्योंकि उपसमश्रैणिका विरहकाल निराधरीतिले इतना हा पाया जाता है ।  
अर्थात् अधिकसे अधिक इतने कालतक जीव उपसमश्रैणिक नहीं चढ़ते हैं । सूत्रमे जो 'संखेज्वस्स'  
पदका ग्रहण किया है सो उसमे वर्षप्रत्यक्षप्रमाण कालविशेषका ज्ञान होता है, क्योंकि अन्य  
आचार्योंने उपसमश्रैणिका उत्कृष्ट अन्तर वर्षप्रत्यक्ष ही घतलाया है, अतः यह व्याख्यान उसके  
अविरुद्ध है ।

\* जिनका विरहकाल नहीं पाया जाता उन स्थानोंका अन्तर नहीं है ।

§ ४३६. यह सूत्र सुगम है ।

इस प्रकार ओघप्ररूपणा समाप्त हुई ।

§ ४३७. 'आदेशकी अज्ञा नारकियोंमे सब पदोंका अन्तर नहीं है, वे वहाँ निरन्तर पाये  
जाते हैं । इसी प्रकार प्रथम पृथिवीके नारकी, तिर्यञ्च, पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चद्विक, पंचेन्द्रिय तिर्य'च  
अपर्याप्त, देवगतिमे देव और सौधर्म करससे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमे जानना चाहिये ।  
दूसरी पृथिवीसे लेकर सातवीं पृथिवीतक भी इसी प्रकार जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है  
कि यहाँ पर २१ प्रकृतिक संक्रमस्थानका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर पत्यके  
असंख्यातर्वे भागप्रमाण है । इसी प्रकार योनिनी तिर्यञ्च, भवनवासी, व्यन्तर और ज्योतिपी देवोंमे  
जानना चाहिये । मनुष्यनिकमे अन्तर ओघके समान है । किन्तु इतनी विशेषता है कि मनुष्यनीके  
वर्षप्रत्यक्ष अन्तर कहना चाहिये । मनुष्य अपर्याप्तकोंमे सब पदोंके संक्रमकोंका जघन्य अन्तर  
एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर पत्यके असंख्यातर्वे भागप्रमाण है । इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा  
तक जानना चाहिये ।

संकमस्थानोंका सन्निकर्ष नहीं है ।

§ ४३८. क्योंकि एक संक्रमस्थानके रहते हुए वहाँ पर शेष संक्रमस्थानोंका पाया जाना  
सम्भव नहीं है ।

§ ४३९. भाव सर्वत्र औदयिक है ।



❀ अर्पावहुअं ।

§ ४४०. एतो पत्तावसरमर्पावहुअं परूवइस्सामो त्ति पइज्जासुत्तमेदं ।

❀ सन्वत्थोवा णवण्हं संकामया ।

§ ४४१. कुदो एदेसिं थोवत्तं णव्वदे ? थोवकालसंचिदत्तादो । तं कथं ? इगिवीससंतकम्मिओ उवसमसेदिं चट्ठिय दुविहं कोहं कोहसंजलणचिराणसंतेण सह उवसामिय तण्णवकबंधुवसामेतो समऊणदोआवलियमेत्तकालं णवण्हं संकामयो होइ । तदो थोवकालसंचिदत्तादो थोवयरत्तमेदेसिं सिद्धं ।

❀ छुएहं संकामया तत्तिया चैव ।

§ ४४२. कुदो ? माणसंजलणणवकबंधोवसामणापरिणदाणमिगिवीससंतकम्मिओव-सामयाणं समऊणदोआवलियमेत्तकालसंचिदाणमिहावलंबणादो । एदेसिं च दोण्हं रासीणं सरिसत्तं चट्ठमाणरासिं पहारणं कादूण भणिदं, ओयरमाणरासिस्स विवक्खा-भावादो । तम्हि विवक्खिय छसंकामएहितो णवसंकामयाणमद्दाविसेसेण विसेसाहियत्त-दंसणादो ।

❀ चौइसएहं संकामया संखेज्जगुणा ।

४४३. जइ वि एदे वि समऊणदोआवलियमेत्तकालसंचिदा तो वि संखेज्जगुणत्त-

\* अब अल्पवहुत्वका अधिकार है ।

§ ४४०. अब इससे आगे अबसर प्राप्त अल्पवहुत्वको बतलाते हैं । इस प्रकार यह प्रतिज्ञासूत्र है ।

\* नौ प्रकृतियोंके संक्रामक जीव सघसे थोड़े हैं ।

§ ४४१. शंका—इनकी अल्पता कैसे जानी जाती है ?

समाधान—क्योंकि इनका अल्पकालमें संचय होता है । यथा—इक्कीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला जीव उपशमश्रेणिएर चढ़ कर क्रोध संव्रलनके प्राचीन सत्तामें स्थित सत्कर्मके साथ दो प्रकारके क्रोधका उपशम करके उसके नवकबन्धका उपशम करता हुआ एक समयकम दो आवलि कालतक नौ प्रकृतियोंका संक्रामक होता है, इसलिये थोड़े कालमें संचय होनेसे ये जीव थोड़े होते हैं यह बात सिद्ध हुई ।

\* उनसे छह प्रकृतियोंके संक्रामक जीव उत्तने ही हैं ।

§ ४४२. क्योंकि जो इक्कीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले उपशमक जीव मान संव्रलनके नवकबन्धका उपशम कर रहे हैं जो कि एक समय कम दो आवलि कालके भीतर संचित होते हैं उनका यहाँ अवलम्बन लिया गया है । किन्तु इन दोनों राशियोंकी समानता उपशमश्रेणिएर चढ़नेवाली राशिकी प्रधानतासे कही गई है, क्योंकि यहाँ उपशमश्रेणिते उतरनेवाली राशिकी विवक्षा नहीं है । यदि उतनेवाले जीवोंकी प्रधानतासे विचार किया जाता है तो छह प्रकृतियोंके संक्रामकोंसे नौ प्रकृतियोंके संक्रामकोंका अधिक काल होनेके कारण वे विशेष अधिक देखे जाते हैं ।

\* उनसे चौदह प्रकृतियोंके संक्रामक जीव संख्यातगुणे हैं ।

§ ४४३. यद्यपि ये भी एक समय कम दो आवलिप्रमाण कालके भीतर संचित होते हैं

भेदेसिं ण विरुज्झदे, इगिवीससंतकम्मिओवसामएहितो चउवीससंतकम्मिओवसामयाणं संखेज्जगुणत्तदंसणादो ।

❁ पंचएहं संकामया संखेज्जगुणा ।

§ ४४४. कुदो ? इगिवीस—चउवीससंतकम्मिओवसामयाणमंतोमुहुत्तसमगूण-  
दोआवलियसंचिदाणमिहोवलंभादो ।

❁ अट्टएहं संकामया विसेसाहिया ।

§ ४४५. किं कारणं ? इगिवीससंतकम्मियोवसामयस्स दुविहमाओवसामण-  
कालादो दुविहमाणोवसामणद्वाए विसेसाहियत्तदंसणादो चउवीससंतकम्मिओवसामग-  
समऊणदोआवलमंचयस्स उहयत्त समाणत्तदंसणादो च ।

❁ अट्टारस्सएहं संकामया विसेसाहिया ।

§ ४४६. एत्थ वि कारणं माणोवसामणद्वादो विसेसाहियकोहोवसामणद्वादो वि  
छण्णोकसाओवसामणकालस्स विसेसाहियत्तं दट्टुव्वं ।

❁ एग्गणीवीसाए संकामया विसेसाहिया ।

§ ४४७. एत्थ वि कारणमित्थिवेदोवसामणकालस्स छण्णोकसाओवसामणद्वादो  
विसेसाहियत्तमणुगंतव्वं ।

तो भी ये संख्यातगुणे होते हैं यह बात विरोधको नहीं प्राप्त होती, क्योंकि प्रकृतमें इक्कीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले उपशामक जीवोंसे चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले उपशामक जीव संख्यातगुणे देखे जाते हैं ।

\* उनसे पाँच प्रकृतियोंके संक्रामक जीव संख्यातगुणे हैं ।

§ ४४४. क्योंकि, अन्तर्मुहूर्त कालमें संचित हुए इक्कीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले उपशामक जीवोंका और एक समयकम दो आवलि कालमें संचित हुए चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले उपशामक जीवोंका यहाँपर ग्रहण किया है ।

\* उनसे आठ प्रकृतियोंके संक्रामक जीव विशेष अधिक हैं ।

§ ४४५. क्योंकि इक्कीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले उपशामक जीवोंके दो प्रकारकी मायान्के उपशामन कालसे दो प्रकारके मानका उपशामन काल विशेष अधिक देखा जाता है । तथा चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले उपशामकोंके एक समय कम दो आवलि कालके भीतर होनेवाला संचय उभयत्र समान देखा जाता है ।

\* उनसे अठारह प्रकृतियोंके संक्रामक जीव विशेष अधिक हैं ।

§ ४४६. यहाँ विशेष अधिकका कारण यह है कि मानके उपशामन कालसे विशेष अधिक जो कोषका उपशामन काल है उससे भी छह नोकपायोंका उपशामन काल विशेष अधिक देखा जाता है ।

\* उनसे उन्नीस प्रकृतियोंके संक्रामक जीव विशेष अधिक हैं ।

§ ४४७. यहाँ भी छह नोकपायोंके उपशामन कालसे छीवेदका उपशामन काल विशेष अधिक होता है यह कारण जानना चाहिये ।

❀ चउएहं संकामया संखेज्जगुणा ।

§ ४४८. कुदो ? संगतोभाविदचदुसंकामयखवयदुविहलोहसंकामयचउवीससंत-  
कम्मिओवसामयरासिस्स पहाणचोवलंभादो । - तदो जइ वि पुच्चिल्लसंचयकालादो  
एत्थतणसंचयकालो विसेसहीणो तो वि चउवीससंतकम्मियरासिमाहप्पादो संखेज्जगुणो  
त्ति सिद्धं ।

❀ सत्तण्हं संकामया विसेसाहिया ।

§ ४४९. चउवीससंतकम्मिओवसामयदुविहलोहोवसामणकालादो विसेसाहिय-  
दुविहमायोवसामणकालसंचिदत्तादो ।

❀ वीसाए संकामया विसेसाहिया ।

§ ४५०. जइ वि दोणहमेदेसि चउवीससंतकम्मिया संकामया तो वि सत्तसंकामय-  
कालादो वीससंकामयकालस्स छण्णोकसायोवसामणद्धपडिवद्धस्स विसेसाहियत्त-  
मस्सिरुण तत्तो एदेसि विसेसाहियत्तमविरुद्धं ।

❀ एक्किस्से संकामया संखेज्जगुणा ।

§ ४५१. कुदो ? मायासंकामयखवयरासिस्स अंतोसुहुत्तकालसंचिदस्स  
विवक्खियत्तादो ।

\* उनसे चार प्रकृतियोंके संक्रामक जीव संख्यातगुणे हैं ।

§ ४४८. क्योंकि यहाँ पर चार प्रकृतियोंके संक्रामक चपट जीवोंके साथ दो प्रकारके लोभका  
संक्रम करनेवाले चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले उपशामक जीवोंकी प्रधानता स्वीकार की गई है ।  
इसलिए यद्यपि पूर्वोक्त स्थानके संचयकालसे इस स्थानका संचय काल विशेष हीन होता है तो भी  
चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाली राशिकी प्रधानतासे पूर्वोक्त राशिसे यह राशि संख्यातगुणी है यह  
वात सिद्ध है ।

\* उनसे सात प्रकृतियोंके संक्रामक जीव विशेष अधिक हैं ।

§ ४४९. क्योंकि जो चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले उपशामक जीव दो प्रकारके लोभका  
उपशम कर रहे हैं उनके दो प्रकारके लोभके उपशम कालसे विशेष अधिक जो दो प्रकारकी मायाका  
उपशम काल है उसमें संचित हुए जीव यहाँ पर लिये गये हैं ।

\* उनसे बीस प्रकृतियोंके संक्रामक जीव विशेष अधिक हैं ।

§ ४५०. यद्यपि ७ और २० इन दोनों स्थानोंके संक्रामक जीव चौबीस प्रकृतियोंकी  
सत्तावाले होते हैं तो भी सात प्रकृतियोंके संक्रामकके कालसे बीस प्रकृतियोंके संक्रामकका काल  
छह नोकपायोंके उपशामनाकालसे सम्बन्ध रखनेवाला होनेके कारण विशेष अधिक होता है इसलिए  
सात प्रकृतियोंके संक्रामक जीवोंसे बीस प्रकृतियोंके संक्रामक जीव विशेष अधिक होते हैं यह वात  
अविरुद्ध है ।

\* उनसे एक प्रकृतिके संक्रामक जीव संख्यातगुणे हैं ।

§ ४५१. क्योंकि मायाकी संक्रामक जो क्षपकराशि अन्तर्गृह्य कालके भीतर संचित होती  
है वह यहाँ विवक्षित है ।

⊙ दोषहं संक्रामया विसेसाहिया ।

§ ४५२. एषिस्से संक्रमणकालादो दोषहं संक्रामयकालस्म विसेमाहियत्तोव-  
लद्दीदो ।

⊙ दसएहं संक्रामया विसेसाहिया ।

§ ४५३. माणमंजलणस्रवणदादो विसेमाहियत्तणोक्त्तायक्त्तवणदादाए लद्ध-  
मंचयत्तादो ।

⊙ एकारसणहं संक्रामया विसेसाहिया ।

§ ४५४. छण्णोक्त्तायक्त्तवणदादो साहिरियत्त्वियवेदक्त्तवणदादामंचयस्म संगहादो ।

⊙ चारसणहं संक्रामया विसेसाहिया ।

§ ४५५. तत्तो विसेसाहियणुंमयवेदक्त्तवणदादाए संकलित्त्तमस्वत्तादो' ।

⊙ तिणहं संक्रामया संखेज्जगुणा ।

§ ४५६. अस्सकण्णकरणकिट्टीकरण-ओहकिट्टीवेदराकालपडिविदादाए तिणहं संक्रा-  
मणदादाए णुंमयवेदक्त्तवणकालादो' किंचुणनिगुणमेत्ताए संकलित्त्तमस्वत्तादो ।

⊙ तेरसएहं संक्रामया संखेज्जगुणा ।

\* उनसे दो प्रकृतियोंके संक्रामक जीव विशेष अधिक हैं ।

§ ४५८. क्योंकि एक प्रकृतिके संक्रामकालमें दो प्रकृतियोंका संक्रमण विशेष अधिक  
उपलब्ध होता है ।

\* उनसे दस प्रकृतियोंके संक्रामक जीव विशेष अधिक हैं ।

§ ४५३. क्योंकि मानसजलनके क्षणकालमें जो विशेष अधिक छद्म नोकरायोंका क्षण-  
काल है । उनमें इनका संचय प्राप्त होता है ।

\* उनसे ग्यारह प्रकृतियोंके संक्रामक जीव विशेष अधिक हैं ।

§ ४५४. क्योंकि छद्म नोकरायोंके क्षणकालमें साधक जीवोंके क्षणकालमें संचित हुए  
जीवोंका यहाँ संगठ किया गया है ।

\* उनसे चारह प्रकृतियोंके संक्रामक जीव विशेष अधिक हैं ।

§ ४५५. क्योंकि छीवेदके क्षणकालमें साधक जीवोंके क्षणकालमें संचित हुए  
संचय होता है ।

\* उनसे तीन प्रकृतियोंके संक्रामक जीव संख्यातगुणे हैं ।

§ ४५६. क्योंकि जो तीन प्रकृतियोंका संक्रमणकाल है वह अद्वयकारणकाल, कृष्टीकरण  
काल और क्रोयकृष्टिवेदकाल इन तीनोंसे सम्बद्ध है जो कि नपुंसकवेदके क्षणकालमें कुछ कम  
निगुणता है, अतः उनमें संचित हुए जीव संख्यातगुणे होते हैं ।

\* उनसे तेरह प्रकृतियोंके संक्रामक जीव संख्यातगुणे हैं ।

१. ता० आ०प्रत्योः सगलित्त्तमस्वत्तादो इति पाठः । २. आ०प्रती-वेदे नपुंसककालादो  
इति पाठः ।

§ ४५७. अद्रुकसाएसु खविदेसु. जावाणुपुञ्जीसंकमो णाढविज्जइ ताव पुञ्चिल्ल-  
कालादो संखेज्जगुणकालम्मि संचिदत्तादो ।

❀ बावीससंकामया संखेज्जगुणा ।

§ ४५८. दंसणमोहक्खवगो मिच्छत्तं खविय जाव सम्मामिच्छत्तं ण खवेह ताव  
पुञ्चिल्लद्वादो संखेज्जगुणभूदम्मि कालेण एदेसिं संचिदसरूपाणमुवलंभादो ।

❀ छुञ्चीसाए संकामया असंखेज्जगुणा ।

§ ४५९. कुदो ? सम्मत्तमुव्वेल्लिय सम्मामिच्छत्तमुव्वेत्थेमाणस्स कालो पलिदोव-  
मासंखेज्जभागमेत्तो । तत्थ संचिदजीवरासिस्स' पलिदो० असंखे०भागमेत्तस्स पढम-  
सम्मत्तग्गहणपढमसमयवट्टमाणजीवेहि सह गहणादो ।

❀ एकवीसाए संकामया असंखेज्जगुणा ।

§ ४६०. कुदो ? वेसागरोवमकालसंचिदखइयसम्माइट्टिरासिस्स पहाणभावेण  
इह गणादो । को गुणगारो ? आवलि० असंखे०भागो ।

❀ तेवीसाए संकामया असंखेज्जगुणा ।

§ ४६१. कुदो ? छावट्टिसागरोवमकालअंतरसंचिदत्तादो । जइ एवं संखेज्जगुणत्तं

§ ४५७. क्योंकि आठ कपायोंका क्षय होने पर जब तक आनुपूर्वी संक्रमका प्रारम्भ नहीं  
किया जाता है तब तक पूर्वोक्त स्थानके कालसे यह काल संख्यातगुणा हो जाता है, इसलिये इस  
कालमें संचित हुए जीव भी संख्यातगुण्ये होते हैं ।

❀ उनसे बाईस प्रकृतियोंके संक्रामक जीव संख्यातगुणे हैं ।

§ ४५८. क्योंकि जो दर्शनमोहनीयका क्षय करके जीव मिथ्यात्वका क्षय करके जब तक  
सम्यग्मिथ्यात्वका क्षय नहीं करता है तब तक पूर्वोक्त स्थानके कालसे इस स्थानका काल संख्यात-  
गुणा होता है, इसलिये इस काल द्वारा जो इन जीवोंका संचय होता है वह संख्यातगुणा उपलब्ध  
होता है ।

❀ उनसे छुञ्चीस प्रकृतियोंके संक्रामक जीव असंख्यातगुणे हैं ।

§ ४५९. क्योंकि सम्यक्त्वकी उद्वेलना करके सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वेलना करनेवाले जीवका  
काल पत्यके असंख्यातवर्गे भागप्रमाणा है, इसलिये उस कालके भीतर पत्यकी असंख्यातवर्गे भागप्रमाण  
जीवराशिका संचय पाया जाता है उसका यहाँ पर प्रथम सम्यक्त्वको ग्रहण करके उसके प्रथम  
समयमें विद्यमान जीवराशिके साथ ग्रहण किया है ।

❀ उनसे इक्कीस प्रकृतियोंके संक्रामक जीव असंख्यातगुणे हैं ।

§ ४६०. क्योंकि यहाँ पर दो सागर कालके भीतर संचित हुई क्षायिकसम्यग्दृष्टि राशिका  
प्रधानरूपसे ग्रहण किया है । गुणकार क्या है ? गुणकार आवलिका असंख्यातवर्गे भाग है ।

❀ उनसे तेईस प्रकृतियोंके संक्रामक जीव असंख्यातगुणे हैं ।

§ ४६१. क्योंकि इनका छयासठ सागर कालके भीतर संचय होता है ।

पसज्जे, कालगुणयारस्स तद्वाभावोवलंभादो त्ति ? ण एस्स दोसो, उवकममाणजीव-  
पाहम्मणे अस्संखेज्जगुणत्तसिद्धीदो । तं जद्दा—खड्यसम्माइट्ठीणमेयसमयसंचओ संखेज्ज-  
जीवमेत्तो । चउवीससंतकम्मिया पुण उक्कस्सेण पल्लिदो० असंखे०भागमेत्ता एयसमाए  
उवकमंता लुभंति । तम्हा तेहंतो एदेसिमसंखे०गुणत्तमविरुद्धमिदि । एत्थ वि  
गुणयारो पल्लिदो० असंखे०भागमेत्तो ।

ॐ सत्तावीसाए संकामया असंखेज्जगुणा ।

§ ४६२. एत्थ वि गुणगारपमाणमावलि० असंखे०भागमेत्तं । कुदो ? अट्ठावीस-  
संतकम्मियसम्माइट्ठि-मिच्छाट्ठीणंमिह गहणादो ।

ॐ पणुवीससंकामया अणंतगुणा ।

§ ४६३. किंचुणसत्त्वजीवरागिस्स पणुवीससंकामयत्तेण विवकिञ्चयत्तादो ।

एवमोधाणुगमो ममत्तो ।

§ ४६४. एत्तो आदेमपरुवणं देसाभागियगुत्तयुत्तिदं वत्तइस्सामो । तं जद्दा—  
आदेसेण णेरुदुयं मच्चन्थोवा २६ मंका० । २१ मंका० अमंसे०गुणा । २३ मंका०

शंका—यदि एता एं तो पूर्वोक्त राशित्ते यद् राशि संख्यातगुणी प्राप्त हाती हं, क्योंकि  
कालगुणकार इतना उपलब्ध होता हं ?

समाधान—यद् कोई वाप नहीं हं, क्योंकि उपक्रममाण जीवोंकी प्रधानतासे पूर्वोक्त राशित्ते  
यद् राशि असंख्यातगुणी मिद्ध होती हं । गुणासा उय प्रकार हं—एक समयमे द्वायिरुसम्यग्रदृष्टियों-  
का संचय संख्यात की हाता हं किन्तु चांवीस प्रकृतियोंकी सत्तावाजे जीव तां एउ समयमे पत्यके  
असंख्यातवें भागप्रमाण होते हुए पायं जाते हं, इसलिए उनसे ये जीव असंख्यातगुणे होते हं इस  
वातमे कोई विरोध नहीं आता हं । यहाँ पर गुणकारका प्रमाण भी पत्यके असंख्यातवें भाग-  
प्रमाण हं ।

ॐ उनसे सत्ताईस प्रकृतियोंके संक्रामक जीव अमंख्यातगुणे हं ।

§ ४६२. यहाँ पर भी शुगकरका प्रमाण आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण हं, क्योंकि  
अट्ठाईस प्रकृतियोंकी सत्तावाले सम्यग्रदृष्टि और मिच्छादृष्टि जीवोंका यहाँ पर ग्रहण किया हं ।

ॐ उनसे पच्चीस प्रकृतियोंके संक्रामक जीव अनन्तगुणे हं ।

§ ४६३. क्योंकि कुछ कम सब जीवराशि पच्चीस प्रकृतियोंकी संक्रामकरूपसे विवक्षित हं ।

इस प्रकार औघानुगम समाप्त हुआ ।

§ ४६४. अब आगे देशामर्षक सूत्रसे सचित होनेवाले आदेशका कथन करते हं । यथा—  
आदेशकी अपेक्षा नारकियोंमें २६ प्रकृतियोंके संक्रामक जीव सयसे थोड़े हं । उनसे २१ प्रकृतियोंके  
संक्रामक जीव असंख्यातगुणे हं । उनसे २३ प्रकृतियोंके संक्रामक जीव असंख्यातगुणे हं । उनसे

१. ता०—आ०प्रत्योः—हट्ठिमि मिच्छादट्ठीण इति पाठः ।

असखेज्जगुणा । २७ संक्राम० असंखे०गुणा । २५ संक्रा० असंखेगुणा० । एवं पढमाए पंचिदियतिरिक्खदुगं [ देवा ] सोहम्मादि जाव सहस्सार ति । विदियादि जाव सत्तमा ति सच्चत्थोवा २१ संक्रा० । २६ संक्रा० असंखे०गुणा । उवरि णिरओघो । एवं जोणिणी-भवण०-वाण०-जोदिसिया ति ।

§ ४६५. तिरिक्खाणं पारयभंगो । णवरि २५ संक्रा० अणंतगुणा । पंचि०-तिरिक्खअपज्जत्त-मणुसअपज्ज० सच्चत्थोवा २६ संक्रा० । २७ संक्रा० असंखे०गुणा । २५ संक्रा० असंखे०गुणा ।

§ ४६६. मणुस्साणमोघो । णवरि २२ संक्रामयाणमुवरि २१ संक्राम० संखे०-गुणा । २३ संक्रा० संखे०गुणा । २६ संक्रा० असंखे०गुणा । २७ संक्रा० असंखे०गुणा । २५ संक्रा० असंखे०गुणा । एवं पज्जत्तएसु । णवरि सच्चत्थ संखेज्ज०गुणं कायव्वं । एवं मणुसिणीसु । णवरि १४ संक्रा० णत्थि, ओयरमाणविवक्खाभावादो ।

§ ४६७. आणदादि जाव णवगेवज्जा ति सच्चत्थोवा २६ संक्रा० । २५ संक्रा० असंखे०गुणा । २१ संक्रा० संखे०गुणा । २३ संक्रा० संखे०गुणा । २७ संक्रा० संखे०-

२७ प्रकृतियोंके संक्रामक जीव असंख्यातगुण्ये हैं । उनसे २५ प्रकृतियोंके संक्रामक जीव असंख्यातगुण्ये हैं । इसी प्रकार प्रथम पृथिवीके नारकी, पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चद्विक, सामान्य देव और सौधर्म कल्पसे लेकर सहस्रहार कल्पतकके देवोंमें जानना चाहिये । दूसरी पृथिवीसे लेकर सातवीं पृथिवी तकके नारकियोंमे २१ प्रकृतियोंके संक्रामक जीव सबसे थोड़े हैं । उनसे २६ प्रकृतियोंके संक्रामक जीव असंख्यातगुण्ये हैं । इससे आगेका अल्पबहुत्व सामान्य नारकियोंके समान है । इसी प्रकार तिर्यञ्च योनिनी, भवनवासी, व्यन्तर और ज्योतिषी देवोंमें जानना चाहिये ।

§ ४६५. तिर्यचोंमें अल्पबहुत्व नारकियोंके समान है । किन्तु इतनी विशेषता है कि इनमें २५ प्रकृतियोंके संक्रामक जीव अनन्तगुण्ये हैं । पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तक और मनुष्य अपर्याप्तकोंमें २६ प्रकृतियोंके संक्रामक जीव सबसे थोड़े हैं । उनसे २७ प्रकृतियोंके संक्रामक जीव असंख्यातगुण्ये हैं । उनसे २५ प्रकृतियोंके संक्रामक जीव असंख्यातगुण्ये हैं ।

§ ४६६. मनुष्योंमें अल्पबहुतर ओघके समान है । किन्तु इतनी विशेषता है कि इनमें २२ प्रकृतियोंके संक्रामकोंके आगे २१ प्रकृतियोंके संक्रामक जीव संख्यातगुण्ये हैं । उनसे २३ प्रकृतियोंके संक्रामक जीव संख्यातगुण्ये हैं । उनसे २६ प्रकृतियोंके संक्रामक जीव असंख्यातगुण्ये हैं । उनसे २७ प्रकृतियोंके संक्रामक जीव असंख्यातगुण्ये हैं । उनसे २५ प्रकृतियोंके संक्रामक जीव असंख्यातगुण्ये हैं । इसीप्रकार पर्याप्तक मनुष्योंमें जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि इनमें सर्वत्र संख्यातगुणा करना चाहिये । इसी प्रकार मनुष्यनियोंमें अल्पबहुत्व जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि मनुष्यनियोंमे १४ प्रकृतियोंके संक्रामक जीव नहीं हैं, क्योंकि यहाँ पर उपशमश्रेणिले उतरनेवाली मनुष्यनियोंकी विवक्षा नहीं की है ।

§ ४६७. आनत कल्पसे लेकर नौ प्रैवेयक तकके देवोंमें २६ प्रकृतियोंके संक्रामक जीव सबसे थोड़े हैं । उनसे २५ प्रकृतियोंके संक्रामक जीव असंख्यातगुण्ये हैं । उनसे २१ प्रकृतियोंके संक्रामक जीव संख्यातगुण्ये हैं । उनसे २३ प्रकृतियोंके संक्रामक जीव संख्यातगुण्ये हैं । उनसे २७

गुणा । अणुदिसादि जाव सञ्चट्टा त्ति सञ्चत्वोवा २१ मंका० । २३ संकामया संखे-  
गुणा । २७ संका० संखेज्जगुणा । एवं जाव० ।

एवमप्पावहुअं समत्तं ।

§ ४६८. एत्थ भुजगार-पदणिकसेव-वट्ठिसंक्रमा च कायच्चा, मुत्तमचिदत्तादो ।  
तं जहा—भुजगारे तत्थ इमाणि तेरस अणियोगद्वाराणि—समुक्तिणादि जाव अप्पा-  
वहुए त्ति । समुक्तिणाए दुविहो णिहोसो—ओघेणादेसेण य । ओघेण अत्थि भुज-  
अप्प०-अवट्ठि०-अवत्तसंकामया । एवं मणुस०३ । आदेसेण णोएहय० एवं चेव । णवरि  
अवत्तञ्चपदं णत्थि । एवं सञ्चणिरय०-सञ्चतिरिक्ख-सञ्चदेवा त्ति । णवरि पंचि०-  
तिरिक्खअपज्ज०-मणुसअपज्ज०-अणुदिसादि जाव सञ्चट्टा त्ति अत्थि अप्प०-अवट्ठि०-  
संकामया । एवं जाव० ।

§ ४६९. सामित्ताणु० दुविहो णिहोसो—ओघेण आदेसेण य । ओघेण भुज-  
अप्पदर०-अवट्ठि०-संक्रमो कस्स ? अण्णदग्गस्स सम्मादिट्ठि० मिच्छादिट्ठिस्स वा ।  
अवत्त० कस्स ? अमंकामओ होऊण परिवदमाणयस्स इगिचीससंतकम्मिओवसंतकसायस्स  
पढमसमयदेवस्स वा । एवं मणुसतिए । णवरि पढमसमयदेवस्से त्ति ण वत्तञ्चं ।  
प्रकृतियोंके संक्रामक जीव संख्यातगुण हैं । अनुदिसादे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोमे २१  
प्रकृतियोंके संक्रामक जीव सचवे थोड़े हैं । उनसे २३ प्रकृतियोंके संक्रामक जीव संख्यातगुण हैं । उनसे  
२७ प्रकृतियोंके संक्रामक जीव संख्यातगुण हैं । इसीप्रकार अनाहारक मार्गणातक जानना चाहिये ।

इम प्रकार अरपवहुत्त समाप्त हुआ ।

§ ४६८. यहाँ पर भुजगार, पदनिर्दिष्ट और वृद्धिसंक्रम इनका कथन करना चाहिए, क्योंकि  
उनकी सूत्रमें सूचना की गई है । यथा—उनमेंसे भुजगार अनुयोगद्वारा समुत्कीर्तनासे लेकर अल्प-  
वहुत्त तक तेरह अनुयोगद्वार होते हैं । उनमेंसे समुत्कीर्तनाकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—  
ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । ओघकी अपेक्षा भुजगार, अल्पतर, अवस्थित और अवक्तव्य  
संक्रमस्थानोंके संक्रामक जीव हैं । इसी प्रकार मनुष्यविक्रमे जानना चाहिये । आदेशकी अपेक्षा  
नातिक्रमोंमें इसी प्रकार जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि इनमें अवक्तव्यपद नहीं  
होता । इसी प्रकार सच नारकी, सच तिर्यच्छ और सच देवोंमें जानना चाहिये । किन्तु इतनी  
विशेषता है कि पंचेन्द्रिय तिर्यच्छ अपर्याप्त, मनुष्य अपर्याप्त और अनुदिसादे लेकर सर्वार्थसिद्धि  
तकके देवोंमें अल्पतर और अवस्थित संक्रमस्थानोंके संक्रामक जीव हैं । इसी प्रकार अनाहारक  
मार्गणा तक जानना चाहिये ।

§ ४६९. स्वामित्वाणुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—आघनिर्देश और आदेश  
निर्देश । ओघसे भुजगार, अल्पतर और अवस्थितसंक्रम किसके होता है ? किसी सन्ध्यादृष्टि  
या मिथ्यादृष्टिके होता है । अवक्तव्यसंक्रम किसके होता है ? इन्कीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला  
जो असंक्रामक उपशान्तकपाय जीव उपशान्तश्रेणिते न्युत्त हो रहा है उसके होता है । या इन्कीस  
प्रकृतियोंकी सत्तावाला जो असंक्रामक उपशान्तकपाय जीव मरकर देवोंमें उत्पन्न होता है, प्रथम  
समयवर्ती उस देवके होता है । इसी प्रकार मनुष्यविक्रममें जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता



आदेसेण णेरइय० भुज०-अप्पद०-अवट्टि० ओघभंगो । एवं सच्चणेरइय०-सच्चतिरिक्ख-  
सच्चदेवा त्ति । णवरि पंचि०तिरि०अपज्ज०-मणुसअपज्ज०-अणुहिसादि जाव सच्चट्टे  
त्ति अप्पद०-अवट्टि० कस्स ? अण्णद० । एवं जाव० ।

§ ४७०. कालाणुगमेण दुविहो णिदेसो—ओघेण आदेसेण य । ओघेण भुज०-  
संका० केवचिरं ? जह० एगसमओ, उक्क० वेसमया । अप्पदर०-अवत्त० जहण्णुक्क०  
एगसमओ । अवट्टि०संका० तिण्णि भंगा । तत्थ जो सो सादिओ सपज्जवसिदो तस्स  
जह० एगसमओ, उक्क० उवट्टुपोग्गलपरियट्टा । आदेसेण णेरइय० भुज०-अप्पद०  
ओघं । अवट्टि० जह० एगसमओ, उक्क० तेचीसं सागरोवमाणि । एवं सच्चणेरइय०-  
सच्चतिरिक्ख०-सच्चदेवे त्ति । णवरि अवट्टिदस्स सगट्टिदी वत्तव्वा । पंचि०तिरिक्ख-  
अपज्ज०-मणुसअपज्ज० अप्पद० जह० उक्क० एगसमओ । अवट्टि० जह० एगसमओ,  
उक्क० अंतोमुहुत्तं । अणुहिसादि जाव सच्चट्टा त्ति अप्पद०<sup>१</sup> ओघभंगो । अवट्टि० जह०  
अंतोमुहुत्तं, उक्क० सगट्टिदी । मणुस०३ पंचिदियतिरिक्खभंगो । णवरि अवत्त० जह०  
उक्क० एगसमओ । एवं जाव० ।

है कि यहाँ पर प्रथम समयवर्ती देवके नहीं कहना चाहिये । आदेशसे नारकियोंमें भुजगार,  
अल्पतर और अवस्थितरूप संक्रामका भंग ओघके समान है । इसीप्रकार सब नारकी, सब तिर्यच  
और सब देवोंमें जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि पंचेन्द्रियतिर्यचअपर्याप्त, मनुष्य  
अपर्याप्त और अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें अल्पतर और अवस्थितसंक्रम किसके  
होता है ? अन्यतरके होता है । इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिये ।

§ ४७०. कालानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश । ओघसे  
भुजगार पदके संक्रामकका कितना काल है ? जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल दो  
समय है । अल्पतर और अवक्तव्यपदोंके संक्रामकका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है ।  
अवस्थित संक्रमस्थानोंके संक्रामकके तीन भंग हैं । उनमेंमे जो सादि-सान्त भंग है उसका जघन्य  
काल एक समय है और उत्कृष्ट काल उपार्धपुद्गलपरिवर्तनप्रमाण है । आदेशकी अपेक्षा नारकियोंमें  
भुजगार और अल्पतर पदोंका भंग ओघके समान है । अवस्थित पदके संक्रामकका जघन्य काल  
एक समय है और उत्कृष्ट काल तेतीस सागर है । इसी प्रकार सब नारकी, सब तिर्यच और सब  
देवोंमें जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि सर्वत्र अवस्थित संक्रमस्थानका उत्कृष्ट काल  
अपनी-अपनी स्थितिप्रमाण कहना चाहिये । पंचेन्द्रियतिर्यच अपर्याप्त और मनुष्य अपर्याप्तकोंमें-  
अल्पतर पदके संक्रामकका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । अवस्थित पदके संक्रामकका  
जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके  
देवोंमें अल्पतर पदका भंग ओघके समान है । अवस्थितपदके संक्रामकका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त  
है और उत्कृष्ट काल अपनी-अपनी स्थितिप्रमाण है । मनुष्यत्रिकमें पंचेन्द्रिय तिर्यचके समान भंग  
है । किन्तु इतनी विशेषता है कि अवक्तव्यपदका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । इसी  
प्रकार अनाहारक मार्गणातक जानना चाहिये ।

§ ४७१. अंतराणु० दुविहो णिहेसो—ओषेण आदेसेण य । ओषेण भुज० जह० एगसमओ, अप्प० जह० अंतोमुहुत्तं, उक्क० दोण्हं पि उवट्ठपोग्गलपरियट्ठं । अवट्ठिद० जह० एगसमओ, उक्क० अंतोमुहुत्तं । अवत्त० जह० अंतोमु०, उक्क० तेचीसं सागरों-चमाणि देखणदोपुञ्चकोडीहि सादिरेयाणि । आदेसेण णेरइय० भुज०-अप्पद० जह० एगसमओ अंतोमुहुत्तं, उक्क० तेचीसं सागरो० देखणाणि । अवट्ठि० जह० एगसमओ, उक्क० तिण्णिण समया, पढमट्ठिदिदुचरिमसमए सम्मामि०चरिमफालिं संकामिय सम्मत्तं पडिवण्णास्मि तदुवलंभादो । एवं सच्चणेरइय० । णवरि सगट्ठिदी० । तिरिक्खणाण० णारयभंगो । णवरि उक्क० उवट्ठपोग्गलपरियट्ठं । पंचिदियतिरिक्खलिय ३ णारग-भंगो । णवरि उक्क० सगट्ठिदी । पंचिदियतिरिक्खअपज्ज०-मणुसअपज्ज०-अणुहिसादि जाव सच्चट्ठा त्ति अप्पदर० णत्थि अंतरं । अवट्ठि० जह० उक्क० एगसमओ । मणुस-त्तिए ३ भुज०-अप्पद० पंचि०तिरिक्खभंगो । अवट्ठि० ओषो । अवत्त० जह० अंतोमु०, उक्क० पुञ्चकोडी देखणा । देवाणं णारयभंगो । णवरि उक्क० एक्कीसं सागरो० देखणाणि । भवणादि जाव णग्गेवज्जा त्ति एवं चेव । णवरि सगट्ठिदी देसणा ।

§ ४७१. अन्तराणुमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका हैं—ओषनिर्देश और आदेशनिर्देश । ओषसे भुजगार पदके संक्रामकका जघन्य अन्तरकाल एक समय है । अल्पतर पदके संक्रामकका जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है । तथा इन दोनोंका उत्कृष्ट अन्तरकाल उपार्थपुद्गलपरिवर्तनप्रमाण है । अवस्थित पदके संक्रामकका जघन्य अन्तरकाल एक समय है और उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है । अवक्तव्य पदके संक्रामकका जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ कम दो पूर्वकोटि अधिक तैतीस सागर है । आदेशकी अपेक्षा नारकियोंमें भुजगार और अल्पतर पदके संक्रामकका जघन्य अन्तरकाल क्रमसे एक समय और अन्तर्मुहूर्त है । तथा उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ कम तैतीस सागर है । अवस्थित पदके संक्रामकका जघन्य अन्तरकाल एक समय है और उत्कृष्ट अन्तरकाल तीन समय है, क्योंकि जो जीव प्रथम स्थितिके द्विचरम समयमें सन्ध्यामिथ्यात्वकी अन्तिम फालिनी संक्रम करके सम्यक्त्वको प्राप्त होता है उसके अवस्थितपदका यह उत्कृष्ट अन्तर काल पाया जाता है । इसी प्रकार मन्व नारकी जीवोंमें जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि अपनी-अपनी स्थिति कहनी चाहिये । तिर्यञ्चोंमें अन्तरका कथन नारकियोंके समान करना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि उत्कृष्ट अन्तरकाल उपार्थपुद्गलपरिवर्तनप्रमाण है । पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चनिकमें अन्तरका कथन नारकियोंके समान है । किन्तु इतनी विशेषता है कि उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अपनी-अपनी स्थितिप्रमाण है । पंचेन्द्रियतिर्यञ्च अपर्याप्त, मनुष्य अपर्याप्त और अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें अल्पतरपदके संक्रामकका अन्तरकाल नहीं है । अवस्थितपदके संक्रामकका जघन्य अन्तर एक समय है । मनुष्यनिकमें भुजगार और अल्पतरपदका अन्तर पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चोंके समान है । अवस्थितपदका अन्तर ओषके समान है । अवक्तव्यपदके संक्रामकका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम पूर्वकोटिप्रमाण है । देवोंमें अन्तरका कथन नारकियोंके समान है । किन्तु इतनी विशेषता है कि उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम इकतीस सागर है । भवनवासियोंसे लेकर नीचैवेयक तकके देवोंमें इसी प्रकार है । किन्तु इतनी विशेषता है कि सर्वत्र कुछ कम अपनी स्थिति कहनी चाहिये । इसी प्रकार अनाहारक मार्गीणा

एवं जाव० ।

§ ४७२. पाणाजीवेहि भंगविचयाणुगमेण दुविहो णिहेसो—ओघेण आदेसेण यं । ओघेण अवट्ठि० संका० णियमा अत्थि । सेसपदसंका० भयणिञ्जा । भंगा २७ । एवं चदुगदीसु । णवरि मणुसगदीदो अणत्थ णव भंगा वत्तव्वा । णवरि पंचि०-तिरि०अपज्ज०-अणुदिसादि जाव सव्वट्ठा त्ति अवट्ठि० णियमा अत्थि । सिया एदे च अप्पदरगो च १ । सिया एदे च अप्पदरगा च २ । ध्रुवसहिदा ३भंगा तिण्णि । मणुस-अपज्ज० अप्पदर-अवट्ठिदाणमट्ठ भंगा । एवं जाव० ।

§ ४७३. भागाभागानु० दुविहो णिहेसो—ओघेण आदेसेण य । ओघेण भुज०-अप्प०-अवत्त०संका० सव्वजी० केव० ? अणंतभागो । अवट्ठि० सव्वजीव० अणंता भागा । एवं तिरिक्खेसु । णवरि अवत्त० णत्थि । आदेसेण णेरह्य० अवट्ठि०संका० असंखेञ्जा भागा । सेसमसंखे०भागो । एवं सव्वणेरह्य-सव्वपंचि०तिरिक्ख-मणुस-मणुसअपज्ज०-देवा जाव अवरजिदा त्ति । मणुसपज्ज०-मणुसिणीसु सव्वट्ठेसु अवट्ठि० संखेञ्जा भागा । सेसं संखेज्जदिभागो । एवं जाव० ।

तक जानना चाहिये ।

§ ४७२. नाना जीवसम्बन्धी भंगविचयानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ-निर्देश और आदेशनिर्देश । ओघकी अपेक्षा अवस्थित पदके संक्रामक जीव नियमसे हैं । शेष पदोंके संक्रामक जीव भजनीय हैं । भंग २७ होते हैं । इसी प्रकार चारों गतियोंमें जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि मनुष्यगतिके सिवा अन्य गतियोंमें ६ भंग कहने चाहिये । किन्तु पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंमें और अनुदिशासे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें अवस्थित पदवाले जीव नियमसे हैं । कदाचित् अवस्थित पदवाले अनेक जीव हैं और अल्पतर पदवाला एक जीव है १ । कदाचित् अवस्थित पदवाले अनेक जीव हैं और अल्पतर पदवाले अनेक जीव हैं २ । इस प्रकार ध्रुव भंगके साथ तीन भंग हैं । मनुष्य अपर्याप्तकोंमें अल्पतर और अवस्थित पदके आठ भंग होते हैं । इसी प्रकार अनाहारक मार्गणातक जानना चाहिये ।

§ ४७३. भागाभागानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । ओघकी अपेक्षा भुजगार, अल्पतर और अवक्तव्य पदके संक्रामक जीव सब जीवोंके कितने भाग-प्रमाण हैं ? अनन्तवें भागप्रमाण हैं । अवस्थित पदके संक्रामक जीव सब जीवोंके अनन्त बहुभाग-प्रमाण हैं । इसी प्रकार तिर्यञ्चोंमें जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि तिर्यञ्चोंमें अवक्तव्यपद नहीं है । आदेशकी अपेक्षा नारकियोंमें अवस्थितपदके संक्रामक जीव असंख्यात बहुभागप्रमाण हैं । शेष पदोंके संक्रामक जीव असंख्यातवें भागप्रमाण हैं । इसी प्रकार सब नारकी, सब पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च, मनुष्य, मनुष्य अपर्याप्त, सामान्य देव और अपराजित तकके देवोंमें जानना चाहिये । मनुष्य पर्याप्त, मनुष्यिनी और सर्वार्थसिद्धिके देवोंमें अवस्थित पदवाले जीव संख्यात बहुभाग प्रमाण हैं । शेष पदवाले जीव संख्यातवें भागप्रमाण हैं । इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिये ।

१. आ०प्रतौ त्ति । मणुसअपज्ज० मणुसअपज्ज०मणुसिणीसु इति पाठः ।

§ ४७४. परिमाणाणु० दृविहो णिहोसो—ओघेण आदेसेण य । ओघेण भुज०-  
अप्प०संका० असंखेज्जा । अवट्ठि० अणंता । अवत्त० संग्गेज्जा । एवं तिरिक्खा० । णवरि  
अवत्त० णत्थि । आदेसेण णेरह्य० सच्चपदमंका० अमंरगेज्जा । एवं सच्चणेरह्य०-सच्चपंचि०-  
तिरिक्ख-मणुसअपज्ज०-देवा जाव अवगज्जिदा त्ति । मणुसेसु भुज०-अवत्त० संखेज्जा ।  
सेसा अमंखेज्जा । मणुमपज्ज०-मणुसिणी-सच्चट्ठेसु सच्चपदमंका० मंखेज्जा । एवं जाव० ।

§ ४७५. खेत्ताणु० दृविहो णिहोसो—ओघेण आदेसेण य । ओघेण अवट्ठि०-  
मंका० सच्चलोगे । सेसमंका० लोगसस अमंरगे०भागे । एवं तिरिक्खि० । सेससच्च-  
मग्गणासु सच्चपदमंका० लोग० असंखे०भागे । एवं जाव ।

§ ४७६. पोसणाणु० दृविहो णिहोसो—ओघेण आदेसेण य । ओघेण भुज०संका०  
केत्त० पोमिदं ? लोग० असंखे०भागो अट्ट-नारहचोदस० देसणा । अप्पद० अट्टचोह०  
देसणा मच्चलोगो वा । अवट्ठि० सच्चलोगो । अवत्त० लोग० असंखे०भागो । आदेसेण  
णेरह्य० भुज० लोग० असंखे०भागो पंचचोदस० देसणा । अप्पद०-अवट्ठि० लोग०

६४७. परिणामानुगमनी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—प्रोचनिर्देश और आदेशनिर्देश ।  
प्रोचनी अपेक्षा भुजगार और अत्यन्त पदके संक्रामक जीव असंख्यात हैं । अवस्थित पदके  
संक्रामक जीव अनन्त हैं । अव्यक्त्य पदके संक्रामक जीव संख्यात हैं । इसी प्रकार तिर्यक्चोम  
जानना चाहिये । त्रिन्तु उतनी विद्येयता है कि इनमें अव्यक्त्य पद नहीं है । आदेशकी अपेक्षा  
नारक्तियोंमें सब पदोंके संक्रामक जीव असंख्यात हैं । इसी प्रकार सब नारकी, सब पंचेन्द्रिय  
तिर्यक्का मनुष्य अपर्याप्त, सामान्य देव और अपरजित विमान तन्के देशोंमें जानना चाहिये ।  
मनुष्योंमें भुजगार और अव्यक्त्य पदके संक्रामक जीव संख्यात हैं । श्रेय पदोंके संक्रामक जीव  
असंख्यात हैं । मनुष्य पर्याप्त, मनुष्यनि और स्वार्थमिदिके देवोंमें सब पदोंके संक्रामक जीव  
संख्यात हैं । इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिये ।

६४८. चत्रानुगमनी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—प्रोचनिर्देश और आदेशनिर्देश ।  
प्रोचकी अपेक्षा अस्थितपदके संक्रामक जीव सब लोकमें रहते हैं और श्रेय पदोंके संक्रामक जीव  
लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें रहते हैं । इसी प्रकार तिर्यक्चोम जानना चाहिये । श्रेय सब  
मार्गणाओंमें सब पदोंके संक्रामक जीव लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें रहते हैं । इसी प्रकार  
अनाहारक मार्गणातक जानना चाहिये ।

६४९. स्वर्शानुगमनी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—प्रोचनिर्देश और आदेशनिर्देश ।  
प्रोचकी अपेक्षा भुजगार पदके संक्रामक जीवोंने कितने क्षेत्रका स्वर्शन किया है ? लोकके असंख्यातवें  
भागप्रमाण क्षेत्रका और त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ और कुछ कम बारह भाग-  
प्रमाण क्षेत्रका स्वर्शन किया है । अत्यन्त पदके संक्रामक जीवोंने त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ  
कम आठ भागप्रमाण क्षेत्रका और सब लोकप्रमाण क्षेत्रका स्वर्शन किया है । अवस्थितपदके  
संक्रामक जीवोंने सब लोकप्रमाण क्षेत्रका स्वर्शन किया है । अव्यक्त्य पदके संक्रामक जीवोंने  
लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रका स्वर्शन किया है । आदेशकी अपेक्षा नारक्तियोंमें  
भुजगार पदके संक्रामक जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रका और त्रसनालीके  
चौदह भागोंमेंसे कुछ कम पाँच भागप्रमाण क्षेत्रका स्वर्शन किया है । अत्यन्त और अवस्थित  
पदके संक्रामक जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रका और त्रसनालीके चौदह भागों-

असंखे० भागो छचोहस० देसूणा । पढमाए खेत्तं । विदियादि जाव सत्तमा ति एवं चेव । णवरि सगपोसणं कायव्वं । सत्तमीए भुज० खेत्तं । तिरिक्खेसु भुज० लोग० असंखे० भागो सत्तचोहस० देसूणा । अप्पद० लोगस्स असंखे० भागो सव्वलोगो वा । अवट्ठि० खेत्तं । पंचिंदियतिरिक्खतिय३ भुज० तिरिक्खोघो । अप्पद० अवट्ठि० लोग० असंखे० भागो सव्वलोगो वा । एवं मणुसतिए३ । णवरि अवत्त० औघभंगो । पंचि० तिरि० अप्पज्ज०-मणुसअप्पज्ज० अप्पद० अवट्ठि० पंचिंदियतिरिक्खभंगो । सव्वपदपरिणददेवेहि अट्ठ-णवचोहस० । एवं भवणादि जाव अच्चुदा ति । णवरि सगपोसणं । उवरि खेत्तं । एवं जाव० ।

। ४७७. कालाणु० दुविहो णिहेसो—ओघेण आदेसेण य । ओघेण भुज०-अप्पद० जह० एग०, उक्क० आवलि० असंखे० भागो । अवट्ठि० सव्वद्दा । अवत्त० जह० एयसमओ, उक्क० संखेज्जा समया । एवं सव्वणेरइय०-सव्वतिरिक्ख-सव्वदेवा ति । णवरि अवत्त० अत्थि । पंचि० तिरि० अप्पज्ज० अणुहिसादि जाव अवराजिदा ति भुज० णत्थि । मणुसेसु भुज० जह० एगसमओ, उक्क० संखेज्जा समया । सेसमोघ-

मेसे कुछ कम छह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । पहिली पृथिवीमें स्पर्शन क्षेत्रके समान है । दूसरीसे लेकर सातवीं पृथिवी तक स्पर्शन इसी प्रकार है । किन्तु सर्वत्र अपने अपने स्पर्शनका कथन करना चाहिये । सातवीं पृथिवीमें भुजगारपदका स्पर्शन क्षेत्रके समान है । तिर्यञ्चोमें भुजगार पदवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रका और त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम सात भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । अल्पतर पदवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भाग और सब लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । अवस्थित पदका स्पर्शन क्षेत्रके समान है । पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चत्रिकोंमें भुजगार पदका स्पर्शन सामान्य तिर्यञ्चोंके समान है । अल्पतर और अवस्थित पदवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रका और सब लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । इसी प्रकार मनुष्य-त्रिकोंमें जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि अवच्छेद्य पदका स्पर्शन ओघके समान है । पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्त और मनुष्य अपर्याप्तकोंमें अल्पतर और अवस्थित पदका भंग पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चोंके समान है । सब पदोंसे परिणत हुए देवोंने त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ भागप्रमाण और कुछ कम नौ भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । इसी प्रकार भवनवासियोंसे लेकर अच्युत कल्पतकके देवोंमें जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि अपना-अपना स्पर्शन कहना चाहिये । इससे आगेके देवोंमें स्पर्शन क्षेत्रके समान है । इसी प्रकार अनाहारक मार्गा तक जानना चाहिये ।

§ ४७७. कालानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । ओघकी अपेक्षा भुजगार और अल्पतर पदका जघन्य काल एक समय है और उच्छ्रित काल प्रायलिके असंख्यातवें भागप्रमाण है । अवस्थित पदका काल सर्वदा है । अवच्छेद्य पदका जघन्य काल एक समय है और उच्छ्रित काल संख्यात समय है । इसी प्रकार सब नारकी, सब तिर्यञ्च और सब देवोंमें जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि इनमें अवच्छेद्य पद नहीं है । पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंमें और अनुदिशसे लेकर अपराजित तकके देवोंमें भुजगार पद नहीं है । मनुष्योंमें भुजगार पदका जघन्य काल एक समय है और उच्छ्रित काल संख्यात समय है । शेष पदोंका काल

भंगो । एवं मणुसपञ्ज०—मणुसिणीसु । पत्ररि अप्पद० उक्क० संखेज्जा समय । मणुस-  
अपञ्ज० अप्पद० ओघं । अवट्टि० जह० एयममओ, उक्क० पल्लिदो० असंखे०भागो ।  
सव्वट्टे अप्पद० जह० एयसमओ, उक्क० संखेज्जा समय । अवट्टि० ओघभंगो ।  
एवं जाव० ।

§ ४७८. अंतराणु० दुविहो णिदेसो—ओघेण आदेसेण य । ओघेण भुज०-  
अप्पद० जह० एगस०, उक्क० चउवीसमहोरत्ता सादिरैया । अवट्टि० णत्थि अंतरं ।  
अवत्त० जह० एयममओ, उक्क० वामपुधत्तं । एवं मणुसतिग् ३ । एवं सव्वणेरुइय०-  
सव्वतिरिक्ख०—मव्वदेवा ति । पत्ररि अवत्त० णत्थि । पंत्ति०तिरिक्खअपञ्ज० भुज०  
णत्थि । मणुसअपञ्ज० अप्पद०—अवट्टि० जह० एयस०, उक्क० पल्लिदो० अमंखे०भागो ।  
अणुदिमादि जाव सव्वट्टा ति अप्पद० जह० एगम०, उक्क० वासपुधत्तं पल्लिदो०  
अमंखे०भागो । अवट्टि० णत्थि अंतरं । एवं जाव० ।

§ ४७९. भावो मव्वत्थ ओट्टइओ भावो ।

§ ४८०. अप्पावहुआणु० दुविहो णिदेसो—ओघेण आदेसेण य । तत्थ ओघेण

ओघके समान है । इसी प्रकार मनुष्य पचास और मनुष्यांशमें जानना चाहिये । किन्तु इतनी  
विशेषता है कि अल्पतर पदका उत्कृष्ट काल संग्रहण समय है । मनुष्य प्रपचांशमें अल्पतर  
पदका काल आंशके समान है । अस्थित पदका जगन्म काल एक समय है और उत्कृष्ट काल  
पत्त्यके अस्त्वयातर्वे भागप्रमाण है । सर्वांशसिद्धिमें अल्पतर पदका जघन्य काल एक समय है और  
उत्कृष्ट काल संग्रहण समय है । अस्थित पदका काल ओघके समान है । इसी प्रकार अनाहारक  
मार्गणानक जानना चाहिये ।

§ ४८०. अन्तरानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश ।  
ओघकी अपेक्षा भुजगार और अल्पतरपदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर  
नाधिक चौबीस दिनरत है । अव्यथितपदका अन्तरकाल नहीं है । अस्थितपदका जघन्य अन्तर  
एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर वर्षप्रत्यक्ष है । इसी प्रकार मनुष्यत्रिकामे जानना चाहिये । इसी  
प्रकार मध नारकी, सध तिर्यैच और मत्र देवोंमें जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि  
इसमें अस्थितपद नहीं है । पंचेन्द्रिय नियैच प्रपचांशकोंमें भुजगारपद नहीं है । मनुष्य  
अपचांशमें अल्पतर और अव्यथितपदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर पत्त्यके  
अस्त्वयातर्वे भागप्रमाण है । अनुदिशमे लेकर सर्वांशसिद्धि तकके देवोंमें अल्पतरपदका जघन्य  
अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अनुदिशमे अराजितक वर्षप्रत्यक्ष और सर्वांशसिद्धिमें  
पत्त्यके अस्त्वयातर्वे भागप्रमाण है । अस्थितपदका अन्तर नहीं है । इसी प्रकार अनाहारक  
मार्गणा तक जानना चाहिये ।

§ ४७९. भाव सर्वत्र औवचिक है ।

§ ४८०. अल्पबहुदानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेश-  
निर्देश । ओघकी अपेक्षा अव्यथितपदके संक्रामक जीव सबसे थोड़े हैं । उनसे अल्पतरपदके

१ आ०प्रती सखे०भागो इति पाठः ।

सव्वत्थोवा अवत्त० संका० । अप्प० संका० असंखे० गुणा । भुज० संका० विसेसा० । अवट्ठि० अणंतगुणा । आदेसेण णेरइय० सव्वत्थोवा अप्पद० संका० । भुज० विसे० । अवट्ठि० असंखे० गुणा । एवं सव्वणेरइय-पंचि० तिरिक्खतिय३-देवा जाव णवगेवजा त्ति । एवं तिरिक्खेसु । णवरि अवट्ठि० अणंतगुणा । पंचिदियतिरिक्खअपज्ज०-मणुसअपज्ज०-अणुदिसादि जाव अवराजिदा त्ति अप्पदरसंका० थोवा । अवट्ठि० असंखे० गुणा । एवं सव्वट्ठे । णवरि संखेज्जगुणं कायव्वं । मणुसेसु सव्वत्थोवा अवत्त० । भुज० संखे० गुणा । अप्पद० असंखे० गुणा । अवट्ठि० असंखे० गुणा । एवं मणुसपज्ज०-मणुसिणीसु । णवरि संखेज्जगुणं कायव्वं । एवं जाव० ।

एवं भुजगारो समचो ।

§ ४८१. पदणिकखेवे त्ति तिण्णि अणियोगद्दाराणि—समुत्कीर्तना सामित्तमप्पा-बहुगं ति । समुत्कीर्तना दुविहा—जहण्णा उक्कस्सा च । उक्कस्से पयदं । दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य । ओघेण अत्थि उक्क० वड्ढी हाणी अवट्ठणं च । एवं चदुगदीसु । णवरि पंचि० तिरि० अपज्ज०-मणुसअपज्ज०-अणुदिसादि जाव सव्वट्ठा त्ति उक्क० वड्ढी

संक्रामक जीव असंख्यातगुणे हैं । उनसे भुजगारपदके संक्रामक जीव विशेष अधिक है । उनसे अवस्थितपदके संक्रामक जीव अनन्तगुणे हैं । आदेशकी अपेक्षा नारकियोंमें अल्पतरपदके संक्रामक जीव सबसे थोड़े हैं । उनसे भुजगारपदके संक्रामक जीव विशेष अधिक हैं । उनसे अवस्थितपदके संक्रामक जीव असंख्यातगुणे हैं । इसी प्रकार सब नारकी, पंचेन्द्रिय तिर्यचत्रिक, देव और नौ त्रैवेयक तकके देवोंमें जानना चाहिये । इसी प्रकार तिर्यञ्चोंमें जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि इनमें अवस्थितपदवाले जीव अनन्तगुणे हैं । पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्त, मनुष्य अपर्याप्त और अनुदिशसे लेकर अपराजित तकके देवोंमें अल्पतरपदके संक्रामक जीव सबसे थोड़े हैं । उनसे अवस्थितपदके संक्रामक जीव असंख्यातगुणे हैं । इसी प्रकार सर्वार्थसिद्धिमें जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि उनमें संख्यातगुणा करना चाहिये । मनुष्योंमें अवक्तव्य पदके संक्रामक जीव सबसे थोड़े हैं । उनसे भुजगारपदके संक्रामक जीव संख्यातगुणे हैं । उनसे अल्पतरपदके संक्रामक जीव असंख्यातगुणे हैं । उनसे अवस्थितपदके संक्रामक जीव असंख्यातगुणे हैं । इसी प्रकार मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यनियोंमें जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि इनमें सर्वत्र असंख्यातगुणके स्थानमें संख्यातगुणा करना चाहिये । इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिये ।

इस प्रकार भुजकार अनुयोगद्वार समाप्त हुआ ।

§ ४८२. पदनिचेपमें तीन अनुयोगद्वार हैं—समुत्कीर्तना, स्वामित्व और अल्पबहुत्व । समुत्कीर्तना दो प्रकारकी है—जघन्य और उत्कृष्ट । उत्कृष्टका प्रकरण है । उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश । ओघकी अपेक्षा उत्कृष्ट वृद्धि, हानि और अवस्थान है । इसी प्रकार चारों गतियोंमें जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तक, मनुष्य अपर्याप्तक और अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धितकके देवोंमें उत्कृष्ट वृद्धि नहीं है । इसी प्रकार

णत्थि । एवं जाव० । एवं जहण्णं पि णेद्वं ।

१४८२. सामित्तं द्विविहं जहण्णवक्कम्मभेदेण । उक्क० पयटं । द्विविहो णिदेसो—  
 ओघेण आदेसेण य । ओघेण उक्क० वट्टी कस्स ? अण्णदरस्स जो उवसाभगो मिच्छत्त-  
 नम्मामिच्छत्ताणि संकामेमाणओ देवो जादो तस्स तेवीगं पयडीओ संकामेमाणस्स  
 उक्क० वट्टी । तस्सेव से काले उक्कम्मवट्टाणं । उक्क० हाणी कस्स ? जो खवओ अट्ट-  
 कसाए खवेदि तस्स उक्क० हाणी । आदेसेण षेरहूय० उक्क० वट्टी कस्स ? अण्णदरस्स  
 जो इगिवीगं संकामेमाणो मत्तावीगं संकामगो जादो तस्स उक्क० वट्टी । तस्सेव से  
 काले उक्कम्मवट्टाणं । उक्क० हाणी कस्स ? जो मत्तावीगं संकामेमाणो अण्णानाणु-  
 चउकं विमंजोएदि तस्स उक्क० हाणी । एवं सत्त्वणेरहूय-सत्त्वतिरिक्ख-देवा जाव  
 णवगेवजा त्ति । णवरि पंचि०तिरिक्खअपउज्ज० उक्क० हाणी कस्स ? जो मत्तावीस-  
 संकामगो छञ्चीमसंकामगो जादो तस्स उक्कम्मिया हाणी । तस्सेव से काले उक्कम्म-  
 वट्टाणं । एवं मणुयअपउज्ज० । मणुमतिए उक्क० वट्टी कस्स ? जो चउवीसमंतकम्मओ  
 उवमसेदीदो ओयस्माणो चोदससंकामणादो इगिवीगसंकामगो जादो तस्स उक्क०  
 वट्टी । हाणी ओघसंगो । मत्तंयं उक्कम्मवट्टाणं । अणुदिमाट्ठि जाव सत्त्वट्टे त्ति उक्क०  
 हाणी कस्स ? जेण सत्तावीगं संकामेमाणेण अण्णानाणुचउकं विमंजोइदं तस्स उक्क०

अनाहारक मार्गणा नरु जानना चाहिये । इसी प्रकार लघन्यका भी कथन करना चाहिये ।

१४८२. स्वामित्व दो प्रकारका है—जगन्म और उत्कृष्ट । उत्कृष्टता प्रकरण है । उसकी  
 अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—आर्वा निर्देश और आदेशानिर्देश । अपेक्षा उत्कृष्ट बुद्धि  
 किसके होती है ? जो उपशमक जीव मित्याव और सम्यग्मिथ्यावरण संक्रम करता हुआ देव हो  
 गया है उसके तर्जित प्रकृतियोंका संक्रम करने हुए उत्कृष्ट बुद्धि होती है । तथा उसीके तदनन्तर  
 समयमें उत्कृष्ट अवस्थान होता है । उत्कृष्ट हानि किसके होती है ? जो चक्र आठ कपाधोंका द्रव्य  
 करता है उसके उत्कृष्ट हानि होती है । आदेशको अपेक्षा नारकिचोम उत्कृष्ट बुद्धि किसके होती है ?  
 जो इक्कीस प्रकृतियोंका संक्रम करनेवाला जीव सत्ताईस प्रकृतियोंका संक्रमक हो गया है उसके  
 उत्कृष्ट बुद्धि होती है । तथा उसीके तदनन्तर समयमें उत्कृष्ट अवस्थान होता है । उत्कृष्ट हानि किसके  
 होती है ? सत्ताईस प्रकृतियोंका संक्रमक जो जीव अनन्तानुबन्धीचतुस्की विसंशोधना करता है  
 उसके उत्कृष्ट हानि होती है । इसी प्रकार मय नारकी, सब तिर्यक, देव और नो प्रबन्धक तकके  
 देवोंमें जानना चाहिये । किन्तु इतनी विवेचना है कि पंचेन्द्रिय तिर्यक अपर्याप्तकोंमें उत्कृष्ट हानि  
 किसके होती है ? जो सत्ताईस प्रकृतियोंका संक्रमक जीव छत्रोम प्रकृतियोंका संक्रमक हो जाता  
 है उसके उत्कृष्ट हानि होती है । तथा उसीके तदनन्तर समयमें उत्कृष्ट अवस्थान होता है । इसी  
 प्रकार मनुष्य अपर्याप्तकोंमें जानना चाहिये । मनुष्यत्रिकोंमें उत्कृष्ट बुद्धि किसके होती है ? जो  
 चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला जीव उपशमश्रेणिसे उतरते समय चौदह प्रकृतियोंके संक्रमके बाद  
 इक्कीस प्रकृतियोंका संक्रमक हो जाता है उसके उत्कृष्ट बुद्धि होती है । इनका कथन श्रोचके  
 समान है । तथा यहीं पर उत्कृष्ट अवस्थान होता है । अनुदिशमें लेकर सर्वाधिसद्धि तकके देवोंमें  
 उत्कृष्ट हानि किसके होती है ? सत्ताईस प्रकृतियोंका संक्रम करनेवाले जिस जीवने अनन्तानुबन्धी



हाणी । तस्सेव से काले उक्कस्समवट्ठाणं । एवं जाव० ।

§ ४८३. जह० पयदं । दुविहो णिद्दो—ओषेण आदेसेण य । ओषेण जह० वट्ठी कस्स ? जो छव्वीससंक्रामओ सम्मत्तं पडिबण्णो तस्स जहण्णिणया वट्ठी । जह० हाणी कस्स ? अण्णदरस्स जेण सत्तावीससंक्रामगेण सम्मत्तमुव्वेत्तिदं तस्स जह० हाणी । अण्णदरत्थावट्ठाणं । एवं चटुसु वि गदीसु । णवरि पंचिंदियतिरिक्खअपज्ज०-मणुस-अपज्जत्त-अणुद्दिसादि जाव सव्वट्ठे त्ति जह० हाणी अवट्ठाणं च उक्कस्सभंगो । एवं जाव० ।

§ ४८४. अप्पावहुअं दुविहं—जह० उक्क० । उक्कस्से पयदं । दुविहो णिद्दो—ओषेण आदेसेण य । तत्थ ओषेण सव्वत्थोवा उक्क० हाणी ८ । वट्ठी अवट्ठाणं च दो वि सरिसाणि संखेज्जगुणाणि २१ । आदेसेण णेरइय० सव्वत्थोवा उक्क० हाणी ४ । वट्ठी अवट्ठाणं च दो वि सरिसाणि विसेसाहियाणि ६ । एवं सव्वणेरइय-सव्वतिरिक्ख-सव्वदेवा त्ति । णवरि पंचि०तिरिक्खअपज्ज०-अणुद्दिसादि जाव सव्वट्ठा त्ति उक्क० हाणी अवट्ठाणं च दो वि सरिसाणि । मणुसतिएसु सव्वत्थोवा उक्क० वट्ठी ७ । उक्क० हाणी अवट्ठाणं च दो वि सरिसाणि विसेसाहियाणि ८ । एवं जाव० ।

चतुष्ककी विसंयोजन किया है उसके उत्कृष्ट हानि होती है । तथा उसीके तदनन्तर समयमे उत्कृष्ट अवस्थान होता है । इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिये ।

§ ४८३. जघन्यका प्रकरण है । निर्देश दो प्रकारका है—ओष और आदेश । ओषकी अपेक्षा जघन्य वृद्धि किसके होती है ? जो छव्वीस प्रकृतियोंका संक्रामक जीव सम्यक्त्वको प्राप्त हुआ है उसके जघन्य वृद्धि होती है । जघन्य हानि किसके होती है ? सत्ताईस प्रकृतियोंके संक्रामक जिस जीवने सम्यक्त्वकी वहेलना की है उसके जघन्य हानि होती है । तथा किसी एकके अवस्थान होता है । इसी प्रकार चारों गतियोंमे जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्त, मनुष्य अपर्याप्त और अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें जघन्य हानि और अवस्थानका भंग अपने उत्कृष्टके समान है । इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिये ।

§ ४८४. अल्पबहुत्त दो प्रकारका है—जघन्य और उत्कृष्ट । उत्कृष्टका प्रकरण है । उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओष और आदेश । ओषकी अपेक्षा उत्कृष्ट हानि सबसे थोड़ी है ८ । उत्कृष्ट वृद्धि और अवस्थान ये दोनों समान होते हुए संख्यातगुणे हैं २१ । आदेशकी अपेक्षा नारकियोंमें उत्कृष्ट हानि सबसे थोड़ी है ४ । वृद्धि और अवस्थान ये दोनों समान होते हुए विशेष अधिक हैं ६ । इसी प्रकार सब नारकी, सब तिर्यञ्च और सब देवोंमें जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकेमें और अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमे उत्कृष्ट हानि और अवस्थान ये दोनों समान हैं । मनुष्यविक्रमें उत्कृष्ट वृद्धि सबसे थोड़ी है ७ । उत्कृष्ट हानि और अवस्थान ये दोनों समान होते हुए विशेष अधिक हैं ८ । इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिये ।

१. ता०प्रतौ हियाणि । एवं इति पाठः । २. ता०प्रतौ वट्ठी । उक्क० इति पाठः ।

१ ४८५. जहण्णए पयदं । दूविहो णिद्वेसो—ओघेण आद्वेसेण य । तत्थोघेण जहं वट्ठी हाणी अवट्ठणं च तिण्णं ति मरिसाणि १ । एवं चदुसु गदीसु । णवरि पंचिन्द्रियतिगिक्खअपज्जं-मणुसअपज्जं-अणुदिसादि जाव सव्वट्ठे ति उक्कंभंगो । एवं जाव ।

एवं पदणिक्रमेणो समन्तो ।

१ ४८६. वट्ठिमंक्रमे तस्य इमाणि तेरस अणियोगदागणि—सशुक्तिज्ञाणा जाव अप्पावहुए ति । तस्य ममुक्तिज्ञाणां० दूविहो णिद्वेसो—ओघेण आद्वेसेण य । ओघेण अत्थि मंग्वेज्जभागवट्ठी हाणी मंग्वे०गुणवट्ठी हाणी अवट्ठा० अवत्तव्वं च । एवं मणुसतिण्णं । सेमं भुजगारभंगो ।

१ ४८७. मामित्तं भुजगारभंगो । णवरि मंग्वेज्जगुणवट्ठी हाणी कम्म ? अणुदरस्स सस्माद्वट्ठिस्स । एवं मणुसतिण्णं ३ । सेमं भुजगारभंगो ।

१ ४८८. कालो भुजगारभंगो । णवरि मंग्वेज्जगुणवट्ठी जहं एयममओ, उक्कं वे ममया । मंग्वेज्जगुणवट्ठी जहं उक्कं एयममओ । मणुस्सं३ मंग्वे० गुणवट्ठी हाणी जहं उक्कं एयममओ । सेमं भुजगारभंगो ।

५ ४८५. जघन्यत्रा प्रहरण है । निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश । ओघकी अपेक्षा जघन्य एतद्, दानि और अवस्थान ये तीनों ही समान हैं १ । इसी प्रकार चारों गतिशक्ति जानना चाहिये । किन्तु इनकी विशेषता है कि पंचेन्द्रिय तिर्यग् अवस्था, मनुष्य चक्षुषां और प्रतुष्टिसे लेकर स्वभावनिष्ठि करने देशमें उत्कृष्टके समान भङ्ग है । इसी प्रकार अनाहारक भागजातक जानना चाहिये ।

इस प्रकार पदनिर्देश समाप्त हुआ ।

५ ४८६. 'अत्र वृद्धिमंक्रमका अधिकार है । उनमें ममुक्तीर्तनामे लेकर अल्पवहुस तक ये तरह अनुयोगद्वार होते हैं । उनमेंसे ममुक्तीर्तनानुगमरी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ-निर्देश और आदेशनिर्देश । ओघकी अपेक्षा संख्यातभागवृद्धि, संख्यातभागदानि, संख्यातगुणवृद्धि, संख्यातगुणदानि, अवस्थान और अवच्छेद ये पद हैं । इसी प्रकार मनुष्यविक्रम जानना चाहिये । शेष मध्य भुजगारके समान है ।

५ ४८७. स्वामित्यक भंग भुजगारके समान है । किन्तु इतनी विशेषता है कि संख्यात-गुणवृद्धि और संख्यातगुणदानि किन्मके होती है ? किसी सम्यग्दृष्टिके होती है । इसी प्रकार मनुष्यविक्रम जानना चाहिये । शेष भंग भुजगारके समान है ।

५ ४८८. कालक भंग भुजगारके समान है । किन्तु इतनी विशेषता है कि संख्यात-गुणवृद्धिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल दो समय है । संख्यातगुणदानिक जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । मनुष्यविक्रम संख्यातगुणवृद्धि और संख्यातगुणदानिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । शेष भंग भुजगारके समान है ।

§ ४८९. अंतराणु० दुविहो णिहेसो—ओषेण आदेसेण य । ओषेण संखे०-गुणवट्टि-हाणिअंतरं जह० एयस० अंतोमु०, उक्क० उवट्टुपोग्गलपरियट्टं । सेसं भुज०-भंगो । णवरि मणुस०३ संखे०गुणवट्टि-हाणीणं जह० अंतोमुहुत्तं, उक्क० पुव्व-कोट्टिपुधत्तं ।

§ ४९०. णाणाजी० भंगविचओ भागाभागो परिमाणं खेतं पोसणं च भुज०-भंगो । णवरि संखे०गुणवट्टि-हाणिगयविसेसो सव्वत्थ जाणियव्वो ।

§ ४९१. कालो भुज०भंगो । णवरि गुणवट्टी हाणी जह० एयसमओ, उक्क० संखेज्जा समया ।

§ ४९२. अंतरं भुज०भंगो । णवरि संखे०गुणवट्टी जह० एगसमओ, उक्क० वासपुधत्तं । संखे०गुणहाणी जह० एयसमओ, उक्क० छम्मासं । एवं मणुसतिए । णवरि मणुसिणी० संखे०गुणहाणी उक्क० वासपुधत्तं ।

§ ४९३. भावो सव्वत्थ ओदइओ० ।

§ ४९४. अप्पावहुआणु० दुविहो णि०—ओषेण आदेसेण य । ओषेण सव्वत्थोवा अवत्त०संका । संखे०गुणवट्टिसंका० संखे०गुणा । संखे०गुणहाणिसंका० संखे०गुणा ।

§ ४८६. अन्तरानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओष और आदेश । ओषकी अपेक्षा संख्यातगुणवट्टिका जघन्य अन्तर एक समय है और संख्यातगुणहानिका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है । तथा दोनोंका उत्कृष्ट अन्तर वर्षपुद्गलपरिवर्तनप्रमाण है । शेष भङ्ग भुजगारके समान है । किन्तु इतनी विशेषता है कि मनुष्यत्रिकमें संख्यातगुणवट्टि और संख्यातगुणहानिका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर पूर्वकोटिपुथक्त्वप्रमाण है ।

§ ४६०. नाना जीवोंकी अपेक्षा भंगविचय, परिमाण, क्षेत्र और स्पर्शन इनका कथन भुजगारके समान है । किन्तु इतनी विशेषता है कि संख्यातगुणवट्टि और संख्यातगुणहानिगत विशेषताको सर्वत्र जान लेना चाहिये ।

§ ४६१ कालका भंग भुजगारके समान है । किन्तु इतनी विशेषता है कि गुणवट्टि और गुणहानिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल संख्यात समय है ।

§ ४६२. अन्तरका भंग भुजगारके समान है । किन्तु इतनी विशेषता है कि संख्यात-गुणवट्टिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपुथक्त्वप्रमाण है । संख्यातगुण-हानिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर छह महीना है । इसी प्रकार मनुष्यत्रिकमें जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि मनुष्यनियोंमें संख्यातगुणहानिका उत्कृष्ट अन्तर वर्षपुथक्त्व है ।

§ ४६३. भाव सर्वत्र औदयिक है ।

§ ४६४. अल्पबहुत्वानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओष और आदेश । ओषकी अपेक्षा अवच्छेदपदके संक्रामक जीव सबसे थोड़े हैं । उनसे संख्यातगुणवट्टिके संक्रामक जीव संख्यातगुणे हैं । उनसे संख्यातगुणहानिके संक्रामक जीव संख्यातगुणे हैं । उनसे संख्यात-

संखे०भागहाणि० असंखे०गुणा । संखे०भागवट्टि० विसे० । अत्रट्टि० अणंतगुणा । मणुस्सेगु  
 सख्वत्थोवा अवत्त० । संखे०गुणवट्टि० संखे०गुणा । संखे०गुणहाणि० संखे०गुणा ।  
 संखे०भागवट्टि० संखे०गुणा । संखे०अणंतगुणा० अणंतगुणा । अत्रट्टि० अणंतगुणा ।  
 एत्वं मणुमपत्ता०-मणुमिणी० । णवरि संखे०अणंतगुणां कायत्वं । सेसमन्वमग्गणासु  
 भुजगारसंगो ।

एत्वं वट्टी नमत्ता । तदो पयट्टिहाणसंक्रमो नमत्तो ।

एत्वं पयडिसंक्रमो नमत्तो ।

---

भागदानिरे संक्रामक जीव असंख्यातगुणे हैं । उनमें संख्यातभागवट्टिके संक्रामक जीव विशेष  
 अधिक है । उनमें अत्रट्टिके संक्रामक जीव अणंतगुणे हैं । मणुष्योंमें अत्रट्टिके संक्रामक  
 जीव मयने थोड़े हैं । उनमें संख्यातगुणवट्टिके संक्रामक जीव संख्यातगुणे हैं । उनसे संख्यात-  
 गुणहाणिके संक्रामक जीव संख्यातगुणे हैं । उनमें अणंतगुणावट्टिके संक्रामक जीव संख्यातगुणे  
 हैं । उनमें संख्यातभागदानिके संक्रामक जीव असंख्यातगुणे हैं । उनमें अणंतगुणावट्टिके संक्रामक  
 जीव असंख्यातगुणे हैं । इसी प्रकार मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यानिर्घोष जानना चाहिये । किन्तु  
 इसकी विशेषता है कि असंख्यातगुणोंके स्थानमें संख्यातगुणा करना चाहिये । शेष सब मार्गणाओंमें  
 भुजगारके समान भंग है ।

इसप्रकार वट्टिके समाप्त होनेपर प्रकृतिसंक्रमस्थान नमाप्त हुआ ।

इसप्रकार प्रकृतिसंक्रम समाप्त हुआ ।

## द्विदिसंकमो अथाहियारो

तस्स णिवेदिय परिसुद्धभावकुसुमंजलिं जिणिंदस्स ।  
ठिदिसंकमाहियारं जहाड्ढिदं वण्णइस्सामो ॥ १ ॥

❁ द्विदिसंकमो दुविहो—मूलपयडिद्विदिसंकमो उत्तरपयडिद्विदिसंकमो च ।

§ ४९५. एत्तो द्विदिसंकमो पयडिसंकमाणंतरपरुवणाजोग्गो पत्तावसरो । सो च दुविहो मूलुत्तरपयडिद्विदिसंकमभेदेण । तत्थ मूलपयडीए मोहणीयसण्णिदाए जा द्विदी तिस्से संकमो मूलपयडिद्विदिसंकमो उच्चइ । एवमुत्तरपयडिद्विदिसंकमो च वत्तव्वो । एवं दूविहत्तमावण्णस्स द्विदिसंकमस्स परुवणद्वुत्तरपदं भणइ—

❁ तत्थ अट्टपदं—जा द्विदी ओकड्डुज्जदि वा उक्कड्डुज्जदि वा अरणपयडिं संकामिज्जइ वा सो द्विदिसंकमो । सेसो द्विदिसंकमो ।

§ ४९६. एत्थ मूलपयडिद्विदीए ओकड्डुकड्डुणवसेण संकमो । उत्तरपयडिद्विदीए पुण ओकड्डुकड्डुण-परपयडिसंकंतीहि संकमो दट्टव्वो । एदेणोकड्डुणादओ जिस्से द्विदीए

### स्थितिसंक्रम अर्थाधिकार

उस जिनेन्द्रको अतिनिर्मल भावरूपी कुसुमोंकी अंजलि अर्पण करके यथास्थित स्थितिसंक्रम अधिकारका वर्णन करेंगा ॥ १ ॥

\* स्थितिसंक्रम दो प्रकारका है—मूलप्रकृतिस्थितिसंक्रम और उत्तरप्रकृतिस्थितिसंक्रम ।

§ ४९५. अब इस प्रकृतिसंक्रम अनुयोगद्वारके बाद स्थितिसंक्रमका कथन अबसर प्राप्त है । मूलप्रकृतिस्थितिसंक्रम और उत्तरप्रकृतिस्थितिसंक्रमके भेदसे वह दो प्रकारका है । उनमेंसे मोहनीय नामक मूल प्रकृतिकी जो स्थिति है उसके संक्रमको मूलप्रकृतिस्थितिसंक्रम कहते हैं । इसी प्रकार उत्तरप्रकृतिस्थितिसंक्रम कहना चाहिये । इस प्रकार दो तरहके स्थितिसंक्रमका कथन करनेके लिए आगेका सूत्र कहते हैं—

\* स्थितिसंक्रमके विषयमें यह अर्थपद है—जो स्थिति अपकर्षित, उत्कर्षित और अन्य प्रकृतिरूपसे संक्रमित होती है वह स्थितिसंक्रम है और शेष स्थिति-असंक्रम है ।

§ ४९६. यहाँ पर मूलप्रकृतिकी स्थितिका अपकर्षण और उत्कर्षणके कारण संक्रम होता है । किन्तु उत्तरप्रकृतिस्थितिका अपकर्षण, उत्कर्षण और परप्रकृतिसंक्रमके कारण संक्रम जानना

पात्थि सा द्विदी द्विदिअसंक्रमो चि भण्णदे । एत्थ ताव ओकड्डणासंक्रमस्स सरूव-  
णिरूवणद्वमुवरिमं पवंधमाह—

❀ ओकड्डित्ता कथं णिक्खिवदि ठिदिं ।

§ ४९७. द्विदिमोकड्डिऊण हेट्ठा णिक्खिवमाणो कथं णिक्खिवदं चि पुच्छिदं  
होइ ? एवं पुच्छिदे उदयावलियवाहिग्द्विदिमादिं कादूण सच्चासिं द्विदीणमोकड्डणविहाणं  
परूवेमाणो उदयावलियवाहिराणंतरद्विदीए ओकड्डणा केरिसी होइ चि सिस्साहिप्पाय-  
मासंक्रिय पुच्छावकमाह—

❀ उदयावलियचरिमसमयअपविट्ठा जा द्विदी सा कथमोकड्डिज्जइ ?

§ ४९८. एदिस्से द्विदीए अइच्छावणा णिक्खेवो वा किंपमाणो होइ चि पुच्छा  
कदा भवदि । एवं पुच्छिदत्थविसए णिणयजणणद्वमुवरिमसुत्तमाह ।

❀ तिस्से उदयादि जाव आवलियतिभागो ताव णिक्खेवो,  
आवलिपाए वे-तिभागा अइच्छावणा ।

§ ४९९. तं जहा—तमोकट्टिय उदयादि जाव आवलियतिभागो ताव णिक्खवदि ।  
आवलियवे-तिभागमेत्तमुवरिमभागे अइच्छावेइ । तदो आवलियतिभागो तिस्से णिक्खेद-  
वाहिये । इससे यह अभिप्राय भी प्रकट हो जाता है कि जिस स्थिति के अपकर्षण आदिक नहीं  
होते वह स्थिति स्थिति-असंक्रम कहलाती है । अब यहाँ पर अपकर्षणसंक्रम के स्वरूपका निरूपण  
करनेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

❀ स्थितिका अपकर्षण कम्मे उसका निक्षेप किस प्रकार किया जाता है ?

§ ४९७. स्थितिका अपकर्षण करके न.चेकी स्थितिमें निक्षेप करते समय उसका निक्षेप  
कैसे किया जाता है यह इस सूत्रद्वारा पृच्छा की गई है । इस प्रकारकी पृच्छा करने पर उदयावलिके  
बाहरकी स्थितिसे लेकर सब स्थितियोंके अपकर्षणकी विधिका निरूपण करते हुए सर्व प्रथम उदया-  
वलिके बाहर अनन्तर समयमें स्थित स्थितिका अपकर्षण किस प्रकार होता है इस प्रकार शिष्यके  
अभिप्रायको आशंकारूपसे ग्रहण करके आगेका पृच्छासूत्र कहते हैं—

❀ जो स्थिति उदयावलिके अन्तिम समयमें प्रविष्ट नहीं हुई है उसका अपकर्षण  
किस प्रकार होता है ?

§ ४९८. इस स्थितिकी अतिस्थापनाका और निक्षेपका क्या प्रमाण है यह इस सूत्रद्वारा  
पृच्छा की गई है । इस प्रकार पूछे गये अर्थका निर्णय करनेके लिए आगेका सूत्र कहते हैं—

❀ उदय समयसे लेकर आवलिके तीसरे भागतक उस स्थितिका निक्षेप होता  
है और आवलिका शेष दो बटे तीन भाग अतिस्थापनारूप रहता है ।

§ ४९९. सुनाता इस प्रकार है—उस स्थितिका अपकर्षण करके उदय समयसे लेकर  
आवलिके तीसरे भाग तक उसका निक्षेप करता है और आवलिके दो बटे तीन भागप्रमाण ऊपर  
के दिस्सेको अतिस्थापनारूपसे स्थापित करता है । इसलिए आवलिका तीसरा भाग उस अपकर्षित

विसत्रो । आवलियवे-तिभागा च अइच्छावणा ति भण्णइ । कथमावलियाए कदजुम्म-संखाए तिभागो वेत्तुं सक्किज्जे ? ण, रूवणं काऊण तिहागीकरणादो । तम्हा समयूणा-वलियवे-तिभागा अइच्छावणा । समयूणावलियतिभागो रूवाहिओ णिक्खेवो ति णिच्छओ कायच्चो ।

§ ५००. संपहि एदम्म विसए पदेसणिसेगकमजाणावणइमुत्तरसुत्तमोइण्णं—

❀ उदए बहुअं पदेसगं दिज्जइ । तेण परं विसेसहीणं जाव आवलियतिभागो ति ।

§ ५०१. सुगममेदं सुत्तं । एवमुदयावलियवाहिराणंतरद्विदीए ओकड्डणाविहिं परुविय पुणो तदणंतरोरिमद्विद्विओकड्डणाए णाणत्तसंभवं पदुप्पाएदुमुत्तरसुत्तं भणइ—

❀ तदो जा विदियां द्विदी तिस्से वि तत्तिगो चेव णिक्खेवो । अइच्छावणा समयुत्तरा ।

§ ५०२. तदो पुव्वणिरुद्धद्विदीदो अणंतरा जा द्विदी उदयावलियवाहिरविदियद्विदि ति उत्तं होइ । तिस्से वि तत्तिओ चेव णिक्खेवो होइ, तत्थ णाणत्ताभावादो । अइच्छावणा

स्थितिका निक्षेपका विषय है और आवलिका दो बटे तीन भाग अतिस्थापना है ऐसा यहाँ कहा गया है ।

**शंका**—आवलिकी परिगणना कृत्युगमसंख्यामें की गई है इसलिए उसका तीसरा भाग कैसे ग्रहण किया जा सकता है ?

**समाधान**—नहीं, क्योंकि आवलिमेंसे एक समय कम करके उसका तीसरा भाग किया है । इसलिए एक समय कम आवलिके दो बटे तीन भागप्रमाण अतिस्थापना है और एक समय कम आवलिका तीसरा भाग एक अधिक करने पर निक्षेप है ऐसा यहाँ निश्चय करना चाहिये ।

§ ५००. अब इस विषयमें प्रदेशोंके निक्षेपके क्रमका ज्ञान करानेके लिए आगेका सूत्र कहते हैं—

\* उदयमें बहुतसे प्रदेश दिये जाते हैं । उससे आगे आवलिका तीसरा भाग प्राप्त होने तक विशेषहीन विशेषहीन प्रदेश दिये जाते हैं ।

§ ५०१. यह सूत्र सुगम है । इस प्रकार उदयावलिके बाहर अनन्तर समीपवर्ती स्थितिकी अपकर्षणविधिका कथन करके अब इस स्थितिसे अनन्तर उपरिम समयवर्ती स्थितिके अपकर्षणमें जो नानात्व सम्भव है उसका कथन करनेके लिए आगेका सूत्र कहते हैं—

\* इस स्थितिके बाद जो दूसरी स्थिति है उसका भी उतना ही निक्षेप होता है । किन्तु अतिस्थापना एक समय अधिक होती है ।

§ ५०२. उस पूर्व विवक्षित स्थितिसे जो अनन्तर समयवर्ती स्थिति है अर्थात् उदयावलिके बाहर जो द्वितीय समयवर्ती स्थिति है उसका भी उतना ही निक्षेप होता है, क्योंकि उसमें कोई भेद

पुण समयुक्तं होइ । उदयावलियवाहिरद्विर्दोष वि एदिस्ते अहञ्जवणाभावेण पवेगदंयणादो ।

ए एवमहञ्जवणा समुत्तरा । णिकखेवो तत्तिगो चैव उदयावलयवाहिरादो आवलयतिभागन्तिमद्विदि त्ति ।

( ५०३, एवमवद्विदोषेण णिकखेवोण समयुत्तराए च श्वद्विदोषाहञ्जवणाए ताव णेदञ्चं जाव उदयावलयवाहिरादो जहण्णणिकखेवमेत्तद्विर्दोषो अहञ्जवणाभावेण पद्विदोषो त्ति । तद्विदोषेण द्विर्दोषेण अहञ्जवणा संपुण्णिया आवलिया णिकखेवो जहण्णो चैव । कइथओ वुण नो द्विदिविगेमो ? उदयावलयवाहिरादो आवलयतिभागन्तिमो । एत्था-वलयतिभागन्नाहणेण समयुत्तावलियतिमात्तो समयुत्तं घेत्तञ्चो । तदन्तिमगाहणेण च तदण्णतत्तमिद्विद्विर्विसेत्तो वद्वेत्तञ्चो । नम्हा उदयावलयवाहिरादो जहण्णणिकखेवमेत्तंओ द्विर्दोषो उल्लंघिय द्विदोषेण द्विर्दोषेण संपुण्णावन्डियमेत्तं अहञ्जवणा होइ त्ति मुत्तस्स भावन्थो । नंपहि एत्तो उवाए अवद्विदोषेण अहञ्जवणाए णिकखेवो चैव वद्विदि त्ति परवेदमुत्तरमुत्तमाह—

नहीं है । किन्तु अतिस्थायना एक समय अधिक होती है, क्योंकि उदयारलिके बाहरकी स्थितियों भी इसका अतिस्थायनाकारमे प्रवेश देना जाता है ।

इस प्रकार अतिस्थायना एक एक समय अधिक होती जाती है और निक्षेप उदयावलिके बाहर आवलिके तांगरे भागकी अन्तिम स्थिति तककी स्थितियोंके प्राप्त होने तक उतना ही रहता है ।

§ ५०३. इन प्रकार अतिस्थायनामे उदयारलिके बाहरमे जपन्य निक्षेपप्रमाण स्थितियोंके प्रविष्ट होने तक निक्षेपकी अस्थिररूपमे ले जाना चाहिये और अतिस्थायनाका उच्छेदनर एक एक समय अधिकके क्रममे अनस्थिररूपमे ले जाना चाहिये । फिर वहाँ जो स्थिति प्राप्त होती है उसकी अतिस्थायना पूरी एक आवलिप्रमाण होती है और निक्षेप जपन्य ही रहता है ।

शंका—जिस स्थितिनिक्षेपके प्राप्त होनेपर अतिस्थायना पूरी एक आवलिप्रमाण होती है वह स्थितिनिक्षेप किस स्थानमें प्राप्त होता है ।

समाधान—उदयारलिके बाहर आरलिके तीसरे भागका जो अन्तिम समय है वहाँ यह स्थितिनिक्षेप प्राप्त होता है ।

यहाँ सूत्रमें जो 'आरलियतिभाग' पदका प्रयोग किया है सो इसमें एक समय कम आवलि-का एक समय अधिक विभाग लेना चाहिये । और सूत्रमें जो 'तदन्तिम' पदका प्रयोग किया है सो इससे तदनन्तर उपरिम स्थितिनिक्षेपका प्रयोग करना चाहिये । अतः उदयारलिके बाहर जपन्य निक्षेपप्रमाण स्थितियोंके उल्लेखन परके जो स्थिति स्थित है उसके प्राप्त होने तक पूरी एक आवलिप्रमाण अतिस्थायना होती है यह इस सूत्रका भावार्थ है । अथ इससे आगे अतिस्थायना तो अस्थिर रहती है किन्तु निक्षेप ही बढ़ता है इस बातका ध्यान करनेके लिये आगे सूत्र कहने हैं—



❀ तेण परं णिकखेवो बडुइ । अइच्छावणा आवलिया चेव ।

§ ५०४. तत्तो परं णिकखेवो बडुइ, जहणणिकखेवादे समयुत्तरादिकमेण जानुकस्सणिकखेवो ताव वडुइए विरोहाभावादे । अइच्छावणा आवलिया चेव, णिन्वाधाद-परुवणाए संतपयडिस्स पज्जादे । संपहि जहणणिकखेवो समयुत्तरकमेण वडुंतओ केत्तियमुवरिं चडिऊणावलियमेत्तो होइ चि पुच्छिदे उच्चदे—उदयसमयप्पहुडि समयाइयदोआवलियमेत्तमुवरिं घेत्तूण तदित्थसमयावड्ढिदड्ढिदीए अइच्छावणा णिकखेवो च आवलियमेत्तो होइ । तप्पजंताणं च सव्वासिमुदयावलियवाहिरद्विदीणमुदयावलिय-ब्भंतरे चेव पदेसणिकखेवो चि तदोकड्डणा असंखेज्जलोगपडिभागीया । तं कधं ? विवक्खिदड्ढिदिपदेसग्गमोकड्डुकड्डणभागहारगुणिदासंखेज्जलोगभागहारेण खंडिय तत्थेय-खंडं घेत्तूण एत्थोवड्ढिदि । तदो विसेसहीणं जा उदयावलियचरिमसमओ चि । एस कमो जासिमुदयावलियग्गमे चेव पदेसणिकखेवो तासिं ड्ढिदीणं परुविदो । एत्तो उवरि पाणत्तं वत्तइस्सामो । तं जहा—तदणंतरोवरिमट्ठिदि दिवड्डुगुणहाणिगुणिकोड्डुकड्डण-भागहारेण खंडिय तत्थेयखंडमेत्तमेत्थोकड्डणदव्वं होइ । पुणो एदमसंखेज्जलोगेहि भागं घेत्तूण्येभागमुदयावलियब्भंतरे देत्तो उदए बहुअं<sup>१</sup> देदि । तत्तो विसेसहीणं । एवं ताव जाव

\* उससे आगे निचेप बढ़ता है और अतिस्थापना एक आवलिप्रमाण ही रहती है ।

§ ५०४. फिर उससे आगे निचेप बढ़ता है, क्योंकि उल्कृष्ट निचेपके प्राप्त होने तक जघन्य निचेपसे आगे एक एक समय अधिकके क्रमसे निचेपकी वृद्धि होनेमें कोई विरोध नहीं आता है । किन्तु अतिस्थापना एक आवलि ही रहती है, क्योंकि निच्योघात प्ररूपणामें सन्त्रप्रकृति पर्याप्त है । जघन्य निचेप एक एक समय बढ़ते हुये कितने समय आगे जाकर वह एक आवलिप्रमाण होता है ऐसा पूञ्जने पर कहते हैं—उदय समयसे लेकर एक समय अधिक दो आवलिप्रमाण स्थान आगे जाकर वहाँ अन्तिम समयमें जो स्थिति अवस्थित है उसके प्राप्त होनेपर अतिस्थापना और निचेप ये दोनों ही एक आवलिप्रमाण होते हैं । वहाँ तक उदयावलिके बाहर जितनी भी स्थितियाँ हैं उन सब स्थितियोंके प्रदेशोंका उदयावलिके भीतर ही निचेप होता है । तथा इन स्थितियोंका अपकर्षण असंख्यातलोकप्रमाण प्रतिभागके क्रमसे होता है । वह कैसे—विवक्षित स्थितिके कर्म परमाणुओंमें अपकर्षण-उत्कर्षण भागहारेसे गुणित असंख्यात लोकप्रमाण भागहारका भाग देने पर जो एक भाग लब्ध आवे उसका यहाँ अपवर्जन होता है । उसमें भी उदय समयमें जो द्रव्य प्राप्त होता है उससे उदयावलिके अन्तिम समय तक विशेष हीन विशेष हीन द्रव्य प्राप्त होता है । किन्तु यह क्रम जिन स्थितियोंका द्रव्य उदयावलिके भीतर ही निक्षिप्त होता है वहाँ स्थितियोंके सम्बन्धमें कहा है । अब इससे आगे नानात्वको बतलाते हैं । यथा—तदनन्तर आगेकी स्थितिमें डेढ़ गुणहानिसे गुणित अपकर्षण-उत्कर्षण भागहारका भाग देने पर जो एक भागप्रमाण द्रव्य लब्ध आता है उतना यहाँ अपकर्षणको प्राप्त हुआ द्रव्य होता है । पुनः इसमें असंख्यात लोकका भाग देने पर जो एक भागप्रमाण द्रव्य प्राप्त होवे उसे उदयावलिके भीतर निक्षिप्त करता हुआ उदय समयमें बहुत देता है । उससे आगे

१. ता०—आ०प्रत्योः तेण पदणिकखेवो इति पाठः । २. आ०—ता०प्रत्योः स्थोव इति पाठः ।

उदयावलियचरिममओ ति । पुणो नदणंतगेवरिमाण्णुकिस्से उदयावलयवाहिरट्टिदीग्ग पुञ्चोक्कट्टिददञ्चस्साग्गेजे भागे णिक्खिस्सवदि, तत्तो उवरि अहञ्छावणाविमण्ण णिक्खेव-  
 नंभवाभावादो । एसा पस्सवणा उदयादो समयादियदोत्रावलयमेत्तमुल्लंघिय परदोवट्टिदाग्ग  
 ट्टिदीग्ग क्कटा । गंपहि उदयादो पट्टट्टि दुग्गमयाहियदोआवलयमेत्तमुल्लंघिय पादो  
 अवट्टिदाग्ग वि ट्टिदीग्ग एतो चैव कम्मो । पवरि तिस्से ट्टिदीग्ग ओकट्टुणादञ्चस्स अमंखेज-  
 लोरापट्टिभागियच्चभागमुदयावलयचंभंतरे पुञ्चं व णिक्खिविय सेमासंखेजे भागे  
 घेचण्णुदयावलयवाहिराणंतरेट्टिदीग्ग वट्टुअं णिक्खिस्सवदि, तदणंतगेवरिसट्टिदीग्ग तत्तो  
 विसेनहीणं गच्चंमेव णिक्खिस्सवदि । गच्चत्थ विरोगहाणिभागहारो पालिदोवमाग्गखेज-  
 भागमेत्तो । एवमेगुत्तरकमेण णिक्खेवं वट्टाविय उवग्गिमट्टिदीणं पि पस्सवणा एवं चैव  
 अणुगतत्त्वा । गच्चत्थ वि ओरुट्टिदट्टिदि मोत्तण्ण नदणंतगेट्टिमट्टिदिप्पट्टि आवलयमेत्ता  
 अहञ्छावणा घेत्तत्त्वा । भागहारविसेमो च गच्चत्थ णायञ्चो, सञ्चामिं ट्टिदीणमोक्कट्टुण-  
 भागहास्स सग्गित्ताणुवल्लंभादो । एवं ताव णेदञ्चं जाव उपस्सओ णिक्खेवो ति ।  
 तस्स पमाणाणुगममुत्तरी कम्मामो । एवं णिच्चापादेणोक्कट्टुणाग्ग अत्थपदपस्सवणा कया ।  
 को णिच्चापादो णाम ? ट्टिद्विदंयपादस्साभावो ।

१७७. गंपहि वाघाट्टविमयाहञ्छावणाग्ग पस्सवणाट्टिमिदमाह—

उदयावलिरे अन्तिम समयके प्राप्त होने तक विशेषहीन विशेषहीन द्रव्य देता है । फिर हमसे  
 आगेकी उदयावलिरे बाहरकी एक स्थितिमें पूर्वमें अथवास्ति हण्ण द्रव्यके अर्धग्यात बहुभागका  
 निक्षेप करता है, क्योंकि हमसे आगेकी स्थितियों अतिस्थापनासम्बन्धी हैं अतः उनमें निक्षेप  
 नहीं हो सकता । यह प्रकृषणा उद्य समयसे लेकर एक समय अथवा दो आवलियोंको उल्लंघन  
 करके आगे जो स्थिति अर्थात् है उसकी अपेक्षामें की है । अथ उद्य समयसे लेकर दो समय  
 अधिक दो आरतिप्रमाण स्थितियोंको उल्लंघन करके हमसे आगे जो स्थिति स्थित है उसकी  
 अपेक्षामें भी यही क्रम जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि उस स्थितिका जो अपकर्षण  
 द्रव्य है उसमें अर्धग्यात लोचना भाग देकर जो एक भाग आवे उसे उदयावलिरे भीतर पहलेके  
 समान निक्षेप करके शेष अर्धग्यात बहुभागप्रमाण द्रव्यको प्रदण्ण करके वसमेंसे उदयावलिरे  
 बाहर प्रथम स्थितिमें बहुत द्रव्यको निक्षेप करता है और हमसे अनन्तरवर्ती आगेकी स्थितिमें  
 विशेषहीन सब द्रव्यका निक्षेप करता है । यही सर्वत्र विशेषदानिका भागदार पत्यका अर्धग्यातवां  
 भागप्रमाण जानना चाहिये । इस प्रकार उत्तरोत्तर एक एक निक्षेपको बढ़ाकर आगेकी स्थितियोंका  
 कथन भी हमें प्रकृत जानना चाहिये । मात्र सर्वत्र अपकर्षित स्थितिको छोड़कर उससे नीचे  
 अनन्तरवर्ती स्थितिसे लेकर एक आरतिप्रमाण अतिस्थापना प्रदण्ण करनी चाहिये । तथा भागदार-  
 विशेषणों भी सर्वत्र जान लेना चाहिये, क्योंकि सब स्थितियोंका अपकर्षण भागदार एक समान  
 नहीं पाया जाता । इस प्रकार दृष्ट निक्षेपके प्राप्त होने तक कथन करना चाहिये । उक्त निक्षेपके  
 प्रमाणका विचार आगे करेंगे । इस प्रकार निर्व्याघातरूपसे अपकर्षणाने अर्थपदका कथन किया ।

श्रंका—निर्व्याघात किसे कहते हैं ?

समाधान—स्थितिकाण्टकघातका अभाव निर्व्याघात कहलाता है ।

१५०५. अथ व्याघातविषयक अतिस्थापनाका कथन करनेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

❀ वाघादेण अइच्छावणा एका, जेणावलिया अदिरिक्ता होइ ।

§ ५०६. वाघादविसया एका अइच्छावणा संभवइ, जेणावलिया अदिरिक्ता लब्धइ । तिससे पमाणणिण्णयमिदाणि कस्सामो त्ति पइण्णावकमेदं ।

❀ तं जहा ।

§ ५०७. सुगममेदं पुच्छावकं ।

❀ द्विदिघादं करंतेण खंडयमागाइदं ।

§ ५०८. जेण द्विदिघादं करंतेण द्विदिखंडयमागाइदं । तस्स वाघादेणुकस्सिया अइच्छावणा आवलियादिरिक्ता होइ त्ति सुचत्थसंबंधो । जइ वि सन्वत्थेव द्विदिखंडए आवलियादिरिक्ता अइच्छावणा लब्धइ तो वि उक्कस्सद्विदिखंडयस्सेव गहणमिह कायव्वं, एसा उक्कस्सिया अइच्छावणा वाघादे त्ति उवसंहारवकदंसणादो । तं पुण उक्कस्सयं द्विदिखंडयं केवडियं ? जावदिया उक्कस्सिया कम्मद्विदी अंतोकोडाकोडीए ऊणिया तत्तियमेत्तमुक्कस्सयं द्विदिखंडयं । किमेदम्मि द्विदिखंडए आगाइदे पढमसमयप्पहुडि सन्वत्थेव उक्कस्सिया अइच्छावणा होइ आहो अत्थि को विसेसो त्ति आसंक्रिय विसेस-संभवपदुप्पायणट्ठमुवरिमो सुत्तोवण्णासो—

\* व्याघातकी अपेक्षा एक अतिस्थापना होती है, कारण कि वह एक आवलिसे अतिरिक्त होती है ।

§ ५०६ व्याघात विषयक एक अतिस्थापना सम्भव है, कारण कि वह एक आवलिसे अतिरिक्त प्राप्त होती है । अब उसके प्रमाणका निर्णय करते हैं इस प्रकार यह प्रतिज्ञावाक्य है ।

\* यथा—

§ ५०७. यह पृच्छासूत्र सुगम है ।

\* स्थितिका घात करते हुए जिसने स्थितिकाण्डकको ग्रहण किया है ।

§ ५०८. जिसने स्थितिका घात करते हुए स्थितिकाण्डकको ग्रहण किया है उसके व्याघातकी अपेक्षा उत्कृष्ट अतिस्थापना एक आवलिसे अधिक होती है यह इस सूत्रका तात्पर्य है । यद्यपि सर्वत्र ही स्थितिका घात होते समय एक आवलिसे अधिक अतिस्थापना प्राप्त होती है तो भी यहाँ पर उत्कृष्ट स्थितिकाण्डकका ही ग्रहण करना चाहिये, क्योंकि यह उत्कृष्ट अतिस्थापना व्याघातके समय होती है इस प्रकार यह उपसंहार वाक्य देखा जाता है ।

शंका—वह उत्कृष्ट स्थितिकाण्डक कितना है ?

समाधान—जितनी उत्कृष्ट कर्मस्थिति है उसमेंसे अन्तःकोडाकोडीके कम कर देने पर जो स्थिति शेष रहे उतना उत्कृष्ट स्थितिकाण्डक होता है ।

क्या इस स्थितिकाण्डकके ग्रहण करने पर प्रथम समयसे लेकर सर्वत्र ही उत्कृष्ट अतिस्थापना होती है या इसमें कोई विशेषता है इस प्रकारकी आशंका करके इसमें जो विशेष सम्भव है, उसका कथन करनेके लिए आगेके सूत्रका उपन्यास करते हैं—

ॐ नत्थ जं पटमसमण उप्पीरदि पदेसग्गं तस्स पदेसग्गस्स आचलियाए अट्ठच्छावणा ।

६२०. नत्थ नम्मि द्विदिवंटेण पारट्ठे अंतोमूहुत्तमेत्ती उप्पीरणदा होइ नत्थिय-  
मेत्ताओ च द्विदिवंटेणफालीओ पट्टिममघादणपट्टिवदाओ । नत्थ पटममण जं  
पदेसग्गाम्पीरिज्जइ तस्स अट्ठच्छावणा आचलियाए पग्गिडिण्णपमाणा भवदि । अज्ज वि  
मत्त्वामिं संडयभावेण गह्घिदाणं द्विदाणं सुण्णनाभावेण वापादाभावादो । तदो  
णिन्वापादविमया नेव पट्ठवणा एत्थ वि कायत्वा ।

ॐ एवं जाय दुचरिमसमणअणुक्किण्णखंटगं नि ।

६२१. एवं नाव णेट्ठवं जाय दुचरिममयाणुक्किण्णयं द्विदिवंटेयं नि उचं  
होइ । चरिममण पुण णाणनमन्थि नि पट्ठणाविदुमुवरिओ मुनविण्णानो—

ॐ चरिमसमण जा खंटयस्स अग्गट्ठिदो तिस्से अट्ठच्छावणा खंटयं  
समयूणं ।

६२२. उग्गट्ठिदिवंटेणपाठचरिममण जा मा खंटयस्स अग्गट्ठिदो तिस्से  
अट्ठच्छावणा ममयूणखंटयमेत्ती होइ । कुदो ? नम्मि मणए द्विदिवंटेयंनभाविणीणं  
मत्त्वामिमेव द्विदोणं नावादेण हेट्ठा पादणदंसपाओ । नग्गा एदिमो द्विदोए ममयूणम-  
खंटयमेत्ती अट्ठच्छावणा होइ ति मिदं । कुदो ममयूणत्तं ? अग्गट्ठिदोए थोक्किज्ज-

\* वहाँ जो प्रदेशाग्र प्रथम समयमें उत्कीर्ण होता है उस प्रदेशाग्रकी अनिस्थापना एक आचलियप्रमाण होती है ।

६५०६. एका इम स्थितिकाण्डकया प्रारम्भ करने पर उत्कीर्ण पाल अन्वसुद्धयप्रमाण  
होता है और प्रति समय होनेवाले प्राग्मे सम्पन्ना स्थानेपाली स्थितिकाण्डककी पालियों भी उत्की  
री होती हैं । समयमें प्रथम समयमें जो प्रदेशाग्र उत्कीर्ण होता है उसकी अनिस्थापना एक आचलि-  
प्रमाण होती है, क्योंकि काण्डकस्थाने महत्त्व की गई इन सब स्थितियोंका अभी अभाव नहीं होनेसे  
इनका व्यापार नहीं होता, इसलिए यहाँ पर भी निम्नानुसृतियक प्रकल्पना करनी चाहिये ।

\* इस प्रकार अनुत्कीर्ण स्थितिकाण्डकके द्विचरम समयके प्राग होने तक जानना  
चाहिए ।

६५१०. इस प्रकार द्विचरम समयकी अनुत्कीर्ण स्थितिकाण्डकके प्राग होने तक जानना  
चाहिये यह उक्त कथनका तात्पर्य है । किन्तु अन्तिम समयमें कुछ भेद है इसलिये उसका फलन  
करनेके लिये आगेके सूत्रना निम्न करके हैं—

\* अन्तिम समयमें काण्डककी जो अग्रस्थिति है उसको अनिस्थापना एक समय  
कम काण्डकप्रमाण होती है ।

६५११. उत्कृष्ट स्थितिकाण्डकपातके अन्तिम समयमें जो काण्डककी अग्रस्थिति होती है  
उसकी अतिरिक्तापना एक समयकम काण्डकप्रमाण होती है, क्योंकि उस अन्तिम समयमें स्थिति-  
काण्डकके भीतर आठे हुए सभी स्थितियोंका व्यापारके कारण प्राग देखा जाता है, इसलिये इस

माणीए अहच्छावणावहिम्भावदंसणादो ।

❀ एसा उक्कसिसया अहच्छावणा वाघादे ।

§ ५१२. एसा अणंतरपरुविदा समययुणकस्सट्टिदिखंडयमेत्ती उक्कस्साहच्छावणा वाघादे ट्टिदिखंडयविसए चव होइ, णाण्णत्थे त्ति उत्तं होइ ।

स्थितिकी एक समयकम उत्कृष्ट काण्डकप्रमाण अतिस्थापना होती है यह सिद्ध हुआ ।

शंका—इस अतिस्थापनाको एक समय कम क्यों कहा ?

समाधान—क्योंकि अपकर्षणको प्राप्त होनेवाली अग्रस्थिति अतिस्थापनासे बहिर्भूत देखी जाती है ।

❀ यह उत्कृष्ट अतिस्थापना व्याघातके होनेपर होती है ।

§ ५१२. यह जो पहले एक समयकम उत्कृष्ट स्थितिकाण्डप्रमाण उत्कृष्ट अतिस्थापना कंठी है वह स्थितिकाण्डकविषयक व्याघातके होनेपर ही होती है, अन्यत्र नहीं होती यह उक्त कथनका तात्पर्य है ।

विशेषार्थ—यहाँ स्थितिसंक्रमके विषयमें विचार करते हुए सर्व प्रथम स्थितिअपकर्षणके स्वरूपका निर्देश किया गया है । स्थितिके घटनेको स्थितिअपकर्षण कहते हैं । यह स्थिति अपकर्षण अव्याघात और व्याघातके भेदसे दो प्रकारका है । स्थितिकाण्डक घातके बिना जो स्थिति घटती है वह अव्याघातविषयक स्थितिअपकर्षण है और स्थितिकाण्डकघातके द्वारा इसके अन्तिम समयमें जो स्थिति घटती है वह व्याघातविषयक स्थितिअपकर्षण है । स्थिति उत्कीरणकाल यद्यपि अन्तर्मुहूर्तप्रमाण है तथापि यह व्याघातविषयक स्थिति अपकर्षण उसके अन्तिम समयमें ही प्राप्त होता है, क्योंकि स्थितिकाण्डकसम्बन्धी सम्पूर्ण स्थितिका पात अन्तिम समयमें ही देखा जाता है । अतएव स्थितिकाण्डकके उत्कीरणकालके अन्तिम समयके सिवा शेष सब समयोंमें जो अपकर्षण होता है उसे अव्याघातविषयक स्थितिअपकर्षण जानना चाहिये । अब इन दोनों अवस्थाओंमें होनेवाले स्थितिअपकर्षणमें निक्षेप और अतिस्थापनाका प्रमाण बतलाते हैं । उत्कर्षित या अपकर्षित द्रव्यको प्रहण करनेके योग्य जिन स्थितियोंमें उत्कर्षित या अपकर्षित द्रव्यका पतन होता है उनकी निक्षेप संज्ञा है । तथा उत्कर्षण और अपकर्षणको प्राप्त होनेवाली स्थितियों और निक्षेपके मध्यमें स्थित जिन स्थितियोंमें उत्कर्षित या अपकर्षित द्रव्यका निक्षेप नहीं होता है उन स्थितियोंकी अतिस्थापना संज्ञा है । अव्याघात विषयक अपकर्षणके समय जघन्य निक्षेप एक समय कम आवतिका एक समय अधिक त्रिभाग प्रमाण है । यह निक्षेप उदयावलिसे उपरितन प्रथम समयवर्ती स्थितिका अपकर्षण होने पर प्राप्त होता है । उत्कृष्ट निक्षेप एक समय अधिक दो आवलिसे न्यून उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है, क्योंकि उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करके बन्धावलिके बाद अग्रस्थितिका अपकर्षण होने पर उक्तप्रमाण उत्कृष्ट निक्षेप पाया जाता है । इसी प्रकार प्रकृतमें जघन्य अतिस्थापना एक समय कम आवलिके दो बटे तीन भागप्रमाण है, क्योंकि उदयावलिसे उपरितन प्रथम समयवर्ती स्थितिका अपकर्षण होने पर उक्त प्रमाण अतिस्थापना देखी जाती है । तथा अव्याघातविषयक उत्कृष्ट अतिस्थापना एक आवलिप्रमाण है, क्योंकि उदयावलिसे उपर एक समय कम आवलिके त्रिभागसे लेकर आगे जितनी भी स्थितियोंका अव्याघातविषयक अपकर्षण होता है वहाँ सर्वत्र एक आवलिप्रमाण अतिस्थापना देखी जाती है । मात्र स्थितिकाण्डकघातके समय जघन्य अतिस्थापना सर्वत्र एक आवलिप्रमाण होती है, क्योंकि स्थितिकाण्डकघातके समय जितनी स्थितियोंका अपकर्षण

॥ ५.१३. एवमेदं परुषिय संपहि जहण्णुपस्सणिक्खेवाहच्छावणादिपदाणमप्पा-  
चहुअणिण्णयं कुणमाणो मुत्तमुत्तरं भणह—

⊗ तदो सञ्चत्थोवो जहण्णो षिक्खेवो ।

॥ ५.१४. आवलियनिभागपमाणत्तादो ।

⊗ जहणियाया अहच्छावणा दुसमयूणा दुगुणा ।

॥ ५.१५. जहण्णाहच्छावणा णाम आवलियवे-तिभागा । तदो तत्तिभागादो  
वे-तिभागाणं दुगुणत्तं होउ णाम, विरोहाभावादो । कथं पुण दुगमयूणत्तं ? उच्चदे—  
आवलिया णाम वदत्तुम्मसंया । तदो तिभागं मुत्तं ण एदि ति स्वमवणिय तिभागो  
घेत्तवो, तन्धावणिदरूवेण मठ तिभागो जहण्णणिकमेवो वे-तिभागा अहच्छावणा ।  
एद्रेण कारणेण समयाहियतिभागे दुगुणिदे जहण्णाहच्छावणादो दुरूवाहियमुप्पजह ।  
तम्हा दुगमयूणा दुगुणा ति मुत्ते वुत्तं ।

होता है, उन सम्बन्धी अन्तर्मुद्रणप्रमाण उत्तीरण करने के उपान्त्य समय तक अपवर्णित होनेवाले  
द्रव्यका निक्षेप अपने नीचेकी एक आत्रलिप्रमाण स्थितिमेंको अनिम्यापित पर दोष सब स्थितियोंमें  
होता है । तथा उद्गुण अतिस्थापना एक समय कम काण्टप्रमाण होती है जो कि स्थितिकाण्टकी  
अप्रतिनिधी जाननी चाहिये, क्योंकि जिस समय स्थितिकाण्टकी अन्तिम फालिका पतन होता  
है उस समय काण्टके अन्तर्गत मिल स्थितियोंमें अवबर्तित होनेवाले द्रव्यका निक्षेप होना सम्भव  
नहीं है । कारण कि उस समय उनका अभाव हो जाता है । इस प्रकार निष्कर्षागत और व्यापान-  
नियमक निक्षेप और अनिस्थापना फर्से विनयी प्राप्त होती है इसका मक्षेपमें विचार किया ।

॥ ५.१३ इय प्रकार अवबर्णयका कथन करके अब जपन्य और उद्गुण निक्षेप तथा जपन्य  
और उद्गुण अतिस्थापना आदि फर्सेके अस्वरहत्वका निर्णय करने हुए आगेका सूत्र पढ़ते हैं—

⊗ जघन्य निक्षेप सवसे स्तोक है ।

॥ ५.१४. क्योकि यह आवलिके तीसरे भागप्रमाण है ।

⊗ उससे जघन्य अतिस्थापना दो समय कम दूनी है ।

॥ ५.१५. टीका—जघन्य अतिस्थापना एक आत्रलिके दो चट्टे तीन भागप्रमाण होती है,  
इसलिये एक आत्रलिके तीसरे भागसे दो चट्टे तीन भाग दूना भन्ने ही रदा आवे, क्योंकि इसमें  
कोई विरोध नहीं है । किन्तु यह दूनेमे दो समय कम कैसे हो सकती है ?

समाधान—आत्रलिके परिगणना इत्युक्त संख्यामें फी गई है, इसलिये उसका शुद्ध  
तीसरा भाग नहीं आता है, अतः आत्रलिमेंमे एक कम करके उसका तीसरा भाग ग्रहण करना  
चाहिये । अब यहाँ आवलिमेंसे जो एक कम किया गया है उसको त्रिभागमें मिला देने पर जघन्य  
निक्षेप होता है और एक कम आवलिका दो चट्टे तीन भागप्रमाण अतिस्थापना होती है । इस  
कारणसे एक समय अधिक त्रिभागको दूना करने पर जघन्य अतिस्थापनासे यह संख्या दो अधिक  
पाई जाती है । इसी कारण सूत्रमें निक्षेपकी अपेक्षा अतिस्थापनाको दो समय कम दूनी कहा है ।

उदाहरण—आत्रलि १६;

१५ - १ = १४; १४ ÷ ३ = ४; ४ + १ = ६ जघन्य निक्षेप ।

१६ - ६ = १० जघन्य अतिस्थापना; या ६ + २ = १२ - २ = १० जघन्य अतिस्थापना ।

❀ षिडवाघादेण उक्कस्सिया अइच्छावणा विसेसाहिंया ।

§ ५१६. केत्तियमेत्तेण ? समयाहियदुभागमेत्तेण ।

❀ वाघादेण उक्कस्सिया अइच्छावणा असंखेज्जगुणा ।

§ ५१७. कुदो ? अंतोकोडाकोडीपरिहीणकम्मट्टिदिपमाणत्तादो ।

❀ उक्कस्सयं ट्टिदिखंडयं विसेसाहियं ।

§ ५१८. अग्गट्टिदीए वि एत्थ पवेसदंसणादो ।

❀ उक्कस्सओ षिक्खेवो विसेसाहिओ ।

§ ५१९. कुदो ? उक्कस्सट्टिदिं वंधिय वंधावलयं वोलाविय अग्गट्टिदिमोक्कट्टिज्जणा-  
वलयियमेत्तमइच्छाविय उदयपजंतं णिक्खिवमाणस्स समयाहियदोआवलियूणकम्म-  
ट्टिदिमेत्तुक्कस्सणिकखेवसंभवोवलंभादो ।

❀ उक्कस्सओ ट्टिदिबंधो विसेसाहिओ ।

इस उदाहरणसे स्पष्ट हो जाता है कि जघन्य निक्षेपको दूना करने पर जो १२ प्राप्त हुआ है उसमेंसे २ कम करने पर जघन्य अतिस्थापना होती है ।

❀ उससे निर्व्याघातसे प्राप्त हुई उत्कृष्ट अतिस्थापना विशेष अधिक है ।

§ ५१६. कितनी अधिक है ? जघन्य अतिस्थापनाके द्वितीय भाग अर्थात् आधेमें एक समयके जोड़ देने पर जितना प्रमाण हो उतनी अधिक है ।

उदाहरण—जघन्य अतिस्थापना १०; उसका आधा ५;

$५ + १ = ६$ ;  $१० + ६ = १६$  उत्कृष्ट अतिस्थापना ।

❀ उससे व्याघातविषयक उत्कृष्ट अतिस्थापना असंख्यातगुणी है ।

§ ५१७. क्योंकि इसका प्रमाण अन्तःकोडाकोडीकम कर्मस्थितिप्रमाण है ।

उदाहरण—असंख्यात २५६;

$१६ \times २५६ = ४०९६$  व्याघातसे प्राप्त हुई उत्कृष्ट अतिस्थापना ।

❀ उससे उत्कृष्ट स्थितिकाण्डक विशेष अधिक है ।

§ ५१८. क्योंकि इसमें अग्रस्थितिका भी अन्तर्भाव देखा जाता है ।

उदाहरण— $४०९६ + १$  अग्रस्थिति =  $४०९७$  उत्कृष्ट स्थितिकाण्डक ।

❀ उससे उत्कृष्ट निक्षेप विशेष अधिक है ।

§ ५१९. क्योंकि उत्कृष्ट स्थितिको बॉधकर और बन्धावलिको वितारक फिर अग्रस्थितिका अपकर्षण करके अतिस्थापनाकी एक आवलिको छोड़कर उदय पर्यन्त उस अपकर्षित द्रव्यका निक्षेप करनेवाले जीवके उत्कृष्ट निक्षेपका प्रमाण एक समय अधिक दो आवलिसे न्यून कर्मस्थितिप्रमाण उपलब्ध होता है ।

उदाहरण—कर्मस्थिति ४८००; एक समय अधिक दो आवलि ३३;

$४८०० - ३३ = ४७६७$  उत्कृष्ट निक्षेप ।

❀ उससे उत्कृष्ट स्थितिवन्ध विशेष अधिक है ।

६२०. समयसहितोऽवलिपमेत्तद्विदीणमेत्य पवेसदंसणादौ ।

६२१. एवमोक्तद्विणागंक्रमस्य अद्वयपरवणा समत्ता । संपत्ति उग्रद्विणागंक्रमस्य अद्वयपरवणाद्विमुक्तगु चावयानो—

⊙ जाओ यज्जन्ति द्विदीओ तासि द्विदीणं पुञ्चणियद्वद्विदिमत्तिकिच णिन्वाघादेण उक्कद्विणाण अहच्छावणा आवलिया ।

६२२. एदस्य सुत्तम्य अत्तो पद्विज्जदे । नं जहा—उग्रद्विणा णाम कम्मपदेसाणं पुञ्चिन्वद्विदीदो अहिणव्वचंगंघेण द्विद्विद्विणावणं । सा पुण दुर्विदा—णिन्वाघादविसया वाघादविगया वेदि । जत्यावन्वियमेत्ताद्विच्छावणाण आवलियअभंगेज्जिभागार्तिणिकखेव-पटिवद्विणाण पटिघादो णत्थि तम्मि णिन्वाघादभावो णाम भवदि, आवलियमेत्ताद्विच्छावणाण तारिणिकमेवसहगदाण पटिघादस्य वाघादनेगेह विवाक्कस्यत्तादो । कम्मि विगण एवविहो विघादो णत्थि ? उग्रदे—जत्य मनेकम्मादो उवनि समउत्तागदिकमेण द्विदिद्विंधो वट्टमाणो आवलियागंवेज्जभागमहिटावलिपमेत्तो वट्टिओ होह तपो पट्टि उवनि सत्त्वथेव णिन्वाघादविमओ जाय उक्कम्मद्विदिद्विंधो ति । एवविद्विणिन्वाघादपरवणापटिवद्विमेदं सुत्तं । नत्थ जाओ वज्जन्ति द्विदीओ तागिमुवनि पुञ्चणियद्वद्विदी उग्रद्विज्जदे । तिस्ये

६२०. क्यों कि इष्ट निक्षेपे प्रमाणमे एव समय अधिक दो आवलिप्रमाण स्थितियोंकी इसमें वृद्धि देखी जाती है ।

उदाहरण—उष्ट निक्षेप ५७६५; एक समय अधिक दो आवलि ३३; ४०६५ - ३३ = ४०३२ उष्ट स्थितिधन ।

६२१. इस प्रकार अवयवण संक्रमके अर्थपरका कथन समाप्त हुआ । अब उत्तरण संक्रमके अर्थपरका कथन करनेके लिये आगेका सूत्र करते हैं—

⊙ जो स्थितियां चंचनी हैं उन स्थितियोंकी, पूर्वमें चंधी हुई स्थितियोंका निर्व्याघातविषयक उत्कर्षण होने पर, अतिरथापना एक आवलिप्रमाण होती है ।

६२२. अब इस सूत्रका अर्थ बताने हैं । यथा—तरीन धन्यके सम्बन्धमें पूर्वकी स्थितियोंसे क्रमपरमाणुओंकी स्थितिका बढ़ाना उत्कर्षण है । वरके दो भेद हैं—निर्व्याघातविषयक और व्याघातविषयक । जहाँ आवलिके अतिरथापनके भाग आदि निक्षेपसे सम्बन्ध रखनेवाली एक आवलिप्रमाण अतिरथापनाका प्रतिघात नहीं होता यहाँ निर्व्याघातविषयक अतिरथापना होती है, क्योंकि वस प्रकारके निक्षेपके साथ प्राप्त हुई एक आवलिप्रमाण अतिरथापनाका प्रतिघात ही यहाँ व्याघातरूपमें विद्यमान है ।

शंका—इस प्रकारका व्याघात कहीं नहीं होता ?

समाधान—जहाँ उत्कर्षसे ऊपर एक समय अधिक आदिके क्रममें स्थितिबन्ध वृद्धिको प्राप्त होता हुआ एक आवलिके अर्थपरकातयें भागमें युक्त एक आवलि बढ़ जाता है वहाँसे लेकर उत्कृष्ट स्थितिबन्धके प्राप्त होने तक सर्वत्र ही निर्व्याघातविषयक उत्कर्षण होता है । इस प्रकारकी निर्व्याघातविषयक प्ररूपणामें सम्बन्ध रखनेवाला यह सूत्र है ।



उकड्डिज्जमाणाए आवलियमेत्ती अइच्छावणा होइ । संपहि एदस्सेवत्थस्स णिण्णयकरणट्ट-  
मुदाहरणं वत्तइस्सामो । तत्थ ताव पुव्वणिरुद्धड्ढिदी णाम सत्तरिसागरोवमकोडाकोडीणं  
बंधपाओग्गा अंतोकोडाकोडीमेत्तादाहट्टिदी घेत्तव्वा । तिस्से उवरि समयुत्तर-दुसमयुत्तरादि-  
कमेण बंधमाणस्स जाव आवलिया अण्णेगो च आवलियाए असंखे०भागो ण गदो ताव  
तिस्से ट्टिदीए चरिमणियेयस्स पयदुकड्डणा ण संभवइ, वाघादविसए णिन्वाघादपरूवणाए  
अणवयारादो । तम्हा आवलियाइच्छावणाए तदसंखेज्जभागमेत्तजहण्णणिकखेवे च  
पडिच्चुण्णे संते णिन्वाघादेणुकड्डणा पारभइ । एत्तो उवरि अवट्टिदाइच्छावणाए णिरंतरं  
णिकखेत्रुद्धी वत्तव्वा जावप्पणो उक्कस्सणिकखेवो च्चि । एवं कदे दाहट्टिदीए णिन्वाघाद-  
जहण्णाइच्छावणसमयूणजहण्णणिकखेवेहि य ऊणसत्तरिसागरोवमकोडाकोडिमेत्ताणि  
णिकखेत्रुद्धाणाणि दाहट्टिदिचरिमणियेयस्स लद्धाणि भवन्ति । एवमेवदाहट्टिदिदुचरिम-  
णियेयस्स वि वत्तव्वं । णवरि अणंतरादीदणिकखेत्रुद्धाणेहिंतो एत्थतणणिकखेत्रुद्धाणाणि  
समयुत्तराणि हंति । एवं सेसासेसहेट्टिमट्टिदीणं पादेकं णिरुंभणं काऊण समयाहियकमेण  
णिकखेत्रुद्धाणाणमुत्पत्ती वत्तव्वा जाव सव्वमंतोकोडाकोडिमोयरिय आवाहा०भंतरे  
समयाहियावलियमेत्तामोदरिदूणं ट्टिदट्टिदि च्चि । एदिस्से ट्टिदीए णिन्वाघादजहण्णा-

उक्त सूत्रका यह भाव है कि जो स्थितियों बंधती हैं उनमें बंधी हुई स्थितियोंका उत्कर्षण  
होता है और उत्कर्षणको प्राप्त हुई उस स्थितिकी एक आवलिप्रमाण अतिस्थापना होती है । अत्र  
इसी अर्थका निर्णय करनेके लिये उदाहरण बतलाते हैं—प्रकृतमें पूर्वमें बंधी हुई स्थितिसे सत्तर  
कोडाकोड़ी सागरके बन्ध योग्य अन्तःकोडाकोड़ी प्रमाण दाहस्थिति लेनी चाहिए । इस स्थितिके  
ऊपर बन्ध करनेवाले जीवके एक समय अधिक और दो समय अधिक आदिके क्रमसे जब तक  
एक आवलि और एक आवलिका असंखनवौं भाग नहीं बंध लेता है तब तक उस स्थितिके  
अन्तिम निषेकका प्रकृत उत्कर्षण सम्भव नहीं है, क्योंकि ज्याघातविषयक प्ररूपणमें निर्व्याघात  
विषयक प्ररूपणा नहीं हो सकती । इसलिये एक आवलिप्रमाण अतिस्थापना और उसके  
असंख्यातवें भागप्रमाण जघन्य निक्षेपके परिपूर्ण हो जाने पर ही निर्व्याघातविषयक उत्कर्षणका  
प्रारम्भ होता है । इससे आगे अतिस्थापनाके अवस्थित रहने हुए अपने उत्कृष्ट निक्षेपकी प्राप्ति  
होने तक निरन्तर क्रमसे निक्षेपकी वृद्धिका कथन करना चाहिये । ऐसा करने पर दाहस्थितिके  
अन्तिम निषेकके; दाहस्थिति, निर्व्याघातविषयक जघन्य अतिस्थापना और एक समय कम जघन्य  
निक्षेप इन तीन राशियोंसे न्यून सत्तर कोडाकोड़ी सागरप्रमाण निक्षेपस्थान प्राप्त होते हैं । इसी  
प्रकार दाहस्थितिके द्विचरम निषेकका भी कथन करना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि  
समनन्तरपूर्व कहे गये निक्षेपस्थानोंसे इस स्थानके निक्षेपस्थान एक समय अधिक होते हैं । इसी  
प्रकार बाकीकी नीचेकी सब स्थितियोंकी प्रत्येक स्थितिको विवक्षित करके अन्तःकोडाकोड़ीप्रमाण  
स्थान नीचे जाकर आवाधाके भीतर एक समय अधिक एक आवलिप्रमाण स्थिति नीचे जाकर जो  
स्थिति स्थित है उसके प्राप्त होने तक एक समय अधिकके क्रमसे निक्षेपस्थानोंकी उत्पत्ति कहनी

१. आ०प्रती -मेत्ता णिकखेत्रुद्धाणाणि इति पाठः । २. ता०-आप्रत्योः एवमेवेत्ताहट्टिदी-  
इति पाठः । ३. ता०प्रती -मेत्ता ( च ) मोदरिदूण इति पाठः ।

इच्छावणा सह मच्चुपम्यओ णिकखेवो होइ । तस्य पमाणणिण्णयमुवरि कस्सामो । एतो हेट्ठिमाणं पि द्विद्विणमेरो चैव णिकखेवो । णवरि अइच्छावणा समयुत्तरादिकमेण चट्ठदि जाव उदयावलियवाहिगट्ठिदि ति । संपहि णिच्चाघाटविगयणिकखेवट्ठिणाणं परवणट्ठमुवरिममुत्तमोइण्णं—

ॐ एदिस्से अइच्छावणाए आवलियाए असंखेज्जदिभागमादिं कादूए जाव उफस्सओ णिकखेवो ति णिरंतंरं णिकखेवट्ठिणाणि ।

§ ५२३. एदिस्से अइच्छावणाए इच्चेदेणाणंतरपमविदावलियमेत्ताइच्छावणाए परामसो कटो । तदो एदिस्से अइच्छावणाए जहण्णणिकखेवो आवलियाए अमंखे० भागो होदि ति मंघंओ कायवो । पुच्चणिम्हंतोसोत्ताकोडीमेचट्ठिदीदो उवरि समयुत्तरादिकमेण बंधवट्ठिणो आवलियमेत्ताइच्छावणं तदुगंसेत्तभागमेचणिकखेवं च वट्ठाविय बंधमाणस्म णिच्चाघादेण जहण्णाइच्छावणा-णिकखेवो भवंति, ण हेट्ठदो ति उचं होइ । एदं जहण्णयं णिकखेवट्ठिणाणं । एत्तमादि काऊण समयुत्तरादिकमेण णिरंतंरं णिकखेवट्ठिणाणवुट्ठी वचन्वा जाव उचस्सओ णिकखेवो ति । एत्थ णिरंतंरं णिकखेवट्ठिणाणि ति वयणेण सांतरत्तपडिसेहो कओ, णिच्चाघादे मांतरत्तस्म कारणणुत्तलट्ठोदो । एवमेदं परविय संपहि उफस्स-

चाहिये । इस स्थितिया निर्यायातविषयक जघन्य अतिस्थापनाके साथ समये उत्कृष्ट निश्चय होता है । उसके प्रमाणका निर्णय आगे दर्शाया है । इससे नीचे की स्थितियोंका भी यही निर्णय होता है । भिन्नु इनकी विशेषता है कि उद्योगात्मिक वाहरी स्थितिके प्राप्त होने तक इन स्थितियोंकी अतिस्थापना एक एक समय वृद्धी जाती है । जब निर्यायातविषयक निजस्थानोंका कथन करनेके लिए आगेचा सूत्र चलते हैं—

ॐ एत्थ आवलिप्रमाण अतिस्थापनाके एक आवलिके अमंखेयातवें भागसे लेकर उत्कृष्ट निश्चयके प्राप्त होने तक निरन्तर क्रमसे निश्चयस्थान होते हैं ।

§ ५२३. सूत्रमें जो 'एदिस्से अइच्छावणाए' वद आया है सो उससे जो पूर्वमें एक आवलि-प्रमाण अतिस्थापना कह आये है उसका परामर्श किया गया है । इसलिये इस अतिस्थापनाका जघन्य निश्चय एक आवलिका असंख्यातवें भागप्रमाण होता है ऐसा यहाँ पदरात्म्य पर लेना चाहिये । पहले जो अन्तःकोटागोटीप्रमाण स्थिति विरहित वर आये हैं उसके ऊपर एक समय अधिक आदिके क्रमसे वन्धकी वृद्धि होने पर एक आवलिप्रमाण अतिस्थापना और उसके असंख्यातवें भागप्रमाण निश्चयको बढ़ाकर वन्ध करनेवाले जीवके निर्यायातविषयक जघन्य अतिस्थापना और जघन्य निश्चय होते हैं । इससे और कम स्थितिको बढ़ा वर वन्ध करनेवाले जीवके ये निर्यायातविषयक जघन्य अतिस्थापना और जघन्य निश्चय नहीं होते यह उक्त कथनका तात्पर्य है । यह जघन्य निश्चयस्थान है । इससे लेकर उत्कृष्ट निश्चयस्थानके प्राप्त होने तक एक एक समय वृद्धी हुए निरन्तर क्रमसे निश्चयस्थानोंकी वृद्धि फरनी चाहिये । यहाँ सूत्रमें जो 'णिरंतंरं णिकखेवट्ठिणाणि' वचन आया है सो उससे निश्चयस्थानोंके सांतरापनेका निश्चय किया है, क्योंकि निर्यायातविषयक उदरर्पणमें सांतरापनेका कोई कारण नहीं पाया जाता

णिकखेवपमाणविसयणिद्वारणं पुच्छासुत्तमाह—

❖ उक्कस्सओ पुण णिकखेवो केत्तिओ ?

§ ५२४. सुगममेदं पुच्छावकं ।

❖ जात्तिया उक्कस्सिया कम्मद्विदी उक्कस्सियाए आवाहाए समयुत्तरावलियाए च ऊणा तत्तिओ उक्कस्सओ णिकखेवो ।

§ ५२५. समयाहियबंधावलियं गालिय उदयावलयिवाहिरद्विद्विदीए उक्कड्डि-  
माणाए एसो उक्कस्सणिकखेवो परूविदो परिप्फुडमेव, तिस्से समयाहियावलियाए  
उक्कसावाहाए च परिहीणुक्कस्सकम्मद्विदिमेत्तुक्कस्सणिकखेवदंसणादो । तं जहा—  
उक्कस्सद्विदिं बंधिय बंधावलियं गालिय तदणंतरसमए आवाहावाहिरद्विदिद्विदपदेसग्ग-  
मोकड्डिय उदयावलयिवाहिरे णिसिंचदि । एत्थ विदियद्विदीए ओकड्डिय णिकखत्तदव्व-  
महिकयं, पढमसमयणिसिचस्स तदणंतरसमए उदयावलयिबमंतरपवेसदंसणादो । तदो  
विदियसमए उक्कस्ससंकिंसेवसेण उक्कस्सद्विदिं बंधमाणो विवक्खियपदेसग्गमुक्कड्डतो  
आवाहावाहिरपढमणिसेयप्पहुडि ताव णिकखिवादि जाव समयाहियावलयिमेत्तेण  
अग्गद्विदिमपत्तो चि । कुदो एवं ? तत्तो उवरि तस्स विवक्खियकम्मपदेसस्स सत्तिद्विदीए  
है । इस प्रकार इसका कथन करके अब उत्कृष्ट निक्षेपके प्रमाणका निश्चय करनेके लिये आगेका  
पृच्छासूत्र कहते हैं—

❖ उत्कृष्ट निक्षेप कितना है ।

§ ५२४. यह पृच्छासूत्र सुगम है ।

❖ उत्कृष्ट आवाधा और एक समय अधिक एक आवलि इनसे न्यून जितनी  
उत्कृष्ट कर्मस्थिति है उतना उत्कृष्ट निक्षेप है ।

§ ५२५. एक समय अधिक बन्धावलिको गलाकर उदयावलिके बाहर स्थित स्थितिका  
उत्कर्षण होने पर यह उत्कृष्ट निक्षेप कहा है यह बात स्पष्ट है, क्योंकि उस स्थितिका एक समय  
अधिक एक आवलि और उत्कृष्ट आवाधासे न्यून उत्कृष्ट कर्मस्थितिप्रमाण उत्कृष्ट निक्षेप देखा  
जाता है । खुलासा इस प्रकार है—उत्कृष्ट स्थितिको बाँधकर और बन्धावलिको गलाकर तदनन्तर  
समयमें आवाधाके बाहरकी स्थितिमें स्थित कर्मपरमाणुओंका अपकर्षण करके उदयावलिके बाहर  
निक्षेप करता है । यहाँ पर अपकर्षण करके उदयावलिके बाहर दूसरी स्थितिमें निक्षिप्त हुआ द्रव्य  
विवक्षित है, क्योंकि उदयावलिके बाहर प्रथम समयमें जो द्रव्य निक्षिप्त होता है उसका तदनन्तर  
समयमें उदयावलिके भीतर प्रवेश देखा जाता है । फिर दूसरे समयमें उत्कृष्ट संक्लेशके कारण  
उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाला कोई एक जीव विवक्षित प्रदेशाप्रका उत्कर्षण करके उन्हें आवाधाके  
बाहर प्रथम निषेकसे लेकर अग्रस्थितिसे एक समय अधिक एक आवलिप्रमाण स्थान नीचे उतर  
कर जो स्थान प्राप्त हो वहाँ तक निक्षिप्त करता है ।

शंका—ऐसा क्यों है ?

समाधान—क्योंकि इससे ऊपर उस विवक्षित प्रदेशाप्रकी शक्ति नहीं पाई जाती है ।

१. ता०—आ०प्रत्योः—पदेसदंसणादो इति पाठः ।

असंभवाद्दे । तस्मा उक्त्यावाहाणं समयुक्तगवल्याणं च ऊणिया कम्मद्विदो कम्म-  
णिकसेवो त्ति मिद्धं । किमेदिस्सो चैव एत्तिस्से उदयावलयवाहिरद्विदोए उफस्सणिकसेवो,  
आहो अण्णासिं पि द्विदीणमत्थि त्ति एत्थ णिण्णयं कम्मामो । एत्तो उवरिमाणं पि  
आवाहावमंतरंभुवगमाणं द्विदीणं सञ्जागिमेव पयदुपस्सणिकसेवो होइ । णवरि  
आवाहावाहियपट्टमैणित्सेरद्विदोए हेद्वेदो आवलियमेत्ताणमावाहन्भंतरद्विदीणमुफस्सथो  
णिकसेवो ण संभवइ, तत्थ जहाकममावाहावाहिरणित्सेयद्विदीणमइच्छावणावल्याणुप्पवे-  
सेणुफस्सणिकसेवस्स हाणिट्ठमणाद्दे ।

: ५२६. एवमेत्ताण पत्रंधेण णिच्छावादेविगयजहणुफस्सणिकसेवमइच्छावणं  
च परुविय गंपहि वाघादविमए तदुभयं परुवेमाणो मुत्तपवंधमुत्तरं भणइ—

⊙ वाघादेण कथं ?

: ५२७. मुगममंत्तं पुच्छावकं ।

⊙ जइ संतकम्मादो वंधो समयुत्तरो त्तिस्से द्विदोए एत्थि उक्कट्टुया ।

: ५२८. संतकम्मादो जइ वंधो समयुत्तरो त्तिस्से द्विदोए उवरि संतकम्म-  
अग्गद्विदोए एत्थि उक्कट्टुया । कुदो ? जहण्णाइच्छावणाणिकसेवमाणं तत्थासंभवाद्दे ।

इमलिये उक्कट्ट अवाधा और एक समय अधिक एक आरतिमे न्यून कर्मस्थितिप्रमाण  
कर्मनिष्ठेय होता है यह बात सिद्ध है ।

शंका—यथा उदयानलिंगे चाहरकी इती एक स्थितिपर उक्कट्ट निष्ठेय होता है या अन्य  
स्थितियोंका भी उक्कट्ट निष्ठेय होता है ?

समाधान—अथ इन धरतका निर्णय करने है—इस स्थितिसे ऊपर आवाधाके भीतर  
जितनी भी स्थितियाँ स्वीकार की गई हैं उन सभीका प्रकृत उक्कट्ट निष्ठेय होता है । किन्तु इतनी  
विशेषता है कि आवाधाके चाहर प्रथम निष्ठेयकी स्थितिमे नीचेकी एक आवलिप्रमाण आवाधाके  
भीतरकी स्थितियोंका उक्कट्ट निष्ठेय सम्भव नहीं है, क्यों कि वहाँ कर्ममे आवाधाके चाहरकी निष्ठेय  
स्थितियोंका अतिस्थापनाविधिमें प्रवेश हो जानेके कारण उक्कट्ट निष्ठेयकी हानि देनी जाती है ।

: ५२६. इन प्रकार इनके कथन द्वारा निव्यापानविषयक जघन्य व उक्कट्ट निष्ठेय और  
अतिस्थापनावा कथन करके अत्र व्याघातविषयक इन दोनोंका कथन करनेके लिये आगेका सूत्र  
कहते हैं—

\* व्याघातकी अपेक्षा उत्कर्षण किस प्रकार होता है ?

: ५२७. यह पुच्छासूत्र मुगम है ।

\* यदि सत्कर्मसे बन्ध एक समय अधिक हो तो उस स्थितिमें उत्कर्षण नहीं  
होता है ।

: ५२८. यदि सत्कर्मसे बन्ध एक समय अधिक हो तो उस बंधनेवाली स्थितिमें सत्कर्मकी  
अप्रतिर्यक्तिका उत्कर्षण नहीं होता है, क्योंकि वहाँ पर जघन्य अतिस्थापना और निष्ठेय इन

१. ता०प्रती त्ति ( ता०पटि ) चद्विगुण्यं, आ०प्रती त्ति चर्जाण्यण्य इति पाठः । २. ता०प्रती  
—वाहिय ( २ ) पटम इति पाठः ।

ॐ जइ संतकम्मादो बंधो दुसमयुत्तरो तिस्से वि संतकम्मअग्गहिदीए णत्थि उक्कड्डणा ।

§ ५२९. जइ संतकम्मादो दुसमयुत्तरो बंधो होइ तिस्से वि बंधडिदीए सरुवेण संतकम्मअग्गहिदीए पुव्वणिरुद्धाए उक्कड्डणा णत्थि । कारणं पुव्वं व वचच्वं ।

ॐ एत्थ आवल्लियाए असंखेज्जदिभागो जहरिणया अइच्छावणा ।

§ ५३०. एवं तिसमयुत्तरादिकमेण बंधउट्ठीए संतीए वि णत्थि चेषुकड्डणा जाव आवलि० असंखे०भागमेत्तो ण वड्ढिदो चि वुत्तं होइ । कुदो एवं ? एत्थ जहण्णा-इच्छावणाए आवलि० असंखे०भागमेत्तीए तासिं ड्ढिदीणमंतवभावदंसणादो ।

ॐ जदि जत्तिया जहरिणया अइच्छावणा तत्तिएण अब्भहिओ संतकम्मादो बंधो तिस्से वि संतकम्मअग्गहिदीए णत्थि उक्कड्डणा ।

§ ५३१. कुदो ? एत्थ जहण्णाइच्छावणाए संतीए वि तप्पडिवद्धजहण्णाणिकखेवस्स अज्ज वि संभवाणुवलंभादो । ण च णिकखेवविसएण विणा उक्कड्डणासंभवो अत्थि, विप्पडिसेहादो । सो पुण जहण्णाणिकखेवो केत्तियो इदि आसंकाए उत्तरमाह—

ॐ अएणो आवल्लियाए असंखेज्जदिभागो जहण्णाओ णिकखेवो ।

दोनोका अभाव है ।

\* यदि सत्कर्मसे बन्ध दो समय अधिक हो तो उस स्थितिमें भी सत्कर्मकी स्थितिका उत्कर्षण नहीं होता है ।

§ ५२९. यदि सत्कर्मसे दो समय अधिक स्थितिका बन्ध होता है तो उस बन्ध स्थितिमें भी पूर्वमें विवक्षित सत्कर्मकी अग्रस्थितिका स्वभावसे उत्कर्षण नहीं होता । कारणका कथन पहलेके समान करना चाहिये ।

\* यहाँ पर आवल्लिके असंख्यातवें भागप्रमाण जघन्य अतिस्थापना होती है ।

§ ५३०. इस प्रकार तीन समय अधिक आवल्लिके असंख्यातवें भाग तक बन्धकी वृद्धि होने पर भी उत्कर्षण नहीं होता है यह उक्त कथनका तात्पर्य है ।

शंका—ऐसा क्यों है ?

समाधान—क्योंकि यहाँ पर आवल्लिके असंख्यातवें भागप्रमाण जघन्य अतिस्थापनामें उन बन्ध स्थितियोंका अन्तर्भाव देखा जाता है ।

\* जितनी जघन्य अतिस्थापना है यदि सत्कर्मसे उतना अधिक बन्ध होवे तो भी उस वँधी हुई स्थितिमें सत्कर्मकी अग्रस्थितिका उत्कर्षण नहीं होता है ।

§ ५३१. क्योंकि यहाँ पर जघन्य अतिस्थापनाके होते हुए भी उससे सन्बन्ध रखनेवाला जघन्य निक्षेप अभी भी नहीं पाया जाता है । और निक्षेपविषयक बन्धस्थितिके बिना उत्कर्षण हो नहीं सकता है, क्योंकि इसके बिना उत्कर्षणका होना निषिद्ध है । परन्तु वह जघन्य निक्षेप कितना है ऐसी आशंकाके होनेपर उत्तरस्वरूप आगोका सूत्र कहते हैं—

\* एक अन्य आवल्लिके अखंख्यातवें भागप्रमाण जघन्य निक्षेप होता है ।

§ ५३२. जहण्णाइच्छावणाए उवरि पुणो वि आवलि० असंखे० भागमेत्तवंध-  
वुट्ठीए जहण्णणिकखेवंगंभवो होट्ति भणिदं होइ । मंघडि एत्तो प्पट्टडि उक्कट्टणासंभवो  
त्ति पटुप्पाएट्टुत्तरमुत्तावयागे—

⊙ जह जहणियायाए अहच्छावणाए जहणणण च षिकखेवेण एत्तिप-  
मेत्तेण संतकम्मादो अदिरित्तो वंधो सा संतकम्मअग्गट्ठिदी उक्कट्टिज्जदि ।

५३३. कुटो ? एत्थ जहण्णाइच्छावणा-णिकखेवाणमविकलमरुवेणोवलंभादो ।  
एत्तो उवरि नमयुत्तमादिकमेण जा वंधवुट्ठी ना किमहच्छावणाए अंतो णिवदइ आहो  
णिकखेवन्मे ति पुत्तए उत्तरमुत्ताह—

⊙ तदो समयुत्तरे वंधे षिकखेवो तत्तिओ चेव, अहच्छावणा वट्टुदि ।

५३४. कुटो एवं ? मच्चत्थ णिमोववुट्ठीए अहच्छावणावट्टिपुग्गस्सरत्तदंमणादो ।  
ना वुण अहच्छावणावुट्ठी उप्पिमया केत्तिया ति आमंकाए, नण्णिणणयक्कणट्टुत्तरमुत्तं—

⊙ एवं ताव अहच्छावणा वट्टुत्त जाव अहच्छावणा आवलिया जादा त्ति ।

५३५. ना जहण्णाइच्छावणा नमयुत्तमेण वंधवुट्ठीए वट्टमाणिया ताव  
वट्टुत्त जाव उक्कणियाइच्छावणा आवलिया मंघुण्णा जादा ति मुत्तत्थमंघंधो । एत्तो

५३८. जघन्य अतिस्थानाके उरर किं भी आर्थलिह अमंग्यात्थं भागप्रमाण घन्यकी  
वृद्धि होने पर जघन्य निक्षेपका होना सम्भव है यह उक्त जघन्यका तात्पर्य है । पथ इससे आगे  
उत्तरार्ध सम्भव है ऐसा जघन्य करनेके लिए आगेका सूत्र कहते हैं—

\* यदि मन्त्रकर्ममें जघन्य अतिस्थापना और जघन्य निक्षेपप्रमाण स्थितिवन्ध  
अधिक हो तो मन्त्रकर्मको उम अग्रस्थितिका उत्कर्षण होना है ।

५३३. क्योंकि वहाँ पर जघन्य अतिस्थापना और जघन्य निक्षेप अधिकतरूपसे पाये  
जाते हैं । अब इससे आगे जो एक एक समय अधिकसे क्रमसे घन्यकी वृद्धि होती है सो उसका  
अन्तर्भाव अतिस्थापनामें होगा है या निक्षेपमें ऐसी पृच्छाके होने पर उत्तरस्वरूप आगेका सूत्र  
कहते हैं—

\* तदनन्तर एक समय अधिक स्थितिवन्धके होनेपर निक्षेप उतना ही रहता है ।  
किन्तु अतिस्थापना वृद्धिको प्राप्त होती है ।

५३४. अंका—एसा क्यों है ?

समाधान—क्योंकि सर्वत्र अतिस्थापनाकी वृद्धिपूर्वक ही निक्षेपकी वृद्धि देखी जाती है ।

किन्तु यह अतिस्थापनाकी उत्कृष्ट वृद्धि, कितनी होती है ऐसी आशंका होने पर उसका  
निर्णय करनेके लिए आगेका सूत्र कहते हैं—

\* इस प्रकार अतिस्थापनाके एक आवलिप्रमाण होने तक उसकी वृद्धि  
होती रहती है ।

५३५. स्थितिवन्धकी वृद्धिके साथ यह जघन्य अतिस्थापना एक एक समय अधिकके  
क्रमसे बढ़ती हुई पूरी एक आवलिप्रमाण उत्कृष्ट अतिस्थापनाके प्राप्त होने तक बढ़ती जाती है यह

उवरि वि अइच्छावणा किण्ण वड्ढाविज्जे ? ण, पत्तपयरिसपजंताए पुण बुद्धि विरोहादो । एत्तो उवरि आवलियमेत्ताइच्छावणं धुवं काऊण समयुत्तरादिकमेण णिकखेवो वड्ढावेद्वयो त्ति परुवेदुमुत्तरसुत्तमाह—

❀ तेण परं णिकखेवो वड्ढइ जाव उक्कस्सओ णिकखेवो त्ति ।

§ ५३६. एत्थ ताव पुव्वणिरुद्धसंतकम्मअग्गट्ठिदीए उक्कस्सणिकखेववुड्ढी समयुत्तर-कमेण अइच्छावणावलिआहियहेट्ठिमअंतोकोडाकोडीपरिहीणकम्मट्ठिदिमेत्ता होइ । णवरि बंधावलिआए सह अंतोकोडाकोडी ऊणियव्वा । एसा च आदेसुक्कस्सिया । एत्तो हेट्ठिमाणं संतकम्मदुचरिमादिट्ठिदीणं समयाहियकमेण पच्छाणुपुव्वीए णिकखेववुड्ढी वत्तव्वा जाव ओपुक्कस्सणिकखेवं पत्ता त्ति । सो वुण ओपुक्कस्सओ णिकखेवो केत्तियमेत्तो होइ त्ति णिण्णयविहाणइं ताव पुच्छासुत्तमाह—

❀ उक्कस्सओ णिकखेवो को होइ ?

§ ५३७. सुगममेदं पुच्छासुत्तं ।

❀ जो उक्कस्सियं ठिदिं बंधियूणावलियमदिककंतो तसुक्कस्सयट्ठिदि-  
मोक्कड्डियूण उदयावलिपचाहिराए चिदियाए ठिदीए णिकखिचदि । वुण से

इस सूत्रका अभिप्राय है ।

शंका—इससे आगे भी अतिस्थापना क्यों नहीं बढ़ाई जाती है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि परम प्रकर्षको प्राप्त हो जाने पर फिर उसकी वृद्धि होनेमें विरोध आता है ।

इससे आगे आवलिप्रमाण अतिस्थापनाको ध्रुव करके एक एक समय अधिकके क्रमसे निक्षेपकी वृद्धि करनी चाहिये ऐसा कथन करनेके लिए आगेका सूत्र कहते हैं—

\* उससे आगे उत्कृष्ट निक्षेपके प्राप्त होनेतक निक्षेपकी वृद्धि होती है ।

§ ५३६. यहाँ पर पूर्वमें विवक्षित सत्कर्मकी अग्रस्थितिके उत्कृष्ट निक्षेपकी वृद्धि एक एक समय अधिकके क्रमसे होती हुई अतिस्थापनावलिसे अधिक जो अधस्तन अन्तःकोडाकोडी उससे हीन कर्मस्थितिप्रमाण होती है । किन्तु इतनी विशेषता है कि बन्धावलिके साथ अन्तःकोडाकोडीको कर्म करना चाहिये । यह आदेशसे उत्कृष्ट वृद्धि है । फिर इससे नीचेकी सत्कर्मकी द्विचरस आदि स्थितियोंकी एक एक समय अधिकके क्रमसे पश्चादात्तपूर्वकी अपेक्षा निक्षेपवृद्धि तब तक कहनी चाहिए जब तक वह ओषसे उत्कृष्ट निक्षेपको न प्राप्त हो जाय । किन्तु ओषकी अपेक्षा वह उत्कृष्ट निक्षेप कितना होता है ऐसा निर्णय करनेके लिए आगेका वृच्छासूत्र कहते हैं—

\* उत्कृष्ट निक्षेप कितना है ।

§ ५३७. यह वृच्छासूत्र सुगम है ।

\* जो उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेके बाद एक आवलिको विताकर उस उत्कृष्ट स्थितिका अपकर्षण करके उदयावलिके बाहर दूसरी स्थितिमें निक्षेप करता है । फिर

काले उदयावलियवाहिर अर्षांतरद्विदि पावेहिदि त्ति तं पदेसग्गमुक्कड्डियूण समयाहियाणं आवलियाणं ऊणियाणं अग्गद्विदीणं णिक्खिवदि । एस उक्कस्सओ णिक्खेवो ।

§ ५३८. जो मणिपर्वद्विदिपञ्चतो सागार-जागारचन्द्रमङ्गिकलेसेहि उपसदाहं गदो उक्कस्सद्विदि मत्तग्गिगागरोवमकोडाकोटियमाणार्वाच्छरणं वंधियूण वंधावलयमदित्तो तमुक्कस्सियं द्विदिमोकाड्डियूणदयावलयवाहिरपटमद्विदिणसेयादो विसेमहीणं विदियद्विदीणं णिमिचिय तदणंतरममं अर्षांतरवदित्तानममयपटमद्विदिमुदयावलयचन्तरं पवेसिय विदियद्विदि च पटमद्विदिचेण परिद्विय से काले तं च णिक्कद्विदि उदयावलयगचं पावेहिदि त्ति द्विदो तम्मि चैव ममं नदणंतरममयोक्कद्विदिपदेयग्गमुक्कड्डियावसेण तमालिय-णवकबंधपडिवद्भुत्तस्सद्विदीणं णिक्खिवमाणो पचग्गबंधपरमाणुणमभावेणुक्कस्सावाहमेत्त-मइच्छाविय तमावाहावाहिरपटमणसेयद्विदिमादिं कादणं ताव णिक्खिवदि जाव समयाहियावलय परिहीणा अग्गद्विदी । तम्म तदा णिक्खिवमाणरम उक्कस्सओ णिक्खेवो होइ । तम्म य पमाणं नमयाहियावलयचंभहियावाहापरिहीणउपरमक्कद्विदिमेत्तं जायदि त्ति एमो मुत्तन्थममात्तो ।

तदनन्तर समयमें उदयावलिके वाहर अनन्तरवर्ती स्थितिको प्राप्त होगा कि इस स्थितिके कर्मद्रव्यका उत्कर्षण करके उसका एक समय अधिक एक आवलिसे कम अग्रस्थितिमें निक्षेप करता है । यह उत्कृष्ट निक्षेप है ।

§ ५३९. जिन नदी पंचेन्द्रिच पनाम जीवने साकार स्वयंगसे उपयुक्त होकर जागृत प्रस्थानके रहते हुए सर्वोत्कृष्ट मन्वशेके कारण उत्कृष्ट शाहको प्राप्त होकर सत्तर कोड़ाकोही सागरप्रमाण उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध किया । फिर वन्धारलिके व्यतीत हो जानेपर उम उत्कृष्ट स्थितिना अपकर्षण करके उसे उदयारलिसे वाहरकी प्रथम स्थितिके निषेधसे विशेष हीन दूसरी स्थितिमें निक्षिप्त किया । फिर तदनन्तर समयमें अनन्तर पूर्व समयवर्ती स्थितिका उदयारलिके भीतर प्रवेश कराके और उस दूसरी स्थितिको प्रथम स्थितिरूपमें स्थापित करके तदनन्तर समयमें विचक्षित स्थितिको उदयारलिके भीतर प्राप्त करता, इस प्रकार स्थित होकर उभी समयमें इससे पूर्व समयमें अपकर्षणको प्राप्त हुए प्रदेशप्रका उत्कर्षणके बरासे उसी समय हुए नदीन बन्धसे सम्बन्ध रखनेवाली उत्कृष्ट स्थितिमें निक्षेप किया । यहाँ उम निक्षेपको, आशाधामं नदीन बन्धके परमाणुओंका अभाव होनेसे उत्कृष्ट आवाधाको अतिस्थापनारूपसे स्थापित करके आवाधाके वाहर प्रथम निषेधकी स्थितिसे लेकर एक समय अधिक एक आवलिसे न्यून अग्रस्थितिके प्राप्त होने तक करता है । इस तरह जो जीव इस प्रकारका निक्षेप करता है उसको उत्कृष्ट निक्षेप होता है । इस निक्षेपका प्रमाण समयाधिक आवलि और आवाधासे हीन उत्कृष्ट कर्मस्थितिप्रमाण उत्पन्न होता है । इस प्रकार यह सूत्रका तात्पर्य है ।

विज्ञेयार्थ—स्थितिसंक्रमण तीन प्रकारसे होता है । उनमें दूसरा प्रकार स्थितिउत्कर्षण है । सत्कर्मकी स्थितिके बहानेको स्थिति उत्कर्षण कहते हैं । यह भी व्याघात और अव्याघातके भेदमे दो प्रकारका है । जहाँ सत्कर्मसे नदीन स्थितिबन्ध एक आवलि और एक आवलिके अस्तित्वात्तवें



❀ एवमोकाङ्कुक्कङ्कुणाणमहपदं समत्तं ।

§ ५३९. सुगमं । एत्थावाहापरिहीणुक्कस्ससंकमे अट्टपदपरूवणा किण्ण कया ? ण, तत्थोकाङ्कुक्कङ्कुणासु व जहण्णुक्कस्साइच्छावणा-णिक्खेवादिविसेसाणमसंभवेण सुगमत्तवुद्धीए तदपरूवणादो । संपहि एवं परूविदमट्टपदमवलंवणं काऊण द्विदिसंकमं परूवेदुकामो सुत्तमुत्तरमाह—

एत्तो अद्दाछेदो । जहा उक्कस्सियाए ढिदीए उदीरणा तथा उक्कस्सओ द्विदिसंकमो ।

§ ५४०. अप्पणासुत्तमेदं, उक्कस्सद्विदिउदीरणापसिद्धस्स धम्मस्स मूलुत्तरपयडि-भेयभिण्णद्विदिसंकमुक्कस्सद्दाच्छेदे समप्पणादो । संपहि उत्तरपयडिविसयमेदमप्पणासुत्त मेवं चेव थप्पं काऊण ताव सुत्तेणेदेण सूचिदं मूलपयडिद्विदिसंकमविसयं किंचि परूवणं वत्तइस्सामो । तं जहा—मूलपयडिद्विदिसंकमे तत्थ इमाणि तेवीसमणियोगद्वाराणि

भाग अधिकके भीतर होनेके कारण अतिस्थापना एक आवलिले कम पाई जाती है वहाँ व्याघात विषयक उत्कर्षण होता है और जहाँ एक आवलिप्रमाण अतिस्थापनाके साथ निक्षेप कमसे कम आवलिके असंख्यातवें भागके होनेमें किसी प्रकारका व्याघात नहीं पाया जाता है वहाँ अव्याघात-विषयक अतिस्थापना होती है । अव्याघातविषयक उत्कर्षणमें अतिस्थापना कमसे कम एक आवलिप्रमाण और अधिकसे अधिक उत्कृष्ट आवाधाप्रमाण होती है । तथा निक्षेप कमसे कम आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण और अधिकसे अधिक उत्कृष्ट आवाधा और एक समय अधिक एक आवलिले न्यून उत्कृष्ट कर्मस्थितिप्रमाण होता है । व्याघातविषयक जघन्य अतिस्थापना कमसे कम आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण और अधिकसे अधिक एक समय कम एक आवलिप्रमाण होती है । तथा निक्षेप मात्र आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण होता है ।

\* इस प्रकार अपकर्षण और उत्कर्षणका अर्थपद समाप्त हुआ ।

§ ५३६. यह सूत्र सुगम है ।

शंका—यहाँ पर आवाधासे हीन उत्कृष्ट संक्रमके विषयमें अर्थपदका कथन क्यों नहीं किया ?

समाधान—नहीं, क्योंकि वहाँ पर अपकर्षण और उत्कर्षणके समान जघन्य और उत्कृष्ट अतिस्थापना व निक्षेप आदि विशेषोंका पाया जाना सम्भव न होनेसे सुगम समझकर उत्कृष्ट संक्रमके विषयमें अर्थपदका कथन नहीं किया ।

अब इस प्रकार कहे गये अर्थपदका अबलम्बन लेकर स्थितिसंक्रमके कथन करनेकी इच्छासे आगेका सूत्र कहते हैं—

\* अब इससे आगे अद्दाछेदका प्रकरण है—जिस प्रकार उत्कृष्ट स्थितिकी उदीरणा होती है उसी प्रकार उत्कृष्ट स्थितिसंक्रम जानना चाहिये ।

§ ५४०. यह अर्पणासूत्र है; क्योंकि इस द्वारा उत्कृष्ट स्थितिकी उदीरणामे प्रसिद्ध हुए धर्मका मूल और उत्तर प्रकृतियोंके भेदसे अनेक प्रकारके स्थितिसंक्रमके उत्कृष्ट अद्दाच्छेदमें समर्पण किया गया है । अब उत्तरप्रकृतिविषयक इसी प्रकारके इस अर्पणासूत्रको स्थगित करके सर्व प्रथम इस सूत्रके द्वारा सूचित होनेवाले मूलप्रकृतिविषयक स्थितिसंक्रमका कुछ कथन करते हैं । यथा—मूलप्रकृतिस्थितिसंक्रमके विषयमें अद्दाच्छेदसे लेकर अल्पवहस्य तक ये तेईस अनुयोद्धार

अद्वाच्छेदो जाव अप्पावहुगे चि । तदो भुजगार-पदणिकखेव-वट्टि-ट्टाणाणि च कायव्वाणि ।

§ ५४१. तत्थ दुविहो अद्वाच्छेदो जहण्णुक्कस्सभेदेण । उक्क० पयदं । दुविहो णिहेसो ओघादेसभेदेण । तत्थोषेण मोह० उक्क० द्विदिसंक्रमे अद्वाच्छेदो सत्तरिसागरोवम-कोडाकोडीओ दोहि आवलियाहि ऊणियाओ । एवं चटुसु वि गदीसु । णवरि पंचिदिय-तिरिक्खअपज्ज०-मणुसअपज्ज० उक्क० द्विदिसंक्रम० सत्तरिसा०कोडाकोडीओ अंतो-मुहुत्तणाओ । आणादादि जाव सन्वट्टा चि मोह० उक्क० द्विदिसं० अंतोकोडाकोडीए । एवं जाव० ।

§ ५४२. जहण्णए पयदं । दुविहो णिहेमो—ओषेण आदेसेण य । ओषेण मोह० जह० द्विदिसंक्रम० अद्वाच्छेदो एया ट्टिदी । सा पुण समयाहियावलियाए उवरिसा होइ । एवं मणुसतिए । आदेसेण णेरइय० मोह० जह० द्विदिसं० अद्वा० सागरोवम-

होते हैं । फिर भुजगार, पदनिक्षेप, वृद्धि और स्थान इनका कथन करना चाहिये ।

§ ५४१. प्रकृतमें जघन्य और उत्कृष्टके भेदसे अद्वाच्छेद दो प्रकारका है । उत्कृष्टका प्रकरण है । उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओषनिर्देश और आदेशनिर्देश । उनमेंसे ओषकी अपेक्षा मोहनीयका उत्कृष्ट स्थितिसंक्रम अद्वाच्छेद दो आवलिकम सत्तर कोडाकोडी सागरप्रमाण है । इसी प्रकार चारों ही गतियोंमें जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि पंचेन्द्रियतिर्यञ्च अपर्याप्त और मनुष्य अपर्याप्त जीवोंमें उत्कृष्ट स्थितिसंक्रम अद्वाच्छेद अन्तर्मुहूर्तकम सत्तर कोडाकोडी सागरप्रमाण है । तथा आनतसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें मोहनीयका उत्कृष्ट स्थितिसंक्रम अद्वाच्छेद अन्तःकोडाकोडीप्रमाण है । इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिये ।

**विशेषार्थ**—तत्काल धैत्रे हुए कर्मका बन्धावलिके बाद संक्रम होता है । उसमें भी जो कर्म उदयावलिके भीतर अवस्थित है उसका संक्रम नहीं होता, किन्तु उदयावलिके बाहर अवस्थित कर्मका ही संक्रम होता है । इसीसे प्रकृतमें मोहनीयका उत्कृष्ट स्थितिसंक्रम अद्वाच्छेद दो आवलिकम सत्तर कोडाकोडी सागरप्रमाण बतलाया है । यतः मोहनीयका उत्कृष्ट स्थितिवन्ध चारों गतियोंमें होता है, अतः चारों गतियोंमें यह उत्कृष्ट अद्वाच्छेद प्राप्त हो जाता है । ऐसा नियम है कि अपर्याप्त अवस्थामें उत्कृष्ट स्थितिवन्ध नहीं होता । किन्तु जो जीव उत्कृष्ट स्थितिवन्ध करके और अन्तर्मुहूर्तके भीतर मर कर अपर्याप्त अवस्था प्राप्त कर लेता है उसके अपर्याप्त अवस्थामें अन्तर्मुहूर्तकम उत्कृष्ट स्थिति अद्वाच्छेद पाया जाता है । इसीसे प्रकृतमें पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्त और मनुष्य अपर्याप्त जीवोंमें उत्कृष्ट स्थितिसंक्रम अद्वाच्छेद अन्तर्मुहूर्तकम सत्तर कोडाकोडी सागर प्रमाण बतलाया है । तथा आनतादिमें उत्कृष्ट स्थिति किसी भी हालतमें अन्तःकोडाकोडीसे अधिक नहीं होती । इसीसे वहाँ उत्कृष्ट स्थितिसंक्रम अद्वाच्छेद अन्तःकोडाकोडीप्रमाण बतलाया है । इसी प्रकार आगेकी मार्गणाओंमें उत्कृष्ट स्थितिका विचार करके उत्कृष्ट स्थितिसंक्रम अद्वाच्छेद ले जाना चाहिये ।

§ ५४२. अब जघन्यका प्रकरण है । उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओषनिर्देश और आदेशनिर्देश । ओषसे मोहनीयका जघन्य स्थितिसंक्रम अद्वाच्छेद एक स्थितिप्रमाण है । किन्तु वह स्थिति एक समय अधिक एक आवलितसे ऊपरकी होती है । इसी प्रकार मनुष्यत्रिकमें जानना चाहिये । आदेशकी अपेक्षा नारकियोंमें मोहनीयका जघन्य स्थितिसंक्रम अद्वाच्छेद एक

सहस्सस्स सत्त-सत्तभागा पल्लिदो० संखे० भागूणा । एवं पढमपुढवि देव०-भवण० वाणवेतरा  
त्ति । विदियादि जाव सत्तमा त्ति मोह० जह० द्विदिसं० अद्धा० अंतोकोडा० । एवं  
जोदिसियपहुडि जाव सच्चट्टा त्ति । सच्चतिरिक्ख-मणुसअपज्ज० मोह० जह० द्विदि०-  
अद्धा० सागरोवमं पल्लिदो० असंखे० भागूणयं । एवं जाव० ।

§ ५४३. सच्च-णोसच्च-उक्कस्साणुक्कस्स-जहण्णाजहण्णद्विदिसं० माणमोघादेसपरू-  
वणाए द्विदिविहत्तिभंगो ।

§ ५४४. सादिअणादि-धुवअद्धुवाणुगमेण दुविहो णिहेसो—ओघेण आदेसेण  
य । ओघेण मोह० उक्क०-अणुक्क०-जह० द्विदिसं० माए किं सादिया ४ ? सादि-अद्धुवा ।  
अजहण्णद्विदिसं० किं सादि० ४ ? सादी अणादी धुवो अद्धुवो वा । आदेसेण सच्च-  
मग्गणासु उक्क०-अणुक्क०-जह०-अजहण्णसं० का० किं सादि० ४ ? सादि-अद्धुवा ।

हजार सागरके सात भागोंमेंसे पत्यका संख्यातवाँ भागकम सात भागप्रमाण है । इसी प्रकार प्रथम  
पृथिवीके नारकी, सामान्य देव, भवनवासी और व्यन्तर देवोंमें जानना चाहिये । दूसरी पृथिवीसे  
लेकर सातवाँ पृथिवी तकके नारकियोंमें मोहनीयका जघन्य स्थितिसंक्रम अद्धाच्छेद अन्तःकोडा-  
कोडीप्रमाण है । इसी प्रकार ज्योतिषियोंसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें जानना चाहिये । सब  
तिर्यञ्च और मनुष्य अपर्याप्तकोंमें मोहनीयका जघन्य स्थितिसंक्रम अद्धाच्छेद पत्यका असंख्यातवाँ  
भाग कम एक सागर प्रमाण है । इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिये ।

विश्लेषार्थ—आगे जघन्य स्वामित्वका निर्देश किया है । उसे ध्यानमें रखकर यह अद्धाच्छेद  
घटित कर लेना चाहिये । विशेष वक्तव्य न होनेसे यहाँ पर उसका अलगसे स्पष्टीकरण नहीं  
किया है ।

§ ५४३. सर्व, नोसर्व, उत्कृष्ट, अनुत्कृष्ट, जघन्य और अजघन्य इन सब स्थितिसंक्रमोंका  
ओघ और आदेशकी अपेक्षासे कथन जैसा स्थितिविभक्तिके समय कर आये हैं उसी प्रकार यहाँ  
भी करना चाहिये ।

§ ५४४. सादि, अनादि, ध्रुव और अध्रुवानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और  
आदेश । ओघकी अपेक्षा मोहनीयका उत्कृष्ट अनुत्कृष्ट और जघन्य स्थितिसंक्रम क्या सादि है,  
क्या अनादि है, क्या ध्रुव है या क्या अध्रुव है ? सादि और अध्रुव है । अजघन्य स्थितिसंक्रम  
क्या सादि है, क्या अनादि है, क्या ध्रुव है या क्या अध्रुव है ? सादि, अनादि, ध्रुव और अध्रुव  
है । आदेशकी अपेक्षा सब मार्गणाओंमें उत्कृष्ट, अनुत्कृष्ट, जघन्य और अजघन्य स्थितिसंक्रम  
क्या सादि है, क्या अनादि है, क्या ध्रुव है या क्या अध्रुव है ? सादि और अध्रुव है ।

विश्लेषार्थ—ओघसे उत्कृष्ट, अनुत्कृष्ट और जघन्य स्थितिसंक्रम अद्धाच्छेद कदाचित् होते  
हैं यह स्पष्ट ही है, इसलिए इन्हें सादि और अध्रुव कहा है । किन्तु चपकश्रेणियोंमें जघन्य स्थिति-  
संक्रम अद्धाच्छेद होनेके पूर्व अजघन्य स्थितिसंक्रम अद्धाच्छेद अनादि कालसे होता आ रहा है,  
इसलिए तो इसे अनादि कहा है तथा, चायिकसन्त्यग्दृष्टि उपशामकके उपशामश्रेणियोंमें जघन्य  
स्थितिसंक्रम अद्धाच्छेद होनेके बाद उत्तरते समय अजघन्य स्थितिसंक्रम अद्धाच्छेद सादि होता है,  
इसलिए इसे सादि कहा है । और भव्योंके यह अध्रुव तथा अभव्योंके ध्रुव होता है, इसलिए  
इसे ध्रुव और अध्रुव कहा है । इस प्रकार अजघन्य स्थितिसंक्रम अद्धाच्छेद चारों प्रकारका बन  
जाता है यह स्पष्ट ही है । शेष कथन सुगम है ।

§ ५४५. सामित्तं द्रुविहं—जह० उफ० । उक्त्से पयदं । द्रुविहो णिहेसो—  
ओघेण आदेसेण य । ओघेण मोह० उक्त्से उक्त्से द्विदिग्गं करम ? अण्णद० मिच्छा०  
उक्त्से द्विदिग्गं वंधिदृणावलियादीदं संकामेमाणस्स । एवं चउगदीसु । णवरि पंचि०तिरिक्ख-  
अपज्ज०-मणुमअपज्ज०-आणटादि जाव मच्चट्ठा चि द्विदिग्गिहत्तिभंगो । एवं जाव० ।

§ ५४६. जहण्णए पयदं । द्रुविहो णिहेसो—ओघेण आदेसेण य । ओघेण मोह०  
जह० द्विदिग्गं करम ? मययम्म समयाहियावलियचग्गिसमयमंकायस्स । एवं  
मणुमतिण० । आदेसेण पेउय० मोह० जह० द्विदिग्गं करम ? अण्णदस्स असाण्णि-  
पच्छायददुममयाहियावलियत्तभवत्थस्स । एवं पटमाए देव-भवण०-वाणवेंतरा चि ।  
विदियादि जाव सत्तमा चि द्विदिग्गिहत्तिभंगो । णवरि सत्तमाए ममद्विदिग्गं वंधिदृणावलि-  
यादीदस्स सामित्तं वत्तव्वं । निरिक्खेसु विहत्तिभंगो । णवरि ममद्विदिग्गं वंधिदृणावलि-  
यादीदस्स मामित्तं दादव्वं । सच्चपंचिदियतिरिक्ख-मणुमअपज्ज० मोह० जह० द्विदिग्गं  
करम ? अण्णदस्स हदममपचित्तियं कादृणागदवादरेउंदियपच्छायदस्स आवलिय-  
उववण्णल्लयस्स । जोदिमियप्पट्टि जाव मच्चट्ठे चि द्विदिग्गिहत्तिभंगो । एवं जाव० ।

§ ५४७. रामित्तं दो प्रकारका है—जघन्य और उच्छृष्ट । उच्छृष्टता प्रकरण है । निर्देश दो  
प्रकारका है—ओषनिर्देश और आदेशनिर्देश । ओषकी अपेक्षा मोहनीयका उच्छृष्ट स्थितिसंक्रम  
क्रियते होता है । जो भिन्नाष्टि जीव उच्छृष्ट स्थितिवा दन्ध करके एक आवलिके बाद उसका  
संक्रम करता है, उसके होता है । इसी प्रकार चारों गतिधर्मों जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता  
है कि पंचेन्द्रिय तिर्यक्ष अपर्याप्त, मनुष्य अपर्याप्त और आनतसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें  
उच्छृष्ट स्थितिसंक्रमके रामित्तरका कथन स्थितिभिक्तिके समान है । इसी प्रकार अनाहारक  
भार्याण तक जानना चाहिये ।

§ ५४८. जघन्यप्रकरण है । निर्देश दो प्रकारका है—ओषनिर्देश और आदेशनिर्देश ।  
ओषकी अपेक्षा मोहनीयका जघन्य स्थितिसंक्रम किसके होता है ? जो क्षणिक एक समय अधिक एक  
आवलिके शेष रहते हुए उसके अन्तिम समग्रमें मोहनीयका संक्रम कर रहा है, उसके जघन्य स्थिति-  
संक्रम होता है । इसीप्रकार मनुष्यत्रिकमें जानना चाहिए । आदेशकी अपेक्षा नारक्तियोंमें मोहनीयका  
जघन्य स्थितिसंक्रम किसके होता है ? जिस अर्थमें पंचेन्द्रियका मर कर नारक्तियोंमें उत्पन्न हुए  
दो समय अधिक एक आवलि हुआ है उसके होता है । इसी प्रकार प्रथम पृथिवीके नारकी, देव,  
भवनवासी देव और व्यन्तर देवोंमें जानना चाहिए । दूसरी पृथिवीसे लेकर सातवीं पृथिवी  
तकके नारक्तियोंमें स्वामित्वका स्थितिविभक्तिके समान है । किन्तु इतनी विशेषता है कि सातवीं  
पृथिवीमें सत्त्वके समान स्थितिवन्ध करके बाद जिसे एक आवलि पाल व्यतीत हुआ है उसके  
मोहनीयके स्थितिसंक्रमका जघन्य स्वामित्व करना चाहिये । तिर्यक्षोंमें रामित्तरका भंग स्थितिविभक्ति  
के समान है । किन्तु इतनी विशेषता है कि जिसे सत्त्वके समान स्थिति बांधनेके बाद एक आवलि  
काल व्यतीत हुआ है उसे मोहनीयके स्थितिसंक्रमका जघन्य स्वामित्व देना चाहिये । सब पंचेन्द्रिय  
तिर्यक्ष और मनुष्य अपर्याप्तकोंमें मोहनीयका जघन्य स्थितिसंक्रम किसके होता है ? जिस बाद  
पंचेन्द्रियको हतसमुत्पत्ति करनेके बाद मर कर एक जीवोंमें उत्पन्न हुए एक आवलि काल हुआ है  
उसके होता है । ज्योतिषी देवोंसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें जघन्य स्वामित्वका भंग स्थिति-  
विभक्तिके समान है । इसी प्रकार अनाहारक भार्याण तक जानना चाहिये ।

**विशेषार्थ—**उत्कृष्ट स्थितिसंक्रम दो आवलिकम सत्तर कोडाकोडीसागरप्रमाण होता है जो बन्धावलिके बाद अनन्तर समयमें उस जीवके प्राप्त होता है जिसने मोहनीयका उत्कृष्ट स्थिति-बन्ध किया है। इसीसे यहाँ पर उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करके एक आवलिके बाद उत्कृष्ट स्थिति संक्रमका स्वामी बतलाया है। यह अवस्था चारों गतियोंके जीवोंमें प्राप्त होती है इस लिये चारों गतियोंमें उत्कृष्ट स्वामित्वके कथन करनेकी शोधके समान सूचना की है। किन्तु पंचेन्द्रिय तिर्यच अपर्याप्त, मनुष्य अपर्याप्त और आनतसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देव ये मार्गणाएँ उक्त व्यवस्थाकी अपवाद हैं। इन मार्गणाओंमें आदेश उत्कृष्ट स्थितिबिभक्तिके स्वामित्वके समान ही आदेश उत्कृष्ट स्थितिसंक्रमका स्वामित्व प्राप्त होता है, अतः इन मार्गणाओंमें उत्कृष्ट स्थितिसंक्रमके स्वामित्वको उत्कृष्ट स्थितिबिभक्तिके स्वामित्वके समान जाननेकी सूचना की है। इसी प्रकार इन्द्रिय आदि शेष मार्गणाओंमें भी उत्कृष्ट स्वामित्व घटित कर लेना चाहिये। यह तो उत्कृष्ट स्वामित्वके कथनका खुलासा हुआ। अब जघन्य स्वामित्वके कथनका खुलासा करते हैं—जिस क्षणके सूक्ष्म लोभका सत्त्व एक समय अधिक एक आवलिप्रमाण शेष रहा है उसके उदयावलिके ऊपरकी एक समय प्रमाण स्थितिका अपकर्षण होकर एक समयकम आवलिके एक समय अधिक त्रिभागमें निक्षेप होता है। यह जघन्य संक्रम है, इसलिये इसका स्वामी उस क्षणके सूक्ष्मसम्पराय संयतको बतलाया है जिसके दसवें गुणस्थानका एक समय अधिक एक आवलिप्रमाण काल शेष है। यह ओच ग्रहणणा सामान्य, पर्याप्त और मनुष्यनी इन तीन प्रकारके मनुष्योंमें अविकल घटित हो जाती है, इसलिए इन मार्गणाओंमें स्वामित्वका कथन शोधके समान किया है। जो असंज्ञी पंचेन्द्रिय जीव दो विग्रहसे नरकमें उत्पन्न होता है उसके यद्यपि शरीर ग्रहण करने पर संज्ञी पंचेन्द्रियके योग्य स्थितिवन्ध होने लगता है तथापि शरीर ग्रहण करनेके समयसे लेकर एक आवलि काल तक नवीन बन्धका संक्रम नहीं होता, इसलिये इसे नरकमें दो समय अधिक एक आवलिकालके अन्तिम समयमें जघन्य स्थितिसंक्रमका स्वामी बतलाया है। यह असंज्ञी जीव प्रथम पृथिवीके नारकी, सामान्य देव, भवनवासी और व्यन्तर इन चार मार्गणाओंमें उत्पन्न होता हुआ देखा जाता है इसलिये इनमें जघन्य स्थितिसंक्रमके स्वामित्वका कथन सामान्य नारकियोंके समान किया है। दूसरी पृथिवीसे लेकर छठी पृथिवी तकके नारकियोंमें जिनके जघन्य स्थिति प्राप्त होती है वहाँके जघन्य स्थितिसंक्रम प्राप्त होता है, इसलिये इन मार्गणाओंमें जघन्य स्थितिसंक्रमके स्वामित्वको जघन्य स्थितिबिभक्तिके स्वामित्वके समान बतलाया है। किन्तु सातवीं पृथिवीमें कुछ विशेषता है। बात यह है कि सातवीं पृथिवीमें जघन्य स्थिति उस जीवके होती है जो उत्कृष्ट आयु लेकर उत्पन्न हुआ और जिसने अन्तर्मुख कालके पश्चात् उपशमसम्यक्त्वपूर्वक अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना की है। फिर आयुमें अन्तर्मुख शेष रहने पर मिथ्यात्वमें जाकर जिसने कुछ काल तक स्थितिसत्त्वसे कम स्थितिवन्ध किया है। तथापि ऐसे जीवके जघन्य स्थितिसंक्रम प्राप्त करना सम्भव नहीं है, इसलिये जब यह जीव स्थिति सत्त्वके समान स्थितिवन्ध करता है तब इसके एक आवलि कालके बाद जघन्य स्थितिसंक्रम होता है। यहाँ एक आवलिके अन्तमें जघन्य स्थितिसंक्रम इसलिये ग्रहण किया गया है, क्योंकि इतना काल व्यतीत होने पर स्थितिसंक्रममें घतनी कमी देखी जाती है। इसीप्रकार तिर्यच्चोंमें भी समान स्थितिका बन्ध करके एक आवलिके बाद जघन्य स्वामित्वको प्राप्त करना चाहिये। तिर्यच्चोंमें यह जघन्य स्वामित्व हतसमुत्पत्तिक एकेन्द्रियके प्राप्त होता है। यहाँ इतना विशेष जानना चाहिये कि हतसमुत्पत्तिक वादर एकेन्द्रियका अपनी स्थितिके साथ सब पंचेन्द्रिय तिर्यच्च और मनुष्य अपर्याप्तकोंमें उत्पन्न होना शक्य है, इसलिये इन मार्गणाओंमें उक्त प्रकारके उत्पन्न हुए जीवके एक आवलिके अन्तमें जघन्य स्वामित्वका विधान किया है। तथा ज्योतिषी देवोंसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें जघन्य

६ ५४७. कालानुगमेण दुविहो णिहेसो जहण्णुक्खस्सभेएण । तत्थुक्खस्से ताव पयदं । दुविहो णिहेसो—ओघेण आदेसेण य । ओघेण मोह० उक्क० द्विदिसं० केव० ? जह० एगसमओ, उक्क० अंतोमु० । अणुक्क० द्विदिसं० जह० अंतोमु०, उक्क० अणंत-कालमसंखेज्जा पोग्गलपरियट्ठा ।

६ ५४८. आदेसेण णेरइय० मोह० उक्क० द्विदिसं० ओघमंगो । अणुक्क० जह० एयसमओ, उक्क० तेचीसं सागरोवमाणि । एवं सच्चणेरइय०-तिरिक्ख०-पंचिदिय-तिरिक्खतिए३ मणुसतिय३-देवा भवणादि जाव सहस्सार त्ति । णवरि अणु० उक्क० सगट्ठिदी । पंचि०तिरि०अपज्ज०-मणुसअपज्ज० मोह० उक्क० द्विदिसं० जह० उक्क० एयसमओ । अणु० जह० खुदा० समगृणं, उक्क० अंतोमु० । आणदादि जाव सच्चट्ठे त्ति मोह० उक्क० द्विदिसं० जहण्णुक्क० एयम० । अणु० जह० जहण्णट्ठिदी समयूणा, उक्क० उक्क०ट्ठिदी संपुण्णा । एवं जाव० ।

स्थितिभिक्तियालेके ही जघन्य स्थितिसंक्रमका स्वामित्य प्राप्त होता है, इसलिए इन मार्गशाओंमें जघन्य स्थितिसंक्रमका स्वामित्य जघन्य स्थितिभिक्तिके स्वामित्यके समान कहा है । गति मार्गशांमें जिस प्रकार जघन्य स्वामित्यका निर्देश किया है उसी प्रकार वह अनाहारक मार्गणा तक यथायोग्य घटित कर प्राप्त किया जा सकता है, इसलिए उसका अलगसे पथ न करके संकेतमात्र कर दिया है ।

६ ५४७. कालानुगमकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्टके भेदसे निर्देश दो प्रकारका है । उनमेंसे उत्कृष्टका प्रकरण है । निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश आदेशनिर्देश । ओघकी अपेक्षा मोहनीयके उत्कृष्ट स्थितिसंक्रमका कितना काल है ? जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । अनुत्कृष्ट स्थितिसंक्रमका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल अन्तर्काल है जो असंख्यात पुद्गलपरिवर्तनप्रमाण है ।

विशेषार्थ—मोहनीयकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिका काल उक्त प्रमाण होनेसे यहाँ उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिसंक्रमका भी काल उक्त प्रमाण बतलाया है ।

६ ५४८. आदेशकी अपेक्षा नारकियोंमें मोहनीयके उत्कृष्ट स्थितिसंक्रमका काल ओघके समान है । अनुत्कृष्ट स्थितिसंक्रमका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल तेतीस सागर है । इसी प्रकार सब नारकी, तिर्यञ्च, पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चत्रिक, मनुष्यत्रिक, देव और भवनवासी देवोंसे लेकर सहस्रार कल्प तकके देवोंमें जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि इनमें अनुत्कृष्ट स्थितिसंक्रमका उत्कृष्ट काल अपनी अपनी स्थितिप्रमाण है । पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्त और मनुष्य अर्यान्तर्गमें मोहनीयके उत्कृष्ट स्थितिसंक्रमका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । अनुत्कृष्ट स्थितिसंक्रमका जघन्य काल एक समय कम लुप्त भवग्रहणप्रमाण है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । आनससे लेकर सर्वार्थसिद्धितकके देवोंमें मोहनीयके उत्कृष्ट स्थितिसंक्रमका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । अनुत्कृष्ट स्थितिसंक्रमका जघन्य काल एक समय कम जघन्य स्थितिप्रमाण है और उत्कृष्ट काल पूरी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है । इसीप्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिये ।

विशेषार्थ—जो ओघसे उत्कृष्ट स्थितिसंक्रम और उसका काल बतलाया है । उसका नरकमें पाया जाना सम्भव है इसलिये नारकियोंमें भी उत्कृष्ट स्थितिसंक्रमका काल ओघके समान कहा

§ ५४९. जहण्णे पयदं । दुविहो णिहेसो—ओषेण आदेसेण य । ओषेण मोह० जह० द्विदिसंफ० केव० । जहण्णुक० एयसमओ । अज० तिण्णि मंगा । तत्थ जो सो सादिओ सपञ्जवासिदो तस्स जह० अंतोमुहुत्तं, उक्क० तेत्तीसं सागरो० देसणदोपुव्वकोडीहि सादिरेयाणि ।

है । जो नारकी मरनेके पूर्व समयमें उत्कृष्ट स्थितिका संक्रम करके अन्तिम समयमें अनुत्कृष्ट स्थितिका संक्रम करता है उसके अनुत्कृष्ट स्थितिसंक्रमका जघन्य काल एक समय पाया जाता है । तथा जो नारकी तेतीस सागर तक उत्कृष्ट स्थितिका बन्धन करके अनुत्कृष्ट स्थितिका बन्धन करता रहता है उसके अनुत्कृष्ट स्थितिसंक्रमका उत्कृष्ट काल तेतीस सागर पाया जाता है । इसीसे यहाँ अनुत्कृष्ट स्थितिसंक्रमका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल तेतीस सागरप्रमाण कहा है । आगे सब नरकोंके नारकी आदि और जितनी मार्गणाओंका निर्देश किया है उनमें और सब काल तो पूर्ववत् घटित हो जाता है किन्तु अनुत्कृष्ट स्थितिसंक्रमका उत्कृष्ट काल जुदा-जुदा प्राप्त होता है, क्योंकि इन मार्गणाओंका अवस्थान काल भिन्न-भिन्न प्रकारका है । इसीलिये इन मार्गणाओंमें इस अपवादके साथ शेष कथनका निर्देश सामान्य नारकीयोंके समान किया है । पंचेन्द्रिय तिर्यक् अपर्याप्त और मनुष्य अपर्याप्त इन दो मार्गणाओंमें उत्कृष्ट स्थितिसंक्रम उन जीवोंके होता है जो अन्य गतिमें उत्कृष्ट स्थितिका बन्धन करके अन्तर्मुहूर्त बाद इन मार्गणाओंमें उत्पन्न हुए हैं । यतः इनके उत्कृष्ट स्थिति एक समय तक ही पाई जा सकती है, अतः इनके उत्कृष्ट स्थिति संक्रमका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा है । तथा इन मार्गणाओंमें अनुत्कृष्ट स्थिति कमसे कम एक समय कम खुदाभवग्रहणप्रमाण और अधिकसे अधिक अन्तर्मुहूर्तप्रमाण पाई जाती है, अतः इनमें अनुत्कृष्ट स्थितिसंक्रमका जघन्य काल एक समय कम खुदाभवग्रहणप्रमाण और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्तप्रमाण कहा है । आन्तादिकमें भी उत्कृष्ट स्थिति एक समय तक और अनुत्कृष्ट स्थिति कमसे कम एक समय कम अपनी-अपनी जघन्य आयु तक और अधिकसे अधिक उत्कृष्ट आयु तक पाई जा सकती है । इसीसे इन मार्गणाओंमें उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिसंक्रमका जघन्य और उत्कृष्टकाल उक्तप्रमाण कहा है । आगेकी मार्गणाओंमें भी इसी प्रकार यथायोग्य कालका विचार कर लेना चाहिये ।

§ ५४९. अब जघन्यका प्रकरण है । निर्देश दो प्रकारका है—ओषनिर्देश और आदेश-निर्देश । ओषकी अपेक्षा मोहनीयके जघन्य स्थितिसंक्रमका कितना काल है ? जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । अजघन्य स्थितिसंक्रमके तीन भंग हैं । उनमें जो सादि-सान्त भंग है उसकी अपेक्षा जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल कुछ कम दो पूर्वकोटि अधिक तेतीस सागर है ।

विशेषार्थ—क्षपक जीवके सूक्ष्म लोभका सत्त्व एक समय अधिक एक आवलि प्रमाण रह जाने पर उसका अपकर्षण एक समय तक ही होता है इसीसे मोहनीयके जघन्य स्थितिसंक्रमका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा है । अजघन्य स्थितिसंक्रमके अनादि-अनन्त, अनादि-सान्त और सादि-सान्त ये तीन विकल्प होते हैं । पहिला विकल्प अभव्योंके होता है, क्योंकि उन्हें जघन्य स्थितिसंक्रमकी प्राप्ति कभी भी सम्भव नहीं है । दूसरा विकल्प भव्योंके होता है, क्योंकि उनके अनादि कालसे यद्यपि अजघन्य स्थितिसंक्रमका क्रम चला आ रहा है पर कालान्तरमें उसका अन्त देखा जाता है । तीसरा विकल्प उन क्षायिक सत्यग्रहादि भव्योंके होता है जिन्होंने उपशमश्रेणि पर चढ़ असंक्रामक होकर उतरते हुए सूक्ष्मलोभ गुणस्थानमें इसका प्रारम्भ किया है ।

१५२०. आदेशेण भेइय० मोह० जह० द्विदि० जह० उफ० एयममओ ।  
 अज० जह० समयाहियावलिवा, उफ० तेचीगं सागरोवमार्णि । एवं पटमाए । णवरि  
 सगद्धिदी । विदियादि जाव सत्तमि नि जह० जहण्णुगः० एयसमओ । अज० जह०  
 जहण्णद्धिदी, उफ० उफस्सद्धिदी । णवरि सत्तमीए जह० जहण्णेयसमओ, उफ०  
 अंतोमु० । अज० जह० अंतोमु०, उफ० सगद्धिदी ।

यह मादि-सान्त विषय जघन्य और उत्कृष्टके भेदसे जो प्रकारवा है । इनमेंसे जघन्य विकल्प उन  
 जीवके होना है जो चायिक सम्यग्दर्शि जीव अन्तर्मुहूर्तके भीतर दो धार धंगि पर चढ़े हैं । इसीसे  
 मादि-सान्त विकल्पवा जघन्य काल अन्तर्मुहूर्तके है । तथा मादि-सान्त विषयका जो उत्कृष्ट  
 भेद है सो उसका काल जो कुछ कम दो पूर्वोक्ति अधिक तेनीस सागर कटा है सो यह चायिक  
 सम्यग्दर्शनके उत्कृष्ट कालकी अपेक्षामें कटा है । यहाँ चायिक सम्यग्दर्शनके उत्कृष्ट कालके प्रारम्भमें  
 उपशमभंगि पर चढ़ा पर प उतरते समय अजघन्य स्थितिसंक्रमका प्रारम्भ करावे तथा उसके  
 अन्तमें सपरभंगि पर चढ़ा कर अजघन्य स्थितिसंक्रमका अन्त करावे । इस प्रकार अजघन्य  
 स्थितिसंक्रमका उक्तप्रमाण उत्कृष्ट काल प्राप्त हो जाता है ।

१५५०. आदेशरी अपेक्षा नारकियोंमें मोहनीयके जघन्य स्थितिसंक्रमका जघन्य और  
 उत्कृष्ट काल एक समय है । अजघन्य स्थितिसंक्रमका जघन्य काल एक समय अधिक एक आरलि-  
 प्रमाण है और उत्कृष्ट काल तेनीस सागर है । इसी प्रकार प्रथम पृथिवीमें है । किन्तु इतनी विशेषता  
 है कि यहाँ अजघन्य स्थितिसंक्रमका उत्कृष्ट काल अपनी स्थितिप्रमाण है । दूसरी पृथिवीसे लेकर  
 सातवीं पृथिवी तक जघन्य स्थितिसंक्रमका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । तथा अजघन्य  
 स्थितिसंक्रमका जघन्य काल जघन्य स्थितिप्रमाण है और उत्कृष्ट काल उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है ।  
 किन्तु इतनी विशेषता है कि सातवीं पृथिवीमें जघन्य स्थितिसंक्रमका जघन्य काल एक समय है  
 और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है तथा अजघन्य स्थितिसंक्रमका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और  
 उत्कृष्ट काल अपनी स्थितिप्रमाण है ।

विशेषार्थ—मागान्यमें नरकमें मोहनीयका जघन्य स्थितिसंक्रम एक समय तक ही होता  
 है, क्योंकि जो अमंती पचेन्द्रिय जीव नरकमें उदरभ होता है उसके शरीर मद्दणके बाद एक  
 आरली कालके अन्तिम समयमें यह जघन्य संक्रम देखा जाता है । इसीसे यहाँ जघन्य स्थिति-  
 संक्रमका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कटा है । अजघन्य स्थितिसंक्रमका जघन्य काल जो  
 एक समय अधिक एक आरलि कटा है सो यह काल भी उस नारकीके प्राप्त होता है जो अमंती  
 पर्यायमें आकर नरकमें उदरभ हुआ है । ऐसे जीवके नरकमें उदरभ होनेके समयसे लेकर एक समय  
 अधिक एक आरलि काल तक अजघन्य स्थितिसंक्रम बना रहता है और इसके बाद यह नियमसे  
 एक समयके लिये जघन्य स्थितिसंक्रमका प्राप्त हो जाता है । इसीसे यहाँ अजघन्य स्थितिसंक्रमका  
 जघन्य काल एक समय अधिक एक आरलिप्रमाण कटा है । तथा अजघन्य स्थितिसंक्रमका  
 उत्कृष्ट काल नरकी उत्कृष्ट आयुकी अपेक्षासे कटा है, क्योंकि कि इतने काल तक नारकीके अजघन्य  
 स्थितिके प्राप्त होनेमें कोई बाधा नहीं आती है । अजघन्य स्थितिसंक्रमके उत्कृष्ट कालके लिये शेष  
 सब काल प्रथम नरकमें घटित होते हैं, इसलिये प्रथम नरकमें उक्त कालोंको सामान्य नारकियोंके  
 समान कटा है । किन्तु प्रथम नरककी उत्कृष्ट स्थिति एक सागरप्रमाण होनेके कारण यहाँ अजघन्य  
 स्थितिसंक्रमका उत्कृष्ट काल एक सागर ही प्राप्त होता है । दूसरी पृथिवीसे लेकर छठी पृथिवी तक  
 जो जीव उत्कृष्ट आयुके साथ बढ़ा उदरभ हुआ है । फिर अन्तर्मुहूर्तमें जिसने उपशमसम्यक्त्वपूर्वक



§ ५५१. तिरिखखेसु मोह० जह० जह० एयस०, उक्क० अंतोसु० । अज० ज० एयस०, उक्क० असखेजा लोगा । पंचि०तिरि०तिय३ जह० ड्दिदि०संक० जह० उक्क० एयस० । अज० जह० आवलिया समयूणा, उक्क० सगड्दिदी । पंचिदि०तिरि०अपज्ज०-मणुसअपज्ज० जह० ड्दिदिसं जह० उक्क० एयस० । अज० जहण्णेणावलिया समयूणा, उक्क० अंतोसु० ।

अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी विसंयोजना कर लो है उसके नरकायुके अन्तिम समयमें जघन्य स्थितिसंक्रम प्राप्त होता है। इसीसे यहाँ जघन्य स्थितिसंक्रमका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा है। यहाँ अजघन्य स्थितिसंक्रमका जघन्य काल वहाँकी जघन्य स्थितिप्रमाण और उत्कृष्ट काल उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है यह बात स्पष्ट ही है। सातवीं पृथिवीमें भी जो जीवन भर सम्यक्त्वके साथ रहा है। किन्तु अन्तमें अन्तर्मुहूर्त कालके शेष रहने पर जो मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ है। ऐसा जीव यदि सत्कर्मस्थितिके समान एक समयके लिये स्थितिबन्ध करता है तो इसके जघन्य स्थितिसंक्रम एक समय तक होता है और यदि सत्कर्मस्थितिके समान अन्तर्मुहूर्तकाल स्थितिबन्ध करता है तो इसके जघन्य स्थितिसंक्रम अन्तर्मुहूर्तकाल होता है। इसीसे यहाँ जघन्य स्थितिसंक्रमका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्तप्रमाण कहा है। किन्तु इसी जीवके बादमें अन्तर्मुहूर्त काल तक अजघन्य स्थितिसंक्रम होता है। इसीसे यहाँ अजघन्य स्थितिसंक्रमका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त कहा है। तथा यहाँ अजघन्य स्थितिसंक्रमका उत्कृष्ट काल उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है यह स्पष्ट ही है।

§ ५५१. तिर्यचोमे मोहनीयके जघन्य स्थितिसंक्रमका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। अजघन्य स्थितिसंक्रमका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल असंख्यात लोकप्रमाण है। पंचेन्द्रिय तिर्यवन्निकर्षे जघन्य स्थितिसंक्रमका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अजघन्य स्थितिसंक्रमका जघन्य काल एक समय कम एक आवलिप्रमाण है और उत्कृष्ट काल अपनी-अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है। पंचेन्द्रिय तिर्यच अपर्याप्त और मनुष्य अपर्याप्त जीवोंमें जघन्य स्थितिसंक्रमका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अजघन्य स्थितिसंक्रमका जघन्य काल एक समयकम एक आवलिप्रमाण है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है।

**विशेषार्थ**—जो एकेन्द्रिय जीव हतसमुत्पत्तिक क्रियाको करके स्थितिसत्कर्मके समान एक समयके लिये स्थितिका बन्ध करता है उसके एक समय तक जघन्य स्थितिसंक्रम होता है। तथा जो अन्तर्मुहूर्त तक स्थितिसत्कर्मके समान स्थितिबन्ध करता है उसके अन्तर्मुहूर्त तक जघन्य स्थितिसंक्रम होता है। यही कारण है कि तिर्यचोमें जघन्य स्थितिसंक्रमका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कहा है। जो तिर्यच जघन्य स्थितिसंक्रमको करके एक समय तक अजघन्य स्थितिसंक्रमको प्राप्त हाता है और दूसरे समयमें भर कर अन्य गतिमें चला जाता है उसके अजघन्य स्थितिसंक्रम एक समय तक देला जाता है। इसीसे यहाँ अजघन्य स्थितिसंक्रमका जघन्य काल एक समय कहा है। ऐसा नियम है कि एकेन्द्रियोमें जघन्य स्थिति बाद जीवोंके ही प्राप्त होती है, सूक्ष्म जीवोंके नहीं। सूक्ष्म जीवोंके जो निरन्तर अजघन्य स्थिति ही पाई जाती है। और सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्यायमें निरन्तर रहनेका काल असंख्यात लोकप्रमाण है। इससे यहाँ अजघन्य स्थितिसंक्रमका उत्कृष्ट काल असंख्यात लोकप्रमाण कहा है। जो एकेन्द्रिय जीव हतसमुत्पत्तिक क्रियाको करके पंचेन्द्रिय तिर्यवन्निकर्षे उत्पन्न होता है उसके वहाँ उत्पन्न होनेके प्रथम

§ ५५२. मणुसतिए जह० ओयभंगो । अज० जह० एयस०, उक० सगड्ढिदी । कथमेयसमयोवल्लदी ? ण, असंकमादो अजहणणसंक्रमे पडिय तत्थेयसमयमच्छिय विदिसमए कालगदस्स तदुवलंभादो । देवेसु पारयभंगो । एवं भवण०-वाण० । णवरि सगड्ढिदी । जोदिसियादि जाव सच्चुट्टे चि ड्ढिदिचिहत्तिभंगो । एवं जाव० ।

समयसे लेकर एक आवलिके अन्तमे एक समयके लिये जघन्य स्थितिसंक्रम देखा जाता है । इसीसे पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चत्रिकमें जघन्य स्थितिसंक्रमका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा है । तथा इसी जीवके जघन्य स्थितिसंक्रमके प्राप्त होनेके पूर्व एक समय कम एक आवलि काल तक अजघन्य स्थितिसंक्रम होता रहता है । इसीसे यहाँ अजघन्य स्थितिसंक्रमका जघन्य काल एक समय कम एक आवलिप्रमाण कहा है । इनमें अजघन्य स्थितिसंक्रमका उत्कृष्ट काल अपनी-अपनी कायस्थितिप्रमाण हैं यह स्पष्ट ही है । पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च अपयांस और मनुष्य अपर्याप्त जीवोंके भी जघन्य स्थितिसंक्रमका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय और अजघन्य स्थितिसंक्रमका जघन्य काल एक समय कम एक आवलिप्रमाण पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चत्रिकके समान घटित कर लेना चाहिये । तथा यहाँ जो अजघन्य स्थितिसंक्रमका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्तप्रमाण कहा है सो यह उन जीवोंकी उत्कृष्ट कायस्थितिकी अपेक्षासे कहा है ऐसा जानना चाहिये ।

§ ५५२. मनुष्यत्रिकमें जघन्य स्थितिसंक्रमका काल ओघके समान है । अजघन्य स्थितिसंक्रमको जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अपनी अपनी स्थितिप्रमाण है ।

प्रश्न—यहाँ अजघन्य स्थितिसंक्रमका जघन्य काल एक समय कैसे उपलब्ध होता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि जो अंशकमसे अजघन्य स्थितिसंक्रमको प्राप्त होकर और एक समय यहाँ रह कर दूसरे समयमें भर गया है उसके अजघन्य स्थितिसंक्रमका जघन्य काल एक समय उपलब्ध होता है ।

देवोंमें जघन्य और अजघन्य स्थितिसंक्रमका काल नारकियोंके समान है । उसी प्रकार भवनवासी और व्यन्तरांमें जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि अपनी अपनी स्थिति कहनी चाहिए । तथा ज्योतिषियोंसे लेकर सर्वाथसिद्धि तकके देवोंमें जघन्य और अजघन्य स्थितिसंक्रमका भंग जघन्य और अजघन्य स्थितिबिभक्तिके समान है । इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिये ।

विशेषार्थ—ओघसे जघन्य स्थितिसंक्रमका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समयप्रमाण सूक्ष्मसम्प्राय गुणस्थानमें प्राप्त होता है जिसका प्राप्त होना मनुष्यत्रिकके ही सम्भव है । इसीसे यहाँ मोहनीयके जघन्य स्थितिसंक्रमका जघन्य और उत्कृष्ट काल ओघके समान कहा है । यहाँ अजघन्य स्थितिसंक्रमका जघन्य काल एक समय क्यों है इसका खुलासा मूलमें किया ही है । तथा अजघन्य स्थितिसंक्रमका उत्कृष्ट काल अपनी अपनी स्थितिप्रमाण है यह स्पष्ट ही है । सामान्य देव, भवनवासी और व्यन्तर इन तीन प्रकारके देवोंमें अस्ती जीव भर कर उत्पन्न हो सकते हैं, इसलिये इतमें जघन्य और अजघन्य स्थितिसंक्रमका काल नारकियोंके समान बन जाता है । किन्तु इनकी भव्ररिथिति जुदी जुदी होनेसे यहाँ अजघन्य स्थितिसंक्रमका उत्कृष्ट काल अपनी अपनी स्थितिप्रमाण प्राप्त होता है । अथ रहे ज्योतिषी और सौधर्म कल्पसे लेकर सर्वाथसिद्धि तकके देव सो इनमें जिस प्रकार जघन्य और अजघन्य स्थितिबिभक्तिका काल बतलाया है उसी प्रकार जघन्य और अजघन्य स्थितिसंक्रमका भी काल घटित कर लेना चाहिये । उससे इसमें कोई विशेषता नहीं है । यही कारण है कि यहाँ जघन्य और अजघन्य स्थितिसंक्रमका काल जघन्य और अजघन्य स्थितिबिभक्तिके कालके समान कहा है ।

६ ५५३. अंतरं दुविहं जहण्णुक्कस्सभेएण । उक्क० पयदं । दुविहो णिहेसो—  
ओषेण आदेसेण य । ओषेण मोह० उक्क० द्विदिसं० अंतरं जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्क०  
अणंतकालमसंखेज्जा योग्गलपरियट्ठा । अणु० ज० एयस०, उक्क० अंतोमु० ।

६ ५५४. आदेसेण णेरइय० मोह० उक्क० जह० अंतोमु०, उक्क० तेचीसं सागरो०  
देसणाणि । अणु० ओघं । एवं सच्चणेरइय० । णवरि सगट्ठिदी देसणा ।

६ ५५५. तिरिक्खेसु ओघमंगो । पंचि०तिरिक्खतिय३ उक्क० ज० अंतोमु०, उक्क०  
पुण्वकोडिपुधत्तं । अणु० ओघो । एवं मणुस०३ । पंचि०तिरि०अपज्ज०-मणुसअपज्ज०  
उक्क० अणु० णत्थि अंतरं । एवमाणदादि जाव सच्चट्ठे त्ति ।

§ ५५३. अन्तर दो प्रकारका है—जघन्य और उत्कृष्ट । उत्कृष्टका प्रकरण है । निर्देश दो  
प्रकारका है—ओघ और आदेश । ओघकी अपेक्षा मोहनीयके उत्कृष्ट स्थितिसंक्रमका जघन्य अन्तर  
अन्तमुहूर्तप्रमाण और उत्कृष्ट अन्तर अनन्त काल है जो अस्ख्यात पुद्गलपरिवर्तनप्रमाण है ।  
अनुत्कृष्ट स्थितिसंक्रमका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तमुहूर्त है ।

विशेषार्थ—अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य काल अन्तमुहूर्त है । इसीसे उत्कृष्ट स्थिति-  
संक्रमका जघन्य अन्तर अन्तमुहूर्त कहा है । एकेन्द्रियादि पर्यायमें रहकर यह जीव अनन्त काल  
तक अनुत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करता रहता है जिससे इसे इतने काल तक उत्कृष्ट स्थितिकी प्राप्ति  
नहीं होती । इसीसे यहाँ उत्कृष्ट स्थितिसंक्रमका उत्कृष्ट अन्तर अनन्त कालप्रमाण कहा है ।  
उत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तमुहूर्त है । इसीसे यहाँ  
अनुत्कृष्ट स्थितिसंक्रमका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तमुहूर्तप्रमाण कहा है ।

§ ५५४. आदेशसे नारकियोंमें मोहनीयके उत्कृष्ट स्थितिसंक्रमका जघन्य अन्तर अन्तमुहूर्त  
है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेवीस सागर है । तथा अनुत्कृष्टका भंग ओघके समान है । इसी  
प्रकार सब नारकियोंमें जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि उत्कृष्ट स्थितिसंक्रमका उत्कृष्ट  
अन्तर कुछ कम अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है ।

विशेषार्थ—अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल अन्तमुहूर्त होनेसे उत्कृष्ट स्थितिसंक्रमका  
जघन्य अन्तर अन्तमुहूर्त कहा है । जिस नारकीने आयुके प्रारम्भमें और अन्तमें उत्कृष्ट स्थिति-  
संक्रम किया है और मध्यमें जो अनुत्कृष्ट स्थितिसंक्रम करता रहा उसके उत्कृष्ट स्थितिसंक्रमका उत्कृष्ट  
अन्तर कुछ कम तेवीस सागरप्रमाण पाया जाता है । इसीसे यहाँ उत्कृष्ट स्थितिसंक्रमका उत्कृष्ट  
अन्तर उक्तप्रमाण कहा है । उत्कृष्ट स्थितिसंक्रमका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल  
अन्तमुहूर्त है । इसीसे यहाँ अनुत्कृष्ट स्थितिसंक्रमका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर  
अन्तमुहूर्त ओघके समान कहा है । शेष कथन सुगम है ।

§ ५५५. तिर्यञ्चोमें उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिसंक्रमका अन्तर ओघके समान है ।  
पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चनिकमें उत्कृष्ट स्थितिसंक्रमका जघन्य अन्तर अन्तमुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर  
पूर्वकोटिपृथक्त्वप्रमाण है । तथा अनुत्कृष्टका अन्तर ओघके समान है । मनुष्यनिकमें इसी प्रकार  
जानना चाहिये । तथा पंचेन्द्रिय तिर्यक्त्व अपर्याप्त और मनुष्य अपर्याप्त जीवोंमें उत्कृष्ट और  
अनुत्कृष्ट स्थितिसंक्रमका अन्तरकाल नहीं है । आनतसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तक भी इसी प्रकार  
जानना चाहिये ।

विशेषार्थ—पंचेन्द्रिय तिर्यक्त्वनिककी उत्कृष्ट कायस्थिति पूर्वकोटिपृथक्त्व अधिक तीन पत्य  
है । किन्तु भोगभूमिमें मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिका प्राप्त होना सम्भव नहीं है इसी से यहाँ उत्कृष्ट

१ ५७६. देवगदीए देवेसु उक्क० जह० अंतोसु०, उक्क० अट्टारससागरो० सादिरैयाणि । अणु० ओघमंगो । भवणादि जाव सहस्तारे ति उक्क० द्विदिसं० जह० अंतोसु०, उक्क० सगद्धिदी देखणा । अणु० ओघो । एवं जाव० ।

१ ५७७. जहण्णए पयदं । दुविहो णिहेसो—ओघेण आदेसेण य । ओघेण जह० द्विदिसं० णत्थि अंतरं । अज० ज० एयस०, उक्क० अंतोसुहुत्तं. उवसमसेहीए तद्दुवल्लद्धीदी । एवं मणुसत्तिय०३ । णवदि अज० अंतरं जहण्णु० अंतोसु० ।

१ ५७८. आदेसेण णेरइय० जह० णत्थि अंतरं । अज० जहण्णुक्क० एयसमओ ।

स्थितिसंक्रमका उत्पत्त्य अन्तर पूर्वकोटिप्रथमप्रमाण कदा है । मनुष्यविक्रमं भी अनुत्पत्त्य स्थितिसंक्रमका उत्पत्त्य अन्तरकाल इमी प्रकार घटित कर लेना चाहिये । पंचेन्द्रिय तिर्यङ्ग अपर्याप्त और मनुष्य अपर्याप्तों को वार उत्पत्त्य स्थितिसंक्रमका प्राप्त होना या उत्पत्त्य स्थितिसंक्रमका अन्तर देकर दो वार अनुत्पत्त्य स्थितिसंक्रमका प्राप्त होना सम्भव नहीं है । इसीसे इनके उत्पत्त्य और अनुत्पत्त्य स्थितिसंक्रमके अन्तरका निषेध किया है । यही बात आनतसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तक जाननी चाहिये । इसीमें यहाँ भी उक्त दो प्रकारके स्थितिसंक्रमोंके अन्तरका निषेध किया है । दोय कथन सुगम है ।

१ ५७६. देवगतिमें देवोंमें उत्पत्त्य स्थितिसंक्रमका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्पत्त्य अन्तर साधिक अटारह मागर है । तथा मनुत्पत्त्य स्थितिसंक्रमका अन्तर ओघके समान है । भयनवासियोंमें लेकर सहस्तरा वर्य तकके देवोंमें उत्पत्त्य स्थितिसंक्रमका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्पत्त्य अन्तर कुछ कम अपनी-अपनी उत्पत्त्य स्थितिप्रमाण है । तथा अनुत्पत्त्य स्थितिसंक्रमका अन्तर ओघके समान है । इसी प्रकार अनाटारक मार्गणातक जानना चाहिये ।

विशेषार्थ—देवोंमें ओघ उत्पत्त्य स्थिति सटारार वर्य तक पाई जाती है । इसीसे यहाँ उत्पत्त्य स्थितिसंक्रमका उत्पत्त्य अन्तर साधिक अटारह सागर प्रमाण कदा है । दोय कथन सुगम है ।

१ ५७७. जघन्यका प्रकरण है । निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । ओघसे जघन्य स्थितिसंक्रमका अन्तरकाल नहीं है । अजघन्य स्थितिसंक्रमका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्पत्त्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है, क्योंकि इसको उपलब्धि उपशमभ्रेण्णिमं होती है । इसी प्रकार मनुष्यविक्रमं जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि मनुष्यविक्रमं अजघन्य स्थितिसंक्रमका जघन्य और उत्पत्त्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है ।

विशेषार्थ—मोहनीयका जघन्य स्थितिसंक्रम क्षयभ्रेण्णिमं प्राप्त होता है । किन्तु एक जीवके क्षयभ्रेण्णिका दो वार प्राप्त होना सम्भव नहीं है । इसीसे यहाँ जघन्य स्थितिसंक्रमके अन्तरका निषेध किया है । जो जीव उपशमभ्रेण्णिमं एक समय तक मोहनीयकी अजघन्य स्थितिका असंक्रमक होता है और दूसरे समयमें मर कर देव हो जाता है उसके मोहनीयकी अजघन्य स्थितिके संक्रमका जघन्य अन्तर एक समय पाया जाता है । तथा उपशान्तमोहका काल अन्तर्मुहूर्त होनेके कारण अजघन्य स्थितिसंक्रमका उत्पत्त्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त प्राप्त होता है । यह ओघप्ररूपका मनुष्यविक्रमं घटित हो जाती है, इसलिये मनुष्यविक्रमं इस कथनको ओघके समान कदा है । किन्तु मनुष्यविक्रमं अजघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर एक समय नहीं घटित होता, क्योंकि ओघसे एक समय अन्तर दो गतियोंकी अपेक्षासे प्राप्त होता है । इसलिये यहाँ उत्पत्त्य अन्तरके समान जघन्य अन्तर भी अन्तर्मुहूर्त जानना चाहिये ।

१ ५७८. आदेशसे नारकियोंमें जघन्य स्थितिसंक्रमका अन्तर नहीं है । अजघन्य स्थिति

एवं पठमाए सच्चपंचिदियतिरिक्ख-मणुसअपञ्ज०-देवा भवण०-वाणवेंतरे ति । विदियादि जाव छट्टि चि जहण्णाजह० णत्थि अंतरं । जोदिसियादि जाव सच्चट्टा चि एवं चेव । सत्तमाए जह० णत्थि अंतरं । अज० जह० एयस०, उक्क० अंतोमु० । तिरिक्खेसु ईए तिरिक्खेसु जह० ज० अंतोमु०, उक्क० असंखेज्जा लोगा । अज० जह० एयस०, उक्क० अंतोमु० । एवं जाव० ।

संक्रमका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर एक समय है । इसी प्रकार पहली पृथिवीके नारकी, सब पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च, मनुष्य अपर्याप्त, सामान्य देव, भवनवासी और व्यन्तर देवोंमें जानना चाहिये । दूसरी पृथिवीसे लेकर छठी पृथिवी तकके नारकीयोंमें जघन्य और अजघन्य स्थितिसंक्रमका अन्तर नहीं है । ज्योतिषियोंसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें भी इसी प्रकार जानना चाहिये । सातवीं पृथिवीमें जघन्य स्थितिसंक्रमका अन्तर नहीं है । अजघन्य स्थितिसंक्रमका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है । तिर्यञ्चगतिमें तिर्यञ्चोंमें जघन्य स्थितिसंक्रमका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोकप्रमाण है । अजघन्य स्थितिसंक्रमका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है । इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिये ।

**विशेषार्थ—**जो असंज्ञी नरकमें उत्पन्न होता है उसीके एक समयके लिये जघन्य स्थिति-संक्रमका प्राप्त होना सम्भव है । इसीसे यहाँ जघन्य स्थितिसंक्रमके अन्तरका निषेध करके अजघन्य स्थितिसंक्रमका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर एक समय बतलाया है । प्रथम नरकके नारकी, सब पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च, मनुष्य अपर्याप्त, सामान्य देव, भवनवासी देव और व्यन्तर देव इनमें भी यथासम्भव जो असंज्ञी या एकेन्द्रिय जीव मर कर उत्पन्न होते हैं उन्हींके एक समयके लिये जघन्य स्थिति संक्रमका पाया जाना सम्भव है । इससे यहाँ भी सामान्य नारकीयोंके समान जघन्य स्थितिसंक्रमके अन्तरका निषेध करके अजघन्य स्थितिसंक्रमका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर एक समय बतलाया है । दूसरी पृथिवीसे लेकर छठी पृथिवी तकके जिन नारकीयोंमें जघन्य स्थितिसंक्रम पाया जाता है वह भवके अन्तिम समयमें ही पाया जाता है, इस लिये यहाँ जघन्य और अजघन्य दोनों प्रकारके स्थितिसंक्रमोंके अन्तरका निषेध किया है । ज्योतिषियोंसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें भी जिनके जघन्य स्थितिसंक्रम पाया जाता है वह भवके अन्तिम समयमें ही पाया जाता है, इस लिये इन मार्गणाओंमें भी जघन्य और अजघन्य स्थितिसंक्रमके अन्तरका निषेध किया है । सातवीं पृथिवीमें जिनके जघन्य स्थितिसंक्रम होता है वह आयुमें अन्तर्मुहूर्त काल शेष रहने पर कमसे कम एक समय तक और अधिकसे अधिक अन्तर्मुहूर्त तक होता है । इसलिये इनके जघन्य स्थितिसंक्रमके अन्तरका निषेध करके अजघन्य स्थितिसंक्रमका जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तर काल अन्तर्मुहूर्त कहा है । तिर्यञ्चगतिमें अजघन्य स्थितिसंक्रमका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्तप्रमाण और उत्कृष्ट काल असंख्यात लोक प्रमाण बतलाया है । इसीसे इनके जघन्य स्थितिसंक्रमका जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्तप्रमाण और उत्कृष्ट अन्तरकाल असंख्यात लोकप्रमाण कहा है । तथा तिर्यञ्चगतिमें जघन्य स्थितिसंक्रमका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त बतलाया है । इसीसे यहाँ अजघन्य स्थितिसंक्रमका जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त कहा है । इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक यथायोग्य अन्तरकाल जान लेना चाहिये ।

§ ५६९. षाण्णाजीवेहि भंगविचयो दुविहो जहण्णु० द्विदिसं० विसयभेदेण । एत्थुक्खस्से पयदं । तत्थद्वपदं—जे उक्खस्सियाए द्विदीए संकामगा ते अणुक्खस्सियाए द्विदीए असंकामगा इच्छादि । एदेणद्वपदेण दुविहो णिहेसो—ओवेण आदेसेण य । ओवेण मोह० उक्ख० द्विदीए सिया सव्वे असंकामगा । सिया एदे च संकामओ च १ । सिया एदे च संकामया च २ । धुवसहिदा ३ भंगा । अणुक्ख० संकामयाणं पि एवं चेव । णवरि विचरीयं कायच्चं । एवं चदुसु गदीसु । णवरि मणुसअपज्ज० उक्ख० अणुक्ख० अट्ट भंगा । एवं जाव०

§ ५५६. नाना जीवोंकी अपेक्षा भंगविचयके दो भेद हैं—जघन्य स्थितिसंक्रमविषयक और उत्कृष्ट स्थितिसंक्रमविषयक । यहाँ उत्कृष्टका प्रकरण है । इस विषयमें यह अर्थपद है—जो उत्कृष्ट स्थितिके संक्रामक होते हैं वे अनुत्कृष्ट स्थितिके असंक्रामक होते हैं आदि । इस अर्थपदके अनुसार निर्देश दो प्रकारका है—ओष और आदेश । ओषकी अपेक्षा मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिके कदाचित् सव जीव असंक्रामक होते हैं । कदाचित् मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिके बहुत जीव असंक्रामक होते हैं और एक जीव संक्रामक होता है १ । कदाचित् मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिके बहुत जीव असंक्रामक होते हैं और बहुत जीव संक्रामक होते हैं २ । इस प्रकार प्रवसहित तीन भंग होते हैं ३ । अनुत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकोंके भी इसी प्रकार तीन भंग होते हैं । किन्तु इतनी विशेषता है कि यहाँ विपरीतरूपसे कथन करना चाहिये । इसी प्रकार चारों गतियोंमें जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि मनुष्य अपर्याप्तकोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिसंक्रमवालोंकी अपेक्षा आठ भंग होते हैं । इसी प्रकार अनाहारक मार्गीणा तक जानना चाहिये ।

विशेषार्थ—नियम यह है कि जो उत्कृष्ट स्थितिके संक्रामक होते हैं वे अनुत्कृष्ट स्थितिके संक्रामक नहीं होते और जो अनुत्कृष्ट स्थितिके संक्रामक होते हैं वे उत्कृष्ट स्थितिके संक्रामक नहीं होते । इन हिसाबसे यद्यपि उत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकोंसे अनुत्कृष्ट स्थितिके असंक्रामक और अनुत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकोंसे उत्कृष्ट स्थितिके असंक्रामक जीव जुड़े नहीं टकरते । तथापि एक चार उत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकोंके और दूसरी चार अनुत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकोंके मुख्य करके भंगोंका संग्रह करने पर तीन-तीन भंग प्राप्त होते हैं । जो मूलमें गिनाये दी हैं । वात यह है कि उत्कृष्ट स्थितिका संक्रामक जीव कदाचित् एक भी नहीं रहता, कदाचित् एक होता है और कदाचित् अनेक होते हैं । इन तीन विवक्षोंको मुख्य करके भंग कहने पर वे इस प्रकारसे प्राप्त होते हैं—(१) कदाचित् सव जीव मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिके असंक्रामक होते हैं । (२) कदाचित् बहुत जीव मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिके असंक्रामक और एक जीव संक्रामक होता है । (३) कदाचित् बहुत जीव मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिके असंक्रामक और बहुत जीव संक्रामक होते हैं । ये तो उत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकों और असंक्रामकोंकी अपेक्षासे भंग हुए । और जब अनुत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकों और असंक्रामकोंके प्रमुख कर दिया जाता है तब इनकी अपेक्षासे ये तीन भंग प्राप्त होते हैं—(१) कदाचित् सव जीव मोहनीयकी अनुत्कृष्ट स्थितिके संक्रामक होते हैं । (२) कदाचित् बहुत जीव मोहनीयकी अनुत्कृष्ट स्थितिके संक्रामक होते हैं और एक जीव असंक्रामक होता है । (३) कदाचित् बहुत जीव मोहनीयकी अनुत्कृष्ट स्थितिके संक्रामक होते हैं और बहुत जीव असंक्रामक होते हैं । इसी प्रकार चारों गतियोंमें ये तीन-तीन भंग होते हैं । किन्तु लक्ष्यपर्याप्त मनुष्य यह सागर मार्गीणा है, इसलिए इसमें प्रत्येककी अपेक्षा आठ आठ भंग होते हैं । यथा—(१) कदाचित् एक जीव मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिका संक्रामक होता है । (२) कदाचित् नाना वजी

§ ५६०. जहण्णए पयदं । तथा चेव अट्टपदं । दुविहो णिदेसो—ओघेण आदेसेण य । ओघेण मोह० जह० द्विदिसं० भयणिज्जा । पुणो अज० धुवं कारुण तिण्णि भंगा । एवं चटुगदीसु । णवरि तिरिक्खेसु जह० अज० णियमा अत्थि । मणुसअपज्ज० जह० अज० संका० भयणिज्जा । पुणो भंगा अट्ट ८ । एवं जाव० ।

मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिके संक्रामक होते हैं। (३) कदाचित् एक जीव मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिका असंक्रामक होता है। (४) कदाचित् नाना जीव मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिके असंक्रामक होते हैं। (५) कदाचित् एक जीव मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिका संक्रामक और एक जीव असंक्रामक होता है। (६) कदाचित् एक जीव मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिका संक्रामक और नाना जीव असंक्रामक होते हैं। (७) कदाचित् नाना जीव मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिके संक्रामक और एक जीव असंक्रामक होता है। (८) कदाचित् नाना जीव मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिके संक्रामक और नाना जीव असंक्रामक होते हैं। ये उत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकों और असंक्रामकोंकी अपेक्षासे आठ भंग कहे हैं। इसी प्रकार अनुत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकों और असंक्रामकोंकी अपेक्षासे भी आठ भंग कहने चाहिये। इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक यथायोग्य भंग ले खाना चाहिये।

§ ५६०. अब जघन्यका प्रकरण है। अर्थपद पूर्वोक्त प्रकार है। निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश। ओघसे मोहनीयकी जघन्य स्थितिके संक्रामक जीव भजनीय हैं। फिर अजघन्य स्थितिके संक्रामकोंको ध्रुव करके तीन भंग होते हैं। इसी प्रकार चारों गतियोंमें जान लेना चाहिये। किन्तु इतनी विशेषता है कि तिर्यञ्चोंमें जघन्य स्थितिके संक्रमवाले और अजघन्य स्थितिके संक्रमवाले जीव नियमसे हैं। मनुष्य अपर्याप्तकोंमें जघन्य और अजघन्य स्थितिके संक्रमवाले भजनीय हैं। आठ भंग होते हैं। इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिये।

विशेषार्थ—ओघसे मोहनीयकी जघन्य स्थितिका संक्रम क्षणश्रेणियोंमें होता है। किन्तु क्षणश्रेणियोंमें एक तो सदा जीवोंका पाया जाना सम्भव नहीं है। यदि पाये भी जाते हैं तो कदाचित् एक जीव पाया जाता है और कदाचित् नाना जीव पाये जाते हैं। इसीसे मोहनीयकी जघन्य स्थितिके संक्रामकोंको भजनीय कहा है। यहाँ एक जीव और नाना जीवोंकी अपेक्षा तीन भंग होंगे। भंगोंका क्रम वही है जिसका उल्लेख उत्कृष्टकी अपेक्षा तीन भंग घटलाते समय कर आये हैं। किन्तु अजघन्य स्थितिके संक्रामक जीव नियमसे पाये जाते हैं, अतः इस अपेक्षासे तीन भंग होते हैं—(१) कदाचित् अजघन्य स्थितिके संक्रामक सब जीव होते हैं। (२) कदाचित् बहुत जीव अजघन्य स्थितिके संक्रामक और एक जीव असंक्रामक होता है। (३) कदाचित् बहुत जीव अजघन्य स्थितिके संक्रामक और बहुत जीव असंक्रामक होते हैं। यह ओघ प्ररूपणा चारों गतियोंमें बन जाती है, इसलिये चारों गतियोंके कथनको ओघके समान कहा है। किन्तु तिर्यञ्चगति इसका अपवाद है। बात यह है कि तिर्यञ्चगतिमें जघन्य स्थिति और अजघन्य स्थितिके संक्रामक नाना जीव सदा पाये जाते हैं। इसलिये वहाँका कथन भिन्न प्रकारका है। मनुष्य अपर्याप्तक सान्तर मार्गणा होनेसे वहाँ जिस प्रकार उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिसंक्रामकोंकी अपेक्षा आठ-आठ भंग कहे हैं उसी प्रकार यहाँ भी जानना चाहिये। इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक अपनी-अपनी विशेषताको जानकर भंगोंका कथन करना चाहिये।

इस प्रकार भंगविचयानुगम समाप्त हुआ।

§ ५६१. भागाभा० दुविहो जह०-उक० द्विदिसंका० विसयभेदेण । उक्कसे ताव पयदं । दुविहो णिहेसो—ओघेण आदेसेण य । ओघेण मोह० उक० द्विदिसंका० मया सच्चजीवाणं केव० भागो ? अणंतिमभागो । अणु० द्विदिसंका० सच्चजी० केव० भागो ? अणंता भागा । एवं तिरिक्खोघं आदेसेण णेरह्य० उक० द्विदिसं० सगसच्चजी० केव० ? असंखे० भागो । अणु० असंखेजा भागा । एवमसंखेजरासीणं । संखेजरासीणं पि एवं चेव । णवरि सगपडिभागिओ भागो कायव्वो । एवं जाव० ।

§ ५६२. जह० पयदं । दुविहो णिहेसो—ओघेण आदेसेण य । ओघेण मोह० जह० द्विदिसं० सच्चजीवाणं केव० भागो ? उक्कसभंगो । अज० अणुक्कसभंगो । एवं सच्चत्य गदिसग्गणाए । णवरि तिरिक्खेसु णारयभंगो । एवं जा० ।

§ ५६३. परिमाणं दुविहं—जह० उक० । तत्पुक्कसए पयदं । दुविहो णिहेसो—ओघेण आदेसेण य । ओघेण मोह० उक० द्विदिसं० केचिया ? असंखेज्जा । अणु० अणंता । एवं तिरिक्कसंघो । आदेसेण णेरह्य० मोह० उक० अणुक्क० असंखेजा । एवं सच्चणेरह्य०-सच्चपंचिदियतिरिक्ख०-मणुस० अपज्ज०-भवणादि जाव सहस्सार ति ।

§ ५६१. भागाभाग दो प्रकारका हैं—जघन्य स्थितिसंक्रमविषयक और उत्कृष्ट स्थितिसंक्रमविषयक । सर्वप्रथम उत्कृष्टका प्रकरण है । उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । ओघकी अपेक्षा मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिके संक्रामक जीव सब जीवोंके कितने भागप्रमाण हैं ? अनन्तमें भागप्रमाण हैं । अनुकृष्ट स्थितिके संक्रामक जीव सब जीवोंके कितने भागप्रमाण हैं ? अनन्त बहुभागप्रमाण हैं । इसीप्रकार सामान्य तिर्यचोमि भागाभाग जानना चाहिये । आदेशकी अपेक्षा नारकियोंमें उत्कृष्ट स्थितिके संक्रामक जीव सब जीवोंके कितने भागप्रमाण हैं ? असंख्यातमें भागप्रमाण हैं । तथा अनुकृष्ट स्थितिके संक्रामक जीव सब जीवोंके असंख्यात बहुभागप्रमाण हैं । जिन राशियोंकी संख्या असंख्यात है उनका इसी प्रकार भागाभाग जानना चाहिये । तथा जिन राशियोंकी संख्या संख्यात है उनका भी इसी प्रकार भागाभाग जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि यहाँ अपने प्रतिभागके अनुसार भागाभाग प्राप्त करना चाहिये । इसी प्रकार अनाहारक मागैणा तक जानना चाहिये ।

§ ५६२. जघन्यका प्रकरण है । निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । ओघकी अपेक्षा मोहनीयकी जघन्य स्थितिके संक्रामक जीव सब जीवोंके कितने भागप्रमाण हैं ? इनका भागाभाग उत्कृष्टके समान है । अजघन्य स्थितिके संक्रमकोंका भागाभाग अनुकृष्टके समान है । इसी प्रकार सर्वत्र गतिमार्गणमें जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि तिर्यचोमि भागाभाग नारकियोंके समान है । इसी प्रकार अनाहारक मागैणा तक जानना चाहिये ।

§ ५६३. परिमाण दो प्रकारका है—जघन्य और उत्कृष्ट । उत्कृष्टका प्रकरण है । निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश । ओघसे मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिके संक्रामक जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं । अनुकृष्ट स्थितिके संक्रामक जीव अनन्त हैं । इसी प्रकार सामान्य तिर्यचोमि उत्कृष्ट और अनुकृष्ट स्थितिके संक्रामकोंका परिमाण जानना चाहिये । आदेशकी अपेक्षा नारकियोंमें मोहनीयकी उत्कृष्ट और अनुकृष्ट स्थितिके संक्रामक जीव असंख्यात हैं । इसी प्रकार सब नारकी, सब पंचेन्द्रिय तिर्यच, मनुष्य अर्थात् और भवनवासी देवोंसे लेकर सहस्वार कल्प तकके देवोंमें



मणुसेसु उक्क० संखेज्जा । अणु० असंखेज्जा । एवमाणदादि जाव अवाइदा चि । मणुसपज्जत्त-मणुसिणीसु सव्वट्ठे च उक्कस्साणुक्क० संका० संखेज्जा । एवं जाव० ।

§ ५६४. जह० पयदं । दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य । ओघेण मोह० जह० द्विदिसं० केत्तिया ? संखेज्जा । अज० अणंता । आदेसेण णेरइय० जह० अज० असंखेज्जा । एवं पढमाए । सत्तमाए च एवं चेव । सव्वपंचि०तिरि०-मणुसअपज्ज०-देवगईए देवा भवण० वाणवेंतरे चि विदियादि जाव छट्ठि चि जह० संखेज्जा, अज० असंखेज्जा । एवं मणुस-जोहसियादि जाव अवाइद चि । तिरिक्खेसु जह० अज० अणंता । मणुसपज्जत्त-मणुसिणीसु सव्वट्ठे च जह० अज० संखेज्जा । एवं जाव० ।

§ ५६५. खेतं दुविहं—जह० विसयसुक्क० विसयं च । उक्कस्सए पयदं । दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य । ओघेण मोह० उक्क० द्विदिसं० केव० ? लोगस्स असंखे० भागे । अणु० सव्वलोगे । एवं तिरिक्खोघो । सेसगइमगणाभेदेसु उक्क० अणुक्क० लोग० असंखे० भागे । एवं जाव० ।

उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकोंका परिमाण जानना चाहिये । मनुष्योंमें उत्कृष्ट स्थितिके संक्रामक जीव संख्यात हैं । अनुत्कृष्ट स्थितिके संक्रामक जीव असंख्यात हैं । इसी प्रकार आनत कल्पसे लेकर अपराजित तकके देवोंमें जानना चाहिये । मनुष्य पर्याप्त, मनुष्यिनी और सर्वार्थसिद्धिके देवोंमें उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकोंका परिमाण संख्यात है । इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिये ।

§ ५६४. जघन्यका प्रकरण है । निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । ओघसे मोहनीयकी जघन्य स्थितिके संक्रामक जीव कितने हैं ? संख्यात हैं । अजघन्य स्थितिके संक्रामक जीव अनन्त हैं । आदेशकी अपेक्षा नारकियोंमें जघन्य और अजघन्य स्थितिके संक्रामक जीव असंख्यात हैं । पहली और सातवीं पृथिवीमें इसी प्रकार जानना चाहिये । तथा सब पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च, मनुष्य अपर्याप्त, देवगतिमें सामान्य देव, भवनवासी देव और ज्यन्तर देवोंमें भी इसी प्रकार जानना चाहिये । दूसरी से लेकर छठी पृथिवी तकके नारकियोंमें जघन्य स्थितिके संक्रामक जीव संख्यात हैं और अजघन्य स्थितिके संक्रामक जीव असंख्यात हैं । इसी प्रकार सामान्य मनुष्य और ज्योतिषी देवोंसे लेकर अपराजित तकके देवोंमें जानना चाहिये । तिर्यञ्चोंमें जघन्य और अजघन्य स्थितिके संक्रामक जीव अनन्त हैं । मनुष्य पर्याप्त, मनुष्यिनी और सर्वार्थसिद्धिके देवोंमें जघन्य और अजघन्य स्थितिके संक्रामक जीव संख्यात हैं । इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिये ।

§ ५६५. क्षेत्र दो प्रकारका है—जघन्य स्थितिके संक्रामकोंसे सम्बन्ध रखनेवाला और उत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकोंसे सम्बन्ध रखनेवाला । उत्कृष्टका प्रकरण है । निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । ओघसे मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिके संक्रामक जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकके असंख्यातवें, भाग क्षेत्रमें रहते हैं । अनुत्कृष्ट स्थितिके संक्रामक जीव सब लोकमें रहते हैं । इसी प्रकार सामान्य तिर्यञ्चोंमें जानना चाहिये । तथा गति मार्गणके शेष जितने भेद हैं उनमें उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिके संक्रामक जीव लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें रहते हैं । इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिये ।

§ ५६६. जह० पयदं । दुविहो णिहँसो—ओषेण आदेसेण य । ओषेण उक्कस्स-  
भंगो । एवं सव्वासु गईसु । णवरि तिरिक्खोषे जह० लोग० संखे०भागो ।  
एवं जाव० ।

§ ५६७. पोसणं दुविहं—जहणविसयमुक्कस्सविसयं च । उक्कस्से ताव पयदं ।  
दुविहो णिहँसो—ओषेण आदेसेण य । ओषेण मोह० उक्क०द्विदिसकामएहि केव०  
पोसिदं ? लोग० असंखे०भागो अट्ट-तेरहचोइस० देसणा । अणु० सव्वलोगो ।

§ ५६६. जघन्यका प्रकरण है । निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेश-  
निर्देश । ओघसे जघन्यका भंग उत्कृष्टके समान है । इसी प्रकार सब गतियोंमें जानना चाहिये ।  
किन्तु इतनी विधेयता है कि सामान्य तिर्यञ्चोमें जघन्य स्थितिके संक्रामक जीव लोकके संख्यातवें  
भागप्रमाण क्षेत्रमें रहते हैं । इसी प्रकार अनाहारक मार्गीणा तक जानना चाहिये ।

विशेषार्थ—यहाँ उत्कृष्ट स्थितिके संक्रामक जीव संबन्धी पंचेन्द्रिय पर्याप्तकोंमें कुछ ही होते  
हैं । इसलिए उनका क्षेत्र लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण बतलाया है । तथा शेष सब संसारी जीव  
अनुत्कृष्ट स्थितिके संक्रामक होते हैं, अतः उनका क्षेत्र सब लोकप्रमाण बतलाया है । तिर्यञ्चोमें यह  
प्रस्थापना ओघके समान बन जाती है, अतः उनके व धनको ओघके समान कहा है । तिर्यञ्चोके सिधागति  
मार्गीणाके और जितने भेद हैं, सामान्यतः उनका क्षेत्र लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण होनेसे उनमें  
उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकोंमें क्षेत्र उक्त प्रमाण कहा है । इसी प्रकार जघन्य और  
अजघन्य स्थितिसंक्रमकी अपेक्षासे चारों गतियोंमें क्षेत्र घटित कर लेना चाहिये । किन्तु तिर्यञ्चोमें  
जघन्य स्थितिके संक्रामक जीवोंका क्षेत्र लोकके मंख्यातवें भागप्रमाण है इतना यहाँ विशेष जानना  
चाहिये जो बादर पर्याप्त वायुकायिक जीवोंकी अपेक्षा प्राप्त होता है ।

§ ५६७. स्पर्शन दो प्रकारका है—जघन्यस्थितिके संक्रामकोंसे सम्बन्ध रखनेवाला और उत्कृष्ट  
स्थितिके संक्रामकोंसे सम्बन्ध रखनेवाला । यहाँ सर्वे प्रथम उत्कृष्टका प्रकरण है । उसकी अपेक्षा  
निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । ओघसे मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिके  
संक्रामकोंके कितने क्षेत्रका स्पर्शन किया है ? लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रका और त्रस-  
नालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ भाग और कुछ कम तेरह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया  
है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकोंके सब लोकका स्पर्शन किया है ।

विशेषार्थ—यहाँ मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकोंका जो लोकके असंख्यातवें  
भागप्रमाण स्पर्शन बतलाया है वह वर्तमान कालकी मुख्यतासे बतलाया है, क्योंकि मोहनीयकी  
उत्कृष्ट स्थितिका संक्रम सातों नरकोंके नारकी, संबन्धी पंचेन्द्रिय पर्याप्त तिर्यञ्च, पर्याप्त मनुष्य व  
वारहवें स्वर्गतकके देवोंके ही सम्भव है पर इन सबका वर्तमान क्षेत्र लोकके असंख्यातवें भाग-  
प्रमाण ही है । तथा त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे जो कुछ कम आठ और कुछ कम तेरह भाग-  
प्रमाण स्पर्शन बतलाया है वह अतीत कालकी अपेक्षासे बतलाया है, क्योंकि विहारवत्स्वस्थान,  
वेदना, कषाय और वैक्रियिक पदसे परिणत हुये मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिके संक्रामक जीवोंने  
त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है और मारणान्तिक  
समुद्घातसे परिणत हुए मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिके संक्रामक जीवोंने त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे  
कुछ कम तेरह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । यहाँ तैजस, आहारक और उपपाद ये तीन  
पद सम्भव नहीं । यद्यपि स्वस्थानस्वस्थान पद होता है । पर इसकी अपेक्षा स्पर्शन लोकके

§ ५६८. आदेसेण णेरइय० उक्क० अणुक्क० लोगस असंखे० भागो छचोइस० देइणा । पढमाए खेचं । विदियादि जाव सचमि ति उक्क० अणुक्क० सगपोसणं ।

§ ५६९. तिरिक्खेसु उक्क० लोग० असंखे० भागो छचोइस० देइणा । अणु० सव्वलोगो । पंचिदियतिरिक्खतिए ३ मणुसतिए च एवं चेव । णवरि अणु० लोग० असंखे० भागो सव्वलोगो वा । पंचि० तिरि० अपज्ज०-मणु० अपज्ज० उक्क० खेत्तं । अणुक्क० लोग० असंखे० भागो सव्वलोगो वा ।

असंख्यातवें भागप्रमाण ही प्राप्त होता है । ओघसे अनुत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकोंका स्पर्शन सब लोक है यह स्पष्ट ही है ।

§ ५६८. आदेशसे नारकियोंमें उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रोंका और त्रसनालीके चौदह भागमेंसे कुछ कम छह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । पहली पृथिवीमें स्पर्शन क्षेत्रके समान है । दूसरी पृथिवीसे लेकर सातवीं पृथिवी तकके नारकियोंमें उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकोंका स्पर्शन अपने-अपने नरकके स्पर्शनके समान जानना चाहिये ।

**विशेषार्थ**—सामान्यसे नारकियोंका और प्रत्येक नरकके नारकियोंका जो स्पर्शन बतलाया है वही यहाँ सामान्य नारकियोंमें और प्रत्येक नरकके नारकियोंमें उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिके संक्रामक जीवोंकी अपेक्षासे प्राप्त होता है, इसलिये सामान्य नारकियोंका और प्रत्येक नरकके नारकियोंका जिस प्रकारसे स्पर्शन घटित करके बतलाया है उसी प्रकार यहाँ भी घटित कर लेना चाहिये ।

§ ५६९. तिर्यञ्चोंमें उत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रका और त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम छह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकोंने सब लोकका स्पर्शन किया है । पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चत्रिकमें और मनुष्यत्रिकमें इसी प्रकार स्पर्शन जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि अनुत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रका और सब लोकका स्पर्शन किया है । पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्त और मनुष्य अपर्याप्तकोंमें उत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है । अनुत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रका और सब लोक क्षेत्रका स्पर्शन किया है ।

**विशेषार्थ**—तिर्यञ्चोंमें मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिका संक्रम संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त तिर्यञ्च ही करते हैं और इनका वर्तमान स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण है, अतः तिर्यञ्चोंमें मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकोंका वर्तमान स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण बतलाया है । तथा इनका अतीत कालीन स्पर्शन जो त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम छह भागप्रमाण बतलाया है सो इसका कारण यह है कि ऐसे तिर्यञ्चोंने मारणान्तिक समुद्घातद्वारा नीचे कुछ कम छह राजुप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है, क्योंकि जो तिर्यञ्च मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिका संक्रम कर रहे हैं उनका संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त तिर्यञ्च, मनुष्य और नारकियोंमें ही मारणान्तिक समुद्घात करना सम्भव है । मोहनीयकी अनुत्कृष्ट स्थितिका संक्रम सब तिर्यञ्चोंके सम्भव है और वे सब लोकमें पाये जाते हैं, अतः मोहनीयकी अनुत्कृष्ट स्थितिके संक्रामक तिर्यञ्चोंका स्पर्शन सब लोकप्रमाण बतलाया है । सामान्य तिर्यञ्चोंमें जो उत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकोंका स्पर्शन कहा है वह पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चत्रिककी मुख्यतासे ही कहा है । तथा मनुष्यत्रिकमें भी यह स्पर्शन इसी प्रकारसे प्राप्त होता है, अतः इन तीन

§ ५७०. देवगदीय देवेषु उफः० अणुकः० लोमः० असंखे० भागो० अट्ट-णव-  
चोदसभागा वा देखणा । एवं सोहम्मीसाणे । मवण०-वाण०-जोदिसि० उफः० अणुकः०  
लोमः० असंखे० भागो अट्टधुट्ट-अट्ट-णवचोदस० देखणा । सणक्कुमारादि जाव सहस्मार  
नि उफः० अणुकः० लोमः० असंखे० भागो अट्टचोदस० देखणा । आणदादि जाव  
अच्चुदा नि उफः० खेत्तं । अणुकः० लोमः० असंखे० भागो छचोदस० देखणा । उववि  
खेत्तभंगो । एवं जाव० ।

प्रकारे तिर्यचोंमं और तीन प्रकारके मनुष्योंमि उत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकोंका स्पर्शन सामान्य  
तिर्यट्टोत्ते नमान बतलाया है । किन्तु उक्त तीन प्रकारके तिर्यचोंमं और तीन प्रकारके मनुष्योंमि  
अनुत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकोंके स्पर्शनमें कुछ विशेषता है । बात यह है कि इन तीन प्रकारके तिर्यचों  
और तीन प्रकारके मनुष्योंका वर्तमान स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और अतीतकालीन  
स्पर्शन सब लोक है, अतः इनमें अनुत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकोंका स्पर्शन उक्त प्रमाण बतलाया है ।  
जो तिर्यच वा मनुष्य मोहनीयवी उत्कृष्ट स्थितिका दन्ध करके पंचेन्द्रिय तिर्यट्ट लक्ष्यवर्षाप्रकोंमि या  
लक्ष्यवर्षा मनुष्योंमि उत्पन्न होने हैं इन्हींके प्रथम समयमें मोहनीयवी उत्कृष्ट स्थितिका संक्रम  
पाया जाता है । अत्र जब उनके वर्तमानकालीन और अतीतकालीन स्पर्शनका विचार करते हैं तो  
वह लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण ही प्राप्त होता है । इसीमे यहाँ इन दोनों मार्गणाश्रोंमि उत्कृष्ट  
स्थितिके संक्रामकोंका स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण बतलाया है । ऐसे पंचेन्द्रिय लक्ष्य-  
वर्षाप्रकों तिर्यट्टोत्ता और लक्ष्यवर्षाप्रकों मनुष्योंका वर्तमानकालीन स्पर्शन लोकके असंख्यातवें  
भागप्रमाण और अतीतकालीन स्पर्शन सब लोक बतलाया है जो उनके अनुत्कृष्ट स्थितिका संक्रम  
होते हुए सम्भव है । इसीमे यहाँ इन दोनों मार्गणाश्रोंमि अनुत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकोंका वर्तमान  
कालीन स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और अतीतकालीन स्पर्शन सब लोकप्रमाण  
बतलाया है ।

§ ५७०. देवगतिमें देवोंमि उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकोंमि लोकके असंख्यातवें  
भागप्रमाण चंद्रका और त्रसनालीके चौदह भागोंमि कुछ कम आठ और कुछ कम नौ भागप्रमाण  
चंद्रका स्पर्शन किया है । इसी प्रकार सौवर्ष और पेशान कल्पमें जानना चाहिये । भवनवासी,  
व्यन्तर और व्यातिपी देवोंमि उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिके संक्रामक जीवोंके लोकके असंख्यातवें  
भागप्रमाण चंद्रका और त्रसनालीके चौदह भागोंमि कुछ कम आठ और कुछ कम नौ भागप्रमाण  
चंद्रका स्पर्शन किया है । मनस्कृमारसे लेकर सहजार वत्स तकके देवोंमि  
उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिके संक्रामक जीवोंके लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण चंद्रका और  
त्रसनालीके चौदह भागोंमि कुछ कम आठ भागप्रमाण चंद्रका स्पर्शन किया है । आगत कल्पसे  
लेकर अच्युत कल्प तकके देवोंमि उत्कृष्ट स्थितिके संक्रामक जीवोंका स्पर्शन चंद्रके समान है । तथा  
इनमें अनुत्कृष्ट स्थितिके संक्रामक जीवोंके लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण चंद्रका और त्रसनालीके  
चौदह भागोंमि कुछ कम छह भागप्रमाण चंद्रका स्पर्शन किया है । इससे आगेके देवोंका स्पर्शन  
चंद्रके समान है । इसी प्रकार अनाठारक मार्गणा तक जानना चाहिये ।

विशेषार्थ—सामान्य देवोंका व भवनवासी आदि देवोंका जो वर्तमानकालीन व अतीत-  
कालीन स्पर्शन बतलाया है वही यहाँ उत्कृष्ट व अनुत्कृष्ट स्थितिके संक्रामक उक्त देवोंका स्पर्शन  
जानना चाहिये जो मूलमें बतलाया ही है । अन्तर केवल आनतादिक चार कल्पोंके देवोंमि उत्कृष्ट  
स्थितिके संक्रामकोंके स्पर्शनमें है । बात यह है कि आनतादिक चार कल्पोंमि जो स्वयंमेव उत्कृष्ट

§ ५७१. जहण्णए पयदं । दुविहो णिहेसो—ओघेण आदेसेण य । ओघेण मोह० जह० अज० खेत्तभंगो । आदेसेण णेरह्य० जह० खेत्तं । अज० उच्चोद्दस० । पढमाए खेत्तं । विदियादि जाव सचमा त्ति जह० खेत्तं । अज० सगपोसणं । तिरि० जह० अज० खेत्तं । सच्चपंचिदियतिरिक्ख-सच्चमणुस० जह० लोग० असंखे० भागो । अज० लो० असं० भागो सच्चलोगो वा । देवेसु जह० खेत्तं । अज० लोग० असंखे० भागो अट्ट-णवचोद्द० देखणा । एवं सोहम्मीसाणे । भवण-वाण-जोदिसि० जह० खेत्तं । अज० अणु० भंगो । सणक्कुमारादि जाव अच्चुदा त्ति एवं चेव । उवरि खेत्तं । एवं जाव० ।

स्थितिवाले द्रव्यलिंगी मुनि उत्पन्न होते हैं उन्हीं देवोंके प्रथम समयमे उत्कृष्ट स्थितिका संक्रम पाया जाता है । पर ऐसे देव संख्यात ही होते हैं, अतः इनका वर्तमानकालीन व अतीतकालीन स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण प्राप्त होता है । इसीसे यहाँ इन चार कल्पोंमें उत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकोंका स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण बतलाया है । इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक यथायोग्य स्पर्शन जानना चाहिये ।

§ ५७१. जघन्यका प्रकरण है । निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । ओघसे मोहनीयकी जघन्य और अजघन्य स्थितिके संक्रामकोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है । आदेशसे नारकियोंमें जघन्य स्थितिके संक्रामकोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है । तथा अजघन्य स्थितिके संक्रामकोंने त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम छह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । पहली पृथिवीमें स्पर्शन क्षेत्रके समान है । दूसरीसे लेकर सातवीं पृथिवी तकके नारकियोंमें जघन्य स्थितिके संक्रामकोंका स्पर्शन क्षेत्र समान है । तथा अजघन्य स्थितिके संक्रामकोंका स्पर्शन अपने अपने नरकके स्पर्शनके समान है । तिर्यञ्चोंमें जघन्य और अजघन्य स्थितिके संक्रामकोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है । सब पंचेन्द्रिय तिर्यच और सब मनुष्योंमें जघन्य स्थितिके संक्रामकोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । अजघन्य स्थितिके संक्रामकोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रका और सब लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । देवोंमें जघन्य स्थितिके संक्रामकोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है । अजघन्य स्थितिके संक्रामकोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रका और त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ व कुछ कम नौ भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । इसी प्रकार सौधर्म और पेशान कल्पमें जानना चाहिये । भवनवासी, व्यन्तर और ज्योतिषी देवोंमें जघन्य स्थितिके संक्रामकोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है । अजघन्य स्थितिके संक्रामकोंका स्पर्शन अनुत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकोंके स्पर्शनके समान है । सनत्कुमारसे लेकर अच्युत वल्प तकके देवोंमें इसी प्रकार स्पर्शन जानना चाहिये । इससे आगेके देवोंमें स्पर्शन क्षेत्रके समान है । इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिए ।

विशेषार्थ—मोहनीयकी जघन्य स्थितिके संक्रामकोंका क्षेत्र लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और अजघन्य स्थितिके संक्रामकोंका क्षेत्र सब लोक बतलाया है । इनका स्पर्शन भी इतना ही है । अतः इनके स्पर्शनको क्षेत्रके समान कहा है । सामान्यसे नारकियोंमें मोहनीयकी जघन्य स्थितिके संक्रामकोंका क्षेत्र लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण बतलाया है, स्पर्शन भी इतना ही प्राप्त होता है, क्योंकि जो अपने योग्य जघन्य स्थितिवाले असंखी जीव नरकमें उत्पन्न होते हैं उन्हीं नारकियोंके जघन्य स्थितिसंक्रम पाया जाता है । किन्तु असंखी जीव प्रथम नरकमें ही उत्पन्न होते हैं और प्रथम नरकका स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागसे अधिक नहीं है, अतः सामान्यसे नारकियोंमें जघन्य स्थितिके संक्रामकोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान बतलाया है । अजघन्य स्थितिके संक्रामक नारकियोंमें

जघन्य स्थितिके संक्रामक नारकियोंके सिवा शेष सत्र नारकियोंका समावेश हो जाता है। और इनका वर्तमानकालीन स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण तथा श्रुतोत्पत्तीन स्पर्शन वस नाश्रीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम हट भागप्रमाण है। इसीसे अजघन्य स्थितिके संक्रामकोंका स्पर्शन उक्तप्रमाण बतलाया है। प्रथम पृथिवीके नारकियोंका स्पर्शन इनके क्षेत्रके समान ही है। अतः यहाँ प्रथम पृथिवीमें जघन्य और अजघन्य स्थितिके संक्रामकोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान बतलाया है। दूसरेसे लेकर छठे नरक तक जघन्य स्थितिसंक्रम इन सम्यग्दृष्टि नारकियोंके अन्तिम समयमें होता है जिन्होंने यहाँ उत्पन्न होनेके अन्तर्मुहूर्त बाद सम्यक्त्वको प्राप्त कर लिया है और अनन्ता-नुसन्धीकी विसंशोभना कर ली है। तथा मातवें नरकमें जघन्य स्थितिसंक्रम इन मिथ्यादृष्टि नारकियोंके सम्भ्रम है जो जीवन भर सम्यग्दृष्टि रहे हैं पर अन्तमें मिथ्यादृष्टि हो गये हैं। अतः यदि इन जीवोंके स्पर्शनका विचार किया जाता है तो यह लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण प्राप्त होता है। और इनका क्षेत्र भी इतना ही है, अतः उक्त नरकोंमें जघन्य स्थितिके संक्रामकोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान बतलाया है। अजघन्य स्थितिके संक्रामकोंमें जघन्य स्थितिके संक्रामकोंके सिवा शेष सत्र नारकियोंका समावेश हो जाता है। अतः इनका स्पर्शन अपने-अपने नरकके स्पर्शनके समान बतलाया है। तिस्रोमें जघन्य स्थितिके संक्रामकोंका स्पर्शन लोकके संख्यातवें भागप्रमाण प्राप्त होता है, क्योंकि जघन्य स्थितिका नाम वादर एकेंद्रिय पर्याप्तमें ही सम्भव है। तथा अजघन्य स्थितिके संक्रामकोंमें एकेंद्रिय मुख्य है और इनका स्पर्शन सत्र लोचप्रमाण है। इन दोनोंका क्षेत्र भी इतना ही है। अतः इनका स्पर्शन क्षेत्रके समान बतलाया है। एकेंद्रिय प्रादि तिस्रोमें और लक्ष्यपर्याप्तक मनुष्योंमें मोक्षनीयकी जघन्य स्थितिका क्षेत्र उन्हींके सम्भ्रम है जो एकेंद्रिय पर्याप्तसे आकर यहाँ उत्पन्न हुए हैं। अतः यदि इनके क्षेत्रका विचार किया जाता है तो यह लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण प्राप्त होता है, स्पर्शनमें भी उससे विशेष अन्तर नहीं पड़ता। अतः इनका जघन्य स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण बतलाया है। मनुष्यविरुद्धोंमें मोक्षनीयकी जघन्य स्थितिके संक्रामक चक्र मृदमसंशय जीव होते हैं और उनका स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण है यह स्पष्ट ही है। इसीसे यहाँ तीन प्रकारके मनुष्योंमें भी जघन्य स्थितिके संक्रामकोंका स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण है यह बतलाया है। तथा इन समयमें अजघन्य स्थितिके संक्रामकोंका स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और सत्र लोक है यह स्पष्ट ही है। जो असंज्ञी जीव मर कर देवोंमें उत्पन्न होने हैं उन्हीं देवोंके जघन्य स्थितिका संक्रम सम्भव है। अतः यदि इनके स्पर्शनका विचार किया जाता है तो यह लोकके असंख्यातवें भागसे अधिक नहीं प्राप्त होता। क्षेत्र भी इतना ही है। अतः देवोंमें मोक्षनीयकी जघन्य स्थितिके संक्रामकोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान बतलाया है। अजघन्य स्थितिके संक्रामकोंमें जघन्य स्थितिके संक्रमकोंके सिवा शेष सत्र देवोंका प्रमाण हो जाता है। और सामान्यमे देवोंका स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और असनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम श्राट और कुछ कम नीभागप्रमाण है। इसीसे यहाँ अजघन्य स्थितिके संक्रामकोंका स्पर्शन उक्तप्रमाण बतलाया है। सौधर्म और ऐशान कल्पमें यह स्पर्शन उक्त प्रकारसे बतला जाता है अतः यहाँ इस स्पर्शनको उक्त प्रकारसे जाननेकी सूचना की है। भयनवासी, व्यन्तर और प्योतिपियोंमें जो जघन्य स्थितिके संक्रामक जीव होते हैं उनका यदि स्पर्शन देखा जाता है तो यह लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण ही प्राप्त होता है। क्षेत्र भी इतना ही है, अतः इनके स्पर्शनको क्षेत्रके समान कहा है। तथा इनमें अनुत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकोंके समान बहुभाग राशि अजघन्य स्थितिके संक्रामक है। इसलिये इनके स्पर्शनको एक समान कहा है। इसी प्रकार सनदुष्कारसे लेकर अच्युत कल्प तक जानना चाहिये। तथा इससे आगेके जघन्य और अजघन्य स्थितिके संक्रामक देवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है यह स्पष्ट ही है। इसी प्रकार विचार करके

§ ५७२. णाणाजीवेहि कालो दुविहो जहणुक्कस्सट्ठिदिसंक्रमविसयभेदेण । तत्थुक्कस्से ताव पयदं । दुविहो णिहेसो—ओषेण आदेसेण य । ओषेण मोह० उक्क० ट्ठिदिसंका० केवचिरं० ? जह० एयस०, उक्क० पल्लिदो० असंखे० भागो । अणु० सव्वद्धा । एवं सव्वणिरय-सव्वतिरिक्ख-देवा भवणादि जाव सहस्सार ति । णवरि पंचि०तिरि०-अपज्ज० उक्क० ट्ठिदिसं० जह० एयस०, उक्क० आवलि० असंखे० भागो । अणु० ओषो ।

§ ५७३. मणुसतिए उक्क० जह० एयस०, उक्क० अंतोमुहुत्तं । अणु० ओघमंगो । मणुसअपज्ज० उक्क० जह० एयसमजो, उक्क० आवलि० असंखे० भागो । अणु० जह०

अनाहारक मार्गणा तक यथायोग्य स्पर्शनका विचार कर लेना चाहिये ।

§ ५७२. नाना जीवोंकी अपेक्षा काल दो प्रकारका है—जघन्य स्थितिके संक्रामकोंको विषय करनेवाला और उत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकोंको विषय करनेवाला । सर्व प्रथम उत्कृष्टका प्रकरण है । उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । ओघकी अपेक्षा मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकोंका कितना काल है ? जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल पत्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकोंका काल सर्वदा है । इसी प्रकार सब नारकी, सब तिर्यञ्च, सामान्य देव और भवनवासी देवोंसे लेकर सहस्रार कल्प तकके देवोंमें जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंमें उत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकोंका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकोंका काल ओघके समान है ।

विशेषार्थ—नाना जीवोंकी अपेक्षा मोहनीयकी स्थितिका वन्ध कमसे कम एक समय तक और अधिकसे अधिक पत्यके असंख्यातवें भागप्रमाण काल तक होता है । इसके बाद एक भी जीव मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिका वन्धक नहीं रहता । इसीसे यहाँ मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकोंका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल पत्यके असंख्यातवें भागप्रमाण कहा है, क्योंकि उत्कृष्ट स्थितिका संक्रम उत्कृष्ट स्थितिवन्धका अविनामावी है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिवाले जीव सर्वदा पाये जाते हैं, इससे अनुत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकोंका काल सर्वदा वतलाया है । सब नारकी, सब तिर्यञ्च, सामान्य देव और भवनवासियोंसे लेकर सहस्रार कल्प तकके देव ये मार्गणाएँ ऐसी हैं जिनमें यह ओघप्ररूपणा अविकल घटित हो जाती है, अतः उनके कथनको ओघके समान वतलाया है । किन्तु पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंमें उत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकोंके उत्कृष्ट कालमें कुछ विशेषता है । बात यह है कि जो संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त जीव उत्कृष्ट स्थितिका वन्ध करके इनमें उत्पन्न होते हैं वन्हींके यह उत्कृष्ट स्थितिका संक्रम पाया जाता है । पर ऐसे जीव पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंमें आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण कालतक ही उत्पन्न हो सकते हैं । इसके बाद नियमसे अन्तर पड़ जाता है । इसलिये पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंमें मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकोंका उत्कृष्ट काल आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण वतलाया है । इनमें जघन्य कालका कथन सुगम है ।

§ ५७३. मनुष्यत्रिकमें उत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकोंका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तमुद्धते है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकोंका काल ओघके समान है । मनुष्य अपर्याप्तकोंमें उत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकोंका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकोंका जघन्य काल एक समय कम सुहाव-

सुहा० समयूणं, उक्क० पल्लिदो० असंखे०भागो । आणदादि जाव सक्वट्टे त्ति उक्क० जह० एयसमओ, उक्क० संखेजा समया । अणु० सक्वट्टा । एवं जाव० ।

§ ५७४. जहण्णए पयदं । दुविहो णिहेसो—ओषेण आदेसेण य । ओषेण मोह० जह० द्विदिसंका० केव० ? जह० एयसमओ, उक्क० संखेजा समया । अज० सक्वट्टा । एवं मणुसतिय० । विदियादि जाव छट्टि त्ति जोदिसियादि जाव सक्वट्टा त्ति च ।

महण्णप्रमाण है और उत्कृष्ट काल पत्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है । आनत कल्पसे लेकर सर्वार्थ-सिद्धि तकके देवोंमें उत्कृष्ट स्थितिके संकामकोंका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल संख्यात समय है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिके संकामकोंका काल सर्वदा है । इसी प्रकार अनाहारक मार्गणातक जानना चाहिये ।

**विशेषार्थ**—एक जीवकी अपेक्षा उत्कृष्ट स्थितिवन्धका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्गुहूर्त वतलाया है । यतः उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेगले मनुष्य संख्यात होते हैं, अतः इनमें उत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट काल अन्तर्गुहूर्तमें अधिक नहीं प्राप्त होता । यतः उत्कृष्ट स्थितिधकम उत्कृष्ट स्थितिवन्धका अविनाभावी है अत मनुष्यत्रिकमे उत्कृष्ट स्थितिके संकामकोंका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्गुहूर्त वतलाया है । तथा मनुष्यत्रिकमे अनुत्कृष्ट स्थितिके संकामक जीव सदा पायें जाते हैं, अतः इनका काल सर्वदा वतलाया है । मनुष्य अपर्याप्तकोंमें उत्कृष्ट स्थितिके संकामकोंका जघन्य और उत्कृष्ट काल तां पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंके समान घटित कर लेना चाहिये । हां इनके अनुत्कृष्ट स्थितिके संकामकोंके कालमें कुछ विशेषता है । वात यह है कि यह सान्तर मार्गणा है और इसका जघन्य काल सुहाभयप्रणप्रमाण और उत्कृष्ट काल पत्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है । इसीसे यहाँ अनुत्कृष्ट स्थितिके संकामकोंका जघन्य और उत्कृष्ट काल उक्तप्रमाण प्राप्त होता है । यहाँ जघन्य कालमें जो एक समय कम क्रिया है सो यह उत्कृष्ट स्थितिके सक्रमकी अपेक्षासे क्रिया है । आनतादिकमें उत्कृष्ट स्थिति उत्पन्न होनेके प्रथम समयमें सम्भव है । किन्तु यहाँ उत्कृष्ट स्थितिवाले मनुष्य ही उत्पन्न होते हैं और वे संख्यात होते हैं, अतः यहाँ उत्कृष्ट स्थितिके संकामकोंका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल संख्यात समय वतलाया है । यहाँ अनुत्कृष्ट स्थितिके संकामकोंका काल सर्वदा है यह स्पष्ट ही है । इसी प्रकार अपनी-अपनी विशेषताको जानकर अनाहारक मार्गणा तक यथायोग्य उत्कृष्ट और अनुत्कृष्टस्थितिके संकामकोंका काल जान लेना चाहिये ।

§ ५७४. जघन्यका प्रकरण है । निर्देश दो प्रकारका है—ओषनिर्देश और आदेशनिर्देश । ओषसे मोहनीयकी जघन्य स्थितिके संकामकोंका कितना काल है ? जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल संख्यात समय है । अजघन्य स्थितिके संकामकोंका काल सर्वदा है । इसी प्रकार मनुष्यत्रिकमें, दूसरी पृथिवीसे लेकर छठी पृथिवी तकके नारकियोंमें और व्योतिपी देवोंसे लेकर सर्वार्थसिद्धितकके देवोंमें जानना चाहिये ?

**विशेषार्थ**—ओषसे मोहनीयका जघन्य स्थितिसंक्रम क्षणिक जीवके सूक्ष्मसम्पराय गुणस्थानमें एक समय अधिक एक आगलि कालके शेष रहने पर होता है । यतः क्षणिकश्रेणी पर चढ़नेका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल संख्यात समय है अतः ओषसे जघन्य स्थितिके संकामकोंका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल संख्यात समय कहा है । ओषसे अजघन्य स्थितिके संकामकोंका काल सर्वदा है, यह स्पष्ट ही है । मूलमें जो मनुष्यत्रिक, दूसरी पृथिवीसे



§ ५७५. आदेसेण षेरइय० जह० द्विदिसं० जह० एयसमओ, उक्क० आवलि० असंखे० भागो । अज० ओघो । एवं पदमाए सव्वपंचिदियतिरिक्ख-देव०-भवन०-चाणवेतर ति । सत्तमाए जह० जह० एयस०, उक्क० पल्लिदो० असंखे० भागो । अज० ओघो ।

लेकर छठी पृथिवी तकके नारकी और ज्योतिषी देवोंसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देव जो ये मार्गणाएँ गिनाई हैं सो इनमें जघन्य और अजघन्य स्थितिके संक्रामकोंका काल ओघके समान बन जाता है। इसके कारण भिन्न भिन्न हैं। मनुष्यत्रिकका कारण तो ओघके समान ही है, क्योंकि क्षपकश्रेणिकी प्राप्ति मनुष्यत्रिकके ही होती है। दूसरी पृथिवीसे लेकर छठी पृथिवी तकके नारकियोंमें और ज्योतिषी देवोंमें यह कारण है कि जो उत्कृष्ट आयुके साथ उत्पन्न हों और उत्पन्न होनेके पश्चात् अन्तर्मुहूर्त कालके भीतर सम्यग्दृष्टि होकर अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी विसंयोजना कर लें उनके अन्तिम समयमें जघन्य स्थितिसंक्रम होता है। ऐसे जीव मर कर मनुष्योंमें ही उत्पन्न होते हैं अतः उनका प्रमाण संख्यात ही होगा। यही कारण है कि इन मार्गणाओंमें जघन्य स्थितिसंक्रमका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल संख्यात समय बतलाया है। सौधर्म कल्पसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें जहाँके भवके अन्तिम समयमें जघन्य स्थितिसंक्रम होता है जो पहले मनुष्य पर्यायमें दो बार अपशमश्रेण पर चढ़े हों और फिर दर्शनमोहनतीयकी क्षण करके उत्कृष्ट आयुके साथ उक्त देवोंमें उत्पन्न हुए हों। यतः ये भी मर कर पर्याप्त मनुष्योंमें ही उत्पन्न होते हैं अतः इनका प्रमाण संख्यात ही प्राप्त होता है। यही कारण है कि इनमें भी जघन्य स्थितिके संक्रामकोंका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल संख्यात समय कहा है। इन सब मार्गणाओंमें अजघन्य स्थितिके संक्रामकोंका काल सर्वदा है यह स्पष्ट ही है।

§ ५७६. आदेशसे नारकियोंमें जघन्य स्थितिके संक्रामकोंका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण है। तथा अजघन्य स्थितिके संक्रामकोंका काल सर्वदा है। इसी प्रकार पहली पृथिवीके नारकियोंमें तथा सब पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च, सामान्य देव, भवनवासी देव और व्यन्तर देवोंमें जानना चाहिये। सातवीं पृथिवीमें जघन्य स्थितिके संक्रामकोंका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल पत्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है। तथा अजघन्य स्थितिके संक्रामकोंका काल ओघके समान है।

विशेषार्थः—नरकमें जो असंखी पंचेन्द्रिय अपने योग्य जघन्य स्थितिके साथ उत्पन्न होते हैं उन्हेंकि जघन्य स्थितिका संक्रम पाया जाता है। इनके वहाँ निरन्तर उत्पन्न होनेका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण है। इसीसे यहाँ सामान्य नारकियोंमें जघन्य स्थितिके संक्रामकोंका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण कहा है। प्रथम नरकके नारकी, पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च, सामान्य देव, भवनवासी देव और व्यन्तर देव इन मार्गणाओंमें यह काल इसी प्रकार प्राप्त होता है; इसलिये इनमें जघन्य और अजघन्य स्थितिके संक्रामकोंका काल सामान्य नारकियोंके समान कहा है। इतनी विशेषता है कि पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चोंमें पंचेन्द्रियोंकी उत्पन्न करारक यह काल प्राप्त करना चाहिये। कुछ ऐसे काल हैं जो नाना जीवोंकी अपेक्षा उत्कृष्टरूपसे पत्यके असंख्यातवें भागप्रमाण बतलाये हैं। उदाहरणार्थ सासादनसम्यग्दृष्टिका काल, सम्यग्मिथ्यादृष्टिका काल, अनन्तानुबन्धीका विसंयोजनाकाल, मिथ्यात्वको प्राप्त होनेका काल आदि। सातवें वरकमें जघन्य स्थिति जहाँ जीवोंके होती है जो जीवन भर सम्यग्दृष्टि रहकर अन्तमें अन्तर्मुहूर्त काल शेष रहने पर मिथ्यात्वको प्राप्त हुए हैं। इनके इस प्रकार मिथ्यात्वको प्राप्त होनेका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल पत्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है, अतः



§ ५७८. जहणण ए पयदं । दुविहो णिहेसो—ओघेण आदेसेण य । ओघेण मोहो जहो द्विदिसंकां अंतरे जहो एयसमओ, उक्को छम्मासं । अजो णत्थि अंतरं । एवं मणुसत्ति ए । णवरि मणुसिणीसु वासपुधत्तं । आदेसेण सव्वत्थ उक्को-भंगो । णवरि तिरिक्खोघे जहो अजो णत्थि अंतरं । एवं जावो ।

§ ५७९. भावो सव्वत्थ ओदइओ भावो ।

§ ५८०. अप्पावहुअं दुविहं—द्विदि-जीवप्पावहुअभेदेण । द्विदिअप्पावहुअं दुविहं जहणुक्कस्सद्विदिसंतकम्मविसयभेदेण । तत्थुक्कस्से ताव पयदं । दुविहो णिहेसो—ओघेण आदेसेण य । ओघेण उक्कस्सद्विदिसंकमो थोवो । जद्विदिसंकमो विसेसाहिओ ।

प्रमाण है । इसीसे यहाँ अनुकृष्ट स्थितिके संक्रामकोंका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर पत्यके असंख्यातवें भागप्रमाण कहा है । अनाहारक मार्गणा तक इसी प्रकार यथायोग्य अन्तरकाल घटित कर लेना चाहिये ।

§ ५७८ जघन्यका प्रकरण है । उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । ओघकी अपेक्षा मोहनीयकी जघन्य स्थितिके संक्रामकोंका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर छह महीना है । तथा अजघन्य स्थितिके संक्रामकोंका अन्तरकाल नहीं है । इसी प्रकार मनुष्यत्रिकमें जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि मनुष्यनियोगमें जघन्य स्थितिके संक्रामकोंका उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व है । आदेशकी अपेक्षा सर्वत्र उत्कृष्टके समान भंग है । किन्तु इतनी विशेषता है कि सामान्य तिर्यञ्चोंमें जघन्य और अजघन्य स्थितिके संक्रामकोंका अन्तरकाल नहीं है । इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिये ।

विशेषार्थ—ओघसे मोहनीयकी जघन्य स्थितिका सक्रम क्षपकश्रेणिकमें प्राप्त होता है और क्षपकश्रेणिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर छह महीना है । इसीसे यहाँ जघन्य स्थितिके संक्रामकोंका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर छह महीना बतलाया है । ओघसे अजघन्य स्थितिके संक्रामकोंका अन्तर नहीं है यह स्पष्ट ही है । यतः क्षपकश्रेणिकी प्राप्ति मनुष्यत्रिकमें सम्भव है, अतः यहाँ भी यह अन्तर ओघके समान बतलाया है । किन्तु मनुष्यनियोगमें क्षपकश्रेणिका उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व पाया जाता है, अतः इस मार्गणमें जघन्य स्थितिके संक्रामकोंका उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्वप्रमाण बतलाया है । तथा आदेशकी अपेक्षा सर्वत्र जघन्य स्थितिके संक्रामकोंका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर उत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकोंके जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरके समान पाया जाता है, इसलिये इस कथनको उत्कृष्टके समान कहा है । किन्तु सामान्य तिर्यञ्चोंमें जघन्य और अजघन्य दोनों प्रकारकी स्थितिके संक्रामक जीव सदा पाये जाते हैं, अतः इनका अन्तरकाल नहीं है यह बतलाया है । इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक यथायोग्य अन्तर काल घटित कर लेना चाहिये ।

§ ५७९. भाव सर्वत्र औदधिक है ।

§ ५८०. अप्पबहुत्व दो प्रकारका है—स्थितिअल्पबहुत्व और जीवअल्पबहुत्व । स्थितिअल्पबहुत्व दो प्रकारका है—जघन्य स्थितिसत्कर्मविषयक और उत्कृष्ट स्थितिसत्कर्मविषयक । इनमेंसे सर्व प्रथम उत्कृष्टका प्रकरण है । उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । ओघकी अपेक्षा उत्कृष्ट स्थितिसंकम थोड़ा है । यत्स्थिति संक्रम विशेष अधिक है ।

केचित्तियमेत्तेण ? आवलियमेत्तेण । एवं चट्सु गदीसु । एवं जाव० ।

§ ५८१. जहण्णए पयदं । दुविहो णिहेसो—ओषेण आदेसेण य । तत्थोषेण जहण्णओ द्विदिसंक्रमो थोवो, एयणिसेयपमाणत्तादो । जट्टिदो असंखे० गुणा, समया-हियावलियपमाणत्तादो । एवं मणुसतिए । आदेसेण णेरइय० सच्चत्थोवो जह० द्विदि-संक्रमो । जट्टिदिसंक्रमो विसेसाहियो । एवं सच्चवासु गईसु । एवं जाव० ।

§ ५८२. जीवप्पावहुञ्चं दुविहं जहण्णुक्क० द्विदिसंक्रामयविसयभेदेण । उक्कस्सए ताव पयदं । दुविहो णिहेसो—ओषेण आदेसेण य । तत्थ ओषेण उक्क० द्विदिसंक्रा० थोवा । अणु० अणंतगुणा । एवं तिरिक्खोवे । आदेसेण खेरइय० मोह० उक्क०

कितना विशेष अधिक है ? एक आवलिप्रमाण अधिक है । इसी प्रकार चारों गतियोंमें जानना चाहिये । इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिये ।

**विशेषार्थ**—मोदनीयका उत्कृष्ट स्थितिग्रन्थ होनेपर वन्यावलिके वाद उदयावलिप्रमाण निपेक्षकोंको छोड़कर शेषका संक्रम होता है । इसलिये उत्कृष्ट स्थितिसंक्रमसे यत्स्थिति एक आवलि-प्रमाण अधिक प्राप्त होती है । यहाँ सक्रम दो आवलि क्रम उत्कृष्ट स्थितिका हुया है किन्तु यत्स्थिति एक आवलि क्रम उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण पार्द जाती है । इसीसे प्रकृतमें उत्कृष्ट स्थितिसंक्रमसे यत्स्थितिको एक आवलि अधिक वतलाया है । इसी प्रकार चारों गतियोंमें यह अल्पबहुद्वय जानना चाहिये । आगे अनाहारक मार्गणा तक भी इसका ह्मी प्रकार यथायोग्य विचार करके कथन करना चाहिये ।

§ ५८३ जघन्यका प्रकरण है । उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । उनमेंसे ओघकी अपेक्षा जघन्य स्थितिसंक्रम स्तोक है, क्योंकि उसका प्रमाण एक निपेक्ष है । उससे यत्स्थिति असंख्यातगुणी है, क्योंकि उसका प्रमाण एक समय अधिक एक आवलिप्रमाण है । इसी प्रकार मनुष्यत्रिक्रम जानना चाहिये । आदेशकी अपेक्षा नारकियोंमें जघन्य स्थितिसंक्रम सबसे स्तोक है । उससे यत्स्थिति विशेष अधिक है । इसी प्रकार सब गतियोंमें जानना चाहिये । इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिये ।

**विशेषार्थ**—क्षपक जीवके मूहसम्परायका एक समय अधिक एक आवलिप्रमाण काल शेष रह जाने पर जघन्य स्थितिसंक्रम प्राप्त होता है । यहाँ जघन्य स्थितिसंक्रमका प्रमाण एक निपेक्ष है और यत्स्थितिका प्रमाण एक समय अधिक एक आवलि है । इसीसे प्रकृतमें जघन्य स्थिति-संक्रमसे यत्स्थिति असंख्यातगुणी वतलाई है । यह अल्पबहुद्वय मनुष्यत्रिक्रम घटित हो जाता है, इसलिये उनमें उस अल्पबहुद्वयको ओघके समान वतलाया है । तथा नारकी आदि शेष मार्गणाओंमें जघन्य स्थितिसंक्रमसे यत्स्थिति एक आवलि अधिक होती है यह स्पष्ट ही है । इसीसे वहाँ जघन्य स्थितिसंक्रमसे यत्स्थितिको विशेष अधिक वतलाया है । इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक यथा-योग्य अल्पबहुद्वयको जान लेना चाहिये ।

§ ५८४. जीवअल्पबहुद्वय दो प्रकारका है—जघन्य स्थितिके संक्रामकोंसे सम्बन्ध रखनेवाला और उत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकोंसे सम्बन्ध रखनेवाला । सर्वप्रथम उत्कृष्टका प्रकरण है । उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । ओघकी अपेक्षा उत्कृष्ट स्थितिके संक्रामक जीव थोड़े हैं । अनुत्कृष्ट स्थितिके संक्रामक जीव अनन्तगुणें हैं । इसी प्रकार सामान्य

द्विदिसं० थोवा । अणु० द्विदिसं० असंखे०गुणा । एवं सव्वणेरहय-सव्वपंचिदिय-तिरिक्ख-मणुस-मणुसअपज्जं०-देवा जाव अवराइदा त्ति । मणुसपज्ज०-मणुसिणीसु सव्वहु०देवेसु एवं चेव । णवरि संखेज्जगुणं कायव्वं । एवं जाव० ।

§ ५८३. जह० पयदं । दुविहो णिहोसो—ओघेण आदेसेण य । ओघादेसं सव्वमुक्खससंभंगो । णवरि तिरिक्खत्ता णारयसंभंगो ।

एवं मूलपयडिद्विदिसंक्रमे तेवीसमणिओगद्वाराणि समत्ताणि ।

§ ५८४. भुजगारसंक्रमे त्ति तत्थ इमाणि तेरस अणियोगद्वाराणि—समुक्किचणा जाव अप्पावहुए त्ति । समुक्किचणाणु० दुविहो णिहोसो ओघादेसभेदेण । ओघेण अत्थि मोह० भुजगार-अप्पदर-अवद्विद-अवचव्वद्विदिसंक्रामया । एवं मणुसत्तिए । आदेसेण सव्वगहमग्गणाविसेसेसु द्विदिविहत्तिसंभंगो । एवं जाव० ।

तिर्यञ्चोंमें जानना चाहिये । आदेशकी अपेक्षा नारकियोंमें मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिके संक्रामक जीव थोड़े हैं । अनुत्कृष्ट स्थितिके संक्रामक जीव असंख्यातगुरो हैं । इसी प्रकार सब नारकी, सब पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च, सामान्य मनुष्य, मनुष्य अपर्याप्त, सामान्य देव और अपराजित तकके देवोंमें जानना चाहिये । मनुष्यपर्याप्त, मनुष्यनी और सर्वार्थसिद्धिके देवोंमें इसी प्रकार जानना चाहिये । किन्तु यहाँ संख्यातगुणा करना चाहिये । इसी प्रकार अनाहारक मार्गणातक जानना चाहिये ।

§ ५८३. जघन्यका प्रकरण है । निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । यहाँ ओघ और आदेश दोनोंका कथन उत्कृष्टके समान है । किन्तु इतनी विशेषता है कि तिर्यञ्चोंका भंग नारकियोंके समान है । अर्थात् जघन्य स्थितिके संक्रामक तिर्यचोंसे अजघन्य स्थितिके संक्रामक तिर्यञ्च असंख्यातगुरो हैं ।

इसी प्रकार मूलप्रकृतिस्थितिसंक्रममें तेईस अनुयोगद्वार समान हुए ।

§ ५८४. भुजगारसंक्रमका प्रकरण है । उसमें समुत्कीर्तनासे लेकर अल्पबहुत्व तक ये तेरह अनुयोगद्वार जानने चाहिये । समुत्कीर्तनानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । ओघकी अपेक्षा मोहनीयकी भुजगार, अल्पतर, अवस्थित और अवक्तव्य स्थितिके संक्रामक जीव हैं । इसी प्रकार मनुष्यत्रिकमें जानना चाहिये । आदेशकी अपेक्षा गति-मार्गणाके सब भेदोंमें स्थितिबिभक्तिके समान कथन जानना चाहिये । इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिये ।

विशेषार्थ—भुजगार अनुयोगद्वारमें भुजगार, अल्पतर, अवस्थित और अवक्तव्य इन चारोंका विचार किया जाता है । इसके अवान्तर अधिकार तेरह हैं । वे ये हैं—समुत्कीर्तना, स्वामित्व, एक जीवकी अपेक्षा काल, अन्तर, नाना जीवोंकी अपेक्षा भंगविचय, भागाभाग, परिमाण, क्षेत्र, स्पर्शन, काल, अन्तर, भाव और अल्पबहुत्व । सर्व प्रथम यहाँ समुत्कीर्तनाका विचार करते हैं । ओघसे भुजगारस्थितिके संक्रामक अल्पतरस्थितिके संक्रामक, अवस्थितस्थितिके संक्रामक और अवक्तव्यस्थितिके संक्रामक जीव हैं । जो कम स्थितिका संक्रम करके अन्तर समयमें अधिक स्थितिका संक्रम करे उसे भुजगारस्थितिका संक्रामक कहते हैं । जो अधिक स्थितिका संक्रम करके

§ ५८५. सामित्ताणु० दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य । ओघेण मोह० भुज०-अवट्टि०संकमो कस्स ? अण्णद० मिच्छाइट्टिस्स । अप्प०संकमो कस्स ? अण्णद० सम्माइट्टिस्स वा मिच्छाइट्टिस्स वा । अवत्तव्वसंकमो कस्स ? अण्णद० उवसामणादो परिवदमाणयस्स पढमसमयदेवस्स वा । एवं मणुसत्तिए । णवरि पढमसमयदेवालावो ण कायव्वो । आदेसेण सव्वगइमग्गणावयवेषु ओघभंगो । णवरि अवत्तव्वपदसामित्तं णत्थि । अण्णं च पंचि०तिरि०अपज्ज०-मणुसअपज्ज० भुज०-अप्प०-अवट्टि० कस्स ? अण्णदरस्स । आणदादि जाव उवरिमगेवज्जे त्ति अप्पदरपदमोघभंगो । अणुद्दिसादि जाव सव्वट्ठे त्ति अप्पद० कस्स ? अण्णद० । एवं जाव० ।

§ ५८६. कालाणु० दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य । ओघेण मोह०

अनन्तर समयमे कम स्थितिका संक्रम करे उसे अल्पतरस्थितिका संक्रामक कहते हैं । जिसके पहले समयके समान ही दूसरे समयमें स्थितिका संक्रम हो उसे अवस्थितसंक्रामक कहते हैं और जो असंक्रामक होनेके बाद पुनः संक्रामक होता है उसे अवक्तव्यस्थितिका संक्रामक कहते हैं । ओघसे इन चारों प्रकारके जीवोंका पाया जाना सम्भव है, इसलिये ओघमे भुजगार, अल्पतर, अवस्थित और अवक्तव्य स्थितिके संक्रामक जीव हैं यह कहा है । मनुष्यत्रिकमें यह व्यवस्था घटित हो जाती है, अतः इनके कथनको ओघके समान कहा है । इनके सिवा गतिमार्गणाके और जितने भेद हैं उनमें स्थितिबिभक्तिके समान भुजगार, अल्पतर और अवस्थित ये तीन भेद ही सम्भव हैं तथा आनतसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तक एक अल्पतर पद ही सम्भव है । इस लिये इनके कथनको स्थितिबिभक्तिके समान कहा है । इसी प्रकार अनाहारक मार्गणातक यथायोग्य जानना चाहिये ।

§ ५८७. स्वामित्थानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेश-निर्देश । ओघकी अपेक्षा मोहनीयकी भुजगार और अवस्थितस्थितिका संक्रम किसके होता है ? किसी एक मिथ्यादृष्टिके होता है । अल्पतरस्थितिका संक्रम किसके होता है ? किसी एक सम्यग्दृष्टि या मिथ्यादृष्टिके होता है । अवक्तव्यस्थितिका संक्रम किसके होता है ? जो उपशामक उपशामनासे च्युत हो रहा है उसके होता है । या जो उपशामक मर कर देव हुआ है उसके प्रथम समयमें होता है । इसी प्रकार मनुष्यत्रिकमें जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि 'जो उपशामक मर कर प्रथम समयवर्ती देव है उसके होता है' यह आलाप यहाँ नहीं कहना चाहिये । आदेशकी अपेक्षा गतिमार्गणाके सब भेदोंमें ओघके समान जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि यहाँ अवक्तव्यपदका स्वामित्व नहीं है । इसके सिवा इतनी विशेषता और है कि पंचेन्द्रिय तिर्यक अपर्याप्त और मनुष्य अपर्याप्त जीवोंमें भुजगार, अल्पतर और अवस्थित स्थितिका संक्रम किसके होता है । किसी एकके होता है । आशय यह है कि इन दो मार्गणाओंमें एक मिथ्यादृष्टि गुणस्थान ही होता है, अतः यहाँ मिथ्यादृष्टिके ही तीनों पद घटित करने चाहिए । आनतसे लेकर उपरिम प्रवेयक तकके देवोंमें अल्पतरपदका कथन ओघके समान है । आशय यह है कि इनमे मिथ्यादृष्टि और सम्यग्दृष्टि दोनों प्रकारके जीव हांते हुए भी यहाँ मात्र एक अल्पतर पद ही पाया जाता है । अनुद्दिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें अल्पतरस्थितिका संक्रम किसके होता है । किसीके भी होता है । इसी प्रकार अनाहारक मार्गणातक जानना चाहिये ।

§ ५८६. कालानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश ।

भुज०संक्रामओ केव० ? जह० एयसमओ, उक० चत्तारि समया । अप्पद० जह० एयस०, उक० तेवड्डिसागरोवमसदं सादिरेयतिवलिदोवमेहि' सादिरेयं । अवड्डि० जह० एयस०, उक० अंतोमु० । अवत्तव्व० जहण्णुक्क० एयसमओ ।

§ ५८७. आदेसेण णेरइय० भुज० ज० एयसमओ, उक० तिण्णि समया ।

ओघकी अपेक्षा मोहनीयकी भुजगारस्थितिके संक्रामकका कितना काल है ? जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल चार समय है । अल्पतरस्थितिके संक्रामकका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त और तीन पल्य अधिक एक सौ त्रेसठ सागर है । अवस्थित स्थितिके संक्रामकका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । तथा अवक्तव्यका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है ।

**विशेषार्थ**—किसी एक जीवने एक समय तक भुजगारस्थितिका संक्रम किया और दूसरे समयमे वह अल्पतर या अवस्थितस्थितिका संक्रम करने लगा तो भुजगार स्थितिसंक्रमका जघन्य काल एक समय प्राप्त होता है । तथा जब कोई एक एकैन्द्रिय जीव पहले समयमें अज्ञान्यसे स्थितिको बढ़ा कर बाँधता है, दूसरे समयमें संक्लेशाक्षयसे स्थितिको बढ़ा कर बाँधता है, तीसरे समयमें भरकर और एक विग्रहसे संज्ञियोंमें उत्पन्न होकर असंज्ञियोंके योग्य स्थितिको बढ़ाकर बाँधता है और चौथे समयमें शरीरको ग्रहण करके संज्ञीके योग्य स्थितिको बढ़ाकर बाँधता है तब उसके भुजगार स्थितिबन्धके चार समय पाये जानेके कारण प्रथम समयसे एक आवलिके बाद भुजगार-स्थितिसंक्रमके भी चार समय पाये जाते हैं, इसलिये भुजगार स्थितिसंक्रमका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल चार समय बतलाया है । जो जीव एक समय तक अल्पतरस्थितिका संक्रम करके दूसरे समयमें भुजगार या अवस्थितस्थितिका संक्रम करने लगता है उसके अल्पतरस्थितिके संक्रमका जघन्य काल एक समय पाया जाता है ! तथा जिस जीवने अन्तर्मुहूर्त तक अल्पतर स्थितिका संक्रम किया । फिर वह तीन पल्यकी आयु लेकर भोगभूमिमें उत्पन्न हुआ और वहाँ आयुमें अन्तर्मुहूर्त कालके शेष रहने पर उसने सम्यक्त्वको ग्रहण किया । फिर वह छयासठ सागर तक सम्यक्त्वके साथ परिभ्रमण करता रहा । पश्चात् अन्तर्मुहूर्त काल तक सम्यग्मिध्यात्वमें रहा और अन्तर्मुहूर्तके बाद पुनः सम्यक्त्वको प्राप्त करके दूसरी बार छयासठ सागर काल तक सम्यक्त्वके साथ परिभ्रमण करता रहा । पश्चात् मिथ्यात्वमे गया और इकतीस सागरकी आयुवाले देवोंमे उत्पन्न हो गया । फिर वहाँसे च्युत होकर और मनुष्योंमें उत्पन्न होकर अन्तर्मुहूर्त काल तक अल्पतर स्थितिका संक्रम किया । फिर वह भुजगारस्थितिका संक्रम करने लगा । इस प्रकार इस कालका योग अन्तर्मुहूर्त और तीन पल्य अधिक एक सौ त्रेसठ सागर होता है अतः प्रकृतमें अल्पतर स्थितिसंक्रमका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त और तीन पल्य अधिक एकसौ त्रेसठ सागरप्रमाण कहा है । एक स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त बतलाया है । स्थितिसंक्रम स्थितिबन्धका अविनाभावी होनेसे उसका भी इतना ही काल प्राप्त होता है । इसीसे यहाँ अवस्थितस्थितिसंक्रमका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त बतलाया है । अवक्तव्यस्थितिसंक्रमका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है यह स्पष्ट ही है ।

§ ५८७. आदेशकी अपेक्षा नारकियोंमें भुजगार स्थितिसंक्रमका जघन्य काल एक समय

अप्यद्० ज० एयस०, उफ० तेचीमं सागरो० देखणाणि । अवद्विदकालो ओधभंगो । एवं पटमाण । विद्यादि जाव सत्तमा त्ति विहत्तिभंगो ।

९५८८. तिरिक्केरु भुज० जह० एयमओ, उफ० चत्तारि समयया । अवद्वि० ओधं । अप० जह० एयस०, उफ० तिप्पिण पलिद्वैवमाणि अंतोमुहूत्ताहियाणि । एवं पंचिन्द्रियतिरिक्कतिण । पंचि०तिरि०अपज०-मणुमअपज० भुज० जह० एयस०, उफ० चत्तारि समयया । अप्यद्०-अवद्वि० जह० एयस०, उफ० अंतोमु० ।

हैं और उत्कृष्ट फाल तीन समय हैं। अल्पतर स्थितिसंक्रमका जघन्य काल एक समय हैं और उत्कृष्ट काल कुछ कम सेतीन मागार हैं। तथा अस्थितया फाल ओषके समान हैं। इसी प्रकार पहली पृथिवीमें जानना चाहिये। दूसरी पृथिवीमें लेकर सातवीं पृथिवी तकके नारदियोंमें भुजगार आदिना फाल स्थितिभिन्निके भुजगार आदिके समान हैं।

**विशेषार्थ—**जो अर्धवी जीव जो निरक्षरने नरकमें उत्पन्न होता है उसके यदि दूसरे समयमें प्रकृत्यायने, तीसरे समयमें शरीरको प्रदण करनेमें और चौथे समयमें संकोशकयमें भुजगार स्थितिवन्ध होता है तो उसके भुजगारस्थितिके तीन समय पाये जानेके कारण भुजगारस्थितिसंक्रमके भी तीन समय पाये जाते हैं। इसीमें नरकमें भुजगार स्थितिसंक्रमका उत्कृष्ट काल तीन समय बनलाया है। अथवा प्रकृत्याय और संकोशकयमें स्थिति कदापर चौथेभाले नारकीके दो भुजगार समय होते हैं ऐसा भी उच्चारणाका पाठ है। पर उसकी यहाँ धियजा नहीं की है। जिस जीवने नरकमें उत्पन्न होकर अन्तर्मुहूर्तके भीतर सम्यक्त्वको प्राप्त कर लिया है और अन्तर्मुहूर्त काल गैर रहने पर जो भिन्नात्पत्रो प्राप्त हो गया है उसके नरकमें अल्पतरस्थितिसंक्रमका उत्कृष्ट काल कुछ कम सेतीन मागार पाया जाना है। वदने नरकमें यह श्रेय उपरस्था बन जाती है, अतः यहाँने कथनको ओषके समान कहा है। किन्तु उसीमें विशेषता है कि यहाँ अल्पतरस्थितिसंक्रमका उत्कृष्ट काल कुछ कम एक मागारप्रमाण ही कहना चाहिये। दूसरी पृथिवीसे लेकर सातवीं तक भुजगार स्थितिभिन्निके आदिके कथनमें भुजगारस्थितिसंक्रम आदिके कथनमें कोई अन्तर नहीं है, उमलिये भुजगारस्थितिसंक्रम आदिके फाल भुजगारस्थितिभिन्निके आदिके फालके समान बनलाया है। श्रेय कथन सुगम है।

९५८९. तिर्यक्षोमं भुजगारस्थितिके संक्रामकका जघन्य काल एक समय हैं और उत्कृष्ट काल चार समय हैं। अस्थितस्थितिसंक्रमका फाल ओषके समान हैं। अल्पतरस्थितिके संक्रामकका जघन्य काल एक समय हैं और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त अधिक तीन पत्य हैं। इसी प्रकार पंचेन्द्रिय तिर्यक्षविश्रमं जानना चाहिये। पंचेन्द्रिय तिर्यक्ष अपर्वाप्त और मनुष्य अपर्वाप्तकमे भुजगारस्थितिके संक्रामकका जघन्य काल एक समय हैं और उत्कृष्ट काल चार समय हैं। अल्पतर और अस्थितस्थितिके संक्रामकका जघन्य काल एक समय हैं और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त हैं।

**विशेषार्थ—**तिर्यक्षोमं भुजगारस्थितिके संक्रामकका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल चार समय जिस प्रकार ओषकरूपणामें घटित करके घतता आये हैं उसी प्रकार यहाँ भी घटित कर लेना चाहिये। उससे इसमें कोई विशेषता नहीं है। अस्थितस्थितिके संक्रामकका



§ ५८९. मणुसतिय०३ भुज० जह० एयस०, उक्क० चत्तारि समयया । अप्पद० जह० एयस०, उक्क० तिण्णि पल्लिदोभमाणि पुव्वकोडित्तिभागम्भहियाणि । मणुसिणीसु अंतोमुहुत्ताहियाणि । अवड्ढिदभोघभंगो । अवत्तव्वं जहण्णु० एयसमओ ।

§ ५९०. देवेसु भुज० जह० एयस०, उक्क० तिण्णि समयया । अप्पद०-अवड्ढि० विहत्तिभंगो । एवं भवण०-वाणवेंत्तर० । णवरि सगड्ढिदी । जोदिसियादि जाव सव्वहात्ति विहत्तिभंगो । एवं जाव० ।

जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त ओघमे जिस प्रकारसे बतलाया है उसी प्रकार यहाँ भी प्राप्त होता है । इसीसे इस कथनको ओघके समान कहा है । अब रहा अल्पतरस्थितिके संक्रामकका जघन्य और उत्कृष्ट काल सो इसके जघन्य काल एक समयका ज्ञान करना तो संरल है । किन्तु उत्कृष्ट काल उस तिर्यञ्चके प्राप्त होता है जो पूर्व पर्यायमें अन्तर्मुहूर्तकाल तक अल्पतरस्थितिका संक्रम करके तीन पत्यकी आयुके साथ उत्तम भोगभूमिमें उत्पन्न हो जाता है । इसीसे यहाँ अल्पतर स्थितिके संक्रामकका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त अधिक तीन पत्य बतलाया है । यह पूर्वोक्त काल पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चत्रिकमें अच्छी तरहसे घट जाता है, इसलिये इनमें भुजगार स्थिति आदिके संक्रामकोंका काल सामान्य तिर्यञ्चके समान बतलाया है । पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च लब्धपर्याप्त और मनुष्य अपर्याप्त इनमें भुजगार स्थितिके संक्रामकोंका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल चार समय तथा अवस्थितस्थितिके संक्रामकोंका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त पूर्वघत् ही है । अब रहा अल्पतरस्थितिके संक्रामकोंका जघन्य और उत्कृष्ट काल सो इनके जघन्य कालमें कोई विशेषता नहीं है । इसे भी पहलेके समान जानना चाहिये । हाँ उत्कृष्ट काल जो अन्तर्मुहूर्त कहा है सो यह उनकी आयुके उत्कृष्ट कालकी अपेक्षासे कहा है ।

§ ५८८. मनुष्यत्रिकमें भुजगारस्थितिके संक्रामकोंका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल चार समय है । अल्पतरस्थितिके संक्रामकोंका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल पूर्वकोटिके त्रिभागसे अधिक तीन पत्य है । किन्तु मनुष्यनियोगे यह उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त अधिक तीन पत्य है । अवस्थितका काल ओघके समान है । तथा अवक्तव्यका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है ।

**विशेषार्थ**—मनुष्यत्रिकमें जिसने त्रिभागमें मनुष्यायुका बन्ध करके त्रैयिकसम्यग्दर्शन उपाजित किया है उसीके अल्पतरस्थितिके संक्रामकोंका उत्कृष्ट काल पूर्वकोटिके त्रिभागसे अधिक तीन पत्य पाया जाता है । इसीसे प्रकृतमें इस कालको उक्त प्रमाण बतलाया है । किन्तु मनुष्यनीके यह काल अन्तर्मुहूर्त अधिक तीन पत्य ही पाया जाता है, क्योंकि सम्यग्दृष्टि जीव मर कर मनुष्यनियोगे नहीं उत्पन्न होता है । शेष कथन सुगम है, क्योंकि शेष कालोंका खुलासा अनेक बार किया जा चुका है । उसी प्रकार यहाँ भी कर लेना चाहिये ।

§ ५९०. देवोंमें भुजगारस्थितिके संक्रामकोंका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल तीन समय है । तथा अल्पतर और अवस्थितस्थितिके संक्रामकोंका काल स्थितिविभक्तिके समान है । इसी प्रकार भवनवासी औ व्यन्तर देवोंमें जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि इनमें अल्पतरस्थितिके संक्रामकोंका उत्कृष्ट काल अपनी स्थितिप्रमाण कहना चाहिये । उद्योतिषी देवोंसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें भुजगारस्थिति आदिके संक्रामकोंका काल स्थितिविभक्तिके समान है । इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिये ।

६५१. अंतराणु० दुविहो णिदेसो—ओषेण आदेसेण य । ओषेण भुज०-अप्प०-  
अवट्ठि० विहत्तिभंगो । अवत्तव्व० जह० अंतोमु०, उक्क० तेत्तीसं सागरो० किंचूण-  
दोपुव्वकोडीहि सादिरेयाणि । सेसमग्गणालु विहत्तिभंगो । णवरि मणुसतिय० अवत्त०  
जह० अंतोमु०, उक्क० पुव्वकोडी देस्सणा ।

६५२. षाणालीव० भंगविचयाणु० दुविहो णिदेसो—ओषेण आदेसेण य ।

विशेषार्थ—सामान्यसे देवों, व्यन्तरों और भवनवासियोंमें अस्तीनी जीव मर कर उत्पन्न होते हैं, इसलिये उनमें भुजगारस्थितिके संक्रामकोंका उत्कृष्ट काल तीन समय बन जाता है । तथा भवनवासी और व्यन्तरोंमें अल्पतरस्थितिके संक्रामकोंका उत्कृष्ट काल अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थिति-प्रमाण फटते समय उसे अन्तर्मुहूर्त कम फटना चाहिये । शेष कथन सुगम है ।

६५१. अन्तरानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—प्रोचनिर्देश और आदेशनिर्देश । ओषधी अपेक्षा भुजगार, अल्पतर और अवस्थितस्थितिके संक्रामकोंका अन्तर स्थिति विभक्तिके समान है । अवक्तव्यस्थितिके संक्रामकोंका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम दो पूर्वकोटि अधिक तेतीस सागर है । दोय मार्गणाश्रमं भुजगारस्थिति आदिके संक्रामकोंका अन्तर स्थिति विभक्तिके समान है । किन्तु इतनी विशेषता है कि मनुष्यविक्रमं अवक्तव्यस्थितिके संक्रामकोंका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम पूर्वकोटिप्रमाण है ।

विशेषार्थ—स्थिति विभक्तिके भुजगार और अवस्थितस्थितिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर तीन पदय और अन्तर्मुहूर्त अधिक एक नौ श्रेष्ठ सागर बतलाया है । तथा अल्पतरस्थितिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त बतलाया है । यहाँ भी यह इत्ती प्रकारने प्राप्त होता है, इसलिये इस कथन दो स्थिति विभक्तिके समान कहा है । जो क्षायिक सम्यग्दृष्टि जीव अन्तर्मुहूर्त कालके भीतर दो चार उपशमश्रेणि पर चढ़ता है उसके अवक्तव्य स्थितिके संक्रमका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त पाया जाता है । तथा एक पूर्वकोटिकी आयुगले जिस मनुष्यने आठ वर्षका होनेपर क्षायिक सम्यक्त्व पूर्वक उपशमश्रेणिको प्राप्त किया है । फिर जो मर कर तेतीस सागरकी आयुगले देवोंमें उत्पन्न हुआ है । फिर यहाँसे आकर जो एक पूर्वकोटिकी आयुके साथ मनुष्य हुआ है और आयुमें अन्तर्मुहूर्त काल शेष रहने पर जो पुनः उपशमश्रेणि पर चढ़ा है उसके अवक्तव्य स्थितिके संक्रामकोंका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम दो पूर्वकोटि अधिक तेतीस सागर पाया जाता है । इसीसे प्रकृतमें अवक्तव्यस्थितिके संक्रामकोंका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम दो पूर्वकोटि अधिक तेतीस सागर कहा है । अब रहीं नरकगति आदि चार गतिमार्गणों में उनमें सब अन्तरकाल स्थिति विभक्तिके अन्तर कालके समान बन जाता है, अतः इन अन्तरको स्थिति विभक्तिके समान कहा है । किन्तु यहाँ मनुष्यविक्रमं अवक्तव्यस्थितिसंक्रम भी सम्भव है इतना विशेष जानना चाहिये । अथ यदि मनुष्यविक्रमसे किसी एक क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीवको अन्तर्मुहूर्त कालके भीतर दो चार उपशमश्रेणि पर चढ़ाया जाता है तो यह अन्तर प्राप्त होता है और यदि भयके प्रारम्भमें आठ वर्षका होने पर और भयके अन्तमें अन्तर्मुहूर्त काल शेष रहने पर उपशमश्रेणि पर चढ़ाया जाता है तो यह अन्तर कुछ कम पूर्वकोटि-प्रमाण प्राप्त होता है । इसीसे यहाँ अवक्तव्यस्थितिके संक्रामकोंका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम पूर्वकोटिप्रमाण बतलाया है ।

६५२. नाना जीवोंकी अपेक्षा भंगविचयानुगमसे निर्देश दो प्रकारका है—ओषनिर्देश

ओषेण भुज०-अप्प०-अवट्टि०संक्रामया णियमा अत्थि । सिया एदे च अवत्तव्वओ च १ । सिया एदे च अवत्तव्वया च २ । धुवसहिदा तिण्णि भंगा ३ । मणुसत्ति ए अप्प०-अवट्टि० णियमा अत्थि, सेसपदा भयणिज्जा । भंगा णव ९ ।

§ ५९३. आदेशेण णेरइय० अप्प०-अवट्टि०संक्रा० णियमा अत्थि । भुज०संक्रा० भजियव्वा । भंगा ३ । एवं सव्वणेरइय-सव्वपंचिंदियतिरिक्ख-देवा जाव सव्वसत्तार ति । तिरिक्खेसु भुज०-अप्प०-अवट्टिदसंक्रामया णियमा अत्थि । मणुसअपज्ज० सव्वपदा भयणिज्जा । भंगा छव्वीस २६ । आणदादि जाव सव्वट्ठा ति अप्पद०संक्रा० णियमा अत्थि । एवं जाव० ।

और आदेशनिर्देश । ओषकी अपेक्षा भुजगार, अल्पतर और अवस्थितस्थितिके संक्रामक जीव नियमसे हैं । कदाचित् ये बहुत जीव हैं और एक जीव अवक्तव्यस्थितिका संक्रामक है १ । कदाचित् ये बहुत जीव हैं और बहुत जीव अवक्तव्यस्थितिके संक्रामक हैं २ । इन दो भंगोंमें ध्रुवपदके मिला देने पर तीन भंग होते हैं । मनुष्यत्रिकमें अल्पतर और अवस्थितस्थितिके संक्रामक जीव नियमसे हैं । शेष पद भजनीय हैं । भंग ९ होते हैं ।

**विशेषार्थ**—भुजगार आदि कुल चार पद हैं । जिनमेंसे ओषकी अपेक्षा तीन पदवाले जीव तो नियमसे पाये जाते हैं किन्तु अवक्तव्य पदवाले जीव भजनीय हैं । इस पदकी अपेक्षा कदाचित् एक और कदाचित् नाना जीव होते हैं, इसलिये दो भंग तो ये हुए और इनमें एक ध्रुव भंगके मिलाने पर तीन भंग होते हैं । किन्तु मनुष्यत्रिकमें अल्पतर और अवस्थित ऐसे दो पदवाले जीव तो सदा पाये जाते हैं, किन्तु शेष दो पदवाले जीव भजनीय हैं । अतः यहाँ एक जीव और नाना जीवोंकी अपेक्षा एकसंयोगी और द्विसंयोगी कुल भंगोंका विचार करने पर ध्रुव पदके साथ कुल नौ भंग होते हैं ।

§ ५९३. आदेशकी अपेक्षा नारकियोंमें अल्पतर और अवस्थितस्थितिके संक्रामक जीव नियमसे हैं । भुजगारस्थितिके संक्रामक जीव भजनीय हैं । भंग तीन होते हैं । इसी प्रकार सब नारकी, सब पंचेन्द्रिय तिर्यच, सामान्य देव और सव्वस्वार कल्प तकके देवोंमें जानना चाहिये । तिर्यच्चोंमें भुजगार, अल्पतर और अवस्थितस्थितिके संक्रामक जीव नियमसे हैं । मनुष्य अपर्याप्तकोंमें सब पद भजनीय हैं । भंग २६ होते हैं । आनत कल्पसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें अल्पतरस्थितिके संक्रामक जीव नियमसे हैं । इसी प्रकार अनाहारक मार्गीणा तक जानना चाहिये ।

**विशेषार्थ**—नारकियोंमें कुल तीन पद हैं जिनमेंसे दो ध्रुव हैं और एक भजनीय है, अतः यहाँ तीन भंग कहे हैं । सब नारकी आदि और जितनी मार्गीणाएँ मूलमें बतलाई हैं उनमें भी यही बात जाननी चाहिये । सामान्य तिर्यच्चोंमें तीनों पद ध्रुव हैं, अतः वहाँ एक ही भंग है । मनुष्य अपर्याप्तकोंमें तीन पद होते हैं पर वे तीनों ही भजनीय हैं, अतः वहाँ एक जीव और नाना जीवोंकी अपेक्षासे एकसंयोगी, द्विसंयोगी और त्रिसंयोगी भंग प्राप्त करने पर वे २६ होते हैं । आनत कल्पसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तक एक अल्पतरपद ही पाया जाता है, अतः वहाँ इसकी अपेक्षा एक ध्रुव भंग ही है ।

§ ५९४. भागाभागो विहृत्तिभंगो । णवरि ओघपरुवणाए अवत्तव्वसंका० सव्वजी० केव० भागो ? अणंतिमभागो । मणुस० अवत्त० केव० ? असंखे०भागो । मणुसपज्जत्त-मणुसिणीसु संखे०भागो ।

§ ५९५. परिमाणं विहृत्तिभंगो । णवरि अवत्तव्वसंकांमया केत्तिया ? संखेज्जा ।

§ ५९६. खेत्तं पोसणं च विहृत्तिभंगो । णवरि अवत्तव्वसंकांमया० लोगस्स असंखे०-भागो ।

§ ५९७. कालो विहृत्तिभंगो । णवरि अवत्त० जह० एयसमओ, उक्क० संखेज्जा समयो ।

§ ५९८. अंतरं विहृत्तिभंगो । णवरि अवत्त० जह० एयस०, उक्क० वासपुघत्तं ।

§ ५९९. भावो सव्वत्थ ओदइयो भावो ।

§ ६००. अप्पाचहुआणु० दुविहो णि०—ओघेण आदेसेण । ओघेण सव्वत्थोवा अवत्तव्वसंका० । भुज०संका० अणंतगुणा । अवद्धिसंका० असंखे०गुणा । अप्पद०-

§ ५९४. भागाभागका कथन स्थितिबिभक्तिके समान करना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि ओघकी अपेक्षा प्ररूपणा करते समय अवत्तव्वस्थितिके संक्रामक जीव सब जीवके कितने भागप्रमाण हैं ? अनन्तवें भागप्रमाण हैं । मनुष्योंमें अवत्तव्वस्थितिके संक्रामक जीव कितने भागप्रमाण हैं ? असंख्यातवें भागप्रमाण हैं । मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यनियोंमें अवत्तव्वस्थितिके संक्रामक जीव संख्यातवें भागप्रमाण हैं ।

विशेषार्थ—भुजगार अनुयोगद्वारसम्बन्धी स्थितिबिभक्तिमें भुजगार अल्पतर, और अवस्थित कुल तीन पद सम्भव है । किन्तु यहाँ एक अवत्तव्व पद बढ़ जाता है । इसलिये इसकी अपेक्षा जहाँ विशेषता सम्भव थी वह यहाँ बतला दी है । शेष कथन स्थितिबिभक्तिके समान है ।

§ ५९५. परिमाणका कथन स्थितिबिभक्तिके समान है । किन्तु इतनी विशेषता है कि अवत्तव्वस्थितिके संक्रामक जीव कितने हैं ? संख्यात हैं ।

§ ५९६. क्षेत्र और स्पर्शका कथन स्थितिबिभक्तिके समान है । किन्तु इतनी विशेषता है कि अवत्तव्वस्थितिके संक्रामकोंका क्षेत्र और स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण है ।

§ ५९७. कालका कथन स्थितिबिभक्तिके समान है । किन्तु इतनी विशेषता है कि अवत्तव्वस्थितिके संक्रामकोंका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल संख्यात समय है । उपशमश्रेणि पर निरन्तर चढ़नेका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल संख्यात समय होनेसे उतरते समय यह काल प्राप्त होता है ।

§ ५९८. अन्तरका कथन स्थितिबिभक्तिके समान है । किन्तु इतनी विशेषता है कि अवत्तव्वस्थितिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व है । उपशमश्रेणिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व होनेसे जघन्य और उत्कृष्ट उक्त अन्तर प्राप्त होता है ।

§ ५९९. भाव सर्वत्र औदयिक है ।

§ ६००. अल्पवहुत्वानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेश-निर्देश । ओघकी अपेक्षा अवत्तव्वस्थितिके संक्रामक जीव सबसे थोड़े हैं । उनसे भुजगारस्थितिके ३८

संका० संखे०गुणा । मणुस्सेसु सच्चत्थोवा अवत्तच्चसंका० । भुज०संका० असंखे०-  
गुणा । अवट्टिदसंका० असंखे०गुणा । अप्प०संका० संखे०गुणा । एवं मणुसपज्जत्त-  
मणुसिणीसु । णवरि सच्चत्थ संखेज्जगुणालावो कायच्चो । सेसं विहत्तिभंगो ।

एवं भुजगारो समत्तो ।

§ ६०१. पदणिकखेवे तत्थ इमाणि तिण्णि अणियोगदाराणि—समुक्कित्ताणा  
सामित्तमप्पावहुजं च । तत्थोघादेससमुक्कित्ताणाए विहत्तिभंगो ।

§ ६०२. सामित्तं दुविहं—जहणणमुक्कस्सं च । उक्क० ताव पयदं । दुविहो  
णिहेसो—ओषेण आदेसेण । ओषेण उक्कस्सिया वट्टी विहत्तिभंगो । णवरि उक्कस्सट्टिदिं  
बंधियूणावलिादीदस्स । तस्सेव से काले उक्कस्समवट्टाणं । उक्कस्सिया हाणी विहत्तिभंगो ।  
एवं सच्चणेरहय०-तिरिक्ख०-पंचि०तिरिक्खतिय३-मणुसतिय३-देवा जाव सहस्सार  
त्ति । पंचि०तिरि०अपज्ज०-मणुसअपज्ज० उक्क० वट्टी कस्स ? अण्णदरस्स तप्पाओग्ग-  
जहण्णट्टिदिसंका० तप्पाओग्गुक्कस्सट्टिदिं बंधियूणावलिादीदस्स । तस्सेव से काले उक्कस्स-  
मवट्टाणं । हाणी विहत्तिभंगो । आणदादि सच्चट्टा चि विहत्तिभंगो । एवं जाव० ।

संक्रामक जीव अनन्तगुणे हैं । उनसे अवस्थितस्थितिके संक्रामक जीव असंख्यातगुणे हैं । उनसे  
अल्पतरस्थितिके संक्रामक जीव संख्यातगुणे हैं । मनुष्योंमें अवक्तव्यस्थितिके संक्रामक जीव सबसे  
थोड़े हैं । उनसे भुजगारस्थितिके संक्रामक जीव असंख्यातगुणे हैं । उनसे अवस्थितस्थितिके  
संक्रामक जीव असंख्यातगुणे हैं । उनसे अल्पतरस्थितिके संक्रामक जीव संख्यातगुणे हैं । इसी  
प्रकार मनुष्यपर्याप्त और मनुष्यनियोगोंमें जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि इन दो  
मार्गणाओंमें सर्वत्र संख्यातगुणा करना चाहिये । शेष कथन स्थितिबिभक्तिके समान है ।

इस प्रकार भुजगार अनुयोगद्वारा समाप्त हुआ ।

§ ६०१. पदनिक्षेपके विषयमें ये तीन अनुयोगद्वारा होते हैं—समुत्कीर्तना, स्वामित्व  
और अल्पवहुत्व । इनमेंसे ओष और आदेशकी अपेक्षा समुत्कीर्तनाका कथन स्थितिबिभक्तिके  
समान है ।

§ ६०२. स्वामित्व दो प्रकारका है—जघन्य और उत्कृष्ट । सर्वप्रथम उत्कृष्टका प्रकरण है ।  
उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओषनिर्देश और आदेशनिर्देश । ओषकी अपेक्षा उत्कृष्ट  
वृद्धिक्रम भंग स्थितिबिभक्तिके समान है । किन्तु इतनी विशेषता है कि उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करके  
जिसे एक आवलि काल हो गया है उसके यह उत्कृष्ट वृद्धि होती है । तथा उसीके तदनन्तर समयमें  
उत्कृष्ट अवस्थान होता है । उत्कृष्ट हानिका भंग स्थितिबिभक्तिके समान है । इसी प्रकार सब  
नारकी, सामान्य तिर्यञ्च, पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चत्रिक, मनुष्यत्रिक, सामान्य देव और सहस्रार वरुण  
तकके देवोंमें जानना चाहिये । पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्त और मनुष्य अपर्याप्तकोंमें उत्कृष्ट वृद्धि  
किसके होती है ? जो तत्प्रायोग्य जघन्य स्थितिका संक्रम कर रहा है । फिर जिसने तत्प्रायोग्य  
उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करके एक आवलि काल बिता दिया है उसके उत्कृष्ट वृद्धि होती है । फिर  
तदनन्तर समयमें उसीके उत्कृष्ट अवस्थान होता है । तथा उत्कृष्ट हानिका भंग स्थितिबिभक्तिके  
समान है । आनतसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें स्थितिबिभक्तिके समान भंग है । इसी प्रकार  
अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिये ।

§ ६०३. जहण्णए पयदं । दुविहो णि०—ओघेण आदेसेण य । ओघेण मोह० जह० वड्डी कस्स ? अण्णदरस्स जो समयूणद्विदिसंक्रमादो उक्क० द्विदिं संक्रामेदि तस्स जह० वड्डी । जह० हाणी कस्स ? अण्णद० जो उक्क० द्विदिं संक्रामेमाणो समयूण्णुक्कस्सद्विदिं संक्रा० जादो तस्स जहण्णिया हाणी । एयदरत्थ अवट्ठाणं । एव चदुगदीसु । णवरि आणदादि सव्वट्ठा ति जह० हाणी कस्स ? अण्णद० अघद्विदिं गाल्लेमाणयस्स । एवं जाव० ।

§ ६०४. अप्पावहुअं विहत्तिभंगो ।

एवं पदणिक्वेवो ति समत्तमणियोगहारं ।

§ ६०५. वृद्धिसंक्रामेवो ति तत्थ इमाणि तेरस अणियोगहारणि १३—समुक्किचणा जाव अप्पावहुए ति । समुक्किचणदाए दुविहो णिहेसो—ओघेण आदेसेण य । ओघेण मोह० अत्थि तिण्णिवृद्धि-चत्तारिहाणि-अवट्ठि०-अवत्तव्वसंक्रामया । एवं मणुस०३ । सेसं विहत्तिभंगो ।

§ ६०६. सामित्तं विहत्तिभंगो । णवरि अवत्त० अण्ण० उवसामगस्स' परिवद-

विशेषार्थ—जिसका बन्ध होता है उसका एक आवलि काल जानेके बाद ही संक्रम होता है और यह संक्रमका प्रकरण है । इसीसे ओघकी अपेक्षा बर्षान करते समय उत्कृष्ट वृद्धि उत्कृष्ट स्थितियन्धके होनेके बाद एक आवलि कालके बाद बतलाई है । अन्यत्र जहाँ बन्धके बाद एक आवलि काल बाद उत्कृष्ट वृद्धि बतलाई है वहाँ यही कारण जानना चाहिये । शेष कथन सुगम है ।

§ ६०३. जघन्यका प्रकरण है । निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । ओघकी अपेक्षा मोहनीयकी जघन्य वृद्धि किसके होती है ? जो एक समय कम उत्कृष्ट स्थितिका संक्रम करनेके बाद उत्कृष्ट स्थितिका संक्रम करता है उसके जघन्य वृद्धि होती है । जघन्य हानि किसके होती है ? उत्कृष्ट स्थितिका संक्रम करनेवाला जो जीव तदनन्तर एक समय कम उत्कृष्ट स्थितिका संक्रम करता है उसके जघन्य हानि होती है । तथा किसी एक जगह जघन्य अवस्थान होता है । इसी प्रकार चारों गतियोंमें जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि अनात कल्पसे लेकर स्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें जघन्य हानि किसके होती है ? अधास्थितिको गजानेवाले किसी भी जीवके होती है । इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिये ।

§ ६०४. अल्पवहुत्वका भंग स्थितिविभक्तिके सम्बन्ध रखनेवाले पदनिक्षेपके अल्पवहुत्वके समान है ।

इस प्रकार पदनिक्षेप अनुयोगद्वार समान हुआ ।

§ ६०५. वृद्धिसंक्रामक नामक अनुयोगद्वारमे समुत्कीर्तनासे लेकर अल्पवहुत्वतक तेरह अनुयोगद्वार होते हैं । समुत्कीर्तनाकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । ओघकी अपेक्षा मोहनीयकी तीन वृद्धि, चार हानि, अवस्थित और अवत्तव्व पदके संक्रामक जीव हैं । इसी प्रकार मनुष्यविक्रममें जानना चाहिये । शेष भंग स्थितिविभक्तिके समान है ।

§ ६०६. स्वामित्वका भंग स्थितिविभक्तिके समान है । किन्तु इतनी विशेषता है कि जो

१. ता०प्रतौ उपसामगो [ गस ], आ०प्रतौ उवसामगो इति पाठः ।

माणयस्स. पढमसमयदेवस्स वा । एवं मणुसतिए । णवरि पढमसमयदेवालावो ण कायव्वो ।

§ ६०७. कालाणु० दुविहो णिदेसो—ओघेण आदेसेण य । ओघेण तिण्णिणवड्ढि-चत्तारिहाणि-अवड्ढि०संका० कालो विहत्तिभंगो । णवरि संखे०भागहाणि—अवत्त० जहण्णु० एयसमओ ।

§ ६०८. सव्वणेर०-सव्वदेवेसु विहत्तिभंगो । तिरिक्खाणं च विहत्तिभंगो । पंचि०-तिरिक्ख०३ असंखे०भागवड्ढि-संखेज्जगुणवड्ढि० जह० एयसमओ, उक्क० वे समया । संखेज्जभागवड्ढि-हाणि-संखेज्जगुणहाणिसंका० जहण्णु० एयसमओ । असंखे०भागहाणि-अवड्ढि० तिरिक्खोघं । एवं पंचिदियतिरिक्खअपज्ज० । णवरि असंखे०भागहाणी० जह० एयसमओ, उक्क० अंतोसु० । एवं मणुसअपज्ज० । मणुस० पंचि०तिरिक्खभंगो । णवरि

उपशामक जीव उपशामश्रेणिसे च्युत हो रहा है या जो उपशामक मर कर प्रथम समयवर्ती देव है उसके अवक्तव्य पद होता है । इसी प्रकार मनुष्यत्रिकमें जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि यहाँ प्रथम समयवर्ती देवके अवक्तव्य पद होता है यह आलाप नहीं करना चाहिये ।

§ ६०७. कालानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । ओघकी अपेक्षा तीन वृद्धि, चार हानि और अवस्थितके संक्रामकोंका काल स्थितिविभक्तिके समान है । किन्तु इतनी विशेषता है कि संख्यातभागहानि और अवक्तव्यका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है ।

**विशेषार्थ**—इन सब वृद्धियों और हानियोंके काल स्थितिविभक्तिमें घटित करके बतला आये हैं उसी प्रकार प्रकृतमें घटित कर लेना चाहिये । किन्तु स्थितिविभक्तिमें स्थितिसत्त्वकी अपेक्षासे वह काल बतलाया है । यहाँ उसका कथन स्थितिसंक्रमकी अपेक्षासे करना चाहिये । तथापि वहाँ संख्यातभागहानिका उत्कृष्ट काल जो दो समय कम उत्कृष्ट संख्यातप्रमाण बतलाया है वह यहाँ नहीं प्राप्त होता, क्योंकि जिस स्थितिसत्त्वके सद्भावमें संख्यातभागहानिका यह उत्कृष्ट काल घटित किया गया है वहाँ संक्रम नहीं होता । इसलिये स्थितिसंक्रमकी अपेक्षा संख्यातभागहानिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय प्रमाण ही प्राप्त होता है ऐसा जानना चाहिये । स्थितिसत्त्वके सिवा यहाँ स्थितिसंक्रममें एक पद और होता है जिसे अवक्तव्य पद कहते हैं । यह या तो उपशामश्रेणिसे च्युत होनेवाले क्षाधिक सम्यग्दृष्टि जीवके, एक समयके लिये होता है या जो उपशान्तमोह क्षाधिक सम्यग्दृष्टि जीव मर कर देव होता है, उसके प्रथम समयमें होता है, अतः इसका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय बतलाया है ।

§ ६०८. सब नारकी और सब देवोंमें स्थितिविभक्तिके समान काल है । तिर्यञ्चोंमें भी काल स्थितिविभक्ति के समान है । पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चत्रिकमें असंख्यात भागवृद्धि और संख्यात गुणवृद्धिके संक्रामकका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल दो समय हैं । संख्यातभाग-वृद्धि, संख्यातभागहानि और संख्यातगुणहानिके संक्रामकका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय हैं । असंख्यात भागहानि और अवस्थितके संक्रामकका काल सामान्य तिर्यचोंके समान है । इसी प्रकार पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंमें जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि इनमें असंख्यात भागहानिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्द्वैत है । इसी प्रकार मनुष्य अपर्याप्तकोंमें जानना चाहिये । मनुष्य त्रिकमें पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चके समान काल है । किन्तु इतनी

असंखे० भागहाणि० जह० एयसमओ, उक० तिण्णि पलिदोवमाणि पुच्चकोडितिभागेण सादिरेयाणि । अवच० जहण्णु० एयसमओ । एवं जाव० ।

विशेषता है कि इनमें अस्ख्यातभागहानिके संक्रामकका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल पूर्वकोटिका त्रिभाग अधिक तीन पत्य है । अत्रक्तत्र्यस्थितिके संक्रामकका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । इसी प्रकार अनाहारक मार्गणातक जानना चाहिये ।

**विशेषार्थ**—स्थितिविभक्तिमें सब नारकियेके अस्ख्यातभागवृद्धिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल दो समय, दो वृद्धि और दो हानियेका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय, अस्ख्यातभागहानिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल कुछ कम अपनी-अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण तथा अवस्थितका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त बतलाया है । सब देवों और सामान्य तिर्यञ्चोमें भी इसी प्रकार जहाँ जितने पद सम्भव हैं उनका यथायोग्य काल बतलाया है । प्रकृतमें इन मार्गणाओंमें अपने-अपने पदोंका उक्त काल इसी प्रकार बन जाता है । इसीसे यहाँ इस सब कथनको स्थितिविभक्तिके समान कहा है । इस कालका विशेष खुलासा स्थितिविभक्तिमें किया ही है, अतः वहाँसे जान लेना चाहिये । पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चत्रिकमें अद्वाक्ष्य और संक्लेशाक्ष्य दोनों प्रकारसे अस्ख्यातभागवृद्धिरूप संक्रम सम्भव है, इसीसे इनमें इसका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल दो समय बतलाया है । जो एकेन्द्रिय जीव एक विग्रहसे संज्ञी तिर्यञ्चोमें उत्पन्न होता है उसके प्रथम समयमें अस्त्रीके योग्य और शरीरग्रहणके समयमें संज्ञीके योग्य स्थितिग्रन्थ होता है । अतः पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चत्रिकमें संख्यातगुणवृद्धिरूप संक्रमका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल दो समय बतलाया है । पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चत्रिकमें संख्यात-भागवृद्धि संक्लेशाक्ष्यसे ही होती है, अतः इसका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय बतलाया है । संख्यातभागहानि और संख्यातगुणहानि स्थितिकाण्डऋधातकी अन्तिम फालिके पतनके समय होता है, अतः इनका भी जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय बतलाया है । सामान्य तिर्यञ्चोमें अस्ख्यातभागहानिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त अधिक तीन पत्य तथा अवस्थितका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त बतलाया है । यह पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चत्रिकमें भी बन जाता है, अतः पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चत्रिकमें इन दो पदोंके कालको सामान्य तिर्यञ्चोके समान बढ़ा है । पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चत्रिकमें अपने सम्भव पदोंका जो काल बतलाया है वह पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंमें भी बन जाता है, अतः इनमें सब पदोंका काल पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चत्रिकके सब पदोंके समान बतलाया है । केवल अस्ख्यातभागहानिके उत्कृष्ट कालमें कुछ विशेषता है । बात यह है कि पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्तसे अधिक नहीं होता है, इसलिये यहाँ इस पदका अन्तर्मुहूर्त ही काल प्राप्त होता है । कालकी यह व्यवस्था मनुष्य अपर्याप्तकोंमें भी जाननी चाहिये, क्योंकि पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंके कालसे इनके कालमें कोई विशेषता नहीं है । मनुष्यत्रिकमें और सब पदोंके काल तो पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चके समान बन जाते हैं । किन्तु अस्ख्यातभागहानिके उत्कृष्ट कालमें कुछ विशेषता है । बात यह है कि जिस मनुष्यमें आगामी भवकी मनुष्यायुका वन्ध करनेके बाद क्षायिकसम्यग्दर्शनको उत्पन्न कर लिया है उसके पूर्वकोटिका त्रिभाग अधिक तीन पत्यप्रमाण कालतक अस्ख्यातभागहानि पाई जाती है । इसीसे यहाँ मनुष्यत्रिकमें यह काल उक्तप्रमाण बतलाया है । किन्तु मनुष्यनियोंमें यह काल अन्तर्मुहूर्त अधिक तीन पत्य ही पाया जाता है, क्योंकि सम्यग्दृष्टि जीव मर कर मनुष्यनियोंमें उत्पन्न नहीं होते हैं । यह बात भुजगारस्थितिसंक्रममें अत्यन्त पदके बतलाये गये कालसे जानी जाती है । मनुष्यत्रिकमें अवक्तव्यपद भी सम्भव है तो उसका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय ओषके समान यहाँ भी घटित कर लेना चाहिये ।



§ ६०९. अंतराणु० दुविहो णिहेसो—ओषेण आदेसेण य । ओषेण सव्वविहत्तिभंगो । णवरि अवत्त० जह० अंतोसु०, उक्क० तेत्तीसं सागरो० सादिरेयाणि । सव्वणेरइय०—सव्वदेवा त्ति विहत्तिभंगो । तिरिक्खाणं पि विहत्तिभंगो । पंचिदियतिरिक्ख०३ विहत्तिभंगो । णवरि संखे० गुणवट्ठि० जह० एयसमओ, उक्क० पुव्वकोडिपुघत्तं । पंचिदिय-तिरिक्खअपज्ज०—मणुसअपज्ज० असंखे० भागवट्ठि—हाणि-संखे० गुणवट्ठि-अवट्ठि० जह० एयसमओ, उक्क० अंतोसु० । संखे० भागवट्ठि-हाणि-संखे० गुणहाणि० जहण्णुक्क० अंतोसु० । मणुस३ विहत्तिभंगो । णवरि संखे० गुणवट्ठि० जह० एयसमओ, उक्क० पुव्वकोडी देख्णा । अवत्त० जह० अंतोसु०, उक्क० पुव्वकोडी देख्णा । एवं जाव० ।

§ ६०६. अन्तरानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघानदेश और आदेशानिर्देश । ओघकी अपेक्षा सब पदोंका अन्तर स्थितिबिभक्तिके समान है । किन्तु इतनी विशेषता है कि अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर अन्तमुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर है । सब नारकी और सब देवोंमें सब पदोंका अन्तर स्थितिबिभक्तिके समान है । तिर्यचोंमें भी सब पदोंका अन्तर स्थितिबिभक्तिके समान है । पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चत्रिकमें सब पदोंका अन्तर स्थितिबिभक्तिके समान है । किन्तु इतनी विशेषता है कि इनमें संख्यातगुणवृद्धिके संक्रामकोंका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर पूर्वकोटिपृथक्त्वप्रमाण है । पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकों और मनुष्य अपर्याप्तकोंमें असंख्यातभागवृद्धि, असंख्यातभागहानि, संख्यातगुणवृद्धि और अवस्थितपदके संक्रामकोंका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तमुहूर्त है । संख्यातभागवृद्धि, संख्यातभागहानि और संख्यातगुणहानिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर अन्तमुहूर्त है । मनुष्य त्रिकमें सब पदोंका अन्तर स्थितिबिभक्तिके समान है । किन्तु इतनी विशेषता है कि संख्यात गुणवृद्धिके संक्रामकोंका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम एक पूर्वकोटि है । तथा अवक्तव्य पदका जघन्य अन्तर अन्तमुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम एक पूर्वकोटि है । इसी प्रकार अनाहारक मार्गागतक जानना चाहिए ।

**विशेषार्थ—**पंचेन्द्रिय तिर्यचत्रिकमें संख्यातगुणवृद्धिका जघन्य अन्तर एक समय बतलाया है । इसका कारण यह है कि जो एकेन्द्रिय दो विग्रह द्वारा अपने योग्य स्थितिके साथ उक्त जीवोंमें उत्पन्न होता है वह प्रथम समयमें असंज्ञिके योग्य संख्यातगुणी स्थितिको बढ़ाकर बांधता है, दूसरे समयमें अन्य पदके साथ स्थितिवन्ध करता है और तीसरे समयमें शरीरग्रहणके साथ संज्ञिके योग्य संख्यातगुणी स्थिति बढ़ाकर बांधता है । इस प्रकार उसके संख्यातगुणवृद्धिके संक्रामकोंका जघन्य अन्तर एक समय पाया जाता है । पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्त और मनुष्य अपर्याप्तकोंमें भी इसी प्रकारसे संख्यातगुणवृद्धिका जघन्य अन्तर एक समय प्राप्त होता है । तथा मनुष्यत्रिकमें भी संख्यातगुणवृद्धिका जघन्य अन्तर एक समय उक्त प्रकारसे ही प्राप्त होता है । मनुष्यत्रिकमें जो मनुष्य अन्तमुहूर्तके भीतर दो बार उपशमश्रेणि पर चढ़ता है उसके अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर अन्तमुहूर्त पाया जाता है । तथा जो पूर्वकोटिके प्रारम्भमें आठ वर्षका होकर उपशमश्रेणि पर चढ़ता है और फिर जो जीवतके अन्तमें उपशमश्रेणि पर चढ़ता है उसके अवक्तव्यपदका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम एक पूर्वकोटि वर्षप्रमाण पाया जाता है । इस प्रकार अन्तर सम्बन्धी विशेषताओंका निर्देश यहां पर कर दिया है । शेष सब स्थानोंमें सब पदोंका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर स्थिति बिभक्तिके बतलाये गये वृद्धि अनुयोगद्वारमें प्रतिपादित अन्तरके समान है, अतः यहां हमने उसका अलगसे निर्देश नहीं किया है ।

§ ६१०. पाणाजीवभंगविचओ भागाभागं परिमाणं खेत्तं पोसणं कालो अंतरं भावो च विहत्तिभंगो । णवरि सच्चत्थ अवत्त० परूवणा जाणिऊण कायच्चा ।

§ ६११. अप्पाचहुगाणु० दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य । ओघेण सच्चत्थोवा अवत्त० संका० । असंखे० गुणहाणिसंका० संखे० गुणा । सेसं विहत्तिभंगो । एवं मणुसत्तिए ३ । सेसं० विहत्तिभंगो ।

एवं वड्ढिपरूवणा गया ।

§ ६१२. एत्थ द्वाणपरूवणाए सत्तरिसागरो० कोडाकोडि वंचियुण वंधावलियादीद-  
मोकड्डाणए संक्रमेमाणयस्स तमेगं द्विदिसंक्रमद्वाणं । एत्तो समयूण-दुसमयूणादिकमेण  
अणुकस्ससंक्रमद्वाणवियप्पा ओयारेयच्चा जाव णिव्वियप्पंतोकोडाकोडि चि । तदो  
धुवद्विदीदो हेट्ठा हदसमुप्पत्तियकम्मालंघणेणोदारेयच्चं जाव वादरेइदियपञ्चत्तधुवद्विदि  
त्ति । पुणो खवयपाओग्गाणि वि ठाणाणि सागरोवमद्विदिसंतकम्मपढमद्विदिखंडयप्पहुडि  
जहासंभवमोयारेयच्चाणि जाव सुहुमसांपराइयखवगसमयाहियावलिया चि । एदाणि  
च संक्रमद्वाणाणि किंचूणसत्तरिसागरोवमकोडाकोडिमेत्ताणि, उक्कस्सद्विदिसंक्रमदो  
जाव एइंदियधुवद्विदि चि णिरंतरं सरूवेण तदुप्पत्तिदंसणादो । तत्तो हेट्ठा खवगपाओग्ग-  
द्वाणाणं सांतरं-णिरंतरकमेण अंतोमुहुत्तमेत्ताणमुप्पत्तिउवलंभादो ।

एवं मूलपयडिद्विदिसंक्रमो समत्तो ।

§ ६१०. नाना जीवोंकी अपेक्षा भंगविचय, भागाभाग, परिमाण, क्षेत्र, स्पर्शन, काल, अन्तर और भाव इनका भंग स्थितिविभक्तिके समान है। किन्तु इतनी विशेषता है कि यहां अवक्तव्यपद भी होता है, इसलिये इसका कथन सर्वत्र जान कर करना चाहिये।

§ ६११. अल्पवहुत्वानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेश-निर्देश। ओघकी अपेक्षा अवक्तव्यस्थितिके संक्रमक जीव सबसे थोड़े हैं। उनसे असंख्यात गुणहानिके संक्रमक जीव संख्यातगुण्ये हैं। शेष पदोंका अल्पवहुत्व स्थितिविभक्तिके समान है। इसी प्रकार मनुष्यत्रिकमें जानना चाहिए। शेष भंग स्थितिविभक्तिके समान है।

इह प्रकार वृद्धि प्ररूपणाका कथन समाप्त हुआ।

§ ६१२. यहाँ स्थान प्ररूपणाका कथन करनेपर जो जीव सत्तर कोडाकोडी सागरप्रभाण स्थितिको बोधकर बन्वावलिके वाद अपकर्षण करके उसका संक्रमण करता है उसके एक स्थिति-संक्रमस्थान होता है। इसके बाद एक समय कम, दो समय कम आदिके क्रमसे अनुत्कृष्ट संक्रमस्थानोंके विकल्प निर्विकल्प अन्तःकोडाकोडीप्रमाण स्थितिके प्राप्त होनेतक अवतरित करने चाहिए। फिर ध्रुवस्थितिसे नीचे वादर एकेन्द्रिय पर्याप्तकी ध्रुवस्थितिके प्राप्त होनेतक हतसमुत्पत्तिके कर्मके सहारेसे संक्रमस्थानोंको प्राप्त कर ले जाना चाहिये। फिर एक सागप्रमाण स्थितिसत्कर्मके प्रथम स्थितिक्राण्डकसे लेकर सूक्ष्मसांप्राय चपकके एक समय अधिक एक आवलिप्रमाण स्थितिके शेष रहने तक यथासम्भव चपकके योग्य संक्रमस्थान ले जाने चाहिये। ये संक्रमस्थान कुछ कम सत्तर कोडाकोडी सागरप्रमाण होते हैं, क्योंकि उत्कृष्ट स्थितिसंक्रमस्थानसे लेकर एकेन्द्रियके योग्य ध्रुवस्थिति तक निरन्तर क्रमसे इन स्थानोंकी उत्पत्ति देखी जाती है। और उससे नीचे चपक योग्य अन्तर्मुहूर्त प्रमाण स्थानोंकी सान्तर-निरन्तर क्रमसे उत्पत्ति देखी जाती है।

इस प्रकार मूलप्रकृति स्थितिसंक्रम समाप्त हुआ।

§ ६१३. संपहिउत्तरपयडिद्विदिसंकमो पचावसरो । तत्थ इमाणि चउवीसमणियोग-  
 द्दाराणि—अद्धाच्छेदो सव्वसंकमो णोसव्वसंकमो उक्कस्ससंकमो अपुक्कस्ससंकमो जहण-  
 संकमो अजहणसंकमो सादियसंकमो अणादियसंकमो धुवसंकमो अद्दवसंकमो एयजीवेण  
 सामित्तं कालो अंतरं णाणजीवमंगविचओ भागाभागो परिमाणं खेत्तं पोसणं कालो  
 अंतरं सणियासो भावाणुगमो अप्पाचहुगाणुगमो चेदि । भुजगारादीणि च ४ । तत्थ  
 दुविहो अद्धाच्छेदो जहणुक्कस्सद्विदिसंकमविसयभेदेण । एत्थ ताव पुच्चिल्लमप्पणासुत्तमव-  
 ल्लवणं काऊणुक्कस्सद्विदिसंकमद्दाच्छेदे उक्कस्सद्विदिउदीरणाभंगमणुवचइस्सामो । तं जहा—  
 दुविहो तस्स णिहेसो ओधादेसभेदेण । ओषेण मिच्छत्त-सोलसकसायणमुक्कस्सओ  
 द्विदिसंकमद्दाच्छेदो सत्तरि-चचालीससांगरोवमकोडाकोडीओ दोहि आवलियाहि ऊणाओ ।  
 णवणोकं उक्कस्सद्विदिसंकमं अद्धाच्छेदो चचालीसं सांगरोवमकोडाकोडीओ तीहि  
 आवलियाहि परिहीणाओ । सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणमुक्कस्सद्विदिसं अद्धां सत्तरि-  
 सांगरोवमकोडां अंतोमुहुत्तूणाओ । एवं चदुसु गदीसु । णवरि पंचित्तिरि अपज्जं-  
 मणुसं अपज्जं अद्धावीसं पयडीणमुक्कस्सद्विदिसं अद्धां सत्तरि-चचालीसं सांगरोकोडां  
 अंतोमुहुत्तूणाओ । आणदादि जाव सव्वट्ठा त्ति सव्वासिं पयडीणमुक्कस्सद्विदिसं अद्धां  
 अंतोकोडां । एवं जावं ।

§ ६१३. अब उत्तर प्रकृति स्थितिसंकमका कथन अवसर प्राप्त है। उसमें ये 'चौवीस  
 अनुयोगद्वार, होते हैं—अद्धाच्छेद, सर्वसंकम, नोसर्वसंकम, उत्कृष्टसंकम, अतुत्कृष्टसंकम,  
 जघन्यसंकम, अजघन्यसंकम, सादिसंकम, अनादिसंकम, ध्रुवसंकम, अध्रुवसंकम, एक जीवकी  
 अपेक्षा स्वामित्त, काल, अन्तर, नानाजीवकी अपेक्षा भंगविचय, भागाभाग, परिमाण, क्षेत्र,  
 स्पर्शन, काल, अन्तर, सन्निकर्ष, भावानुगम और अल्पबहुत्वानुगम। तथा भुजगार आदि चार।  
 इनमेंसे अद्धाच्छेद दो प्रकारका है—जघन्य स्थितिसंकमको विषय करनेवाला और उत्कृष्ट स्थिति-  
 संकमको विषय करनेवाला। अब यहाँ पूर्वके अर्पणासूत्रका अवलम्बन लेकर उत्कृष्ट स्थितिसंकम  
 विषयक अद्धाच्छेद उत्कृष्ट स्थिति उदीरणविषयक अद्धाच्छेदके समान है यह बतलाते हैं। यथा—  
 उत्कृष्ट स्थितिसंकमविषयक अद्धाच्छेदका निर्देश दो प्रकारका है—ओषनिर्देश और आदेशनिर्देश।  
 ओषकी अपेक्षा मिथ्यात्वका उत्कृष्ट स्थितिसंकम अद्धाच्छेद दो आवलि कम सत्तर कोडाकोड़ी  
 सागरप्रमाण है। सोलह ऋषयोंका उत्कृष्ट स्थितिसंकम अद्धाच्छेद दो आवलि कम चालीस  
 कोडाकोड़ी सागर प्रमाण है। तथा नौ नोकषयोंका उत्कृष्ट स्थितिसंकम अद्धाच्छेद तीन आवलि  
 कम चालीस कोडाकोड़ी सागर है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका उत्कृष्ट स्थितिसंकम  
 अद्धाच्छेद अन्तमुहूर्त कम सत्तर कोडाकोड़ी सागरप्रमाण है। इसी प्रकार चारों गतियोंमें जानना  
 चाहिये। किन्तु इतनी विशेषता है कि पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्त और मनुष्य अपर्याप्तकोंमें अद्धास  
 प्रकृतियोंका उत्कृष्ट स्थितिसंकम अद्धाच्छेद अन्तमुहूर्तकम सत्तर और चालीस कोडाकोड़ी सागर  
 है। आनतसे लेकर सर्वार्थसिद्धितकके देवोंमें सभी प्रकृतियोंका उत्कृष्ट स्थितिसंकम अद्धाच्छेद  
 अन्तः कोडाकोड़ी सागर प्रमाण है। इसी प्रकार अनाहारक मार्गशातक जानना चाहिये।

१. तांआप्रत्योः—कोवीहि परिहीणाओ इति पाठः ।

§ ६१४. संपहि जहण्णद्विदिसंक्रमद्वाच्छेदपरूवणड्डमुवरिमसुत्तसंबंधमवलंबेमो'—

❀ एत्तो जहण्णयं वत्तइस्सामो ।

§ ६१५. पइजासुत्तमेदं जहण्णद्विदिसंक्रमद्वाच्छेदपरूवणाविसयं सुगमं ।

विशेषार्थ—मिथ्यात्वका उत्कृष्ट स्थितिवन्ध सत्तर कोडीकोडी सागरप्रमाण होता है, किन्तु इसका संक्रम वन्धावलिके वाद उदयावलिके ऊपरके निपेकोंका ही होता है, अतः इसका उत्कृष्ट स्थितिसंक्रमअद्वाच्छेद दो आवलिकम सत्तर कोडाकोडी सागरप्रमाण वतलाया है। सोलह कपायोंका उत्कृष्ट स्थितिवन्ध चालीस कोडाकोडी सागरप्रमाण होता है, अतः इसका भी उत्कृष्ट स्थितिसंक्रम पूर्वोक्त कारणसे दो आवलि कम चालीस कोडाकोडी सागरप्रमाण ही कहा है। अब रहे नौ नोकपाय सो इनकी वन्धकी अपेक्षा उत्कृष्ट स्थिति विविध प्रकारकी वतलाई है। हां नक्रमकी अपेक्षा इनकी उत्कृष्ट स्थिति एक आवलि कम चालीस कोडाकोडी सागर प्राप्त होती है, अतः इनका उत्कृष्ट स्थितिसंक्रमअद्वाच्छेद धीन आवलिकम चालीस कोडाकोडी सागरप्रमाण जानना चाहिये, क्योंकि जो उत्कृष्ट स्थिति संक्रमसे प्राप्त होती है उसका सक्रमावलिके वाद ही संक्रम होता है। उसमें भी उदयावलिप्रमाण निपेकोंका संक्रम नहीं होता, अतः नौ नोकपायोंका उत्कृष्ट स्थितिसंक्रमअद्वाच्छेद तीन आवलिकम चालीस कोडाकोडी सागरप्रमाण होता है यह वात सिद्ध हुई। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका अन्तर्मुहूर्तकम सत्तर कोडाकोडी सागरप्रमाण उत्कृष्ट स्थितिसंक्रम अद्वाच्छेद होता है, क्योंकि मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका वन्ध करके जिस जीवने अन्तर्मुहूर्तमे वेदक सम्यक्त्वको प्राप्त कर लिया है उसके सम्यक्त्वको प्राप्त करनेके समयमें ही मिथ्यात्वकी अन्तर्मुहूर्तकम उक्त स्थिति सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वमे संक्रमित हो जाती है और फिर इस स्थितिका संक्रम होने लगता है। तथापि यह संक्रम उदयावलिके ऊपरके निपेकोंका ही होता है। अतः सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका उत्कृष्ट स्थितिसंक्रम-अद्वाच्छेद अन्तर्मुहूर्तकम सत्तर कोडाकोडी सागरप्रमाण है यह सिद्ध होता है। यतः यह स्थिति-संक्रमअद्वाच्छेद चारों गतियोंमें वटित हो जाता है अतः उसके कथनको ओषके समान जानना चाहिये। किन्तु कुछ मार्गणाएं इसकी अपवाद हैं। वात यह है कि पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्त और मनुष्य अपर्याप्तकी उत्कृष्ट स्थिति अन्तर्मुहूर्त कम प्राप्त होती है, क्योंकि इन मार्गणाओंमे उत्कृष्ट स्थितिवन्ध सम्भव नहीं है। अतः जो जीव उत्कृष्ट स्थितिका वन्ध करके अन्तर्मुहूर्तके भीतर इन दो मार्गणाओंमें उत्पन्न होते हैं उन्हींके यह उत्कृष्ट स्थिति पाई जाती है। तथापि ऐसे जीव इनमें अन्तर्मुहूर्त वाद ही उत्पन्न होते हैं, अतः यहाँ ओष उत्कृष्ट स्थितिको अन्तर्मुहूर्त कम कर देना चाहिये। यही कारण है कि इन दो मार्गणाओंमे मिथ्यात्व, सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका उत्कृष्ट स्थितिसंक्रम-अद्वाच्छेद अन्तर्मुहूर्तकम सत्तर कोडाकोडी [सागरप्रमाण और शेष पचीस प्रकृतियोंका अन्तर्मुहूर्त कम चालीस कोडाकोडी सागरप्रमाण वतलाया है। तथा अनतादिकमें अन्त-कोडाकोडी सागरप्रमाण ही उत्कृष्ट स्थिति होती है, अतः यहाँ सब प्रकृतियोंका उत्कृष्ट स्थितिसंक्रमअद्वाच्छेद उक्तप्रमाण वतलाया है।

§ ६१४. अब जघन्य स्थितिसंक्रमअद्वाच्छेदका कथन करनेके लिये आगेके सूत्रोंके सम्बन्धका अवलम्ब लेते हैं—

❀ इससे आगे जघन्य स्थितिसंक्रमअद्वाच्छेदको वतलाते हैं ।

§ ६१५ यह प्रतिज्ञा सूत्र है। इससे जघन्य स्थितिसंक्रमअद्वाच्छेदके कथन करनेकी सूचना की गई है। यह सुगम है।

१. आ०प्रतौ —मवलवेयवो इति पाठः ।

❀ मिच्छत्त-सम्मामिच्छत्त-वारसकसाय-इत्थि-णवुंसयवेदाणं जहण-  
ट्टिदिसंकमो पल्लिवोवमस्स असंखेज्जदिभागो ।

§ ६१६. कुदो ? मिच्छत्त-सम्मामिच्छत्ताणं दंसणमोहक्खवणाचरिमफालीए  
अणंताणुबंधीणं विसंजोयणाचरिमफालिसंकममे अट्टकसायाणं च खवयस्स तेसिं चैव  
पच्छिमट्टिदिसंखंडयचरिमफालिसंकमकाले इत्थि-णवुंसयवेदाणं पि चरिमट्टिदिसंखंडयमि  
सुत्तुत्तपमाणजहणणट्टिदिसंकमसंभवोवलद्धीदो । एवमेदेसिं कम्माणं जहणणट्टिदिसंकमद्वा-  
छेदं परुविय संपहि सम्मत्त-लोहसंजलणाणं तण्णिणयविहाणट्टुत्तरसुत्तमाह—

❀ सम्मत्त-लोहसंजलणाणं जहणणट्टिदिसंकमो एया द्विदी ।

§ ६१७. सम्मत्तस्स दंसणमोहक्खवणाए समयाहियाववियमेत्तसेसे लोह-  
संजलणस्स चि सुहुमसांपराइयक्खवणद्वाए समयाहियाववियासेसाए ओकट्टुणासंकम-  
वसेण पयदद्वाछेदसंभवो वत्तव्वो । सेसकम्माणं जहणणट्टिदिअद्वाछेदणिद्वारणट्टुमुचरिमो  
सुत्तपबंधो—

❀ कोहसंजलणस्स जहणणट्टिदिसंकमो वे मासा अंतोमुट्टत्था ।

\* मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व, वारह कषाय, स्त्रीवेद और नपुंसकवेदका जघन्य  
स्थितिसंक्रमअद्वाछेद पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है ।

§ ६१६. क्योंकि दर्शनमोहनोयकी क्षणका कालमें मिथ्यात्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी  
अन्तिम फालिका पतन होते समय, अनन्तानुबन्धियोंकी विसंयोजनाकी अन्तिम फालिका संक्रम  
होते समय, क्षपक जीवके आठ कषायोंकी अन्तिम स्थितिकाण्डककी अन्तिम फालिका संक्रम होते  
समय और स्त्रीवेद व नपुंसकवेदके अन्तिम स्थितिकाण्डकके पतनके समय सूत्रमें कहे अनुसार  
जघन्य स्थितिसंक्रम पाया जाता है । आशय यह है कि अपनी अपनी क्षणका समय जब इन  
कर्मोंके अन्तिम स्थितिकाण्डककी अन्तिम फालिका पतन होता है तब यह जघन्य स्थितिसंक्रम-  
अद्वाछेद होता है । इस प्रकार इन कर्मोंके जघन्य स्थितिसंक्रमअद्वाछेदका कथन करके अब  
सम्यक्त्व और लोभ संज्वलनके इस जघन्य स्थितिसंक्रमअद्वाछेदका निर्णय करनेके लिये आगेका  
सूत्र कहते हैं—

\* सम्यक्त्व और लोभ संज्वलनका जघन्य स्थितिसंक्रमअद्वाछेद एक स्थिति-  
प्रमाण है ।

§ ६१७. क्योंकि दर्शनमोहकी क्षणामें एक समय अधिक एक आवलिप्रमाण काल शेष  
रहने पर सम्यक्त्वका और सूत्रमसांपराय क्षणके कालमें एक समय अधिक एक आवलिप्रमाण  
काल शेष रहने पर लोभ संज्वलनका अपकर्षणसंक्रमके कारण अद्वाछेद सम्भव है यह  
कहना चाहिये । अब शेष कर्मोंके जघन्य स्थितिसंक्रमअद्वाछेदका निश्चय करनेके लिये आगेके  
सूत्रोंका निर्देश करते हैं—

\* क्रोधसंज्वलनका जघन्य स्थितिसंक्रमअद्वाछेद अन्तर्मुहूर्त कम दो  
महीना है ।

१६१८. स्वयम् नग्मिद्विसंघनेन फलितं कर्मणावत्यागं नद्वलंभाद् ।  
 कुत्रो अतोमुहत्तूणं ? ण, आवातावाहिरस्सेव णवकांघम्म तत्थ संकंतीणं  
 तदणवाविरोभाद् ।

⊙ माणसंजलणरस जहणणद्विसंघमो मासो अतोमुहत्तूणो ।

§ ६१९. सुगमं ।

⊙ मायासंजलणरस जहणणद्विसंघमो अत्तमासो अतोमुहत्तूणो ।

६२०. सुगमं ।

⊙ पुरिसवेदस्स जहणणद्विसंघमो अट्ट चस्साणि अतोमुहत्तूणाणि ।

६२१. सुगमं ।

⊙ ल्हणपोकत्तायाणं जहणणद्विसंघमो संगेज्जाणि चस्साणि ।

६२२. कुत्रो ? तेमिं चरिमिद्विसंघनायामन्व नप्पमाणत्ताद् । एवमोघेण  
 अट्टावीणमोत्तयत्तीणं जहणणद्विसंघमत्ताच्छेदं परविय मंपति आद्वेगपरवणाणं धो जपटि-  
 भूदमुत्तमिगमुत्ताह—

⊙ मदीसु अणुमग्गियच्चो ।

१६१८ क्योंकि प्रत्येक जीवने अग्निम स्थितिराष्टक्या अग्निम स्थितिरा संवत्सरे हेनेकी  
 कल्पनामें एक आवातावाहिर पदा जाता है ।

शंका—इसे दो महोत्तमो अन्नमुहत्तूणं कम कर्मो कल्पना है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि आवातावाहिरके आदरे नरकवन्धन ही यहां संकम होता है,  
 इमन्विये इसे दो महोत्तमो अन्नमुहत्तूणं कम कर्मोमें कोई विशेष नहीं आता है ।

⊙ मानसंज्वलनका जघन्य स्थितिसंक्रमअट्टाच्छेदं अन्नमुहत्तूणं कम एक महोत्तमो ।

६१९. यह सूत्र सुगम है ।

⊙ मायासंज्वलनका जघन्य स्थितिसंक्रमअट्टाच्छेदं अन्नमुहत्तूणं कम आधा  
 महोत्तमो है ।

§ ६२०. यह सूत्र सुगम है ।

⊙ पुरिसवेदका जघन्य स्थितिसंक्रमअट्टाच्छेदं संख्यात वर्षं है ।

६२१. यह सूत्र सुगम है ।

⊙ ल्हणपोकत्तायांका जघन्य स्थितिसंक्रमअट्टाच्छेदं संख्यात वर्षं है ।

६२२. क्योंकि इनके अग्निम स्थितिराष्टक्या आयाम संख्यात वर्षप्रमाण ही पाया जाता  
 है । इस प्रकार आग्नेम मांशनीयकी अट्टारम प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिसंक्रमअट्टाच्छेदका कथन  
 करके अब आदेशप्रत्यगा के बीजभूत आगेका सूत्र करते हैं—

⊙ चारों गतियोंमें जघन्य स्थितिसंक्रमअट्टाच्छेदका विचार कर लेना  
 चाहिए ।

§ ६२३. एदीए दिसाए णिरयादिगदीसु वि जहण्णद्धिदिअद्वाच्छेदो अणुमग्गणिञ्जो त्ति वुत्तं होइ । एदेण सच्चिदमादेसपरूवणमुच्चारणाणुसारेण वत्तइस्सामो । तं जहा— आदेसेण णेरह्य० मिच्छ०-वारसक०-णवणोक्क० द्विदिविहचिभंगो । सम्म०-सम्मामि०-अणंताणु०४-ओघो । एव पढमाए । विदियादि जाव सत्तमा त्ति मिच्छत्त-वारसक०-णवणोक्कसायाणि द्विदिविहचिभंगो । सम्म०-सम्मामि०-अणंताणु०४ जहण्णद्धिदिसंक्क०-अद्वा० पल्लिदो० असंखे० भायो ।

§ ६२४. तिरिक्ख-पंचि० तिरिक्खतिय०३ मिच्छत्त-वारसक०-णवणोक्क० जह० द्विदिसं०अद्वा० सागरो० सत्त-सत्त० चत्तारि-सत्त० पल्लिदो० असंखे० भागेणूणया । सम्म०-सम्मामि०-अणंताणु०४ ओघभंगो । णवरि जोगिणीसु सम्मत्त० सम्मामिच्छत्त-

§ ६२३. इसी पद्धतिसे नरक आदि गतियोंमें भी जघन्य स्थितिसंक्रमअद्वाच्छेदका विचार कर लेना चाहिये यह इस सूत्रका तात्पर्य है। अब इस सूत्रद्वारा सूचित हुई आदेशा प्ररूपणा-को उच्चारणाके अनुसार बतलाते हैं। यथा—आदेशकी अपेक्षा नारकियोंमें मिथ्यात्व, बारह कपाय और नौ नोकपायोंका जघन्य स्थितिसंक्रमअद्वाच्छेद स्थितिविभक्तिके समान है। सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धीचतुष्कका जघन्य स्थितिसंक्रमअद्वाच्छेद ओघके समान है। इसी प्रकार पहली पृथिवीमें जानना चाहिये। दूसरी पृथिवीसे लेकर सातवीं पृथिवी तकके नारकियोंमें मिथ्यात्व, बारह कपाय और नौ नोकपायोंका जघन्य स्थितिसंक्रमअद्वाच्छेद स्थिति-विभक्तिके समान है। तथा सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धीचतुष्कका जघन्य स्थितिसंक्रमअद्वाच्छेद पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है।

विशेषार्थ—सामान्यसे नारकियोंमें और प्रथम नरकके नारकियोंमें सम्यक्त्वकी ज्ञापणा, सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्देलना और अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी विसंयोजना सम्भव होनेके कारण यहाँ इन तीनोंका जघन्य स्थितिसंक्रमअद्वाच्छेद ओघके समान बतलाया है। इसी प्रकार द्वितीयादि शेष नरकोंमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्देलना होनेके कारण तथा अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी विसंयोजना सम्भव होनेके कारण यहाँ इनका जघन्य स्थितिसंक्रमअद्वाच्छेद पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण बतलाया है। इसके सिवा सब नरकोंमें शेष कर्मोंका जहाँ जितना जघन्य स्थितिसत्त्व सम्भव है वहाँ इतना संक्रम पाया जाता है, अतः सर्वत्र शेष प्रकृतियोंका जघन्य स्थितिसंक्रम अद्वाच्छेद स्थितिविभक्तिके समान बतलाया है। किन्तु यहाँ इतना विशेष जानना चाहिये कि जहाँ जितना जघन्य स्थितिसत्त्व होगा उससे यह जघन्य स्थितिसंक्रमअद्वाच्छेद एक आवलिप्रमाण कम ही होगा, क्योंकि जो निषेक उदयावलिके भीतर प्रविष्ट हो जाते हैं उनका संक्रम नहीं होता है।

§ ६२४. तिर्यञ्च सामान्य और पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चत्रिकमें मिथ्यात्वका जघन्य स्थितिसंक्रम अद्वाच्छेद एक सागरके सात भागोंमेंसे पल्यका असंख्यातवां भाग कम सात भागप्रमाण है। तथा बारह कपाय और नौ नोकपायोंका जघन्य स्थितिसंक्रमअद्वाच्छेद एक सागरके सात भागोंमेंसे पल्यका असंख्यातवां भाग कम चार भागप्रमाण है। सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धीचतुष्कका जघन्य स्थितिसंक्रमअद्वाच्छेद ओघके समान है। किन्तु इतनी विशेषता है कि यौनिनी तिर्यञ्चोंमें सम्यक्त्वका जघन्य स्थितिसंक्रमअद्वाच्छेद सम्यग्मिथ्यात्वके जघन्य स्थितिसंक्रमअद्वाच्छेदके

भंगो । पंचिदियतिरिक्खअपज्ज०—मणुसअपज्जत्तएसु जोणिणीभंगो । णवरि अणंताणु०—  
चउक्कं सह कसाएहि भाणियव्वं ।

§ ६२५. मणुसतिए ओघं । णवरि मणुसिणीसु पुरिसवेदस्स छण्णोकसाय-  
भंगो । देवेसु णारस्यभंगो । एत्तं भवण०—वाणवंत० । णवरि सम्मत्त० जह० पल्लिदो०  
असंखे०भागो । जोदिसियाणं विदियपुढाचिभंगो । सोहम्मादि जाव णवगेवज्जा त्ति सो  
चेव भंगो । णवरि सम्मत्तस्स ओघं । अणुहिसादि जाव सव्वट्ठे त्ति २३ पयड्डीणं  
जहण्णट्टिदिसं०अद्वा० अंतोक्कोडाक्कोडी । सम्मत्ताणंताणुवंधीणमोघभंगो । एवं जान० ।

समान है । पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्त और मनुष्य अपर्याप्तकामें सब प्रकृतियोंका जघन्य स्थिति-  
संक्रमअद्वाच्छेद योनिनी तिर्यञ्चोंके समान है । किन्तु इतनी विशेषता है कि इनमें अनन्तानुबन्धी  
चतुष्कका भंग कपायोंके साथ कहना चाहिये ।

विशेषार्थ—सामान्य तिर्यञ्चोंमें और पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चविक्रमं मिथ्यात्व, धारह कपाय  
और नौ नोकपायोंका जघन्य स्थितिसंक्रमअद्वाच्छेद कहते समय एकेन्द्रियोंकी व जो एकेन्द्रिय  
पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चविक्रम उत्पन्न हुए हैं उनकी प्रधानता है । इस अपेक्षासे मूलमें उक्त प्रकृतियोंका  
जो जघन्य स्थितिसंक्रमअद्वाच्छेद बतलाया है वह बन जाता है । अथ रहीं सम्यक्त्व,  
सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धीचतुष्क ये छह प्रकृतियां सो इन मार्गणाओंमें सम्यक्त्वकी क्षण  
करनेवाला जीव भी उत्पन्न होता है और यहां सम्यग्मिथ्यात्वकी उल्लेखना व अनन्तानुबन्धी  
चतुष्ककी विसंयोजना भी सम्भव है, अतः इन छह प्रकृतियोंका जघन्य स्थितिसंक्रमअद्वाच्छेद  
ओषके समान बतलाया है । किन्तु योनिनी तिर्यञ्चोंमें कृतकृत्यवेदक सम्यग्दृष्टि जीव मरकर नहीं  
उत्पन्न होते, अतः वहां सम्यक्त्वका जघन्य स्थितिसंक्रमअद्वाच्छेद ओषके समान नहीं प्राप्त होता ।  
किन्तु उल्लेखनाकी अपेक्षा जो जघन्य स्थितिसंक्रमअद्वाच्छेद सम्भव है वह यहां प्राप्त होता है,  
अतः इस मार्गणामें सम्यक्त्वका जघन्य स्थितिसंक्रमअद्वाच्छेद सम्यग्मिथ्यात्वके जघन्य स्थिति-  
संक्रमअद्वाच्छेदके समान बतलाया है । पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्त और मनुष्य अपर्याप्तकामें  
सब व्यवस्था योनिनी तिर्यञ्चोंके समान बन जाती है, इसलिये इनके कथनको उनके समान कहा  
है । किन्तु इन दो मार्गणाओंमें अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी विसंयोजना नहीं होती, अतः यहां  
अनन्तानुबन्धीचतुष्कका जघन्य स्थितिसंक्रमअद्वाच्छेद शेष कपायोंके समान प्राप्त होनेके कारण  
वैसा बतलाया है ।

§ ६२६. मनुष्यविक्रमं सब प्रकृतियोंका जघन्य स्थितिसंक्रमअद्वाच्छेद ओषके समान  
है । किन्तु इतनी विशेषता है कि मनुष्यनिर्यामं पुरुषवेदका जघन्य स्थितिसंक्रमअद्वाच्छेद छह  
नोकपायोंके समान है । देवोंमें जघन्य स्थितिसंक्रमअद्वाच्छेदका भंग नारकियोंके समान है । इसी  
प्रकार भवनवासी और व्यन्तर देवोंमें जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि इनमें सम्यक्त्व  
का जघन्य स्थितिसंक्रमअद्वाच्छेद परत्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है । ज्योतिषी देवोंमें जघन्य  
स्थितिसंक्रमअद्वाच्छेदका भंग दूसरी पृथिवीके समान है । सौधर्म कल्पसे लेकर नौ प्रैययक तकके  
देवोंमें वही भंग है । किन्तु इतनी विशेषता है कि यहां सम्यक्त्वका जघन्य स्थितिसंक्रमअद्वाच्छेद-  
का भंग ओषके समान है । अनुदिरासे लेकर सर्वाथिसिद्धि तकके देवोंमें तेईस प्रकृतियोंका जघन्य  
स्थितिसंक्रमअद्वाच्छेद अन्तःकोडाकोडी सागरप्रमाण है । तथा सम्यक्त्व और अनन्तानुबन्धियोंके  
जघन्य स्थितिसंक्रमअद्वाच्छेदका भंग ओषके समान है । इसी प्रकार अनाहारक मार्गणातक  
जानना चाहिये ।



§ ६२६. सव्व-पोसव्व-उक्कस्साणुक्कस्स-जहण्णाजहण्णाड्ढिसंक्रमो द्विदिविहत्ति-  
भंगो ।

§ ६२७. सादि-अणादि-धुव-अद्दुवाणु० दुविहो णिदेसो—ओघेण आदेसेण य ।  
ओघेण मिच्छत्तस्स उक्क-अणुक्क-जहण्णाड्ढिसंक्रमो किं सादिया ४ ? सादी अद्दुवो ।  
अज० अणादी धुवो अद्दुओ वा । सोलसक्क-णवणोक्कसायाणमुक्क-अणुक्क-जहण्णाणं  
मिच्छत्तभंगो । अज० चचारि भंगा । सम्मत्त-सम्मामि० उक्कस्साणुक्क-जहण्णाजह-  
संक्रमा सादि-अद्दुवा । आदेसेण सव्वं सव्वत्थ सादि-अद्दुधुवमेव ।

**विशेषार्थ—**ओघसे जो सब प्रकृतियोंका जघन्य स्थितिसंक्रमअद्दाच्छेद कहा है वह मनुष्यत्रिकमें अविकल घट जाता है, इसलिये इनके कथनको ओघके समान कहा है। किन्तु मनुष्यनियोंमें छह नोकषायोंके साथ ही पुरुषवेदकी क्षपणा होती है, अतः इनके पुरुषवेदका जघन्य स्थितिसंक्रमअद्दाच्छेद छह नोकषायोंके समान घतलाया है। नारकियोंमें सब प्रकृतियोंका जो जघन्य स्थितिसंक्रमअद्दाच्छेद घतलाया है वह सामान्य देवोंमें तथा भवनवासी और व्यन्तर देवोंमें अविकल घट जाता है, इसलिये इनके कथनको सामान्य नारकियोंके समान घतलाया है। किन्तु भवनवासी और व्यन्तर देवोंमें कृतकृत्यवेदक सम्यग्दृष्टि जीव मर कर नहीं उत्पन्न होते, अतः वहाँ सम्यक्त्व प्रकृतिका जघन्य स्थितिसंक्रमअद्दाच्छेद पत्यके असख्यातवे भागप्रमाण घतलाया है। सब प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिसंक्रमअद्दाच्छेदकी अपेक्षा दूसरी पृथिवी और ज्योतिषियोंकी स्थिति एक सी है, अतः एतद्विषयक ज्योतिषियोंका कथन दूसरी पृथिवीके नारकियोंके समान घतलाया है। यह अवस्था सौधमें कल्पसे लेकर नौ प्रैवेयक तक बन जाती है, अतः वहाँ जघन्य स्थितिसंक्रमका भंग भी इसी प्रकार घतलाया है। किन्तु इतनी विशेषता है कि इनमें कृतकृत्य वेदक सम्यग्दृष्टि जीव भी मरकर उत्पन्न होते हैं, अतः यहाँ सम्यक्त्वका जघन्य स्थितिसंक्रमअद्दाच्छेद ओघके समान घतलाया है। अनुदिशादिकमें अनन्तानुबन्धी और सम्यक्त्वके सिवा शेष सब कर्मोंकी जघन्य स्थिति अन्तःकोडाकोडी सागरप्रमाण पाई जाती है, अतः यहाँ सम्यक्त्व और अनन्तानुबन्धीके सिवा शेष सब प्रकृतियोंका जघन्य स्थितिसंक्रमअद्दाच्छेद अन्तःकोडाकोडी सागर-प्रमाण घतलाया है। तथा यहाँ कृतकृत्यवेदक सम्यग्दृष्टि जीव भी उत्पन्न होते हैं और अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना भी पाई जाती है, अतः इनका जघन्य स्थितिसंक्रम ओघके समान घतलाया है। इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक यथायोग्य सब प्रकृतियोंका जघन्य स्थितिसंक्रमअद्दाच्छेद घटित कर जान लेना चाहिये।

§ ६२६. सर्वस्थितिसंक्रमअद्दाच्छेद, नोसर्वस्थितिसंक्रमअद्दाच्छेद, उत्कृष्ट स्थितिसंक्रम अद्दाच्छेद, अनुत्कृष्ट स्थितिसंक्रमअद्दाच्छेद, जघन्य स्थितिसंक्रमअद्दाच्छेद और अजघन्य स्थितिसंक्रमअद्दाच्छेद इनका कथन जैसा स्थितिविभक्तिमें विधा है वैसा यहाँ करना चाहिये।

§ ६२७. सादि, अनादि, धुव अद्दुवानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश। ओघकी अपेक्षा मिथ्यात्वका उत्कृष्ट, अनुत्कृष्ट और जघन्य स्थितिसंक्रम क्या सादि है, क्या अनादि है, क्या धुव है या क्या अधुव है ? सादि और अधुव है। अजघन्य स्थितिसंक्रम अनादि, धुव और अधुव है। सोलह कपाय और नौ नोकषायोंके उत्कृष्ट, अनुत्कृष्ट और जघन्यका भंग मिथ्यात्वके समान है। अजघन्यके चार भंग हैं। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका उत्कृष्ट, अनुत्कृष्ट जघन्य और अजघन्य स्थितिसंक्रम सादि और अधुव है। तथा आदेशकी अपेक्षा सब पद सभी गति मार्गणाओंमें सादि और अधुव है।

❀ सामित्तं ।

६ ६२८. एत्तो सामित्ताणुगमं कस्सामो चि पइज्जासुत्तमेदं सुगमं ।

❀ उक्कस्सद्विदिसंक्रामयस्स सामित्तं जहा उक्कस्सियाए द्विदीए उदीरणा तथा षेदब्बं ।

६ ६२०. संपहि एत्थुक्कस्सद्विदिसंक्रमसामित्तं सुत्तसमग्गिदुयुच्चारणावलेण वत्त-  
इस्सामो । तं जहा—सामित्तं दुविहं—जह० उक्क० च । उक्कस्से पयदं । दुविहो णि०—  
ओघेण आदरेसेण य । ओघेण मिच्छत्त-सोलसक० उक्क०द्विदिसं० कस्स ! अण्णदर०  
मिच्छाइद्विस्स उक्कस्सद्विदिं वंधिदूणावलिादीदस्स । एवं० णवणोक्कसाय० । णवरि कसा-  
युक्कस्सद्विदिं पडिच्छियुणावलिादीदस्स । सम्मत्त०-सम्माणि० उक्क०द्विदिसं० कस्स ?

विज्ञेयार्थ—मिथ्यात्व, सोलह कपाय और नौ नोकपायोंका उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थिति-  
संक्रम कदाचित्क है । तथा जघन्य स्थितिसंक्रम क्षपणाके समय ही होता है, अतः इन प्रकृतियोंके  
ये दोनों स्थितिसंक्रम सादि और अभ्रुव यद्दे हैं । किन्तु अजघन्य स्थितिसंक्रममे कृद्द विशेषता है ।  
वात यह है कि मिथ्यात्वका जघन्य स्थितिसंक्रम प्राप्त होनेके पूर्वतक अजघन्य स्थितिसंक्रम रहता  
है, इसलिये तो वड अनादि है । तथा भन्यकी अपेक्षा अभ्रुव और अभन्यकी अपेक्षा ध्रुव है । अत्र  
रहे सोलह कपाय और नौ नोकपाय सो इनमें से अनन्तानुवन्धी विसंयोजना प्रकृति होनेके कारण  
इसके अजघन्य स्थितिसंक्रमके सादि आदि चारों विकल्प बन जाते हैं । इसी प्रकार श्रेय इक्कीस  
प्रकृतियोंका उपशमत्रोणिमं संक्रमका अभाव हो कर अजघन्य स्थितिसंक्रम पुनः चाड्ड होता है, अतः  
इनके अजघन्य स्थितिसंक्रमके भी सादि आदि चारों विकल्प बन जाते हैं । इस प्रकार मिथ्यात्व  
आदि २६ प्रकृतियोंका विचार हुआ । अत्र रही सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व ये दो प्रकृतियाँ सो ये  
प्रकृतियाँ ही जय कि नादि और सान्त हैं तय इनके उत्कृष्ट स्थितिसंक्रम आदि चारों संक्रम सादि  
और सान्त हैं गेसा होनेमें कोई आपत्ति नहीं है । नरक गति आदि चारों गतियाँ प्रत्येक जीवकी  
अपेक्षा सादि और अभ्रुव हैं, इसलिए इनमें सन प्रकृतियोंके सादि और अभ्रुव ये दो भंग ही बनते  
हैं यह स्पष्ट ही है ।

\* अत्र स्वामित्त्वका अधिकार है ।

६ ६२८. उससे आगे स्वामित्वानुगमका विचार करते हैं । इस प्रकार यह प्रतिज्ञा सूत्र है जो  
सुगम है ।

\* उत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकका स्वामित्व उत्कृष्ट स्थितिकी उदीरणाके स्वामित्वके  
समान जानना चाहिए ।

६ ६२६. अत्र यद्दो जो सूत्रमें उत्कृष्ट स्थितिके संक्रमके स्वामित्वका संकेत किया है सो उसे  
उच्चारणाके बलसे वतलाते हैं । यथा—स्वामित्व दो प्रकारका है—जघन्य और उत्कृष्ट । उत्कृष्टका  
प्रकरण है । निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । ओघसे मिथ्यात्व और  
सोलह कपायोंका उत्कृष्ट स्थितिसंक्रम किसके होता है ? जिस मिथ्यादृष्टिको उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध  
किप एक आवलि हुआ है उसके होता है । इसी प्रकार नौ नोकपायोंका जानना चाहिए ।  
किन्तु इतनी विशेषता है कि कपायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका संक्रम किये जिसे एक आवलिकाल हो

१. आ० प्रती सव्वं इति पाठः॥

अण्णद० जो पुव्ववेदगो सम्मत्त-सम्मामि० संतकम्मिओ मिच्छत्तुक्कस्सट्ठिदिं बंधियूणंतो-  
सुहुत्तपडिभगो ट्ठिदिधादमकाऊण सम्मत्तं पडिवण्णो तस्स विदियसमयसम्माइडिस्स ।  
एवं चदुसु गदीसु । णवरि पंचिदियतिरि० अपज्ज०-मणुसअपज्ज०-आणदादि जाव सव्वट्ठे  
त्ति ट्ठिदिविहत्तिभगो । एवं जाव० ।

❖ जहणणयभेयजीवेण सामित्तं कायव्वं ।

§ ६३०. सुगमं ।

❖ मिच्छत्तस्स जहणणओ ट्ठिदिसंकमो कस्स ?

§ ३३१. सुगमं ।

❖ मिच्छत्तं खवेमाणस्स अपच्छिमट्ठिदिखंडयचरिमसमयसंकाभयस्स  
तस्स जहणणयं ।

§ ६३२. मिच्छत्तं खवेमाणस्से त्ति विसेसणेण तदुवसामणादिवावारंतरेसु  
पयट्ठस्स सामित्ताभावो पदुप्पाइदो । अपच्छिमट्ठिदिखंडयवयणेण तदण्णट्ठिदिखंडयपडिसेहो  
कओ । चरिमसमयसंकाभयविसेसणेण दुचरिमादिसमयसंकाभयस्स सामित्तसंबंधो  
पडिसिद्धो । सेसं सुगमं ।

गया है उसके यह नौ नौकषायोंका उत्कृष्ट स्थितिसंक्रम होता है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका  
उत्कृष्ट स्थितिसंक्रम किसके होता है ? जो जीव पूर्वमें वेदक होकर सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका  
सत्कर्मवाला है और इसके बाद जिसे मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करके वहाँसे निवृत्त हुए  
अन्तर्मुहूर्त काल हो गया है वह जीव स्थितिघात किये बिना यदि सम्यक्त्वको प्राप्त होता है तो उस  
सम्यग्दृष्टिके दूसरे समयमें यह उत्कृष्ट स्थितिसंक्रम होता है । इसी प्रकार चारों गतियोंमें जानना  
चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि पंचेन्द्रिय तिर्यक् अपर्याप्त, मनुष्य अपर्याप्त और आनत कल्पसे  
लेकर सर्वार्थसिद्धितकके देवोंमें सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिके संक्रमका स्वामित्व स्थिति-  
विभक्तिके समान है । इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिये ।

❖ अब एक जीवकी अपेक्षा जघन्य स्वामित्वका कथन करना चाहिये ।

§ ६३०. यह सूत्र सुगम है ।

❖ मिथ्यात्वका जघन्य स्थितिसंक्रम किसके होता है ।

§ ६३१. यह सूत्र सुगम है ।

❖ जो मिथ्यात्वकी क्षणपा करनेवाला जीव अन्तिम स्थितिकाण्डकके अन्तिम  
समयमें उसका संक्रम कर रहा है उसके मिथ्यात्वका जघन्य स्थितिसंक्रम होता है ।

§ ६३२. जो जीव मिथ्यात्वके उपशामना आदि दूसरे व्यापारोंमें लगा है उसके प्रकृत  
स्वामित्व नहीं होता है यह बतलानेके लिए सूत्रमें 'मिच्छत्तं खवेमाणस्स' पद दिया है । अपच्छिम-  
ट्ठिदिखंडय' वचन द्वारा इसके सिवा शेष स्थितिकाण्डकोंका प्रतिषेध किया है । तथा 'चरिमसमय-  
संकाभय' इस विशेषण द्वारा जो जीव अन्तिम स्थितिकाण्डकके संक्रमके द्विचरम आदि समयोंमें  
विद्यमान है उसके स्वामित्वका निषेध किया है । शेष कथन सुगम है ।

⊗ सम्मत्तस्स जहणणद्विदिसंक्रमो कस्स ?

§ ६३३. सुगमं ।

⊗ समयाहियावलियअक्खीणदंसणमोहणीयस्स ।

§ ६३४. समयाहियावलियाए अक्खीणदंसणमोहणीयं जस्स सों समयाहियावलिय-  
अक्खीणदंसणमोहणीओ । तस्स पयदजहणणसामित्तं होइ ति सुत्तथसंबंधो । सेसं सुगमं ।

⊗ सम्मामिच्छत्तस्स जहणणद्विदिसंक्रमो कस्स ?

§ ६३५. पुच्छामुत्तमेदं सुगमं ।

⊗ अपच्छिमद्विदिसंक्रमं चरिमसमयसंलुहमाणयस्स तस्स जहणणयं ।

§ ६३६. एदस्स सुत्तस वक्खणं कौरमाणे जहा मिच्छत्तजहणणद्विदिसं-  
सामित्तसुत्तस वक्खणं कयं तथा कायच्चं, दंसणमोहक्खवणाचरिमफालीए सामित्त-  
विहाणं पडि तत्तो एदस्स विसेसाणुत्तमादो ।

⊗ अणंताणुचंधीणं जहणणद्विदिसंक्रमो कस्स ?

§ ६३७. सुगमं ।

⊗ विसंजोएंतस्स तेसिं चैव अपच्छिमद्विदिसंक्रमं चरिमसमय-  
संक्रामयस्स ।

\* सम्यक्त्वका जघन्य स्थितिसंक्रम किसके होता है ?

§ ६३३. यह सूत्र सुगम है ।

\* जिसके दर्शनमोहनीयका क्षय होनेमें एक समय अधिक एक आवलि काल शेष है उसके सम्यक्त्वका जघन्य स्थितिसंक्रम होता है ।

§ ६३४. जिसके दर्शनमोहनीयका क्षय होनेमें एक समय अधिक एक आवलि काल शेष है वह समयाधिक-प्रायलिअक्षीणदर्शनमोहनीय है । उसके प्रकृत जघन्य स्वामित्व होता है यह इस सूत्रका तात्पर्य है । शेष कथन सुगम है ।

\* सम्यग्मिथ्यात्वका जघन्य स्थितिसंक्रम किसके होता है ?

§ ६३५. यह पुच्छामुत्त सुगम है ।

\* जो अन्तिम स्थितिकाण्डकका उसके अन्तिम समयमें संक्रम कर रहा है उसके सम्यग्मिथ्यात्वका जघन्य स्थितिसंक्रम होता है ।

§ ६३६. इस सूत्रका व्याख्यान करनेपर जिस प्रकार मिथ्यात्वके जघन्य स्थितिसंक्रमके स्वामित्वविषयक सूत्रका व्याख्यान किया है उसी प्रकार करना चाहिये, क्योंकि वहाँ जो दर्शन-मोहनीयकी अपेक्षा अन्तिम फालिका पतन होते समय जघन्य स्वामित्वका विधान किया है इसकी अपेक्षा उससे इसमें कोई विज्ञेयता नहीं पाई जाती ।

\* अनन्तालुबन्धियोंका जघन्य स्थितिसंक्रम किसके होता है ।

§ ६३७. यह सूत्र सुगम है ।

\* जो विसंयोजना करनेवाला जीव अनन्तालुबन्धियोंके अन्तिम स्थितिकाण्डकका अन्तिम समयमें संक्रम कर रहा है उसके अनन्तालुबन्धियोंका जघन्य स्थितिसंक्रम होता है ।

§ ६३८. अणंताणुबंधिविसंजोयणाए पयडुस्स चरिमट्टिदिखंडयचरिमफालि-  
संक्रामयस्स पयदजहण्णसामित्तं होइ त्ति सुत्तथो । सेसं सुगमं ।

❀ अट्टण्हं कसायाणं जहण्णट्टिदिसंक्रमो कस्स ?

§ ६३९. सुगमं ।

❀ खवयस्स तेसिं चेव अपच्छिमट्टिदिखंडयं चरिमसमयसंछुह-  
माणायस्स जहण्णयं ।

§ ६४०. खवयस्स चेव तेसिं जहण्णसामित्तं होइ त्ति सुत्तथसंबंधो । सो च  
कदमाए अवत्थाए सामिओ होइ त्ति पुच्छिदे तदुद्देसजाणावणट्टमिदं उच्चं—'तेसिं चेव'  
इच्चादि । तेसिं चेव अट्टकसायाणमपच्छिमे चरिमे ट्टिदिखंडए वट्टमाणो विवक्खिय-  
जहण्णट्टिदिसंक्रमसामिओ होइ । तत्थं वि चरिमसमयसंछुहमाणो चेव, हेट्टा एगो-  
णिसेगेण सह दुचरिमादिफालीणमुवलंभेण जहण्णभावानुप्पत्तीदो । तदो अंतोमुहुत्त-  
मेत्ततदुकीरणद्वागालणेण सामित्तविहाणं सुसंबद्धमिदि ।

❀ कोहसंजलणस्स जहण्णट्टिदिसंक्रमो कस्स ?

§ ६४१. सुगमं ।

❀ खवयस्स कोहसंजलणस्स अपच्छिमट्टिदिबंधचरिमसमयसंछुह-  
माणायस्स तस्स जहण्णयं ।

§ ६३८. अनन्तानुबन्धियोंकी विसंयोजनामें प्रवृत्त हुआ जो जीव अन्तिम स्थितिकाण्डककी  
अन्तिम फालिका संक्रम कर रहा है उसके प्रकृत जघन्य स्वामित्व होता है यह इस सूत्रका तात्पर्य  
है । शेष कथन सुगम है ।

§ ❀ आठ कषायोंका जघन्य स्थितिसंक्रम किसके होता है ?

§ ६३९. यह सूत्र सुगम है ।

❀ जो क्षपक जीव उन्हींके अन्तिम स्थितिकाण्डकका अन्तिम समयमें संक्रम कर  
रहा है उसके आठ कषायोंका जघन्य स्थितिसंक्रम होता है ।

§ ६४०. क्षपक जीवके ही उन प्रकृतियोंका जघन्य स्वामित्व होता है यह इस सूत्रका तात्पर्य है ।  
किन्तु वह क्षपक जीव किस अवस्थामें स्वामी होता है ऐसी पुच्छा होने पर स्वामित्वविषयक स्थानका  
ज्ञान करानेके लिये 'तेसिं चेव' इत्यादि सूत्रवाक्य कहा है । आशय यह है कि जो उन्हीं आठ  
कषायोंके अन्तिम स्थितिकाण्डकमें स्थितमान है वह विवक्षित जघन्य स्थितिसंक्रमका स्वामी होता  
है । उसमें भी अन्तिम समयमें संक्रम करनेवाला जीव उसका स्वामी होता है, क्योंकि इससे नीचे  
एक एक निषेकके साथ द्विचरम आदि फालियोंकी प्राप्ति होनेसे वहाँ जघन्य स्थितिसंक्रमका प्राप्त होना  
सम्भव नहीं है । इसलिये अन्तर्मुहूर्तप्रमाण उत्कीरण कालको गलानेके बाद स्वामित्वका विधान  
करना सुसम्बद्ध है ।

❀ क्रोधसंज्वलनका जघन्य स्थितिसंक्रम किसके होता है ?

§ ६४१. यह सूत्र सुगम है ।

❀ जो क्षपक जीव क्रोधसंज्वलनके अन्तिम स्थितिवन्धका अन्तिम समयमें संक्रम  
कर रहा है उसके क्रोधसंज्वलनका जघन्य स्थितिसंक्रम होता है ।

§ ६४२. खवयस्से ति वयणेणोवसामयादीणं पडिसेहो. कओ। तत्थ वि अणियडिखवयस्सेव, अणत्थ तज्जहण्णभावाणुववत्तीदो। हांतो वि सोदएणोव सेट्ठि-मारूढस्स होइ। माणादीणमुदएण चट्ठिदस्स कोहसंजलणचरिमफालीए अंतोमुहुत्तूपवेमास-सरूवेणाणुवलंभादो। कुदो एवं ? तत्थ तदो हेट्ठिमसंखेज्जणुणट्ठिदिवंधविसए चेव तण्णिणल्लेवणुवलंभादो। सोदएण वि चट्ठिदस्स अपच्छिमट्ठिदिवंधसंक्रामणदाए चेव सामिच्चसंभवो, दुचरिमादिट्ठिदिवंधाणमेत्तो विसेसाहियाणं संक्रामणावत्थाए जहण्ण-सामिच्चविरोहादो। तत्थ वि चरिमसमयसंखुहमाणयस्सेव पयदज्जहण्णसामिच्चं णेदरत्थ। किं कारणं हेट्ठिमहेट्ठिमफालीणमणंतराणंतरोवरिमफालीहिंतो एगेगणिसेगवुट्ठिदंसणेण तत्थ जहण्णसामिच्चविहाणाणुववत्तीदो। कुदो चुण समाणट्ठिदिवंधविसयाणमेदासिं फालीणमेवं विसारिसंभावो चे ? ण, दुचरिमादिसमयपवद्वचरिमफालीणं हेट्ठिमहेट्ठिम-समएसु चेव परिच्छिण्णावाहाणं संबंधेण तहाभावसिद्धीदो। तदो चरिमसमयणवक-बंधचरिमफालिविसए चेव जहण्णसामिच्चमिदि णिरवज्जं। एवं ताव सोदएणोव चट्ठिदस्स खवयस्स कोधवेदगद्दाचरिमसमयणवकबंधमावलियादीदं संक्रामेमाणयस्स समयूणा-

§ ६४२. 'खवयस्स' इस वचन द्वारा उपशामक आदिका निषेध किया है। उसमें भा अनिष्टचित्तक्षपकके ही यह जघन्य स्वामित्व होता है, क्योंकि अन्यत्र प्रकृत जघन्य स्वामित्व नहीं प्राप्त हो सकता। अनिष्टचित्तक्षपकके प्रकृत जघन्य स्वामित्व होता हुआ भी स्वोदयसे जो क्षपकश्रेणि पर चढ़ता है उसीके होता है, क्योंकि गान आदिके उदयसे जो क्षपकश्रेणि पर चढ़ता है उसके क्रोधसंघवलनकी अन्तिम फालि अन्तर्गृहते कम दो महीनाप्रमाण नहीं पाई जाती है।

शंका—ऐसा क्यों है ?

समाधान—क्योंकि वहाँ पर उससे नीचे संख्यातगुणे स्थितिवन्धके रहते हुए ही संज्वलन क्रोधका अभाव उपलब्ध होता है।

स्वोदयसे चढ़े हुए जीवके भी अन्तिम स्थितिवन्धका संक्रम होते समय ही प्रकृत स्वामित्व सम्भव है, क्योंकि द्विचरम आदि स्थितिवन्ध उससे विशेष अधिक होते हैं, अतः उनका संक्रम होते समय जघन्य स्वामित्व होनेमें विरोध आता है। उसमें भी जो अन्तिम समयमें संक्रम कर रहा है उसीके प्रकृत जघन्य स्वामित्व होता है अन्यके नहीं, क्योंकि इससे नीचे नीचेकी जितनी भी फालियाँ हैं उनमें 'अगे आगे' फालियोंसे एक एक निषेककी वृद्धि देखी जानेके कारण वहाँ जघन्य स्वामित्वका विधान नहीं बन सकता है।

शंका—जबकि इन फालियोंका स्थितिवन्ध समान होता है तब इनमें इस प्रकारकी विद्वशता कैसे होती है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि नीचे नीचेके समयोंमें ही जिनकी आवाधा समाप्त होती है ऐसी द्विचरम आदि समयप्रवद्व सम्बन्धी अन्तिम फालियोंके सम्बन्धसे इस प्रकारकी विसदृशता सिद्ध हो जाती है।

इसलिये अन्तिम समयके नवकवन्धकी अन्तिम फालिके आश्रयसे ही जघन्य स्वामित्व होता है यह युक्तियुक्त है। इस प्रकार जो क्षपक स्वोदय से ही क्षपकश्रेणि पर चढ़कर क्रोधवेदकके कालके अन्तिम समयमें नवकवन्ध करके एक आवलिके वाद उसका संक्रम करने लगा है और

वलिमेत्तफालीओ ग्राणिय चरमफालि संक्रामणे वावदस्स कोहसंजलणस्स जहणणओ  
ट्टिदिसंक्रमो होइ ति । एदं णिद्धारिय संपहि सेसदोसंजलणाणं पुरिसवेदस्स च एसो  
चेव भंगो ति समप्पणं कुणमाणो सुत्तमुत्तरं भणइ—

❀ एवं माण-मायासंजलण-पुरिसवेदार्ण ।

§ ६४३. एदेसिं च कम्माणमेवं चैव जहणणसामित्तं दायञ्चं, सोदएण चट्ठिदस्स  
खवयस्स अणियट्टिट्ठाणे सगसगवेदगद्धाचरिमसमयणवकबंधचरिमफालिसंक्रमावत्थाए  
जहणणट्टिदिसंक्रमसंभवं पडि विसेसाभावादो । णवरि माणसंजलणस्स अंतोमुहुत्तूण-  
मासपरिमाणए णवकबंधचरिमफालीए मायासंजलणस्स वि अंतोमुहुत्तपरिहीणद्धमास-  
मेत्तीए णवकबंधचरिमफालीए पुरिसवेदस्स य तदूणद्वयस्समेत्तणवकबंधचरिमफालिविसए  
जहणणसामित्तमिदि एसो विसेसेलेसो जाणियञ्चो ।

❀ लोहसंजलणस्स जहएणट्टिदिसंक्रमो कस्स ?

§ ६४४. सुगममेदं पुच्छासुत्तं ।

❀ आचलियसमयाहियसकसायस्स खवयस्स ।

फिर जो एक समय कम एक आवलिप्रमाण फालियोको गलाकर अन्तिम फालिका संक्रम कर  
रहा है उसके क्रोजसंज्वलनका जघन्य स्थितिसंक्रम होता है । इस प्रकार क्रोधसंज्वलनके  
जघन्यस्थितिसंक्रमका निर्णय करके अब शेष दो संज्वलन और पुरुषवेदका जघन्य  
स्थितिसंक्रमविषयक स्वामित्व इसी प्रकार होता है इस बातका समर्थन करनेके लिये आगेका  
सूत्र कहते हैं—

\* इसी प्रकार मानसंज्वलन, मायासंज्वलन और पुरुषवेदके जघन्य स्थितिसंक्रमका  
स्वामित्व जानना चाहिये ।

§ ६४३. इन कर्मोंका भी इसी प्रकार जघन्य स्वामित्व देना चाहिये, क्योंकि स्वोदयसे  
क्षपकश्रेणिपर चढ़े हुए क्षपक जीवके अनिवृत्तिकरण गुणस्थानमें अपने अपने वेदकालके अन्तिम  
समयमें प्राप्त हुए नवकबंधकी अन्तिम फालिकी संक्रमावस्थाके प्राप्त होने पर इन कर्मोंका जघन्य  
स्थितिसंक्रम होता है, इसलिये संज्वलनक्रोधके जघन्य स्थितिसंक्रमके स्वामित्वके कथनसे इनके  
स्वामित्वके कथनमें कोई विशेषता नहीं है । किन्तु इतनी विशेषता है कि मानसंज्वलनका  
अन्तमुहूर्त कम एक महीनाप्रमाण नवकबंधकी अन्तिम फालिके प्राप्त होने पर मायासंज्वलनका भी  
अन्तमुहूर्त कम आधे महीनाप्रमाण नवकबंधकी अन्तिम फालिके प्राप्त होने पर और पुरुषवेदका  
अन्तमुहूर्त कम आठ वर्षप्रमाण नवकबंधकी अन्तिम फालिके प्राप्त होने पर जघन्य स्वामित्व प्राप्त  
होता है ऐसा यहां विशेष अभिप्राय जानना चाहिये ।

\* लोमसंज्वलनका जघन्य स्थितिसंक्रम किसके होता है ?

§ ६४४. यह पृच्छासुत्त सुगम है ।

\* जिस क्षपक जीवके सकषायभावमें एक समय अधिक एक आवलि काल शेष  
है उसके लोमसंज्वलनका जघन्य स्थितिसंक्रम होता है ।

§ ६४५. आवलिया समयाहिया जस्म सकसायस्स सो आवलियसमयाहियसकसाओ । तस्स पयदजहण्णसामिचं दह्व्वं । सकसायवयणेत्थ मुहुमसांपराओ विचक्खिओ; सेसाणं समयाहियावलियविसेसणाणुववचीए । सो चैव खवयत्तेण विसेसिज्जे, अखवयस्स पयदजहण्णसामिचविरोहादो ।

⊗ इत्थिवेदस्स जहण्णद्विदिसंक्रमो कस्स ?

§ ६४६. सुगमं ।

⊗ इत्थिवेदोदयकखवयस्स तस्स अपच्छिमुद्विदिसंखंड्यं संलुहमाण्यस्स तस्स जहरण्यं ।

§ ६४७. एत्थियवेदोदयकखवयस्से ति वयणं सेसवेदोदयकखवयपडिसेहफलं । णिरत्थयमिदं विसेसणं, अण्णवेदोदण्ण वि चट्ठिदस्स खवयस्स जहण्णद्विदिसंक्रमाधिरोहादो । ण च सोदय-परोदण्ण चट्ठिदाणं खवयाणमित्थिवेदचरिमद्विदिसंखंड्यमि विसरित्तभावे अत्थि, णनुंसयवेदस्सेव तदणुवलंभादो । तस्सा अण्णदरवेदोदहन्तास्स खवयस्से ति नामिचणिदोसो कायणो ति । एत्थ परिहारो—सचमेदमुदाहरणमेत्तं तु इत्थिवेदोदय-कखवयावलंघणं णेदं तंतमिदि वेत्तव्वं । परोदण्णेव सामिचं कायव्वं, सोदण्ण पढमट्टिदीए

§ ६४५. जिम मरुपाय जीवके एक समय अधिक एक आरति काल शेष है वह आरति-समयाधिक्रमकपाय जीव है । उसके प्रकृत जपन्य रामित्य जानना चाहिये । इस सूत्रमें 'सकसाय' इस वचन द्वारा मूढमसाम्प्रायिक जीव लिया गया है, क्योंकि शेष जीवोंके 'जिनके एक समय अधिक एक आरति काल शेष है' वह विशेषण नहीं बन सकता । उसमें भी वह जीव क्षपक ही होता है यह कतलानेके लिये क्षपक यह विशेषण दिया है, क्योंकि अक्षरक जीवके प्रकृत जपन्य स्वामित्यके होनेमें विरोध आता है ।

\* स्त्रीवेदका जपन्य स्थितिमंक्रम किसके होता है ।

§ ६४६. यह नून सुगम है ।

\* जो स्त्रीवेदके उदयवाला क्षपक जीव स्त्रीवेदके अन्तिम स्थितिकाण्डकका संक्रम कर रहा है उसके स्त्रीवेदका जपन्य स्थितिमंक्रम होता है ।

§ ६४७. शेष वेदके उदयवाले क्षपक जीवका निषेध करनेके लिये यहां सूत्रमें 'इत्थिवेदोदय-कखयस्स' वचन दिया है ।

शंका—'इत्थिवेदोदयकखयस्स' विशेषण निरर्थक है, क्योंकि अन्य वेदके उदयसे चढ़े हुए क्षपक जीवके भी जपन्य स्थितिसंक्रमके होनेमें कोई विरोध नहीं आता है । स्वोदय या परोदय किसी भी प्रकारसे चढ़े हुए क्षपक जीवोंके स्त्रीवेदके अन्तिम स्थितिलक्षणमें किसी प्रकारकी विसदृशता नहीं होती, क्योंकि जिस प्रकार स्वोदय और परोदयसे चढ़े हुए जीवके नपुंसकवेदके अन्तिम स्थितिकाण्डकमें विसदृशता होती है उस प्रकार यहाँ विसदृशता नहीं पाई जाती, इसलिये प्रथममें स्त्रीवेदके उदयवाले क्षपक जीवके ऐसा निर्देश न करके 'किसी भी वेदके उदयवाले क्षपक जीवके' इसप्रकार स्वामित्यका निर्देश करना चाहिये ?

समाधान—यहाँ स्त्रीवेदके उदयवाले क्षपकका अवलम्ब लिया गया है सो यह उदाहरण-मात्र है, सिद्धान्त नहीं है यह बात सत्य है ऐसा यहाँ ग्रहण करना चाहिये ।



ओकड्डणासंकमसंभवो जहण्णभावाणुववत्तीदो त्ति चे ? ण, संकमयाओगपढमड्डिदिं गालिय आवलियपविट्टपढमड्डिदियस्स जहण्णसामित्तविहाणेण तद्दोसपरिहारो । पढमड्डिदीए संकमाभावे वि जड्डिदिवहुगो होइ त्ति णासंकणिज्जं, एत्थ जड्डिदिविवक्खाए अभावाद्दो, णिसेयड्डिदीए चेव पाहण्णियादो । तम्हा सोदएण वा परोदएण वा पयदसामित्तमविरुद्धं सिद्धं ।

❀ णवुंसयवेदस्स जहण्णड्डिदिसंकमो कस्स ?

§ ६४८. सुगमं ।

❀ णवुंसयवेदोदयक्खवयस्स तस्स अपच्छिन्नमड्डिदिवखंडयं संछुह-  
माणयस्स तस्स जहण्णयं ।

§ ६४९. एत्थ णवुंसयवेदोदयक्खवयस्सेव पयदजहण्णसामित्तं होइ त्ति अण्ण-  
जोगववच्छेदेण सेसवेदोदयक्खवयाणं सामित्तसंबंधपडिसेहो कायव्वो । किमड्डं तप्पडिसेहो  
कीरदे ? ण, तत्थ णवुंसयवेदस्स पुण्वमेव अंतोयुहुत्तमत्थि त्ति खीयमाणस्स चरिमड्डिदि-

शंका—यहाँ परोदयसे ही स्वामित्व प्राप्त करना चाहिये, क्योंकि स्वोदयसे प्रथम स्थितिका  
अपकर्षणसंक्रम सम्भव होनेसे वहाँ जघन्यपना नहीं बन सकता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि संक्रमके योग्य प्रथम स्थितिको गला कर जिसके प्रथम स्थिति  
आवलिके भीतर प्रविष्ट हो गई है उसके जघन्य स्वामित्वका विधान करनेसे उक्त दोषका परिहार  
हो जाता है ।

शंका—प्रथम स्थितिके संक्रमका अभाव हो जाने पर भी यत्स्थिति बहुत होती है, इसलिये  
स्वोदयसे चढ़े हुए जीवके जघन्य स्वामित्व नहीं बन सकता है ?

समाधान—ऐसी आशंका करना ठीक नहीं है, क्योंकि यहाँ पर यत्स्थितिकी विवक्षा  
नहीं की गई है । किन्तु निषेकस्थितिकी ही प्रधानता है, इसलिये स्वोदय या परोदय किसी प्रकार भी  
चढ़े हुए जीवके प्रकृत स्वामित्वके प्राप्त होनेमें कोई विरोध नहीं आता है यह बात सिद्ध हुई ।

❀ नपुंसकवेदका जघन्य स्थितिसंक्रम किसके होता है ।

§ ६४८ यह सूत्र सुगम है ।

❀ जो नपुंसकवेदके उदयवाला क्षपक जीव अन्तिम स्थितिकाण्डकका संक्रम  
कर रहा है उसके नपुंसकवेदका जघन्य स्थितिसंक्रम होता है ?

§ ६४९. यहाँ नपुंसकवेदके उदयवाले क्षपक जीवके ही प्रकृत जघन्य स्वामित्व होता है  
इस प्रकार अन्ययोग्यवच्छेदद्वारा शेष वेदोंके उदयवाले क्षपक जीवोंके प्रकृत स्वामित्वका निषेध  
करना चाहिए ।

शंका—किस लिये यहाँ अन्य वेदके उदयवाले क्षपक जीवोंके प्रकृत जघन्य स्वामित्वका  
निषेध करते है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि अन्य वेदके उदयसे क्षपकश्रेणि पर चढ़े हुए जीवके नपुंसकवेद-

खंडयस्स सोदयक्खवयस्स चरिमट्टिदिसंखंडयामादो असंखेज्जुणत्तदंसणादो । तदो सोदएणेव णवुंसयवेदस्स जहण्णसामित्तमिदि सिद्धं ।

❁ छरण्णोक्तसायाणं जहण्णट्टिदिसंक्रमो कस्स ?

§ ६५०. सुगमं ।

❁ खवयस्स तेसिमपच्छिमट्टिदिसंखंडयं संलुहमाणयस्स तस्स जहण्णयं ।

§ ६५१. एत्थ खवयस्से ति वयणमक्खवययुदासदुवारेणाणियट्टिखवयस्स जहण्ण-सामित्तपदुप्पायणफलं, अण्णत्थ तज्जहण्णभावाणुवल्लदीदो । तेसिं छण्णोक्तसायाणमपच्छिमं सच्चपच्छिमं ट्टिदिसंखंडयं संलुहमाणयस्स संकामेमाणयस्स पयदज्जहण्णसामित्तं होइ । एत्थ चरिमफालिविसेसणं कथं, चरिमट्टिदिसंखंडयचरिमफालीणु चैव सामित्तविहाणे विप्पडित्तेहाभावादो ।

§ ६५२. एवमोघेण जहण्णसामित्तं सच्चसिं मोहपयडीणं परुविदं । एत्तो ओघादेसपरुवणट्टुच्चारणावलंबणं कस्सामो । तं जहा—जह० पयदं । दुविहो णिद्वेसो—ओघेण आदेसेण य । ओघेण मिच्छ० जह० ट्टिदिसं० कस्स ? अण्णद० दंरणमोहक्खवयस्स चरिमट्टिदिसंखंडयचरिमसमयसंक्रामयस्स । एवं सस्सामि० । सम्म० जह० ट्टिदिसं०

का अन्तिम स्थितिराण्डक अन्तमूर्त्तयं पहले ही ध्य हो जाता है, इसलिये वह स्वोद्यसे चढ़े हुए क्षपक जीवके अन्तिम स्थितिराण्डकके प्रायाममे असंख्यातगुणा देया जाता है । अतः स्वोद्यसे ही ननु सत्तोदका जघन्य संक्राम्य प्राप्त होता है यह श्रुति सिद्ध है ।

\* छह नोक्पायोंका जघन्य स्थितिसंक्रम किसके होता है ?

§ ६५०. यह सुगम है ।

\* जो क्षपक उनके अन्तिम स्थितिराण्डकका संक्रम कर रहा है उसके छह नोक्पायोंका जघन्य स्थितिसंक्रम होता है ।

§ ६५१. यहाँ सूत्रमें 'परयस्स' वचन अक्षपकके निराकरण द्वारा अनिष्टचित्तक्षपकके जघन्य स्वामित्वका कथन करनेके लिये दिया है, क्योंकि अन्यत्र उसका जघन्य स्वामित्व नहीं उपलब्ध होता । इन छह नोक्पायोंके अन्तिम स्थितिराण्डकका 'संलुहमाणयस्स' अर्थात् संक्रम करनेवाले जीवके प्रकृत जघन्य स्वामित्व होता है । यहाँ सूत्रमें 'चरिमफालि' विशेषण नहीं दिया है तो भी अन्तिम स्थितिराण्डककी अन्तिम फालियोंके प्राप्त होने पर ही जघन्य स्वामित्वका विधान करनेमें कोई विरोध नहीं है ।

§ ६५२. इस प्रकार ओघसे सब मोहप्रकृतियोंके जघन्य स्वामित्वका कथन किया । अथ आगे ओघ और आदेशका कथन करनेके लिये उच्चारणाका अवलम्ब लेते हैं । यथा—जघन्यका प्रकरण है । निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । ओघसे मिथ्यात्वका जघन्य स्थितिसंक्रम किसके होता है ? जो दर्शनमोहका क्षपकजीव अन्तिम स्थितिराण्डकका अन्तिम समयमें संक्रम कर रहा है उसके होता है । इसी प्रकार सम्यग्मिथ्यात्वके जघन्य स्थितिसंक्रमका स्वामित्व जानना चाहिये । सम्यक्त्वका जघन्य स्थितिसंक्रम किसके होता है ? जिसे दर्शनमोहकी क्षपणा

कस्स ? अण्णद० समयाहियावलियअक्खीणदंसणमोहणीयस्स । अणंताणुं०४ जहं०  
 द्विदिसं० कस्स ? अण्णद० अणंताणुं०४ विसंजोएमाणस्स चरिमद्विदिसं० चरिमसमय-  
 संकामेंतस्स । अट्टक० जहं० कस्स ? अण्णद० खवयस्स चरिमे द्विदिसं० चरिमसमय-  
 संकामेंतस्स । इत्थि०-णवुंसं०-छण्णोक० जहं० द्विदिसं० कस्स ? अण्णद० खवयस्स  
 चरिमे द्विदिसं० चरिमसमयस्स । णवरि णवुंसं० जहं० णवुंसयवेदोदयक्खवयस्स ।  
 एदेण०णव्वदे जहा इत्थिवेदस्स परोदएण वि सामित्तमविरुद्धमिदि । कोध-माण-माया-  
 संजल०-पुरिसवेद० जहं० द्विदिसं० कस्स ? अण्णद० खवयस्स चरिमद्विदिवंधे चरिम-  
 समयसंकामेंतस्स । णवरि अप्पण्णो वेद-कसायस्स सेदिमारुदस्स । लोहसंज० जहं०  
 द्विदिसं० कस्स ? अण्णद० खवयस्स समयाहियावलियचरिमसमयसकसायस्स ।

§ ६५३. आदेशेण णेरइय० मिच्छ०-वारसक०-भय-दुगुंछ० जहं० द्विदिसं०  
 कस्स ? अण्णदरस्स असण्णिणपच्छायदस्स हदसमुप्पत्तियदुसमयाहियावलियउववण्णल्लयस्स ।  
 सत्तणोकं० द्विदिविहंत्तिभंगो, पडिवक्खबंधगद्वागालणेण अंतोमुहुत्तणुववण्णल्लयस्स  
 सामित्तविहारं पडि भेदाभावादो । णवरि सगबंधपारंभादो आवलियचरिमसमए सामित्त-

कार्नेमें एक समय अधिक एक आवलि काल शेष है ऐसे अन्यतर जीवके होता है । अनन्तानुबन्धी  
 चतुष्कका जघन्य स्थितिसंक्रम किसके होता है ? अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी विसंयोजना करनेवाला  
 जो जीव अन्तिम स्थितिकाण्डकके अन्तिम समयमें संक्रम कर रहा है उसके होता है । आठ  
 कषायोंका जघन्य स्थितिसंक्रम किसके होता है ? जो क्षपक जीव उनके अन्तिम स्थितिकाण्डकका  
 अन्तिम समयमें संक्रम कर रहा है उसके होता है । स्त्रीवेद, नपुंसकवेद और ब्रह्म नोकषायोंका  
 जघन्य स्थितिसंक्रम किसके होता है । जो अन्यतर क्षपक जीव अन्तिम स्थितिकाण्डकमें विद्यमान  
 है उसके होता है । किन्तु इतनी विशेषता है कि नपुंसकवेदका जघन्य स्थितिसंक्रम नपुंसकवेदके  
 उदयवाले क्षपक जीवके ही होता है । इससे ज्ञात होता है कि स्त्रीवेदका जघन्य स्वामित्व परोदयसे  
 प्राप्त होनेमें भी कोई विरोध नहीं आता है । क्रोधसंज्वलन, मानसंज्वलन, मायासंज्वलन और पुरुष-  
 वेदका जघन्य स्थितिसंक्रम किसके होता है ! जो अन्यतर क्षपक जीव अन्तिम स्थितिवन्धका  
 अन्तिम समयमें संक्रम कर रहा है उसके होता है । किन्तु इतनी विशेषता है कि वेद और कषायोंमें  
 से स्वोदयसे श्रेष्ठपर चढ़े हुए जीवके यह जघन्य स्वामित्व होता है । लोभ संज्वलनका जघन्य  
 स्थितिसंक्रम किसके होता है ? जो अन्यतर क्षपक जीव एक समय अधिक एक आवलि कालरूप  
 अन्तिम समयमें सकषायभावसे स्थित है उसके होता है ।

§ ६५३. आदेशसे नारकियोंमें मिथ्यात्व, बारह कषाय, भय और जुगुप्साका जघन्य  
 स्थितिसंक्रम किसके होता है ? हतसमुत्पत्तिक क्रियाको करके जो अन्यतर जीव असंज्ञी पर्यायसे  
 आकर नरकमें उत्पन्न हुआ है उसके दो समय अधिक एक आवलि कालके होने पर उक्त प्रकृतियोंका  
 जघन्य स्थितिसंक्रम होता है । सात नोकषायोंके जघन्य स्थितिसंक्रमका स्वामित्व स्थितिविभक्तिके  
 समान है, क्योंकि नरकमें उत्पन्न होनेके बाद प्रतिपत्त प्रकृतियोंके बन्धकालके गलानेमें जो अन्तर्मुहूर्त  
 काल लगता है उसनी स्थिति विवक्षित नोकषायोंकी और धम हो जाती है और तब जाकर उनका  
 जघन्य स्थितिसत्त्व प्राप्त होता है । इनका जघन्य स्थितिसंक्रम भी अन्तर्मुहूर्त वाद ही प्राप्त होता है  
 इस अपेक्षासे इन दोनोंके जघन्य स्वामित्वके कथनमें कोई भेद नहीं है । किन्तु इतनी विशेषता है  
 कि जिस प्रकृतिका जघन्य स्वामित्व प्राप्त करना हो उसका बन्ध प्रारम्भ हो जानेके बाद एक

मेत्थ दट्टुच्चं । समत्त-अणंताणु०४ ओघमंगो । सम्मामि० उव्वेळ्ळमाणस्स चरिम-  
द्विदिसंखंडए चरिमसमयसंक्रमे० । एवं पढमाए । विदियादि जाव छट्टि चि मिच्छ०-  
चारसक०-णवणोक्क० द्विदिविहत्तिमंगो । सम्मत्त०-सम्मामि०-अणंताणु०४ जह० द्विदिसं०  
कस्स ? अण्णद० उव्वेळ्ळमाणस्स विसंजोएतस्स च चरिमे द्विदिसंखंडए चरिमसमयसंका० ।  
सत्तमाए मिच्छत्त०-वारसक०-भय-दुगुंछ० जह० द्विदिविहत्तिमंगो । णवारि संतकम्मं  
वोलेऊणावलिथादीदस्स भय-दुगुंछाणं दोआवलिथादीदस्स । सम्मत्त-सम्मामि०-अणंताणु०४  
विदियपुढविमंगो । सत्तणोक्कसायाणं द्विदिविहत्तिमंगो, संतसमाणबंधादो अंतोमुहुत्तादीदस्स  
पडिवक्खबंधागाल्लणेण सामिच्चं पडि तत्तो भेदाभावादो । णवारि सगबंधावलयचरिम-  
समए सामिच्चं गहैयच्चं ।

§ ६५४. तिरिक्खेसु मिच्छ०-वारसक०-भय-दुगुंछ० द्विदिविहत्तिमंगो । णवारि  
संतकम्मं वोलेऊणावलिथादीदस्स भय-दुगुंछाणं दोआवलिथादीदस्स । सम्मत्त०-सम्मामि०-  
अणंताणु०४ णारयमंगो । सत्तणोक्क० द्विदिविहत्तिमंगो । णवारि सण्णपंचिदियतिरिक्ख-

आवलिक्के अन्तिम समयमें प्रकृत जघन्य स्वामित्व जानना चाहिये । सम्यक्त्व और अनन्तानुबन्धी-  
चतुष्कके जघन्य स्थितिसंक्रमका स्वामी श्रोधके समान हैं । जो सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वेजना करने-  
वाला जीव अन्तिम स्थितिकाण्डकके अन्तिम समयमें संक्रम कर रहा है उसके सम्यग्मिथ्यात्वका  
जघन्य स्थितिसंक्रम होता है । इसी प्रकार पहली पृथिवीमें जानना चाहिये । दूसरीसे लेकर छठी  
पृथिवीतकके नारकियोंमें मिथ्यात्व, वारह कपाय और नौ नोकपायोंके जघन्य स्थितिसंक्रमका स्वामी  
स्थितिबिभक्तिके समान है । सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धीचतुष्कका जघन्य  
स्थितिसंक्रम किसके होता है ? जो सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वेजना करनेवाला और  
अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी विसंयोजना करनेवाला जीव अन्तिम स्थितिकाण्डकके अन्तिम समयमें  
संक्रम कर रहा है उसके होता है । सातवीं पृथिवीमें मिथ्यात्व, वारह कपाय, भय और जुगुप्साके  
जघन्य स्थितिसंक्रमका स्वामी स्थितिबिभक्तिके समान है । किन्तु इतनी विशेषता है कि जिसे  
सत्कर्मके समान स्थितिवन्ध होनेके बाद एक आवलि काल हुआ है उसके मिथ्यात्व और  
वारह कपायोंका जघन्य स्थितिसंक्रम होता है तथा भय और जुगुप्साका सत्कर्मके समान स्थितिवन्ध  
होनेके बाद दो आवलि काल व्यतीत हुआ है उसके भय और जुगुप्साका जघन्य स्थितिसंक्रम  
होता है । सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धीचतुष्कके जघन्य स्थितिसंक्रमका स्वामी  
दूसरी पृथिवीके समान है । तथा सात नोकपायोंके जघन्य स्थितिसंक्रमका स्वामी स्थितिबिभक्तिके  
समान है, क्योंकि सत्कर्मके समान बन्धके द्वारा जिसने अन्तर्दुर्हर्त काल चिता दिया है उसके  
प्रतिपक्ष प्रकृतियोंके बन्धक कालको गलानेकी अपेक्षा स्वामित्वके प्रति उससे इसमें कोई भेद नहीं  
है । किन्तु इतनी विशेषता है कि अपनी बन्धावलिक्के अन्तिम समयमें यह जघन्य स्वामित्व ग्रहण  
करना चाहिये ।

§ ६५४. तिरिक्खेसु मिथ्यात्व, वारह कपाय, भय और जुगुप्साके स्थितिसंक्रमका जघन्य  
स्वामी स्थितिबिभक्तिके समान है । किन्तु इतनी विशेषता है कि सत्कर्मके समान स्थितिवन्ध होनेके  
बाद एक आवलि होने पर मिथ्यात्व और वारह कपायोंका तथा सत्कर्मके समान स्थितिवन्ध होनेके  
बाद दो आवलि काल जाने पर भय और जुगुप्साका प्रकृत जघन्य स्वामित्व कहना चाहिये । सम्यक्त्व,  
सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धीचतुष्कके जघन्य स्थितिसंक्रमका स्वामी नारकीके समान है ।  
सात नोकपायोंके जघन्य स्थितिसंक्रमका स्वामी स्थितिबिभक्तिके समान है । किन्तु इतनी विशेषता

पञ्चतण्डुलपञ्चिय सन्वुकस्सपडिवक्खवंधगद्धं गालिय सगबंधपारंभादो आवलियचरिम-  
समए सामित्तं वत्तन्वं ।

§ ६५५. पंचिदियतिरिक्ख०३ मिच्छ०-वारसक०-भय-दुगुच्छ० जह० द्विदिसं०  
कस्स ? अण्णद० वादरेहंदिपच्छायदस्स हदसमुप्पत्तियआवलियउववणणल्लयस्स ।  
सम्मत्त०-सम्मामि०-अणंताणु०४ णारयभंगो । सत्तणोक० जह० द्विदिसं० कस्स ?  
अण्णद० हदसमुप्पत्तियवादरेहंदिपच्छायदस्स अंतोमुहुत्तववणणल्लयस्स अप्पप्पणो  
कसायं बंधियूणावलियादीदस्स । जोणिणीसु सम्म० सम्मामि०भंगो । पंचि०तिरिक्ख-  
अपञ्चत्त-मणुसअपञ्च० जोणिणीभंगो । णवरि अणंताणु०४ मिच्छ०भंगो ।

§ ६५६. मणुस३ ओधं । णवरि मणुसिणीसु पुरिसवेद० छण्णोकसायभंगो ।

§ ६५७. देवाणं णारयभंगो । एवं भवण०-वाण० । णवरि सम्म० सम्मामि०-  
भंगो । जोदिसि० विदियपुढविभंगो । सोहम्मादि जाव णवगेवज्जां ति द्विदिविदत्तिभंगो ।  
णवरि सम्म०-सम्मामि०-अणंताणु०४ णारयभंगो । अणुहिसादि जाव सन्वट्टा ति

है कि संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च पर्याप्तकोंमें उत्पन्न कराके और प्रतिपक्ष प्रकृतियोंके सर्वोत्कृष्ट बन्धकाल-  
को गला कर विवक्षित नोकषायके बन्धका प्रारम्भ करावे । फिर जब एक आवलि काल हो जाय तब  
उसके अन्तिम समयमें प्रकृत स्वामित्व कहना चाहिये ।

§ ६५५. पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चत्रिकमें मिथ्यात्व, वारह कषाय, भय और जुगुप्साका जघन्य  
स्थितिसंक्रम किसके होता है ? जो हतसमुत्पत्तिक्रियाको करनेके साथ वादर एकेन्द्रिय पर्यायसे  
आकर यहाँ उत्पन्न हुआ है उसके यहाँ उत्पन्न होने पर एक आवलि कालके अन्तमें उक्त प्रकृतियोंका  
जघन्य स्थितिसंक्रम होता है । सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धीचतुष्कके जघन्य  
स्थितिसंक्रमका स्वामी नारकियोंके समान है । सात नोकषायोंका जघन्य स्थितिसंक्रम किसके  
होता है ? हतसमुत्पत्तिक्रियाको करनेके साथ वादर एकेन्द्रिय पर्यायसे आकर यहाँ उत्पन्न  
हुए जिस अन्यतर जीवको एक अन्तर्मुहूर्त काल हो गया है उसके तदनन्तर विवक्षित  
नोकषायका बन्ध होनेके बाद एक आवलि कालके अन्तमें सात नोकषायोंका जघन्य स्थितिसंक्रम  
होता है । योनिनी तिर्यञ्चोंमें सम्यक्त्वका भंग सम्यग्मिथ्यात्वके समान है । पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च  
अपर्याप्त और मनुष्य अपर्याप्तकोंमें सब प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिसंक्रमका स्वामी योनिनी तिर्यञ्चोंके  
समान है । किन्तु इतनी विशेषता है कि इनमें अनन्तानुबन्धीचतुष्कका भंग मिथ्यात्वके समान है ।

§ ६५६. मनुष्यत्रिकमें सब प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिसंक्रमका स्वामी ओषके समान है ।  
किन्तु इतनी विशेषता है कि मनुष्यनियोंमें पुरुषवेदका भंग छह नोकषायोंके समान है ।

§ ६५७. देवोंमें सब प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिसंक्रमका स्वामी नारकियोंके समान है ।  
इसी प्रकार भवनवासी और व्यन्तर देवोंके जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि यहाँ  
सम्यक्त्वका भंग सम्यग्मिथ्यात्वके समान है । ज्योतिषियोंमें सब प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिसंक्रमका  
स्वामी दूसरी पृथिवीके समान है । सौधर्म कल्पसे लेकर नौ त्रैवेयक तकके देवोंमें सब प्रकृतियोंका  
भंग स्थितिविभक्तिके समान है । किन्तु इतनी विशेषता है कि सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और  
अनन्तानुबन्धीचतुष्कका भंग नारकियोंके समान है । अन्तुदिरासे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें  
सब प्रकृतियोंका भंग स्थितिविभक्तिके समान है । किन्तु इतनी विशेषता है कि इनमें सम्यक्त्व

द्विद्विदिहिनिसंगो । णवरि गम्म०-अणंताणु०५ णारयभंगो । एवं जाव० ।

एवं जहणणयं नामिचं गमनं ।

⊙ ष्यजीयेण कालो ।

। ६५८. एगो ष्यजीयेदिनेमित्थो कालो परवणित्तो । सो वुण द्दिव्हो—  
जहणणथी उवग्गमो च । नन्दुगम्मो नाव उपग्गद्विदिउदीग्गणाकाण्णो ण भिज्जदि चि  
नदव्वणाकरणाट्टम्वरिमवुणत्तिण्णामो—

⊙ जहा उपरिमया द्विदिउदीरणा नत्ता उपरस्सथो द्विदिसंक्रमो ।

। ६५९. सुगममेदमण्णामुणं । मण्हि म्पिडम्भे णवणाणं पुटोकरणट्टमुत्तारणं  
वचस्सामो । नं जहा—नन्ध द्दित्तं णिरुमो—ओषेणादेयेण च । ओषेण भिन्द०-  
सोदसक०-परणोत्त० उरु० द्विदिगंता० वेव० ? जह० ष्यगमज्जे, उरु० अंतोमुह्णं ।  
चट्ठोत्त० आरन्धिया । जगु० जह० अंतोमु०, णवणोत्त० ष्यगमथो, उरु० अणंत-  
कालमसंसेज्जपोमालपरिउट्टं । गम्म०-गम्मामि० उरु० द्विदिगंता० जहण्णु० ष्यगमज्जे ।  
अणु० जह० अंतोमु०, उरु० वेजासट्टिगामणं मादिरैयाणि ।

योग एतन् अनुस्यूयन्तु रा भीम जातिपतेः समाप्त है । इत्थे प्रकार अनादासक मासिगतक  
मानना चाहिये ।

इत प्रकार उपन्य रशमिन्त्र समाप्त हुआ ।

⊙ अथ एक जीवहो अपेक्षा कालता अपिकार है ।

। ६५८. अथ इत्यमे आमे एक जीवहो अपेक्षा कालता कथन परमा चाहिये । यद् दो  
प्रकारका है—जन्म्य और उच्छ्र । इनमें उच्छ्र का जन्म्य स्थितिनिर्णयकक परन्तमे योद्  
भेद नहीं है, स्थितिमे उमयो प्रसूततामे कथन करनेके लिये आमेरा मूत्र कहते हैं—

⊙ जिन प्रकार उच्छ्र स्थिति उदीरणा होती है उगो प्रकार उच्छ्र स्थिति-  
संक्रम है ।

। ६५८. यद् अयंतामूत्र सुगम है । अथ इय परमाणुता अन्दीकरण करनेके लिये इकारणाको  
वन ताते हैं । तथा—निर्दिष्ट दो प्रकारका है—अंतनिर्दिष्ट और आदेसनिर्दिष्ट । ओषमे भिन्द्यात्र,  
सोलद कथाय तीर नी नोपयायोके उच्छ्र स्थितिनिर्णयकक स्थिता काल है ? जपन्य काल एक  
समय है और उच्छ्र काल अन्तमुह्णं है । किन्तु चार नोपयायोके उच्छ्र काल एक आयति है ।  
भिन्द्यात्र और सोलद कथायोके उच्छ्र स्थितिनिर्णयकक जपन्य काल अन्तमुह्णं है और नी  
नोपयायोके जपन्य काल एक समय है । तथा मधीय उच्छ्र काल अन्तमुह्णं है जो अर्थमयात्र  
पुद्गलतास्थितप्रमाण है । सम्यकच और सम्यगिमाध्यासके उच्छ्र स्थितिनिर्णयकक जपन्य और  
उच्छ्र काल एक समय है । अमुच्छ्र स्थितिनिर्णयकक जपन्य काल अन्तमुह्णं है और उच्छ्र काल  
माधिक दो प्रमाणक माग है ।

विशेषार्थ—भिन्द्यात्र और सोलद कथायोकी जपन्य और नी नोपयायोकी मतममे उच्छ्र  
स्थिति प्राप्त होती है । वनः उच्छ्र स्थितिके जपन्य काल एक समय और उच्छ्र काल  
अन्तमुह्णं है अतः इत मय प्रकृतिसौंकी उच्छ्र स्थितिके संक्रामकक जपन्य काल एक समय और उच्छ्र

§ ६६०. आदेशेण षोडश्यां सोलसक०-पंचणोका०-चतुणोका० उक्त्वा द्विदिसं० जह० एयसमओ, उक्त्वा अंतोष्ठ० आवलिया । अणु० जह० एयस०, उक्त्वा तेतीसं सागरोवमाणि । सम्म०-सम्माप्ति० उक्त्वा द्विदिसंका० जहणु० एयसमओ । अणुका०

काल अन्तर्मुहूर्त वतलाया है । किन्तु ऋग्वेद, पुरुषवेद, हार्य और रतिका उत्कृष्ट स्थितिके बन्धके समय बन्ध न होकर उत्कृष्ट स्थितिबन्धके रूक जानेके बाद ही इनका बन्ध होता है, इसलिये इनमें एक आवलिप्रमाण उत्कृष्ट स्थितिका ही संक्रम देखा जाता है, अतः इनके उत्कृष्ट स्थितिसंक्रामकका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त न प्राप्त होकर एक आवलिप्रमाण प्राप्त होता है । इसीसे इनकी उत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकका उत्कृष्ट काल एक आवलिप्रमाण बतलाया है । मिथ्यात्व और सोलह कषायोंके अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है । इसीसे यहाँ इनकी अनुत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त वतलाया है । क्रोधादि कषायोंका एक एक समयके अन्तरसे उत्कृष्ट स्थितिबन्धका होना सम्भव है और जब क्रोधादि कषायोंका इस प्रकारसे बन्ध होता है तब नौ नोकषायोंका अनुत्कृष्ट स्थितिसंक्रम एक समयके लिये बन जाता है । इसीसे इनकी अनुत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकका जघन्य काल एक समय बतलाया है । तथा इन सब प्रकृतियोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकका जो उत्कृष्ट काल असंख्यात पुद्गलपरिवर्तनप्रमाण बतलाया है सो वह एकेन्द्रियोंकी अपेक्षासे जान लेना चाहिये, क्योंकि जब कोई जीव इतने काल तक एकेन्द्रिय पर्यायमें रहता है तब उसके इतने काल तक न तो उत्कृष्ट स्थितिबन्ध पाया जाता है और न ही उत्कृष्ट स्थितिसंक्रम ही सम्भव है । अतः इन सब प्रकृतियोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकका उत्कृष्ट काल असंख्यात पुद्गलपरिवर्तनप्रमाण कहा है । जो जीव मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करके अन्तर्मुहूर्तमें वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त होता है उसके सम्यक्त्वको ग्रहण करनेके प्रथम समयमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थिति होकर दूसरे समयमें एक समय तक इस उत्कृष्ट स्थितिका संक्रम होता है । इसीसे यहाँ सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय बतलाया है । जो जीव सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी सत्ताको प्राप्त करके अन्तर्मुहूर्तमें उनकी क्षणिका कर देता है उसके इनकी अनुत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त पाया जाता है । तथा जो जीव सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके उद्वेगनाकालके अन्तिम समयमें सम्यक्त्वको प्राप्त होता है और छयासठ सागर काल तक सम्यक्त्वके साथ रह कर पुनः मिथ्यात्वमें जाकर उक्त दोनों प्रकृतियोंकी उद्वेगना करने लगता है । तथा अपनी अपनी उद्वेगनाके अन्तिम समयमें सम्यक्त्वको प्राप्त करके पुनः छयासठ सागर काल तक सम्यक्त्वके साथ रहता है । फिर अन्तमें मिथ्यात्वमें जाकर उक्त दोनों प्रकृतियोंकी उद्वेगना करता है उसके इनकी अनुत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकका उत्कृष्ट काल साधिक दो छयासठ सागर पाया जाता है । इसीसे यहाँ इनकी उत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय तथा अनुत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकका जघन्य काल एक अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल साधिक दो छयासठ सागर बतलाया है ।

§ ६६०. आदेशसे नारक्रियोंमें मिथ्यात्व, सोलह कषाय, पाँच नोकषाय और चार नोकषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकका जघन्य काल एक समय तथा चार नोकषायोंके सिवा शेषका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त और चार नोकषायोंका उत्कृष्ट काल एक आवलि है । तथा इन सबकी अनुत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल तेतीस सागर है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है, तथा अनुत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल तेतीस सागर है । इसी

जह० एयस०, उक्क० तेत्तीसं सागरो० । एवं सञ्चणेरइय०-पंचि०तिरिक्ख३-  
मणुस०३-देवा जाव सहस्सार त्ति । णवारि सञ्चेरिसमणुक्क० जह० एयसमओ,  
उक्क० सगद्धिदी ।

§ ६६१. तिरिक्खेसु मिच्छ०-सोलसक०-णवणोक० उक्क० द्विदिसंका० जह०  
एयस०, उक्क० अंतोयु० आवलिया । अणु० जह० एयस०, उक्क० अणंतकालमसंखेज-  
पोगलपरियट्टं । सम्म०-सम्मामि० उक्क० द्विदिसंका० जहण्णु० एयस० । अणुक्क०  
जह० एयसमओ, उक्क० तिण्णि० पलिदो० सादिरैयाणि । पंचि०तिरि०अपज्ज० मिच्छ०-  
सोलसक०-णवणोक० उक्क० द्विदिसं० जहण्णु० एयसमओ । अणु० जह० खुदामव०

प्रकार सब नारकी, पंचेन्द्रिय तिर्यचत्रिक, मनुष्यत्रिक, सामान्य देव और सहस्रार वल्न तकके  
देशोंमें जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि इन सभीमें अनुत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकका  
जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अपनी अपनी स्थितिप्रमाण ह ।

विशेषार्थ—यहाँ और सब काल तो जिस प्रकार औघप्ररूपणामे घटित करके बतला आये  
हैं उसी प्रकार जान लेना चाहिये । किन्तु सब प्रकृतियोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकके उत्कृष्ट  
कालमें और कुछ प्रकृतियोंके जघन्य कालमें कुछ विशेषता है । वात यह है कि जिस मार्गणाकी  
जितनी कायस्थिति सम्भव है वहाँ उतने काल तक सभी प्रकृतियोंकी अनुत्कृष्ट स्थिति और उसके  
संक्रमका पाया जाना सम्भव है, अतः सर्वत्र अनुत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकका उत्कृष्ट काल अपनी  
अपनी स्थितिप्रमाण कहा है । जिस मार्गणामें भवस्थिति और कायस्थितिमें अन्तर नहीं है वहाँ  
भवस्थितिके ही कायस्थिति जानना चाहिये । और जिस मार्गणामें इनमें अन्तर है वहाँ कायस्थिति  
लेनी चाहिये । अथ जघन्य कालका नुलासा करते हैं । वात यह है कि जिस जीवने भवके उपात्त  
समयमें उत्कृष्ट स्थितिसंक्रम करके अन्तिम समयमें एक समयके लिये मिथ्यात्व और सोलह  
कपायोंका अनुत्कृष्ट स्थितिसंक्रम किया और दूसरे समयमें मरकर अन्य गतिको प्राप्त हो गया उसके  
उक्त प्रकृतियोंके अनुत्कृष्ट स्थितिसंक्रमका जघन्य काल एक समय पाया जाता है । इसी प्रकार  
जिसके सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके संक्रममें एक समय शेष रहने पर जो धियक्षित गतिको  
प्राप्त हुआ है उसके उस गतिमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अनुत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकका  
जघन्य काल एक समय प्राप्त होता है । इसीसे इन मार्गणाओंमें उक्त प्रकृतियोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिके  
संक्रामकका जघन्य काल एक समय बतलाया है ।

§ ६६१. तिर्यचोमं मिथ्यात्व, सोलह कपाय और नौ नोकपायोंकी उत्कृष्ट स्थितिके  
संक्रामकका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल चार नोकपायोंके सिवा शेष सबका  
अन्तर्गुह्य है तथा चार नोकपायोंका एक आवलिप्रमाण है । अनुत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकका जघन्य  
काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अनन्त काल है जो असंख्यात पुद्गलपरिवर्तनप्रमाण है ।  
सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय  
है तथा अनुत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल साधिक तीन  
पद्यप्रमाण है । पंचेन्द्रियतिर्यच अपयौतकोंमें मिथ्यात्व, सोलह कपाय और नौ नोकपायोंकी उत्कृष्ट  
स्थितिके संक्रामकका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । अनुत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकका जघन्य

१. अ०प्रती द्विदिसका० जहण्णु० एयस० उक्क०, तिण्णि हति पाठः ।



समयूणं, उक्० अंतोमु० । सम्मत्त-सम्मामि० उक्० द्विदिसं० जहण्णु० एयसमओ । अणु० जह० एयसमओ, उक्० अंतोमु० । एवं मणुसअपजत्तएसु ।

§ ६६२. आणदादि जाव उवरिमगेवजा ति मिच्छ०-वारसक०-णवणोक० उक्० द्विदिसं० जहण्णु० एयसमओ । अणु० जह० जहण्णुद्विदी समयूणा, उक्० सगड्विदी । सं०-सम्मामि०-अणंताणु०४ उक्० द्विदिसं० जहण्णुक० एयस० । अणुक० ज० एयस०, उक्० सगड्विदी । अणुदिसादि सच्चट्टा ति एवं चेव । णवरि सम्मामि० मिच्छत्तभंगो । अणंताणु०४ उक्० द्विदिसं० जहण्णु० एयसमओ । अणुक० जह० अंतोमु०, उक्० सगड्विदी । एवं जाव० ।

एवमुक्त्वाकालाणुगमो समत्तो ।

❧ एत्तो जहण्णुद्विदिसंकमकालो ।

§ ६६३. एत्तो उक्त्वाकालद्विदिसंकमकालविहासणादो अणतरमवसरपत्तो जहण्णुद्विदिसंकमकालो विहासियन्वो ति पड्जावयणभेदं ।

काल एक समय कम खुद्दाभवग्रहणप्रमाण है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । इसी प्रकार मनुष्य अपर्याप्तिकोमें जानना चाहिये ।

§ ६६२. आनतादिकसे लेकर उपरिम त्रैवेद्यक तकके देवोंमें- मिध्यात्व, वारह कपाय और नौ नोकषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । अनुत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकका जघन्य काल एक समय कम जघन्य स्थितिप्रमाण है और उत्कृष्ट काल अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है । सम्यक्त्व, सम्यग्मिध्यात्व और अनन्वानुबन्धीचतुष्ककी उत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है । अनुदिराते लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें इसी प्रकार है । किन्तु इतनी विशेषता है कि यहाँ सम्यग्मिध्यात्वका भंग मिध्यात्वके समान है । अनन्वानुबन्धीचतुष्ककी उत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है । इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिये ।

विशेषार्थ—पूर्वमें ओषसे और नरकगतिमें कालका स्पष्टीकरण कर आये हैं । उसे ध्यानमें रखकर और अपने अपने स्वामित्वको जानकर तिर्यञ्जगति आदिमें कालका स्पष्टीकरण कर लेना चाहिए । खास विशेषता न होनेसे यहाँ अलगसे स्पष्टीकरण नहीं किया है ।

इस प्रकार उत्कृष्ट कालानुगम समाप्त हुआ ।

❧ अब आगे जघन्य स्थितिसंक्रमके कालका अधिकार है ।

§ ६६३. अब इस उत्कृष्ट स्थितिसंक्रमके कालका व्याख्यान करनेके बाद अवसर प्राप्त जघन्य स्थितिसंक्रमके कालका व्याख्यान करना चाहिये इस प्रकार यह प्रतिज्ञावचन है ।

१. आ०प्रत्तो समयूणा, उक्० द्विदिसंकमो [ उक्त्वाकालद्विदी ] [ सम्मत्त ] सम्मामि० इति पाठः ।

❀ अथावीसाए पयडीणं जहणणुद्विदिसंक्रमकालो केवचिरं कालादो होदि ? जहणणुक्खस्सेण एयसमओ ।

§ ६६४. अथावीससंखाए परिच्छिण्णपाणं मोहपयडीणं जहणणुद्विदिसंक्रमकालो एयजीवविसओ कियचिरं होइ त्ति आसंकिय तण्णिहेसो कओ—जहण्णु० एयसमओ त्ति । होउ पास जेत्ति कम्माणं जहणणुद्विदिसंक्रमस्स चरिमफालिविसए समयाहियावळियाए च सामित्तं तेत्ति जहणणुक्खस्सेणयसमयकालणियमो, ण सेसाणमिचासंकाए तत्थतणविसेस-संभवपदुप्पायणद्वमिदमाह—

❀ एवचरि इत्थि-एवुंसयवेद-छयणोकसायाणं जहणणुद्विदिसंक्रमकालो केवचिरं कालादो होदि ? जहणणुक्खस्सेण अंतोमुहुत्तं ।

§ ६६५. एदेसिमहुहं णोकसायाणं चरिमद्विदिसंखंडए लद्धजहणणसामित्ताणं जहणणुद्विदिसंक्रमजहणणुक्खस्सकालो अंतोमुहुत्तपमाणो होइ त्ति सुत्थत्थसंगहो । छण्णोःसायाणं ताव जहणणुक्खस्सकालो एयवियप्पो चेव, चरिमद्विदिसंखंडयुक्कीरणद्वा-पडिन्नद्वणिवियपंतोमुहुत्तपमाणत्तादो । णनुंसयवेदस्स पढमद्विदिविवक्खाए आवळियमेत्तो । तदविवदखाए चरिमद्विदिसंखंडयुक्कीरणद्वामेत्तो जहणणुक्खस्सकालो होइ ।

\* अट्टाईस प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिसंक्रमका काल कितना है ? जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय हैं ।

§ ६६४ यहाँ मोहनीयकी अट्टाईस प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिसंक्रमका एक जीवकी अपेक्षा कितना काल है ऐसी आशंका करके उसका निर्देश जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय हैं इस रूपसे किया है । जिन कर्मोंके जघन्य स्थितिसंक्रमका स्वामित्व अन्तिम फालिके पतनके समय या एक समय अधिक एक आरंभिक कालके शेष रहने पर प्राप्त होता है उनके जघन्य और उत्कृष्ट कालका नियम एक समयप्रमाण मले ही रहा आशो किन्तु शेष कर्मोंकी जघन्य स्थितिके संक्रमके कालका यह नियम नहीं प्राप्त होना इस प्रकार इस आशंकाके होने पर यहाँ जो विशेष काल सम्भव है उसका कथन करनेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

\* किन्तु इतनी विभेदता है कि स्त्रीवेद, नपुंसकवेद और छह नोकपायोंके जघन्य स्थितिसंक्रमका काल कितना है ? जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ।

§ ६६५. अन्तिम स्थितिकाण्डकके समय जघन्य स्वामिदरको प्राप्त होनेवाली इन छह नोकपायोंके जघन्य स्थितिसंक्रमकका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्तप्रमाण है यह इस सूत्रका तात्पर्य है । उनमेंसे छह नोकपायोंका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक ही प्रकारका है, क्योंकि इनके अन्तिम स्थितिकाण्डकके उत्कीरणाकालसे सम्बन्ध रखनेवाला अन्तर्मुहूर्त एक ही प्रकारका है । नपुंसकवेदका जघन्य और उत्कृष्ट काल प्रथम स्थितिकी अपेक्षा एक आवलिप्रमाण है और उसकी विद्यत्ता नहीं करनेपर अन्तिम स्थितिकाण्डकके उत्कीरणाकालप्रमाण है । स्त्रीवेदका

१. अ०प्रती एयवियप्पा इति पाठः ।

२. आ०प्रती—युक्कीरणद्वापडिन्नद्वणिवियपंतो जहणणुक्खस्सकालो इति पाठः ।

इत्थिवेदस्स सोदएण चट्ठिदस्स एसो चेव भंगो । परोदएण वि चट्ठिदस्स छण्णोक्कसाय-  
मंगो च्चि । एवमोवेषेण सव्वकम्ममाणं जहण्णट्ठिदिसंक्रमकालो सुत्ताणुसारेण परुविदो ।  
एदएण सच्चिदमजहण्णट्ठिदिसंक्रमकालमणुवण्णइस्सायो—मिच्छं अजं ट्ठिदिसं अणादिओ  
अपज्जवासिदो अणादिओ सपज्जवाप्पिदो वा । सम्मं-सम्मामिं अजं जहं अंतोमुं,  
उक्कं वेळावट्ठिसागरों तीहि पल्लिदो अंसंखे भंगोहि सादिरेयाणि । सोलसकं-  
णवणोक्कं अजं तिण्णि मंगा । तत्थ जो सो सादिओ सपज्जवासिदो जहं अंतोमुहुत्तं,  
उक्कं अहपोगलपरियट्ठं देसूणं ।

### एवमोषपरुवणा समत्ता ।

स्वोदयसे चढ़े हुए जीवकी अपेक्षा यही भङ्ग है । तथा परोदयसे चढ़े हुए जीवकी अपेक्षा भी ब्रह्म नोकपायोंके समान भङ्ग है । इस प्रकार ओषसे सब कर्मोंके जघन्य स्थितिसंक्रामकका काल सुखके अनुसार कहा । अब इससे सूचित होनेवाले अजघन्य स्थितिसंक्रामकका काल बतलाते हैं—  
मिध्यात्वके अजघन्य स्थितिसंक्रामकका काल अनादि-अनन्त या अनादि-सान्त है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वके अजघन्य स्थितिसंक्रामकका जघन्य काल अन्तमुं हूत है और उत्कृष्ट काल पत्यके तीन अस्संख्यातवें भागोंसे अधिक दो छ्वात्सठ सागरप्रमाण है । सोलह कपाय और नौ नोकपायोंके अजघन्य स्थितिसंक्रमके तीन भङ्ग हैं । उनमेंसे जो सादि-सान्त भङ्ग है उसकी अपेक्षा जघन्य काल अन्तमुं हूत है और उत्कृष्ट काल कुछ कम अर्धपुद्गलपरिवर्तनप्रमाण है ।

विशेषार्थ—यहाँ मोहनीयकी अट्टाईस प्रकृतियोंके जघन्य और अजघन्य स्थितिसंक्रमका जघन्य और उत्कृष्ट काल बतलाया गया है । इन अट्टाईस प्रकृतियोंमेंसे मिध्यात्व, सम्यग्मिध्यात्व, अनन्तालुबन्धोचतुष्क और मध्यकी आठ कपाय ये चौदह प्रकृतियाँ ऐसी हैं जिनका जघन्य स्थितिसंक्रम अन्तिम स्थितिकाण्डककी अन्तिम फालिके पतनके समय प्राप्त होता है । क्रोधसंज्वलन, मानसंज्वलन, मायासंज्वलन और पुरुषवेद ये चार प्रकृतियाँ ऐसी हैं जिनका जघन्य स्थितिसंक्रम अन्तिम स्थितिवन्धके संक्रमके अन्तिम समयमें प्राप्त होता है और सम्यक्त्व तथा संज्वलन लोभ ये दो प्रकृतियाँ ऐसी हैं जिनका जघन्य स्थितिसंक्रम इनकी क्षणामें एक समय अधिक एक आबलि काल शेष रहने पर प्राप्त होता है । यह उक्त प्रकारसे विचार करने पर इन प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिसंक्रमका केवल एक समय काल प्राप्त होता है, अतः इनके जघन्य स्थितिसंक्रमका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय बतलाया है । अब वहीं शेष छह नोकपाय, खीवेद और नपुंसकवेद ये आठ प्रकृतियाँ सो इनका जघन्य स्थितिसंक्रम अन्तिम स्थितिकाण्डकके पतनके समय प्राप्त होनेसे पूर्विकारने इनके जघन्य स्थितिसंक्रमका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तमुं हूत बतलाया है । यहाँ इतनी विरोधता है कि ब्रह्म नोकपायोंकी अपनी क्षणामें एक समय प्रथम स्थिति सम्भव न होनेसे इनके जघन्य स्थितिसंक्रमका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक प्रकारका ही प्राप्त होता है । किन्तु खीवेद और नपुंसकवेदका यह काल दो प्रकारसे प्राप्त किया जा सकता है । प्रथम प्रकारमें प्रथम स्थितिकी प्रधानता है और दूसरे प्रकारमें प्रथम स्थितिकी विवक्षा न रहकर केवल अन्तिम स्थितिकाण्डकके उत्कीरणकालकी विवक्षा रहती है । जिसका निर्देश स्वयं टीकाकारने किया ही है । इस प्रकार ओषसे जघन्य स्थितिसंक्रमके कालका विचार करके अब अजघन्य स्थितिसंक्रमके जघन्य और उत्कृष्ट कालका विचार करते हैं—मिध्यात्वकी अजघन्य स्थितिके दो प्रकार ही सम्भव हैं—अनादि-अनन्त और अनादि-सान्त । अभव्य जीवोंके और अभव्योंके समान भव्य जीवोंके अनादि-

§ ६६६. संपहि आदेसपरूवणहुमुच्चारणं वचइस्तामो । तं जहा—आदेशेण  
 परइय० मिच्छ०-चारसक०-भय-दुगुंछ० जह० द्विदिसं० जहण्णु० एयसमओ । अज०  
 जह० समयाहियावलिा, उक्क० तेत्तीसं सागरो० । एवं सत्तणोक०। णवरि अज० जह०  
 अंतोमु० । सम्म०-सम्मामि०-अणंताणु०४ जह० जहण्णु० एयस० । अज० जह०  
 एयसमओ, उक्क० तेत्तीसं सागरोवमाणि । एवं पढमाए । णवरि सर्गद्विदी । विदियादि  
 जाव सत्तमा ति द्विदिविहत्तिभंगो ।

अनन्त विकल्प होता है और शेष सभी भव्योंके अनादि-सान्त विकल्प होता है । अतः स्थितिके ये दो विकल्प प्राप्त होते हैं अतः इनका संक्रमकाल भी दो ही प्रकारका जानना चाहिये । इसीसे यहाँ मिथ्यात्वके अजघन्य स्थितिसंक्रमका काल पूर्वोक्त विधिसे दो प्रकारका बतलाया है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी सत्ता प्राप्त होनेके बाद उनकी क्षयणा द्वारा क्रमसे कम अन्तर्मुहूर्तकालके भीतर जघन्य स्थिति प्राप्त हो जाती है, अतः इन दो प्रकृतियोंके अजघन्य स्थितिसंक्रमका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त बतलाया है । तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका उत्कृष्ट सत्त्वकाल पत्यके तीन असंख्यातवै भाग अधिक दो छयासठ सागर होता है । इसीसे यहाँ इन दो प्रकृतियोंके अजघन्य स्थितिसंक्रमका उत्कृष्ट काल एकप्रमाण बतलाया है । अब रहीं सोलह कपाय और नौ नोकपाय ये पच्चीस प्रकृतियाँ सो इनके अजघन्य स्थितिसंक्रमके तीन भद्र प्राप्त होते हैं—अनादि-अनन्त, अनादि-सान्त और सादि-सान्त । अनादि-अनन्त विकल्प अभव्योंके या अभव्योंके समान भव्योंके होता है । अनादि-सान्त विकल्प उन भव्योंके होता है जिन्होंने अभीतक उपशमश्रेणिको नहीं प्राप्त किया है और सादि-सान्त विकल्प उन भव्योंके होता है जो उपशमश्रेणिपर चढ़कर पुनः उससे च्युत हुए हैं । प्रकृतमें इसी तीसरे विकल्पकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट काल बतलाया है । जो जीव अन्तर्मुहूर्तके भीतर दो बार उपशमश्रेणिपर चढ़ता है उसके अजघन्य स्थितिसंक्रमका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त प्राप्त होता है । तथा जो जीव अर्धपुद्गलपरिवर्तन कालने आदि और अन्तमें श्रेणीपर चढ़ता है उसके अजघन्य स्थितिसंक्रमका उत्कृष्ट काल कुलक्रम अर्धपुद्गलपरिवर्तन-प्रमाण प्राप्त होता है ।

इस प्रकार ओघपरूपणा समाप्त हुई ।

§ ६६६. अब आदेशका कथन करनेके लिए उच्चारणाको बतलाते हैं । यथा—आदेशकी अपेक्षा नारकियोंमें मिथ्यात्व, वारह कपाय, भय और जुगुप्साके जघन्य स्थितिसंक्रमका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । अजघन्य स्थितिसंक्रमका जघन्य काल एक समय अधिक एक आवलि है और उत्कृष्ट काल तेतीस सागर है । इसी प्रकार सात नोकपायोंके विषयमें जानना चाहिए । किन्तु इतनी विशेषता है कि इनके अजघन्य स्थितिसंक्रमका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है । सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धीचतुष्कके जघन्य स्थितिसंक्रमका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । अजघन्य स्थितिसंक्रमका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल तेतीस सागर है । इसी प्रकार पहली पृथिवीमें जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि यहाँ अजघन्य स्थितिसंक्रमका उत्कृष्ट काल अपनी स्थितिप्रमाण कइना चाहिये । दूसरी पृथिवीसे लेकर सातवीं पृथिवी तकके नारकियोंमें स्थितिबिभक्तिके समान भद्र है ।

विज्ञेयार्थ—नरकमें मिथ्यात्व, वारह कपाय, भय और जुगुप्साका जघन्य स्थितिसंक्रम एक समय अधिक एक आवलिके बाद एक समयके लिए प्राप्त होता है, अतः इनके जघन्य स्थिति-संक्रमका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा है । तथा इस जघन्य स्थितिसंक्रमके पूर्व एक

§ ६६७. तिरिक्खेलु ड्ढिदिवि०भंगो । पंचि०तिरिक्खे३ मिच्छ०-वारसक०-भय-दुगुंछ० जह० ड्ढिदिसंका० जहण्णु० एयस० । अज० जह० आवलिया समयूणा, उक्क० सगड्ढिदी । सम्म०-सम्मामि०-अणंताणु०-सत्तणोक० ड्ढिदिविहत्तिमंगो । पंचि०-तिरि०अपज्ज०-मणुसअपज्ज० मिच्छ०-सोलसक०-भय-दुगुंछ० जह० जहण्णुक्क० एग-

समय अधिक एक आवलि कालतक उक्त प्रकृतियोंका अजघन्य स्थितिसंक्रम होता है, अतः यहाँ उनके अजघन्य स्थितिसंक्रमका जघन्य काल एक समय अधिक एक आवलिप्रमाण कहा है। उत्कृष्ट काल तेतीस सागर है यह स्पष्ट ही है। यद्यपि सात नोकषायोंकी अपेक्षा यह काल इसी प्रकार बन जाता है। पर इनके अजघन्य स्थितिसंक्रमके जघन्य कालमें कुछ विशेषता है। वात यह है कि यहाँ सात नोकषायोंके जघन्य स्थितिसंक्रमका काल नरकमें उत्पन्न होनेके अन्तर्मुहूर्त बाद प्राप्त होता है अतः इनके अजघन्य स्थितिसंक्रमका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्तप्रमाण कहा है। नरकमें सम्यक्त्वका जघन्य स्थितिसंक्रम उसकी क्षणमें एक समय अधिक एक आवलि कालके शेष रहनेपर एक समयके लिए प्राप्त होता है। सम्यग्मिथ्यात्वका जघन्य स्थितिसंक्रम उद्वेलनाके समय अन्तिम स्थितिकाण्डककी अन्तिम फालिके पतनके समय प्राप्त होता है। तथा अनन्तानुबन्धीचतुष्कका जघन्य स्थितिसंक्रम विसंयोजनाके समय अन्तिम स्थितिकाण्डककी अन्तिम फालिके पतनके समय प्राप्त होता है। अतः यहाँ इनके जघन्य स्थितिसंक्रमका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय बतलाया है। जो सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वेलना करनेवाला अन्य गतिकका जीव इनके अजघन्य स्थितिसंक्रममें एक समय शेष रहनेपर नरकमें उत्पन्न होता है उसके इनका एक समयके लिए अजघन्य स्थितिसंक्रम होता है। तथा जिस नारकीने अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी विसंयोजना की है वह यदि सासादनमें जाकर और एक आवलि कालके बाद एक समयके लिये इसकी अजघन्य स्थितिका संक्रामक होकर मर जाता है तो उसके अनन्तानुबन्धीचतुष्कके अजघन्य स्थितिसंक्रमका जघन्य काल एक समय देखा जाता है। इसीसे यहाँ इन सम्यक्त्व आवि छह प्रकृतियोंके अजघन्य स्थितिसंक्रमका जघन्य काल एक समय बतलाया है। तथा इनके अजघन्य स्थितिसंक्रमका उत्कृष्ट काल तेतीस सागर स्पष्ट ही है। यह सब काल प्रथम पृथिवीमें भी बन जाता है अतः प्रथम पृथिवीके कथनको सामान्य नारकियोंके समान बतलाया है। किन्तु यहाँ उत्कृष्ट आयु एक सागर ही पाई जाती है, अतः यहाँ सब प्रकृतियोंके अजघन्य स्थितिसंक्रमका उत्कृष्ट काल अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण बतलाया है। स्थितिबिभक्तिकमें सब प्रकृतियोंकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका द्वितीयादि नरकमें जो काल बतलाया है वह यहाँ स्थितिसंक्रमकी अपेक्षासे अविचल यदित हो जाता है अतः दूसरी पृथिवीसे लेकर सातवीं पृथिवी तकके नारकियोंमें सब भङ्ग स्थिति-बिभक्तिके समान कहा है।

§ ६६७. तिरिचोमें स्थितिबिभक्तिके समान भङ्ग है। पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चनिकमें मिथ्यात्व, वारह कषाय, भय और जुगुप्साके जघन्य स्थितिसंक्रमका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अजघन्य स्थितिसंक्रमका जघन्य काल एक समय कम एक आवलिप्रमाण है और उत्कृष्ट काल उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है। सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धीचतुष्क और सात नोकषायोंका भङ्ग स्थितिबिभक्तिके समान है। पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च अपर्याप्तकोंमें और मनुष्य अपर्याप्तकोंमें मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय और जुगुप्साके जघन्य स्थितिसंक्रमका जघन्य और उत्कृष्ट

समञ्चो । अज० जह० आवलि० समयूणा, उक० अंतोमु० । सम्म०-सम्मामि०-सत्तणोक०  
द्विदिविहत्तिभंगो ।

§ ६६८. मणु०३ मिच्छ० जह० द्विदिसं० जहणु० एयस० । अज० जह०  
खुदाभव० अंतोमु०, उक० सगड्ढिदी । सम्म०-सम्मामि०-सोलसक०-पुरिसवेद० जह०  
द्विदिसं० जहणु० एयस० । अज० जह० एयस०, उक० सगड्ढिदी । एवमट्टणोक० ।  
णवरि जह० जहणु० अंतोमु० । मणुसिणीसु पुरिसवेद० छण्णोक०भंगो । देवाणं  
णारयभंगो । एवं भवण०-वाणवेत० । णवरि सगड्ढिदी । जोदिसियादि० सव्वट्ठा ति  
द्विदिविहत्तिभंगो । एवं जाव० ।

काल एक समय है । अजघन्य स्थितिसंक्रमका जघन्य काल एक समयकम एक आवलिप्रमाण है  
और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ।

**विशेषार्थ**—जो वादर पंचेन्द्रिय जीव भरकर पंचेन्द्रिय तिर्यक्षत्रिकमें उत्पन्न होते हैं उनके यहाँ  
उत्पन्न होनेके एक आवलि कालमें अन्तिम समयमें मिथ्यात्व आदि पन्ध्र प्रकृतिवर्षका जघन्य स्थिति-  
संक्रम होता है, इसलिए इन तीन प्रकारके तिर्यक्षोंमें उक्त प्रकृतिवर्षके जघन्य स्थितिसंक्रमका जघन्य और  
उत्कृष्ट काल एक समय पड़ा है । तथा इस एक समय कालको एक आवलिमेंसे काम करने पर उनमें  
इसी प्रकृतियोंके अजघन्य स्थितिसंक्रमका जघन्य काल एक समय कम एक आवलिप्रमाण होनेसे  
यह तत्प्रमाण पड़ा है । इनमें उक्त प्रकृतिवर्षके अजघन्य स्थितिसंक्रमका उत्कृष्ट काल अपनी अपनी  
उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है यह स्पष्ट ही है । शेष पक्षन सुगम है । तात्पर्य यह है कि यहाँ जो भी काल  
पड़ा है उसे स्वामित्वको देखकर पटित कर लेना चाहिए ।

§ ६६८. मनुष्यविक्रमं मिथ्यात्वके जघन्य स्थितिसंक्रमका जघन्य और उत्कृष्ट काल  
एक समय है । अजघन्य स्थितिसंक्रमका जघन्य काल खुदाभयमङ्गणप्रमाण और अन्तर्मुहूर्त-  
प्रमाण है तथा उत्कृष्ट काल अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है । सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व,  
सोलह कणय और पुरुषवेदके जघन्य स्थितिसंक्रमका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है ।  
अजघन्य स्थितिसंक्रमका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अपनी स्थितिप्रमाण है ।  
इसी प्रकार आठ नोकपायोंके विषयमें जानना चाहिए । किन्तु इतनी विशेषता है कि इनके  
जघन्य स्थितिसंक्रमका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । मनुष्यनिर्घामं पुरुषवेदका भंग  
छह नोकपायोंके समान है । देवोंमें नारयिकोंके समान भंग है । इसी प्रकार भवनवासी और  
व्यन्तर देवोंमें जानना चाहिए । किन्तु इतनी विशेषता है कि यहाँ अजघन्य स्थितिसंक्रमका उत्कृष्ट  
काल अपनी अपनी स्थितिप्रमाण कहना चाहिए । ज्योतिषियोंसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें  
स्थितिविक्रमके समान भंग है । इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिए ।

**विशेषार्थ**—शोधसे जो प्रत्येक प्रकृतिके स्थितिसंक्रमका स्वामित्व बतलाया है उसी प्रकार  
मनुष्यविक्रमं सम्भव होनेसे यहाँ कालका विचार उसीके अनुसार कर लेना चाहिए । मात्र सब  
प्रकृतिवर्षके अजघन्य स्थितिसंक्रमका काल अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है यह स्पष्ट ही है ।  
तथा मनुष्यनिर्घामं पुरुषवेदका भंग छह नोकपायोंके समान है इतनी विशेषता यहाँ अलगसे जान  
लेनी चाहिए । इसका कारण यह है कि इनमें छह नोकपायोंके स्थितिसंक्रमके स्वामित्वसे पुरुषवेदके  
स्थितिसंक्रमके स्वामित्वमें कोई भेद नहीं है । शेष पक्षन सुगम है ।

१. आ०प्रती अज० जहणु० इति पाठः ।

❀ एत्तो अंतरं ।

§ ६६९. एत्तो उवरि अंतरं वत्तइस्सामो त्ति पइज्जासुत्तमेदं । तं पुण दुविहं जहण्णुकस्सट्ठिदिसंक्रमविसयंभेदेण । तत्थुकस्सट्ठिदिसंक्रमयंतरं उक्कस्सट्ठिदिउदीरणंतरेण समाणपरूवणमिदि तेण तदप्पणं कुणमाणो सुत्तमुत्तरं भण्णइ—

❀ उक्कस्सयट्ठिदिसंक्रमयंतरं जहा उक्कस्सट्ठिदिउदीरणाए अंतरं तथा कायन्वं ।

§ ६७०. सुगममेदमप्पणासुत्तं । संपहि एदेण समप्पिदत्थविवरणसुचारणाणुसारेण वत्तइस्सामो । तं जहा—उक्क० पयदं । दुविहो णिहेसो—ओषेण आदेसेण य । ओषेण मिच्छ०-वारसक० उक्क० ट्ठिदिसंका० अंतरं के० ? जह० अंतोसु०, णवणोक्क० एयस०, उक्क० सव्वेसिमणंतकालमसंखेज्जा पोग्गलपरियट्ठा । अणु० जह० एयस०, उक्क० अंतोसु० । सम्म०-सम्मामि० उक्क० अणुक० ट्ठिदिसंका० जह० अंतोसु० एयस०, उक्क० उवट्ठुपोग्गलपरियट्ठा । अणंताणु०४ उक्क० ट्ठिदिसं० जह० अंतोसु०, उक्क० अणंत-कालमसंखेज्जपोग्गलपरियट्ठं । अणु० जह० एयसमओ, उक्क० वेछवट्ठिसांगरो० देसुणाणि । आदेसेण सन्वासु गदीसु ट्ठिदिविहत्तिभंगो । णवरि मणुसतिए चट्ठुणोक्कसायाणमणुकस्स-

\* अब इससे आगे अन्तरका अधिकार है ।

§ ६६६. अब इस कालपरूपणाके बाद अन्तर परूपणाको बतलाते हैं । इस प्रकार यह प्रतिज्ञासूत्र है । वह दो प्रकारका है—जघन्य स्थितिसंक्रमको विषय करनेवाला और उत्कृष्ट स्थिति-संक्रमको विषय करनेवाला । उनमेंसे, उत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकके अन्तरका कथन उत्कृष्ट स्थितिकी उदीरणाके अन्तरके समान है, इसलिये उसकी प्रधानतासे आगेका सूत्र कहते हैं—

\* जिस प्रकार उत्कृष्ट स्थितिकी उदीरणाका अन्तर है उसी प्रकार उत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकका अन्तर प्राप्त करना चाहिये ।

§ ६७१. यह अर्पणासूत्र सुगम है । अब इसके द्वारा जो अर्थका निवरण प्राप्त होता है उसे उच्चारणाके अनुसार बतलाते हैं । यथा—उत्कृष्टका प्रकरण है । निर्देश दो प्रकारका है—ओषनिर्देश और आदेशनिर्देश । ओषकी ओषेष्ठा मिथ्यात्व और वारह कषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकका अन्तर कितना है ? जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है, नौ नोकषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकका जघन्य अन्तर एक समय है तथा इन सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकका उत्कृष्ट अन्तर अनन्त काल है जो असंख्यात पुद्गलपरिवर्तनप्रमाण है । अनुत्कृष्ट स्थितिके संक्रामक का जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व-की उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकका जघन्य अन्तर क्रमसे अन्तर्मुहूर्त और एक समय है । तथा उत्कृष्ट अन्तर उपाधैपुद्गलपरिवर्तनप्रमाण है । अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी उत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर अनन्त काल है जो असंख्यात, पुद्गल-परिवर्तनप्रमाण है । अनुत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम दो छयासठ सागर है । आदेशकी अपेक्षा सब गतियोंमें स्थितिबिभक्तिके समान भंग है । किन्तु इतनी विशेषता है कि मनुष्यात्रिकमे चार नोकषायोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकका उत्कृष्ट

कस्तंतरमंतोमुहुत्तं । एवं जाव० ।

✽ एत्तो जहणणयमंतरं ।

§ ६७१. एत्तो उक्कस्सट्टिदिमं कामयंतरविट्ठासणादो उव्वरि जहण्णाट्टिदिसंक्रामयंतरं कस्सामो चि पइजासुत्तमेदं ।

अन्तरकाल अन्तमुहूर्त है । इसी प्रकार अनादारक मार्गणातक जानना चाहिये ।

विशेषार्थ—ओषसे मिश्र्यात्व और चारद कर्पायोंका उत्कृष्ट स्थितिसंक्रम होनेके बाद पुनः

वह अन्तमुहूर्तके अन्तरसे ही प्राप्त हो सकता है, क्योंकि एक बार इनका उत्कृष्ट स्थितिवन्ध होकर पुनः यह अन्तमुहूर्तके बाद ही होता है और मंक्रम चन्धके अनुसार होता है, अतः यहाँ उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिसंक्रमका जघन्य अन्तरकाल अन्तमुहूर्त कहा है । मात्र नौ नोकरायोंके उत्कृष्ट स्थितिसंक्रमका जघन्य अन्तर एक समय चन जाता है । कारण कि क्रोधादि कर्पायोंसे एकके बाद दूसरेका एक एक समयके अन्तरसे उत्कृष्ट स्थितिवन्ध होकर तथा एक एक समयके अन्तरसे उनका नौ नोकरायोंमें संक्रम होकर नौ नोकरायोंका भी एक एक समयके अन्तरसे उत्कृष्ट स्थितिसंक्रम सम्भय है । इन सब प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिसंक्रमका उत्कृष्ट अन्तर अनन्तकाल है यह स्पष्ट ही है । इन सब प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिसंक्रमका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तमुहूर्त होनेसे इनके अनुत्कृष्ट स्थितिसंक्रमका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तमुहूर्त कहा है । जो जीव अन्तमुहूर्तके अन्तरसे दो बार वेदकसम्बन्धको प्राप्त होता है और मिश्र्यात्वमे दोनों बार वेदकसम्बन्ध होनेके पूर्व मिश्र्यात्व प्रकृतिवा उत्कृष्ट स्थितिवन्ध करके उसका काष्ठकाल नहीं बरता उनके सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वके उत्कृष्ट स्थितिसंक्रमका जघन्य अन्तर अन्तमुहूर्त देखा जाता है तथा जो उपद्रामसम्बन्धित जीव एक समयके लिए सासादन सम्यग्दृष्टि होकर दूसरे समयमें मिश्र्यादृष्टि हो जाता है उसके उक्त दोनों प्रकृतियोंके अनुत्कृष्ट स्थितिसंक्रमका जघन्य अन्तर एक समय देखा जाता है, इसलिए तो इन दोनों प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिसंक्रमका जघन्य अन्तर अन्तमुहूर्त और अनुत्कृष्ट स्थितिसंक्रमका जघन्य अन्तर एक समय कहा है । तथा इन दोनों प्रकृतियोंकी उपार्धपुद्गलपरिवर्तनकाल तक सत्ता न हो कर उसके प्रारम्भमें और अन्तमें इनका उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिसंक्रम हो यह सम्भय है, इसलिए इनके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिसंक्रमका उत्कृष्ट अन्तर उपार्धपुद्गलपरिवर्तनप्रमाण कहा है । अनन्तानुबन्धीचतुष्कका श्रेय सब अन्तर कथन तो चारद कर्पायोंके समान होनेसे उसी प्रकार घटित कर लेना चाहिए । मात्र इनके अनुत्कृष्ट स्थितिसंक्रमके उत्कृष्ट अन्तरमें कुछ फरक है । वात यह है कि जो वेदकसम्बन्धित जीव अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना कर देता है उसके कुछ कम दो छयासठ सागर काल तक उनकी सत्ता नहीं पाई जाती, इसलिए इनके अनुत्कृष्ट स्थितिसंक्रमका उत्कृष्ट अन्तर उक्त कालप्रमाण कहा है । यहाँ चारों गतियोंमें सब प्रकृतियोंके स्थितिसंक्रमका अन्तरकाल स्थितिविभक्तिके समान बतलाकर मनुष्यत्रिकामें चार नोकरायोंके अनुत्कृष्ट स्थितिसंक्रमका उत्कृष्ट अन्तरकाल एक आबलि या एक आबलिका असंख्यातवर्ग भाग न बढ़ कर जो अन्तमुहूर्त कहा है सो उसका कारण यह है कि उपद्रामश्रेणिसं ह्रास्य, रति, श्रिवेद और मुख्यवेदका अनुत्कृष्ट स्थितिसंक्रम अन्तमुहूर्त काल तक नहीं होता ।

✽ इससे आगे जघन्य अन्तरकालका अधिकार है ।

§ ६७१. इससे अर्थात् उत्कृष्ट स्थितिसंक्रमकके अन्तरका कथन करलेके बाद जघन्य स्थितिसंक्रमका अन्तर कहेंगे इस प्रकार यह प्रतिज्ञासूत्र है ।



❀ सव्वासि पयडीणं णत्थि अंतरं ।

§ ६७२. सव्वासि मोहपयडीणं जहण्णद्धिदिसंक्रामयस्स णत्थि अंतरं, खवय-  
चरिमफालीए चरिमड्ढिदिखंडए समयाहियावलियाए च लद्धजहण्णसामित्ताणमंतरसंबंधस्स  
अचंताभावेण णिसिद्धत्तादो । एदेण सामण्णवयणेणाणंताणुबंधीणं पि अंतराभावे पसत्ते  
तण्णिवारणमुहेणंतरसंबधपदुप्पायणद्वसुत्तरसुत्तं—

❀ एचरि अणंताणुबंधीणं जहण्णद्धिदिसंक्रामयंतरं जहएणेण अंतोमुहुत्तं,  
उक्कस्सेण उवड्डुपोगलपरियट्टं ।

§ ६७३. विसंजोयणाचरिमफालीए लद्धजहण्णभावस्साणंताणु उक्कस्स द्विदि-  
संक्रमस्स सव्वजहण्णविसंजुत्त-संजुत्तकालेहि अंतरिय पुणो वि विसंजोयणाए काटुमादत्ताए  
चरिमफालिविसए लद्धमंतोमुहुत्तं होइ । उक्कस्सेण उवड्डुपोगलपरियट्टपरूवणा सुगमा ।  
एवमोषेण जहण्णंतरं गयं ।

\* सव प्रकृतियोंका अन्तरकाल नहीं है ।

§ ६७२. सव मोहप्रकृतियोंके जघन्य स्थितिसंक्रामकका अन्तरकाल नहीं है, क्योंकि इनका  
अपने व्ययके अन्तिम स्थितिकाण्डकके अन्तिम फालिके पतन होते समय और एक समय अधिक  
एक आवलि काल रहनेपर जघन्य स्यामित्व प्राप्त होता है, इसलिए उनके अन्तरकालका अत्यन्त  
अभाव होनेसे उसका निषेध किया है । इस सामान्य वचनसे अनन्तातुबन्धियोंका भी अन्तराभाव  
प्राप्त हुआ, इसलिए उसके निषेध द्वारा उनका अन्तरकाल सम्भव है इसका कथन करनेके लिए  
आगेका सूत्र कहते हैं—

\* किन्तु इतनी विशेषता है कि अनन्तातुबन्धियोंके जघन्य स्थितिके संक्रामकका  
जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर उपार्धपुद्गलपरिवर्तनप्रमाण है ।

§ ६७३. क्योंकि विसंयोजनाकी अन्तिम फालिके पतनके समय जिसने अपने स्थिति-  
संक्रामकका जघन्यपत्ता प्राप्त किया है ऐसे अनन्तातुबन्धोचतुष्कका सबसे जघन्य विसंयोजना  
और संयोजनाके काल द्वारा अन्तर करके पुनः उसे विसंयोजना करनेके लिए प्रहण करनेपर चरम  
फालिके पतनके समय तक अन्तर्मुहूर्त काल होता है । इसके उपार्धपुद्गलपरिवर्तनप्रमाण उत्कृष्ट  
अन्तरकालकी प्ररूपणा सुगम है ।

**विशेषार्थ—**सम्यक्त्वप्रकृति और संबलन लोभका जघन्य स्थितिसंक्रम अपनी अपनी  
क्षणांमें एक समय अधिक एक आवलि काल शेष रहने पर होता है और शेष प्रकृतियोंका जघन्य  
स्थितिसंक्रम अपनी अपनी क्षणाके समय अन्तिम स्थितिकाण्डककी अन्तिम फालिके पतनके  
समय होता है, इसलिए बोधसे इनके जघन्य स्थितिसंक्रामकके अन्तरकालका निषेध किया है ।  
किन्तु अनन्तातुबन्धीचतुष्क इस विधिका अपवाद है । कारण कि उसकी विसंयोजना होनेके बाद  
अन्तर्मुहूर्त कालके मीतः ही पुनः संयोजनापूर्वक विसंयोजना हो सकती है । तथा दो बार  
विसंयोजनारूप क्रिया होनेमें उपार्धपुद्गलपरिवर्तनप्रमाण कालका व्यवधान भी हो सकता है,  
इसलिए इनकी जघन्य स्थितिके संक्रमका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल उक्तप्रमाण वन जानेसे  
बह उक्त कालप्रमाण कहा है ।

इस प्रकार शेषसे जघन्य अन्तरकाल समाप्त हुआ ।

§ ६७४. एत्तो अजहण्णट्टिदिसंक्रमंतरं देसामासयसुत्तेणेदेणेव सूचिदमिदाणिमणु-  
मग्गहस्सामो—मिच्छ० अज० पत्थि अंतरं । सम्म०-सम्मामि० अज० जह० एगसमओ,  
उक्क० उवट्टुपोग्गलपरियहुं । अणंताणु०४ अज० जह० अंतोमु०, उक्क० वेळावट्टिसागरो०  
देसूणाणि । वारसक०-णवणोक० अज० जह० एयस०, उक्क० अंतोमु० ।

एवमोघो समत्तो ।

§ ६७५. आदेसेण सच्चणेग्ग्य०-सच्चतिग्गिक्ख-मणुसअपज०-सच्चदेवा चि ट्टिदि-  
विहत्तिभंगो । मणुस३ मिच्छ० जह० अज० पत्थि अंतरं । सम्मा०-सम्मामि० जह०  
पत्थि अंतरं । अजह० ज० एगस०, उक्क० तिपिग पल्लियो० पुच्चकोडिपुच्चतेण-

§ ६७४. अब इसी देशामर्षक सूत्रसे सूचित होनेवाले अजघन्य स्थितिसंक्रमके अन्तरकालका  
इस समय विचार करते हैं—मिथ्यात्वके अजघन्य स्थितिसंक्रामकका अन्तरकाल नहीं है । सम्यक्त्व  
और सम्यग्मिथ्यात्वके अजघन्य स्थितिसंक्रामकका जघन्य अन्तरकाल एक समय है और उच्छ्रष्ट  
अन्तरकाल उपार्थपुद्गलपरिवर्तनप्रमाण है । अनन्तानुबन्धीचतुष्कके अजघन्य स्थितिसंक्रामकका  
जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है और उच्छ्रष्ट अन्तरकाल उपार्थपुद्गलपरिवर्तनप्रमाण है । वारह  
कपाय और नौकपायोंके अजघन्य स्थितिसंक्रामकका जघन्य अन्तरकाल एक समय है और उच्छ्रष्ट  
अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है ।

विशेषार्थ—मिथ्यात्वकी तपस्या होनेके पूर्व तक उसका सर्वदा अजघन्य स्थितिसंक्रम होता  
रहता है, इसलिए इसका निषेध किया है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका यथाविधि फलसे कम  
एक समयके लिए और अधिकसे अधिक उपार्थपुद्गलपरिवर्तनप्रमाण कालके लिए अन्तर होकर  
अजघन्य स्थितिसंक्रम सम्भव है, इसलिए इनके अजघन्य स्थितिसंक्रमका जघन्य अन्तर एक  
समय और उच्छ्रष्ट अन्तर उपार्थपुद्गलपरिवर्तनप्रमाण कहा है । अनन्तानुबन्धीचतुष्कका फलसे  
कम अन्तर्मुहूर्त काल तक और अधिकसे अधिक कुछ कम दो छयासठ सागर फलतक विमंयोजना  
होकर अभय रहता है । तथा विमंयोजनाके पूर्वमें तथा संयोजना होनेके बादमें इनका अजघन्य  
स्थितिसंक्रम होता रहता है, इसलिए इनके अजघन्य स्थितिसंक्रमका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और  
उच्छ्रष्ट अन्तर कुछ कम दो छयासठ सागर कहा है । वारह कपाय और नौ नौकपायोंकी उपशमना  
होनेके बाद जो एक समय वहाँ रुककर दूसरे समयमें सरसर देव हो जाते हैं उनके इन  
प्रकृतियोंके अजघन्य स्थितिसंक्रमका जघन्य अन्तर एक समय प्राप्त होता है और जो इनकी  
उपशमना फलके तथा उपशमनश्रेणिसे उत्तरते समय यथारथान पुनः इनका अजघन्य स्थितिसंक्रम  
करने लगते हैं उनके इनके अजघन्य स्थितिसंक्रमका उच्छ्रष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त प्राप्त होता है, इसलिए  
इनके अजघन्य स्थितिसंक्रमका जघन्य अन्तर एक समय और उच्छ्रष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त कहा है ।

इस प्रकार ओषधप्ररूपणा समाप्त हुई ।

§ ६७५. आदेशसे सब नारकी, सब तिर्थञ्च, मनुष्य अयर्थात् और सब देवोंमें स्थिति-  
विभक्तिके समान भंग है । मनुष्यविकर्म मिथ्यात्वके जघन्य और अजघन्य स्थितिसंक्रामकका  
अन्तरकाल नहीं है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके जघन्य स्थितिसंक्रामकका अन्तरकाल नहीं  
है । अजघन्य स्थितिसंक्रामकका जघन्य अन्तर एक समय है और उच्छ्रष्ट अन्तर पूर्वकोटिपुष्पक्त्व  
अधिक तीन पक्षप्रमाण है । अनन्तानुबन्धीचतुष्कके जघन्य स्थितिसंक्रामकका जघन्य अन्तर

ब्रह्महियाणि । अणंताणु०४ ज० जह० अंतोमु०, उक्क० सगड्ढिदी । अज० ज० अंतोमु०, उक्क० तिण्णि पल्लिदो० देसूणाणि । बारसक०-णवणोक्क० जह० णत्थि अंतरं । अज० जहण्णु० अंतोमु० । एवं जाव० ।

✽ **णाणाजीवेहि भंगविचओ दुविहो उक्कस्सपदभंगविचओ च जहणप-पदभंगविचओ च ।**

§ ६७६. तत्थुक्कस्सपदभंगविचओ णाम उक्कस्सट्ठिदिसंक्रामयाणं पवाहवोच्छेद-संभवांसंभवपरिक्खाम् । तथा जहण्णो वि वत्तव्वो । एदेसिं च दोण्णमट्ठपदं—जे उक्कस्सट्ठिदीए संक्रामया ते अणुक्कस्सट्ठिदीए असंक्रामया । जे अणुक्कस्सट्ठिदीए संक्रामया ते उक्कस्सियाए ट्ठिदीए असंक्रामया । एवं जहण्णयं पि वत्तव्वं । एदमट्ठपदं काऊण सेसपरूवणा कायव्वा चि जाणावणट्ठमुत्तरसुत्तमाह—

✽ **तेसिमट्ठपदं काऊण उक्कस्सओ जहा उक्कस्सट्ठिदिउदीरणा तथा कायव्वा ।**

अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर अपनी अपनी स्थितिप्रमाण है । अजघन्य स्थितिसंक्रामकका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तीन पत्यप्रमाण है । बारह कषाय और नौ नोकषायोंके जघन्य स्थितिसंक्रामकका अन्तरकाल नहीं है तथा अजघन्य स्थितिसंक्रामकका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है । इसी प्रकार अनाहारक मार्गेणा तक जानना चाहिए ।  
विशेषार्थ—मनुष्यत्रिककी उत्कृष्ट कायस्थिति पूर्वकोटिपृथक्त्व अधिक तीन पत्य है और इसके प्रारम्भमें तथा अन्तमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी सत्ता हो और मध्यमें न हो यह सम्भव है, इसलिए इन प्रकृतियोंके अजघन्य स्थितिसंक्रमका उत्कृष्ट अन्तरकाल उक्त कालप्रमाण कहा है । कोई मनुष्य कृतकृत्यवेदक या चायिकके सिवा अन्य सम्यक्त्वके साथ मरकर मनुष्योंमें नहीं उत्पन्न होता । वेदकसम्यग्दृष्टि या उपशमसम्यग्दृष्टि तिर्यञ्च भी मरकर मनुष्योंमें नहीं उत्पन्न होता, अतः मनुष्यत्रिकमें अन्तस्तुबन्धीचतुष्कके अजघन्य स्थितिसंक्रमका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तीन पत्य ही प्राप्त होता है, इसलिए इनमें यह उक्त कालप्रमाण कहा है । शेष कथन सुगम है ।

✽ **नाना जीवोंकी अपेक्षा भङ्गविचय दो प्रकारका है—उत्कृष्ट पदभंगविचय और जघन्य पदभंगविचय ।**

§ ६७६. यहाँ पर उत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकोंके प्रवाहका व्युच्छेद सम्भव है या असम्भव है इसकी परीक्षा करना उत्कृष्ट पदभंगविचय कहलाता है । उसी प्रकार जघन्यका भी कथन करना चाहिए । इन दोनोंको अर्थपद—जो उत्कृष्ट स्थितिके संक्रामक हैं वे अनुत्कृष्ट स्थितिके असंक्रामक होते हैं और जो अनुत्कृष्ट स्थितिके संक्रामक हैं वे उत्कृष्ट स्थितिके असंक्रामक होते हैं । इसी प्रकार जघन्यके आश्रयसे भी कथन करना चाहिए । इसप्रकार अर्थपद करके शेष प्ररूपणा करनी चाहिए इस बातका ज्ञान करनेके लिए आगेका सूत्र कहते हैं—

✽ **उनका अर्थपद करके जिस प्रकार उत्कृष्ट उदीरणाकी प्ररूपणा की गई है उस प्रकार उत्कृष्टपदभंगविचय करना चाहिए ।**

शः आ०प्रतौ ज० अंतोमु० इति पाठः ।

१ ६७७. तेमिं दोण्हमणंतरपरुविदमट्टपदं काऊण तदो उयास्सओ भंगविचओ पुव्वं कायव्वो, जहा उद्वेसो तथा णिद्वेसो चि णायादो । सो च कयं कायव्वो ? जहा उकस्सिया द्विदिउदोण्णा भंगविचयविसया' तथा कायव्वो, तत्तो एदस्स भेदाणुवलंभादो । मंपहि एदेण समप्पिदत्थविवरणट्टमुच्चारणं वत्तइस्सामो । तत्थ दुविहो णिद्वेसो—ओषेण आदेसेण य । ओषेण मन्वपयटोणं उकस्सट्टिदीए सिया सन्वे असंकांमया । सिया एदे च संकांमओ च । सिया एदे च संकांमया च । एवं तिण्णि भंगा । अणुक्कस्ससंकांमयाणं पि विवजासेण तिण्णि भंगा कायव्वो । एवं सव्वासु गर्हसु । णवरि मणुसअपज्जं सन्वपयटोणमुक्क०—अणु० संकां० अट्ट भंगा० । एवं जाव० ।

२ एत्तो जहणणपदभंगविचओ ।

१ ६७८. उयस्सपदभंगविचयादो अणंतरं जहणणपदभंगविचयो परुवणाजोग्गो चि अट्टियारमंभालणमुत्तमेदं । तण्णिदेगकरणट्टमुत्तरमुच्चारयो—

३ सव्वासिं पयटोणं जहणणट्टिदिसंकांमयस्स सिया सन्वे जीया असंकांमया, सिया असंकांमया च संकांमओ च, सिया असंकांमया च संकांमया च ।

१ ६७८. उन दोनोहा अनन्तर पूर्वकचित् अर्थवद करके अनन्तर उत्कृष्ट भद्रविषय पहिले करना चाहिए, क्योंकि उहेगके अनुसार निर्देश दिया जाता है ऐसा न्याय है ।

शंका—यह किमत्रयपर करना चाहिए ?

समाधान—जिस प्रकार भंगविचयविषयक उत्कृष्ट वरीरणा की गई है उस प्रकार करना चाहिए, क्योंकि इसमें भेद नहीं उपलब्ध होगा ।

अब इसमें प्राप्त हुए अर्थका विवरण करनेके लिए उच्चारणाको बतलाते हैं । प्रकृतमें निर्देश दो प्रकारका है—श्लोचनिर्देश और आदेशनिर्देश । श्लोचमें मय प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिके सब जीव कदाचित् अस्क्रामक हैं । कदाचित् बहुत जीव अस्क्रामक हैं और एक जीव संक्रामक है । कदाचित् बहुत जीव अस्क्रामक हैं और बहुत जीव संक्रामक हैं । इस प्रकार तीन भंग होते हैं । अनुत्कृष्ट संक्रामकोंके भी उलटकर तीन भंग करने चाहिए । इसी प्रकार सब गतियोंमें जानना चाहिए । किन्तु इसकी विशेषता है कि मनुष्य अपयोजनाओंमें मय प्रकृतियोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट संक्रामकोंके आठ भंग होते हैं । इसी प्रकार अनाहारके मार्गणा तक जानना चाहिए ।

\* इससे आगे जघन्यपदभंगविचयका प्रकरण है ।

१ ६७८. उत्कृष्ट पदभंगविचयके बाद जघन्य पदभंगविचय प्ररूपणायोग्य है इस प्रकार अधिकांशकी संश्लाल करनेवाला यह मूत्र है । अब इसका निर्देश करनेके लिए आगेके सूत्रका अवतार करते हैं—

\* सब प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिसंक्रमके कदाचित् सब जीव असंक्रामक हैं । कदाचित् बहुत जीव असंक्रामक हैं और एक जीव संक्रामक है । कदाचित् बहुत जीव असंक्रामक हैं और बहुत जीव संक्रामक हैं ।

१. ता० प्रती -विनयविचया इति पाठः ।

§ ६७९. गयत्यमेदं सुत्तं ।

❀ **सेसं विहत्तिभंगो ।**

§ ६८०. एत्थ सुगमत्तादो सुत्तेणापरुविदाणं भागाभाग-परिमाण-खेत्त-पोसणाणं द्विदिविहत्तिभंगो । णवरि जहण्णए, परिमाणानुगमे ओघेण मणुसगईए, च सम्मामि० जह० द्विदिसंका० केत्तिया ? संखेज्जा । खेत्तपरुवणाए णत्थि णाणत्तं । पोसणाणुगमे ओघेण मणुसगईए, च सम्मामि० जहण्णद्विदिसंकामयाणं खेत्तभंगो कायच्चो ।

❀ **णाणाजीवेहि कालो ।**

§ ६८१. अहियारसंभालणसुत्तमेदं सुगमं ।

❀ **सब्वासि पयडीणमुक्कस्सद्विदिसंकमो केवचिरं कालादो होइ ?**

जहण्णए, एयसमञ्चो ।

§ ६८२. एयसमयमुक्कस्सद्विदिं संकामेदूण विदियसमए अणुकस्सद्विदिं संकामे-माणएसु णाणाजीवेसु तदुवलंभादो ।

❀ **उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो ।**

§ ६८३. एत्थ मिच्छ०-सोलसक०-भय-दुगुंछ०-णउंसयवेद-अरइ-सोगाणमुक्कस्स-द्विदिवंघगुंठं ठविय आवलि० असंखेज्जभागमेत्ततदुवक्कमणवारसलागाहि गुणिदे उक्कस्स-कालो होइ । हस्स-रइ-इत्थि-पुरिसवेदाणमावलियं ठविय तदसंखेज्जभागेण गुणिदे

§ ६७९. यह सूत्र गतार्थ है ।

❀ **शेष भंग स्थितिभिक्तिके समान है ।**

§ ६८०. यहाँपर सुगम होनेसे सूत्रद्वारा नहीं कहे गये भागाभाग, परिमाण, क्षेत्र और स्पर्शनका भंग स्थितिभिक्तिके समान है । इतनी विशेषता है कि जघन्य परिभाषानुगममें ओघसे तथा मनुष्यगतिकी अपेक्षा सम्यग्मिध्यात्वकी जघन्य स्थितिके संक्रामक जीव कितने हैं ? संख्यात हैं । क्षेत्रप्ररूपणामें कोई विशेषता नहीं है । स्पर्शनानुगममें ओघसे और मनुष्यगतिकी अपेक्षा सम्यग्मिध्यात्वकी जघन्य स्थितिके संक्रामकोंके स्पर्शनका भंग क्षेत्रके समान करना चाहिए ।

❀ **अब नाना जीवोंकी अपेक्षा कालका अधिकार है ।**

§ ६८१. अधिकारकी संभाल करनेवाला यह सूत्र सुगम है ।

❀ **सब प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिसंक्रमका कितना काल है ? जघन्य काल एक समय है ।**

§ ६८२. क्योंकि एक समय तक उत्कृष्ट स्थितिका संक्रम करके दूसरे-समयमें अनुकृष्ट स्थितिका संक्रम करनेवाले नाना जीवोंके उक्त काल उपलब्ध होता है ।

❀ **उत्कृष्ट काल पल्पके असंख्यातवें भागप्रमाण है ।**

§ ६८३. यहाँ पर मिध्यात्व, सोलह कषाय, भय, जुगुप्सा, नपुंसकवेद, अरति और शोककी उत्कृष्ट स्थितिके बन्धक कालको स्थापित कर उसको आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण उपक्रमण वारशलाकाओंसे गुणित करनेपर उत्कृष्ट काल प्राप्त होता है । हास्य, रति, क्रोध और पुरुषवेदके उत्कृष्ट संक्रमकाल एक आवलिको स्थापित कर उसके असंख्यातवें भागसे गुणित करने पर प्रकृत उत्कृष्ट

पयदुक्कस्सकालसमुप्पत्ती वचच्चा । सञ्चासिं पयडीणमिदि वयणेण सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणं  
पि पल्लिदोवमासंखभागापमाणुक्कस्सट्टिदिमंक्रमुक्कस्सकालाड्ढप्पमंगे तप्पडिसेदुहेण तत्थ विसेसं  
पदुप्पायणट्ठमिदिमाह—

⊗ एवरि सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणमुक्कस्सट्टिदिसंकमो केवचिरं  
कालादो होदि । जहएणेण एयसमञ्चो, उक्कस्सेण आवलिधाए असंखेज्जदि-  
भागो ।

‡ ६८४. कथमेदमुप्पत्ती ? वुचदे—एयवारमुवकंताणमेयसमञ्चो चैव लब्धइ त्ति  
तमेयसमयं ठविय आवलि० अंगरे०भागमेत्तुवत्तमणदारहि णिरंतग्मुवलब्धभाणसरुवेहि  
गुणिदे तदुवल्लंभो होइ । एवमोषेणुक्कस्सट्टिदिमंक्रमकालो णाणाजीवविसंमिदो सच्चपयडीणं  
परुविदो । अणुत्तस्सट्टिदिमंक्रमकालो पुण सच्चैमिं कम्माणं सच्चद्धा । आदेमपरुवणाए  
ट्टिदिविहत्तिभंगो अणुणाहियो कायञ्चो ।

⊗ एत्तो जहएणयं ।

‡ ६८५. मुगमं ।

⊗ सञ्चासिं पयडीणं जहएणट्टिदिसंकमो केवचिरं कालादो होदि ?  
जहएणेणोयसमञ्चो, उक्कस्सेण संखेज्जा समया ।

कालको इति कहती चाटिण । सूत्रमें 'सञ्चासिं पयडीणं' यह वचन आया है । मां इसमें सत्यवत्त्व  
और सन्धगिगभ्यात्वके भी उत्कृष्ट स्थितिसंक्रमके उत्कृष्ट काल पत्यके असंख्यातवें भागप्रमाण प्राप्त  
होने पर उसके प्रतिषेध द्वारा वहाँ विशेषका कथन करनेके लिए इस सूत्रको कहते हैं—

\* किन्तु इतनी विशेषता है कि गम्यवत्त्व और सम्धगिगभ्यात्वके उत्कृष्ट  
स्थितिसंक्रमका काल कितना है ? जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल आवलिके  
असंख्यातवें भागप्रमाण है ।

‡ ६८४. उसकी उत्तरति कैसे होती है ? कहते हैं—एकवार उपक्रम करनेवाले जीवोंके  
एक समयप्रमाणही काल उपलब्ध होता है, इसलिए उस एक समयको रथापितकर निरन्तर उपलब्ध  
होनेवाले आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण उपक्रमणवारोंसे गुणित करने पर उस कालकी प्राप्ति  
होती है । इस प्रकार ओषसे सव प्रकृतियोंका नाना जीवविषयक उत्कृष्ट स्थितिसंक्रमकाल कदा ।  
किन्तु सव क्रमोंका अनुत्कृष्ट स्थितिसंक्रमकाल सर्वदा है । तथा आदेशसे कथन करने पर  
न्यूनाधिकतासे रहित स्थितिविभक्तिके समान भंग करना चाहिये ।

\* अब आगे जघन्यका प्रकरण है ।

‡ ६८५. यह सूत्र मुगम है ।

\* सव प्रकृतियोंका जघन्य स्थितिसंक्रमकाल कितना है ? जघन्य काल एक  
समय है और उत्कृष्ट काल संख्यात समय है ।

१. ता० प्रती - विसेतपरुवणाट्ठभुवरिमं इति पाठः ।

§ ६८६. खवणाए लद्धजहण्णभावाणं तदुवलंभादो । संपहि एदेण सामण्णवयणेण विसंजोयणचरिमफालीए लद्धजहण्णभावाणमणंताणुबंधीणं चरिमट्टिदिसंखंडए लद्धजहण्ण-सामिचाणमट्टणोकसायाणं च जहाणिदिट्टजहण्णुकस्सकालाइप्पसंगे तप्पडिसेहदुवारेण तत्थतणविसेसपदुप्पायणट्टमुवरिमं सुत्तइयमाह—

⊗ एवचरि अणंताणुबंधीणां जहण्णट्टिदिसंकमो केवचिरं कालादो होदि ? जहण्णेण एयसमओ, उक्कस्सेण आवलियाए असंखेज्जदिभागो ।

§ ६८७. सुगमं ।

⊗ इत्थि-एणुसंयवेद-ल्लयणोकसायाणं जहण्णट्टिदिसंकमो केवचिरं कालादो होदि ? जहण्णुकस्सेणंतोसुहुत्तं ।

§ ६८८. चरिमट्टिदिसंखंडयम्मि लद्धजहण्णभावाणं तदुवलंभादो । णवरि जहण्ण-कालादो उक्कस्सकालस्स संखेज्जगुणत्तमेत्थ दट्टुव्वं, संखेज्जवारं तदणुसंधाणावलंबणे, तदविरोहादो । एवमोषेण जहण्णट्टिदिसंकमकालो परूविदो ।

§ ६८९. सव्वासिमजहण्णट्टिदिसंकमकालो सच्चद्धा । एवं मणुसतिए । णवरि अणंताणु ०४ जहण्ण० जह० एयस०, उक्क० संखेज्जा समया । मणुस्सिणीसु पुरिसवेद०

§ ६८६. क्योंकि क्षणमें जघन्यपनेको प्राप्त हुई उन प्रकृतियोंका उक्त काल प्राप्त होता है । अब इस सामान्य वचनके अनुसार विसंजोयणकी अन्तिम फालिके पतनके समय जघन्यपनेको प्राप्त हुई अनन्तानुबन्धियोंके तथा अन्तिम स्थितिकाण्डकके पतनके समय जघन्य एवमित्त्वको प्राप्त हुए आठ नोकपायोंके यथानिर्दिष्ट जघन्य और उत्कृष्ट कालका प्रसंग प्राप्त होने पर उसके प्रतिषेध द्वारा वहाँ पर विशेषताका कथन करनेके लिए आगेके दो सूत्र कहते हैं—

\* किन्तु इतनी विशेषता है कि अनन्तानुबन्धियोंके जघन्य स्थितिसंक्रमका कितना काल है ? जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल आवलिके असंख्यतिवें भागप्रमाण है ।

§ ६८७. यह सूत्र सुगम है ।

\* स्त्रीवेद, नपुंसकवेद और छह नोकपायोंके जघन्य स्थितिसंक्रमका कितना काल है ? जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है

§ ६८८. अन्तिम स्थितिकाण्डकके पतनके समय जघन्यपनेको प्राप्त हुए उक्त आठ नोकपायोंका उक्त काल प्राप्त होता है । किन्तु इतनी विशेषता है कि यहाँ पर जघन्य कालसे उत्कृष्ट काल संख्यातगुणा जानना चाहिए, क्योंकि संख्यातवार उनके कालका अविच्छिन्नभावसे अवलम्बन लेने पर जघन्य कालसे उत्कृष्ट कालके संख्यातगुणा होनेमें विरोध नहीं आता । इस प्रकार ओघसे जघन्यस्थितिसंक्रमका काल कहा ।

§ ६८९. ओघसे सब प्रकृतियोंके अजघन्य स्थितिसंक्रमका काल सर्वदा है । इसी प्रकार मनुष्यत्रिकमें जानना चाहिए । किन्तु इतनी विशेषता है कि अनन्तानुबन्धीचतुष्कके जघन्य स्थितिसंक्रमका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल संख्यात समय है । मनुष्यनियोगमें

१. आ०प्रती—संकामयकालो इति पाठः ।

छण्णोक० भंगो । आदेसेण सञ्चयोरइय-सञ्चतिरिक्ख०-सञ्चदेवा द्विदिविहत्तिभंगो । मणुसअपज्ज० मिच्छ०-सोलसक०-भय-दुगुंछ० जह० द्विदिसं० जह० एयस०, उक० आवलि० असंखे० भागो । अज० जह० आवलिया समयूणा, उक० पलिदो० असंखे०-भागो । सम्म०-सम्मामि०-सत्तणोक० द्विदिविहत्तिभंगो । एवं जाव० ।

§ ६९०. अंतरं दुविहं—जह० उक० । उक० द्विदिविहत्तिभंगो । जहण्णए पयदं । दुविहो णिहेसो—ओघेण आदेसेण य । ओघेण दंसणतिय-णवकसाय-इत्थिवेद०-छण्णोक० जह० द्विदिसका० जह० एयसमओ, उक० छम्मासं । अणंताणु०४ जह० द्विदिसंका० जह० एयसमओ, उक० चउवीसमहोरत्ते सादिरेये । पुरिसवेद-तिण्णिसंजल० जह० द्विदिसं० जह० एयसमओ, उक० वासं सादिरेयं । णवुंसं जह० द्विदिसं० जह० एयसमओ, उक० वासपुधत्तं । सन्वासिमजह०, द्विदिसंका० णत्थि अतरं । एवं मणुसतिए । णवरि मणुसिणीसु खवयपयडीणं वासपुधत्तं । सेससञ्चमग्गणासु विहत्तिभंगो ।

पुरयवेदका भंग छह नोकपायोंके समान है । आदेशसे सब नारकी, सब तिर्यञ्च और सब देवोंमें स्थितिबिभक्तिके समान भंग है । मनुष्य अपर्याप्तकोंमें मिथ्यात्व, सोलह कपाय, भय और जुगुप्सा के जघन्य स्थितिसंक्रमका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण है । अजघन्य स्थितिसंक्रमका जघन्य काल एक समय कम एक आवलिप्रमाण है और उत्कृष्ट काल पत्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है । सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और सात नोकपायोंका भंग स्थितिबिभक्तिके समान है । इस प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिए ।

§ ६९०. अन्तर दो प्रकारका है—जघन्य और उत्कृष्ट । उत्कृष्टका भंग स्थितिबिभक्तिके समान है । जघन्यका प्रकरण है । निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश । ओघसे तीन दर्शनमोहनीय, नौ कपाय, स्त्रीवेद और छह नोकपायोंके जघन्य स्थितिसंक्रमकका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर छह महीना है । अनन्तानुबन्धीचतुष्कके जघन्य स्थितिसंक्रमकका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक चौबीस दिन-रात है । पुरुषवेद और तीन संज्वलनके जघन्य स्थितिसंक्रमकका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक एक वर्ष है । नपुंसकवेदके जघन्य स्थितिसंक्रमकका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर वर्षप्रयत्न है । सब प्रकृतियोंके अजघन्य स्थितिसंक्रमकका अन्तरकाल नहीं है । इसी प्रकार मनुष्यत्रिकमें जानना चाहिए । इतनी विशेषता है कि मनुष्यनियोंमें क्षपक प्रकृतियोंका उत्कृष्ट अन्तर वर्षप्रयत्न है । शेष सब मार्गणाओंमें स्थितिबिभक्तिके समान भंग है ।

विशेषार्थ—क्षपकश्रेणिका और क्षायिक सम्यग्दर्शनकी प्राप्तिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर छह महीना है । इसलिए यहाँ पर तीन दर्शनमोहनीय आदि १९ प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिसंक्रमका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर छह महीना कहा है । इन प्रकृतियोंमें स्त्रीवेदकी गिनानेका कारण यह है कि इस प्रकृतिकी परोदय और स्तोदय दोनों प्रकारसे क्षणका होने पर अन्तमे जघन्य स्थितिसंक्रम होता है । सम्यकत्वकी प्राप्तिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक चौबीस दिन-रात है । तदनुसार यह अन्तर अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विसंयोजनाका भी जानना चाहिए । इसलिए यहाँ पर अनन्तानुबन्धीचतुष्कके जघन्य स्थितिसंक्रमका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर साधिक चौबीस दिन-रात कहा है । क्रोधादि तीन संज्वलन और पुरुषवेदके उदयसे क्षपकश्रेणिपर चढ़नेका जघन्य अन्तर एक समय



❧ एत्थ सणियासो कायव्वो ।

§ ६९१. एत्थुद्देसे सणियासो कायव्वो चि चुणिसुत्तयारस्स अत्थसमपपणा-  
चयणमेदं । संपहि एदेण समप्पिदत्थस्स फुडीकरणड्डमुत्तारणं वत्तइस्सामो । तं जहा—  
सणियासो दुविहो—जह० उक्क० । उक्कस्सं उक्कस्सड्ढिदिविहत्तिभंगो । णवरि आणदादि  
सव्वड्डसिद्धिं मोत्तूण जम्हि जम्हि सम्म०-सम्मामि० सणियासिज्जंति तम्हि तम्हि सिया  
अत्थि, सिया णत्थि । जदि अत्थि, सिया संकामओ सिया असंकामओ । जदि संकामओ,  
क्किमुक्क० अणुक० ? णियमा अणुक० अंतोमुत्तूणमादिं कादूण जाव चरिमेणुव्वेत्तण-  
कंडएणूणं ति । आणदादि णवगेवजा चि ड्ढिदिविहत्तिभंगो । णवरि जम्हि सम्म०-सम्मामि०  
तम्हि सिया अत्थि सिया णत्थि । जइ अत्थि, सिया संका० सिया असंका० । जदि  
संका० क्किमुक्क० अणुक० ? उक्कस्सा वा अणुकस्सा वा । उक्कस्सादो अणुकस्सं पल्लिदो०  
असंखे० भागूणमादिं कादूण जाव चरिमेणुव्वेत्तणकंडएणूणं ति । अणुदिसादि सव्वड्डा चि  
ड्ढिदिविहत्तिभंगो ।

और उत्कृष्ट अन्तर साधिक एक वर्ष होनेसे यहाँपर इन प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिसंक्रमका जघन्य  
अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर साधिक एक वर्ष कहा है । इस सम्बन्धमे कुछ विशेष  
वक्तव्य है सो उसे स्थितिविभक्तिसे जान लेना चाहिए । नपुंसकवेदके साथ षपकश्रेणिएपर चढ़नेका  
जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व होनेसे यहाँ इसके जघन्य स्थितिसंक्रमका  
जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व कहा है । शेष कथन सुगम है ।

\* यहाँपर सन्निकर्ष करना चाहिए ।

§ ६९१. इस स्थानपर सन्निकर्ष करना चाहिए इस प्रकार चूणिसुत्तकारका अर्थका प्रतिपादन  
करनेवाला यह वचन है । अब इस द्वारा कहे गये अर्थवा स्पष्टीकरण करनेके लिए उच्चारणाको  
वतलाते हैं । यथा—सन्निकर्ष दो प्रकारका है—जघन्य और उत्कृष्ट । उत्कृष्टका भंग उत्कृष्ट स्थिति-  
विभक्तिके समान है । इतनी विशेषता है कि आनतसे लेकर सर्वार्थसिद्धितकके देवोंको छोड़कर  
जिन-जिन प्रकृतियोंके साथ सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका सन्निकर्ष करते हैं वहाँ-वहाँ  
कदाचित् ये दोनों प्रकृतियाँ हैं और कदाचित् नहीं हैं । यदि हैं तो कदाचित् संक्रामक होता है  
और कदाचित् असंक्रामक होता है । यदि संक्रामक होता है तो क्या उत्कृष्ट स्थितिका संक्रामक  
है या अनुत्कृष्ट स्थितिका संक्रामक है ? नियमसे अन्तर्मुहूर्त कम उत्कृष्ट स्थितिसे लेकर अन्तिम  
उद्वेलनाकाण्डकसे न्यून स्थितितक अनुत्कृष्ट स्थितिका संक्रामक होता है । आनतसे लेकर नौ प्रैवेयक  
तक स्थितिविभक्तिके समान भंग है । इतनी विशेषता है कि जिसके साथ सम्यक्त्व और  
सम्यग्मिथ्यात्वका सन्निकर्ष करते हैं वहाँ ये दोनों प्रकृतियाँ कदाचित् हैं और कदाचित् नहीं हैं ।  
यदि हैं तो वह इनका कदाचित् संक्रामक है और कदाचित् असंक्रामक है । यदि संक्रामक है तो  
क्या उत्कृष्ट स्थितिका संक्रामक है या अनुत्कृष्ट स्थितिका संक्रामक है ? अपनी उत्कृष्ट स्थितिका भी  
संक्रामक है और अनुत्कृष्ट स्थितिका भी संक्रामक है । यदि अनुत्कृष्ट स्थितिका संक्रामक है तो वह  
उत्कृष्ट स्थितिकी अपेक्षा पत्यके असंख्यातवें भागसे न्यून अनुत्कृष्ट स्थितिसे लेकर अन्तिम उद्वेलना-  
काण्डकसे न्यून तककी स्थितिका संक्रामक है । अनुदिशासे लेकर सर्वार्थसिद्धि तक स्थितिविभक्तिके  
समान भंग है ।

१ ६०२. जहणण पयदं । दृविहो णिहेसो—ओघेण आदेसेण य । ओघेण मिच्छ० जह० द्विदिसंक्रामंतो सम्म०-गम्मामि०-वारसक०-णवणोक्क० किं जह० अजह० ? णियमा अज० अमंसे०गुणव्भहियं । सम्म० जह० द्विदिगंका० २१पयडीणं णियमा अज० अमंसे०गुणव्भहियं । गम्मामि० जह० द्विदिगंका० सम्म०-वारसक०-णवणोक्क० णियमा अज० अमंसे०गुणव्भहियं । अणंताणु०कोह० जह० द्विदिगंका० २४पयडीणं णियमा अज० अमंसे०गुणव्भहियं । तिणं कयायाणं णियमा जहणं । एवं तिण्हमणंताणु०कमायाणं । अपवाक्काणकोह० जह० द्विदिगंका० ४ चदुमंज०-णवणोक्क० णियमा अज० अमंसे०गुणव्भहियं । सत्तकमायाणं णियमा जहणं । मंत्तं सत्तकमायाणं । णउंमयवे० जह० द्विदिगंका० २५त्विवेद० णियमा जहणं । हण्णोक्क०-पुरिसवेद०-चदुमंज० णियमा अज० अमंसे०गुणव्भ० । २६त्विवेद० जह० द्विदिगंका० २७मयस्म णउंन० मिया अन्थि मिया णन्थि । जह० अत्थि णियमा जह० । सत्तणोक्क०-चदुमंज० णियमा अज० अमंसे०गुणव्भहियं । हम्मस्त जह० द्विदिगंका० २८पुग्गिवे० तिणं मंजलणं णिय० अज० अमंसे०गुणव्भहियं । लोहमंज० णिय० अज० अमंसे०गुणव्भहियं । पंचणोक्क० णियमा जह० । मंत्तं पंचणोक्क० । पुरिसवेद० जह० द्विदिगंका०

१ ६०२. उत्तरपथ प्रारम्भ है । निर्देश दो प्रकारका है—आगतनिर्देश और आदेशनिर्देश । आगतने मित्यात्र की जघन्य स्थितिका संक्रामक प्रकृत्या जीव सम्यग्जन्तु, सम्यग्मित्यात्र, चारद्वय और नौ नोकपायोंकी तथा जघन्य स्थितिका संक्रामक होता है या अजघन्य स्थितिका संक्रामक होता है ? नियमसे असंख्यातगुणी अधिक अजघन्य स्थितिका संक्रामक होता है । सम्यक्जन्ती जघन्य स्थितिका संक्रामक जीव २१ प्रकृतियोंकी नियमसे असंख्यातगुणी अधिक अजघन्य स्थितिका संक्रामक होता है । सम्यग्मित्यात्रकी जघन्य स्थितिका संक्रामक जीव सम्यक्जन्तु, चारद्वय और नौ नोकपायोंकी नियमसे असंख्यातगुणी अधिक अजघन्य स्थितिका संक्रामक होता है । अतन्नानुबन्धी कौषकी जघन्य स्थितिका संक्रामक जीव २४ प्रकृतियोंकी नियमसे अतन्नानुबन्धी गान आदि तीन कपायोंकी नियमसे जघन्य स्थितिका संक्रामक होता है । इसी प्रकार गान आदि तीन अतन्नानुबन्धी कपायोंकी मुख्यतासे सन्निकर्ष होता है । अपस्याग्यान्नावरण कौषकी जघन्य स्थितिका संक्रामक जीव चार संज्वलन और नौ नोकपायोंकी नियमसे असंख्यातगुणी अजघन्य स्थितिका संक्रामक होता है । सात कपायोंकी नियमसे जघन्य स्थितिका संक्रामक होता है । इसी प्रकार सात कपायोंकी मुख्यतासे सन्निकर्ष होता है । नपुंसकवेदकी जघन्य स्थितिका संक्रामक जीव त्र्यंबेदकी नियमसे जघन्य स्थितिका संक्रामक होता है । छह नोकपाय, पुरुषवेद और चार संज्वलनकी नियमसे असंख्यातगुणी अधिक अजघन्य स्थितिका संक्रामक होता है । स्त्रीवेदकी जघन्य स्थितिके संक्रामक जीवके नपुंसकवेद कदाचिन् है और कदाचिन् नहीं है । यदि है तो यह नपुंसकवेदकी नियमसे जघन्य स्थितिका संक्रामक होता है । सात नोकपाय और चार संज्वलनकी नियमसे असंख्यातगुणी अधिक अजघन्य स्थितिका संक्रामक होता है । हास्यकी जघन्य स्थितिका संक्रामक जीव पुरुषवेद और तीन संज्वलनकी नियमसे संख्यातगुणी अधिक अजघन्य स्थितिका संक्रामक होता है । लोभसंज्वलनकी नियमसे असंख्यातगुणी अधिक अजघन्य स्थितिका संक्रामक होता है । तथा पाँच नोकपायोंकी नियमसे जघन्य स्थितिका संक्रामक होता है । उसी प्रकार पाँच नोकपायोंकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए । पुरुषवेदकी जघन्य स्थितिका संक्रामक जीव

तिण्हं संजल० णियमा अज० संखे० गुणब्भहियं । लोभसंजल० णिय० अज०  
 असंखे० गुणब्भ० । कोहसंजल० जह० द्विदिसंका० दोण्हं संजल० णियमा अज०  
 संखे० गुणब्भ० । लोभसंज० णि० अज० असंखे० गुणब्भ० । माणसंज० जह०  
 द्विदिसंका० मायासंज० णिय० अज० संखे० गुणब्भ० । लोभसंज० णियमा अज०  
 असंखे० गुणब्भहियं । मायासंज० जह० द्विदिसंका० लोभसंज० णि० अज० असंखे०  
 गुणब्भ० । लोहसंज० जह० द्विदिसंका० सन्वपयडीणमसंक्रामओ ।

§ ६९३. आदेसेण णेरइय० मिच्छं० जह० द्विदिसंका० सम्मत्तस्स सिया कम्मसिओ  
 सिया ण । जइ कम्मसिओ संक्रामओ । जइ संक्रामओ, किं जह० अज० ? णियमा अज०  
 असंखे० गुणब्भ० । सम्मामि० सिया कम्मसिओ सिया ण । जइ कम्मसिओ सिया  
 संक्रामओ । जइ संका०, किं जह० अज० ? तं तु चउट्टाणपदिदं । सेसं द्विदिविहत्ति-  
 भंगो । सम्मत्त-सम्मामि०-अणंताणु०४ सण्णियासो वि द्विदिविहत्तिभंगेण णेयव्वो ।  
 अपच्चक्खाणकोह० जह० द्विदिसंका० सम्मत्त-सम्मामि० मिच्छत्तभंगो । सेसं द्विदि-  
 विहत्तिभंगो । एवमेकारसक० । णवणोकसायाणं द्विदिविहत्तिभंगो । णवरि सम्मत्त-

तीन संवलनोकी नियमसे संख्यातगुणी अधिक अजघन्य स्थितिका संक्रामक होता है । तथा  
 लोभसंवलनकी नियमसे असंख्यातगुणी अधिक अजघन्य स्थितिका संक्रामक होता है । क्रोध-  
 संवलनकी जघन्य स्थितिका संक्रामक जीव दो संवलनोकी नियमसे संख्यातगुणी अधिक अजघन्य  
 स्थितिका संक्रामक होता है । तथा लोभसंवलनकी नियमसे असंख्यातगुणी अधिक अजघन्य  
 स्थितिका संक्रामक होता है । मानसंवलनकी जघन्य स्थितिका संक्रामक जीव मायासंवलनकी  
 नियमसे संख्यातगुणी अधिक अजघन्य स्थितिका संक्रामक होता है । तथा लोभसंवलनकी नियमसे  
 असंख्यातगुणी अधिक अजघन्य स्थितिका संक्रामक होता है । मायासंवलनकी जघन्य स्थितिका  
 संक्रामक जीव लोभसंवलनकी नियमसे असंख्यातगुणी अधिक अजघन्य स्थितिका संक्रामक  
 होता है । लोभसंवलनकी जघन्य स्थितिका संक्रामक जीव सब प्रकृतियोंका असंक्रामक होता है ।

§ ६९३. आदेशसे नारकियोमिं मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिका संक्रामक जीव सम्यक्त्वका  
 कदाचित् कर्मांशिक है और कदाचित् अकर्मांशिक है । यदि कर्मांशिक है तो कदाचित् संक्रामक है ।  
 यदि संक्रामक है तो क्या जघन्य स्थितिका संक्रामक है या अजघन्य स्थितिका संक्रामक है ? नियमसे  
 असंख्यातगुणी अधिक अजघन्य स्थितिका संक्रामक है । सम्यग्मिथ्यात्वका कदाचित् कर्मांशिक है  
 और कदाचित् नहीं है । यदि कर्मांशिक है तो कदाचित् संक्रामक है । यदि संक्रामक है तो क्या  
 जघन्य स्थितिका संक्रामक है या अजघन्य स्थितिका संक्रामक है ? वह चतुःस्थानपतित है । शेष भङ्ग  
 स्थितिविभक्तिके समान है । सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धीचतुष्टकका सन्निकर्ष भी  
 स्थितिविभक्तिके मंगके समान ले जाना चाहिए । अप्रत्याख्यानावरणकोषकी जघन्य स्थितिके  
 संक्रामकके सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका भंग मिथ्यात्वके समान है । शेष भंग स्थितिविभक्तिके  
 समान है । इसी प्रकार ग्यारह कषायोकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए । नौ नोकषायोका  
 भंग स्थितिविभक्तिके समान है । किन्तु इतनी विशेषता है कि सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके

सम्प्राप्तिलक्षण सह जहा णीदाणि तहा णेदञ्चाणि । एवं पढमाए पुढवीए । तिरिक्खेसु एवं चैव । णवरि वारसक० जह० द्विदिसंका० भय-दुगुंछ० णियमा संका० । तं तु समयुत्तरमादि कादृण जाव आवलियच्चमहियं ति । भय-दुगुंछ० जह० द्विदिसंका० मिच्छ०-वारसक० । तं तु अज० असंखे०भागच्चमहियं । णत्थि अण्णो वियप्पो ।

§ ६९४. विद्यादि जाव सत्तमा ति द्विटिविहत्तिभंगो । णवरि अणंताणु०४ जह० द्विदिसंका० मिच्छ०-वारसक०णवणोक्क० णियमा अज० संखेज०भागच्चमहियं । पंचि०तिरिक्ख०णिय० पढपुढविभंगो । णवरि भय-दुगुंछा० जह० द्विदिसं० मिच्छ०-वारसक० तं तु अज० असंखे०भागच्चम० संखे०भागच्चम० णत्थि । जौणिणीसु सम्मत० सम्प्राप्तिलक्षणभंगो । पंचि०तिरिक्ख०अपज० जौणिणीभंगो । णवरि अणंताणु०४ सह करामएहि भणियच्चं । एणं मणुमअपज० ।

§ ६९५. मणुसत्तिए ओचं । णवरि मणुसिणीसु इत्थिवेद० जहण्णद्विदिसंका० णउंसय० णत्थि । णउंस० जह० द्विदिसंका इत्थिवेद० णियमा अज० असंखे०गुणच्चम० । पुग्गिवेदस्स लण्णोक्क०भंगो । देवाणं णान्यभंगो । एवं भवण०-वाणव० । णवरि

साथ जिस प्रकार ले गये हैं उस प्रकार ले जाना चाहिए। इसी प्रकार पहिली पृथिवीमें जानना चाहिए। तिरिक्खोमें इसी प्रकार जानना चाहिए। किन्तु इतनी विशेषता है कि बारह कपायोंकी जघन्य स्थितिका संक्रामक जीव भय और जुगुप्साकी नियमसे संक्रामक है। किन्तु यह एक समय अधिकसे लेकर एक आयलि अधिक तक स्थितिका संक्रामक है। भय और जुगुप्साकी जघन्य स्थितिका संक्रामक जीव मिथ्यात्व और बारह कपायोंका नियमसे संक्रामक है। किन्तु यह अत्यन्ततर्वे भाग अधिक अजघन्य स्थितिका संक्रामक है। यद्यपि अन्य विरल्य नहीं है।

§ ६९४. दूसरीसे तालवीं पृथिवी तकके नारकियोंमें स्थितिविभक्तिके समान भङ्ग है। किन्तु इतनी विशेषता है कि अनन्तानुग्रन्धीचतुष्करी जघन्य स्थितिका संक्रामक जीव मिथ्यात्व, बारह कपाय और नौ नोकपायोंकी नियमसे अत्यन्ततर्वे भाग अधिक अजघन्य स्थितिका संक्रामक है। यद्यो द्वितीय नियंत्रिकमें प्रथम पृथिवीके समान भङ्ग है। किन्तु इतनी विशेषता है कि भय और जुगुप्साकी जघन्य स्थितिका संक्रामक जीव मिथ्यात्व और बारह कपायोंकी जघन्य स्थितिका भी संक्रामक है और अजघन्य स्थितिका भी संक्रामक है। यदि अजघन्य स्थितिका संक्रामक है तो नियमसे अत्यन्ततर्वे भाग अधिक अजघन्य स्थितिका संक्रामक है। संख्यातर्वे भाग अधिक अजघन्य स्थितिका संक्रामक नहीं है। योनिनी तिरिक्खोमें सम्यक्त्वका भङ्ग सम्यग्मिथ्यात्वके समान है। किन्तु इतनी विशेषता है कि अनन्तानुग्रन्धीचतुष्करी साथ कपायोंको कहना चाहिए। इसी प्रकार मनुष्य अपयार्त्रिकोंमें कहना चाहिए।

§ ६९५. मनुष्यत्रिकमें ओषके समान भङ्ग है। किन्तु इतनी विशेषता है कि मनुष्यनियोगोंमें स्त्रीवेदकी जघन्य स्थितिके संक्रामक जीवके नपुंसकवेद नहीं है। नपुंसकवेदकी जघन्य स्थितिका संक्रामक जीव स्त्रीवेदकी नियमसे अत्यन्ततर्वे भाग अधिक अजघन्य स्थितिका संक्रामक है। पुरुषवेदका भङ्ग छट नोकपायोंके समान है। देवोंमें नारकियोंके सम्पन्न भङ्ग है। इसी प्रकार भवनवासी और व्यन्तर देवोंमें जानना चाहिए। किन्तु इतनी विशेषता है कि सम्यक्त्वका भङ्ग

सम्म० सम्मामि० भंगो । जोदिसि० विदियपुढविभंगो । सोहम्मादि जाव सच्चट्टा ति  
ट्टिदिविहत्तिभंगो । एवं जाव ।

§ ६९६. भावो सच्चत्थ ओदइयो भावो ।

❀ अप्पावहुअं ।

§ ६९७ ट्टिदिसंकमस्स जहण्णुकस्सभेयमिण्णस्स अप्पावहुअमिदाणि वत्तइस्सामो  
त्ति पइज्जावकमेदमहियारसंभालणवयणं वा । तं पुण दुविहमप्पावहुअं जहण्णुकस्सट्टिदि-  
संकमयजीवविसयं जहण्णुकस्ससंकमट्टिदिविसयं चेदि । तत्थ जीवप्पावहुअपरूवणा  
सुगमा त्ति तमपरूविय ट्टिदिअप्पावहुअमेव परूवेमाणो सुत्तसुत्तरमाह—

❀ सच्चत्थोवो णवणोकसायाणमुक्कस्सट्टिदिसंकमा ।

§ ६९८. ट्टिदिअप्पावहुअं दुविहं जहण्णुकस्सट्टिदिविसयभेदेण । तत्थक्कस्से ताव  
पयदं । तस्स दुविहोणिहेसो—ओषेणादेसेण य । तत्थोषेण णवणोकसायाण-  
मुक्कस्सट्टिदिसंकमो उवरि भण्णमाणासेमुक्कस्सट्टिदिसंकमपडिवद्वपदेहिंतो थोवयरो  
त्ति उचं होइ । एदस्स पमाणं वंधसंकमणोदयावलियाहि परिहीणचालीससागरोवम-  
कोडाकोडिभेत्तं ।

❀ सोलसकसायाणमुक्कस्सट्टिदिसंकमो विसेसाहिओ ।

§ ६९९. कुदो ? ओआवलिऊणचालीससागरोवमकोडाकोडिपमाणत्तादो ।

सन्यग्मिथ्यात्वके समान है । ज्योतिषी देवोंमें दूसरी पृथिवीके समान भंग है । सौधर्म स्वर्गसे लेकर  
सर्वार्थसिद्धितकके देवोंमें स्थितिबिभक्तिके समान भंग है ।

§ ६९६. भाव सर्वत्र औद्यिक भाव है ।

❀ अल्पवहुत्वका प्रकरण है ।

§ ६९७. जघन्य और उत्कृष्ट भेदरूप प्रकृत स्थितिसंक्रमके अल्पवहुत्वको इस समय बतलाते  
हैं इस प्रकार यह प्रतिज्ञा वाक्य है या अधिकारकी सन्हाल करनेवाला वचन है । वह अल्पवहुत्व  
दो प्रकारका है—जघन्य और उत्कृष्ट स्थितिके संक्रामक जीवोको विषय करनेवाला और जघन्य  
और उत्कृष्ट स्थितिसंक्रमको विषय करनेवाला । उनमेंसे जीव अल्पवहुत्वका कथन सुगम है इसलिए  
उसका कथन न करके स्थिति अल्पवहुत्वका ही कथन करते हुए आगेके सूत्रको कहते हैं—

❀ नौ नोकषायोंका उत्कृष्ट स्थितिसंक्रम सबसे स्तोक है ।

§ ६९८. जघन्य और उत्कृष्ट स्थितिको विषय करनेवाला होनेसे स्थिति अल्पवहुत्व दो  
प्रकारका है । उनमेंसे सर्वप्रथम उत्कृष्टका प्रकरण है । उसका निर्देश दो प्रकारका है—ओष और  
आदेश । उनमेंसे ओषसे नौ नोकषायोंका उत्कृष्ट स्थितिसंक्रम आगे कहे जानेवाले उत्कृष्ट स्थिति-  
संक्रमसे सम्बन्ध रखनेवाले पदोंकी अपेक्षा स्तोक्तर है यह उक्त कथनका तात्पर्य है । इसका प्रमाण  
बन्धावलि, संक्रमावलि और उदयावलिसे न्यून चालीस कोड़ाकोड़ी सागरप्रमाण है ।

❀ उससे सोलह कषायोंका उत्कृष्ट स्थितिसंक्रम विशेष अधिक है ।

§ ६९९. क्योंकि यह दो आवलिकम चालीस कोड़ाकोड़ी सागरप्रमाण है ।

❀ सम्मत्त-सम्मामिच्छताणमक्कस्सट्ठिदिसंकमो तुल्लो विसेसाहिओ ।  
 § ७००. एदेसिसुक्कस्सट्ठिदिसंकमो अंतोमुहुत्तूणसत्तरिसागरो०कोडाकोडीमेत्थो ।  
 एसो वुण कसायाणमुक्कस्सट्ठिदिसंकमादो विसेसाहिओ । केत्तियमेत्थेण ? अंतोमुहुत्तूण-  
 तीसंसागरो०कोडाकोडीमेत्थेण ।

❀ मिच्छत्तस्स उक्कस्सट्ठिदिसंकमो विसेसाहिओ ।

§ ७०१. कुदो ? वंधोदयावलिअणसत्तरिकोडाकोडीसागरोवमपमाणत्तादो । एत्थ  
 विसेसपमाणंतोमुहुत्तं ।

एवमोघाणुगमो समत्थो ।

❀ एवं सञ्चासु गईसु ।

§ ७०२. सञ्चासु गिरयादिगदीसु एवं चेव उक्कस्सट्ठिदिसंकमप्पावहुअपरुवणा  
 कायच्चा, विसेसाभावादो त्ति उच्चं होइ । णवरि पंचि०तिरि०अपज्ज०-मणुसअपज्ज०  
 सोलसक०-णवणो० उक्कस्सट्ठिदिसंकमो सरिसो थोवो । सम्म०-सम्मामि० उक्कस्स-  
 ट्ठिदिसं० सरिसो विसे० । मिच्छ० उक्क०ट्ठिदिसं० विसेसाहिओ । आणदादि जाव सञ्चट्ठ  
 त्ति सोलसक०-णवणो० उक्कस्सट्ठिदिसं० तुल्लो थोवो । मिच्छ०-सम्म०-सम्मामि० उक्क०

\* उससे सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका उत्कृष्ट स्थितिसंक्रम परस्पर तुल्य  
 होकर विशेष अधिक है ।

§ ७००. क्योंकि इनका उत्कृष्ट स्थितिसंक्रम अन्तर्मुहूर्त कम सत्तर कोडाकोडीसागरप्रमाण  
 है । यह कपायोंके बट्टष्ट स्थितिसंक्रमसे विशेष अधिक है । कितना अधिक है ? अन्तर्मुहूर्त कम  
 तीस कोडाकोडी सागर अधिक है ।

\* उससे मिथ्यात्वका उत्कृष्ट स्थितिसंक्रम विशेष अधिक है ।

§ ७०१. क्योंकि यह वन्धावलि और उदयावलिसे न्यून सत्तर कोडाकोडीसागरप्रमाण है ।  
 यहाँपर विशेषका प्रमाण अन्तर्मुहूर्त है ।

इस प्रकार ओघानुगम समाप्त हुआ ।

\* इसी प्रकार सब गतियोंमें अल्पवहुत्व है ।

§ ७०२. नरकादि-सब गतियोंमें इसी प्रकार उत्कृष्ट स्थितिसंक्रम अल्पवहुत्वकी प्ररूपणा  
 करनी चाहिये, क्योंकि ओघसे इस प्ररूपणामे विशेषता नहीं है यह उक्त कथनका तात्पर्य है । किन्तु  
 इतनी विशेषता है कि पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च अपयामि और मनुष्य अपयामिकोंमें सोलह कपाय और नौ  
 नोकपायोंका उत्कृष्ट स्थितिसंक्रम परस्पर सदृश होकर सबसे स्तोत्र है । उससे सम्यक्त्व और  
 सम्यग्मिथ्यात्वका उत्कृष्ट-स्थितिसंक्रम परस्पर सदृश होकर विशेष अधिक है । उससे मिथ्यात्वका  
 उत्कृष्ट स्थितिसंक्रम विशेष अधिक है । आनतसे लेकर सर्वाथैसिद्धि तकके देवोंमें सोलह कपाय और  
 नौ नोकपायोंका उत्कृष्ट स्थितिसंक्रम परस्पर तुल्य होकर सबसे स्तोत्र है । उससे मिथ्यात्व,  
 सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका उत्कृष्ट स्थितिसंक्रम परस्पर तुल्य होकर विशेष अधिक है । यह

द्विदिसं० तुल्लो विसेसाहिओ । एसो च विसेसो सुगमो चि सुचयारेण ण परुविदो । एवं जाव० ।

❀ एत्तो जहएण्यं ।

§ ७०३. सुगमं ।

❀ सन्वन्थोवा सम्मत्त-लोहसंजलणाणं जहएणद्विदिसंकमो ।

§ ७०४. एयद्विदिपमाणत्तादो ।

❀ जद्विदिसंकमो अस्खेज्जगुणो ।

§ ७०५. समयाहियावलियपमाणत्तादो ।

❀ मायाए जहएणद्विदिसंकमो संखेज्जगुणो ।

§ ७०६. आवाहापरिहीणद्धमासपमाणत्तादो ।

❀ जद्विदिसंकमो विसेसाहिओ ।

§ ७०७. केत्तियसेत्तेण ? समयूणदोआवलियपरिहीणावाहासेत्तेण ।

❀ माणसंजलणस्स जहएणद्विदिसंकमो विसेसाहिओ ।

§ ७०८. समयूणदोआवलियूणद्धमासादो अंतोमुहुत्तूणमाससेदस्स तदविरोहादो ।

❀ जद्विदिसंकमो विसेसाहिओ ।

विशेष सुगम है, इसलिए सूत्रकारने इसका कथन नहीं किया। इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिए।

\* आगे जघन्यका प्रकरण है ।

§ ७०३. यह सूत्र सुगम है ।

\* सम्यक्त्व और लोभसंज्वलनका जघन्य स्थितिसंक्रम सबसे स्तोक है ।

§ ७०४. क्योंकि वह एक स्थितिप्रमाण है ।

\* उससे यत्स्थितिसंक्रम असंख्यातगुणा है ।

§ ७०५. क्योंकि वह एक समय अधिक एक आवलिप्रमाण है ।

\* उससे मायाका जघन्य स्थितिसंक्रम असंख्यातगुणा है ।

§ ७०६. क्योंकि वह आवाधासे हीन अर्धमास प्रमाण है ।

\* उससे यत्स्थितिसंक्रम विशेष अधिक है ।

§ ७०७. कितना अधिक है ? एक समय कम दो आवलिसे हीन आवाधाकाल प्रमाण अधिक है ।

\* उससे मानसंज्वलनका जघन्य स्थितिसंक्रम विशेष अधिक है ।

§ ७०८. क्योंकि एक समय कम दो आवलिसे हीन अर्धमाससे अन्तर्मुहुर्त्तकम एक माहके विशेष अधिक होनेमें विरोध नहीं आता ।

\* उससे यत्स्थितिसंक्रम विशेष अधिक है ।

३ ७०९. समयुणदोआवलपिरीहीणावाहापवेसादो ।

⊗ कोहसंजलणस्स जहणणट्टिदिसंकमो विसेसाहिओ ।

६ ७१०. कुदो ? आवाहणवे०मासपमाणत्तादो ।

⊗ जट्टिदिसंकमो विसेसाहिओ ।

८ ७११. एत्थ वित्तेसपमाणं समयुणदोआवलियपरिहीणावाहामेत्तं ।

⊗ पुरिसवेदस्स जहणणट्टिदिसंकमो संखेज्जगुसो ।

९ ७१२. किञ्चणवेमासेहिंतो अतोमुहुत्तुण्हवस्साणं तदाभावस्स णायोववण्णत्तादो ।

⊗ जट्टिदिसंकमो विसेसाहिओ ।

८ ७१३. मुगमं ।

⊗ लुण्णोकसायाणं जहणणट्टिदिसंकमो संखेज्जगुसो ।

९ ७१४. समयुणदोआवलियपरिहीणहवस्सेहिंतो छण्णोक्सायचरिमट्टिदिसंखेयस्स संखेज्जवन्मसहस्सपमाणम्भं संखेज्जगुणत्ताविरोहादो ।

⊗ इत्थि-णत्तुंसयवेदाणं जहणणट्टिदिसंकमो तुल्लो अस्संखेज्जगुसो ।

८ ७१५. कुदो ? पलिट्ठेवमाणंत्वभागपमाणत्तादो ।

⊗ अट्टण्हं कसायाणं जहणणट्टिदिसंकमो अस्संखेज्जगुसो ।

६ ७०६. क्योंकि इममे एक समय कम दो आपलिसे हीन आवाधाकालका प्रवेश हो गया है ।

\* उससे क्रोयगंजलनका जघन्य स्थितिमंक्रम विशेष अधिक है ।

६ ७१०. क्योंकि यह आवाधामे हीन दो नामप्रमाण है ।

\* उससे यत्स्थितिमंक्रम विशेष अधिक है ।

६ ७११. यहाँ पर विशेषका प्रमाण एक समय कम दो आवलिसे हीन आवाधामात्र है ।

\* उससे पुरुषवेदका जघन्य स्थितिमंक्रम संख्यातगुणा है ।

६ ७१२. क्योंकि कुछ कम दो माहमे अन्तर्गुह्यक्रम आठ वर्षका वम प्रकारका होना न्यायसंगत है ।

\* उससे यत्स्थितिमंक्रम विशेष अधिक है ।

६ ७१३. यह-सूत्र मुगम है ।

\* उससे छठ नोकपायोंका जघन्य स्थितिमंक्रम संख्यातगुणा है ।

६ ७१४. क्योंकि एक समय कम दो आवाधालेहीन हीन आठ वर्षसे संख्यात हजार वर्ष-प्रमाण छठ नोकपायोंके अन्तिम स्थितिक्रान्तिके संख्यातगुणे होनेमें कोई विरोध नहीं है ।

\* उससे स्त्रीवेद और नपुंसकवेदका जघन्य स्थितिसंक्रम परस्पर तुल्य होकर भी असंख्यातगुणा है ।

६ ७१५. क्योंकि यह पत्र्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है ।

\* उससे आठ कपायोंका जघन्य स्थितिसंक्रम असंख्यातगुणा है ।



§ ७१६. तं कथं ? इत्थि-णवुंसयवेदानं चरिमट्टिदिखंडयायामादो दुचरिम-ट्टिदिखंडयायामो । असंखे०गुणो । एवं दुचरिमादो तिचरिमट्टिदिखंडयमसंखेज्जगुणं । तिचरिमादो चदुचरिममिदि एदेण कमेण संखेज्जट्टिदिखंडयसहस्साणि हेट्ठा ओसरिय अंतरकरणप्परिमादो पुव्वमेव अट्ट कसाया खविदा । तेण कारणेणेदेसिं चरिमट्टिदिखंडय-चरिमफाली तत्तो असंखेज्जगुणा जादा ।

\* सम्मामिच्छत्तस्स जहणणट्टिदिसंकमो असंखेज्जगुणो ।

§ ७१७. चारित्तमोहकखवयपरिणामेहि घादिदावसेसो अट्टकसायाणं जहणणट्टिदिसंकमो । एसो वुण तत्तो अणंतगुणहीणविसोहिदंसणमोहकखवयपरिणामेहि घादिदावसेसो ति । तत्तो एदस्सासंखेज्जगुणमव्वामोहेण पड्विज्जेयच्चं ।

\* मिच्छत्तस्स जहणणट्टिदिसंकमो असंखेज्जगुणो ।

§ ७१८. कुदो ? मिच्छत्तकखवणादो अंतोमुहुत्तमुवारि गंतूण सम्मामिच्छत्तस्स जहणणट्टिदिसंकमुप्पत्तिदंसणादो ।

\* अयंताणुबंधीणं जहणणट्टिदिसंकमो असंखेज्जगुणो ।

§ ७१९. कुदो ? विसंजोयणापरिणमेहिंत्तो दंसणमोहकखवयपरिणामाणमणंत-गुणत्तेण मिच्छत्तचरिमफालीदो अणंताणुबंधिचरिमफालीए असंखेज्जगुत्तविरोहाभावादो । एवं ताव ओवेण जहणणट्टिदिसंकमप्पावहुअं परुविय एत्तो णिरयगइपडिचद्वज्जहणणट्टिदि-

§ ७१६. सो कैसे ? खीवेद और नपुंसकवेदके अन्तिम स्थितिकाण्डक आयामसे द्विचरम स्थितिकाण्डक आयाम असंख्यातगुणा है । इसी प्रकार द्विचरमसे त्रिचरम स्थितिकाण्डक आयाम असंख्यातगुणा है । त्रिचरमसे चतुश्चरम इस प्रकार इस क्रमसे संख्यात हजार स्थितिकाण्डक नीचे जाकर अन्तरकरणके प्रारम्भसे पूर्व ही आठ कपाय क्षयको प्राप्त हुए हैं । इस कारणसे इनके अन्तिम काण्डकको अन्तिम फालि खीवेद और नपुंसकवेदके जघन्य स्थितिसंक्रमसे विशेष अधिक हो जाती है ।

\* सम्यग्मिथ्यात्वका जघन्य स्थितिसंक्रम असंख्यातगुणा है ।

§ ७१७. क्योंकि चरित्रमोहक्षपकके परिणामोंसे घात करनेसे शेष बचा हुआ आठ कषायोंका जघन्य स्थितिसंक्रम है और यह तो उनसे, अनन्तगुणों हीन दर्शनमोहक्षपकके परिणामोंसे घात करनेसे शेष बचा हुआ जघन्य स्थितिसंक्रम है । इसलिए उससे इसे असंख्यातगुणा न्यामोहके बिना जानना चाहिए ।

\* उससे सिध्यात्वका जघन्य स्थितिसंक्रम असंख्यातगुणा है ।

§ ७१८. क्योंकि मिथ्यात्वका क्षणसे अन्तर्मुहूर्त ऊपर जाकर सम्यग्मिथ्यात्वके जघन्य स्थितिसंक्रमकी उत्पत्ति देखी जाती है ।

\* उससे अनन्तानुबन्धियोंका जघन्य स्थितिसंक्रम असंख्यातगुणा है ।

§ ७१९. क्योंकि विसंजोयनारूप परिणामोंसे, दर्शनमोहक्षपकके परिणाम अनन्तगुणों होनेसे मिथ्यात्वकी अन्तिम फालिसे अनन्तानुबन्धीकी अन्तिम फालिके असंख्यातगुणों होनेमें कोई विरोध नहीं है । इस प्रकार सर्व प्रथम ओषसे जघन्य स्थितिसंक्रम अल्पवहुत्वका कथन करके आगे

संकमप्पावदृष्टं पन्वेदुमुवरिमगुत्तपत्रंभमाह—

✽ णिरयगईए सञ्चत्थोवो सम्मत्तस्स जहणणद्विदिसंकमो ।

§ ७२०. कदकणजोववादं पडुच्च एयद्विदिमेचो लभइ त्ति सञ्चत्थोवचमेदस्स भणिदं ।

✽ जद्विदिसंकमो असंखेज्जगुणो ।

: ७२१. सुगमं ।

✽ अणंतागुत्तंभीणं जहणणद्विदिसंकमो असंखेज्जगुणो ।

§ ७२२. कुदो ? पल्लोवमागंरंभभागपमाणत्तादो ।

✽ सम्माभिच्छत्तस्स जहणणद्विदिसंकमो असंखेज्जगुणो ।

§ ७२३. कुदो ? उप्पेव्लणाचरिमफालीए जहणणभावोवल्लदीदो । पत्त्यतणी पल्लोवमागंरंभभागायामा चरिमफाली अणंताणुत्तंघिविगंजोयणाचरिमफालिआयामादो अमंखेज्जगुणा, तत्थ करणपणिणामेहि यादिदावसेगस्स एत्तो थोवत्तसिद्धीए णाहत्तादो ।

✽ पुरिसवेदस्स जहणणद्विदिसंकमो असंखेज्जगुणो ।

§ ७२४. कुदो ? इदममुत्पन्निकम्मियाण्णियच्छायदणोत्तइयम्मि अंतोमुहुत्त-  
तत्तभवन्थम्मि पल्लोवमन्थ मन्वेजदिभागोण्णमागोवमगहस्सचहुत्तभाममेत्तपुरिसवेद-  
जहणणद्विदिसंकमावल्लंघणादो ।

नरकगामिसे प्रनियत्त जघन्य स्थितिमंक्रम अन्ववेदुत्तका पयन वरत्तेके लिए आगेके मूत्रप्रदन्वको दहते हैं—

✽ नरकगामितिमं सम्यक्त्तका जघन्य स्थितिमंक्रम सवसे स्तोक है ।

§ ७२०. कृतकृत्यके उपपादकी प्रपेशा एक स्थितिप्रमाण उपलब्ध होना है, इसलिय इसे सवसे स्तोक कहा है ।

✽ उससे यत्स्थितिमंक्रम अमंग्यातगुणा है ।

§ ७२१. यह मूत्र सुगम है ।

✽ उससे अनन्तानुवन्धियोंका जघन्य स्थितिमंक्रम अमंग्यातगुणा है ।

§ ७२२. क्योंकि यह पत्यके असंख्यातर्षे भागप्रमाण है ।

✽ उससे सम्यग्मिथ्यात्वका जघन्य स्थितिसंक्रम असंख्यातगुणा है ।

§ ७२३. क्योंकि यहाँपर चङ्केलनाभी धन्तिम फालि जघन्यरूपसे उपलब्ध होती है । पत्यके असंख्यातर्षे भागरूप आशामयाली यह फालि अनन्तानुवन्धीके विसंयोजनासरवन्धी अन्तिम फालिके आयामसे असंख्यातगुणी है, क्योंकि यहाँपर करणपरिणामेति घात करनेसे क्षेप घचा जघन्य स्थितिसंक्रमका इससे स्तोक सिद्ध होना न्यायप्राप्त है ।

✽ पुरुषवेदका जघन्य स्थितिसंक्रम असंख्यातगुणा है ।

§ ७२४. क्योंकि जो इतसमुत्पत्तिक कर्मवाला असंघी जीव मरकर नारकी हुआ है उसके तद्भवस्थ होनेके अन्तर्मुहूर्त होने पर पत्यके संख्यातर्षे भागसे न्यून एक हजार सागरके सात भागोंमेंसे चार भागप्रमाण पुरुषवेदके जघन्य स्थितिसंक्रमका अवलम्बन लिया है ।

❀ इत्थिवेदे जहणण्डिदिसंकमो विसेसाहिओ ।

। ७२५. एत्थ कारणपरुवणडुमिमा ताव बंधगद्धाणमप्पावहुअविहासणा क्रीदे । तं जहा— सच्चत्थोवा पुरिसवेदबंधगद्धा ३ । इत्थिवेदबंधगद्धा संखेज्जगुणा ९ । हस्स-रदि-बंधगद्धा विसेसाहिया ११ । णुंसयवेदबंधगद्धा संखेज्जगुणा २२ । अरदि-सोगबंधगद्धा विसेसाहिया २३ । एदमप्पावहुअं साहणं काऊण पुरिसवेदजहणण्डिदिसंकमादो इत्थिवेद-जहणण्डिदिसंकमस्स विसेसाहियत्तमेवमणुगंतव्वं । तं कथं ? पुरिसवेदस्स, इत्थि-णउंसय-वेदबंधगद्धासमासो संदिट्ठीए ३१, एत्तियमेत्तो गालिदो । एत्तो पुण विसेसहीणो पुरिस-णउंसयवेदबंधगद्धासमासो संदिट्ठी० एसो २५ । इत्थिवेदस्स गालिदो एवंविहो त्ति पुरिसवेदबंधगद्धमित्थिवेदबंधगद्धाए सोहिय सुद्धसेसमेत्तेण विसेसाहियत्तमित्थिवेदजहणण-डिदिसंकमस्स दट्ठव्वं । संदिट्ठीए सुद्धसेसपमाणमेदं ६ । एत्थागालियपडिवक्खबंधगद्ध-णोकसायजहणण्डिदिसंकमसंदिट्ठी एसा ९६ । एत्तो पडिवक्खबंधगद्धागालणेण पुरिसवेद-जहणण्डिदिसंकमो एसो ६५ । एत्तो विसेसाहिओ इत्थिवेदस्स गालिदावसेसो एसो ७१ ।

❀ हस्स-रईणं जहणण्डिदिसंकमो विसेसाहिओ ।

। ७२६. केत्तियमेत्तेण ? इत्थिवेदबंधगद्धासंखेज्जदिभागं पुरिसवेदबंधगद्धाए सोहिय सुद्धसेसमेत्तेण । संदिट्ठीए तमेदं २ । तेणाहिओ हस्स-रइजहणण्डिदिसंकमो एसो ७३ ।

\* उससे स्त्रीवेदमें जघन्य स्थितिसंक्रम विशेष अधिक है ।

§ ७२५. यहाँपर कारणका कथन करनेके लिए बन्धककालके इस अल्पबहुत्वका खुलासा करते हैं । यथा—पुरुषवेदका बन्धककाल सबसे स्तोक है ३ । उससे स्त्रीवेदका बन्धककाल संख्यातगुणा है ६ । उससे हास्य-रतिका बन्धककाल विशेष अधिक है ११ । उससे नपुंसकवेदका बन्धककाल संख्यातगुणा है २२ । उससे अरति-शोकका बन्धककाल विशेष अधिक है २३ । इस अल्पबहुत्वको साधन करके पुरुषवेदके जघन्य स्थितिसंक्रमसे स्त्रीवेदका जघन्य स्थितिसंक्रम विशेष अधिक ही जानना चाहिए ।

शंका—वह कैसे ?

समाधान—स्त्रीवेद और नपुंसकवेदके बन्धककालका जोड़ संदृष्टिसे ३१ है । पुरुषवेदका जघन्य स्थितिसंक्रम लानेके लिए इतना गलाया है । परन्तु इससे विशेषहीन पुरुषवेद और नपुंसक-वेदके बन्धककालका जोड़ है जो संदृष्टिसे यह २५ है । स्त्रीवेदका जघन्य स्थितिसंक्रम लानेके लिए जो गलाया गया वह इस प्रकार है, इसलिए पुरुषवेदके बन्धककालको स्त्रीवेदके बन्धककालमेंसे घटाकर जो शेष बचे उतना विशेष अधिक स्त्रीवेदका जघन्य स्थितिसंक्रम जानना चाहिए । संदृष्टिसे घटाकर जो शेष बचा उसका प्रमाण यह ६ है । यहाँपर नहीं गलाये गये प्रतिपक्ष बन्धक कालके साथ नोकषायके जघन्य स्थितिसंक्रमकी संदृष्टि यह ९६ है । इसमेंसे प्रतिपक्ष बन्धककालके गलानेसे पुरुषवेदका जघन्य स्थितिसंक्रम यह ६५ प्राप्त होता है । इससे विशेष अधिक गलाकर शेष बचा स्त्रीवेदका जघन्य स्थितिसंक्रम यह ७१ है ।

\* उससे हास्य-रतिका जघन्य स्थितिसंक्रम विशेष अधिक है ।

§ ७२६. कितना अधिक है ? स्त्रीवेदके बन्धककालके संख्यातवें भागको पुरुषवेदके बन्धककालमेंसे घटाकर जो शेष बचे उतना अधिक है । संदृष्टिसे वह यह २ है । उतना विशेष अधिक हास्य-रतिका जघन्य स्थितिसंक्रम यह ७३ है ।

ॐ ण्वुंसयवेदजहृणद्विदिसंक्रमो विसेसाहिञ्चो ।

§ ७२७. किं कारणं ? हस्त-रहणमरइ-सोगबंधगद्दा गालिदा । ण्वुंसयवेदस्स पुण एत्तो संखेजगुणहीणो पुरिसित्थिवेदबंधगद्दासमासो गालिदो । तम्हा अरदि-सोगबंधगद्दाए संखेजेहि भागेहि ण्वुंसयवेदजहृणद्विदिसंक्रमो तत्तो विसेसाहिञ्चो जादो । संदिहीए तस्स पमाणमेदं ८४ ।

ॐ अरइ-सोगाणं जहृणद्विदिसंक्रमो विसेसाहिञ्चो ।

§ ७२८. कारणमरइ-सोगाणं हस्त-रदिवंधगद्दामेत्तं गालिदं । ण्वुंसयवेदस्स पुण एत्तो विसेसाहिञ्चं इत्थि-पुरिसवेदबंधगद्दासमासमेत्तं गालिदं । तदो इत्थि-पुरिसवेदबंधगद्दा-समासे हस्त-रइबंधगद्दं सोहिय मुद्दसेसमेत्तेण विसेसाहिञ्चमेत्थ दइत्थ्वं । पयद-जहृणद्विदिसंक्रमसांदिही एत्ता ८५ ।

ॐ भय-जुगुप्साणं जहृणद्विदिसंक्रमो विसेसाहिञ्चो ।

§ ७२९. केत्थियमेत्तो एत्थत्तणो विसेसो ? हस्त-रइबंधगद्दामेत्तो । कुदो एवं ? धुवबंधित्तेण पडियकरबंधगद्दागालणेण विणा लद्धजहृणभावत्तादो ।

ॐ धारसकत्तायाणं जहृणद्विदिसंक्रमो विसेसाहिञ्चो ।

\* उससे नपुंसकवेदका जघन्य स्थितिसंक्रम विशेष अधिक है ।

§ ७२७. कारण क्या है ? क्योंकि ह्रास्य-रतिका जघन्य स्थितिसंक्रम लानेके लिए अरति-शोकका बन्धककाल गलाया गया है । परन्तु नपुंसकवेदका जघन्य स्थितिसंक्रम लानेके लिए इससे संख्यातगुणां हीन पुरुषवेद-स्त्रीवेदके बन्धककालके जोड़ रूप फालको गलाया गया है, इसलिए नपुंसकवेदका जघन्य स्थितिसंक्रम ह्रास्य-रतिके जघन्य स्थितिसंक्रमसे विशेष अधिक हो गया है जो विशेष अधिकका प्रमाण अरति-शोकके संख्यात बहुभागरूप होता है । संदृष्टिसे नपुंसकवेदका जघन्य स्थितिसंक्रम ८४ है ।

\* उससे अरति-शोकका जघन्य स्थितिसंक्रम विशेष अधिक है ।

§ ७२८. क्योंकि अरति-शोकका जघन्य स्थितिसंक्रम लानेके लिए ह्रास्य-रतिबन्धककालमात्र गला है । परन्तु नपुंसकवेदका जघन्य स्थितिसंक्रम लानेके लिए इससे विशेष अधिक गला है, क्योंकि ब्रह्म स्त्री-पुरुषवेदके बन्धककालका जो जोड़ हो तत्प्रमाण गला है, इसलिए स्त्री-पुरुषवेदके बन्धककालके जोड़से तास्य-रतिबन्धककालका घटाकर जोड़ रहे उतना विशेष अधिक यहाँ पर जानना चाहिए । उन प्रकार प्रकृत जघन्य स्थितिसंक्रमकी संदृष्टि यह ८५ है ।

\* उससे भय-जुगुप्साका जघन्य स्थितिसंक्रम विशेष अधिक है ।

§ ७२९. ८६ । यहाँ पर विशेषका प्रमाण कितना है ? यहाँ पर विशेषका प्रमाण ह्रास्य-रतिके बन्धककालप्रमाण है ।

शंका—येसा क्यों है ?

समाधान—क्योंकि भय जुगुप्सा ध्रुवबन्धनी प्रकृतिर्यो है, इसलिए प्रतिपक्ष बन्धककालको गलाये बिना यहाँ जघन्य स्थितिसंक्रमनपना प्राप्त हो जाता है ।

\* उससे चारह कर्पायोंका जघन्य स्थितिसंक्रम विशेष अधिक है ।

§ ७३०. १०० । केत्तियमेत्तेण ? आवलियमेत्तेण । कुदो एवं ? वारसक० जह०  
 द्विदिसंक्रमं पडिच्छिय आवलियादीदस्स भय-दुगुंछाणं जहण्णसामित्तविहाणादो । तं  
 जहा—असण्णिचरिमावत्थाए सगपाओग्गसञ्चजहण्णहदसमुप्पत्तियद्विदिसंतकम्मेण समाणं  
 बंधमाणस्स कसायद्विदिपमाणं संदिट्ठीए एत्तियमिदि वेत्तच्चं १०४ । संपहि एत्तियमेत्त-  
 मसण्णिचरिमावलियाए विदियसमयम्मि वंधिगूण वंधावलियादिकंतमेदं णेरइयविदियविग्गहे  
 भय-दुगुंछासु पडिच्छदि त्ति त्ताकालपडिच्छिदावलियूणकसायद्विदिसमाणमेत्तियं होइ १०० ।  
 पुणो एदं णेरइओ सरीरं वेत्तूणावलियमेत्तं गालिय भय-दुगुंछाणं जहण्णसामित्तं  
 पडिवज्जदि त्ति त्ताकालियजहण्णद्विदिसंक्रमो भय-दुगुंछाणमेत्तियो होइ ९६ । कसायाणं  
 पुण संतसमाणद्विदिवंधो असण्णिपच्छायदणेरइयविदियविग्गहविसओ एत्तियमेत्तो  
 होइ १०४ । पुणो गालिदावलिओ एत्तियमेत्तो होऊण १०० जहण्णसामित्तमणुहवदि त्ति  
 सिद्धं पुव्विन्लादो एदस्सावलियव्वमहियत्तं । एवमेसो चुण्णिसुत्ताहिप्पाओ परूविदो,  
 तदहिप्पाएण असण्णिपच्छायदणेरइयस्स दुसमयाहियावलियव्वमंतरे सञ्चत्थेव वारसकसाय-  
 भय-दुगुंछाणं जहण्णसामित्तावलंणणे विरोहाभावादो । उच्चारणाहिप्पाएण पुण वारस-

§ ७३०. १०० । कितना अधिक है ? आवलिमात्र अधिक है ।

शंका—ऐसा क्यों है ?

समाधान—क्योंकि भय-जुगुप्सामें वारह कषायोंका जघन्य स्थितिसंक्रम करके एक  
 आवलिके बाद भय-जुगुप्साके जघन्य स्वामित्वके प्राप्त होनेका विधान है । यथा—असंज्ञीकी  
 अन्तिम अवस्थामें अपने योग्य सबसे जघन्य हतसमुत्पत्तिक स्थितिसत्कर्मके समान वन्ध करनेवाले  
 उसके जो कषायकी स्थितिका प्रमाण प्राप्त होता है वह संदृष्टिकी अपेक्षा इतना १०४ ग्रहण करना  
 चाहिए । अब इतनीमात्र कषायकी स्थितिको असंज्ञीकी अन्तिम आवलिके दूसरे समयमें बंधकर  
 बन्धावलिसे रहित इधे नारकी जीवके दूसरे विग्रहमे भय-जुगुप्सामें संक्रमित करता है, इसलिए  
 उस कालमें जो संक्रमित हुआ है वह एक आवलिकम कषायकी स्थितिके समान इतना  
 १०० होता है । पुनः नारकी जीव शरीरको ग्रहण कर इसमेंसे आवलिमात्रको गलाकर भय-  
 जुगुप्साके जघन्य स्वामित्वको प्राप्त होता है, इसलिए उस समयमें भय-जुगुप्साका जघन्य  
 स्थितिसंक्रम इतना ९६ होता है । परन्तु असंज्ञी पर्यायसे आकर उक्त नारकी जीवके दूसरे विग्रहसे  
 सम्बन्ध रखनेवाला सत्कर्मके समान कषायोंका जघन्य स्थितिवन्ध इतना १०४ होता है । पुनः  
 एक आवलिके गलनेके बाद इतना १०० होकर जघन्य स्वामित्वको प्राप्त होता है, इसलिए भय-  
 जुगुप्साके जघन्य स्थितिसंक्रमसे इसका एक आवलि अधिक जघन्य स्थितिसंक्रम सिद्ध हुआ ।  
 इस प्रकार यह चूषिंसूत्रका अभिप्राय कहा, क्योंकि उसके अभिप्रायानुसार असंज्ञी पर्यायसे आकर  
 नरकमें उत्पन्न हुए नारकी जीवके दो समय अधिक एक आवलिके भीतर सभी जगह वारह कषाय,  
 भय और जुगुप्साके जघन्य स्वामित्वका अवलम्बन करने पर कोई विरोध नहीं आता । परन्तु  
 उच्चारणाके अभिप्रायानुसार वारह कषाय, भय और जुगुप्साका जघन्य स्थितिसंक्रम नारकीयोंमें

१. ता०प्रतौ -मेत्तोहितो ( होइ ), आ०प्रतौ -मेत्तोहितो इति पाठः

कसाय-भय-दुग्गुंछाणं जहण्णाद्विदिसंक्रमो गेरहएसु सरिसो चेव होइ, विदियविग्गहे गल्लिद-  
सेसजहण्णाद्विदिसंक्रमं कसाय-णोकसायाणं समाणभावेणावड्ढिदं घेत्तूण पुणो वि  
आवलिपयेत्तकालं गालिय दुसमथाहियावलिपयेरइयम्मि जहण्णसामित्तिवाणादो ।

ॐ मिच्छत्तस्स जहण्णद्विदिसंक्रमो विसेसाहिओ ।

१ ७३१. कुदो ? पल्लिदोवमसंसेज्जमागूणसागरोवमसहस्ससच्चदुसत्तभागमेत्तकसाय-  
जहण्णाद्विदिसंक्रमादो किंचूणसागरोवमसहस्समेत्तमिच्छत्तजहण्णद्विदिसंक्रमस्स विसेसा-  
हियत्तदंसाणादो । एवमेसो मुत्ताणुसारेण गिरथोघो परुविदो । एत्तो उच्चारणाहिप्पाय-  
मस्सिल्लण वचहस्सामो । तं जहा—

१ ७३२. गेरहएसु सव्वत्थोवो सम्मत्तं जहं द्विसंक्रं । जद्विदिसं० असं० गुणो ।  
अणंताणुं० जहं द्विदिसंक्रं० असंसे० गुणो । सम्मामिं० जहं० अरंसे० गुणो ।  
पुरिसवेदं० जहं द्विदिसं० असंसे० गुणो । इत्थिवेदं० जहं द्विदिसं० विसेसाहिओ ।  
हस्स-रइं० जहं द्विदिसं० विसे० । अरदि-सोगं० जहं० विसेसां० । णनुंसं० जहं० विसे० ।  
वारसकं०-भय-दुग्गुंछाणं जहं द्विदिसंक्रं० विसे० । मिच्छत्तं० जहं द्विदिसं० विसेसाहिओ त्ति ।

१ ७३३. एत्तुवउज्जंतयमद्वप्पावहृष्टं । तं जहा—सव्वत्थोवा पुरिसवेदचंधगद्धा २ ।  
इत्थिवेदचंधगद्धा संखेजगुणा ४ । हस्स-रइचंधगद्धा मंखेजगुणा १६ । अरदि-सोगचंधगद्धा

समान ही होता है, क्योंकि कपायों और नोरुपायोंके गल कर शेष रहं जघन्य स्थितिसंक्रमको  
समानरूपसे अवस्थित प्रकृष्ट कर तथा फिर एक आवलि कालको गलाकर नारकीके दो समय  
अधिक एक आवलि कालके अन्तमें जघन्य स्वागित्तका विधान किया है ।

\* उससे मिथ्यात्वका जघन्य स्थितिमंक्रम विशेष अधिक है ।

१ ७३१. क्योंकि एक हजार सागरके पत्थके संख्यातवें भाग कम चार भागप्रमाण  
कपायोंके जघन्य स्थितिसंक्रमसे मिथ्यात्वका कुछ कम एक हजार सागरप्रमाण जघन्य स्थितिसंक्रम  
विशेष अधिक देखा जाता है । इस प्रकार यह सूत्रके अनुसार सामान्यसे नारकियोंमें जघन्य स्थिति-  
संक्रमके अलवहृष्टका कथन किया । अब उच्चारणके अभिप्रायानुसार इसे बतलाते हैं । यथा—

१ ७३२. नारकियोंमें सम्यक्त्वका जघन्य स्थितिसंक्रम सबसे स्तोक है । उससे यत्स्थिति-  
संक्रम असंख्यातगुणा है । उससे अनन्तानुबन्धीचतुष्कका जघन्य स्थितिसंक्रम असंख्यातगुणा  
है । उससे मन्थमिध्यात्वका जघन्य स्थितिसंक्रम असंख्यातगुणा है । उससे पुरुषवेदका जघन्य  
स्थितिसंक्रम असंख्यातगुणा है । उससे स्त्रीवेदका जघन्य स्थितिसंक्रम विशेष अधिक है । उससे  
हास्य-रतिका जघन्य स्थितिसंक्रम विशेष अधिक है । उससे अरति-शोकका जघन्य स्थितिसंक्रम  
विशेष अधिक है । उससे नपुंसकवेदका जघन्य स्थितिसंक्रम विशेष अधिक है । उससे वारह  
कपाय, भय और जुगुप्साका जघन्य स्थितिसंक्रम विशेष अधिक है । उससे मिथ्यात्वका जघन्य  
स्थितिसंक्रम विशेष अधिक है ।

१ ७३३. अब यहाँ उपयुक्त काल अल्पवहुत्वको बतलाते हैं । यथा—पुरुषवेदका बन्धककाल  
सबसे स्तोक है २ । उससे स्त्रीवेदका बन्धककाल संख्यातगुणा है ४ । उससे हास्य-रतिका बन्धककाल  
संख्यातगुणा है १६ । उससे अरति-शोकका बन्धककाल संख्यातगुणा है ४८ । उससे नपुंसकवेदका

संखेजगुणा ४८ । णवुंसयवेदबंधगद्धा विसेसाहिया ५८ । एदमप्पाबहुअं साहणं काऊणा-  
णंतरपरुविदमुच्चरणप्पाबहुअं सकारणमणुगंतव्वं । एवं णिरओघो ससत्तो । एवं केव  
पढमाए पुढवीए । एत्तो विदियपुढवीए सेसपुढवीणं देसामासयभावेणप्पाबहुअपरुवणट्ट-  
मुत्तरसुत्तकलावमाह—

❖ विदिचाए सव्वत्थोवो अणंताणुबंधीणं जहणणट्टिदिसंकमो ।

§ ७३४. तथ विसंजोयणाचरिमफालीए करणपरिणामेहि लद्धघादावसेसिदाए  
सव्वत्थोवचाविरोहादो ।

❖ सम्मत्तस्स जहणणट्टिदिसंकमो असंखेज्जगुणो ।

§ ७३५. कुदो ? उव्वेल्लणचरिमफालीए लद्धजहणणभावचादो ।

❖ सम्मामिच्छत्तस्स जहणणट्टिदिसंकमो विसेसाहिओ ।

§ ७३६. दोण्हं पि उव्वेल्लणाचरिमफालीए जहणणसामित्तं जादं । किंतु समच-  
चरिमुव्वेल्लणफालिं पेक्खिऊण सम्मामिच्छत्तुव्वेल्लणचरिमफाली विसेसाहिया । कारणं  
पढमदाए उव्वेल्लमाणो मिच्छाइट्ठी सव्वत्थ सम्मामिच्छत्तुव्वेल्लणकंडयादो सम्मत्तस्स  
विसेसाहियमेव ट्टिदिखंडयघादं करेइ जाव सम्मत्तमुव्वेल्लिदं ति । पुणो सम्मामिच्छत्त-  
मुव्वेल्लेमाणो सम्मत्तचरिमफालीदो विसेसाहियकमेण ट्टिदिखंडयमागाएदि जाव  
सगचरिमट्टिदिखंडयादो ति । तदो एदमेत्थ विसेसाहियत्ते कारणं ।

बन्धककाल विशेष अधिक है ५८ । इस अल्पबहुत्वको साधन करके अनन्तर कहे गये उच्चारणा  
अल्पबहुत्वको सकारण जानना चाहिए । इस प्रकार सामान्य नारकियोंमें अल्पबहुत्व समाप्त हुआ ।  
इसी प्रकार पहिली पृथिवीमें जानना चाहिए । आगे दूसरी पृथिवीमें शेष पृथिवियोंके देशार्पणकल्पसे  
अल्पबहुत्वका कथन करनेके लिए आगेके सूत्रकलापको कहते हैं—

❖ दूसरी पृथिवीमें अनन्तानुबन्धियोंका जघन्य स्थितिसंक्रम सबसे स्तोक है ।

§ ७३७. क्योंकि करणपरिणामोंके द्वारा घात होनेसे शेष बची हुई विसंयोजनासम्यग्धी  
अन्तिम फालिके सबसे स्तोक होनेमें कोई विरोध नहीं है ।

❖ उससे सम्यक्त्वका जघन्य स्थितिसंक्रम असंख्यातगुणा है ।

§ ७३८. क्योंकि उद्वेलनाकी अन्तिम फालिमे इसका जघन्यपना प्राप्त होता है ।

❖ उससे सम्यग्मिथ्यात्वका जघन्य स्थितिसंक्रम विशेष अधिक है ।

§ ७३९. क्योंकि यद्यपि दोनोंका ही उद्वेलनाकी अन्तिम फालिमे जघन्य स्वामित्व प्राप्त  
हुआ है फिर भी सम्यक्त्वकी अन्तिम उद्वेलनाफालिको देखते हुए सम्यग्मिथ्यात्वकी अन्तिम  
उद्वेलनाफालि विशेष अधिक है । कारण कि प्रथम अवस्थामें उद्वेलना करनेवाला मिथ्यादृष्टि जीव  
सम्यक्त्वकी उद्वेलना होने तक सर्वत्र सम्यग्मिथ्यात्वके उद्वेलनाकाण्डकसे सम्यक्त्वका स्थिति-  
काण्डकघात विशेष अधिक ही करता है । फिर सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वेलना करता हुआ अपने अन्तिम  
स्थितिकाण्डकके प्राप्त होने तक सम्यक्त्वकी अन्तिम फालिसे विशेष अधिकके क्रमसे स्थिति-  
काण्डकको भक्षण करता है । इसलिए यह यहाँ पर विशेष अधिक होनेका कारण है ।

❊ वारसकसायणवसोकसायाणं जहणणडिदिसंक्रमो तुल्लो असंखेज्जगुणो ।

§ ७३७. कुदो ? अंतोकोडाकोडीपमाणत्तादो ।

❊ मिच्छत्तस्स जहणणडिदिसंक्रमो विसेसाहिओ ।

§ ७३८. जइ वि सामित्तमेदो पत्थि तो वि मिच्छत्तजहणणडिदिसंक्रमस्स कसाय-  
जहणणडिदिसंक्रमादो विसेसाहियत्तमेत्थ ण विरुद्धं, चालीस०पडिभागीयंतोकोडाकोडीदो  
सत्तरि०पडिभागीयंतोकोडाकोडोए तोहि सत्तभागोहिं अहियत्तदंसणादो । एवं सेसपुढवीसु ।  
पवरि सत्तमाए सच्चत्थोवो अणंताणु०४ जहणणडिदिसंक्रमो । सम्म०. जह०डिदिसंक्र०  
असंसे०गुणो । सम्मामि० जह०डिदिसं० विसे० । पुरिसवेद० जह०डिदिसं० असंखेज्ज-  
गुणो । इत्थिवेद० जह०डिदिसं० विसे० । इस्स-रह० जह०डिदिसं० विसे० । णवुंसय-  
वेद० जह०डिदिसं० विसे० । अरदि-सोग० जह०डिदिसं० विसे० । उचारणाहिप्पाएण  
अरह-सोगाणमुवरि णवुंस० जह०डिदिसं० विसेसाहिओ वत्तन्वं । तदो भय-दुगुच्छं जह०-  
डिदिसंक्र० विसे० । वारसकं जह०डिदिसं० विसे० । मिच्छ० जह०डिदिसं० विसे० ।

§ ७३९. एत्तो सेसगईणमप्पावहुअमुचारणाणुसारेण वत्तइस्सामो । तं जहा—  
तिरिक्खा० पारयभंगो । पवरि णवुंसयवेदस्सुवरि भय-दुगुच्छं विसे० । वारसकं विसे० ।

❊ उससे वारह कपाय और नौ नोकपायोंका जघन्य स्थितिसंक्रम परस्पर तुल्य होकर भी असंख्यातगुणा है ।

§ ७३७. क्योंकि यह अन्तःकोडाकोडीप्रमाण है ।

❊ उससे मिथ्यात्वका जघन्य स्थितिसंक्रम विशेष अधिक है ।

§ ७३८. यद्यपि समाहित्वभेद नहीं है तो भी व.पायोंके जघन्य स्थितिसंक्रमसे मिथ्यात्वके जघन्य स्थितिसंक्रमके यहाँपर विशेष अधिक होनेमें विरोध नहीं आता, क्योंकि चालीस कोडाकोडीके प्रतिभागरूपसे प्राप्त हुए अन्तःकोडाकोडीसे सत्तरुंकोडाकोडीके प्रतिभागरूपसे प्राप्त हुए अन्तःकोडाकोडी तीन-सातभाग अधिक देखा जाता है । इसी प्रकार जेप पृथिवियोंमें जानना चाहिए । इतनी विशेषता है कि सातवीं पृथिवीमें अनन्तानुबन्धीचतुष्करा जघन्य स्थितिसंक्रम सबसे स्तोक है । उससे सन्यक्त्वका जघन्य स्थितिसंक्रम असंख्यातगुणा है । उससे सम्यग्मिथ्यात्वका जघन्य स्थितिसंक्रम विशेष अधिक है । उससे पुरुषवेदका जघन्य स्थितिसंक्रम असंख्यातगुणा है । उससे स्त्रीवेदका जघन्य स्थितिसंक्रम विशेष अधिक है । उससे हास्य-रतिका जघन्य स्थितिसंक्रम विशेष अधिक है । उससे नपुंसकवेदका जघन्य स्थितिसंक्रम विशेष अधिक है । उससे अति-शोकका जघन्य स्थितिसंक्रम विशेष अधिक है । उचारणके अभिप्रायसे अरति-शोकके ऊपर नपुंसकवेदका जघन्य स्थितिसंक्रम विशेष अधिक है ऐसा कहना चाहिए । उससे भय-जुगुप्साका जघन्य स्थितिसंक्रम विशेष अधिक है । उससे वारह कपायोंका जघन्य स्थितिसंक्रम विशेष अधिक है । उससे मिथ्यात्वका जघन्य स्थितिसंक्रम विशेष अधिक है ।

§ ७३९. आगे शेष गतियोंके अल्पवहुत्वको उचारणके अनुसार घतलाते हैं । यथा—  
तिर्यञ्चोका भङ्ग नारिकोंके समान है । इतनी विशेषता है कि नपुंसकवेदके ऊपर भय-जुगुप्साका जघन्य स्थितिसंक्रम विशेष अधिक है । उससे वारह कपायोंका जघन्य स्थितिसंक्रम विशेष अधिक



मिच्छ० विसे० । पंचिदियतिरिक्ख-पंचि०तिरि०पज्ज० णारयभंगो । पंचिदियतिरिक्ख-  
जोणिणीसु सव्वत्थोवो अणंताणु०४ जह०ट्टिदिसं० । सम्म० जह० ट्टिदिसं० असंखे०-  
गुणो । सम्मामि० जह०ट्टिदिसं० विसेसा० । पुरिसवेद० जह० असंखे०गुणो । सेसं  
णारयभंगो । पंचि०तिरि०अपज्ज०-मणुसअपज्ज० सव्वत्थोवो सम्मत्त० जह०ट्टिदिसं० ;  
सम्मामि० जह०ट्टिदिसं० विसे० । पुरिसवेद० जह०ट्टिदिसं० असंखे०गुणो । इत्थि-  
वेद० जह०ट्टिदिसं० विसेसा० । हस्स-रइ० विसे० । अरइ-सोग० विसे० । णवुंसय-  
वेद० जह०ट्टिदिसं० विसे० । सोलसक०-भय-दुगुच्छ० जह० विसे० । मिच्छ० जह०-  
ट्टिदिसं० विसे० ।

§ ७४०. मणुस-मणुसपज्ज० ओषं । मणुसिणीसु सव्वत्थोवो सम्म०-लोह०-  
संज० जह०ट्टिदिसं० । जट्टिदिसं० असंखे०गुणो । मायासंज० जह०ट्टिदिसं०  
संखेज्जगुणो' । जट्टिदिसं० विसे० । माणसंजल० जह०ट्टिदिसं० विसे० । जट्टिदिसं०  
विसे० । कोहसंज० जह०ट्टिदिसं० विसे० । जट्टिदि० विसे० । पुरिसवेद-छण्णोकसा०  
जह०ट्टिदिसं० तुल्लो संखेज्जगुणो । इत्थिवेद० जह०ट्टिदिसं० असंखे०गुणो । णउंसयवेद०  
जह०ट्टिदिसं० असंखे०गुणो । अट्टकसाय० जह०ट्टिदिसं० असंखे०गुणो । सम्मामि०

है । उससे मिध्यात्वका जघन्य स्थितिसंक्रम विशेष अधिक है । पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च और पञ्चेन्द्रिय  
तिर्यञ्च पर्याप्तकोंमें नारकियोंके समान भंग है । पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च योनिनियोंमें अनन्तानुबन्धीचतुष्कका  
जघन्य स्थितिसंक्रम सबसे स्तोक है । उससे सम्यक्त्वका जघन्य स्थितिसंक्रम असंख्यातगुणा है ।  
उससे सम्यग्मिध्यात्वका जघन्य स्थितिसंक्रम विशेष अधिक है । उससे पुरुषवेदका जघन्य स्थितिसंक्रम  
असंख्यातगुणा है । शेष भंग नारकियोंके समान है । पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्त और मनुष्य  
अपर्याप्तकोंमें सम्यक्त्वका जघन्य स्थितिसंक्रम सबसे स्तोक है । उससे सम्यग्मिध्यात्वका जघन्य  
स्थितिसंक्रम विशेष अधिक है । उससे पुरुषवेदका जघन्य स्थितिसंक्रम असंख्यातगुणा है । उससे  
स्त्रीवेदका जघन्य स्थितिसंक्रम विशेष अधिक है । उससे हाथ्य-रतिका जघन्य स्थितिसंक्रम विशेष  
अधिक है । उससे अरति-शोवका जघन्य स्थितिसंक्रम विशेष अधिक है । उससे नपुंसकवेदका  
जघन्य स्थितिसंक्रम विशेष अधिक है । उससे सोलह कषाय, भय और जुगुप्साका जघन्य स्थिति-  
संक्रम विशेष अधिक है । उससे मिध्यात्वका जघन्य स्थितिसंक्रम विशेष अधिक है ।

§ ७४१. मनुष्य और मनुष्य पर्याप्तकोंमें श्लोकके समान भंग है । मनुष्यनियोंमें सम्यक्त्व  
और लोमसंवलनका जघन्य स्थितिसंक्रम सबसे स्तोक है । उससे यत्स्थितिसंक्रम असंख्यातगुणा  
है । उससे मायाका जघन्य स्थितिसंक्रम संख्यातगुणा है । उससे यत्स्थिति संक्रम विशेष अधिक है ।  
उससे मानका जघन्य स्थितिसंक्रम विशेष अधिक है । उससे यत्स्थितिसंक्रम विशेष अधिक है ।  
उससे क्रोधका जघन्य स्थितिसंक्रम विशेष अधिक है । उससे यत्स्थितिसंक्रम विशेष अधिक है ।  
उससे पुरुषवेद और छह नोकपायोंका जघन्य स्थितिसंक्रम परस्पर तुल्य होकर संख्यातगुणा है ।  
उससे स्त्रीवेदका जघन्य स्थितिसंक्रम असंख्यातगुणा है । उससे नपुंसकवेदका जघन्य स्थितिसंक्रम  
असंख्यातगुणा है । उससे आठ कषायोंका जघन्य स्थितिसंक्रम असंख्यातगुणा है । उससे

जह०द्विदिसं० असंखे०गुणो । मिच्छ० जह० असंखे०गुणो । अणंताणु०४ जह०द्विदिसं  
असंखे०गुणो ।

§ ७४१. देवाणं पारयभंगो । भवण०-वाण०-सञ्चत्योवो अणंताणु०४ जह०-  
द्विदिसं० । सम्म० जह०द्विदिसं० असंखे०गुणो । सम्मामि० जह०द्विदिसं विसे० ।  
पुरिसवेद० जह०द्विदिसं० असंखे०गुणो । सेमं देवोपं । जोदिसि० विदियपुढवि-  
भंगो । सोहम्मादि जाव णवगेवज्जा त्ति मञ्चत्योवो सम्म० जह०द्विदिसं० ।  
जद्विदिसं० असंखे०गुणो । अणंताणु०४ जह०द्विदिसं० असंखे०गुणो । सम्मामि०  
जह०द्विदिसं० असंखे०गुणो । वारसक०-णवणो०क० जह०द्विदिसं० असंखे०गुणो ।  
मिच्छ० जह०द्विदिसं० असंखे०गुणो । अणुदिसादि सञ्चट्टे त्ति सञ्चत्योवो सम्म० जह०-  
द्विदिसं० । जद्विदिसं० असंखे०गुणो । अणंताणु०४ जह०द्विदिसं० असंखे०गुणो ।  
वारसक०-णवणो०क० जह०द्विदिसं० असंखे०गुणो । मिच्छ०-सम्मामि० जह०द्विदिसं०  
गरिसो गंरे०गुणो । एवं जाव० ।

एवं चउवीममणिओगहाणि समत्ताणि ।

⊗ भुजगारसंकमस्स अट्टपदं काऊण सामित्तं काय०यं ।

सम्यग्मिथ्यात्वज्ञ जघन्य स्थितिसंकम असंख्यातगुणा हे । उससे मिथ्यात्वका जघन्य स्थितिसंकम  
असंख्यातगुणा हे । उसमे अनन्तानुबन्धीचतुष्कज्ञ जघन्य स्थितिसंकम असंख्यातगुणा हे ।

§ ७४१. देवोंमें नारतियोंके समान भंग है । भवनवासी और व्यन्तर देवोंमें अनन्तानुबन्धी-  
चतुष्कज्ञ जघन्य स्थितिसंकम सबमे स्तोक है । उसमे सम्यक्त्वका जघन्य स्थितिसंकम असंख्यात-  
गुणा है । उसमे सम्यग्मिथ्यात्वज्ञ जघन्य स्थितिसंकम विशेष अधिक है । उससे पुरुषवेदका  
जघन्य स्थितिसंकम असंख्यातगुणा है । शेष भंग नामान्य देवोंके समान है । ज्योतिषियोंमें  
दुमरी प्रथिवीके समान भंग है । सर्वग कल्पमे लेकर नौ प्रैथेयकणके देवोंमें सम्यक्त्वका जघन्य  
स्थितिसंकम सबमे स्तोक है । उससे यत्स्थितिसंकम असंख्यातगुणा है । उससे अनन्तानुबन्धी-  
चतुष्कज्ञ जघन्य स्थितिसंकम असंख्यातगुणा है । उसमे सम्यग्मिथ्यात्वका जघन्य स्थितिसंकम  
असंख्यातगुणा है । उससे बारह कथायों और नौ नोरुपायोंका जघन्य स्थितिसंकम असंख्यातगुणा  
है । उसमे मिथ्यात्वका जघन्य स्थितिसंकम संख्यातगुणा है । अनुविशसे लेकर सर्वाधिसिद्धितकके  
देवोंमें सम्यक्त्वका जघन्य स्थितिसंकम सबमे स्तोक है । उससे यत्स्थितिसंकम  
असंख्यातगुणा है । उससे अनन्तानुबन्धीचतुष्कका जघन्य स्थितिसंकम असंख्यातगुणा है ।  
उससे बारह कथायों और नौ नोरुपायोंका जघन्य स्थितिसंकम असंख्यातगुणा है । उससे मिथ्यात्व  
और सम्यग्मिथ्यात्वका जघन्य स्थितिसंकम परस्पर सहश होकर संख्यातगुणा है । इसी प्रकार  
अन्तहारक मार्गणा तक जानना चाहिये ।

इम प्रकार चौबीस अनुयोगद्वार समाप्त हुए ।

\* भुजगारसंकमका अर्थपद करके स्वामित्व करना चाहिए ।

§ ७४२. एत्तो भुजगारपरूवणां पचावसरो । तत्थ ताव अट्टपदं कायच्चं, अपणहा तस्सरुवविसयणिण्णयाणुप्पत्तीमे । किं तमट्टपदं ? वुच्चदे—अणंतरोसक्काविदविदिकंत-समए, अप्पदरसंकमादो एण्हिं—बहुवयरं संकामेइ त्ति एसो भुजगारसंकमो । अणंत रुस्तक्काविदविदिकंतसमए बहुवयरसंकमादो एण्हि थोवयराओ ठिदीओ संकामेइ त्ति एस अप्पयरसंकमो । तत्तियं तत्तियं चैव संकामेइ त्ति एसो अवट्टिदसंकमो । अणंतरवदिकंतसमए असंकमादो संकामेदि त्ति एसो अवत्तवसंकमो । एदेणट्टपदेण भुजगारअप्पदर-अवट्टिदा-वत्तवसंकामयाणं परूवणा भुजगारसंकमो त्ति वुच्चइ । संपहि भुजगारपरूवणाए इमाणि तेरस अणियोगदाराणि समुक्कित्तणादीणि अप्पावहुअपजंताणि । तत्थ समुक्कित्तणं कारुण पच्छा सामित्तं कायवमिदि सुत्ताहिप्पाओ, असमुक्कित्तिदाणं भुजगारादीणं सामित्तादि-विहाणे असंबद्धत्तप्पसंगादो । सा च समुक्कित्तणा ओघादेसभेदेण दुविहा । ओघेण ताव मिच्छत्तस्स अत्थि भुजगार-अप्प०अवट्टिदसंकासगा । सम्म०-सम्मामि०-सोलसक०-णवणोक० अत्थि भुज०-अप्प०-अवट्टि०-अवत्त०संका० । एवं मणुसतिए । आदेसेण सच्चमग्गाणासु ट्टिदिविहत्तिभंगो । एवं समुक्कित्तिदाणं भुजगारादिपदाणं सामित्तपरूवणट्ट-मुत्तरसुत्तावयारो—

❀ मिच्छत्तस्स भुजगार०-अप्पदर-अवट्टिसंकासगा को होदि ? अएणदरो ।

§ ७४२. आगे भुजगारका कथन अवसर प्राप्त है । उसमें सर्वप्रथम अर्थपद करना चाहिए, अन्यथा उसका स्वरूपविषयक निर्णय नहीं बन सकता । वह अर्थपद क्या है ? कहते हैं—अनन्तर पूर्व अतीत समयमें हुए अल्पतर संक्रमसे वर्तमान समयमें बहुतरका संक्रम करता है यह भुजगारसंक्रम है । अनन्तर पूर्व अतीत समयमें हुए बहुतर संक्रमसे वर्तमान समयमें स्तोक्तर स्थितियोंका संक्रम करता है यह अल्पतर संक्रम है । उतनी ही उतनी ही स्थितियोंका संक्रम करता है यह अवस्थितसंक्रम है तथा अनन्तर अतीत समयमें हुए असंकमसे वर्तमान समयमें संक्रम करता है यह अवक्तव्यसंक्रम है । इस अर्थपदके अनुसार भुजगार, अल्पतर, अवस्थित और अवक्तव्यसंक्रामकोंकी प्ररूपणा भुजगारसंकम कही जाती है । अब भुजगारसंकममें समुत्कीर्तनासे लेकर अल्पबहुत्व तक ये त्रेह अनुयोगद्वार होते हैं । उनमेंसे समुत्कीर्तनाको करके बादमें स्वामित्व करना चाहिए यह इस सूत्रका अभिप्राय है, क्योंकि समुत्कीर्तना किये बिना भुजगार आदिकके स्वामित्वका विधान करने पर असम्बद्धपनेका प्रसंग आता है । वह समुत्कीर्तना ओघ और आदेशके भेदसे दो प्रकारकी है । ओघसे मिथ्यात्वके भुजगार, अल्पतर और अवस्थितपदके संक्रामक जीव हैं । सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व, सोलह कषाय और नौ नोकषायोंके भुजगार, अल्पतर, अवस्थित और अवक्तव्यपदके संक्रामक जीव हैं । इसी प्रकार मनुष्यत्रिकमें जानना चाहिए । आदेशसे सब मार्गशास्त्रोंमें स्थितिविभक्तिके समान भंग है । इस प्रकार जिनकी समुत्कीर्तना की है ऐसे भुजगार आदि पदोंके स्वामित्वका कथन करनेके लिए आगेके सूत्रका अवतार करते हैं—

❀ मिथ्यात्वके भुजगार, अल्पतर और अवस्थितपदका संक्रामक कौन जीव है ? अन्यतर जीव है ।

१ ७४३. एत्यण्णदरणिहेसेण णेरइओ तिरिक्खो मणुस्सो देवो वा त्ति गहियव्वं, सव्वत्थ सामित्तस्साविरोहादो । ओगाहणादिविसेसपडिसेहट्टं च अण्णदरणिहेसो । एत्थ भुजगारावद्विदसंक्रामगो मिच्छाइड्डी चेव अप्पदरसंक्रामगो पुण अण्णदरो मिच्छाइड्डी सम्माइड्डी वा होइ त्ति घेत्तव्वं ।

❧ अवत्तव्वसंक्रामओ णत्थि ।

१ ७४४. असंक्रमादो संक्रमो अवत्तव्वसंक्रमो णाम । ण च मिच्छत्तस्स तारिस-संक्रमसंभवो, उव्वतंतकसायस्स वि तस्सोकट्टणापरपयडिसंक्रमाणमतियत्तदंसणादो ।

❧ एवं सेसाणं पयडीणं णवरि अवत्तव्वया अत्थि ।

१ ७४५. एवं सेसाणं पि सम्मत्तादिपयडीणं भुजगारादिविसयं सामित्तमणुगंतव्वं, अण्णदरसामिसंबंधं पडि मिच्छत्तपरूवणादो विसेसाभावादो । णवरि सम्मत्त-सम्मा-मिच्छत्ताणं भुजगारस्स अण्णदरो सम्माइड्डी, अप्पदरस्स मिच्छाइड्डी सम्माइड्डी वा, अवद्विदस्स पुव्वुप्पणादो सम्मत्तादो समयुत्तरमिच्छत्तसंतकम्मियविदियसमयसम्माइड्डी सामी होइ त्ति विसेसो जाणियव्वो । अण्णं च अवत्तव्वया अत्थि, सम्मत्त-सम्माभिच्छत्ताण-मणादियमिच्छाइड्डीणा उव्वेल्लिदत्तदुभयसंतकम्मिएण वा सम्मत्ते पडिवण्णे

१ ७४३. यहाँ सूत्रमें 'अन्यतर' पदके निर्देश द्वारा नारकी, तिर्यञ्च, मनुष्य अथवा देव मिथ्यात्वके उक्त पदोंका संक्रामक है ऐसा ग्रहण करना चाहिए, क्योंकि सर्वत्र स्वामित्वके प्राप्त होनेमें विरोधका अभाव है। अवगाहना आदि विशेषका निषेध करनेके लिए 'अन्यतर' पदका निर्देश किया है। यहाँ पर भुजगार और अवस्थितपदका संक्रामक मिथ्यादृष्टि ही होता है। परन्तु अन्तरपदका संक्रामक मिथ्यादृष्टि और सम्यग्दृष्टि दोनों होते हैं ऐसा ग्रहण करना चाहिए।

\* मिथ्यात्वके अवक्तव्यपदका संक्रामक नहीं है।

१ ७४४. असंक्रमसे संक्रम होना अवक्तव्यसंक्रम है। परन्तु मिथ्यात्वका इस प्रकारका संक्रम सम्भव नहीं है, क्योंकि उपशान्तकपाय जीवके भी मिथ्यात्वके अपकर्षण और परप्रकृति संक्रमका अस्तित्व देखा जाता है।

\* इसी प्रकार शेष प्रकृतियोंका स्वामित्व है। किन्तु इतनी विशेषता है कि इनके अवक्तव्यसंक्रमवाले जीव हैं।

१ ७४५. इसी प्रकार शेष सम्यक्त्व आदि प्रकृतियोंका भी भुजगार आदि पदविषयक स्वामित्व जानना चाहिए, क्योंकि अन्यतर जीव स्वामी है इस अपेक्षासे मिथ्यात्वकी प्ररूपणासे इस प्ररूपणमें कोई भेद नहीं है। इतनी विशेषता है कि सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके भुजगार-पदका अन्यतर सम्यग्दृष्टि जीव स्वामी है। अल्पतरपदका मिथ्यादृष्टि और सम्यग्दृष्टि जीव स्वामी है। तथा अवस्थितपदका पूर्वमें उत्पन्न हुए सम्यक्त्वसे एक समय अधिक मिथ्यात्वका सत्कर्मवाला द्वितीय समयमें स्थित सम्यग्दृष्टि जीव स्वामी है इतना विशेष यहाँ जानना चाहिए। इतना और है कि इनके अवक्तव्य पदवाले जीव हैं, क्योंकि अनादि मिथ्यादृष्टि जीवोंके अथवा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व इन दोनों प्रकृतियोंके सत्कर्मकी उद्वेलना कर चुके जीवोंके सम्यक्त्वको प्राप्त होनेपर

विदियसमयम्मि तदुवलंभादो । अणंताणुबंधीणं पि विसंजोयणापुव्वसंजोगे अवसेसाणं च सव्वोवसामणादो परिवदमाणगस्स देवस्स वा पढमसमयसंक्रामगस्स अवत्तव्वसंक्रम-संभवादो । एवमोषेण सामित्तरूवणा कया ।

§ ७४६. आदेसेण मणुसतिए ओधमंगो । णवरि वारसक०-णवणोकसाय-अवत्तव्वपढमसमयदेवालावो ण कायव्वो । सेससव्वमभणासु द्विदिविहत्तिमंगो ।

❀ कालो ।

§ ७४७. अहियारसंभालणसुत्तमेदं ।

❀ मिच्छत्तस्स भुजगारसंक्रामगो केवचिरं कालादो होदि ?

§ ७४८. सुगमं ।

❀ जहणणेण एयसमओ, उक्कस्सेण चत्तारि समया ।

§ ७४९. एत्थ ताव जहणणकालपरूवणा कीरदे—एगो द्विदिसंतकम्मस्सुवरि एयसमयं बंधवुट्ठीए परिणदो विदियादिसमएसु अवद्विदमप्पयरं वा बंधिय बंधावलि्यादीदं संक्रामिय तदणंतरसमए अवद्विदमप्पदरं वा पडिवणो लद्धो मिच्छत्तद्विदीए भुजगार-संक्रामयस्स जहणणेणयसमओ, उक्क० चदुसमयपरूवणा । तं जहा—एहंदिओ अद्दाख्यसंकिंलेसक्खएहिं दोसु समएसु भुजगारबंधं कादूण तदो से काले सण्णि-

दूसरे समयमें सन्धक्व और सन्धगिभ्यात्वका अवक्तव्यसंक्रम देखा जाता है। अनन्तानुबन्धियोंका भी विसंयोजनापूर्वक संयोग होने पर तथा अवशेष प्रकृतियोंका सर्वोपशामनासे गिरनेवाले जीवके या प्रथम समयमें संक्रम करनेवाले देवके अवक्तव्यसंक्रम सम्भव है। इस प्रकार ओघसे स्वामित्वकी प्ररूपणा की।

§ ७४६. आदेशसे मनुष्यत्रिकमें ओघके समान भंग है। किन्तु इतनी विशेषता है कि इनमें बारह कपाय और नौ नोकपायोंका अवक्तव्यपद प्रथम समयवर्ती देवके होता है यह आलाप नहीं करना चाहिये। शेष सब मार्गणाओंमें स्थितिविभक्तिके समान भंग है।

❀ कालका अधिकार है।

§ ७४७. अधिकारकी सन्हाल करनेवाला यह सूत्र है।

❀ मिथ्यात्वके भुजगारसंक्रामकका कितना काल है।

§ ७४८. यह सूत्र सुगम है।

❀ जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल चार समय है।

§ ७४९. यहाँ सर्वप्रथम जघन्य कालकी प्ररूपणा करते हैं—कोई एक जीव स्थितिसंक्रमके ऊपर एक समय तक बन्धकी वृद्धिसे परिणत हुआ तथा द्वितीयादि समयोंमें अवस्थित या अल्पतर बन्ध करके बन्धावलिके बाद भुजगारसंक्रम के तदनन्तर समयमें अवस्थित या अल्पतरसंक्रमको प्राप्त हुआ। इस प्रकार मिथ्यात्वकी स्थितिके भुजगारसंक्रामकका जघन्य काल एक समय प्राप्त हुआ। अब उत्कृष्ट काल चार समयकी प्ररूपणा करते हैं। यथा—किसी एकेन्द्रिय जीवने अद्दाख्य और संक्लेशख्यसे दो समय तक भुजगारबन्ध किया। तदनन्तर अगले समयमें संधी पञ्चेन्द्रियोंमें

पंचिदिएसुप्पज्जमाणो विग्गहगदीए एगसमयअसण्णिट्ठिदिं वंधिऊण तदणंतरसमए सरीरं घेचूण सण्णिट्ठिदिं पवडो। एवं चदुमु समणु णिरंतं भुजगारबंधं काटण पुणो तेणेव कमेण वंधावलियादिंरंतं संकामेमाणस्स लद्धा मिच्छत्तभुजगारसंक्रमस्स उक्कस्सेण चत्तारि समया ।

❊ अप्पदरसंक्रामगो केचच्चिरं कालादो होदि ?

§ ७५.२. सुगमं ।

❊ जहण्णेणयसमओ, उक्कस्सेण तेवट्ठिसागरोवमसदं सादिरेयं ।

§ ७५.१. गन्थ ताव एयममओ उचदे। तं कथं ? भुजगारमवट्ठिदं वा वंधमाणस्स एयममयमप्पदरं वंधिय विदिदियनमए भुजगारवट्ठिदाणमण्णदरबंधेण परिणमिय वंधावलिय-वट्ठिकमे वंधाणुमाणेव संक्रमेमाणयम्म अप्पदरकालो जहण्णेणयममयमेत्तो होइ । सादिरेयनेवट्ठिसागरोवमसदमेत्तुक्कस्सकालाणुगममिदाणिं कम्मामो । तं जहा—एवो तिरिविखो मणुम्मो वा मिच्छाट्ठो संतकम्मस्स हेट्ठो वंधमाणो मच्चुक्कम्मंतोमुहुत्तमेत्त-कालमप्पदरसंक्रमं काटण पुणो तिपल्लिट्ठोचमिणुसुववणो । तत्थ वि अप्पदरमेव मिच्छत्त-संक्रममणुपालिय अंतोमुहुत्तावमेसे मगाउए पटमगम्मचं पटिवण्णो अंतोमुहुत्तमप्पदरमेव संक्रामेदि । कथमुचममसम्मचं पटिवण्णम्म अप्पदरसंक्रामो, तफाल्लभंतरे मच्चन्धेवावट्ठिद-सत्त्वेण मिच्छत्तणिमेयट्ठिदीणं संक्रामोवलंभाटो नि ? सच्चमेदं, णित्सेयपहाणत्ते समवलंविण्ण

उत्तर होकर विपश्चिन्निं एक समय तक अग्रशीपी स्थितिका बन्ध किया । पुनः तदनन्तर समनमें शरीरको प्रत्यक्ष संधीवी स्थितिमा बन्ध किया । उन प्रकार चार समय तक निरन्तर भुजगार बन्ध करके पुन. उन्नी क्रममें बन्धारलिके बाद संक्रम करनेवाले इसी जीवके मिथ्यात्वके भुजगार-संक्रमके उत्पट्ट चार समय प्राप्त हुए ।

❊ अल्पतरसंक्रामकका कितना काल है ?

§ ७५.०. यह सूत्र सुगम है ।

❊ जघन्य काल एक समय है और उन्कृष्ट काल साधिक एक सौ त्रैसठ सागर है ।

§ ७५.१. यहाँ सर्वप्रथम एक समयका बंधन करते हैं । यह कैसे ? भुजगार या अवस्थित पदका बन्ध करनेके बाद एक समय तक अल्पतरपदका बन्ध करके तथा दूसरे समयमें भुजगार या अवस्थितपदके बन्धरूपमें परिणामन करके बन्धावलीके ध्यतीत होने पर बन्धके अनुसार ही संक्रम करनेवाले जीवके अल्पतरपदका जघन्य काल एक समय प्राप्त होता है । अथ साधिक एक सौ त्रैसठ सागरप्रमाण उत्पट्ट कालका अनुगम करते हैं । यथा—सत्कर्मसे कम स्थितिका बन्ध करनेवाला कोई एक निर्यज्ञ या मनुष्य मिथ्यादृष्टि जीव सर्वोत्पट्ट अन्तर्मुहूर्ते कालतक अल्पतर संक्रम करके पुन. तीन पत्यकी आयुवाले जीवोंमें उत्पन्न हुआ । यहाँ पर भी मिथ्यात्वके अल्पतरसंक्रमका ही पालन करके अपनी आयुमें अन्तर्मुहूर्त काल शेष रहने पर प्रथम सम्पत्त्वको प्राप्त होकर अन्तर्मुहूर्ते काल तक अल्पतरपदका ही संक्रम करता है ।

शंका—उपशम सम्पत्त्वको प्राप्त हुए जीवके अल्पतरसंक्रम कैसे हो सकता है, क्योंकि उस काजके भीतर सर्वत्र ही मिथ्यात्वकी नियेकरियतियोंका अवस्थितरूपसे ही संक्रम उपलब्ध होता है ?

एदमेवं होजं ति ण पुण एवमेत्थ विवक्खा कया । किंतु कालपहाणत्तं विवक्खियं । तं कथं णव्वदे ? सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणसवड्ढिसंक्रमस्स जहण्णुक्खस्सेण्यसमयोवएसादो । पुणो वेदयसम्मत्तं पडिवण्णो पढमछावड्ढिं सच्चमप्पदरसंक्रमेणाणुपालिय तदो अंतो-मुहुत्तावसेसे पढमछावड्ढिकाले अप्पदरकालाविरोहेणंतोमुहुत्तं मिच्छत्तेणंतरिय सम्मत्तं पडिवण्णो विदियछावड्ढिं परिभमिय तदवसाणे परिणामपच्चएण पुणो वि मिच्छत्तमुवगओ दव्वलिंगमाहप्पेकेत्तीससागरोवमिएसु देवसेववण्णो । तत्थ वि सुक्खलेस्सापाहम्मणे संतकम्मादो हेड्ढा चैव बंधमाणस्स अप्पयरसंक्रमो चैय । तत्तो सुदो वि संतो मणुसेसुव-वज्जिय अंतोमुहुत्तमप्पयरं चैव संकामिय तदो भुजगारसवड्ढिदं वा पडिवण्णो तस्स लद्धो पयदुक्खस्सकालो दोअंतोमुहुत्तम्भहियतिपत्तिदोवमेहि सादिरेयतेवड्ढिसागरोवममेत्तो । एत्थ पढमछावड्ढिं भमाविय अंतोमुहुत्तावसेसे सम्मामिच्छत्तेण किण्णांतराविज्जदे ? ण, तहा सम्मत्तं पडिवज्जमाणस्स भुजगारप्पसंगादो । तं कथं ? सम्मामिच्छत्तं पडिवण्णस्स

**समाधान—**यह सत्य है, क्योंकि निषेकोंकी प्रधानता स्वीकार करने पर यह इसी प्रकार होता है । परन्तु यहाँपर इस प्रकारकी विवक्षा नहीं की है, किन्तु कालकी प्रधानता विवक्षित है ।

**शंका—**यह किस प्रमाणसे जाना जाता है ?

**समाधान—**क्योंकि सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वके अवस्थितसंक्रमका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है ऐसा उपदेश पाया जाता है । इससे ज्ञात होता है कि यहाँ पर निषेकोंकी प्रधानता न होकर कालकी प्रधानता है ।

**पुनः** वह उपशमसम्यग्दृष्टि जीव वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त हुआ । तथा पूरे प्रथम छयासठ सागर काल तक अल्पतरसंक्रमका पालन कर उस प्रथम छयासठ सागरमें अन्तर्मुहूर्त काल शेष रहने पर अल्पतरपदके कालमें विरोध न पड़ते हुए अन्तर्मुहूर्तकालतक मिथ्यात्वके द्वारा वेदक-सम्यक्त्वको अन्तरित करके सम्यक्त्वको प्राप्त हुआ । तथा द्वितीय छयासठ सागर कालतक परिभ्रमण करके उसके अन्तमें परिणामवश फिर भी मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ और द्रव्यलिंगके माहात्म्यसे इकतीस सागरकी आयुवाले देवोंमें उत्पन्न हुआ । तथा वहाँ भी शुक्ललेदेयाके माहात्म्यसे सत्कर्मसे कम स्थितिका ही बन्ध करनेवाले उसके अल्पतरसंक्रम ही होता रहा । फिर वहाँसे च्युत होकर भी मनुष्योंमें उत्पन्न होकर अन्तर्मुहूर्त कालतक अल्पतरपदका ही संक्रम करके अनन्तर भुजगार या अवस्थितसंक्रमको प्राप्त हुआ । इसप्रकार अल्पतर संक्रमका दो अन्तर्मुहूर्त और तीन पल्प अधिक एक सौ त्रेसठ सागरप्रमाण प्रकृत उत्कृष्ट काल प्राप्त हुआ ।

**शंका—**यहाँ पर प्रथम छयासठ सागर कालतक भ्रमण कराके उसमें अन्तर्मुहूर्त काल शेष रहनेपर सम्यग्मिध्यात्व गुणस्थानके द्वारा अन्तर क्यों नहीं कराया ?

**समाधान—**नहीं, क्योंकि उस प्रकार सम्यक्त्वको प्राप्त करनेवाले जीवके भुजगारसंक्रमके प्राप्त होनेका प्रसंग आता है ।

**शंका—**वह कैसे ?

**समाधान—**सम्यग्मिध्यात्वको प्राप्त होनेवाले जीवके मिथ्यात्वका परप्रकृतिसंक्रम नहीं

ताव मिच्छत्तस्स परपयडिसंकमो णत्थि, किंतु ओकड्डणासंकमो चेय । सो च उदयप्पहुडि आवलियासंखेजभाग्ग्महियदोआवलयमेत्तमिच्छत्तद्विदीणं णत्थि । किं कारणं ? जासिं पयडीणमुदयसंभवो अत्थि तासिं चेव उदयावलयवाहिरद्विदीओ सन्वाओ ओकड्डिज्जति, उदयावलयन्मंतरे णिक्खेवसंभवादो । जासिं पुण उदयो णत्थि तासिमुदयावलयवाहिरे आवलियासंखेजभाग्ग्महियआवलयमेत्तीणं द्विदीणमोकड्डणा ण संभवइ, उदयावलयन्मंतरे णिक्खेवसंभवाणुवलंभादो । तदो तत्थ वाहिरआवलियासंखेजभाग्ग्महियदोआवलयवज्जाणमुवरिमासेसद्विदीणमोकड्डणासंकमो त्ति घेत्तव्वं, आवलयमेत्तमिच्छाविय तदसंखेज्जदिभागे तत्थ णिक्खेवणियमदंसणादो । एवं च संते सम्मामिच्छत्तद्वं सन्वमघद्विघिगलणेणप्पयरसंकमं काळण जाघे सम्मत्तं पडिवण्णो ताघे सम्मामिच्छाइड्डी चरिमसमयओकड्डणासंकमादो सम्माइद्विपटमसमयपरपयडिसंकमो आवलि० असंखे०-भाग्ग्महियआवलयमेत्तणिसेगेहि समहिओ होइ, परपयडिसंकमसुदयावलयवहिन्नुद-सन्वणिसेएमु णित्सेयाभावादो । तहा च सो भुजगारसंकमो पटमसमयसम्माइद्विपडिवद्धो अप्पदरविरोहिओ जायदि त्ति सम्मामिच्छत्तमेसो णेदुं ण सक्को त्ति ।

§ ७५२, अथवा णिसेयपरिहाणीए अप्पदरसंकमो एत्थ ण विवक्खिओ, किंतु कालपरिहाणीए । अत्थि च कालपरिहाणी, सम्मामिच्छाइद्विचरिमसमयमिच्छत्तद्विदि-

होता । किन्तु अपकर्षणसंकम ही होता है । वह भी उदय समयसे लेकर आवलिका असंख्यातवों भाग अधिक दो आवलिप्रमाण मिथ्यात्वकी स्थितियोंका नहीं होता, क्योंकि जिन प्रकृतियोंका उदय सम्भव है उन्हीं प्रकृतियोंकी उदयवलिके बाहरकी सभी स्थितियों संक्रमित होती हैं, क्योंकि उनका उदयावलिके भीतर निक्षेप सम्भव है । परन्तु जिन प्रकृतियोंका उदय नहीं है उनकी उदयावलिके बाहर आवलिके असंख्यातवों भाग अधिक एक आवलिप्रमाण स्थितियोंका अपकर्षण सम्भव नहीं है, क्योंकि उनकी उदयावलिके भीतर निक्षेपकी सम्भावना उपलब्ध नहीं होती । इसलिए वहाँपर आवलिके असंख्यातवों भाग अधिक दो आवलिप्रमाण स्थितियोंके सिवा ऊपरकी सब स्थितियोंका अपकर्षणसंकम ग्रहण करना चाहिए, क्योंकि वहाँ पर एक आवलिप्रमाण स्थितियोंकी अतिस्थापनारूपसे स्थापित करके उसके असंख्यातवों भागप्रमाण स्थितियोंमें निक्षेपका नियम देखा जाता है । और ऐसा होने पर सम्यग्मिथ्यात्वके सब कालतरु अथःस्थितिगलनाके साथ अल्पतरसंकम करके जय सम्यक्तरको प्राप्त हुआ तब सम्यग्मिथ्यादृष्टिके अन्तिम समयमें होनेवाला परप्रकृतिसंकम एक आवलिके असंख्यातवों भागसे अधिक एक आवलिमें प्राप्त हुए निषेकोंसे अधिक होता है, क्योंकि परप्रकृतिसंकमका उदयावलिके बाहर स्थित सब निषेकोंमें होनेका निषेध नहीं है । और सम्यग्मिथ्यात्वमें ले जाने पर सम्यग्दृष्टिके प्रथम समयसे सम्बन्ध रखनेवाला वह भुजगारसंकम अल्पतरसंकमका विरोधी हो जाता है, इसलिए ऐसे जीवको सम्यग्मिथ्यात्वमें ले जाना शक्य नहीं है ।

§ ७५२, अथवा यहाँ पर निषेकोंका परिहाररूप अल्पतरसंकम विवक्षित नहीं है । किन्तु कालपरिहाररूप अल्पतरसंकम यहाँपर विवक्षित है और यहाँ कालकी परिहारिणी है ही, क्योंकि सम्यग्मिथ्यादृष्टिके अन्तिम समयमें प्राप्त हुई मिथ्यात्वकी स्थितिके प्रमाणसे प्रथम समयवर्ती



पमाणो पढमसमयसम्माइडिम्मि तद्धिदीणमधडिदिगलणेण समयूणत्तदंसणादो । तदो तत्थ णिसेयसंकमवुड्डीए वि- कालपरिहाणिलक्खणो संकमस्स अप्परभावो चैवे त्ति । ण च एवंविहा विवक्खा सुत्ते ण दीसइ त्ति संकणिज्जं; उवसमसम्माइडिम्मि; णिसेयावेक्खए अत्रडियसंकमपरुविय कालपरिहाणिवसेणप्परसंकमपरुवयम्मि सुचम्मिं तदुवलंभादो । तदो सम्मामिच्छत्ते पडिवज्जाविदे वि ण दोसो त्ति सिद्धं ।

✽ अत्रडिदसंकामओ केवचिरं कालादो होदि ?

§ ७५३. सुगमं ।

✽ जहणणेणोयसमओ, उक्कस्सेणंतोसुहुत्तं ।

§ ७५४. कुदो ? एयडिदिवंधावट्टाणकालस्स जहण्णुकस्सेणोयसमयमंतोसुहुत्त-  
मेत्तपमाणोवलंभादो ।

✽ सम्मत-सम्मामिच्छत्ताणं भुजगार-अत्रडिद-अवत्तच्चसंकामया  
केवचिरं कालादो होति ?

§ ७५५. सुगममेदं पुच्छसुत्तं ।

✽ जहण्णुकस्सेणोयसमओ ।

§ ७५६. भुजगारसंकमस्स ताव उच्चदे—तप्पाओग्गसम्मत्त-सम्मामिच्छत्तडिदि-  
संतकम्मियमिच्छाइट्टिणा ततो दुसमउत्तरादिमिच्छत्तडिदिसंतकम्मिएण सम्मत्ते पडिवण्णे

सम्यग्दृष्टिके उसकी स्थितियोंमें अधःस्थितिगलनाके आलम्बनसे एक समय कमपना देखा जाता है, इसलिए वहाँ निषेकसंक्रममें वृद्धि होने पर भी संक्रमका कालपरिहानिलक्षण अल्पतरपना ही है । सूत्रमें इसप्रकारकी विवक्षा नहीं दिखलाई देती ऐसी आशंका करना भी ठीक नहीं है, क्योंकि उपराम सम्यग्दृष्टिके निषेकोंकी अपेक्षा अवस्थितसंक्रमका कथन न करके कालपरिहानिके आलम्बन द्वारा अल्पतरसंक्रमका कथन करनेवाले सूत्रमें उक्त विवक्षा उपलब्ध होती है, इसलिए सम्यग्मिथ्यात्वको प्राप्त कराने पर भी दोष नहीं है यह सिद्ध हुआ ।

✽ अवस्थितसंक्रामकका कितना काल है ?

§ ७५३. यह सूत्र सुगम है ।

✽ जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्सुहूर्त है ।

§ ७५४. क्योंकि एक समान स्थितिके बन्धका अवस्थान काल जघन्यसे एक समय और उत्कृष्टसे अन्तर्सुहूर्तप्रमाण उपलब्ध होता है ।

✽ सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके भुजगार, अवस्थित और अवक्तव्यपदके संक्रामकोंका कितना काल है ?

§ ७५५. यह प्रश्नासूत्र सुगम है ।

✽ जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है ।

§ ७५६. भुजगारसंक्रमका पहिले कहते हैं—जो तत्प्रायोग्य सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके स्थितिसत्कर्मसे युक्त है और जो उनकी स्थितिसे मिथ्यात्वकी दो समय अधिक आदि स्थितिसे युक्त है ऐसे मिथ्यादृष्टि जीवके सम्यक्त्वको प्राप्त होने पर दूसरे समयमें भुजगारसंक्रम होकर

विदियसमयम्मि भुजगारसंकमो होदूण तदणंतरसमए अप्पदरसंकमो जादो । लद्धो जहण्णुकरुसेणोगसमयमेत्तो भुजगारसंकामयकालो । एवमवद्विदंसंकमस्स वि । णवरि समयुत्तरमिच्छत्तद्विदिसंतकम्मिएण वेदगसम्मत्ते पडिवण्णे विदियसमयम्मि तदुवल्लंभो वचव्वो । एवमवत्तव्वसंकमस्स वि वत्तव्वं । णवरि णिस्संतकम्मियमिच्छाइड्डिणा उवसमसम्मत्ते गहिदे विदियसमयम्मि तदुवल्लद्धी होदि ।

❁ अप्पदरसंकामओ कैवचिरं कालादो होदि ?

§ ७५७. सुगमं ।

❁ जहण्णेणंतोसुदुत्तं, उक्कस्सेण वेत्तावद्विसागरोवमाणि सादिरेयाणि ।

§ ७५८. एत्थ ताव जहण्णकालपरूवणा कौरदे—एगो मिच्छाइड्डी पुव्वुत्तेहिं तीहिं पयारेहिं सम्मत्तं घेत्तूण विदियसमए भुजगारावद्विदावत्तव्वान्णामण्णदरसंकमपजाएण परिणमिय तदियसमए अप्पयसंकामयत्तमुवगओ, मव्वजहण्णेण कालेण मिच्छत्तं गओ, जहण्णकालाविगोहेण संकिल्लिट्ठो मम्मत्तद्विदो उवरि मिच्छत्तद्विदो तप्पाओग्गवट्टीए वट्टाविय मव्वल्लहं मम्मत्तं पडिवण्णो, भुजगारसंकमेण अवद्विदसंकमेण वा परिणदो त्ति तस्स अंतोमुदुत्तमेत्तो मम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणमप्पदरसं० जहण्णकालो होइ । अहवा मम्मत्तं पडिवजिय अंतोमुदुत्तमपदरसरूवेण मम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणं द्विदिसंकममणु-

तदनन्तर समयमें अल्पतरसंक्रम होता है । इसी प्रकार इनके भुजगारसंकमका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय प्राप्त हुआ । उनी प्रकार एक समय अवस्थितसंकमका भी प्राप्त होता है । किन्तु उनकी विशेषता है कि एक समय अधिक मिथ्यात्वके स्थितिसंकमवाले जीवके द्वारा वेदकसम्पत्त्यके प्राप्त करने पर दूसरे समयमें उसकी प्राप्ति पडनी चाहिए । इसीप्रकार अवत्तव्व-संकमका भी कठना चाहिए । किन्तु उतनी विशेषता है कि उक्त दोनों प्रकृतियोंके सत्कर्मसे रक्षित मिथ्यादृष्टि जीवके द्वारा उपशमसम्यक्त्वके ग्रहण करने पर दूसरे समयमें उसकी उपलब्धि होती है ।

❁ अल्पतरसंकामकका कितना काल है ?

§ ७५७. यह सूत्र सुगम है ।

❁ जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल साधिक दो छायासठ सागरप्रमाण है ।

§ ७५८. यहाँ पर सर्वप्रथम जघन्य कालका कथन करते हैं—कोई एक मिथ्यादृष्टि जीव पूर्वोक्त तीन प्रकारसे सम्यक्त्वको ग्रहण कर दूसरे समयमें भुजगार, अवस्थित और अवत्तव्व इनमेंसे किसी एक पर्यायरूपसे परिणत होकर तीसरे समयमें अल्पतरसंकमपनेको प्राप्त हुआ । पुनः सबसे जघन्य काल द्वारा मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ । फिर जघन्य कालमें विरोध न पड़े इस विधिसे संवित्प्र होकर सम्यक्त्वकी स्थितिके ऊपर मिथ्यात्वकी स्थितिको बढ़ाकर अतिशीघ्र सम्यक्त्वको प्राप्त हुआ । फिर भुजगारसंकमरूपसे या अवस्थितसंकमरूपसे परिणत हुआ । इस प्रकार उसके सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके अल्पतरसंकमका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्तप्रमाण प्राप्त हुआ । अथवा सम्यक्त्वको प्राप्त करके अन्तर्मुहूर्त काल तक सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका अल्पतररूपसे स्थितिसंकमका पालन करके अतिशीघ्र दर्शनमोहनीयकी क्षणायामं न्यायुत हुए

पालिय सव्वलहुं दंसणमोहक्खवणाए वावदस्स पयदजहण्णकालो पुरुवेयव्वो । उक्कस्सेण सादिरेयवेखावड्डिसागरोवमकालपरुवणा एवं कायव्वा । तं जहा—एको मिच्छाद्विही सम्मत्तं धेत्तूण सव्वमहंतं सुवसमसम्मत्तद्धमप्यदरसंकममणुपालिय वेदयसम्मत्तेण पढम-  
छावड्डिमणुपालिय अंतोसुहुत्तावसेसे तम्मि अप्पयरसंकमाविरोहेण मिच्छत्तं सम्मामिच्छत्तं वा पडिवण्णो तदो अंतोसुहुत्तेण वेदयसम्मत्तं पडिवज्जिय विदियछावड्डिमप्यरसंकमेणाणु-  
पालिय तदवसाणे अंतोसुहुत्तावसेसे मिच्छत्तं गदो पलिदोवमासंखेज्जभागमेत्तकालमुव्वेत्तणा-  
वावारेणच्छिय सम्मत्तचरिमुव्वेत्तणफालीए तदप्पयरसंकमं समाणिय पुणो वि तप्पाओग्गेण कालेण सम्मामिच्छत्तचरिमफालिमुव्वेत्तिय तदप्पयरकालं समाणेदि ।  
एवं पलिदोवमासंखेज्जभागव्महियवेखावड्डिसागरोवमाणि दोण्हमेदेसिं कम्माणमुक्कस्स-  
पयदद्विदिसंकमकालो होइ ।

❀ सेसाणं कम्माणं भुजगारसंकामओ केवचिरं कालादो होदि ?

§ ७५९. सुगमं ।

❀ जहण्णेणोयसमओ, उक्कस्सेण एगणवीससमया ।

§ ७६०. एत्थ ताव मिच्छत्तस्सेव भुजगारकालो जहण्णेणोयसमयमेत्तो वत्तव्वो ।  
उक्कस्सेणोयसमयाणमुप्पत्तिं वत्तइस्सामो—अणंताणु०कोहस्स ताव एको एइंदियो

जीवके प्रकृत जघन्य काल कहना चाहिए। उत्कृष्टरूपसे साधिक दो छयासठ सागरप्रमाण कालकी प्ररूपया इस प्रकार करनी चाहिए। यथा—कोई एक मिथ्यादृष्टि जीव प्रथम सम्यक्त्वको ग्रहण कर सबसे अधिक उपशमसम्यक्त्वके काल तक अल्पतरसंक्रमका पालन कर तथा वेदकसम्यक्त्वके साथ प्रथम छयासठ सागर कालका पालन कर उसमें अन्तमुं हूर्तकाल शेष रहने पर अल्पतरसंक्रमके अविरोध पूर्वक मिथ्यात्व या सम्यग्मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ। फिर अन्तमुं हूर्तमें वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त कर द्वितीय छयासठ सागर काल तक अल्पतरसंक्रमके साथ रहा। फिर उसके अन्तमें अन्तमुं हूर्त काल शेष रहने पर मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ। फिर पत्यके असंख्यातवें भागप्रमाण कालतक उद्वेलनाके न्यापारके साथ रह कर सम्यक्त्वकी अन्तिम उद्वेलनाफालिके द्वारा उसके अल्पतर संक्रमको समाप्त कर तथा फिर भी तत्यायोग्य कालके द्वारा सम्यग्मिथ्यात्वकी अन्तिम फालिकी उद्वेलना कर उसके अल्पतरकालको समाप्त करता है। इस प्रकार इन दोनों कर्मके अल्पतर-स्थितिसंक्रमका उत्कृष्ट काल पत्यका असंख्यतवां भाग अधिक दो छयासठ सागरप्रमाण होता है।

शेष कर्मोंके भुजगारसंक्रमकका कितना काल है ?

§ ७५६. यह सूत्र सुगम है ।

❀ जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल उचीस समय है ।

§ ७६०. यहाँ पर मिथ्यात्वके समान भुजगारसंक्रमका जघन्य काल एक समय कहना चाहिए। उत्कृष्ट काल उचीस समयोंकी उत्पत्तिकी वतलाते हैं। उसमें सर्व प्रथम अनन्तालुमन्वी क्रोधका वतलाते हैं—नेई एक एकेन्द्रिय जीव अपने जीवनकालकी अन्तिम आवलिके ऊपर

१. ता० प्रती सम्म ( व्व ) महंतं—आ०प्रती सव्वमहंतं—इति पाठः ।

सगजीविदद्वाचरिमावलिाए उवरि सत्तारस समया अहिया अत्थि त्ति अद्वाक्खएण माणादीणं परिवाडीए पण्णारससु समणसु भुजगारेण वंधवुद्धिं काळण जहाकममेव वंधावलिादीदं कोहे पडिच्छिय पुणो चरिम-दुचरिमसमएसु विवक्खियकोहस्स अद्वा-संक्खिलेसक्खएहि भुजगारबंधमणुपालिय तदो भवक्खएण सण्णिपंचिदिएसु विग्गहं काळण्येयसमयमसण्णिसमाणाद्धिदिं वंधिळण सरीरं गहिळण सण्णिद्धिदिबंधेण परिणदो । तदो आवलिादीदं जहाकमं संकामेमाणस्स एगूणवीसभुजगारसमया लद्धा हीति । एवं सेसकसाय-णोकसायाणं । णवरि णोकसायाणं भण्णमाणे पुब्बुत्तसत्तारससमयाहियचरिमा-वलिाए आदीदो पहुडि सोलससमएसु कसायाणमद्वाक्खएण परिवाडीए द्विदिवंधमण्णे-ण्णादिरिचं चट्ठाविय पुणो सत्तारससमए संक्खिलेसक्खएण सन्वेसिमेव समगं भुजगारबंधं ऋद्रूप तेणेव क्रमेण वंधावलिादीदं णोकसाएसु पडिच्छिय तदो कालं काद्रूप पुच्चं व असण्णि-सण्णिद्धिदिं वंधिय वंधसंक्रमणावलिावदिकमे ताए चेव परिवाडीए संकामेमाणस्स तेमिं पयदुक्कस्सकालसमुप्पत्ती वत्तव्वा ।

### ❁ सेसपदाणि मिच्छुत्तभंगो ।

§ ७६१. अप्पयरसंक्रामयस्स जहण्णेणेयममओ, उक्क० तेवद्धिसागरोवमसदं सादियेयं । अवद्धिदपदस्स वि जहण्णकालो एगसमयमेत्तो, उक्कस्सो अंतोमुहुत्तपमाणो त्ति एवमेदेण भेदाभावादो ।

सत्रह समय अधिक रहने पर अद्वाक्षयसे मानादिककी परिवादीक्रमसे पन्डह समय तक भुजगार-रूपसे वन्धवृद्धि करके यथाक्रमसे ही वन्धावलिके बाद क्रोधमं संक्रमित करके पुनः अन्तिम समयमें और उपान्त्य समयमें विपत्तित क्रोधका अद्वाक्षय और संक्लेशक्षयसे भुजगारवन्धका पालन कर अनन्तर भवक्षयसे संज्ञी पञ्चेन्द्रियोंमें विग्रह करके एक समय तक अंसंज्ञीके समान स्थितिका वन्ध करके तथा शरीरको प्रहण कर संज्ञीके योग्य स्थितिवन्धरूपसे परिणत हुआ । फिर एक श्रावलिने बाद क्रमसे संक्रम करनेवाले जीवके भुजगारसंक्रमके उन्नीस समय प्राप्त होते हैं । इन्ही प्रकार शेष कपायों और नोकपायोंके भुजगारसंक्रमके उन्नीस समय होते हैं । किन्तु इतनी विशेषता है कि नोकपायोंका उक्त काल कहने पर पूर्वोक्त सत्रह समय अधिक अन्तिम श्रावलिने प्रारम्भसे लेकर सोलह समयमें कपायोंके अद्वाक्षयसे क्रमसे स्थितिवन्धको परस्पर अधिक अधिक बढ़ाकर पुनः सत्रहवें समयमें संक्लेशक्षयसे सभीका समान भुजगारवन्ध करके उसी क्रमसे वन्धावलिके बाद नोकपायोंमें संक्रमित करके अनन्तर सरकार पहिलेके समान अंसंज्ञी और संज्ञीके योग्य स्थितिको बाँधकर वन्धावलि और संक्रमावलिने ज्यतीत होने पर उसी क्रमसे संक्रम करनेवाले जीवके नौ नोकपायोंकी प्रकृत उत्कृष्ट कालकी उत्पत्ति कहनी चाहिए ।

❁ शेष पदोंका भंग मिथ्यात्वके समान है ।

§ ७६२. क्योंकि अल्पतरसंक्रामकका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल साधिक एक सौ त्रैसठ सागर हैं । अवस्थितपदका भी जघन्य काल एक समयमात्र है और उत्कृष्ट काल अन्तमुहूर्तप्रमाण है, इसप्रकार इस कालसे प्रकृतमें कोई भेद नहीं है ।

❀ एवमि अवत्तव्वसंक्रामया जहण्णुक्कस्सेण एयसमओ ।

§ ७६२. मिच्छत्तस्स अवत्तव्वसंक्रा० गत्थि त्ति उत्तं । एदेसिं पुण विसंजोयणादो सव्वोवसामणादो च परिवदंतं पडुच्च अत्थि अवत्तव्वसंक्रमो । सो च जहण्णुक्कस्सेण्य-समयमेत्तकालभाविओ त्ति एत्तिओ चोव विसोसो, पाण्णो त्ति वुत्तं होइ । एवमेयजोवेण कालो ओघेण परुविदो ।

§ ७६३. एत्तो आदेसपरूवणद्धं सुत्तसूचिदमुच्चारणं वत्तइस्सामो । तं जहा—आदेसेण पोइय० मिच्छ०-वारसक०-णवणोक० भुज०संक्रा० केवचिरं० ? जह० एयसमओ, उक्क० मिच्छत्तस्स तिण्णिण समया, सेसाणमट्टारस समया । णवरि इत्थि-पुरिसं-हस्स-रईणं भुज० जह० एयसमओ, उक्क० सत्तारस समया । अप्पदरं जह० एयसमओ, उक्क० तेत्तीसं सागरो० देसूणाणि । अवट्ठिदं ओघमंगो । एवमणंताणु० ४ । णवरि अवत्तं जहण्णु० एयसमओ । सम्मत्त-सम्मामि० भुज०-अवट्ठि०-अवत्तं ओघं । अप्पदरं मिच्छत्तमंगो । एवं पढमाए । णवरि सव्वेसिमप्पदरं सगट्ठिदी देसूणा । विदियादि जाव सत्तमि त्ति एवं चोव । णवरि मिच्छं भुज० उक्क० वेसमया, कसाय-णोक० सत्तारस समया ।

\* किन्तु इतनी विशेषता है कि अवक्तव्यसंक्रामकोंका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है ।

§ ७६२. मिथ्यात्वके अवक्तव्य संक्रामक जीव नहीं हैं यह कह आये हैं। किन्तु इन कर्मोंका विसंयोजनासे और सर्वोपशामनासे गिरते हुए जीवकी अपेक्षा अवक्तव्यसंक्रम है और वह जघन्य तथा उत्कृष्टरूपसे एक समयभावी है। इसप्रकार इतना ही विशेष है, अन्य विशेष नहीं है यह उक्त कथनका तात्पर्य है। इस प्रकार ओघसे एक जीवकी अपेक्षा कालका कथन किया ।

§ ७६३. आगे आदेशका कथन करनेके लिए सूत्रसे सूचित हुए उच्चारणको बतलाते हैं। यथा—आदेशसे नारकियोंमें मिथ्यात्व, बारह कृपाय और नौ नोकषायोंके भुजगारसंक्रामकका कितना काल है? जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल मिथ्यात्वका तीन समय है तथा शेषका अठारह समय है। किन्तु इतनी विशेषता है कि खीवेद, पुरुषवेद, द्वाय्य और रतिके भुजगारसंक्रामकका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल सत्रह समय है। अल्पतर-संक्रामकका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल कुछ कम तेतीस सागर है। अवस्थित संक्रामकका भंग ओघके समान है। इसीप्रकार अनन्तानुबन्धीवत्तुक्कका जानना चाहिए। किन्तु इतनी विशेषता है कि अवक्तव्यसंक्रामकका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके भुजगार, अवस्थित और अवक्तव्यसंक्रामकका भंग ओघके समान है। अल्पतर-संक्रामकका भंग मिथ्यात्वके समान है। इसीप्रकार पहिली पृथिवीमें जानना चाहिए। किन्तु इतनी विशेषता है कि सब प्रकृतियोंके अल्पतरसंक्रामकका उत्कृष्ट काल कुछ कम अपनी स्थितिप्रमाण है। दूसरी पृथिवीसे लेकर सातवीं पृथिवीतक इसीप्रकार भंग है। किन्तु इतनी विशेषता है कि मिथ्यात्वके भुजगारसंक्रामकका उत्कृष्ट काल दो समय है। तथा कषायों और नोकषायोंका सत्रह समय है।

१ ७६४. तिरिक्ख-पंचि० तिरिक्खतिय० ३ मिच्छ० वारसक०-णवणोक० भुज० जह० एयसमओ, उक्क० चत्तारि समयया एगुणवीससमया । अप्प०-अवड्ढि० विहत्तिभंगो । एवमणंताणु० ४ । णवरि अवत्त० जहणु० एयसमओ । सम्म०-सम्मामि० विहत्तिभंगो । णवरि पंचि० तिरि० पज्ज० इत्थिवेद० भुज० जह० एयसमओ, उक्क० सत्तारस समयया । जोणिणीसु पुरिस-णवुंसयवेद० भुज० जह० एगसमओ, उक्क० सत्तारस समयया । पंचि०-तिरि० अपज्ज०-मणुसअपज्ज० मिच्छ०-सोलसक०-णवणोक० भुज० जह० एगसमओ, उक्क० चत्तारि समयया एगुणवीगं समयया । अप्पदर०-अवड्ढि० जह० एयस०, उक्क० अंतो । सम्म०-सम्मामि० अप्प० जह० एयस०, उक्क० अंतो । णवरि इत्थिवे०-पुरिसवे० भुज०

विशेषार्थ—जा असंती जीव दो विग्रहस नरकमे उत्पन्न होता है उसके दूसरे समयमे अद्वाद्वायसे ण भुजगार समय सम्भर है तीसरे समयमें संज्ञी होनेसे भुजगार समय प्राप्त होता है और चौथे समयमे संक्लेशक्षयसे भुजगारसमय सम्भर है । इस प्रकार नरकमें लगातार तीन समय तक भुजगारवन्ध होनेसे एक आत्रलिके वाद लगातार वहाँ पर तीन समय तक भुजगार संक्रम भी सम्भर है, उपलिंग सामान्यसे नरकमें मिथ्यात्वके भुजगारसंक्रमका उत्कृष्ट काल तीन समय कदा है । यतः असंती जीव प्रथम नरकमें ही उत्पन्न होता है, अतः वहाँ भी यह काल इसीप्रकार घटित कर लेना चाहिए । मात्र द्वितीयदि प्रथिवियोंमें असंती जीव मरकर नहीं उत्पन्न होता प्रतः वहाँ यह काल अद्वाद्वाय और संक्लेशक्षयमे दो समय ही जानना चाहिए । स्थितिभक्तिके भुजगार अनुयोगद्वारमें नरकमे चारह कथायों और नौ नोकपायोंके भुजगारका उत्कृष्ट काल सत्रह समय ही बतलाया है । वहाँ अठारह समयका निषेध किया है । किन्तु यहाँ पर भुजगारसंक्रमका उत्कृष्ट काल अठारह समय कहा है सो उसे प्राप्त करते समय नरकमें शरीर ग्रहणके पूर्वतक नोन्ह भुजगार समय प्राप्त करनेमे, सत्रहवें समयमें संज्ञीके योग्य स्थितिवन्ध करानेसे और अठारहवें समयमें संक्लेशक्षयसे भुजगारवन्ध करानेसे प्राप्त करना चाहिए । यहाँ ये १८ समय जो भुजगारके प्राप्त हुए उनका उनी क्रमसे एक आत्रलिके वाद संक्रम करानेसे उक्त चारह कथायोंमेंसे प्रत्येक कथायके तथा पाँच नोकपायोंके भुजगार संक्रमका उत्कृष्ट काल अठारह समय आ जाता है । मात्र क्लोवद, पुरुषवद, द्वास्व और रतिके इस कालमें कुल विशेषता है सो उसे जानकर घटित कर लेना चाहिए । शेष कथन सुगम है ।

१ ७६५. तिर्यञ्च और पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चत्रिक्रमं मिथ्यात्व, वारह कथाय और नौ नोकपायोंके भुजगारसंक्रमका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल मिथ्यात्वका चार समय तथा शेषका उन्नीस समय है । अल्पतर और अवस्थितपदका भंग स्थितिभक्तिके समान है । इसीप्रकार अनन्तानुबन्धीचतुष्करके उक्त पदोंका काल जानना चाहिए । किन्तु इतनी विशेषता है कि उनके अवकल्पपदका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका भङ्ग स्थितिभक्तिके समान है । किन्तु इतनी विशेषता है कि पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च पर्याप्तकोंमे खोवेदके भुजगारसंक्रमका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल सत्रह समय है । तिर्यञ्च योनिनिधोमि पुरुषवेद और नपुंसकवेदके भुजगारसंक्रमका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल सत्रह समय है । पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्त और मनुष्य अपर्याप्तकोंमे मिथ्यात्व, सोलह कथायों और नौ नोरुपायोंके भुजगारसंक्रमका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल मिथ्यात्वका चार समय तथा शेषका उन्नीस समय है । अल्पतर और अवस्थितपदका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके अल्पतरपदका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । किन्तु इतनी विशेषता है कि खीवेद

जह० एयस०, उक० सत्तारस समया । मणुस०३ पंचिंदियतिरिक्खतियमंगो । णवरि पयडीणमवत्त० अत्थि तासिमेयसमओ ।

§ ७६५. देवेषु मिच्छ०-वारसक-णवणोकसाय० भुज० जह० एयसमओ, उक० तिण्णि समया अट्टारस समया । अप्प६०-अवट्ठि० विहत्तिमंगो । णवरि णवुंसयवेद० भुज० जह० एयसमओ, उक० सत्तारस समया । अणंताणु०४ अपच्चक्खाणमंगो । णवरि अवत्त० जहणु० एयसमओ । सम्म०-सम्मामि० विहत्तिमंगो । एवं भवण०-वाणवैतर० । णवरि सगट्ठिदी । जोदिसियादि जाव सहस्सार ति विदियपुट्ठविमंगो । णवरि सगट्ठिदी । आणदादि सव्वट्ठा ति विहत्तिमंगो । एवं जाव० ।

❀ एत्तो अंतरं ।

§ ७६६. एत्तो उवरि अंतरं वत्तहस्सामो ति पइज्जासुत्तमेदं । तस्स दुविहो णिहेसो—ओघेण आदेसेण य । तत्थोघपरूवणण्डुमुत्तसुत्तणिहेसो ।

और पुरुषवेदके भुजगारसंक्रमका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल सत्रह समय है । मनुष्यत्रिकमें पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चत्रिकके समान भंग है । किन्तु इतनी विशेषता है कि इनमें जिन प्रकृतियोंका अवक्तव्यपद है उनका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है ।

**विशेषार्थ**—ऐसा नियम है कि मिथ्यादृष्टि जीव मरकर जिन वेदबालोंमें उत्पन्न होता है उसके उसी वेदका बन्ध होता है । इसलिए यहाँ पर पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च पर्याप्तकोंमें स्त्रीवेदके भुजगारके सत्रह समय तथा तिर्यञ्च योनिनियोंमें पुरुषवेद और नपुंसकवेदके भुजगारके सत्रह समय कहे हैं । मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यनियोंमें भी इसीप्रकार जान लेना चाहिए । शेष कथन सुगम है ।

§ ७६५. देवोंमें मिथ्यात्व, वारह कषाय और नौ नोकषायोंके भुजगारसंक्रमका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल मिथ्यात्वका तीन समय तथा शेषका अठारह समय है । अल्पतर और अवस्थितपदका भङ्ग स्थितिबिभक्तिके समान है । किन्तु इतनी विशेषता है कि नपुंसकवेदके भुजगारपदका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल सत्रह समय है । अनन्तानुबन्धीचतुष्कका भंग अपत्याख्यानावरणके समान है । किन्तु इतनी विशेषता है कि इनके अवक्तव्यपदका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका भंग स्थितिबिभक्तिके समान है । इसी प्रकार भवनवासी और व्यन्तर देवोंमें जानना चाहिए । किन्तु इतनी विशेषता है कि अपनी अपनी स्थिति कहनी चाहिए । ज्योतिषियोंसे लेकर सहस्रार कल्पतकके देवोंमें दूसरी पृथिवीके समान भंग है । किन्तु इतनी विशेषता है कि अपनी अपनी स्थिति कहनी चाहिए । आनत कल्पसे लेकर सर्वार्थसिद्धितकके देवोंमें स्थितिबिभक्तिके समान भंग है । इसी प्रकार अनाहारक मार्गणातक जानना चाहिए ।

❀ आगे अन्तरकालका अधिकार है ।

§ ७६६. इससे आगे अन्तरको बतलाते हैं इस प्रकार यह प्रतिज्ञासूत्र है । उसका निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश । उनमेंसे ओघका कथन करनेके लिए आगेके सूत्रको निर्देश करते हैं—

⊗ मिच्छत्तस्स भुजगार-अवद्विदसंक्रामयंतरं केवचिरं कालादो होदि ? जहणणोय एयसमथो । उफस्सेण तेवद्विसागरोपमसदं सादियेयं ।

§ ७६७. एय जहणणंतरं भुजगारावद्विदसंक्रमेर्हितो एयसमयमप्यरे पडिय विदियसमए पुणो वि अप्पिदपदं गयस्स वचचवं । उफस्संतरं पि थप्यरुहस्सकालो वचचवो । णवरि भुजगारंतरे विवकिगए अवद्विदकालेण सह वचचवं । अवद्विदंतरं च भुजगारकालेण सह वचचवं ।

⊗ अप्पयरसंक्रामयंतरं केवचिरं कालादो होदि ? जहणणोयसमथो, उफस्सेण अंतोमुहुत्तं ।

§ ७६८. अप्पदरादो भुजगारावद्विदाणमण्णदरत्थ एयसमयमंतरिय पडिणियत्तस्स जहणणमतरं, तदुभयकालकलावे अंतोमुहुत्तमेत्तावद्विदकालपंशेण उन्नरमंतरमिह गहेयव्वं ।

⊗ एवं सेसाणं कम्ममाणं सम्मत्त-सम्मामिच्छत्तवज्जाणं ।

§ ७६९. जहा मिच्छत्तस्स भुजगारादिपदाणमंतरपस्सवणं कयं तथा सेसाणं पि कम्ममाणं सम्मत्त-सम्मामिच्छत्तवज्जाणं कायव्वं, विसेगाभावादो । एत्थतणविसेसपटुप्पायणट्ट-मुत्तरमुत्तमाह—

\* मिथ्यात्वके भुजगार और अवस्थितगमकालकाल अन्तरकाल कितना है ? जघन्य एक समय है और उत्कृष्ट ग्राधिक एक सौ त्रेसठ सागर है ।

§ ७६७. यहाँपर भुजगार और अवस्थितसंक्रमसे एक समयके लिए अल्पसंक्रममे जाकर दूसरे समयमें पुनः विरचितपदको प्राप्त हुए जीवके जघन्य अन्तर पहना चाहिए। उत्कृष्ट अन्तर भी अल्पतरके उत्कृष्ट कालप्रमाण कहना चाहिए। विन्तु इतनी विशेषता है कि भुजगारपदका अन्तर विरचित होने पर अवस्थितके कालको अल्पतरके कालमें गिलाकर कहना चाहिए। तथा अवस्थितकालका अन्तर भुजगारकालको अल्पतरके कालमें गिलाकर कहना चाहिए।

\* अल्पतरगमकालकाल अन्तरकाल कितना है ? जघन्य एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है ।

§ ७६८. अल्पतरसे भुजगार और अवस्थित इनमेंसे किसी एकमें ले जाकर एक समयके लिए अन्तरित कर पुनः लौटे हुए जीवके जघन्य अन्तर होता है। तथा अन्तर्मुहूर्तमात्र अवस्थितकालप्रधान इन दोनोंके कालकलापप्रमाण यहाँ उत्कृष्ट अन्तर ग्रहण करना चाहिए।

\* इसी प्रकार सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके सिवा शेष कर्मोंका अन्तरकाल जानना चाहिए ।

§ ७६९. जिसप्रकार मिथ्यात्वके भुजगार आदि पदोंके अन्तरकालका कथन किया उसी प्रकार सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वको छोड़कर शेष कर्मोंके भी अन्तरकालका कथन करना चाहिए, क्योंकि मिथ्यात्वके कथनसे इनके कथनमें कोई विशेषता नहीं है। अब यहाँपर विशेषताका कथन करनेके लिए आगेका सूत्र कहते हैं—



✽ एवरि अणंताणुबंधीणमप्परसंकामयंतरं जहणणेण्येयसमओ उक्कस्सेण वेछावट्टिसागरोवमाणि सादिरैयाणि ।

§ ७७०. मिच्छत्तस्स अप्परसंकामयंतरं उक्कस्सेणंतोमुहुत्तमेव, इह तुण सादिरिय-वेछावट्टिसागरोवमेत्तमुवल्लभदि ति एसो विसेसो । सव्वेसिमवत्तवपदगओ अण्णो वि विसेसो संभवइ ति पटुप्पायणट्टमिदमाह ।

✽ सव्वेसिमवत्तवसंकामयंतरं केवचिरं कालादो होदि ? जहणणेणंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण अद्धपोग्गलपरियट्टं देसूणं ।

§ ७७१. अणंताणुबंधीणं विसंजोयणापुव्वसंजोगे सेसंकसाय-णोकसायाणं च सव्वोवसामणापडिवादे अवत्तवसंकमस्सादिं करिय अंतरिदस्स पुणो जहण्णुकस्सेणंतो-मुहुत्तद्धपोग्गलपरियट्टमेत्तमंतरिय पडिवण्णतन्मांवाग्मि तदुभयसंभवदंसणादो । एवमेदिसि-मंतरगयं विसेसं जाणाविय संपहि सम्मत्त-सम्माभिच्छत्तभुजगारादिपदाणमंतरपमाण-परिच्छेदकरणट्टमिदं सुत्तमाह—

✽ सम्मत्त-सम्माभिच्छत्ताणं भुजगार-अवट्टिदसंकामयंतरं केवचिरं कालादो होदि ? जहणणेणंतोमुहुत्तं ।

§ ७७२. पुव्वुप्पण्णसम्मत्तादो परिवदिय मिच्छत्तट्टिदिसंतुट्ठीए सह पुणो वि सम्मत्तं पडिवज्जिय समयाविरोहेण भुजगारमवट्टिदं च एयसमयं कादूणप्पदरेणंतरिय

✽ किन्तु इतनी विशेषता है कि अनन्तानुबन्धीचतुष्कके अल्पतरसंक्रामकका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक दो छायासठ सागर है ।

§ ७७०. मिथ्यात्वके अल्पतरसंक्रामकका उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त ही है । किन्तु यहाँ पर साधिक दो छायासठ सागरप्रमाण उपलब्ध होता है इसप्रकार इतनी विशेषता है । इसी प्रकार सब प्रकृतियोंकी अवक्तव्यपदगत अन्य विशेषता भी सम्भव है, इसलिए उसे कहनेके लिए इस सूत्रको कहते हैं—

✽ सब प्रकृतियोंके अवक्तव्यसंक्रामकका अन्तरकाल कितना है ? जघन्य अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट कुछ कम अर्धपुद्गलपरिवर्तनप्रमाण है ।

§ ७७१. अनन्तानुबन्धियोंके विसंयोजनापूर्वक संयोगके समय तथा शेष कवयों और नोकषयोंके सर्वोपशामनासे गिरते समय अवक्तव्यसंक्रमका आदि करा कर तथा दूसरे समयमें अन्तरको प्राप्त हुए जीवके पुनः जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट कुछ कम अर्धपुद्गलपरिवर्तनकालका अन्तर देकर अवक्तव्यपदके प्राप्त होनेपर उक्त दोनों अन्तरकाल सम्भव दिखलाई देते हैं । इसप्रकार इन कर्मोंकी अन्तरगत विशेषताको जताकर अब सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके भुजगार आदि पदोंके अन्तरके प्रमाणका ज्ञान करानेके लिए इस सूत्रको कहते हैं—

✽ सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके भुजगार और अवस्थितसंक्रामकका अन्तरकाल कितना है ? जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है ।

§ ७७२. पूर्वमें उत्पन्न हुए सम्यक्त्वसे गिरकर मिथ्यात्वके स्थितिसत्कर्मकी वृद्धिके समय फिर भी सम्यक्त्वको प्राप्त होकर यथाविधि भुजगार और अवस्थितपदको एक समय करके

सञ्चलहुं मिच्छत्तं गंतूण तेषेव क्रमेण पडिणियत्तिय भुजगारावडिदसंक्रामयपजाए ग परिणदम्मि तदुवलंमादो । एदेसिमुक्कस्संतरं उवरि भणामि चि थयं काऊणप्पयरजहण्णंतरं ताव परूवेदुक्कामो सुत्तमुत्तरमाह—

❁ अप्परसंक्रामयंतरं जहएणेषोअसमयो ।

§ ७७३. भुजगारावडिदाणमण्णदरेणंतरिदस्स तदुवलद्वीदो । एदस्स वि उक्कस्स-  
तमेरवं चैव ठविय अवत्तच्चसंक्रामयजहण्णंतरपरूवद्विमिदमाह—

❁ अवत्तच्चसंक्रामयंतरं जहएणोण फलिदोवमस्स असखेज्जदिभागो ।

§ ७७४. पढमसम्मत्तुप्पत्तिविदियसमए अवत्तच्चसंक्रमस्सादिं कादूणंतरिदस्स सञ्चलहुं मिच्छत्तं गंतूण जहण्णुव्वेल्लणकालअंतरे तदुभयमुव्वेल्लिय चरिमफालिपद-  
णाणंतरसमए सम्मत्तं पडिवण्णस्स विदियसमयम्मि तदंतरपरिसमत्तिदंस्सणादो । एवं जहण्णंतराणि परूविय सव्वेसिमुक्कस्संतरमिदाणि परूवेमाणो सुत्तमुत्तरमाह—

❁ उक्कस्सेण सव्वेसिमद्दुपोग्गलपरियट्टं हेस्सूपां ।

§ ७७५. अट्टपोग्गलपरियट्टादिसमए पढमसम्मत्तमुप्पाइय विदियसमए अवत्तच्चसस संक्रमस्सादिं करिय तदणंतरसमए तदणंतरमुप्पादिय अंतोमुहुत्तेण भुजगारावडिदाणं पि समयाविरोहेणंतरस्सादिं काऊण सञ्चलहुअकालपडिवट्टुव्वेल्लणावावारेण चरिम-

फिर अल्पतरपदसे अन्तरित करके अतिशीघ्र मिथ्यात्वमे जाकर उसी क्रमसे निवृत्त होकर भुजगार और अवस्थितसंक्रमपर्यायसे परिणत होनेपर उक्त अन्तरकाल उपलब्ध होता है । उनका उत्कृष्ट अन्तर आगे कहेगे इसलिए स्थगित करके सर्वप्रथम अल्पतरपदके जघन्य अन्तरको कहनेकी इच्छासे आगेका सूत्र करते हैं—

❁ अल्पतरसंक्रामकका जघन्य अन्तरकाल एक समय है ।

§ ७७३. भुजगार और अवस्थित इनमेसे किसी एकके द्वारा अन्तरको प्राप्त हुए उसका उक्त अन्तरकाल प्राप्त होता है । इसके भी उत्कृष्ट अन्तरकालको उसीप्रकार स्थगित करके अवक्तव्य-संक्रामकके जघन्य अन्तरका कथन करनेके लिए इस सूत्रको कहते हैं—

❁ अवक्तव्यसंक्रामकका जघन्य अन्तर पत्त्यके असंख्यातवं भागप्रमाण है ।

§ ७७४. प्रथम सन्यक्त्वकी उत्पत्तिके दूसरे समयमें अवक्तव्यसंक्रमका प्रारम्भ करनेके बाद अन्तरको प्राप्त हुए जीवके अतिशीघ्र मिथ्यात्वमे जाकर जघन्य उद्वेलनाकालके भीतर उक्त दोनों प्रकृतियोंकी उद्वेलना करके अन्तिम फालिके पतनके अनन्तर समयमें सन्यक्त्वको प्राप्त होनेके द्वितीय समयमें उसके अन्तरकी समाप्ति देखी जाती है । उसप्रकार जघन्य अन्तरोंका कथन करके इस समय मंत्र पदोंके उत्कृष्ट अन्तरका कथन करते हुए आगेके सूत्रको कहते हैं—

❁ सब पदोंका उत्कृष्ट अन्तर अर्थपुद्गल परिवर्तनप्रमाण है ।

§ ७७५. अर्थपुद्गलपरिवर्तनके प्रथम समयमें प्रथम सन्यक्त्वको उत्पन्न करके दूसरे समयमें अवक्तव्यसंक्रमका प्रारम्भ करके तथा उसके अगले समयमें उसका अन्तर उत्पन्न करके, अन्तर्द्वैत वाद भुजगार और अवस्थितपदोंके अन्तरका भी यथाविधि प्रारम्भ करके अतिलघुकालसे प्रतिबद्ध उद्वेलनाके व्यापार द्वारा अन्तिम फालिके पतनके बाद अल्पतरसंक्रमका भी अन्तर करार

फालिपादपाणंतरमप्यरसंकममंतराविय देसणमद्रपोगलपरियट्टं परिमभिय थोवावसेसए सिञ्जिदव्वए सम्मत्तं पडिवणणस्स तदंतरसमाणाणुवलंभादो । णवरि पुणो सम्मत्तं पडिवत्तिविदियसमए अवत्तव्वसंक्रामयंतरं परिसमाणयव्वं । तदणंतरसमए च अप्पयस-संकमंतरववच्छेओ कायव्वो, अंतोमुहुत्तपडिवादपडिवत्तीहि भुजगारावट्टिदिगणमंतरपरिसमती कायव्वा । एवमोघेणंतरपररूवणा भया ।

§ ७७६. संपहि एदेण देसामासयसुत्तेण सच्चिदमादेसपररूवणं वत्तइस्सामो । तं जहा—आदेसेण सव्वणेरइय-सव्वतिरिक्ख-सव्वमणुस्स-सव्वदेवा चि द्विदिविहत्तिभंगो । णवरि मणुसतिय० ३ वारसक०-णवणोक्क० अवत्त० जह० अंतोमु० । उक्क० पुव्वकोडि-पुयत्तं । एवं जाव० ।

❀ णाणाजीवेहि भंगविचओ ।

§ ७७७. सुगममेदं सुत्तं, अहियारसंभालणमेत्तफलत्तादो ।

❀ मिच्छत्तस्स सव्वजीवा भुजगारसंकामगा च अप्पयरसंकामया च अचट्टिदसंकामया च ।

§ ७७८. मिच्छत्तस्स भुजगारादिसंकामया णाणाजीवा णियमा अत्थि चि एत्थाहियारसंबंधो कायव्वो । कुदो एदेसि णियमा अत्थित्तं ? ण, मिच्छत्तभुजगारादि-

कुछ कम अर्धपुद्गल परिवर्तन काल तक परिभ्रमण करके सिद्ध होनेके लिए थोड़ा काल शेष रहने पर सम्यक्त्वको प्राप्त हुए जीवके उनके अन्तरोक्ती समाप्ति उपलब्ध होती है। किन्तु इतनी विशेषता है कि पुनः सम्यक्त्वको प्राप्त होनेके दूसरे समयमें अवक्तव्यसंक्रमका अन्तर समाप्त करना चाहिए। और तदनन्तर समयमें अल्पतरसंक्रमके अन्तरका विच्छेद करना चाहिए तथा अन्तर्मुहूर्तके भीतर सम्यक्त्वसे च्युत होकर पुनः प्राप्त करनेरूप क्रियाके द्वारा भुजगार और अवस्थितपदके अन्तरकी समाप्ति करनी चाहिए। इस प्रकार ओघसे अन्तरकालकी प्ररूपणा समाप्त हुई।

§ ७७६. अब इस देशामर्पक सूत्रसे सूचित हुए आदेशका कथन करते हैं। यथा—आदेशसे सब नारकी, सब तिर्यञ्च, सब मनुष्य और सब देवोंमें स्थितिविभक्तिके समान भंग है। किन्तु इतनी विशेषता है कि मनुष्यजिकमें बारह कपाय और नौ नोकपायोंके अवक्तव्यसंक्रामकका जयन्त्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर पूर्वकोटिप्रथक्त्वप्रमाण है। इसी प्रकार अनहारक मार्गाणा तक जानना चाहिए।

❀ अब नाना जीवोंकी अपेक्षा भंगविचयकका अधिकार है।

§ ७७७. यह सूत्र सुगम है, क्योंकि इसका प्रयोजन अधिकारकी सन्हालमात्र करना है।

❀ मिथ्यात्वके सब ( नाना ) जीव भुजगारसंकामक हैं, अल्पतरसंकामक हैं और अवस्थितसंकामक हैं।

§ ७७८. मिथ्यात्वके भुजगार आदि पदोंके संक्रामक नाना जीव-नियमसे हैं इसप्रकार यहाँ पर अधिकारका सम्बन्ध करना चाहिए।

शंका—इनका नियमसे अस्तित्व क्यों है ?

संक्रामयाणमर्णतजीवाणं सञ्चद्धमविच्छिण्णपवाहसरूवेणावट्टाणदंसणादो ।

❁ सम्मत्त-सम्माभिच्छ्रुत्ताणं सत्तावीस भंगा ।

६ ७७०. कुदो, भुजगारावट्टिदात्रचच्चमंकामयाणं भयणिज्जत्तेणाप्परसंकामयाणं धुवत्तदंसणादो । तदो भयणिज्जपदाणि विरलिय त्तिगुणिय अण्णोण्णत्तसे कए धुवत्तहिया सत्तावीस भंगा उप्पजंति ।

❁ सेसाणं मिच्छत्तभंगो ।

६ ७८०. मोलमकमाय-णवणोकसायाणमिह सेसत्तेण महणं, तेमिं च पयद-परुवणाए मिच्छत्तभंगो कायच्चो, भुजगारादिपदमंकामयाणं णियमा अत्थित्तेण तत्तो विसेमाभावादो । अवत्तच्चपयगदो द्धु शोवयगे विसेसो एत्थित्थि त्ति तण्णिद्वारणद्दुमुत्तर-सुत्तमाह—

❁ एवदि अवत्तच्चसंकामया भजियच्चा ।

६ ७८१. मिच्छन्नस्सावत्तच्चमंकामया णत्थि । एदमिं पुण अवत्तच्चमंकामया अत्थि ते च भजियच्चा त्ति उत्तं होइ । संपहि एदस्सेव भंगविचयस्स सुत्तणिदिट्टस्स फुडोकरणद्दुमुत्तारणं वत्तहस्सामो । तं जहा—णाणाजीवेहि भंगविचयाणुगमेण दुविहो णिडेमो—ओघेण आदेसेण य । ओघेण सम्म०-सम्मामि०-मिच्छ० विहत्तिभंगो । मोलसक०-णवणोक० भुज०-अप्पद०-अवट्टि० णियमा अत्थि । सिया एदं च अवत्तच्च-

समाधान—नहीं, क्योंकि मिथ्यात्वके भुजगारादिपदोंके संक्रामक अनन्त जीवोंका सर्वदा प्रवाहका विच्छेद हुए बिना अत्रस्थान देखा जाता है ।

❁ सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके सत्ताईस भंग होते हैं ।

६ ७८६. क्योंकि भुजगार, अवस्थित और अत्यन्तसंकामकांके भजनीयत्वके साथ अत्यन्तसंकामक धुनरूप देखा जाता है, इसलिए भजनीय पदोंका विरलन कर तथा उन्हें तिरुणाकर परस्पर गुणा करने पर ध्रुव भंगके साथ सत्ताईस भंग उत्पन्न होते हैं ।

उदाहरण— $३ \times ३ \times ३ = २७$  भंग । इन सत्ताइस भंगोंमें ध्रुव भंग सम्मिलित है ।

❁ शेष प्रकृतियोंका भंग मिथ्यात्वके समान है ।

६ ७८०. सोलह कपायों और नौ नोकपायोंका यहाँ पर शेष पदद्वारा ग्रहण किया है । उनका प्रवृत्त प्ररूपणामें मिथ्यात्वके समान भंग करना चाहिए, क्योंकि इनके भुजगार आदि पदोंका नियमसे अस्तित्व है, अतः उसके कथनसे इनके कथनमें कोई विशेषता नहीं है । मात्र प्रवक्तव्य-पदगत यहाँपर थोड़ीसी विशेषता है, इसलिए उभरका निर्धारण करनेके लिए प्राणोंका सूत्र कहने हैं—

❁ किन्तु उनके अवक्तव्यसंक्रामक जीव भजनीय हैं ।

७८१. मिथ्यात्वके अवक्तव्यसंक्रामक जीव नहीं हैं । परन्तु उनके अवक्तव्यसंक्रामक जीव हैं और वे भजनीय हैं यद उक्त कथनका तात्पर्य है । अथ सूत्रनिर्दिष्ट इसी भंगविचयका स्पष्टीकरण करनेके लिए उच्चारणाको यतलाते हैं । यथा—नानाजीवोंकी अपेक्षा भंगविचयानुगमसे निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश । ओघसे सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और मिथ्यात्वका भंग स्थितिभित्तिके समान है । सोलह कपायों और नोकपायोंके भुजगार, अत्यन्त और अवस्थित-

संक्रामओ च । सिया एदे च अवत्तव्वसंक्रामया च । आदेसेण सव्वणेरहय०-सव्व-  
तिरिक्ख-मणुणअपज्ज०-सव्वदेवा विहत्तिभंगो । मणुसतिय०३ मिच्छ०-सम्म०-सम्मामि०  
विहत्तिभंगो । सोलसक०-णवणोक० अप्पद०-अवट्ठि० णियसा अत्थि । सेसपदाणि  
भयणिज्जाणि । भंगा णव ९ । एवं जाव अणाहारि ति ।

§ ७८२. एत्थ सुगमत्तादो सुत्तेणापरुविदाणं भागाभाग-परिमाण-खेत्त-फोसणाणं  
किं चि समासपरुवणद्व्युच्चारणावलंबणं कस्सामो । तं जहा—भागाभागानु० दुविहो  
णिहेसो—ओषेण आदेसेण य । ओषेण विहत्तिभंगो । णवरि वारसक०-णवणोक० अवत्त०  
अणंतिमभागो । आदेसेण सव्वणेरहय-सव्वतिरिक्ख-मणुसअपज्ज०-सव्वदेवा ति विहत्तिभंगो ।  
मणुसा० विहत्तिभंगो । णवरि वारसक०-णवणोक० अवत्त० असंखे०भागो । मणुसपज्ज०-  
मणुसिणी० विहत्तिभंगो । णवरि वारसक०-णवणोक० अवत्त० संखे०भागो । एवं जाव० ।

§ ७८३. परिमाणानु० दुविहो णिहेसो—ओषेण आदेसेण य । ओषेण विहत्ति-  
भंगो । णवरि वारसक०-णवणोक० अवत्त० संक्रा० केत्तिया ? संखेज्जा । एवं मणुस०३ ।  
सेसमग्गणासु विहत्तिभंगो ।

§ ७८४. खेत्तं पोसणं च विहत्तिभंगो । णवरि ओषे मणुसतिए च वारसक०-  
संक्रामक जीव नियमसे हैं । कदाचित् ये जीव हैं और अवक्तव्यसंक्रामक एक जीव है । कदाचित्  
ये जीव हैं और अवक्तव्यसंक्रामक नाना जीव हैं । आदेशसे सब नारकी, सब तिर्यञ्च, मनुष्य  
अपर्याप्त और सब देवोंमें स्थितिभिक्तिके समान भंग है । मनुष्यत्रिकमें सिध्यात्त्र, सम्यक्त्व और  
सम्यग्मिध्यात्वका भंग स्थितिभिक्तिके समान है । सोलह कषायों और नौ नोक्षायोंके अल्पतर  
और अवस्थित पदके संक्रामक जीव नियमसे हैं । शेष पद भजनीय हैं । भंग ६ हैं । इसीप्रकार  
अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिए ।

§ ७८२. यहाँ पर सुगम होनेसे सूत्र द्वारा नहीं कहे गये भागाभाग, परिमाण, क्षेत्र और  
स्पर्शनका कुछ संक्षेपसे कथन करनेके लिए उच्चारणाका अवलम्बन करते हैं । यथा—भागाभाग-  
सुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओष और आदेश । ओषसे स्थितिभिक्तिके समान  
भंग है । किन्तु इतनी विशेषता है कि बारह कषायों और नौ नोक्षायोंके अवक्तव्यसंक्रामक जीव  
अनन्तवें भागप्रमाण हैं । आदेशसे सब नारकी, सब तिर्यञ्च, मनुष्य अपर्याप्त और सब देवोंमें  
स्थितिभिक्तिके समान भंग है । मनुष्योंमें स्थितिभिक्तिके समान भंग है । इतनी विशेषता है  
कि बारह कषायों और नौ नोक्षायोंके अवक्तव्यसंक्रामक जीव असंख्यातवें भागप्रमाण हैं ।  
मनुष्यपर्याप्त और मनुष्यनियोगमें स्थितिभिक्तिके समान भंग है । किन्तु इतनी विशेषता है कि  
बारह कषायों और नौ नोक्षायोंके अवक्तव्यसंक्रामक जीव संख्यातवें भागप्रमाण हैं । इसीप्रकार  
अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिए ।

§ ७८३. परिमाणानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओष और आदेश । ओषसे  
स्थितिभिक्तिके समान भंग है । किन्तु इतनी विशेषता है कि बारह कषायों और नौ नोक्षायोंके  
अवक्तव्यसंक्रामक जीव कितने हैं ? संख्यात हैं । इसी प्रकार मनुष्यत्रिकमें जानना चाहिए । शेष  
मार्गणाओंमें स्थितिभिक्तिके समान भंग है ।

§ ७८४. क्षेत्र और स्पर्शनका भङ्ग स्थितिभिक्तिके समान है । किन्तु इतनी विशेषता है  
कि ओषमें और मनुष्यत्रिकमें बारह कषायों और नौ नोक्षायोंके अवक्तव्यसंक्रामकोंका क्षेत्र और

णवणोक्क० अत्रच० लोगरय असंखे० भागे खेचं पोसणं च कायव्यं । एवमेदेसिमप्प-  
वणणिजाणं थोवयरवित्तेसन्भवपट्टपायणट्टमणुवाद्दं काऊण संपहि षाणाजीवसंर्वधि-  
कालपरुवणट्टमूवरिमं सुत्तपवयमणुगरामो—

⊗ षाणाजीवेदि कालो ।

१ ७८५. सुगममेदं सुत्तं, अट्टियारसंभालणमेत्तवावदत्तादो ।

⊗ मिच्छत्तरस भुजगार-अप्पदर-अवट्टिदसंकामया केवचिरं कालादो  
होति ? सन्वद्धा ।

१ ७८६. कुदो ? तिसु वि कालेशु एदंमि विग्हाणुवलंभादो ।

⊗ सम्मत्त-सम्मा मिच्छत्ताणं भुजगार-अवट्टिद-अवत्तव्वसंकामया  
केदचिरं कालादो होति ?

१ ७८७. सुवोत्तमेदं पुच्छामुत्तं ।

⊗ जरुवणेणेषसमथो ।

१ ७८८. दोण्डमेदंमि कन्माणमेयममयं भुजगानादिगंका मयत्तेण परिणदणाणा-  
जीवाणं विदियममण सन्वेमिमेव अप्पदरगंका मयपजायपरिणामे तदुवलद्वीदो ।

⊗ उक्कस्सेण आवलियाए असंज्जदिभागो ।

१ ७८९. कुदो ? षाणाजीवाणुमंवाणेण तेमिमेत्तियमेत्तकालावट्टाणोवलंभादो ।

सर्दान लोकरके असंख्यातवें भागप्रमाण करना चाहिए । इस प्रकार अल्पवर्णनीय इन अनुयोगद्वारोंकी  
धोड़ीनी सम्भार विशेषतः कथन करनेके लिए उल्लेख करते अथ नाना जीवसम्बन्धी कालना  
कथन करनेके लिए आगेके सूत्रप्रवचनवा अनुसरण करते हैं—

⊗ नाना जीवोंकी अपेक्षा कालका अधिकार है ।

१ ७८३. यह मूल सुगम है, क्योंकि अधिकारकी सम्हाल करनेमात्रमें इसका व्यापार है ।

⊗ मिथ्यात्वके भुजगार, अल्पतर और अवस्थितगंका मकोंका कितना काल  
है ? सर्वदा है ।

१ ७८६. क्योंकि तीनों ही कालमें इन पदोंका विरह नहीं उपलब्ध होता ।

⊗ सम्यक्त्व और असम्यग्मिथ्यात्वके भुजगार, अवस्थित और अवक्तव्यगंका मकोंका  
कितना काल है ?

१ ७८७. यह पुच्छामूत्र सुबोध है ।

⊗ जन्य काल एक समय है ।

१ ७८८. उन दोनों कर्मोंके एक समय तक भुजगारादिसंकमरूपसे परिणत हुए नाना जीवोंके  
दूसरे समयमें सभीके अल्पतरसंकमरूप पर्यायसे परिणत होने पर एक काल उपलब्ध होता है ।

⊗ उत्कृष्ट काल आचलिके असंख्यातवें भाग प्रमाण है ।

१ ७८९. क्योंकि नाना जीवोंका सन्ततिः विच्छेद न होकर निरन्तररूपसे उन पदोंका इतने  
कालतक ही अवस्थान उपलब्ध होता है ।

❀ अप्पदरसंकामया सव्वद्धा ।

§ ७९०. कुदो ? मिच्छाइड्डि-सम्माइड्डिणं पवाहस्स तदप्पयरसंकामयस्स तिसु वि कालेसु णिरंतरमवट्ठाणोवलंभादो ।

❀ सेसाणं कम्ममाणं भुजगार-अप्पयर-अवट्ठिदसंकामया केवचिरं कालादो होति ?

§ ७९१. सुगमं ।

❀ सव्वद्धा ।

§ ७९२. सव्वकालमविच्छिण्णसरूवेणेदेसिं संताणस्स समवट्ठाणादो ।

❀ अवत्तव्वसंकामया केवचिरं कालादो होति ।

§ ७९३. सुगमं ।

❀ जहएणेणेषसमओ, उक्कस्सेण संखेज्जा समया ।

§ ७९४. उवसामणादो परिवदिदाणमणुसंधिदसंताणाणमेत्थ जहण्णकालसंभवो, तेसिं चेव संखेज्जवारमणुसंधिदसंताणाणमवट्ठाणकालो उक्क० संखेज्जसमयमेत्तो वेत्तव्वो । एदेण सुत्तेणाणंताणुबंधीणि पि अवत्तव्वसंकामयाणमुक्कस्सकाले संखेज्जसमयमेत्ते अहप्पस्से तत्थ विसेससंभवमाह—

❀ एवचिरे अयांताणुबंधीणमवत्तव्वसंकामयाणं सम्मत्तभंगो ।

\* अल्पतरसंक्रामकोंका काल सर्वदा है ।

§ ७९०. क्योंकि मिथ्यादृष्टि और सम्यग्दृष्टियोंमें इन कर्मोंके अल्पतरसंक्रामकोंका प्रवाह तीनों ही कालोंमें निरन्तर पाया जाता है ।

\* शेष कर्मोंके भुजगार, अल्पतर और अवस्थितसंक्रामकोंका कितना काल है ?

§ ७९१. यह सूत्र सूगम है ।

\* सर्वदा है ।

§ ७९२. क्योंकि सर्वदा अविच्छिन्नरूपसे इनकी सन्तान उपलब्ध होती है ।

\* अवक्तव्यसंक्रामकोंका कितना काल है ?

§ ७९३. यह सूत्र सुगम है ।

\* जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल संख्यात समय है ।

§ ७९४. क्योंकि जिनकी सन्तान विच्छिन्न हो गई है ऐसे उपशमश्रेणियोंसे गिरे हुए जीवोंका यहाँ पर जघन्य काल सम्भव है । तथा संख्यात वार मिली हुई सन्तानवाले वर्णों जीवोंका संख्यात समयमात्र उत्कृष्ट अवस्थानकाल यहाँ पर ग्रहण करना चाहिए । इस सूत्रसे अनन्तानुबन्धियोंके भी अवक्तव्यसंक्रामकोंका उत्कृष्ट काल संख्यात समयमात्र प्राप्त होने पर वहाँ पर जो विशेषता सम्भव है उसका निर्देश करते हैं—

\* किन्तु इतनी विशेषता है कि अनन्तानुबन्धियोंके अवक्तव्यसंक्रामकोंका भंग सम्यक्त्वके समान है ।

१७५. जहण्णेणेषममो, उवकम्मेणात्थियाए अगरेये०भागो इच्चैदेण मेदाभावादो । एवमोपपन्नया मुचणिवत्ता गमा ।

१७६. एतो देवामागयमानेयेदेग मुचपयेणे सच्चिदादेगपञ्चणाए विधिचियंमो । पयसि सज्जानिए वाग्गक०-णरणो० अत्त० जह० एयम०, उर० संरोजा समया ।

⊙ जाणाजीयेति अंतरं ।

१७७. जाणाजीयमंयेथात्ताणहेनागंतं नदंनग्गज्जण्णत्तमाथो वि पत्ता-  
णियेगमेदेण मुचेग काउग नदितागणत्तमगग्गुनं भणए—

⊙ मिच्छत्तात्म भुजगार-अन्यदर-अवस्थिदसंक्रामयंतरं केयचिरं कालादो होदि ?

१७८. सुगमं ।

⊙ गग्धि अंतरं ।

१७९. सुगमं ।

⊙ नम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणं भुजगार-अवत्तव्यसंक्रामयंतरं केयचिरं कालादो होदि ?

१८०. सुगमं ।

⊙ जहण्णेणेषसमसो ।

१७५. क्योंकि उक्त-व वाक्य-समय ही और उक्त-व वाक्य-वर्ष-अवस्थान्तर्ष-  
मात्रमान ही इसमें नहीं बरतें भेद नहीं है । इस प्रकार सुगम निवृत्त-लोपप्रत्यय-समाप्त है ।

१७६. एतो देवामपेक्ष्यते इयं मुचपयणे इति सूत्रेण अवस्था-प्रकृत्या वरने पर-  
म्यनिमित्तान्तर-समान भंग है । किन्तु इतनी विवेचना ही कि मनुष्यप्रकृतं वारद-कालयो और नो-  
नोपपयोरे अत्र-अन्तरावयोऽत्र उच्यते काल एक समय ही और उक्त-काल-संग्रह-समय ही ।

⊙ अत्र नाना जीवोंकी अवस्था अन्तरका अर्थिकार है ।

१७७. नाना जीवसम्बन्धी काल-निर्देश करनेके बाद इसके अन्तरका घटलाते ही इस-  
प्रकार इयं मुच इति प्रतिज्ञाया निर्देश करनेके उक्त अन्तरका व्याख्यान करनेके लिए आगेवा सूत्र-  
वदते है—

⊙ मिथ्यात्वकं भुजगार, अन्यदर और अवस्थितसंक्रामकोंका अन्तरकाल-  
कितना है ?

१७८. यह सूत्र सुगम है ।

⊙ अन्तरकाल नहीं है ।

१७९. यह सूत्र सुगम है ।

⊙ सम्यक्त्वं और सम्यग्मिथ्यात्वकं भुजगार और अवक्तव्य संक्रामकोंका अन्तर-  
काल कितना है ?

१८०. यह सूत्र सुगम है ।

⊙ जघन्य अन्तरकाल एक समय ही ।



§ ८०१. सम्मत्त-सम्माभिच्छत्ताणं भुजगारमवत्त्वयं चां कालुण द्विदण्णाजीवाण-  
मेयसमयमंतरिय तदणंतरसमए पुणो वि केत्तियाणं पि तन्भावेण पादुब्भावविरोहाभावादो ।

✽ उक्कस्सेण चडवीसमहोरत्ते सादिरेये ।

§ ८०२. कुदो ? एत्तिएणुक्कस्संतरेण विणा पयदभुजगारावत्त्वसंक्रामयाणं  
पुणरुब्भावभावादो ।

✽ अप्पयरसंक्रामयंतरं केवचिरं कालादो होदि ? एत्थि अंतरं ।

§ ८०३. अप्पयरसंक्रामयंतरं केवचिरं होइ त्ति आसंक्रिय णत्थि अंतरमिदि  
तप्पडिसेहो कीरदे । कुदो पुण तदभावो ? तिसु वि कालेसु वोच्छेदेण विणा णिरंतरमेदेसिं  
पवाहस्स पवुत्तिदंसणादो ।

✽ अवद्विदसंक्रामयंतरं केवचिरं कालादो होदि ? जहएणोपोयसमओ ।

§ ८०४. सम्मत्त-सम्माभिच्छत्तुद्विदिसंतकम्मादो समयुत्तरमिच्छत्तुद्विदिसंत-  
कम्मियाणं केत्तियाणं पि जीवाणं वेदयसम्मत्तुप्पत्तिविदियसमए विवक्खियसंकमपजाएण  
परिणमिय तदणंतरसमए अंतरिदाणं पुणो अण्णजीवेहि तदणंतरोवरिसमए अवद्विद-  
पजापरिणदेहि अंतरवोच्छेदे कदे तदुवलंभादो ।

✽ उक्कस्सेण अंगुलस्स असंखेज्जदिभागो ।

§ ८०१. क्योंकि सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वके भुजगार या अवक्तव्यपदको करके स्थित  
हुए नाना जीवोंके एक समयका अन्तर देकर तदनन्तर समयमें फिरसे कितने ही जीवोंके उन दोनों  
पदों रूपसे परिणत होनेमें कोई विरोध नहीं आता ।

✽ उत्कृष्ट अन्तर काल साधिक चौबीस दिन-रात है ।

§ ८०२. क्योंकि इतना उत्कृष्ट अन्तर हुए बिना प्रकृत भुजगार और अवक्तव्यसंक्रामकोंकी  
फिरसे उत्पत्ति नहीं होती ।

✽ अल्पतरसंक्रामकोंका अन्तरकाल कितना है ? अन्तरकाल नहीं है ।

§ ८०३. अल्पतरसंक्रामकोंका अन्तरकाल कितना है ऐसी आशंका करके अन्तरकाल नहीं  
है इस प्रकार उसका निषेध किया ।

शंका—इनके अन्तरकालका अभाव क्यों है ?

समाधान—क्योंकि तीनों ही कालोंमें विच्छेदके बिना निरन्तर इनके प्रवाहकी प्रवृत्ति  
देखी जाती है ।

✽ अवस्थितसंक्रामकोंका अन्तरकाल कितना है ? जघन्य अन्तर एक समय है ।

§ ८०४. क्योंकि सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वके स्थितिसत्कर्मसे एक समय अधिक  
मिध्यात्वके स्थितिसत्कर्मवाले कितने ही जीवोंके वेदकसम्यक्त्वकी उत्पत्तिके दूसरे समयमें विवक्षित  
संक्रमपर्यायसे परिणाम कर तदनन्तर समयमें अन्तरको प्राप्त होने पर पुनः अन्य जीवोंके  
तदनन्तर उपरिम समयमें अवस्थितसंक्रम पर्यायसे परिणत होकर अन्तरका विच्छेद करने पर उक्त  
अन्तरकाल उपलब्ध होता है ।

✽ उत्कृष्ट अन्तर अंगुलके असंख्यातवें भागप्रमाण है ।



❀ सोलसकसायणवणोकसायाणं भुजगार-अल्पदर-अवडिदसंक्रामयाणं यत्थि अंतरं ।

§ ८०८. कुदो ? सव्वद्धमेदेसु अणंतस्स जीवरासिस्स जहापविभागमवट्ठान-दंसणादो । एवमोवेषण णाणाजीवसंबंधिणी अंतरपरूवणा गया ।

§ ८०९. एत्तो आदेसपरूवणाए विहत्तिभंगो । णवरि मणुसतिए वारसक०-णवणोक० अवत्तव्वसंक्रामयंतरं जह० एयस०, उक्क० वासपुधत्तं ।

§ ८१०. भावो सव्वत्थ ओदइओ भावो ।

❀ अप्पावहुअं ।

§ ८११. मिच्छत्तादिपयडिपडिचद्धभुजगारादिसंक्रामयाणमप्पावहुअं वण्णहस्सामो त्ति पइज्जावयणमेदमहियारसंभालणवकं वा ।

❀ सव्वत्थोवा मिच्छत्तभुजगारसंक्रामया ।

§ ८१२. दुसमयसंचिदत्तादो ।

❀ अवट्ठिदसंक्रामया असंखेज्जगुणा ।

§ ८१३. कुदो ? अंतोमुहुत्तसंचियत्तादो ।

❀ अप्पयरसंक्रामया संखेज्जगुणा ।

\* सोलह कषायों और नौ नोकपायोंके भुजगार, अल्पतर और अवस्थित-संक्रामकोंका अन्तरकाल नहीं है ।

§ ८०८. क्योंकि इन पदोंमें अनन्त जीवराशिका अपने-अपने प्रतिभागके अनुसार सर्वदा अवस्थान देखा जाता है । इस प्रकार ओषसे नाना जीवोंसे सम्बन्ध रखनेवाली अन्तरप्ररूपणा समाप्त हुई ।

§ ८०९. आगे आदेशकी प्ररूपणा करने पर उसका भंग स्थितिविमक्तिके समान है । किन्तु इतनी विशेषता है कि मनुष्यत्रिकमें बारह कषायों और नौ नोकपायोंके अवकल्पसंक्रामकोंका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्वप्रमाण है ।

§ ८१०. भाव सर्वत्र औदयिक है ।

\* अल्पबहुत्वका अधिकार है ।

§ ८११. मिथ्यात्व आदि प्रकृतियोंसे सम्बन्ध रखनेवाले भुजगार आदि पदोंके संक्रामकोंके अल्पबहुत्वको बतलाते हैं इस प्रकार यह प्रतिज्ञावाक्य है या अधिकारकी सम्हाल कुरनेवाला वाक्य है

\* मिथ्यात्वके भुजगारसंक्रामक जीव सबसे स्तोक हैं ।

§ ८१२. क्योंकि इनका सञ्चय दो समयमें हुआ है

\* उनसे अवस्थितसंक्रामक जीव असंख्यातगुणे हैं ।

§ ८१३. क्योंकि इनका सञ्चय अन्तर्मुहूर्तमें हुआ है ।

\* उनसे अल्पतरसंक्रामक जीव संख्यातगुणे हैं ।

६८१४. ज वि अप्पयरमंक्रमकालो दि अंनोमृद्दत्तमेत्तो चैव तो वि तत्कालसंचिद-  
जीवरासिस्स पुत्विन्नसंचयादो मरोज्जगणत्तं ण विरुज्जये, संतस्स हेट्ठा संयेज्जवार-  
मवट्टिद्विद्विंधेषु पादेअमंनोमृद्दत्तकालपट्टिवट्ठेसु परिणमिय यइं मंतसमाणवंधेण मच्चोसिं  
जीवाणं पणिमणदंमणादो ।

⊙ सम्भत्त-सम्मामिच्छत्तानं सन्वन्धोवा अचट्टिदसंकामया ।

६८१५. कुटो ? मन्पुत्तगमिच्छत्तद्विदिगंतक्रम्णेण वेदयगम्मत्तं पालियज्जमाण-  
जीवाणमदृन्ल्लहादो ।

⊙ भुजगारसंकामया असंखेज्जगुणा ।

६८१६. को गुणगारो ? आवलि० अयंरो०भागो । दोण्हमेदंमिमेयसमप-  
संचित्तेण मंते कुटो एन चिर्गाममातो चि णागंक्षणिज्जं, सत्तो एदमन विसयवदुत्तोव-  
लंभादो । नं कयं ? अचट्टिदंक्रमविमथो णिरुदेगट्टिदिमेत्तो, ममपुत्तगमिच्छत्तद्विदिगंत-  
क्रममादो अण्यत्थ नदभावणिण्णयादो । भुजगारमंक्रमो पुण दुममपुत्तगदिद्विदिवियप्पेसु  
मरोज्जगामागंक्रमपमाणावच्छिण्णेण अचट्टिदयपरगे । तदो तेसु टाट्ठण वेदयगम्मत्त-  
म्वममगम्मत्तं न पट्टिवज्जमाणो जीवरासो अयंरोज्जगुणो चि णिप्पलिवधमेदं ।

६८१७. यथापि अन्वयसंभवागो० एतन्न भी अचट्टितप्रमाण है तो भी उनके कालमें  
संचित हुए जीवराशि पूर्वोक्त संवत्सरमें संख्याशुद्धी है इतना कोई विरोध नहीं प्राता, क्योंकि  
प्रत्येक बार अन्वयसंभवे तथा तत्कालमें ही कय अवस्थित स्थितिविधयस्वरूपसे परिणमन कर एक  
बार मय जीवोक्त संवत्सरमें समान अन्वय पणिमम देया जाता है ।

⊙ सम्पक्क्य और मन्पगिभ्यात्त्वके अवस्थितसंक्रामक जीव सचसे स्तोक हैं ।

६८१८. क्योति मिभ्यात्त्वके एत्त समय अपिक्क स्थितिसंवत्सरके साथ वेदकमम्यवत्वकी  
प्राप्त होनेवाले जीव अतिदृढ हैं ।

⊙ उनसे भुजगारसंक्रामक जीव असंख्यातगुणे हैं ।

६८१९. गुणकार क्या है ? आवलिक्का अयंस्यात्तं भाग गुणुकार है ।

शंका—उक्त प्राणियोंके अस्तित्व और भुजगार इन दोनों पदोंका सङ्ग एक समयमें  
होने पर यह विराट्प्रकृतियों प्राप्त होती है ?

समाधान—कभी आशंका करना ठीक नहीं है, क्योंकि अवस्थितपदसे भुजगारपदका  
विषयवस्तु उपलब्ध होता है ।

शंका—यसंक्रमे ?

समाधान—क्योंकि अवस्थितसंक्रमका विषय विवक्षित एक स्थितिमात्र है, क्योंकि  
मिभ्यात्त्वके एक समय अधिक स्थितिसंवत्सरमें अन्यत्र उसके अभावका निर्णय है । परन्तु  
भुजगारसंक्रम दो समय अधिक स्थितिविधयसे लेकर संख्यात सागर प्रमाण अधिक स्थिति-  
विधयोंके प्राप्त होने तक अस्तित्व प्रत्यक्षता है, इसलिए उन स्थितिविधयोंमें स्थापित कर  
वेदकमम्यवत्व और उपसमसम्यवत्वके प्राप्त होनेवाली जीवराशि अस्तित्वगुणी है यह  
निर्विवाद है ।

❀ अवत्तव्वसंकामया असंखेज्जगुणा ।

§ ८१७. एत्थ वि गुणगारो आवलि० असंखे० भागमेचो । कुदो ? पलिदोवमा-  
संखेज्जभागमेचवेदग-उवसमपाओगुन्वेल्लणकाल०भंतरसंचयणिवंधणादो भुजगार-  
संकामयरासीदो अद्धपोगलपरियट्टकाल०भंतरसंचिदिणस्संतकम्मियरासिणस्संदस्सावत्तव्व-  
संकामयरासिस्स असंखेज्जगुणत्ते विसंवादाभावादो ।

❀ अप्पयरसंकामया असंखेज्जगुणा ।

§ ८१८. अवत्तव्वसंकामयरासी उवसमसम्माइट्ठीणमसंखे०भागो । एसो पुण  
उवसम-वेदगसम्माइट्ठिरासी सव्वो उव्वेल्लमाणमिच्छाइट्ठिरासी च तदो असंखेज्ज-  
गुणो जादो ।

❀ अणंताणुबंधीणं सव्वत्थोवा अवत्तव्वसंकामया ।

§ ८१९. कुदो ? पलिदोवमासंखेज्जभागपमाणत्तादो ।

❀ भुजगारसंकामया अणंतगुणा ।

§ ८२०. कुदो ? सव्वजीवरासिस्स असंखेज्जभागपमाणत्तादो ।

❀ अवट्ठिदसंकामया असंखेज्जगुणा ।

§ ८२१. कुदो ? सव्वजीवरासिस्स संखेज्जभागपमाणत्तादो ।

❀ अप्पयरसंकामया संखेज्जगुणा ।

\* उनसे अवक्तव्यसंक्रामक जीव असंख्यातगुणे हैं ।

§ ८१७. यहाँ पर भी गुणकार आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण है, क्योंकि वेदक और  
उपशमसम्यक्त्वके योग्य पत्थके असंख्यातवें भागप्रमाण उद्धे लनकालके भीतर सञ्चित हुई  
भुजगारसंकामक जीवराशिसे अर्धपुद्गलपरिवर्तन कालके भीतर सञ्चित हुई उक्त प्रकृतियोंके  
सत्कर्मसे रहित जीवराशिमेंसे प्राप्त हुई अवक्तव्यसंक्रामक जीवराशिसे असंख्यातगुणे होनेमें कोई  
विसंवाद नहीं है ।

\* उनसे अल्पतरसंक्रामक जीव असंख्यातगुणे हैं ।

§ ८१८. क्योंकि अवक्तव्यसंक्रामक जीवराशि उपशमसम्यग्दृष्टियोंके असंख्यातवें  
भागप्रमाण है । परन्तु यह जीवराशि उपशम और वेदकसम्यग्दृष्टि तथा उद्धे लना करनेवाली समस्त  
मिथ्यादृष्टि राशिप्रमाण है, अतः पूर्वोक्त राशिसे यह राशि असंख्यातगुणी हो गई है ।

\* अनन्ताबन्धियोंके अवक्तव्यसंक्रामक जीव सबसे स्तोक हैं ।

§ ८१९. क्योंकि ये पत्थके असंख्यातवें भागप्रमाण हैं ।

\* उनसे भुजगारसंक्रामक जीव अनन्तगुणे हैं ।

§ ८२०. क्योंकि ये सब जीवराशिके संख्यातवें भागप्रमाण हैं ।

\* उनसे अवस्थितसंक्रामक जीव असंख्यातगुणे हैं ।

§ ८२१. क्योंकि ये सब जीवराशिके संख्यातवें भागप्रमाण हैं ।

\* उनसे अल्पतरसंक्रामक जीव संख्यातगुणे हैं ।

§ ८२२. अवद्विसंक्रमावद्वाणकालादो अप्परसंक्रमपरिणामकालरत संखेज-  
गुणत्तादो ।

❀ एवं सेसाणं कम्ममाणं ।

§ ८२३. जहाणंताणुवंधीणं पयदप्पावहुअपरूवणा कया एवं चैव सेसकसाय-  
णोकसायाणं पि कायव्वं, विसेसाभावादो । एवमोघपरूवणा सुत्तणिवद्दा कया ।

§ ८२४. एत्तो एदस्स फुडीकरणद्वमादेसपरूवणद्वं त तदुच्चारणाणुममं  
कस्सामो । तं जहा—अप्पावहुआणु० द्रुविहो णिहेसो—ओघेण आदेसेण य । ओघेण  
मिच्छ०-सम्म०-सम्मामि० विहत्तिभंगो । सोलसक०-णवणोक० सञ्चत्थोवा अवत्त०-  
संका० । भुज०संका० अणत्तगुणा । अवद्वि०संका० असखे०गुणा० । अप्पद०संका०  
संखे०गुणा । मणुसेसु सम्म०-सम्मामि०-मिच्छ० विहत्तिभंगो । सोलसक०-णवणोक०  
सञ्चत्थोवा अवत्त०संका० । भुज०संका० असखेजगुणा । अवद्वि०संका० असखे०गुणा ।  
अप्पर०संका० संखे०गुणा । एवं मणुसपज्जत्त-मणुसिणीसु । णवरि सञ्चत्थ संखेजगुणं  
कायव्वं । सेसगइमग्गणाभेदेषु विहत्तिभंगो । एवं जाव० ।

एवमुत्तरपयद्विद्विसंक्रमस्त भुजगारो समाप्तो ।

§ ८२२. क्योंकि अवस्थितसंक्रामकोंके अवस्थानकालसे अल्पतरसंक्रामकोंका परिणामकाल  
संख्यातगुणा है ।

❀ इसीप्रकार गेप कर्मोंका प्रकृत अल्पवहुत्व है ।

§ ८२३. जिस प्रकार अनन्तानुपत्तियोंके प्रकृत अल्पवहुत्वका कथन किया है इसीप्रकार  
शेष कर्मायों और नोकर्मायोंके अल्पवहुत्वका भी कथन करना चाहिए, क्योंकि उससे इसमें कोई  
विशेषता नहीं है । इसप्रकार सूत्रोंमें नियत ओघप्ररूपणा की ।

§ ८२४. आगे इसे स्पष्ट करनेके लिए और आदेशप्ररूपणा करनेके लिए उसकी उच्चारणाका  
अनुगम करते हैं । यथा—अल्पवहुत्वानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और  
आदेश । ओघसे मिथ्यात्व, सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका भंग स्थितिबिभक्तिके समाप्त है ।  
सोलह कर्मायों और नौ नोकर्मायोंके अवक्तव्यसंक्रामक जीव सबसे स्तोत्र हैं । उनसे भुजगार-  
संक्रामक जीव अनन्तगुणें हैं । उनसे अवस्थितसंक्रामक जीव असंख्यातगुणें हैं । उनसे  
अल्पतरसंक्रामक जीव संख्यातगुणें हैं । मनुष्योंमें सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और मिथ्यात्वका  
भंग स्थितिबिभक्तिके समान है । सोलह कर्मायों और नौ नोकर्मायोंके अवक्तव्यसंक्रामक जीव  
सबसे स्तोत्र हैं । उनसे भुजगारसंक्रामक जीव असंख्यातगुणें हैं । उनसे अवस्थितसंक्रामक जीव  
असंख्यातगुणें हैं । उनसे अल्पतरसंक्रामक जीव संख्यातगुणें हैं । इसीप्रकार मनुष्य पर्याप्त और  
मनुष्यनियोंमें जानना चाहिए । किन्तु इतनी विशेषता है कि संख्यातगुणा करना चाहिए ।  
गतिमार्गोंके गेप भेदोंमें स्थितिबिभक्तिके समान भंग है । इसीप्रकार अनाहारक मार्गणा तक  
जानना चाहिए ।

इसप्रकार उत्तरप्रकृतस्थितिसंक्रमका भुजगार समाप्त हुआ ।

❀ पदाणिक्खेवे तत्थ इमाणि तिण्णिण अणियोगद्वाराणि—समुक्कित्ताणामित्तमप्पावहुअं च ।

§ ८२५. एदेण सुत्तेण पदाणिक्खेवे तिण्हमणिओगद्वाराणं संभवो तण्णामणिहेसो च कओ । एवमेदेहि तीहि अणियोगद्वारेहि पदाणिक्खेवं परूवेमाणो जहा उद्देशो तथा णिहेसो त्ति णायमवलंबिय समुक्कित्तणमेव ताव परूवेदुमुचरसुचमाह—

❀ तत्थ समुक्कित्ताणं सञ्वासिं पयडीणमुक्कस्सिया वड्डी हाणी अवड्डाणं च अत्थि ।

§ ८२६. तत्थ तेसु तिसु अणियोगद्वारेसु समुक्कित्ताणां ताव उच्चदे—तत्थ दुविहो णिहेसो ओधादेसमेदेण । ओधेण ताव सञ्वासिं मोहपयडीणमत्थि उक्कस्सिया वड्डी हाणी अवड्डाणं च । द्विदिसंक्रमस्से त्ति एत्थाहियारसंबंधो कायव्वो ।

❀ एवं जहणणयस्स चि णेदव्वं ।

§ ८२७. जहा सञ्वासिं पयडीणमुक्कस्सवड्डी-हाणि-अवड्डाणसंक्रमो समुक्कित्तिदे एवं जहणणयस्स चि वड्डी-हाणि-अवड्डाणसंक्रमस्स समुक्कित्तणं शोदव्वं । तं क्वं ? सञ्वासिं पयडीणमत्थि जहण्णिया वड्डी हाणी अवड्डाणं च ।

एवमोवसमुक्कित्ताणां गया ।

आदेसेण सञ्चमग्गणासु विहत्तिमंगो ।

\* पदनिक्षेपका अधिकार हैं । उसमें ये तीन अनुयोगद्वार हैं—समुत्कीर्तना, स्वामित्व और अल्पवहुत्व ।

§ ८२५. इस सूत्र द्वारा पदनिक्षेपमें तीन अनुयोगद्वारोंकी सम्भावनाके साथ उनके नामोंका निर्देश किया है । इसप्रकार इन तीन अनुयोगद्वारोंके द्वारा पदनिक्षेपका कथन करते हुए उद्देशके अनुसार निर्देश किया जाता है इस न्यायका अवलम्बन लेकर सर्वप्रथम समुत्कीर्तनका ही कथन करनेके लिए आगेका सूत्र कहते हैं—

\* प्रकृतमें समुत्कीर्तना इसप्रकार है—सर्व प्रकृतियोंको उत्कृष्ट वृद्धि, हानि और अवस्थान हैं ।

§ ८२६. उन तीन अनुयोगद्वारोंमें सर्वप्रथम समुत्कीर्तना कथन करते हैं । उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओष और आदेश । ओषसे मोहनायकी सर्व प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट वृद्धि, हानि और अवस्थान है । 'स्थितिसंक्रमक' इसप्रकार यहाँ पर अधिकारका सन्बन्ध कर लेना चाहिए ।

\* इसीप्रकार जघन्य वृद्धि, हानि और अवस्थान भी जानना चाहिए ।

§ ८२७. जिस प्रकार सर्व प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट वृद्धि, हानि और अवस्थानसंक्रमकी समुत्कीर्तना की उसी प्रकार जघन्य वृद्धि, हानि और अवस्थानसंक्रमकी भी समुत्कीर्तना जाननी चाहिए ।

शंका—वह कैसे ?

समाधान—सर्व प्रकृतियोंकी जघन्य वृद्धि, हानि और अवस्थान है ।

इस प्रकार ओषसमुत्कीर्तना समाप्त हुई ।

⊙ सामिन्तं ।

१ ८२८. ममुचित्तणान्तं नामित्तमवतरपत्तं कायव्यमिदि अदियारंभालण-  
वयणमेदं ।

⊙ मिच्छत्त-सोत्तसकसायाणमुफस्सिया वट्टी कस्स ?

१ ८२९. मिच्छत्तादीणमृगग्गंत्तित्तंममुट्टाण को सामिओ ति पुच्छंत्तं होइ ।

⊙ जो चउट्टाणियजवमज्झमस उचरि अंतोकोटाकोट्टिदिमंतोमुट्ट-  
संक्रमेमाणो सो सच्चमत्तं दाहं गदो तदो उफस्सत्तदिदि पयट्ठो तस्सा-  
वलिवादीदस्स तस्स उफस्सिया वट्टी ।

१ ८३०. ता अंतोकोटाकोट्टिदिमंतोमुट्टं नंक्रामेमाणो अक्किदं उरम्म-  
दाहवसेणाग्गंत्तदि पयट्ठो तम्म्यावलिवादीदम्म निरुवियरुक्कमाणमम्मियट्टिदिगंम-  
मुट्टो होइ ति मुचय्यमंघंणे । मा एण अंतोकोटाकोट्टो अणेवावियप्पा, धुवट्टिदीदो प्पट्टि-  
ममयुग्गमट्टिमणे ततो गंतोत्तमुग्गो ट्टिदीदो उल्लापिय नट्टाग्गविजपावट्टाणादो ।  
तन्व किम्मग्गंतोकोटाकोट्टाण ममयुग्गमाग्गेवमकोटाकोट्टियमाणे एह मट्ठणं, आहो  
जहण्णाण धुवट्टिदिमाणवावन्तिग्गण, उट्टाहो तत्पाओग्गाए अजहण्णाणुग्गमवियप्प-  
पट्टिवट्टाए नि एण्य णिण्णवकरणट्टीमदं विसेणणं चउट्टाणियजवमज्झम्म उचरि ति । तं च

८. स्वामिन्तका अधिकार है ।

१ ८२८. ममुचित्तं नामित्तं वाद 'परमर काम स्वामिन्तं वरणा धादिण इत्थपरा अधिकारकी  
सम्झान हन्तेपरात यद व त्तं है ।

⊙ मिथ्यान्त और मोल्ल कथायोंको उच्छृष्ट वृत्ति क्रियके जेती है ।

१ ८२९. मिथ्यान्त आदिकी उच्छृष्ट मिथ्यान्तप्रमाण प्रमाण योन है यद पृच्छा  
की गई है ।

⊙ जो चतुःस्थानिक यवमायके उपर अन्तःकोटाकोट्टीप्रमाण विधितिका  
अन्तर्मुहूर्तकाल तक संक्रमण कर रहा है उसने अन्यन्त उच्छृष्ट दाहको प्राप्त होकर  
उससे उच्छृष्ट स्थितिका वन्ध क्रिया उसके एक आवलिके वाद उच्छृष्ट वृत्ति होती है ।

१ ८३०. जो अन्तःकोटाकोट्टीप्रमाण स्थितिका अन्तर्मुहूर्तकाल तक संक्रमण करता हुआ  
रिहत है, उसने उच्छृष्ट दाहवश उच्छृष्ट स्थितिपन्ध क्रिया उसके एक आधिके वाद विवाचित्त  
कर्मोंकी उच्छृष्ट स्थितिसंक्रमणदि होती है किंवा इन मूत्रका 'अर्थमन्धन्ध' है । परन्तु वह अन्तःकोटा-  
कोट्टी धुवट्टिदिदिमे लेपर एक समय अग्निके आदिके क्रममें अनेक प्रकारकी है, क्योंकि धुवट्टिदिदिमे  
संख्यातमुग्गी विधितिको उच्छृष्टन कर उसके उच्छृष्ट विषयका अन्वयान है । उसमेंसे एक समय  
कम कोटाकोट्टी सागरप्रमाण उच्छृष्ट अन्तःकोटाकोट्टीका यदो पर मट्ठण क्रिया है वा धुवट्टिदिदि-  
प्रमाण जपन्थ अन्तःकोटाकोट्टीका मट्ठण क्रिया है वा अजयन्तोरच्छृष्ट विकल्पवाली अन्तःकोटा-  
कोट्टीका मट्ठण क्रिया है उसप्रकार यदों पर निर्णय करनेके लिए 'चतुःस्थानिक यवमायके उपर'  
यद विशेषण दिया है । यद चतुःस्थानिक यवमाय दो प्रकारका है—मातप्रामांय और असात-



चउड्डाणियजवमज्झं दुविहं—सादपाओग्गमसादपाओग्गं च । तत्थ पयरणवसेणासाद-  
पाओग्गस्स गहणमिह विण्णयेयं, अण्णहा सच्चुक्कस्सट्ठिदिवंघहेदुत्तिच्चयरदाहपरिणामाणुव-  
चत्तीदो । सच्चुक्कस्सविसोहीणिणिवंघणस्स सादचउड्डाणजवमज्झस्स सच्चमहंतदाहहेउत्त-  
विरोहादो च । तदो असादचउड्डाणियाणुभागवंघपाओग्गजवमज्झस्स उवरि जा अंतोकोडा-  
कोडी णिच्चियप्पंतोकोडाकोडीदो संखेज्जगुणहीणा दाहट्ठिदिसण्णिदा सेह गहेयच्चा,  
हेट्ठिमासेसट्ठिदिसंक्रमियप्पाणमुक्कस्सदाहविरुद्धसहावत्तादो । ण च सच्चमहंतेण दाहेण  
विणा उक्कस्सओ ट्ठिदिवंघो होइ, विप्पडिसेहादो । तम्हा चउड्डाणियजवमज्झस्सुवरि जो  
एवंविहमंतोकोडाकोडिट्ठिदिसंक्रमणो समवट्ठिदो सच्चमहंतेण दाहेण परिणदो संतो  
उक्कस्सट्ठिदिं पवंघदि तस्स आवलियादीदं संकामेमाणयस्स पयदक्कम्माणमुक्कस्सिया वट्ठी  
ट्ठिदिसंक्रमविसया होदि त्ति सिद्धं । एत्थ वट्ठिपमाणं दाहट्ठिदिपरिहीणसत्तरि-चालीस-  
सागरोवयकोडाकोडिमिचअणंतरेहेट्ठिमसमयसंक्रमादो सामित्तसमए ट्ठिदिसंक्रमस्स तेत्तिय-  
मेत्तेण वुट्ठिदंसणादो । एवमेदेसिं कम्माणमुक्कस्सचट्ठीए सामित्तं परूविय तस्सेवावट्ठान-  
सामित्तं पि उक्कस्सयं विदियसमए होइ त्ति जाणावणट्ठं सुत्तमुत्तरं भणइ—

❀ तस्सेव से काले उक्कस्सयमवट्ठायं ।

९ ८३१. तस्सेव उक्कस्सवुट्ठिसंक्रमसामित्तमुवगयस्स से काले तत्तियमेव संकामे-  
माणयस्स उक्कस्समवट्ठायं होदि । कुदो? उक्कस्सवुट्ठीए अविणट्ठसरूवेण तत्थावट्ठानदंसणादो ।

प्रायोग्य । इनमेंसे प्रकारणवश असातप्रायोग्य यवमध्यका यहाँ पर ग्रहण जानना चाहिए, अन्यथा सर्वोत्कृष्ट स्थितिवन्धका हेतुभूत तीव्रतर दाहपरिणामकी उत्पत्ति नहीं बन सकती तथा सबसे उत्कृष्ट विशुद्धिकारणक सातचतुःस्थान यवमध्यके सर्वोत्कृष्ट दाहहेतुक होनेमें विरोध आता है । इसलिए असातचतुःस्थानीय अनुभागवन्धके योग्य यवमध्यके ऊपर निर्विकल्प अन्तःकोड़ाकोड़ीसे संख्यात-  
गुणी हीन जो दाहसंज्ञावाली अन्तःकोड़ाकोड़ी स्थिति है उसे यहाँ ग्रहण करना चाहिए, क्योंकि अधस्तन समस्त संक्रमविकल्प उत्कृष्ट दाहके विरुद्ध स्वभाववाले हैं । और सर्वोत्कृष्ट दाहके बिना उत्कृष्ट स्थितिवन्ध नहीं होता, क्योंकि ऐसा होनेका निषेध है । इसलिए चतुःस्थानिक यवमध्यके ऊपर जो इस प्रकारकी अन्तःकोड़ाकोड़ीप्रमाण स्थितिका संक्रम करता हुआ स्थित है वह सर्वोत्कृष्ट दाहसे परिणत होकर उत्कृष्ट स्थितिको बाँधता है उसके एक आवलिके वाद संक्रमण करते हुए प्रकृत कर्मोंकी स्थितिसंक्रमावपयक उत्कृष्ट वृद्धि होती है यह सिद्ध हुआ । यहाँ पर वृद्धिका प्रमाण दाहस्थितसे हीन सत्तर और चालीस कोड़ाकोड़ी सगरप्रमाण स्थिति है, क्योंकि अनन्तर पूर्व समयमें हुए संक्रमसे स्वामित्वके समयमें स्थितिसंक्रमसे तत्प्रमाण वृद्धि देखी जाती है । इसप्रकार इन कर्मोंकी उत्कृष्ट वृद्धिके स्वामित्वका कथन करके उसीके उत्कृष्ट अवस्थान स्वामित्व दूसरे समयमें होता है यह जतानेके लिए आगेका सूत्र कहते हैं—

❀ उसीके अनन्तर समयमें उत्कृष्ट अवस्थान होता है ।

९ ८३१. उत्कृष्ट वृद्धिसंक्रमके स्वामित्वको प्राप्त हुए उसी जीवके अनन्तर समयमें उतना ही संक्रम करते हुए उत्कृष्ट अवस्थान होता है, क्योंकि उत्कृष्ट वृद्धिका विनाश हुए बिना वहाँ पर

एवमुक्त्वावद्विपुण्यवद्विहाणसामितं परुविय संपहि पयदकम्माणमुक्त्वाहाणीए सामित्त-  
विहाणट्टमुत्तरसुत्तं भणइ—

❁ उक्त्वास्सिया हाणी कस्स ?

§ ८३२. सुगमं ।

❁ जेण उक्त्वास्सद्विद्विखंडयं घादिदं तस्स उक्त्वास्सिया हाणी ।

§ ८३३. जेसुक्त्वास्सद्विद्विसंक्रमादो अंतोमुहुत्तपडिभागोणुक्त्वास्सयं द्विद्विखंडयं घादिदं  
तस्सुक्त्वास्सिया हाणी होइ, तत्थुक्त्वास्सद्विद्विखंडयमेत्तस्स द्विद्विसंक्रमस्स एकसराहेण  
परिहाणदंमणादो । केत्थियमेत्ते च तमुक्त्वास्सद्विद्विखंडयं ? अंतोकोडाकोडिपरिहीण  
कम्मद्विदिमेत्तं, उक्त्वास्समुत्तुदीदो किञ्चणपमाणत्तादो । एदस्सेव पमाणपरिच्छेदस्स साहणट्ट-  
मिदमाह—

❁ जं उक्त्वास्सद्विद्विखंडयं तं थोवं । जं सच्चमहंतं दाहं गदो त्ति  
भणिदं तं विसेसाहियं ।

§ ८३४. जमुक्त्वास्सद्विद्विखंडयमुक्त्वास्सहाणीए विसईकयं तं थोवं । जं पुण उक्त्वास्स-  
वद्विपरुवणाए सच्चमहंतं दाहं गदो त्ति भणिदं तं विसेसाहियं । एत्थ कजे कारणोव  
यारेण सच्चमहंतदाहजणिदा वुट्ठी चैव सच्चमहंतदाहसहेण णिहिट्ठा । तदो उक्त्वास्स-  
हाणीदो उक्त्वास्सद्विद्विखंडयसरुवादो उक्त्वास्सिया वट्ठी विसेसाहिया त्ति वुत्तं होइ ।

अवस्थान देखा जाता है । इस प्रकार उत्कृष्ट वृद्धिपूर्वक अवस्थानके स्वामित्वका कथन करके अब  
प्रकृत कर्मोंकी उत्कृष्ट हानिके स्वामित्वका विधान करनेके लिए आगेका सूत्र कहते हैं—

❁ उत्कृष्ट हानि किसके होती है ?

§ ८३५. यह सूत्र सुगम है ।

❁ जिसने उत्कृष्ट स्थितिकाण्डकका घात किया है उसके उत्कृष्ट हानि होती है ।

§ ८३६. जिसने उत्कृष्ट स्थितिसंक्रमसे अन्तर्मुहूर्त कालमें प्रतिभन्न होकर उत्कृष्ट  
स्थितिकाण्डकका घात किया है उसके उत्कृष्ट हानि होती है, क्योंकि वहाँ पर उत्कृष्ट स्थितिकाण्डक-  
प्रमाण स्थितिसंक्रमकी एक वारमें हानि देखी जाती है ।

शंका—यह उत्कृष्ट स्थितिकाण्डक कितना है ?

समाधान—अन्तःकोड़ाकोड़ी कम कर्मस्थितिप्रमाण है, क्योंकि वह उत्कृष्ट वृद्धिसे कुछ  
न्यून प्रमाण है ।

उसीके प्रमाणका परिच्छेद साधनेके लिए यह आगेका सूत्र कहते हैं—

❁ जो उत्कृष्ट स्थितिकाण्डक है वह स्तोक है । जो सर्वोत्कृष्ट दाहको प्राप्त  
हुआ है ऐसा कहा है वह विशेष अधिक है ।

§ ८३७. उत्कृष्ट हानिका विषयीकृत जो उत्कृष्ट स्थितिकाण्डक है वह स्तोक है । तथा  
उत्कृष्ट वृद्धिकी प्ररूपणामें सर्वोत्कृष्ट दाहको प्राप्त हुआ ऐसा कहा है वह विशेष अधिक है । यहाँ पर  
कार्यमें कारणका उपचार करनेसे सर्वोत्कृष्ट दाहजनित वृद्धि ही सर्वोत्कृष्ट दाह शब्द द्वारा निर्दिष्ट  
की गई है । इसलिये उत्कृष्ट स्थितिकाण्डकस्वरूप उत्कृष्ट हानिसे उत्कृष्ट वृद्धि विशेष अधिक है यह

केचित्तियमेत्तो विसेसो ? अंतोकोडाकोडिमेत्तो । किमद्भुमेदं थोवं बहुत्तमणवसरपत्तमेव  
सामित्तपरुवणाए वुत्तमिदि सयमेवासंकिय तत्थुत्तरमाह—

❀ एदमप्पाबहुअस्स साहणं ।

§ ८२५. एदमणतरपरुविदं द्विदिखंडयस्स सच्चमहंतं दाहजणिदद्विदिवंधपसरस्स  
च जं थोवबहुत्तं तमुक्कस्सवड्ढि-हाणोणमुवरि भणिस्समाणथोवबहुत्तस्स साहणमिदि कड्डु  
सिस्सहिदद्वमिह परुविदं, तस्सा पेदमसंबद्धमिदि । एवं ताव मिच्छत्त-सोलसकसायाण-  
मुक्कस्सवड्ढि-हाणि-अवट्टाणसामित्तं परुविय षोकसायाणं पि सामित्ताणुगमे एसो चेव कसो  
त्ति पटुप्पायणड्डुत्तरसुत्तमाह—

❀ एवं णवषोकसायाणं ।

§ ८२६. जहा मिच्छत्तादीणमुक्कस्सवड्ढि-हाणि-अवट्टाणसामित्तपरिक्खा कया  
तहा णवषोकसायाणं पि कायन्वा, पाएण साहम्मदंसणादो । विसेसो दु वड्ढि-अवट्टाण-  
सामित्ते थोवयरो अत्थि त्ति जाणावणड्डुत्तरं सुत्तइयमाह—

❀ णवरि कसायणमावलिपूणमुक्कस्सद्विदिपडिच्छिदूणावलिपा-  
दीदस्स तस्स उक्कस्सिया वड्ढी । से काले उक्कस्सियमवट्टाणं ।

उक्त कथनका तात्पर्य है । विशेषका प्रमाण कितना है ? अन्तःकोडाकोडीप्रमाण है । यह अनवर  
प्राप्त अल्पबहुत्व स्वामित्व प्रकृत्यामे किसलिए कहा है इस प्रकार स्वयं ही आशंका कर इस  
विषयमे उत्तर देते हैं—

यह अल्पबहुत्वका साधन है ।

§ ८२५. यह पहले जो स्थितिकाण्डकका और सर्वोत्कृष्ट दाहजनित स्थितिवन्धुप्रसरका  
अल्पबहुत्व कहा है वह आगे कहे जानेवाले उत्कृष्ट वृद्धि-हानिसम्बन्धी अल्पबहुत्वका साधन है  
ऐसा समझकर शिष्योंके हृदयमें स्थित उक्त अल्पबहुत्वका यहाँ पर कथन किया है, इसलिए यह  
प्रकृतमे असंगत नहीं है । इसप्रकार मिथ्यात्व और सोलह कषायोंकी उत्कृष्ट वृद्धि, हानि और  
अवस्थानके स्वामित्वका कथन करके नोकषायोंके भी स्वामित्वका अनुगम करनेमें यही क्रम है  
ऐसा कथन करनेके लिए आगेका सूत्र कहते हैं—

इसी प्रकार नौ नोकषायोंकी उत्कृष्ट वृद्धि, हानि और अवस्थानका स्वामी  
जानना चाहिए ।

§ ८२६. जिसप्रकार मिथ्यात्व आदिकी उत्कृष्ट वृद्धि, हानि और अवस्थानके स्वामित्वकी  
परीक्षा की उसीप्रकार नौ नोकषायोंकी भी करनी चाहिए, क्योंकि इन सबके स्वामित्वमें प्रायः कर  
साधर्म्य देखा जाता है । परन्तु वृद्धि और अवस्थानके स्वामित्वमे थोड़ीसी विशेषता है, इसलिए  
उसे जतानेके लिए आगेके दो सूत्र कहते हैं—

\* किन्तु इतनी विशेषता है कि कषायोंकी एक आवलिक्रम उत्कृष्ट स्थितिका नौ  
नोकषायोंमें संक्रम करके एक आवलिके बाद उसकी उत्कृष्ट वृद्धि होती है । तथा  
तदनन्तर समयमें उत्कृष्ट अवस्थान होता है ।

§ ८३७. कुट्टो एवं कीरदे चे ? ण, समुहेपेदेसिं चालीससागरोवमकोडाकोडीणं वंधाभावेण कसायुकस्मद्विदिपडिग्गहमुहेण तहा सामित्तविहाणादो । तदो वंधावलिपूणं कसायद्विदिमुकस्सियं सगापायोगंतोकोडाकोडिद्विदिसंक्रमे पडिच्छियूण संक्रमणावलिपा-  
दिकंतस्स पयदसामित्तमिदि सुसंवद्धमेदं । हाणीए णत्थि विसेसो, उक्कस्सद्विदिघादविसए तस्सामित्तपडिलंभस्स सव्वत्थ णाणत्ताभावादो । एत्थ पमाणाणुगमे कसायभंगो । णवरि णनुंसयवेदारु-भोग-भय-दुगुंछाणमुक्कस्सद्विदिवुट्ठी अवट्टाणं च वीससागरोवमकोडा-  
कोडीओ पलिदोवमामखेजभागम्भदियाओ । कुट्टो ? कसायाणमुक्कस्सद्विदिबंधकाले तेसिं पि रूवणावाहाकंडएणणीवीससागरोवमकोडाकोडिमेत्तद्विदिबंधस्स दुप्पडिसेहत्तादो । एवमेदं परुविय मंपहि सम्मत-सम्मामिच्छत्ताणं पयदसामित्तविहाणद्वमुवरिमो सुत्तपवट्ठी—

❖ सम्मत-सम्मामिच्छत्ताणमुक्कस्सिया घट्ठी कस्स ?

§ ८३८. सुगमं ।

❖ वेदगसम्मत्तपाओग्गजहएणद्विदिसंतकम्मियो मिच्छत्तस्स उक्कस्सदिदिं वंधियूण द्विदिघादमकाज्जए अंतोयुट्ठोत्तेण सम्मतं पडिक्कणो तस्स विदियसमयसम्माहद्विस्स उक्कस्सिया वट्ठी ।

§ ८३९. शंका—ऐसा क्यों किया जाता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि स्वमुखसे उनका चालीस फोड़ाकोड़ीसागरप्रमाण वन्ध नहीं होनेसे कपायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका प्रतिप्रद होनेके बाद उनके द्वारा उस प्रकारके स्वामित्वका विधान किया है । इसलिए कपायोंकी वन्धासलसे न्यून उत्कृष्ट स्थितिको अपने योग्य अन्तःकोड़ाकोड़िप्रमाण स्थितिमें संक्रमित करके संक्रमणवलीके बाद उनका प्रकृत स्वामित्व प्राप्त होता है यह सुसम्बद्ध है ।

हानिमें कोई विरोधता नहीं है, क्योंकि उत्कृष्ट स्थितिघातको विषयकर उत्कृष्ट हानिके स्वामित्वकी प्राप्ति सर्वत्र भेदरहित है । यहाँ पर प्रमाणका अनुगम करने पर कपायोंके समान भंग है । किन्तु इतनी विरोधता है कि नर्धुमकवेद, श्ररति, शोक, भय और जुगुप्साकी उत्कृष्ट स्थितिबुद्धि और अवस्थान पत्यका असंख्यातवर्षों भाग अधिक वीस फोड़ाकोड़ी सागर है, क्योंकि कपायोंकी उत्कृष्ट स्थितिके वन्धकालमें उनका भी एक कम आवाधाकाण्डकसे न्यून वीस फोड़ाकोड़ीसागर-प्रमाण स्थितिवन्ध प्रतिषेध करनेके लिए अशक्य है । इस प्रकार इसका यहाँ पर कथन करके अब सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके प्रकृत स्वामित्वका विधान करनेके लिए आगेका सूत्रप्रवन्ध कहते हैं—

❖ सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट वृद्धि किसके होती है ?

§ ८३८. यह सूत्र सुगम है ।

❖ वेदकसम्यक्त्वके योग्य जघन्य स्थितिसत्कर्मवाला जो जीव मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका वन्ध कर स्थितिघात किये बिना अन्तर्गुहर्तमें सम्यक्त्वको प्राप्त हुआ, द्वितीय समयवर्ती उस सम्यग्दृष्टिके उत्कृष्ट वृद्धि होती है ।

§ ८३९. एत्थ वेदयपाओग्गाजहण्णद्धिदिसंतकम्मिओ णाम दुविहो—किंचूण-सागरोवमद्धिदिसंतकम्मिओ तप्पुधत्तमेत्तद्धिदिसंतकम्मिओ च । एत्थ पुण सागरोवममेत्त-द्धिदिसंतकम्मिओ एइंदियपच्छायदो घेत्तव्वो, उक्कस्सवड्डीए पयदत्तादो । तदो एवंविहेण द्धिदिसंतकम्मेषुवल्लिखओ जो मिच्छाइट्ठी मिच्छत्तस्स उक्कस्सद्धिदिं बंधियूणंतोमुहुत्त-पडिभंगो तप्पाओग्गविसुद्धीए मिच्छत्तस्स द्धिदघादमकाऊण वेदयसम्मत्तं पडिवणो, तम्मि चैव समए मिच्छत्तद्धिदिमंतोमुहुत्तूणसत्तरिसागरोवममेत्तं विवक्खिय कम्मेषु संकामिय विदियसमयमुवगओ तस्स विदियसमयसम्माइट्ठिस्स पयदुक्कस्ससामित्तं होइ, तत्थ थोवूणसागरोवमसंकमादो हेट्ठिमसमयपडिबद्धादो तदूणसत्तरिसागरोवममेत्तद्धिदि-संकमस्स वुद्धिदंसणादो ।

❀ हाषी मिच्छत्तभंगो ।

§ ८४०. जहावुत्तकमेण वुद्धिसंकमं काऊण तदो अंतोमुहुत्तेण सञ्चुक्कस्सद्धिदि-खंडए धादिदे तत्थ तदुक्कस्ससामित्तं पडि भेदाभावादो ।

❀ उक्कस्सयमवड्डीएणं कस्स ?

§ ८४१. सुगमं ।

❀ पुञ्चुप्पएणादो सम्मत्तादो समयुत्तरमिच्छत्तद्धिदिसंतकम्मिओ सम्मत्तं पडिवएणो तस्स विदियसमयसम्माइट्ठिस्स उक्कस्सयमवड्डीएणं ।

§ ८३६. यहाँ पर वेदकसम्यक्त्वके योग्य जघन्य स्थितिसत्कर्मवाला जीव दो प्रकारका है—कृछ कम एक सागर स्थितिसत्कर्मवाला और सागरपृथक्त्वप्रमाण स्थितिसत्कर्मवाला । परन्तु यहाँ पर एकेन्द्रियोंमेंसे लौटकर आया हुआ एक सागर स्थितिसत्कर्मवाला जीव लेना चाहिए, क्योंकि उत्कृष्ट वृद्धिका प्रकरण है । इसलिए इसप्रकारके स्थितिसत्कर्मसे उपलक्षित जो मिथ्यादृष्टि जीव मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध कर अन्तर्मुहूर्तमें प्रतिभग्न होकर तत्प्रायोग्य विशुद्धिसे मिथ्यात्वका स्थितिघात किये बिना वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त हुआ और उसी समय मिथ्यात्वकी अन्तर्मुहूर्तकम सत्तर कोड़ाकोड़ीसागरप्रमाण स्थितिको विवक्षित कर्मोंमें संक्रमित कर दूसरे समयको प्राप्त हुआ उस द्वितीय समयवर्ती सम्यग्दृष्टिके प्रकृत उत्कृष्ट स्वामित्व होता है, क्योंकि वहाँ पर पिछले समयमें होनेवाले कृछ कम एक सागरप्रमाण स्थितिसंकमसे किञ्चित् न्यून एक सागर कम सत्तर कोड़ाकोड़ी सागरप्रमाण स्थितिसंकमकी वृद्धि देखी जाती है ।

❀ हानिका भंग मिथ्यात्वके समान है ।

§ ८४०. पूर्वोक्त क्रमसे वृद्धिसंकमको करके तदनन्दर अन्तर्मुहूर्तमें सबसे उत्कृष्ट स्थिति-काण्डकका घात करने पर वहाँ मिथ्यात्वके उत्कृष्ट स्वामित्वसे इनके उत्कृष्ट स्वामित्वमें कोई भेद नहीं है ।

❀ उत्कृष्ट अवस्थान किसके होता है ।

§ ८४१. यह सूत्र सुगम है ।

❀ जो जीव पूर्वमें उत्पन्न हुए सम्यक्त्वसे मिथ्यात्वमें जाकर एक समय अधिक मिथ्यात्वके स्थितिसत्कर्मके साथ सम्यक्त्वको प्राप्त हुआ उस द्वितीय समयवर्ती सम्यग्दृष्टिके उत्कृष्ट अवस्थान होता है ।

§ ८४२. जो पुञ्जुप्पण्णादो सम्मत्तादो मिच्छत्तं गंतूण सम्मत्तद्विदिसंतादो समउत्तरं मिच्छत्तद्विदिं वंधिरुण सम्मत्तं पडिवण्णो तस्स विदियसमयसम्माइडिस्स दोण्हं कम्माणमुक्कस्सवट्ठानं होइ, तत्थ पढमसमयसंकंतामिच्छत्तद्विदिसंतकम्मस्स विदियसमए गलिदावसिड्डस्स पढमसमयसम्मत्त-सम्मामिच्छत्तद्विदिसंकमपमाणेणावट्ठानदंसणादो । एत्रमोघेण सव्वकम्माणमुक्कस्सवट्ठि-हाणि-अवट्ठानसामित्तपरूवणा गया ।

❀ एत्तो जहएणियाए ।

§ ८४३. एत्तो उवरि सव्वेसिं कम्माणं जहणवट्ठि-हाणि-अवट्ठानसामित्तपरूवणा कायव्वा त्ति भणिदं होइ ।

❀ सम्मत्त-सम्मामिच्छत्तवज्जाणं जहएणिया वड्डी कस्स ?

§ ८४४. सुगमं ।

❀ अप्पण्णा समयूणादो उक्कस्सद्विदिसंकमादो उक्कस्सद्विदिसंकमे-  
माण रस्स तरस्स जहएणिया वड्डी ।

§ ८४५. तं कथं ? समयूणुकस्सद्विदिं वंधियूण तदणंतरसमए उक्कस्सद्विदिं वंधिय  
वंधावलियवदिकंतं संकामेत्तो हेट्ठिमसमए समयूणद्विदिसंक्ादो समयुत्तरं संकामेदि । तदो

§ ८४२ जो पूर्वमे उत्तरं हुए सम्यक्त्वसे मिथ्यात्वमे जाकर सम्यक्त्वके स्थितिसत्त्वसे मिथ्यात्वकी एक समय अधिक स्थितिका बोधकर सम्यक्त्वको प्राप्त हुआ उस द्वितीय समयवर्ती सम्यक्त्वके दोन्हों कर्मोंका उत्कृष्ट अवस्थान होता है, क्योंकि वहाँ पर प्रथम समयमें संक्रान्त हुए तथा दूसरे समयमें गलकर अवशिष्ट रहे मिथ्यात्वके स्थितिसत्त्वके प्रथम समयमें प्राप्त हुए सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके स्थितिसंकमके प्रमाणरूपसे अवस्थान देला जाता है । इसप्रकार ओघसे सब कर्मोंकी उत्कृष्ट वृद्धि, हानि और अवस्थानके स्वामित्वकी प्ररूपणा की ।

\* आगे जघन्यका अधिकार है ।

§ ८४३. इससे आगे सब कर्मोंकी जघन्य वृद्धि, हानि और अवस्थानके स्वामित्वका कथन करना चाहिए यह उक्त कथनका तात्पर्य है ।

\* सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके सिवा शेष कर्मोंकी जघन्य वृद्धि किसके होती है ?

§ ८४४. यह सूत्र सुगम है ।

\* जो अपने अपने एक समय कम उत्कृष्ट स्थितिसत्त्वकेसे उत्कृष्ट स्थितिका संक्रम करता है उसके जघन्य वृद्धि होती है ।

§ ८४५. शंका—वह कैसे ?

समाधान—क्योंकि एक समय कम उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध कर पुनः तदनन्तर समयमें उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध कर बन्धावलिके बाद सक्रम करता हुआ पिछले समयमें हुए एक समय कम स्थितिसंक्रमसे एक समय अधिकका संक्रम करता है, इसलिए उसके जघन्य वृद्धि होती है ।

तस्स जहणिया वड्डी होदि, एयड्डिदिमेत्तस्सेव तत्थ वुद्धिदंसणादो । उदाहरणपदंसणद्वमेदं परुविदं । तदो सव्वासु चेव द्विदीसु समयुत्तरबंधवसेण जहणिया वड्डी अविरुद्धा परुवेयव्वा ।

❀ जहणिया हाणी कस्स ?

§ ८४६. सम्मत्त-सम्माभिच्छत्तवज्जाणं सव्वकम्माणमिदि अणुवड्डे । सुगममन्यत् ।

❀ तप्पाओग्गसमयुत्तरजहणणड्डिदिसंकमादो तप्पाओग्गजहणणड्डिदि संकामेमाणयस्स तस्स जहणिया हाणी ?

§ ८४७. समयुत्तरधुवड्डिदि संकामेमाणओ अघड्डिदिगलणेण धुवड्डिदि संकामेदु-माढत्तो तस्स जहणिया हाणी, एयड्डिदिमेत्तस्सेव तत्थ हाणिदंसणादो । एवं सव्वाओ द्विदीओ णिरुंभिरुण जहणणहाणी परुवेयव्वा ।

❀ एयदरत्थमवड्डाणं ।

§ ८४८. कथं ताव वड्डीए अवड्डाणसंभवो ? बुच्चदे—समयुक्कस्सड्डिदिसंकमादो उक्कस्सड्डिदिसंकमेण वड्डिदस्स अंतोमुहुत्तमवड्डिदिद्विदबंधवसेण तत्थेवावड्डाणे णत्थि विरोहो । एवं जहणणहाणीए वि अवड्डाणसंभवो दड्डव्वो । एदाणि जहणणवड्डि-हाणि-अवड्डाणाणि एयड्डिदिमेत्ताणि । संपहि सम्मत्त-सम्माभिच्छत्ताणं जहणणवड्डिसामित्त-परुवणणड्डसुत्तरसुत्तं भणइ—

क्योंकि वहाँ पर एक समयमात्र स्थितिसंक्रमकी वृद्धि देखी जाती है । उदाहरण दिखलानेके लिए यह कहा है, इसलिये सभी स्थितियोंमें एक समय अधिक बन्ध होनेसे जघन्य वृद्धि बिना विरोधके बन जाती है ऐसा कथन करना चाहिए ।

❀ जघन्य हानि किसके होती है ?

§ ८४६. वहाँ इस सूत्रमें सम्यक्त्त और सम्यग्मिध्यात्वको छोड़कर शेष सब कर्मोंकी इतने वाक्यकी पूर्व सूत्रसे अनुवृत्ति होती है । शेष कथन सुगम है ।

❀ तत्प्रायोग्य एक समय अधिक जघन्य स्थितिके संक्रमके बाद तत्प्रायोग्य जघन्य स्थितिका संक्रम करनेवाले जीवके जघन्य हानि होती है ।

§ ८४७. एक समय अधिक ध्रुवस्थितिका संक्रम करनेवाला जो जीव ध्रुवस्थितिका संक्रम करता है उसके जघन्य हानि होती है, क्योंकि वहाँ पर एक स्थितिमात्रकी हानि देखी जाती है । इस प्रकार सब स्थितियोंको विवक्षित कर जघन्य हानिका कथन करना चाहिए ।

❀ किसी एक स्थानमें जघन्य अवस्थान होता है ।

§ ८४८. नोक्का—वृद्धिके बाद अवस्थान कैसे सम्भव है ?

समाधान—कहते हैं—एक समय क्रम उत्कृष्ट स्थितिके संक्रमके बाद उत्कृष्ट स्थितिका संक्रम करनेसे वृद्धिको प्राप्त हुए जीवके अन्तर्मुहूर्त कालतक अवस्थित स्थितिके बन्धके कारण उसीमें अवस्थान होनेपर वृद्धिके बाद अवस्थान होनेमें विरोध नहीं है ।

इसी प्रकार जघन्य हानिके बाद भी अवस्थानका सम्भव जान लेना चाहिए । ये जघन्य वृद्धि, हानि और अवस्थान एक स्थितिप्रमाण हैं । अब सम्यक्त्त और सम्यग्मिध्यात्वके जघन्य वृद्धिके स्वामित्वका कथन करनेके लिए आगेका सूत्र कहते हैं—

⊙ सम्मत-सम्नामिच्छुत्ताणं जहृणिया चट्टी कस्त ?

! ८१०. सुगमं ।

⊙ पुञ्जुप्पणसम्मत्तादो दुसमयुत्तरमिच्छुत्तसंतकम्मओ सम्मतं पटिघणो तस्स चिद्वियससयसम्माइडिस्स जहृणिया चट्टी ।

! ८१०. कुटो ? देवगाम्मतगाणपट्टममए दुसमयुत्तरमिच्छुत्तइदिं पटिच्छिय तत्थेवाचट्टीए णित्थेमेयं गालिय निदियममए पट्टमसमयगंकादो समयुत्तरं संकामे-  
माणयम्मि जहृणवुट्टीए एयममयमेत्तीए पाण्णुउमुदलंभादो ।

⊙ हाणी सेसकम्मभंगो ।

! ८११. सुगमं, अर्वाट्टिगलणेणयममयहाणीए नच्चन्य पटिसेहाभावादो ।

⊙ अवट्टाणमुक्खस्सभंगो ।

! ८१२. एदं पि सुगमं, पयान्तागभावादो । एवमाधेण जहृण्युक्खस्सवट्टि-हाणि-  
अवट्टाणाणं नागित्तिणिण्णओ चओ ।

! ८१३. एनो आदेवपक्खणट्टं उजाणं वनएग्गामो । तं जज्ज—सामितं दुविहं—

जह० उा० । उएन्ने पयदं । द्दिदो णिरेमो—आधेण आदेसेण य । आधेण मिच्छत्त-  
मोलक० उा० । ट्टिदं०वहो कम्म ? जो चउट्टाणजवगज्जाम्भुवरि अंतोकोडाकोडाइडिदिं

⊙ सम्पक्खं और सम्पन्निभयान्तं जघन्य वृद्धि किसके होती है ?

! ८१४. यद् मूत्र सुगमं है ।

⊙ जो पहले उन्पत्त हुए सम्पक्खसे मिथ्यात्वमें जाकर तथा मिथ्यात्वके दो  
समय अधिक गन्धर्मवाला उत्कृत सम्पक्खको प्राप्त हुआ उस द्वितीय समयवर्ती  
सम्पक्खके जघन्य वृद्धि होती है ।

! ८१०. पयोक्कं वेदकमभयत्तराणो प्रहण परनेनं प्रथम समयमें मिथ्यात्वकी दो समय  
अधिक दिनिको संशयित पहले तथा चट्टी अधःस्थितके एक निपेकाओ गलाकर दूसरे समयमें  
प्रथम समयमें हुए संकामसे एक समय अधिकता संकाम परनेपर स्वप्नरूपसे एक समयमात्र जघन्य  
वृद्धि उपलब्ध होती है ।

⊙ हानिका भंग शेष कामोंके समान है ।

! ८११. यद् मूत्र सुगमं है, क्योंकि अधःस्थितिकी गलना होनेसे एक समयमात्र हानिका  
सर्वत्र वोट प्रतिषेध नहीं है ।

⊙ अवस्थानका भंग उत्कृष्टके समान है ।

! ८१२. यद् मूत्र भी सुगमं है; क्योंकि प्रभारान्तरका प्राप्त होना असम्भव है । इस प्रकार  
आपसे जघन्य और उत्कृष्ट वृद्धि, हानि और अवस्थानके स्वागित्य का निर्णय किया ।

! ८१३. आगे आदेशका कथन करनेके लिए उच्चारणको बतलाते हैं । यथा—स्वागित्य दो  
प्रकारका है—जघन्य और उत्कृष्ट । उत्कृष्टका प्रकारण है । निर्देश दो प्रकारका है—शोध और  
आदेश । शोधसे मिथ्यात्व और सोलह कार्योंके स्वित्तिसंक्रमको उत्कृष्ट वृद्धि किसके होती है ?  
चतुःस्थान व्यवसायके उपर अन्तःकोडाकोडीप्रमाण स्थितिका संकाम करनेवाले जिस जीवने



संक्रामेमाणो तदो उक्कस्सं दाहं गंतूण उक्कस्सट्टिदिं पवद्धो तस्स आवलियादीदस्स तस्स उक्क० वड्डी । तस्सेव से काले उक्क० अवट्टाणं । उक्क० हाणी कस्स ? अण्णदर० जो उक्कस्सट्टिदिं संक्रामेमाणो उक्कस्सट्टिदिखंडयं हणह तस्स उक्क० हाणी । एवं णवण्हं णोकसायाणं । णवरि उक्क० वड्डी कस्स ? सोलसक० उक्क०ट्टिदिं पडिच्छिदूणावलियादीदस्स तस्स उक्क० वड्डी । तस्सेव से काले उक्क० अवट्टाणं । सम्मच-सम्मामि० उक्क० वड्डी कस्स ? अण्णद० जो तप्पाओग्गजहण्णाट्टिदिं संक्रा० मिच्छ० उक्क०ट्टिदिं वंधिदूण ट्टिदिघादमकादूणंतोमुहुत्तं सम्मचं पडिवज्जिय तस्स विदियसमयवेदयसम्माहट्टिस्स तस्स उक्कस्सिया वड्डी । उक्कस्समवट्टाणं कस्स ? अण्णद० जो पुवुप्पण्णादो सम्मचादो मिच्छत्तस्स समयुत्तरट्टिदिं वंधिय सम्म० पडिव० तस्स उक्क० अवट्टाणं । उक्क० हाणी कस्स ? अण्णद० जो उक्क० ट्टिदिं संक्रा० उक्क० ट्टिदिखंडयं हणह तस्स उक्क० हाणी । एवं चट्टुसु गदीसु । णवरि पंचिदियतिरिक्खअपज्ज०-मणुसअपज्ज० मिच्छ०-सोलसक०-णवणोक० उक्क० वड्डी कस्स ? अण्णद० जो तप्पाओग्गजहण्णाट्टिदिं संक्रा० तप्पाओग्ग-उक्क०ट्टिदिं पवद्धो तस्स आवलियादीदस्स उक्क० वड्डी । तस्सेव से काले उक्क० अवट्टाणं । उक्क० हाणी विहत्तिभंगो । सम्म०-सम्मामि० उक्क० हाणी विहत्तिभंगो । आणदादि णवगेवज्जा त्ति मिच्छ०-सोलसक०-णवणोक० उक्क० हाणी विहत्तिभंगो । सम्म०-

उत्कृष्ट दाहको प्राप्त होकर उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध क्रिया, उस जीवके एक आवलिके बाद स्थितिसंक्रम की उत्कृष्ट वृद्धि होती है । उसी जीवके अनन्तर समयमे उत्कृष्ट अवस्थान होता है । उत्कृष्ट हानि किसके होती है ? उत्कृष्ट स्थितिका संक्रम करनेवाला जो जीव उत्कृष्ट स्थितिकाण्डकका घात करता है उसके उत्कृष्ट हानि होती है । इसी प्रकार नौ नोकपायोंका स्वामित्य है । किन्तु इतनी विशेषता है कि उत्कृष्ट वृद्धि किसके होती है ? सोलह कषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका संक्रम करके जिसका एक आवलि काल गया है उसके उत्कृष्ट वृद्धि होती है । तथा उसीके अनन्तर समयमें उत्कृष्ट अवस्थान होता है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वकी उत्कृष्ट वृद्धि किसके होती है ? तत्प्रायोग्य जघन्य स्थितिका संक्रम करनेवाले जिस जीवने मिध्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्धकर स्थितिघात किये बिना अन्त-सुहृत्तमे सम्यक्त्वको प्राप्त किया है द्वितीय समयवर्ती उस वेदकसम्यग्दृष्टि जीवके उत्कृष्ट वृद्धि होती है । उत्कृष्ट अवस्थान किसके होता है ? जो पहले उत्पन्न हुए सम्यक्त्वसे मिध्यात्वमें जाकर मिध्यात्वकी एक समय अधिक स्थितिका बन्धकर सम्यक्त्वको प्राप्त हुआ है उसके उत्कृष्ट अवस्थान होगा है । उत्कृष्ट हानि किसके होती है ? उत्कृष्ट स्थितिका संक्रम करनेवाला जो जीव उत्कृष्ट स्थितिकाण्डकका घात करता है उसके उत्कृष्ट हानि होती है । इसीप्रकार चारों गतियोंमें जानना चाहिए । किन्तु इतनी विशेषता है कि पञ्चेन्द्रिय तियेञ्च अपर्याप्त और मनुष्य अपर्याप्तकोंमे मिध्यात्व, सोलह कषायों और नौ नोकपायोंकी उत्कृष्ट वृद्धि किसके होती है ? तत्प्रायोग्य जघन्य स्थितिका संक्रम करनेवाले जिस जीवने तत्प्रायोग्य उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध क्रिया है उसके एक आवलिके बाद उत्कृष्ट वृद्धि होती है । उसीके तदनन्तर समयमे उत्कृष्ट अवस्थान होता है । उत्कृष्ट हानिका भंग स्थितिविभक्तिके समान है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वकी उत्कृष्ट हानिका भंग स्थितिविभक्तिके समान है । आनत कल्पसे लेकर नौ भैवेयक तकके देवोंमें मिध्यात्व, सोलह कषायों और नौ नोकपायोंकी उत्कृष्ट हानिका भंग स्थितिविभक्तिके समान है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वकी उत्कृष्ट वृद्धि



तरस विदियसमयसम्माइडिस्स जह० वड्डी । हाणी अधडिदिं गालयमाणयस्स । अणुदिसादि सच्चडा त्ति २८ पय० जह० हाणी अधडिदिं गालयमाण० । एवं जाव० ।

❀ अण्पावहुअं ।

§ ८५५. जहण्णुकस्सवड्ढि-हाणि-अवट्ठाणाणं पमाणविसयणिण्णयकरणट्ठमप्या-वहुअमिदाणिं कायव्वमिदि भणिदं होइ ।

❀ मिच्छत्त-सोलसकसाय-इत्थि-पुरिसवेद-हस्स-रदीणं सच्चत्थोवा डक्कस्सिसया हाणी ।

§ ८५६. कुदो ? अंतोकोडाकोडिपरिहीणसत्तरि-चत्तालीससागरोवमकोडाकोडि-पमाणत्तादो ।

❀ वड्डी अवट्ठाणं च दो वि तुल्लाणि विसेसाहियाणि ।

§ ८५७. केत्तियमेत्तो विसेसो ? अंतोकोडाकोडिमेत्तो । एत्थ कारणं पुब्बमेव परूविदं ।

❀ सम्मत्त-सम्माभिच्छत्ताणं सच्चत्थोवो अवट्ठाणसंकमो ।

§ ७५८. एयणिसेयपमाणत्तादो ।

❀ हाणिसंकमो असंखेज्जगुणो ।

§ ८५९. उक्कस्सडिदिखंडयपमाणत्तादो ।

वृद्धि होती है । हानि अधःस्थितिको गलानेवालेके होती है । अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें २८ प्रकृतियोंकी जघन्य हानि अधःस्थितिको गलानेवालेके होती है । इसीप्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिए ।

\* अल्पवहुत्वका अधिकार है ।

§ ८५५. जघन्य और उत्कृष्ट वृद्धि, हानि और अवस्थानका प्रमाणविषयक निर्णय करनेके लिए इस समय अल्पवहुत्व करना चाहिए यह उक्त कथनका तात्पर्य है ।

\* मिथ्यात्व, सोलह कषाय, स्त्रीवेद, पुरुषवेद, हास्य और रतिकी उत्कृष्ट हानि सबसे स्तोक है ।

§ ८५६. क्योंकि वह अन्तःकोड़ाकोड़ी हीन सत्तर और चालीस कोड़ाकोड़ी सागरप्रमाण है ।

\* उससे वृद्धि और अवस्थान दोनों ही तुल्य होकर विशेष अधिक हैं ।

§ ८५७. विशेषका प्रमाण कितना है ? अन्तःकोड़ाकोड़ीमात्र है । यहाँ पर कारणका कथन पहले ही कर आये हैं ।

\* सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका अवस्थानसंक्रम सबसे स्तोक है ।

§ ८५८. क्योंकि वह एक निषेकप्रमाण है ।

\* उससे हानिसंक्रम असंख्यातगुणा है ।

§ ८५९. क्योंकि वह उत्कृष्ट स्थितिकाण्डकप्रमाण है ।



§ ८६५. का वट्टी णाम ? पदणिक्खेवविसेसो वट्टी । तत्थ तिण्णि अणियोग-  
द्वाराणि भवन्ति त्ति पइण्णं कारुणं तण्णामणिद्वेसकरणट्टमुवरिमसुत्तमाह—

❀ समुक्कित्तणा परूवणा अप्पावहुए त्ति ।

§ ८६६. तत्थ समुक्कित्तणा णाम सव्वकम्मणं एत्तियाओ वट्टीओ एत्तियाओ च  
हाणीओ अवट्टाणमवत्तव्वयं च अत्थि णत्थि त्ति संभवासंभवमेत्तपरूवणा । एवं च  
सामण्णेण समुक्कित्तिदाणं वट्टि-हाणिविसेसाणं विसयविभागपरिक्खा परूवणा त्ति भण्णह ।  
वट्टि-हाणिविसेसावट्टाणावत्तव्वसंक्रामयाणं जीवाणमोघादेसेहिं थोववहुत्तपरूवणा अप्पा-  
वहुअं णाम । एदाणि तिण्णि चैव अणियोगद्वाराणि सामित्तादीणमेत्थेव अंतम्भावदंसणादो ।  
तदो समुक्कित्तणादीणि तेरस अणियोगद्वाराणि उच्चारणासिद्धाणि ण सुत्तवहिम्भूदाणि  
त्ति वेत्तव्वं ।

❀ तत्थ समुक्कित्तणा ।

§ ८६७. तेसु अणंतरणिद्विद्धाणिओगद्वारेसु समुक्कित्तणा ताव विहासियव्वा त्ति  
भणिदं होइ ।

❀ तं जहा—

§ ८६८. सुगममेदं पुच्छावक्कं ।

§ ८६५ शंका—वृद्धि किसे कहते हैं ?

समाधान—पद निक्षेपविशेषको वृद्धि कहते हैं ।

उसमें तीन अनुयोगद्वार हैं इस प्रकार प्रतिज्ञा करके उसका नामनिर्देश करनेके लिए  
आगेका सूत्र कहते हैं—

❀ समुत्कीर्तना, प्ररूपणा और अल्पबहुत्व ।

§ ८६६. सब कर्मोंकी इतनी वृद्धि, इतनी हानि, अवस्थान और अवक्तव्य है या नहीं है  
इसप्रकार इनमेंसे कौन सम्भव है और कौन सम्भव नहीं है इसकी प्ररूपणा करनेको समुत्कीर्तना  
कहते हैं । इस प्रकार जिनकी सामान्यसे समुत्कीर्तना की है उनकी वृद्धिविशेष और हानिविशेषकी  
विषयविभागसे परीक्षा करना प्ररूपणा कहलाती है । तथा वृद्धिविशेष, हानिविशेष, अवस्थान और  
अवक्तव्यपदके संक्रामक जीवोंके ओघ और आदेशसे अल्पबहुत्वकी प्ररूपणा करना अल्पबहुत्व  
है । इसप्रकार ये तीन ही अधिकार हैं, क्योंकि स्वामित्व आदिकका इन्हींमें अन्तर्भाव देखा  
जाता है । इसलिए उच्चारणमें प्रसिद्ध समुत्कीर्तना आदिक तेरह अनुयोगद्वार सूत्रसे थद्विरूत नहीं  
हैं ऐसा यहाँ ग्रहण करना चाहिए ।

❀ प्रकृतमें समुत्कीर्तनाका अधिकार है ।

§ ८६७. उन अनन्तर निर्दिष्ट अनुयोगद्वारोंमें सर्वप्रथम समुत्कीर्तनाका व्याख्यान करना  
चाहिए यह उक्त कथनका तात्पर्य है ।

❀ यथा—

§ ८६८. यह पुच्छासूत्र सुगम है ।

ॐ मिन्द्रत्तरस असंखेज्जभागवट्टिहाणी संखेज्जभागवट्टिहाणी संखेज्जगुणवट्टिहाणी असंखेज्जगुणहाणी अयट्टाणं च ।

१८६०. कथमेदमि निण्हं वट्टीणं चउण्हं हाणीणं च मिन्द्रत्तद्विदिसंक्रमविसए संभवो ? उअदे—मिन्द्रत्तधुवट्टिदिमंक्रममादो अंतोत्तोटाकोउपमाणादो समयुत्तरादिकमेण वट्टमाणम्म जमंसेज्जभागवट्टो चैव होऊण गच्छइ जाव धुवट्टिदीए उवरि धुवट्टिदिं जहणपत्तितामंरेजेण नंडिय तत्थेयत्तंउमेत्तेण धुवट्टिदिमंक्रमो अट्टिओ जादो ति । एत्तो उवरि वि जमंसेज्जभागवट्टिदिमंक्रमो चैव जाव हेट्टिमवियप्पाणमुकस्ससंसेज्जपडि-भागवियमेगभायं इवणमेत्तं नट्टिदं ति । तदो गमेज्जभागवट्टी पारभट्टि, तत्थ धुवट्टिदीए उवरि धुवट्टिदिमृत्तान्मंरेजेण नंडिय तत्थेयत्तंउयमेत्तद्विदिसंक्रममुट्टीए दंमणादो । एत्तो गमेज्जभागवट्टिदिमंक्रमो नाव गच्छइ जाव धुवट्टिदीए उवरि इवणधुवट्टिदिमेत्तं वट्टिदं ति । एत्तो धुवट्टिदीए उवरि धुवट्टिदिमेत्तं चैव नट्टियूण मंक्रामेमाणस्स मखेज्ज-गुणवट्टिपाग्गो होऊण नाव गच्छइ जाव धुवट्टिदिपाओत्तउपरसट्टिदिमंक्रमो जादो ति । एत्तं धुवट्टिदिमंक्रमं णिन्दं कादूण निण्हं नट्टाणं संभवो परवट्टो । ममयुत्तरादिधुवट्टिदीणं पि पुव पुव णिरुग्गणं काऊण जहामंभवमेत्तं चैव ति विहवट्टिसंभवगवेषणा कायव्वा । एत्तं गणपत्तिदिमपत्तत्तरग मन्थाणेण निविहवट्टिमंभवो परवट्टो । तदपजत्तस्स वि

१. मिथ्यात्वकी अमंन्यातभागवृद्धि-हानि, संख्याभागवृद्धि-हानि, संख्यातगुण-वृद्धि-हानि, अमंन्यातगुणहानि और अवस्थान है ।

१८६०. प्रश्न—मिथ्यात्वके स्थितिसंक्रमके विषयमें इन तीन वृद्धियों और चार हानियों-की कैसे सम्भावना है ?

समाधान—कहते हैं—मिथ्यात्वके प्रकृतःकोटाकोटीप्रमाण ध्रुवस्थितिसंक्रमसे एक समय प्रायःक आदिके क्रममें वृत्तिको प्रायः होनेवाले जीवके ध्रुवस्थितिमें जघन्य परीतासंख्यातका भाग देकर वहाँपर लक्ष्य प्रायेण ७० भागमें ध्रुवस्थितिमें ध्रुवस्थितिसंक्रमके अधिक होने तक असंख्यात-भागवृद्धिजा प्रवाह हो चालू रहता है । तथा आगे भी, नीचेके विषयोंमें वट्टुट असंख्यातका भाग देकर जो एक भाग लक्ष्य प्रायेण उभयसे एक कम स्थितियोंकी वृद्धि होने तक असंख्यातभागवृद्धिका ही विषय है । इसके आगे संख्यातभागवृद्धि प्रारम्भ होती है, क्योंकि वहाँ पर ध्रुवस्थितिके ऊपर ध्रुवस्थितिको वट्टुट संख्यातसे भाजित कर वहाँ जो एक भाग लक्ष्य प्रायेण तत्प्रमाण स्थितिसंक्रमकी वृद्धि देखी जाती है । इससे आगे संख्यातभागवृद्धिका विषय तब तक बना रहता है जब तक एक कम ध्रुवस्थितिमात्र वृद्धि ध्रुवस्थितिमें होती है । पुनः ध्रुवस्थितिमें ध्रुवस्थितिमात्र बढ़ाकर सक्रम करनेवाले जीवके संख्यातगुणवृद्धिजा प्रारम्भ होकर तब तक जाता है जब तक ध्रुवस्थितिके योग्य वट्टुट संक्रम होता है । इस प्रकार ध्रुवस्थितिसंक्रमको विवक्षित कर तीन वृद्धियोंकी सम्भावना कही । एक समय अधिक आदि ध्रुवस्थितियोंको भी प्रत्येक प्रत्येक विवक्षित कर इसीप्रकार तीन वृद्धियों सम्भव हैं इसका विचार कर लेना चाहिए । इस प्रकार संज्ञी पञ्चेन्द्रिय पर्याप्त जीवके स्वस्थानकी अपेक्षा तीन प्रकारकी वृद्धि सम्भव है इसकी प्ररूपणा की । संज्ञी पञ्चेन्द्रिय अपर्याप्त जीवोंके भी

एवं चेव तिण्हं वढीणं सत्थाणेण संभवो वचचवो, तत्थ वि तप्पाओग्गधुवड्ढिदीदो संखेज्जगुणं अंतोकोडाकोडिमेत्तद्धिदिसंकमवुड्ढीए विरोहाभावादो । एवं सेसजीवसमासेसु वि सत्थाणवुड्ढी अणुमग्गियव्वो । णवरि वीहंदिय-तीहंदिय-चउररिदियासण्णिणपंचिदिय-पज्जत्तापज्जत्तएसु सगसगधुवड्ढिदिसंकमादो उवरि वड्ढमाणेसु असंखेज्जभागवड्ढि-संखेज्जभाग-वुड्ढिसण्णिणदाओ दो चेव वड्ढीओ संभवन्ति, पल्लिदोवमस्स संखेज्जदिभागमेत्तेसु तच्चीचार-ट्ठाण्णेसु संखेज्जगुणवड्ढीए णिव्विसयत्तादो । वादर-सुहुमेहंदियपज्जत्तापज्जत्तएसु पुण असंखे०भागवड्ढी एका चेव, तच्चीचारट्ठाणणं पल्लिदोवमासंखेज्जभागणियमदंसणादो । एत्थ परत्थाणेण वि तिविहवुड्ढिसंभवो विहत्तिभंगेणाणुगंतव्वो ।

§ ८७०. संपहि चउण्हं हाणीणं विसओ उच्चदे । तं जहा—अघट्टिदिगलणेण ट्टिदिसंकमस्सासंखेज्जभागहाणी चेव, पयारंतरासंभवादो । ट्टिदिसंखेज्जघादेण चउव्विहा वि हाणी होह, कत्थ वि ट्टिदिसंतकम्मादो असंखेज्जभागस्स कत्थ वि संखेज्जभागस्स कत्थ वि संखेज्जाणं भागाणं कत्थ वि असंखेज्जाणं च भागाणं घादसंभवादो । सेसपरुवणाए ट्टिदिविहत्तिभंगो । संपहि अवट्टाणविसओ उच्चदे—तिण्हमण्णदरवुड्ढीए असंखेज्जभाग-हाणीए च अवट्टाणं दट्टव्वं, तप्परिणामेण्येयसमयमवड्ढिदस्स विदियसमए तेत्तियमेत्ताव्वुणो विरोहाभावादो । सेसहाणीसु ण संभवह, तत्थ विदियसमए असंखेज्जभागहाणिणियम-

स्वस्थानकी अपेक्षा इसी प्रकार तीन वृद्धियाँ सम्भव हैं यह कहना चाहिए, क्योंकि उन जीवोंमें भी ध्रुवस्थितिसे संख्यातगुणी अन्तःकोडाकोडीप्रमाण संक्रमवृद्धिके होनेमें विरोध नहीं है । इसीप्रकार शेष जीवसमासोंमें भी स्वस्थानवृद्धिका विचार कर लेना चाहिए । किन्तु इतनी विशेषता है कि द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और अर्धसंज्ञो पञ्चेन्द्रिय पर्याप्त तथा अपर्याप्त जीवसमासोंमें अपने अपने ध्रुवस्थितिसंक्रमसे आगे वृद्धि होनेपर असंख्यातभागवृद्धि और संख्यातभाग-वृद्धि नामवाली दो वृद्धियाँ ही सम्भव हैं, क्योंकि उनके पल्यके संख्यातवें भागप्रमाण वीचारस्थानोंमें संख्यातगुणवृद्धिका कोई विषय उपलब्ध नहीं होता । परन्तु वादर एकेन्द्रिय और सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त तथा अपर्याप्त जीवोंमें एक असंख्यातभागवृद्धि ही पाई जाती है, क्योंकि उनके वीचारस्थानोंका पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण होनेका नियम देखा जाता है । यहाँ पर परस्थानकी अपेक्षा तीन प्रकारकी वृद्धि सम्भव है यह बात स्थितिविभक्तिके समान जान लेनी चाहिए ।

§ ८७०. अब चार हानियोंका विषय कहते हैं । यथा—अघट्टिदिगलनाके द्वारा स्थिति-संक्रमकी असंख्यातभागहानि ही होती है, यहाँ पर अन्य कोई प्रकार सम्भव नहीं है । परन्तु स्थितिकाण्डकघातसे चारों प्रकारकी हानि होती है, क्योंकि कहीं पर स्थितिसंक्रमसे उसके असंख्यातवें भागका, कहींपर संख्यातवें भागका, कहीं पर संख्यात बहुभागका और कहीं पर असंख्यात बहुभागका घात सम्भव है । शेष प्ररूपणा स्थितिविभक्तिके समान है । अब अवस्थानके विषयको बतलाते हैं—तीन वृद्धियोंमेंसे किसी एक वृद्धिके तथा असंख्यातभागहानिके होने पर अवस्थान जानना चाहिए, क्योंकि उक्त प्रकारके परिणामसे एक समय तक अवस्थित हुए जीवके दूसरे समयमें उतना ही अवस्थान होनेसे विरोध नहीं है । परन्तु शेष हानियोंमें अवस्थान सम्भव नहीं है, क्योंकि वहाँ पर दूसरे समयमें असंख्यातभागहानिका नियम देखा जाता है । इस प्रकार

दंनपादो । एतदेतदंमिं वृत्ति-हाणि-अवद्वेषाणं मिन्दत्तनिसयाणं समुचितं काऊग  
तत्थावत्तन्वमंकाभावं पन्वेदुमंरुत्तुमाह—

⊙ अवत्तव्यं एतिय ।

§ ८७१. वृत्तो ? अंगंकादो तस्य मंरुमपत्तुर्णाणं गन्वद्वमभुवलंभादो ।

⊙ सम्मत्त-सम्माभिन्दत्ताणं चउच्चियदा वृत्ती चउच्चियदा हाणी  
अवद्वेषाणमयत्तव्यं च ।

§ ८७२. तं उदा—तस्य ताव असंज्ञेयभागवद्विविधयपदवणा क्रीन्दे—एतो  
मिन्दत्तधुवद्विदिमेणगम्मत-सम्माभिन्दत्ताद्विदीण उवगि द्युमयुत्तरमिन्दत्तद्विदिमेतकम्मिओ  
सम्मत्तं पट्टिदण्णो । तन्नात्तंवेत्तमागवृत्तीण पट्टमदियण्णो हो । मंषट्टि पट्टमदागणिन्द्व-  
सम्मत्तद्विदिमेणमादो निगमयुत्तरादिकमेण मिन्दत्तावृत्तिं वृत्ताणिय तंवेत्त शिन्द्वद्विदि-  
मंरुत्तमेण सम्मत्तं वेत्तमाणम्य सम्मत्त-सम्माभिन्दत्ताणं असंज्ञेयभागवृत्ती ताव उदुव्वा  
जाव शिन्द्वद्वमभुवद्विदिमागम्मेवेत्तैण मंजिय तस्य स्युणेयसंज्ञेते द्दिविदये लद्वणा-  
मंरुत्तमागवृत्ती पत्तामिदा चि । पृष्ठां एद्वद्वदो पट्टमदागणिन्द्वसम्मत्तद्विदिमेतकमादो  
ममयुत्तर-द्युमयुत्तरादिनम्मत्तद्विदिपं पादं शिन्द्वमं काऊग तत्ता द्युमयुत्तरादिकमेण  
मिन्दत्ताद्विदि वृत्तादिय सम्मत्तं वेत्तमाणाणमसंज्ञेयभागवद्विविदयणा वनव्वा जाव  
तथाओमंतांगद्वत्तणमत्तनिगावेवकत्तोत्तोत्तियेत्तगम्मेचद्विदि चि । णवरी मिन्दत्तधुव-  
मिध्यात्वत्तिरर इव गति हाणि और द्दाराधनरी समुत्तमेता परतेपदो पर अवत्तव्यसंक्रमता  
कमर है वह प १८ परमेते निव् अयेसा मूय प १८ है—

५ अवत्तव्य नहीं है ।

§ ८७१. वृत्तोंक उत्तरी अंगक्रममे तंक्रमवरी प्रवृत्ति व १ भी उरलपर नहीं होती ।

⊙ सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वकी चार प्रकारकी शुद्धि, चार प्रकारकी हानि,  
अवस्थान और अवत्तव्य है ।

§ ८७२. यथा—उसमें सर्वप्रथम असंज्ञेयभागशुद्धि का विषय बहने है—जिसकी सम्बन्ध  
और सम्यग्मिध्यात्वकी स्थिति मिध्यात्वकी धुरस्मितिके बराबर है ऐसा बंदे ए. ४ जोर मिध्यात्वके  
दो समय अधिक स्थितिसंक्रमके साथ सम्यक्त्वको प्राप्त हुआ उसमें असंज्ञेयभागशुद्धि का प्रथम  
विषय होगा है । अतः पशुली चार संस्कारके विषयित स्थितिसंक्रमने मिध्यात्वकी धुरस्मितिको  
तीन समय अधिक प्रातिके क्रमने बराबर उसी विरहित स्थितिसंक्रमके साथ सम्यक्त्वको ग्रहण  
करनेवाले जीवके सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वकी असंज्ञेयभागशुद्धि तब तक जाननी चाहिए  
जब जाकर सम्यक्त्वकी विरहित स्थितिमें उद्वृत्त संज्ञेयतावा भाग देकर जो एक भाग लब्ध आवे  
उसमें एक वम शुद्धिविषयके व्याख्येयमें असंज्ञेयभागशुद्धि अन्तको प्राप्त हो जाती है । फिर  
प्रथमबार विरहित सम्यक्त्वके इन स्थितिसंक्रमने एक समय अधिक, दो समय अधिक आदिके  
क्रममें सम्यक्त्वकी स्थितियोंमें पृथक् पृथक् विवक्षित कर उनमेंसे प्रत्येक स्थितिविषयके साथ  
दो समय अधिक आदिके क्रममें मिध्यात्वकी स्थितियों बड़ाकर सम्यक्त्वको ग्रहण करनेवाले  
जीवोंके असंज्ञेयभागशुद्धिके विकल्प तत्प्रायोग्य अन्तर्सुहृत्त कम उत्तर शोशुवांजीसागरप्रमाण  
सम्यक्त्वकी स्थितिके प्राप्त होने तक बहने चाहिए । किन्तु इतनी विज्ञेयता है कि मिध्यात्वकी



डिदीदो हेड्डा वि पलिदोवमस्स संखेज्जभागमेत्तसम्मत्त-सम्मामिच्छत्तडिदीणमसंखेज्जभाग-  
वड्ढिवियप्पा लब्भंति । ते जाणिय वत्तव्वा ।

§ ८७३. संपहि संखेज्जभागवड्ढीए विसयगवेसणं कस्सामो । तं जहा—मिच्छत्त-  
धुवड्ढिदिमुक्कस्ससंखेजेण खंडिय तत्थेयखंडमेत्तेण तत्तो अब्भहियमिच्छत्तडिदिसंतकम्मिएण  
मिच्छाड्ढिणा मिच्छत्तधुवड्ढिदिपमाणसम्मत्त-सम्मामिच्छत्तडिदिसंतकम्मिएण सह वेदयसम्मत्ते  
पडिवण्णे पढमो संखेज्जभागवड्ढिवियप्पो होइ । एत्तो समयचुरादिकमेण मिच्छत्तडिदि-  
मणंतरपरुविदपमाणादो वड्ढिविय णिरुद्धसम्मत्तडिदीए सह सम्मत्तं गेण्हाविय संखेज्जभाग-  
वड्ढिविसयो ताव परुवेयव्वो जाव रूवूणधुवड्ढिदिसमब्भहियमिच्छत्तडिदिसंतकम्मियं  
पत्तो त्ति । एवं चेव समयचुरादिसम्मत्तडिदिविसेसाणं पि पुघ पुघ णिरुंभणं काउण  
पयदवड्ढिविसओ समयविरोहेण परुवेयव्वो जाव तप्पाओगपलिदोवमसंखेज्जभागपरिहीण-  
सत्तरिसागरोवमकोडाकोडिमेत्तसम्मत्तडिदि त्ति । ताथे तेत्तिमेत्तेण सम्मत्त-सम्मामिच्छत्त-  
डिदिसंतकम्मिएण मिच्छत्तुक्कस्सडिदीए च किंचूणाए सम्मत्तं पडिवज्जमाणस्स तदपच्छिम-  
वियप्पसमुप्पत्ती होइ । मिच्छत्तधुवड्ढिदीदो हेड्डा वि संखेज्जभागवड्ढिविसओ जहासंभवं  
विहासेयव्वो ।

§ ८७४. एत्तो संखेज्जगुणवड्ढिविसयपरुवणा कोरदे । तं जहा—पलिदोवमस्स  
संखेज्जभागमेत्तसम्मत्तडिदिसंतकम्मियमिच्छाड्ढिणा मिच्छत्तस्स तप्पाओगंतोकोडाकोडि-

ध्रुवस्थितिके नीचे भी सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वकी पत्यके संख्यातवें भागप्रमाण स्थितियोंके  
असंख्यातभागवृद्धिसम्बन्धी विकल्प प्राप्त होते हैं सो उन्हें जान कर कहना चाहिए ।

§ ८७३. अब संख्यातभागवृद्धिके विषयका अनुसन्धान करते हैं । यथा—मिध्यात्वकी  
ध्रुवस्थितिमे उत्कृष्ट संख्यातका भाग देनेपर प्राप्त हुए एक भागसे अधिक मिध्यात्वके  
स्थितिसत्कर्मके साथ वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त होनेपर संख्यातभागवृद्धिका प्रथम विकल्प  
होता है । आगे पहले कहे हुए प्रमाणसे मिध्यात्वकी स्थितिको एक समय अधिक आदिके  
क्रमसे बढ़ाकर सम्यक्त्वकी विवक्षित स्थितिके साथ सम्यक्त्वको ग्रहण कराकर एक  
क्रम ध्रुवस्थितिसे अधिक मिध्यात्वके स्थितिसत्कर्मके प्राप्त होने तक संख्यातभागवृद्धिका विषय  
कहना चाहिए । तथा इसी प्रकार सम्यक्त्वके एक समय अधिक आदि स्थितिविशेषोंको पृथक्-  
पृथक् विवक्षित कर प्रकृत वृद्धिका विषय समयके अविरोध पूर्वक तदप्रायोग्य पत्यका संख्यतवों  
भागक्रम सत्तर कोडाकोड़ी सागरप्रमाण सम्यक्त्वकी स्थितिके प्राप्त होनेतक कहना चाहिए ।  
तब तत्प्रमाण सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वके स्थितिसत्कर्मके साथ मिध्यात्वकी कुछकम उत्कृष्ट  
स्थितिके सद्भावमें सम्यक्त्वको प्राप्त होनेवाले जीवके संख्यातभागवृद्धिके अन्तिम विकल्पकी  
व्युत्पत्ति होती है । इसी प्रकार मिध्यात्वकी ध्रुवस्थितिके नीचे भी संख्यातभागवृद्धिके विषयका  
यथासम्भव व्याख्यान करना चाहिए ।

§ ८७४. आगे संख्यातगुणवृद्धिके विषयका व्याख्यान करते हैं । यथा—सम्यक्त्वके  
पत्यके संख्यातवें भागप्रमाण स्थितिसत्कर्मके साथ मिध्यात्वकी जीवके उपरामसम्यक्त्वके ग्रहणके  
योग्य मिध्यात्वके अन्तःकोडाकोड़ीप्रमाण स्थितिसत्कर्मके साथ उपरामसम्यक्त्वको उत्पन्न



परिचासंखेजेण खंडिय तत्थेयखंडयमेत्तसम्मत्त-सम्माभिच्छत्तट्टिदिसंतकम्मिएण मिच्छ-  
इट्टिणा मिच्छत्तस्स तप्पाओग्गजहण्णंतोकोडाकोडिमेत्तट्टिदीए सह उवसमसम्मत्ते पडिवण्णे  
उवसमसम्मत्तपाओग्गमिच्छत्तधुवट्टिदिणिवंघणाणमसंखेज्जगुणवट्टिवियप्पाणमपच्छिमो  
वियप्पो होइ । एवमुवसमसम्मत्तपाओग्गमिच्छत्तट्टिदीणं परोयणिरोहं कारुण असंखेज्ज-  
गुणवट्टिविसयो अणुमग्गियच्चो जाव तत्तो संखेज्जगुणमेत्तंतोकोडाकोडिपमाणं पत्तो त्ति ।  
एवं चउण्हं वट्टीणं विसयविभागो परूविदो ।

§ ८७६. संपहि हाणिचउकस्स विसओ मिच्छत्तस्सेवाणुगंतच्चो । संपहि अवट्टाण-  
विसयपरूवणा कीरदे । तप्पाओग्गजहण्णंतोकोडाकोडिमेत्तसम्मत्त-सम्माभिच्छत्तट्टिदिसंत-  
कम्मादो समयुत्तरमिच्छत्तट्टिदिसंतकम्मिएण सम्मत्ते गहिदे पयदकम्माणमवट्टिदो ट्टिदि-  
संकमो होइ । एत्तो उवरिमट्टिदिवियप्पेहिं मि समयुत्तरमिच्छत्तट्टिदिपडिग्गहवसेणावट्टाण-  
संकमो वत्तच्चो जाव अंतोमुहुत्तूणसत्तरिसागरोवमकोडाकोडि त्ति । णिस्संतकम्मिय-  
मिच्छइट्टिणा उवसमसम्मत्ते पडिवण्णे तच्चिदियसमए अवत्तच्चसंकमो होइ । तम्हा  
चउन्विहा वट्टी हाणी अवट्टाणमवत्तच्चं च पयदकम्माणमत्थि त्ति सिद्धं ।

### ❁ सेसकम्माणं मिच्छत्तभंगो ।

§ ८७७. एत्थ सेसग्गहणेण सोलसकसाय-णवणोकसायाणं गहणं कायव्वं ।  
तेसिं मिच्छत्तभंगो, तिण्हं वट्टीणं चउण्हं हाणीणमवट्टाणस्स च संभवं पडि तत्तो-विसेसा-

जघन्य परीतासंख्यातसे भाजित कर वहाँ पर एक भागप्रमाण सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वके  
स्थितिसत्कर्मवाले मिध्यादृष्टि जीवके मिध्यात्वकी तत्प्रायोग्य अन्तःकोड़ाकोड़ीप्रमाण जघन्य  
स्थितिके साथ उपशमसम्यक्त्वके प्राप्त होने पर उपशमसम्यक्त्वके योग्य मिध्यात्वकी ध्रुवस्थितिको  
निमित्तकर अस्संख्यातगुणवृद्धिके प्राप्त होनेवाले विकल्पोंमें अन्तिम विकल्प होता है । इस प्रकार  
उपशमसम्यक्त्वके योग्य मिध्यात्वकी स्थितियोंमेंसे प्रत्येकको विवक्षित कर अस्संख्यातगुणवृद्धिका  
विषय तब तक जानना चाहिए जब जाकर सम्यक्त्वकी पूर्वोक्त स्थितिसे संख्यातगुणा अन्तःकोड़ा-  
कोड़ीका प्रमाण प्राप्त होता है । इस प्रकार चार वृद्धियोंके विषयविभागका कथन किया ।

§ ८७६. हानिचतुष्कका विषय मिध्यात्वके समान ही जानना चाहिए । अब अवस्थानके  
विषयका कथन करते हैं—सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वके तत्प्रायोग्य अन्तःकोड़ाकोड़ीप्रमाण  
स्थितिसत्कर्मसे मिध्यात्वके एक समय अधिक स्थितिसत्कर्मवाले जीवके द्वारा सम्यक्त्वके  
ग्रहण करनेपर प्रकृत कर्मोंका अवस्थित स्थितिसत्कर्म होता है । इससे आगे उपरिम स्थिति-  
विकल्पोंके साथ भी मिध्यात्वके एक समय अधिक स्थितिके प्रतिग्रह वशा अवस्थानविकल्प अन्तर्मुहूर्त  
क्रम सत्तर कोड़ाकोड़ी सागरप्रमाण स्थितिके प्राप्त होनेतक कहने चाहिए । तथा सम्यक्त्व  
और सम्यग्मिध्यात्वके सत्कर्मसे रहित मिध्यादृष्टिके द्वारा उपशमसम्यक्त्वके प्राप्त होने पर उसके  
दूसरे समयमें अवक्तव्यसंक्रम होता है, इसलिए चार प्रकारकी वृद्धि, चार प्रकारकी हानि,  
अवस्थान और अवक्तव्य प्रकृत कर्मोंका है यह सिद्ध हुआ ।

\* शेष कर्मोंका भंग मिध्यात्वके समान है ।

§ ८७७. यहाँपर शेष पदके ग्रहण करनेसे सोलह कषाय और नौ नोकषायोंका ग्रहण करना  
चाहिए । उनका भंग मिध्यात्वके समान है, क्योंकि तीन वृद्धि, चार हानि और अवस्थानके

भावाद्दे। संपहि एत्थतणविसेसपटुप्पायणडुमिदमाह—

⊙ णवरि अवत्तव्वयमत्थि ।

§ ८७८. मिच्छत्तस्सावत्तव्वयं णत्थि त्ति वुत्तं । एत्थ वुण विसंजोयणापुव्वसंजोणे सञ्चोवसामणापडिवादे च तस्संभवो अत्थि त्ति एसो विसेसो । अण्णं च पुरिसवेद० तिण्हं संजलणाणममंरैज्जगुणवट्ठिमंभवो वि अत्थि, उवसमसेडीए अप्पणो णवकवंध-मंकमणावत्थाए कालं काऊण देवेसुववण्णयम्मि तदुवलड्डीदे । ण चायं विसेसो सुत्ते णत्थि त्ति संकणिज्जं, अवत्तव्वयंकाययंभववयणेणेव देसामासयभावेण संगहियत्तादो मरणसण्णदवानादंण विणा सत्थाणे चेव समुक्तिप्रकाशे सुत्तयारेणाहिप्पेयत्तादो वा ।

ग्यमोघसमुक्तिप्रकाश गया ।

§ ८७९. संपहि आदेसपरुवणडुमुच्चारणं वत्तहस्सामो । तं जहा—समुक्तिप्रकाश-गमेण दुविहो णिहेसो—ओघेण आदेसेण य । ओघेण मिच्छ० अत्थि तिण्णि वट्ठी चत्तारि हाणी अवट्ठिं च । एवं तेरसक०-अट्ठणोक्कसा० । णवरि अवत्त० अत्थि । सम्म०-सम्मामि०-तिण्णिमंज०-पुरिसवे० अत्थि चत्तारि वट्ठी हाणी अवट्ठिं अवत्त० । आदेसेण णेगह्य० छव्वीमं पयडीणं विहत्तिभंगो । सम्म०-सम्मामि० विहत्तिभंगो । णवरि

यहां पर भी सम्भव होनेके प्रति मिथ्यात्वमे इनमें कोई विशेषता नहीं है । अब यहाँ पर जो विशेषता है उसका कथन करनेके लिए यह आशयका सूत्र पहले है—

⊙ किन्तु इतनी विशेषता है कि इनका अवक्तव्यपद भी है ।

§ ८८०. मिथ्यात्वका अवक्तव्यपद नहीं है यह कह आये हैं । परन्तु यहाँ पर विसंयोजना-पूर्वक संयोग होने पर और सर्वोपर्यायनासे प्रतिपात होने पर यह सम्भव है इसप्रकार यह विशेष है । साथ ही इतनी विशेषता और है कि पुरुषवेद और तीन संजलनोंकी असंख्यातगुणवृद्धि भी सम्भव है, क्योंकि उपशमश्रेणियोंमें अपने अपने नवकवंधकी संक्रमावस्थामें मरकर देवोंमें उत्पन्न होने पर उक्त पदकी उपलब्धि होती है । यह विशेषता सूत्रमें नहीं कही ऐसी आशंका नहीं करनी चाहिए, क्योंकि इन प्रकृतियोंके संक्रामक जीव सम्भव हैं यह वचन देशामर्पक है, इसलिए इक्षी वचनसे उक्त विशेषताका संग्रह हो जाता है । अथवा मरण संज्ञावाले व्याघातके बिना स्वस्थानसे ही सूत्रकारको समुत्कीर्तना अभिप्रेत रही है । यही कारण है कि सूत्रकारने उक्त प्रकृतियोंकी असंख्यातगुणवृद्धिका सूत्रमें नकेत नहीं किया है ।

इस प्रकार ओघसे समुत्कीर्तना समाप्त हुई ।

§ ८८१. अब आदेशका कथन करनेके लिए उच्चारणाको वतलाते हैं । यथा—समुत्कीर्तना की अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश । ओघसे मिथ्यात्वकी तीन वृद्धि, चार हानि और अवस्थित पद हैं । इसी प्रकार तेरह कर्मायों और आठ नोकर्मायोंका जानना चाहिए । किन्तु इतनी विशेषता है कि इनका अवक्तव्यपद भी है । सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व, तीन संजलन और पुरुषवेदकी चार वृद्धि, चार हानि, अवस्थित और अवक्तव्यपद हैं । आदेशसे नारकियोंमें छव्वीस प्रकृतियोंका भङ्ग स्थितिबिभक्तिसे समान है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका भङ्ग

१. ता०प्रती -यारे ( रा ) [ शा ] हिंयायत्तादो वा इति पाठः ।

असंखेज्जगुणहाणी णत्थि । एवं सञ्चणेरुइय०-तिरिक्ख-पंचिंदियतिरिक्ख०-३-देवगादिदेवा  
भवणादि जाव सहस्सार चि पंचि०तिरिक्खअपज्ज०-मणुसअपज्ज० विहचिभंगो । णवरि  
सम्म०-सम्मामि० असंखेज्जगुणहाणी णत्थि । मणुसत्तिए ओषं । णवरि तिण्णिंसंजत्त०-  
पुरिसवेद० असंखे०गुणवह्णी णत्थि । आणदादि जाव णवरोज्ज्जा चि २६ पयडीणं  
विहचिभंगो । सम्म०-सम्मामि० अत्थि चचारि वह्णी दो हाणी अवच० । अणुहिसादि  
सञ्चद्दा चि मिच्छ०-सम्म०-सम्मामि०-वारसक०-णवणोक० अत्थि असंखेज्जभागहाणी  
संखेज्जभागहाणी । अणताणु०४ अत्थि चचारि हाणी । एवं जाव० ।

§ ८८०. संपदि समुक्किचणाणंतरं परूवणाणियोगदारपदुप्पायणइमिदमाह—

❊ परूवणा । एवासिं विधिं पुष पुष उच्चसंदरिसणा परूवणा णाम ।

§ ८८१. एदासिमणंतरसमुक्किचिदाणं वड्ढि-हाणीणमवड्ढाणावचच्चाणुगयाणं पुष  
पुष णिरुंमणं कादूण विसयविभागपदंसणं परूवणा णाम भवदि चि सुत्तत्थसंघो । सा  
च विसयविभागपरूवणा सामण्णसमुक्किचणाए चैव किं चि वड्ढिदा चि ण पुणो  
पवंचिज्जे । अथवा स्वामित्वादिमुत्तेनैव तासां विभागशः कथनं प्ररूपणेति व्याचक्ष्महे,

स्थितिविभक्तिके समान है । किन्तु इतनी विशेषता है कि असंख्यातगुणहानि नहीं है । इलीभकार  
सत्र नारकी, तिर्वेज्ज, पञ्चेन्द्रिय तिर्वेज्जत्रिक, देवगतिमें सानान्य देव और भवनवासियोंसे लेकर  
सहस्रार कल्पतकके देवोंमें जानना चाहिए । पञ्चेन्द्रिय तिर्वेज्ज इणुगोत्र और मनुष्य इणुयौतकमें  
स्थितिविभक्तिके समान भंग है । किन्तु इतनी विशेषता है कि इनमें सन्यक्त्व और  
सन्यग्निध्यात्वकी असंख्यातगुणहानि नहीं है । मनुष्यत्रिकमें ओषके समान भंग है । किन्तु  
इतनी विशेषता है कि तीन संजलन और पुत्र-वेदकी असंख्यातगुणवृद्धि नहीं है । आनत कल्पसे  
लेकर नौ प्रवेद्यक तकके देवोंमें २६ प्रहृदियोंका भंग स्थितिविभक्तिके समान है । सन्यक्त्व और  
सन्यग्निध्यात्वकी चार वृद्धि, दो हानि और अवकल्पपद है । अनुदिरासे लेकर सर्वार्थ सिद्धितकके  
देवोंमें मिथ्यात्व, सन्यक्त्व, सन्यग्निध्यात्व, बारह कथाय और नौ नोकथायोंकी असंख्यातभागहानि  
और संख्यातभागहानि है । अनन्वानुबन्धीचतुष्ककी चार हानियाँ हैं । इसी प्रकार ऊनाहारक  
सार्वाणातक जानना चाहिए ।

§ ८८०. अब समुक्कीर्तनाके बाद प्ररूपणा अनुयोगद्वाराका कथन करनेके लिए इस सूत्रको  
कहे हैं—

❊ प्ररूपणाका अधिकार है । इनकी विधियोंके पृथक् पृथक् दिसलाना  
प्ररूपणा है ।

§ ८८१. जिनकी पूर्वमें समुक्कीर्तना कर आये हैं तथा जो अवस्थान और अवकल्पपदसे  
अनुगत हैं ऐसी इन वृद्धियों और हानियोंको पृथक् पृथक् विधानित कर विषयविभागत्र दिसलाना  
प्ररूपणा है ऐसा यहाँ सूत्रका अर्थके साथ सन्नन्ध है और वह विषयविभागकी प्ररूपणा किञ्चि  
सामान्यसे समुक्कीर्तनामें ही सूचित हो जाती है, इसलिए अलगसे विस्तार नहीं करते हैं ।  
अथवा स्वामित्व आदिके द्वारा ही उनका विषयविभागके अनुसार कथन करना प्ररूपणा है ऐसा  
आगे कहेंगे, क्योंकि स्वामित्व आदिक कथन किये बिना उनके विशेषका निर्णय नहीं बन

स्वामित्वादिप्रमथणाभंतेरेण तद्विशेषनिर्णयानुपपत्तेः । तद्यथा—सामित्वाणुगमेण दुविहो णिदेमो—ओघेण आदेशेण य । नत्थोघेण सिच्छ० विहत्तिभंगो । एवं चारमक०-णवणोक्क० । णवरि अवत्त० भुजगारभंगो । निष्णिमंज०-पुग्गिमेद० अमंखे० गुणवट्ठी कस्स ? अण्णदस्स उदमामयस्स जो चग्गिमाद्विद्वंधं मंकाभेमाणां देवोणववण्णो तस्स पटमसमय-देवस्स अमंखे० गुणवट्ठी । अणंताणु०४ विहत्तिभंगो । मम्म०-तम्मामि० विहत्तिभंगो । णवरि अमंखे० गुणवट्ठी कस्स ? अण्णद० तस्मात्तस्मिन् दंसाणमोहकस्सवयस्स ।

§ ८८२. आदेशेण मन्वणोरव्यतिरिक्त्य-पंचिन्द्रियनिष्पत्तिय० देवो जाव नट्ठमारं ति विहत्तिभंगो । णवरि मम्म०-तम्मामि० अमंखे० गुणवट्ठी णत्थि । पंचि०-निष्पत्तयपद०-मणुमथपज०-अणुरिगादि जाव मन्वट्ठा ति मन्वपयडीणं सव्यपदाणि कस्स ? अण्णद० । मणुमथि०३ ओरं । णवरि चारमक०-णवणोक्क० अवत्त० भुजगार-भंगो । निष्णिमंज०-पुग्गिमेद० अमंखे० गुणवट्ठी णत्थि । आणदादि णवोवडा ति छत्तीमं पयट्ठीणं विहत्तिभंगो । तम्म०-तम्मामि० विहत्तिभंगो । णवरि मंखे० गुणवट्ठी अमंखे० गुणवट्ठी णत्थि । एवं जाव० ।

§ ८८३. कालाणुगमेण द्वाविहो णिदेमो—ओघेण आदेशेण य । ओघेण सिच्छ०

मत्तय । तथा—द्वयनियानुपपत्तौ अपेक्षा निर्देशो दो प्रकारका है—ओघ और आदेश । इनमेंसे ओघ ही अपेक्षा निर्धारक भंग स्थितिविभक्तिके समान है । उन्नीप्रकार वारह पदायों और नौ नोकरवायोंका जानना चाहिए । किन्तु इतनी विवेचना है कि इनके अत्यन्तव्यपदका भंग भुजगारके समान है । तीन संज्ञान और पुस्त्यवेदकी असंख्यातगुणवृद्धि किसके होती है ? जो अन्यतर इत्यात्मक जोर अन्वित स्थितिविभक्तिके समान परता हुआ भरकर देवोंमें उत्पन्न हुआ है उस प्रथम मन्वयवकी देवके असंख्यातगुणवृद्धि होती है । अनन्तानुबन्धीचतुष्कका भंग स्थितिविभक्तिके समान है । मन्वयव और मन्वयगिभ्यादरका भंग स्थितिविभक्तिके समान है । किन्तु इतनी विवेचना है कि असंख्यातगुणवृद्धि किसके होती है ? दर्शनमोहनीयकी क्षण करनेवाले अन्यतर मन्वयवके होती है ।

§ ८८२. आदेशमें सब नाटकी, सामान्य तिर्यञ्च, पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चत्रिक, सामान्य देव और सहचार कल्प तकके देवोंमें स्थितिविभक्तिके समान भंग है । किन्तु इतनी विशेषता है कि मन्वयव और मन्वयगिभ्यादरकी असंख्यातगुणवृद्धि नहीं है । पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपवाप्त, मनुष्य अपवाप्त और अनुदिशमे लेकर सर्वार्थसिद्धितकके देवोंमें सब प्रकृतियोंके सब पद किसके होते हैं ? अन्यतरके होते हैं । मनुष्यत्रिकमे ओघके समान भंग है । किन्तु इतनी विशेषता है कि वारह पदायों और नौ नोकरवायोंके अत्यन्तव्यपदका भंग भुजगारके समान है । तीन संज्ञान और पुस्त्यवेदकी असंख्यातगुणवृद्धि नहीं है । आनतसे लेकर सर्वार्थसिद्धितकके देवोंमें छत्तीस प्रकृतियोंका भंग स्थितिविभक्तिके समान है । मन्वयव और मन्वयगिभ्यादरका भंग स्थितिविभक्तिके समान है । किन्तु इतनी विशेषता है कि इनकी संख्यातगुणवृद्धि और असंख्यात-गुणवृद्धि नहीं है । उन्नीप्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिए ।

§ ८८३. कालाणुगमेण अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश । ओघसे

विहत्तिभंगो । णवरि संखेज्जभागहाणी० जह० उक्क० एयसमओ । सोलसक०-णवणोक० विहत्तिभंगो । णवरि संखे०भागहाणि-अवत्त० जह० उक्क० एयसमओ । तिण्णिसंजल०-पुरिसवेद० असंखे०गुणवड्डी० जह० उक्क० एयसमओ । सम्म०-सम्मामि० विहत्तिभंगो । णवरि संखे०भागहाणि-अवत्त० जह० उक्क० एयसमओ ।

§ ८८४. आदेसेण णेरइय० मिच्छ०-वारसक०-णवणोक० विहत्तिभंगो । सम्म०-सम्मामि० विहत्तिभंगो । णवरि संखे०भागहाणी० जह० उक्क० एयसमओ । असंखे०-गुणहाणी णत्थि । अणंताणु०४ विहत्तिभंगो । णवरि संखे०भागहा० जह० उक्क० एयस० । एवं सच्चणेरइय० । णवरि सगड्ढिदी ।

§ ८८५. तिरिक्खेसु मिच्छ०-वारसक०-णवणोक० विहत्तिभंगो । सम्म०-सम्मामि० विहत्तिभंगो । णवरि संखे०भागहाणी० जह० उक्क० एयसमओ । असंखे०-गुणहाणी णत्थि । अणंताणु०४ विहत्तिभंगो । णवरि संखे०भागहाणी० जह० उक्क० एयसमओ । पंचि०तिरिक्खतिए३ एवं चेव । णवरि मिच्छ०-सोलसक०-णवणोक० संखे०भागवड्डी० जह० उक्क० एयसमओ । पंचि०तिरिक्खअपज्ज०-मणुसअपज्ज० मिच्छ०-सोलसक०-णवणोक० असंखे०भागवड्डी० जह० एयस०, उक्क० वे समया सत्तारस

मिथ्यात्वका भंग स्थितिविभक्तिके समान है । किन्तु इतनी विशेषता है कि ख्यसांतभागहानिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । सोलह कषाय और नौ नोकषायोंका भंग स्थितिविभक्तिके समान है । किन्तु इतनी विशेषता है कि संख्यातभागहानि और अव्यक्तव्यका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । तीन संबलन और पुरुषवेदकी असंख्यातगुणवृद्धिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका भंग स्थितिविभक्तिके समान है । किन्तु इतनी विशेषता है कि संख्यातभागहानिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है ।

§ ८८४. आदेशसे नारकियोंमें मिथ्यात्व, बारह कषाय और नौ नोकषायोंका भंग स्थितिविभक्तिके समान है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका भंग स्थितिविभक्तिके समान है । किन्तु इतनी विशेषता है कि संख्यातभागहानिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । असंख्यातगुणहानि नहीं है । अनन्तनुबन्धीचतुष्कका भंग स्थितिविभक्तिके समान है । किन्तु इतनी विशेषता है कि संख्यातभागहानिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । इसी प्रकार सब नारकियोंमें जानना चाहिए । किन्तु इतनी विशेषता है कि अपनी-अपनी स्थिति कहनी चाहिए ।

§ ८८५. तिर्यञ्चोंमें मिथ्यात्व, बारह कषाय और नौ नोकषायोंका भंग स्थितिविभक्तिके समान है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका भंग स्थितिविभक्तिके समान है । किन्तु इतनी विशेषता है कि संख्यातभागहानिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । असंख्यातगुणहानि नहीं है । अनन्तानुबन्धीचतुष्कका भंग स्थितिविभक्तिके समान है । किन्तु इतनी विशेषता है कि संख्यातभागहानिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । पञ्चद्विष तिर्यञ्चत्रिकमें इसी प्रकार भंग है । किन्तु इतनी विशेषता है कि मिथ्यात्व, सोलह कषाय और नौ नोकषायोंकी संख्यातभागवृद्धिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । पञ्चन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्त और मनुष्य अपर्याप्तकोंमें मिथ्यात्व, सोलह कषाय और नौ नोकषायोंकी असंख्यातभागवृद्धिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल दो समय अथवा सत्रह समय है । असंख्यातभागहानि

समया वा । अमंखे०भागहाणि-अवट्टि० जह० एगसमओ, उक० अंतोमुहुत्तं । संखेजभाग-  
वट्टि-दोहाणी० जह० उक० एयस० । संखे०गुणवट्टी० जह० एयस०, उक० वे समया ।  
सम्म०-सम्मामि० अमंखे०भागहाणी० जह० एगस०, उक०अंतोमु० । दोहाणी० जह०  
उक० एयस० ।

§ ८८६. मणुस०३ मिच्छ०-चारसक०-णवणोक० पंचि०तिरिक्खभंगो । णवरि  
अमंखे०गुणहाणी० जह० उक० एयस० । चारसक०-णवणोक० अवत्त० जह० उक०  
एयस० । अणंताणु०४ पंचि०तिरिक्खभंगो । सम्म०-सम्मामि० पंचि०तिरि०भंगो । णवरि  
अमंखे०गुणहाणी० जह० उक० एयस० ।

८८७. देवाणं पारस्यभंगो । णवरि अमंखे०भागहाणी० जह० एयसमओ,  
उक० तेचीमं मागगेवमाणि । भवणाटि जाव सहस्सार चि एवं चैव । णवरि सगट्टिदी ।  
आणटादि जाव णवगेवत्त चि मिच्छ०-चारसक०-णवणोक० विहत्तिभंगो । सम्म०-  
सम्मामि० चचारिपट्टि-मंखे०भागहाणि-अवत्त० जह० उक० एयसमओ । असंखे०भाग-  
हाणी० जह० एयसमओ, उक० सगट्टिदी । अणंताणु०४ विहत्तिभंगो । णवरि सरखे०-  
भागहाणी० जह० उक० एयसमओ । अणुदिसादि सच्चट्टा चि मिच्छ०-सम्म०-  
ओर धारिवत्तपदका जघन्य काल एक समय हे ओर उत्कृष्ट काल अन्तर्गुहते है । संख्यातभागवृद्धि  
ओर दो धानियोंका जघन्य ओर उत्कृष्ट काल एक समय है । संख्यातगुणवृद्धिका जघन्य काल  
एक समय है ओर उत्कृष्ट काल दो समय है । सम्यक्त्व ओर सम्यग्मिथ्यात्वकी असंख्यात-  
भागदानिका जघन्य काल एक समय है ओर उत्कृष्ट काल अन्तर्गुहते है । दो धानियोंका जघन्य  
ओर उत्कृष्ट काल एक समय है ।

§ ८८६. मनुष्यत्रिक्रमे मिथ्यात्व, धारण कपाय ओर नौ नोकपायोंका भंग पश्चांन्द्रिय  
तिर्यञ्चोके समान है । किन्तु इतनी विज्ञेपता है कि असंख्यातगुणदानिका जघन्य ओर उत्कृष्ट काल  
एक समय है । धारण कपाय ओर नौ नोकपायोंके असंख्यपदका जघन्य ओर उत्कृष्ट काल एक  
समय है । अनन्तानुबन्धीचतुष्करका भंग पश्चांन्द्रिय तिर्यञ्चोके समान है । सम्यक्त्व ओर  
सम्यग्मिथ्यात्वका भंग पश्चांन्द्रिय तिर्यञ्चोके समान है । किन्तु इतनी विज्ञेपता है कि असंख्यात-  
गुणदानिका जघन्य ओर उत्कृष्ट काल एक समय है ।

§ ८८७. देवोंमें नारिकेलोंके समान भंग है । किन्तु इतनी विज्ञेपता है कि असंख्यात-  
भागदानिका जघन्य काल एक समय है ओर उत्कृष्ट काल तेतीस सागर है । भवनवासियोंसे लेकर  
सत्कार कन्य तकके देवोंमें उनी प्रकार भंग है । किन्तु इतनी विज्ञेपता है कि अपनी अपनी  
स्थिति कइनी चाहे । आनतसे लेकर नौ प्रबंधक तकके देवोंमें मिथ्यात्व, धारण कपाय ओर  
नौ नोकपायोंका भंग स्थितिभक्तिके समान है । सम्यक्त्व ओर सम्यग्मिथ्यात्वकी चार  
वृद्धि, संख्यातभागदानि ओर अख्यक्त्वपदका जघन्य ओर उत्कृष्ट काल एक समय है ।  
असंख्यातभागदानिका जघन्य काल एक समय है ओर उत्कृष्ट काल अपनी अपनी स्थितिप्रमाण है ।  
अनन्तानुबन्धीचतुष्करका भंग स्थितिभक्तिके समान है । किन्तु इतनी विज्ञेपता है कि संख्यातभाग-  
दानिका जघन्य ओर उत्कृष्ट काल एक समय है । अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धितकके देवोंमें



सम्मामि०-वारसक०-णवणोक० असंखे०भागहाणी० जह० अंतोमु०, सम्म० एयस०, उक० सगट्टिदी । संखे०भागहाणी० जह० उक० एयसमयो । अणंताणु०४ असंखे०भागहाणी० जह० अंतोमुहुचं, उवक० सगट्टिदी । तिण्णिहाणी० जह० उवक० एयस० । एवं जाव० ।

§ ८८८. अंतराणुग० हुविहो णिहेसो—ओघेण आदेसेण य । ओघेण मिच्छ० विहत्तिभंगो । एवं वारसक०-णवणोक० । णवरि अवत्त० जह० अंतोमु०, उक० उवहू-पोगलपरियट्टं । तिण्णिसंजल०-पुरिसवेद० असंखे०गुणवड्डी० णत्थि अंतरं । असंखे०-गुणहाणी० जह० अंतोमु०, उक० उवहूपो०परियट्टं । अणंताणु०४ विहत्तिभंगो । सम्म०-सम्मामि० विहत्तिभंगो । णवरि असंखे०गुणहाणी० जह० उक० अंतोमु० ।

§ ८८९. आदेसेण सच्चणेरइय-तिरिक्ख०-देवा जाव सहस्सार ति विहत्तिभंगो । णवरि सम्म०-सम्मामि० असंखे०गुणहाणी० णत्थि । पंचिंदियतिरिक्खतिएइ छवीसं पयड्डीणं विहत्तिभंगो । णवरि संखे०गुणवड्डी० जह० एयस०, उक० पुव्वकोडिपुधत्तं । सम्म०-सम्मामि० विहत्तिभंगो । णवरि असंखे०गुणहाणी० णत्थि । पंचिं-तिरिक्ख-अपज्ज०-मणुसअपज्ज० छवीसं पयड्डीणं विहत्तिभंगो । णवरि संखे०गुणवड्डी० जह०

मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व, वारह कपाय और नौ नोकवार्योंका असंख्यातभागहानिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है, सम्यक्त्वका एक समय है और उच्छ्रष्ट काल अपनी अपनी स्थितिप्रमाण है । संख्यातभागहानिका जघन्य और उच्छ्रष्ट काल एक समय है । अनन्ताणुवन्धी-चतुष्ककी असंख्यातभागहानिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और उच्छ्रष्ट काल अपनी अपनी स्थितिप्रमाण है । तीन हानियोंका जघन्य और उच्छ्रष्ट काल एक समय है । इसी प्रकार अनाहारक भागोष्ठा तक जानना चाहिए ।

§ ८८८. अन्तराणुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश । ओघसे मिथ्यात्वका भंग स्थितिबिभक्तिके समान है । इसीप्रकार वारह कपाय और नौ नोकवार्योंके विषयमें जानना चाहिए । किन्तु इतनी विशेषता है कि इनके अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उच्छ्रष्ट अन्तर उपार्धपुद्गलपरिवर्तनप्रमाण है । तीन संज्वलन और पुरुषवेदकी असंख्यातगुणवृद्धिका अन्तर नहीं है । असंख्यातगुणहानिका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उच्छ्रष्ट अन्तर उपार्धपुद्गलपरिवर्तनप्रमाण है । अनन्ताणुवन्धीचतुष्कका भंग स्थितिबिभक्तिके समान है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका भंग स्थितिबिभक्तिके समान है । किन्तु इतनी विशेषता है कि असंख्यातगुणहानिका जघन्य और उच्छ्रष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है ।

§ ८८९. आदेशसे सब नारकी, सामान्य तिर्यञ्च, सामान्य देव और सहस्वार कल्पतकके देवोंमें भंग स्थितिबिभक्तिके समान है । किन्तु इतनी विशेषता है कि सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी असंख्यातगुणहानि नहीं है । पञ्चन्द्रिय तिर्यञ्चत्रिकमें छवीस प्रकृतियोंका भंग स्थितिबिभक्तिके समान है । किन्तु इतनी विशेषता है कि संख्यातगुणवृद्धिका जघन्य अन्तर एक समय है और उच्छ्रष्ट अन्तर पूर्वकोदिपुत्र्यक्त्वप्रमाण है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका भंग स्थितिबिभक्तिके समान है । किन्तु इतनी विशेषता है कि असंख्यातगुणहानि नहीं है । पञ्चन्द्रिय तिर्यञ्च अर्थात् और मनुष्य अपर्याप्तकोंमें छवीस प्रकृतियोंका भंग स्थितिबिभक्तिके

गम्य०. उफ० अंतोमु० । सम्म०-सम्मामि० अमंखे०भागहाणी० जह० उफ०  
 गम्यमजो । दोष्णिणदाणी० पत्थि अंतरं । मणुम३ मिच्छ० पंचिद्वियतिरिक्खभंगो ।  
 पवरि अमंखे०गुणहाणी० जह० उफ० अंतोमुद्दं । एवं वारसक०-णवणोक्र० । पवरि  
 अवत्त० निर्णणमंज०-पुरिसवेद० अमंखे०गुणहाणी० जह० अंतोमुद्दं, उफ०  
 पुच्चकोटिपुच्चं । अणनाणु०४ पंचिद्वियतिरिक्खभंगो । सम्म०-सम्मामि० पंचि-  
 निरिक्खभंगो । पवरि अमं०गुणहाणी० ओषं । आणदादि पवमेवेजा नि छञ्चीमं पय०  
 विट्ठिभंगो । सम्म०-सम्मामि० विट्ठिभंगो । पवरि संखे०गुणहाणी० अमंखे०गुणहाणी  
 पत्थि । अप्पुट्ठिमादि मच्चट्टे चि विट्ठिभंगो । पवरि सम्म० संखे०गुणहाणी पत्थि ।  
 एवं जाव० ।

५८०. णाणाजीवेदि भंगविचयाणुगमेण द्विहो णिरेणे—ओषेण आदेसेण  
 य । ओषेण छञ्चीमं पयट्ठीणं अमंखे०भागवट्ठि-आणि-अवट्ठि० णियमा अत्थि ।  
 नेमपदाणि भयणिज्जाणि । सम्म०-सम्मामि० विट्ठिभंगो । सम्भवणेरइय-मच्चनिरिक्ख-  
 मम्यमपड०-देवा जाव नद्धमार नि विट्ठिभंगो । पवरि सम्म०-सम्मामि० अमंखे०-  
 गुणहाणी पत्थि । मम्यमिण्ण३ छञ्चीमं पयट्ठीणं अमंखे०भागवट्ठि-अवट्ठि० णियमा

समान है । किन्तु इतनी विशेषता है कि संख्यातगुणदानिका जस्य अनर एक समय है और  
 उत्पन्न अन्तर अन्तर्भूतने है । सम्यक्त्वर और सम्यग्मिमाभ्यात्वकी असंख्यातभागदानिका जस्य  
 और उत्पन्न अन्तर एक समय है । दो दानियोंका अन्तरांतर नहीं है । मनुष्यादिमें मिथ्यात्वका  
 भंग कल्पेन्द्रिय निर्मूलोक्ति समान है । किन्तु इतनी विशेषता है कि सम्यक्त्वगुणदानिका जस्य  
 और उत्पन्न अन्तर अन्तर्भूतने है । इतने प्रकार चारद कथाओं और नौ नौ तकके विषयमें जानना  
 चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि इनके अन्तरांतरकथा तथा तीन संख्यात और मुख्यद्वयो  
 जस्य अन्तरांतरगुणदानिका जस्य अनर अन्तर्भूतने है और उत्पन्न अन्तर पूर्वोक्तविषयत्वप्रमाण है ।  
 असंख्यातगुणदानिका भंग कल्पेन्द्रिय निर्मूलोक्ति समान है । सम्यक्त्वर और सम्यग्मिमाभ्यात्वका  
 भंग कल्पेन्द्रिय निर्मूलोक्ति समान है । किन्तु इतनी विशेषता है कि सम्यक्त्वगुणदानिका भंग  
 ओषाके समान है । पानन कल्पमें लेकर नौ धेयक तकके देयोंमें छञ्चीम प्रवर्तियोंका भंग  
 स्थितिविभक्तिके समान है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिमाभ्यात्वका भंग स्थितिविभक्तिके समान है ।  
 किन्तु इतनी विशेषता है कि संख्यातगुणदानिका और असंख्यातगुणदानिका नहीं है । अनुदिशसे लेकर  
 सवर्णमिन्द्रि तकके देयोंमें स्थितिविभक्तिके समान भंग है । किन्तु इतनी विशेषता है कि सम्यक्त्वकी  
 संख्यातगुणदानिका नहीं है । इतनेप्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिये ।

५८०. नाना जीवोंका अस्त्वयन लेकर भंगविचयाणुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका  
 है—ओषनिर्देश और आदेशनिर्देश । ओषसे छञ्चीम प्रकृतियोंकी असंख्यातभागवट्टि, असंख्यात-  
 भागदानिका और अवस्थित पदवाले जीव नियममें हैं । ओष पद भजनीय हैं । सम्यक्त्व और  
 सम्यग्मिमाभ्यात्वका भंग स्थितिविभक्तिके समान है । सब नारकी, सब तिर्थेच्छ, मनुष्य अणुपात,  
 सामान्य देव और मट्टकार कल्प तकके देयोंमें स्थितिविभक्तिके समान भंग है । किन्तु इतनी  
 विशेषता है कि सम्यक्त्वर और सम्यग्मिमाभ्यात्वकी असंख्यातगुणदानिका नहीं है । मनुष्यत्रिकमें छञ्चीस  
 प्रकृतियोंकी असंख्यातभागदानिका और अवस्थित पदवाले जीव नियममें हैं । ओष पद भजनीय हैं ।

अत्थि । सेसपदाणि भयणिज्जाणि । सम्म०-सम्मामि० विहत्तिभंगो । आणदादि णवगेवज्जा त्ति विहत्तिभंगो । णवरि सम्म०-सम्मामि० संखे०गुण० असंखे०गुणहाणी णत्थि । अणुदिसादि सवट्ठा त्ति विहत्तिभंगो । णवरि सम्म० संखे०गुणहाणी णत्थि । एवं जाव० ।

§ ८९१. भागाभागाणुगमेण दुविहो णिद्देशो—ओघेण आदेसेण य । ओघेण छव्वीसं पयडीणं असंखे०भागवट्ठी असंखे०भागो । अवट्ठि० संखे०भागो । असंखे०-भागहाणी संखे०भागो । सेसपदाणि अणंतिमभागो । सम्म०-सम्मामि० विहत्तिभंगो । सव्वणेइय०-सव्वतिरिक्ख०-मणुसअपज्ज०-देवा जाव सइस्सार त्ति विहत्तिभंगो । णवरि सम्म०-सम्मामि० असंखे०गुणहाणी णत्थि । मणुसा० विहत्तिभंगो । णवरि वारसक०-णवणोक० अवत्त०संका० असंखे०भागो । एवं मणुसपज्ज०-मणुसिणी० । णवरि संखे०-पडिमागो कायव्वो । आणदादि णवगेवज्जा त्ति विहत्तिभंगो । णवरि सम्म०-सम्मामि० संखे०गुणहाणी असंखे०गुणहाणी च णत्थि । अणुदिसादि सव्वट्ठा त्ति विहत्तिभंगो । णवरि सम्म० संखे०गुणहाणी णत्थि । एवं जाव० ।

§ ८९२. परिभाणाणुगमेण दुविहो णिद्देशो—ओघेण आदेसेण य । ओघो सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वका भंग स्थितिविभक्तिके समान है । ध्यानतसे लेकर नौ भ्रैवयक तकके देवोंमें स्थितिविभक्तिके समान भंग है । किन्तु इतनी विशेषता है कि सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वकी संख्यातगुणहानि और असंख्यातगुणहानि नहीं है । अनुदिरासे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें स्थितिविभक्तिके समान भंग है । किन्तु इतनी विशेषता है कि सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वकी संख्यातगुणहानि नहीं है । इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिये ।

§ ८९१. भागाभागाणुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेश-निर्देश । ओघसे छव्वीस प्रकृतियोंकी असंख्यातभागवृद्धिवाले जीव असंख्यातवें भागप्रमाण हैं । अवस्थितपदवाले जीव संख्यातवें भागप्रमाण हैं । असंख्यातभागहानिवाले जीव संख्यात बहु-भागप्रमाण हैं । तथा ओष पदवाले जीव अनन्तवें भागप्रमाण हैं । सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वका भंग स्थितिविभक्तिके समान है । सब नारकी, सब तिर्यञ्च, मनुष्य अपयौत, सामान्य देव और सद्गुणार कल्प तकके देवोंमें स्थितिविभक्तिके समान भंग है । किन्तु इतनी विशेषता है कि सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वकी असंख्यातगुणहानि नहीं है । मनुष्योंमें स्थितिविभक्तिके समान भंग है । किन्तु इतनी विशेषता है कि वारद कषाय और नौ नोकषायोंके अवक्तव्य पदके संक्रामक जीव असंख्यातवें भागप्रमाण हैं । इसी प्रकार मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यनियोगमें जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि इनमें प्रतिभागका प्रमाण संख्यात करना चाहिये । ध्यानतसे लेकर नौ भ्रैवयक तकके देवोंमें स्थितिविभक्तिके समान भंग है । किन्तु इतनी विशेषता है कि सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वकी संख्यातगुणहानि और असंख्यातगुणहानि नहीं है । अनुदिरासे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें स्थितिविभक्तिके समान भंग है । किन्तु इतनी विशेषता है कि सम्यक्त्वकी संख्यातगुणहानि नहीं है । इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिये ।

§ ८९२. परिभाणाणुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेश-

१. ता० प्रती सम्म० सम्मामि संखे०गुणहाणी इति पाठः ।

विहत्तिभंगो । णवरि चारसक०-णवणो० अवत्त० तिण्णिसंज०-पुरिसवेद० असंखे०-  
गुणवट्ठी सम्म०-सम्मामि० असंखे० गुणहाणिसंका० केत्तिया० ? संखेजा । सत्त्वणेरह्य-  
सत्त्वतिरिक्खत्तु०-मणुमअपज्ज०-देवा जाव महत्तारं ति विहत्तिभंगो । णवरि सम्म०-  
सम्मामि० असंखे० गुणहाणी पत्थि । मणुसा० विहत्तिभंगो । णवरि चारसक०-  
णवणो० अवत्त० सम्म०-सम्मामि० असंखे० गुणहाणिसंका० केत्तिया ? संखेजा ।  
मणुमपज्जत्त-मणुमिणीनु सत्त्वपदमंका० मंगेजा । आणदादि जाव णवगेवजा ति  
विहत्तिभंगो । णवरि सम्म०-सम्मामि० असंखे० गुणहाणी संखे० गुणहाणी पत्थि ।  
अणुदिमादि गत्वट्ठा ति विहत्तिभंगो । णवरि सम्म० संखे० गुणहा० पत्थि ।  
एवं जाव० ।

६८३. वेणाणुमभेण दूविहो णित्तो—ओघेण आदंसेण य । ओघो विहत्तिभंगो ।  
णवरि चारसक०-णवणो० अवत्त० तिण्णं मंजल० पुरिसवेद० असंखे० गुणवट्ठी केवडि  
खेने ? लोमम्म अमंखे० भागे । सत्त्वगडमग्गणासु सत्त्वपटाणि लोम० असंखे० भागे ।  
तिरिक्खत्ताणं तु विहत्तिभंगो । णवरि सम्म०-सम्मामि० असंखे० गुणहाणी पत्थि ।  
एवं जाव० ।

निर्देश । ओघका भंग स्थितिविभक्तिके समान है । किन्तु इतनी विशेषता है कि चारट कपाय और  
नौ नोकपायोंके अथक्त्वपदके संक्रामक जीव, तीन संज्वलन और पुरुषवेदके असंख्यातगुणवृद्धिके  
संक्रामक जीव तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके असंख्यातगुणहाणिके संक्रामक जीव कितने  
हैं ? संख्यात हैं । सब नारसी, सब नियंत्र, मनुष्य चवर्गों, सामान्य देव और महत्कार कल्प  
तकके देवोंमें स्थितिविभक्तिके समान भंग है । किन्तु इतनी विशेषता है कि सम्यक्त्व और  
सम्यग्मिथ्यात्वकी असंख्यातगुणहाणि नहीं हैं । मनुष्योंमें स्थितिविभक्तिके समान भंग है । किन्तु  
इतनी विशेषता है कि चारट कपाय और नौ नोकपायोंके अथक्त्वपदके संक्रामक जीव तथा  
सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी असंख्यातगुणहाणिके संक्रामक जीव कितने हैं ? संख्यात हैं ।  
मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यनिर्गोमें सब पदोंके संक्रामक जीव संख्यात हैं । आमत कल्पसे लेकर  
नौ प्रवेचक तकके देवोंमें स्थितिविभक्तिके समान भंग है । किन्तु इतनी विशेषता है कि सम्यक्त्व  
और सम्यग्मिथ्यात्वकी असंख्यातगुणहाणि और संख्यातगुणहाणि नहीं हैं । अनुदिशसे लेकर  
सर्वार्थमिद्धि तकके देवोंमें स्थितिविभक्तिके समान भंग है । किन्तु इतनी विशेषता है कि सम्यक्त्वकी  
संख्यातगुणहाणि नहीं हैं । इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिये ।

६८३. चेत्तानुमसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश ।  
ओघका भंग स्थितिविभक्तिके समान है । किन्तु इतनी विशेषता है कि चारट कपाय और नौ  
नोकपायोंके अथक्त्वपदके संक्रामकोंका तथा तीन संज्वलन और पुरुषवेदकी असंख्यातगुणवृद्धिके  
संक्रामकोंका कितना क्षेत्र है ? लोकका असंख्यातवर्ग भागप्रमाण क्षेत्र है । सब गति मार्गणाओंमें  
सब पदोंके संक्रामकोंका क्षेत्र लोकके असंख्यातवर्ग भागप्रमाण है । मात्र तिर्यञ्चोंमें स्थितिविभक्तिके  
समान भंग है । किन्तु इतनी विशेषता है कि सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी असंख्यातगुणहाणि  
नहीं हैं । इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिये ।

‡८९४. पोसणाणुगमेण दुविहो णिद्दसो—ओघेण आदेसेण य । ओघो विहत्तिभंगो । णवरि वारसक०-णवणोक० अवत्त० तिण्हं संजल० पुरिसवेद० असंखे०गुणवड्डी सम्म०-सम्मामि० असंखे०गुणहाणी खेत्तं । सच्चणेरइय०-सच्चतिरिक्ख०-मणुसअपज्ज०-देवा जाव सहस्सार ति द्विदिविहत्तिभंगो । णवरि सम्म०-सम्मामि० असंखे०गुणहाणी णत्थि । अण्णं च पंचिदियतिरिक्खअपज्ज०-मणुसअपज्ज० सम्म०-सम्मामि० संखे०-भागहाणी संखे०गुणहाणी खेत्तभंगो । मणुस०३ विहत्तिभंगो । आणदादि अच्चुदा ति विहत्तिभंगो । णवरि सम्म०-सम्मामि० संखे०गुणहाणी असंखे०गुणहाणी णत्थि । उवरि खेत्तभंगो । एवं जाव० ।

‡८९५. कालाणुगमेण दुविहो णिद्दसो—ओघेण आदेसेण य । ओघो विहत्तिभंगो । णवरि वारसक०-णवणोक० अवत्त० तिण्हं संजल० पुरिसवेद० असंखे०-गुणवड्डी० सम्म०-सम्मामि० असंखे०गुणहाणी० जह० एयसमओ, उक्क० संखेज्जा समया । सच्चणेरइय०-सच्चतिरिक्ख०-मणुसअपज्ज०-देवा जाव सहस्सार ति विहत्तिभंगो । णवरि सम्म०-सम्मामि० असंखे०गुणहाणी णत्थि । मणुसा० विहत्तिभंगो । णवरि वारसक०-णवणोक० अवत्त० सम्म०-सम्मामि० असंखे०गुणहा० जह० एयसमओ, उक्क० संखेज्जा

‡ ८९४. स्पर्शानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । ओघका भंग स्थितिविभक्तिके समान है । किन्तु इतनी विशेषता है कि वारह कषाय और नौ नोकषायोंके अवक्तव्यपदके संक्रामक जीवोंका, तीन संञ्चलन और पुरुषवेदकी असंख्यातगुणवृद्धिके संक्रामक जीवोंका तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वकी असंख्यातगुणहानिके संक्रामक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है । सब नारकी, सब तिर्यञ्च, मनुष्य अपर्याप्त, सामान्य देव और सहस्रार कल्प तकके देवोंमें स्थितिविभक्तिके समान भंग है । किन्तु इतनी विशेषता है कि सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वकी असंख्यातगुणहानि नहीं है । इतनी और विशेषता है कि पञ्चन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वकी संख्यातभागहानि और संख्यातगुणहानिका भंग क्षेत्रके समान है । मनुष्यत्रिकमें स्थितिविभक्तिके समान भंग है । आनतसे लेकर अच्युत कल्प तकके देवोंमें स्थितिविभक्तिके समान भंग है । किन्तु इतनी विशेषता है कि सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वकी संख्यातगुणहानि और असंख्यातगुणहानि नहीं है । ऊपर क्षेत्रके समान भंग है । इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिये ।

‡ ८९५. कालानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । ओघका भंग स्थितिविभक्तिके समान है । किन्तु इतनी विशेषता है कि वारह कषाय और नौ नोकषायोंके अवक्तव्यपदके संक्रामकोंका, तीन संञ्चलन और पुरुषवेदकी असंख्यातगुणवृद्धिके संक्रामकोंका तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वकी असंख्यातगुणहानिके संक्रामकोंका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल संख्यात समय है । सब नारकी, सब तिर्यञ्च, मनुष्य अपर्याप्त, सामान्य देव और सहस्रार कल्प तकके देवोंमें स्थितिविभक्तिके समान भंग है । किन्तु इतनी विशेषता है कि सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वकी असंख्यातगुणहानि नहीं है । मनुष्योंमें स्थितिविभक्तिके समान भंग है । किन्तु इतनी विशेषता है कि वारह कषाय और नौ नोकषायोंके अवक्तव्य पदके संक्रामकोंका तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वकी असंख्यातगुणहानिके संक्रामकोंका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल संख्यात समय है । मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यनिर्यातोंमें

समया । मणुसपञ्ज०-मणुमिणीसु छव्वीसं पयडीणं असंखे०भागहाणि-अवट्टि० सम्म०-  
 नम्मामि० अमंखे०भागहाणी मच्चद्धा । सेसपदसंका० जह० एयस०, उफ० संखेजा  
 ममया । आणदादि जाव पवगेवजा ति विहत्तिभंगो । पवरि सम्म०-सम्मामि०  
 मंखेजगुणहाणी अमंखे०गुणहाणी च णत्थि । अणुदिसादि अवराजिदा ति अट्टावीसं  
 पयडीणं अमंखे०भागहाणी मच्चद्धा । सेसपदाणि जह० एयस०, उफ० आवलियाए  
 अमंखे०भागो । मच्चट्टे अट्टावीसं पयटीणं अमंखे०भागहाणी मच्चद्धा । सेसपदा०  
 जह० एयसमओ, उफ० मंखेजा ममया । एवं जाव० ।

‡ ८५६. अंतराणम० दृविहो णिहोयो—ओषादंस० । ओषो विहत्तिभंगो ।  
 पवरि वारमफ०-णवणोफ० अवत्तच्च० तिणहं संजल० पुरिमवेद० असंखे०गुणवट्टी० जह०  
 एयस०, उफ० वामपुघत्तं । सम्म०-सम्मामि० अमंखे०गुणहाणी० जह० एयसमओ,  
 उफ० छमागा । मच्चणेरुय-मच्चनिग्गय-मणुमथपञ्ज०-देवा जाव महस्सारे ति विहत्ति-  
 भंगो । पवरि नम्म०-सम्मामि० अमंखे०गुणहाणी णत्थि । मणुम०२ विहत्तिभंगो ।  
 पवरि वारमफ०-णवणोफ० अवत्त० नम्म०-सम्मामि० अमंखे०गुणहाणी ओषं । एवं  
 मणुमिणीसु । पवरि स्वयपयटीणं वामपुघत्तं । आणदादि पवगेवजा ति विहत्तिभंगो ।  
 दृवीसं प्रकृतियोंकी अस्मत्प्रयातभागदानिके अस्मत्प्रयातपदके संकामकोका तथा सम्प्रत्यक्ष और  
 मन्वगिमध्यात्वकी असंख्यातभागदानिके संकामकोका काल सर्वदा है । शेष पदोंके संकामकोका  
 जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल संख्यात समय है । प्रातस्तसे लेकर नौ प्रवेयक तकके  
 देवोंमें स्थितिविभक्तिके समान भंग है । विन्तु इतनी विशेषता है कि सम्यक्त्वर और  
 मन्वगिमध्यात्वकी असंख्यातगुणदानिके अस्मत्प्रयातगुणदानिके नहीं है । अनुदिशसे लेकर अपराजित  
 तकके देवों अष्टादश प्रकृतियोंकी अस्मत्प्रयातभागदानिके संकामकोका काल सर्वदा है । शेष पदोंके  
 संकामकोका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल आवलिके अस्मत्प्रयातके भलाप्रमाण है ।  
 सर्वाधर्मिद्विगं अष्टादश प्रकृतियोंकी अस्मत्प्रयातगुणदानिके संकामकोका काल सर्वदा है । शेष  
 पदोंके संकामकोका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल संख्यात समय है । इसी प्रकार  
 अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिये ।

‡ ८६६. अन्वराणमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओषनिर्देश और आदेशनिर्देश ।  
 ओषका भंग स्थितिविभक्तिके समान है । किन्तु इतनी विशेषता है कि वारह कपाय और नौ  
 नोकपायोंके अवकल्पपदके संकामकोका तथा तीन संखलन और पुरुषवेदकी असंख्यातगुणवृद्धिके  
 संकामकोका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर वर्षप्रथमप्रमाण है । सम्यक्त्वर  
 और मन्वगिमध्यात्वकी असंख्यातगुणदानिके संकामकोका जघन्य अन्तर एक समय है और  
 उत्कृष्ट अन्तर छह महीना है । नव नारकी, सप्त तिर्यञ्च, मनुष्य अपर्याप्त, सामान्य देव और  
 सहस्यार वरुष तकके देवोंमें स्थितिविभक्तिके समान भंग है । किन्तु इतनी विशेषता है कि  
 सम्यक्त्वर और मन्वगिमध्यात्वकी असंख्यातगुणदानिके नहीं है । मनुष्यद्विकर्म स्थितिविभक्तिके समान  
 भंग है । किन्तु इतनी विशेषता है कि वारह कपाय और नौ नोकपायोंके अवकल्पपदके  
 संकामकोका तथा सम्यक्त्वर और मन्वगिमध्यात्वकी असंख्यातगुणदानिके संकामकोका अन्तरकाल  
 ओषके समान है । उनी प्रकार मनुष्यनियोगमें जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि  
 क्षपक प्रकृतियोंका उत्कृष्ट अन्तर वर्षप्रथमप्रमाण है । आनतसे लेकर नौ प्रवेयक तकके देवोंमें

णवरि सम्म०-सम्मामि० असंखे०गुणहाणी संखे०गुणहाणी च णत्थि । अणुद्दिसादि सन्वहुत्ति विहत्तिभंगो । णवरि सम्म० संखेज्जगुणहाणी णत्थि । एवं जाव० ।

§ ८९७. भावो सन्वत्थ ओदइओ भावो ।

❁ अप्पाबहुत्थं ।

§ ८९८. सुगममेदमहियारपरमरसवकं ।

❁ सन्वत्थोवा मिच्छत्तस्स असंखेज्जगुणहाणिसंक्रामया ।

§ ८९९. कुदो ? दंसणमोहवखवयजीवे मोत्तूण एत्थ तदसंभवादो ।

❁ संखेज्जगुणहाणिसंक्रामया असंखेज्जगुणा ।

§ ९००. कुदो ? सण्णिपंचिदियरासिस्स असंखे०भागपमाणत्तादो । तस्स पडिभागो अंतोयुत्तमिदि घेत्तव्वं ।

❁ संखेज्जभागहाणिसंक्रामया संखेज्जगुणा ।

§ ९०१. कुदो ? संखेज्जगुणहाणिपरिणमणवारेहितो संखेज्जभागहाणिपरिणमणवाराणं संखेज्जगुणत्तुवलंभादो । ण चेदमसिद्धं, तिच्चविसोहितो मंदविसोहीणं पाएण संभवदंसणादो ।

❁ संखेज्जगुणवट्टिसंक्रामया असंखेज्जगुणा ।

स्थितिबिभक्तिके समान भंग है। किन्तु इतनी विशेषता है कि सम्यक्त्व और सम्यग्मिध्यात्वकी असंख्यातगुणहानि और संख्यातगुणहानि नहीं है। अनुदिरासे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें स्थितिबिभक्तिके समान भंग है। किन्तु इतनी विशेषता है कि सम्यक्त्वकी संख्यातगुणहानि नहीं है। इसी प्रकार अनाहारक भार्गवा तक जानना चाहिए।

§ ८९७. भाव सर्वत्र औदायिक है।

❁ अल्पबहुत्वका अधिकार है।

§ ८९८. अधिकारका परामर्श करानेवाला यह वाक्य सुगम है।

❁ मिथ्यात्वकी असंख्यातगुणहानिके संक्रामक जीव सबसे थोड़े हैं।

§ ८९९. क्योंकि दर्शनमोहनीयके ज्ञापक जीवोंको छोड़कर अन्यत्र असंख्यातगुणहानिक संक्रम सम्भव नहीं है।

❁ उनसे संख्यातगुणहानिके संक्रामक जीव असंख्यातगुणे हैं।

§ ९००. क्योंकि उक्त जीव सँझी पञ्चेन्द्रिय जीवराशिके असंख्यातवें भागप्रमाण हैं। उसका प्रतिभाग अन्तर्गृह्यत है ऐसा यहाँ ग्रहण करना चाहिए।

❁ उनसे संख्यातभागहानिके संक्रामक जीव संख्यातगुणे हैं।

§ ९०१. क्योंकि संख्यातगुणहानिके परिणमनके वारोंसे संख्यातभागहानिके परिणमनवार संख्यातगुणे उपलब्ध होते हैं। और यह असिद्ध भी नहीं है, क्योंकि तीव्र विशुद्धिसे मन्दविशुद्धियोंकी प्रायःकर सम्भावना देखी जाती है।

❁ उनसे संख्यातगुणवृद्धिके संक्रामक जीव असंख्यातगुणे हैं।

§ ९०२. एतत् कारणं संखे०भागहाणीए सण्णिपंचिंदियरासी पहाणो, सेसजीव-समासेसु संखेज्जभागहाणि कुणंताणं बहुवाणमसंभवादो । संखेज्जगुणवट्ठी पुण परत्याणादो आगंतूण सण्णिपंचिंदियसुप्पज्जमाणाणं सखेसिमेव लब्धे, तथा एहंदिद्य-वियल्लिंदियाण-ममण्णिपंचिंदियसुववज्जमाणाणं संखेज्जगुणवट्ठी चेव होइ । एवमेहंदिद्य-वीइंदियाणं चउरिंदियसु वेइंदिय-तेइंदियसु च समुप्पज्जमाणाणमेइंदियाणं संखेज्जगुणवट्ठिणियमो वचचो । एवमुप्पज्जमाणाणसेमजीवरासिपमाणं तसरासिस्स असंखे०भागो, तसरासि सग-उवकमणकालेण खंडिदेयखंडमेत्ताणं चेव परत्याणादो आगंतूण तत्पुप्पज्जमाणाणसुव-लंभादो । तदो परत्याणारासिपाहम्मेण सिद्धमेदेसिं असंखेज्जगुणत्वं ।

❁ संखेज्जभागवट्ठिसंक्रामया संखेज्जगुणा ।

§ ९०३. एतत् वि तसरासां चेव परत्याणादो पविसंतओ पहाणं, सत्याणे संखे०भागवट्ठिसंक्रामयाणं संखेज्जभागहाणिसंक्रामएहि सरिसाणमप्पहाणत्तादो । किंतु परत्याणादो संखे०गुणवट्ठिपवेसएहितो संखे०भागवट्ठिपवेसया बहुओ, संखेज्जगुणहीण-ट्ठिमंतकम्मेणं मह एहंदिद्यादिहिंतां णिप्पिदमाणाणं संखे०भागहाणिट्ठिदिसंतकम्मेण सह ततो णिप्पिदमाणे पत्तिवउण संखेज्जगुणहीणत्तादो । कथमेदं परिच्छिज्जे ? एदम्हादो चेव

§ ९०२. यदौ कारणं यद् ई किं संख्यातभागहानि करनेवाले जीवोंमें संकी पञ्चेन्द्रिय जीवराशि प्रधान है, क्योंकि शेष जीवसंगामोंमें संख्यातभागहानि करनेवाले बहुत जीव असम्भव हैं । परन्तु संख्यातगुणवृद्धि तो परस्थानसे आकर संकी पञ्चेन्द्रियोंमें उत्पन्न होनेवाले सभी जीवोंके उपलब्ध होती है तथा जो एकेन्द्रिय और त्रिकलेन्द्रिय जीव प्रसंगी पञ्चेन्द्रियोंमें उत्पन्न होते हैं उनके संख्यातगुणवृद्धि ही होती है । इसीप्रकार जो एकेन्द्रिय और द्वीन्द्रिय जीव चतुरिन्द्रिय जीवोंमें तथा जो एकेन्द्रिय जीव द्वीन्द्रिय और त्रीन्द्रियोंमें उत्पन्न होते हैं उनके संख्यातगुणवृद्धिका नियम कहना चाहिए । इस प्रकार उत्पन्न होनेवाली समस्त जीवराशिका प्रमाण तसरासिके असंख्यातयें भागप्रमाण हैं, क्योंकि तसराशिको अपने उपक्रमणकाजसे भाजित कर जो एक भाग प्राप्त हो तत्रमाण जीव ही परस्थानसे आकर यदौ उत्पन्न होते हुए उपलब्ध होते हैं । इसलिए परस्थानराशिकी प्रधानतामें संख्यातगुणवृद्धि करनेवाले जीव असंख्यातगुणे होते हैं यह बात सिद्ध है ।

❁ उनसे संख्यातभागवृद्धिके संक्रामक जीव संख्यातगुणे हैं ।

§ ९०३. यदौ पर भी परस्थानसे प्रवेश करनेवाली तसरासि ही प्रधान है, क्योंकि स्वस्थानमें संख्यातभागवृद्धिके संक्रामक जीव संख्यातभागहानिके संक्रामक जीवोंके समान होते हैं, इसलिए उनकी प्रधानता नहीं है । किन्तु परस्थानके आश्रयसे संख्यातगुणवृद्धिके प्रवेश करनेवाले जीवोंसे संख्यातभागवृद्धिके प्रवेश करनेवाले जीव बहुत हैं, क्योंकि संख्यातगुणे हीन स्थितिसत्कर्मके साथ एकेन्द्रिय आदिसे निकलनेवाले जीव संख्यातभागहीन स्थितिसत्कर्मके साथ एकेन्द्रिय आदिसे निकलनेवाले जीवोंको देखते हुए संख्यातगुणे हीन होते हैं ।

शंका—यद् किस प्रमाणसे जाना जाता है ?

समाधान—इसी सूत्रसे जाना जाता है ।

१. ता०प्रती बहु [ आ- ], आ०प्रती बहुश्च इति पाठः । २ ता०प्रती -कम्मे [ हि ] इति पाठः ।



सुत्तादो । तदो संखेज्जगुणत्तमेदेसिं ण विरुज्जदे ।

❀ असंखेज्ज भागवद्धिसंक्रामया अणंतगुणा ।

§ ९०४. कुदो ? एइंदियरासिस्सासंखेज्जभागपमाणत्तादो । दुसमयाहियावट्टिदा-  
संखेज्जभागहाणिकालसमासेणंतोमुहुत्तपमाणेणेइंदियरासिमोवट्टिय दुगुणिदे पयदवट्टि-  
संक्रामया हांति त्ति सिद्धमेदेसिमणंतगुणत्तं ।

❀ अवट्टिदसंक्रामया असंखेज्जगुणा ।

§ ९०५. कुदो ? एइंदियरासिस्स संखे०भागपमाणत्तादो ।

❀ असंखेज्ज भागहाणिसंक्रामया संखेज्जगुणा ।

§ ९०६. कुदो ? अवट्टाणकालादो अप्पयरकालस्स संखेज्जगुणत्तादो ?

❀ सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणं सव्वत्थोवा असंखेज्जगुणहाणिसंक्रामया ।

§ ९०७. कुदो ? दंसणमोहक्खवयसंखेज्जजीवे मोत्तूण्णत्थ तदसंभवदो ।

❀ अवट्टिदसंक्रामया असंखेज्जगुणा ।

§ ९०८. कुदो ? पत्तिदोवमासंखेज्जभागपमाणत्तादो । ण चेदमासिद्धं, अवट्टिद-  
पाओग्गसमयुत्तरमिच्छत्तट्टिदिवियप्पेसु तेत्तियमेत्तजीवाणं संभवदंसणादो ।

इसलिए ये जीव संख्यातगुणे होते हैं यह बात विरोधको प्राप्त नहीं होती ।

❀ उनसे असंख्यातभागवृद्धिके संक्रामक जीव अनन्तगुणे हैं ।

§ ९०४. क्योंकि ये जीव एकेन्द्रियराशिके असंख्यातवें भागप्रमाण हैं । दो समय अधिक  
अवस्थित और असंख्यातभागहाणिके कालके जोड़रूप अन्तमुहूर्तप्रमाणसे एकेन्द्रिय जीवराशिको  
भाजित कर जो लब्ध आवे उसे दूना करने पर प्रकृत वृद्धिके संक्रामक जीव होते हैं, इसलिए ये  
अनन्तगुणे हैं यह बात सिद्ध हुई ।

❀ उनसे अवस्थितपदके संक्रामक जीव असंख्यातगुणे हैं ।

§ ९०५. क्योंकि ये एकेन्द्रियराशिके संख्यातवें भागप्रमाण हैं ।

❀ उनसे असंख्यातभागहाणिके संक्रामक जीव संख्यातगुणे हैं ।

§ ९०६. क्योंकि अवस्थानकालसे अल्पतरकाल संख्यातगुणा है ।

❀ सम्यक्त्व और सम्यगमध्यात्वकी असंख्यातगुणहाणिके संक्रामक जीव सबसे  
थोड़े हैं ।

§ ९०७. क्योंकि दर्शनमोहनीयकी क्षपणा करनेवाले संख्यात जीवोंको छोड़कर अन्यत्र  
असंख्यातगुणहाणिका होना असंभव है ।

❀ उनसे अवस्थितपदके संक्रामक जीव असंख्यातगुणे हैं ।

§ ९०८. क्योंकि ये पत्यके असंख्यातवें भागप्रमाण हैं । और यह असिद्ध भी नहीं है,  
क्योंकि अवस्थित पदके योग्य मिध्यात्वके एक समय अधिक स्थितिविकल्पोंमें तत्प्रमाण जीव  
संभव देखे जाते हैं ।

⊙ असंखेज्जभागवद्विसंक्रामया असंखेज्जगुणा ।

। १०९. तं जहा—अवद्विद्रयेकमपाओग्गविगयादो अगंखेज्जभागवद्विपाओग्ग-  
विमओ अगंवेज्जगुणो । अवद्विद्रपाओग्गद्विद्विसेसु पादेः पल्लिदोवमस्य संखेज्जदि-  
मागमेत्तागममेत्ते ० भागवद्विविष्पाणमुप्पचिदंणणादो । तदो विसयवहुत्तादो सिद्ध-  
मेदेमिमगंखेज्जगुणत्तं ।

⊙ असंखेज्जगुणावद्विसंक्रामया असंखेज्जगुणा ।

। ११०. एत्थ संचयकालवहुत्तं कारणं । तं जहा—मिच्छन्नधुवद्विदिं जहण-  
पत्तिमंतेजेणे मंडिय तत्थेयमंदमेत्ताद्विदिगंमकम्मादो हेत्वा चरिमुच्चेत्तणकंडयपज्जवमापो  
अगंखेज्जगुणवद्विविमयो, एदेहि द्विद्विविष्पेहि मम्मत्तं पडिवज्जमाणाणं पयारंत-  
रा-  
संभवादो । एत्थम् उच्चेत्तणकालो पल्लिदोवमम्मामंग्वेज्जदिभागमेत्तो । एदेण कालेण  
मंनिद्रत्तोत्ता च पल्लिदोवमामंग्वेज्जभागमेत्ता । एदे वुण अंनोमुहुत्तकालमंनिद्रासंखेज्जभागा-  
वद्विपाओग्गत्तवेदिनो अगंवे ० गुणा, कालापुंमारंण गुणयारपपुत्तोण णिच्चाहगुवलंभादो ।  
ण च नेमिमंतोमुहुत्तमंनिद्रत्तमगिदं, मिनत्तं गंनुणंतोमुहुत्तादो उवरि तत्थच्छमाणाणं  
गंखेज्जभागवद्वि-मंवे ० गुणवद्विसंक्रामाणं पाओग्गमानदंसपादो । तन्हा संचयकाल-  
माहप्पेणेतंममंग्वेज्जगुणचमिदि मिदं ।

⊙ संखेज्जभागवद्विसंक्रामया असंखेज्जगुणा ।

⊙ उनसे अनंत्यातभागवृद्धिके संक्रामक जीव अगंत्यातगुणे हैं ।

। १०९. यथा—असंखितपरमे मत्तमके योग्य विषयसे असंत्यातभागवृद्धिप्रयोग्य विषय  
असंत्यातगुणा हैं, क्योंकि अरुद्रिद्रावदं योग्य स्थितियोंमें अलग अलग पत्तके संख्यातयें  
भागप्रमाण असंत्यातभागवृद्धिरूप विसृत्योर्षी उत्पत्ति देखी जाती हैं । इसलिए विषयका बहुत्व  
होनेके कारण ये असंत्यातगुणे हैं यह सिद्ध होता है ।

⊙ उनसे अगंत्यातगुणवृद्धिके संक्रामक जीव अगंत्यातगुणे हैं ।

। ११०. यहाँ पर सद्भावकालका बहुत्वपना कारण है । यथा—मिथ्यात्वकी ध्रुवस्थितिको  
जपन्य परीनामंत्यागमे भाजित कर [यहाँ] प्राप्त हुए एक स्पष्टमात्र स्थितिमत्कर्मसे नीचे अन्तिम  
वृद्धेलनसंक्रामक तत् अगंत्यातगुणवृद्धिवा विषय है, क्योंकि इन स्थितिपरिवर्तनोंके साथ सम्यक्त्वको  
प्राप्त होनेवाले जीवोंके अन्य प्रकार सम्भव नहीं है । इसका उद्देश्यकाल पर्यन्त असंत्यातयें  
भागप्रमाण हैं और इन कालके भीतर मज्झिम हुए जीव पर्यन्त अगंत्यातयें भागप्रमाण हैं । परन्तु  
ये जीव अन्तर्मुहूर्त कालके भीतर मज्झिम हुए अगंत्यातभागवृद्धिके योग्य जीवोंसे असंत्यातगुणे हैं,  
क्योंकि कालके अनुसार गुणकारकी प्रवृत्ति निर्वाचकसे उपलब्ध होती है । ये जीव अन्तर्मुहूर्तके  
भीतर मज्झिम होते हैं यह बात अमिद्ध भी नहीं है, क्योंकि मिथ्यात्वमे जाकर अन्तर्मुहूर्तके ऊपर  
यहाँ रहनेवाले जीवोंके संख्यातभागवृद्धिसंक्राम और संख्यातगुणवृद्धिसंक्रामकी योग्यता देखी  
जाती है । इसलिए सद्भावकालके माहात्म्यमे ये असंत्यातगुणे हैं यह सिद्ध होता है ।

⊙ उनसे संख्यातभागवृद्धिके संक्रामक जीव अगंत्यातगुणे हैं ।

§ ९११. किं कारणं ? पुण्ड्रविषयादो एदेसिं विसयस्स असंखेज्जगुणत्तव-  
लंभादो । तं कधं ? ध्रुवद्विदीए णिरुद्धाए किंचूणतदद्धमेत्तो संखेज्जभागवद्विद्विसयो होइ ।  
एवं समयुत्तरादिध्रुवद्विदीणं पि पुध्र पुध्र णिरुंभणं कादूण संखेज्जभागवद्विद्विसयो  
अणुगंतव्वो जाव अंतोमुहुत्तूणसत्तरिं चि । एवं कादूण जोइदे द्विदिं पडि णिरुद्धद्विदीए  
किंचूणद्धमेत्ता चैव संखेज्जभागवद्विवियप्पा लद्धा हवंति । एसो च सव्वो विसओ  
संपिडिदो पुण्ड्रविषयादो असंखेज्जगुणो चि णत्थि संदेहो । तम्हा सिद्धमेदेसि-  
मसंखेज्जगुणत्तं, अविप्पडिवचीए ।

❀ संखेज्जगुणवद्विसंक्रामया संखेज्जगुणा ।

§ ९१२. कारणं दोणहमेदेसिं वेदगसम्मत्तं पडिवज्जमाणरासी पहाणो । किंतु  
संखेज्जभागवद्विद्विसयादो वेदगसम्मत्तं पडिवज्जमाणजीवेहिंतो संखेज्जगुणवद्विद्विसयादो  
वेदगसम्मत्तं पडिवज्जमाणजीवा संचयकालमाहप्पेण संखेज्जगुणा जादा । तं कधं ?  
सिच्छत्तं गंतूण थोवयरकालं चैव अच्छमाणो संखेज्जभागवद्विपाओग्गो होइ । तत्तो  
वहुवयरं कालमच्छमाणो पुण णिच्छएण संखेज्जगुणवद्विपाओग्गो होदि चि एदेण  
कारणेण सिद्धमेदेसिं संखेज्जगुणत्तं ।

❀ संखेज्जगुणहाणिसंक्रामया संखेज्जगुणा ।

§ ६११. क्योंकि पूर्वके विषयसे इनका विषय असंख्यातगुणा उपलब्ध होता है ।

शंका—वह कैसे ?

समाधान—क्योंकि ध्रुवस्थिति विवक्षित होने पर कुछ कम उससे आधा संख्यातभागवद्विक्रमा  
विषय है । इसी प्रकार एक समय अधिक आदि ध्रुवस्थितियोंको भी पृथक्-पृथक् विवक्षित करके  
अन्तर्मुहूर्त कम सत्तर कोड़कोड़ीसागरप्रमाण स्थितिके प्राप्त होने तक संख्यातभागवद्विक्रमा विषय ले  
आना चाहिए । इस प्रकार करके योगफल लाने पर प्रत्येक स्थितिके प्रति विवक्षित स्थितिके कुछ  
कम आधे संख्यातभागवद्विक्रमा विवरूप प्राप्त होते हैं । और इस सब विषयको मिलाने पर वह  
पूर्वके विषयसे असंख्यातगुणा है इसमें सन्देह नहीं । इसलिए विप्रतिपत्तिके बिना ये असंख्यातगुणे  
हैं यह सिद्ध होता है ।

❀ उनसे संख्यातगुणवद्विक्रमे संक्रामक जीव संख्यातगुणे हैं ।

§ ६१२. क्योंकि इन दोनोंमें वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त होनेवाली राशि प्रधान है । किन्तु  
संख्यातभागवद्विक्रमे साथ वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त होनेवाले जीवोंसे संख्यातगुणवद्विक्रमे साथ  
वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त होनेवाले जीव संख्यकालके माहात्म्यवशा संख्यातगुणे हो जाते हैं ।

शंका—वह कैसे ?

समाधान—क्योंकि मिथ्यात्वमें जाकर थोड़े काल तक रहनेवाला जीव ही संख्यातभागवद्विक्रमे  
योग्य होता है । परन्तु उससे बहुत काल तक रहनेवाला जीव नियमसे संख्यातगुणवद्विक्रमे  
योग्य होता है, इसलिए इस कारणसे ये जीव संख्यातगुणे होते हैं यह सिद्ध हुआ ।

❀ उनसे संख्यातगुणहानिके संक्रामक जीव संख्यातगुणे हैं ।

१०१३. वृद्धे ? निष्पिण्डद्वि-अवष्टाभेति गहियनम्मत्ताणमंतोमुहुत्तसंचिदाणं  
संवेज्जगुणानाणो पयोमगतदंगणादो ।

⊙ संवेज्ज-भागह्राणिसंक्रामया संवेज्जगुणा ।

१०१४. कारणमेत्थं गुणं, मित्तज्जप्पावहुअसुत्ते परुविदत्तादो । अथवा  
संवे०भागह्राणो संवे०गुणा । अंतरो०गुणा चि पाटंतरं । एदस्साहिप्पायो सत्थाणे  
संवे०गुणाह्राणसंक्रामणत्तो संवे०भागह्राणिसंक्रामया संवेज्जगुणा चैव । किंतु ण तेसि  
मेत्थं पढाणात्तं, अणुनाणुपूर्वमिं विगंजोणंतम्मत्ताद्विगमिपहाणभावदंसणादो । सो च  
सम्माद्विगमिपहाणसंवेणसंवेज्जगुणो चि । एदं च पाटंतग्मेत्थं पढाणभावेणावल्लेख्यव्वो ।

⊙ अवत्तव्यसंक्रामया अत्तवेज्जगुणा ।

१०१५. वृद्धे ? अदपोगन्धपरियद्धं संचयादो पडिणियत्तिय णिसंतकम्मिय-  
भावेण सम्मत्तं पटिवज्जभाणाणमिदं गहणादो ।

⊙ असंवेज्ज-भागह्राणिसंक्रामया असंवेज्जगुणा ।

१०१६. एत्थं कारणं वुत्तदे—पुत्तिल्लासितसंक्रामया सम्मत्त-सम्मामिच्छत्त-  
संतकम्मियाणसंवे०भागो चैव, मत्तोमिभेयनमयमंनंचिदत्तअधुवगमादो । एदे वुण  
तेमिमसंवेज्जभागा, वेगान्तरोत्तमकाह०भांतरं वेदयगम्माद्विगसिगंचयस्स दीहुव्वेत्तण-

१०१७. क्योंकि भीन पूर्व और अन्तर्गतकरके साथ सम्यक्त्वको प्रहण करनेवाले तथा  
अन्तर्गत करनेवाले भी पर मत्ता हूय और संख्यातगुणदानिके योग्य देखे जाते हैं ।

\* उनसे संख्यातभागदानिके संक्रामक जीव संख्यातगुणे हैं ।

१०१८. यदा कारणं सुगमं, क्योंकि मिथ्यातरमरुन्धी अल्पवदुत्तका कथन करनेवाले  
मूलमें उत्पत्ता प्रसन्न कर आवे है । अथवा संख्यातभागदानिके संक्रामक जीव असंख्यातगुणे हैं  
यद पाठान्तर उल्लेख होता है । इनका अभिप्राय यह है कि स्वस्थानमें संख्यातगुणदानिके  
संक्रामक जीवोंमें संख्यातभागदानिके संक्रामक जीव संख्यातगुणे ही हैं । किन्तु उनको यदा पर  
प्रधानता नहीं है, क्योंकि यदा पर अनन्तानुबन्धोंकी रिसंबंधना करनेवाली राशिकी प्रधानता  
देखी जाती है और यद सम्यक्दृष्टि राशिही प्रधानतायश अस्मंख्यातगुणी है । इस प्रकार पाठान्तरको  
यदा पर प्रधानरूपमें ग्रहण करना चाहिए ।

\* उनसे अवक्त्वपदके संक्रामक जीव असंख्यातगुणे हैं ।

१०१९. क्योंकि अर्धबुद्गल परिवर्तनकालके सद्यसे लौटकर सम्यक्त्व और  
सम्यग्मिथ्यात्वका अभाव कर सम्यक्त्वको प्राप्त होनेवाले जीवोंका यदा प्रहण किया है ।

\* उनसे असंख्यातभागदानिके संक्रामक जीव असंख्यातगुणे हैं ।

१०२०. यदा पर कारणका कथन करते हैं—पहले सब संक्रामक जीव सम्यक्त्व और  
सम्यग्मिथ्यात्वके सत्त्वमेंवाले जीवोंके असंख्यातवें भागप्रमाण ही हैं, क्योंकि उनका एक समयमें  
होनेवाला मुख्य स्वीकार किया गया है । परन्तु ये जीव सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके सत्त्वमेंवाले  
जीवोंके बहुभागप्रमाण हैं, क्योंकि दो सागर कालके भीतर वेदकसम्यक्दृष्टिराशिके प्राप्त हुए

कालभंतरमिच्छाद्विसंचयसहिदस्स पहाणत्तावलंबणादो । तदो असंखेज्जगुणा जादा ।

❀ **सेसाणं कम्ममाणं सव्वत्थोवा अवत्तव्वसंकामया ।**

§ ९१७. अणंताणुबंधीणं ताव पल्लिदोवमस्तासंखेज्जभागमेत्ता उक्कस्सेणेयसमयम्मि अवत्तव्वसंकमं कुणंति । वारसकसाय-णवणोकसायाणं पुण संखेज्जा चेव उवसामया सव्वोवासामणादो परिवादिय अवत्तव्वसंकमं कुणमाणा लब्भंति त्ति सव्वत्थोवचमेदेसिं जादं ।

❀ **असंखेज्जगुणहाणिसंकामया संखेज्जगुणा ।**

§ ९१८. अणंताणुबंधिविसंजोयणाए चरित्तमोहव्ववणाए च दूरावकिट्टिप्पहुडि संखेज्जसहरसद्विदिवांडयचरिमफालीसु वट्टमाणजीवाणमेयवियप्पपडिबद्धावत्तव्वसंकाम-एहिंतो तहाभावसिद्धीए णाइयत्तादो ।

❀ **सेससंकामया मिच्छुत्तभंगो ।**

§ ९१९. सुगममेदमप्पणासुत्तं ।

एवमोघप्पावहुअं समत्तं ।

§ ९२०. एदस्सेव फुडीकरणडुमादेसपरूवणट्टं च उच्चारणाणुगममेत्थ कस्सामो । तं जहा—अप्पावहुआणुगमेण दुविहो णिदेसो—ओघेण आदेसेण य । ओघेण मिच्छ०-अणंताणु०चउक्क० विहत्तिभंगो । वारसक०-णवणोक० अणंताणु०चउक्कभंगो । णवारि

सञ्चयका दीर्घ उद्धेलनकालके भीतर मिथ्यादृष्टि राशिके प्राप्त हुए सञ्चयके साथ प्रधानरूपसे अवलम्बन लिया गया है । इसलिए यह राशि असंख्यातगुणी हो जाती है ।

\* शेष कर्मोंके अवक्तव्यपदके संक्रामक जीव सबसे स्तोत्र हैं ।

§ ६१७. उत्कृष्टरूपसे पत्यके असंख्यातवें भागप्रमाण जीव अनन्तानुबन्धियोंका एक समयमें अवक्तव्यसंक्रम करते हैं । परन्तु बारह कषाय और नौ नोकषायोंका संख्यात उपशामक जीव ही सर्वोपशामनासे गिर कर अवक्तव्यसंक्रम करते हुए उपलब्ध होते हैं, इसलिए इनका सबसे स्तोत्रपना बन जाता है ।

\* उनसे असंख्यातगुणहानिके संक्रामक जीव संख्यातगुणे हैं ।

§ ६१८. अनन्तानुबन्धियोंकी विसंयोजनामें और चात्रिमोहनीयकी चपशामें दूरपकृष्टिसे लेकर संख्यात हजार स्थितिकाण्डकोंकी अन्तिम फालियोंमें विद्यमान जीव एक विकल्पसे सन्बन्ध रखनेवाले अवक्तव्यसंक्रामकोंसे संख्यातगुणे सिद्ध होते हैं यह बात न्याय प्राप्त है ।

\* उनसे शेष पदोंके संक्रामक जीवोंका भंग मिथ्यात्वके समान है ।

§ ६१९. यह अर्पणसूत्र सुगम है ।

इस प्रकार ओघअल्पवहुत्व समाप्त हुआ ।

§ ६२०. अब इसीको स्पष्ट करनेके लिए और आदेशका कथन करनेके लिए यहाँ पर उच्चारणाका अनुगम करते हैं । यथा—अल्पवहुत्वानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश । ओघसे मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धीचतुष्कका भंग स्थितिभिक्तिके समान है । बारह कषाय और नौ नोकषायोंका भंग अनन्तानुबन्धीचतुष्कके समान है । किन्तु इतनी

संजलणतिय-पुरिसवेद० सञ्चत्थोवा असंखेज्जगुणवट्टिसंका० । अवत्त०संका० संखेज्ज-  
गुणा । सेमं तं चैव । सम्म०-सम्मामि० सञ्चत्थोवा अमंखे०गुणहाणिसं० । अवट्टि०  
असंखे०गुणा । असंखे०भागवट्टिसंका० असंखे०गुणा । असंखे०गुणवट्टिसं० असंखे०-  
गुणा । मंखे०भागवट्टि असंखे०गुणा । मंखे०गुणव० संखे०गुणा । संखे०-  
गुणहाणि० संखे०गुणा । मंखे०भागहाणि० असंखे०गुणा । अवत्त० असंखे०-  
गुणा । अमंखे०भागहाणि० अमंखे०गुणा ।

§ ९२१. आदेशेण सञ्चणोग्ध्य-तिरिक्क-पंचिदियतिरिक्कतिय-देवा जाव सहस्सरा  
त्ति छ्वीमं पय० विहत्तिभंगो । सम्म०-सम्मामि० ओघभंगो । णवरि असंखे०-  
गुणहाणिसंका० णत्थि । पंचि०तिरिक्क-अपज्ज०-मणुसअपज्ज० विहत्तिभंगो । णवरि  
सम्म०-सम्मामि० अमंखे०गुणहाणी णत्थि । मणुसेसु मिच्छ०-अणंताणु०चउक्क०  
विहत्तिभंगो । चारसक्क०-णवणोक्क० अणंताणु०चउक्क०भंगो । सम्म०-सम्मामि०  
मञ्चत्थोवा अमंखे०गुणहाणिसंका० । अवट्टिदमंका० संखे०गुणा । अमंखे०-  
भागवट्टिसंका० मंखे०गुणा । असंखे०गुणवट्टिसं० संखे०गुणा । संखे०भागवट्टिसं०  
मंखे०गुणा । मंखे०गुणवट्टिसं० मंखे०गुणा । अवत्तव्वसं० संखे०गुणा । संखे०

प्रियेपता है कि मञ्जलनमत्रिक और पुरुषवेदकी अमर्यातगुणवृद्धिके संक्रामक जीव सबसे स्तोक हैं ।  
उनसे अवत्तव्वपदके संक्रामक जीव संख्यातगुणे हैं । शेष भंग उसी प्रकार है । सम्यक्त्व और  
सम्यग्मिथ्यात्वकी असंख्यातगुणहाणिके संक्रामक जीव सबसे स्तोक हैं । उनसे अवस्थितपदके  
संक्रामक जीव असंख्यातगुणे हैं । उनसे असंख्यातभागवृद्धिके संक्रामक जीव असंख्यातगुणे हैं ।  
उनसे असंख्यातगुणवृद्धिके संक्रामक जीव असंख्यातगुणे हैं । उनसे संख्यातभागवृद्धिके संक्रामक  
जीव असंख्यातगुणे हैं । उनसे संख्यातगुणवृद्धिके संक्रामक जीव संख्यातगुणे हैं । उनसे संख्यातगुण-  
हाणिके संक्रामक जीव संख्यातगुणे हैं । उनसे संख्यातभागानिके संक्रामक जीव असंख्यातगुणे हैं ।  
उनसे अवत्तव्वपदके संक्रामक जीव असंख्यातगुणे हैं । उनसे असंख्यातभागहाणिके संक्रामक जीव  
अमर्यातगुणे हैं ।

§ ९२१. आदेशसे सब नारकी, सामान्य तिर्यञ्च, पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चत्रिक, सामान्य देव और  
सदृशार कल्प तकके देवींमं छत्रीस प्रकृतियोंका भंग स्थितिविभक्तिके समान है । सम्यक्त्व और  
सम्यग्मिथ्यात्वका भंग ओघके समान है । किन्तु इतनी प्रियेपता है कि इनमें असंख्यातगुणहाणिके  
संक्रामक जीव नहीं हैं । पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्थात् और मनुष्य अपर्थात्कोमं स्थितिविभक्तिके  
समान भंग है । किन्तु इतनी प्रियेपता है कि इनमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका असंख्यात-  
गुणहाणिसंक्रम नहीं है । मनुष्योंमि मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धीचतुष्कका भंग स्थितिविभक्तिके  
समान है । बारह कषाय और नौ नोकपायोंका भंग अनन्तानुबन्धीचतुष्कके समान है । सम्यक्त्व  
और सम्यग्मिथ्यात्वकी असंख्यातगुणहाणिके संक्रामक जीव सबसे थोड़े हैं । उनसे अवस्थितपदके  
संक्रामक जीव संख्यातगुणे हैं । उनसे असंख्यातभागवृद्धिके संक्रामक जीव संख्यातगुणे हैं । उनसे  
असंख्यातगुणवृद्धिके संक्रामक जीव संख्यातगुणे हैं । उनसे संख्यातभागवृद्धिके संक्रामक जीव  
संख्यातगुणे हैं । उनसे संख्यातगुणवृद्धिके संक्रामक जीव संख्यातगुणे हैं । उनसे अवत्तव्वपदके

गुणहाणि० असंखे०गुणा । संखे०भागहाणि० असंखे०गुणा । असंखे०भाग-  
हाणि० असंखे०गुणा । एवं मणुसपज्जत्त-मणुसिणीसु । णवरि जम्हि असंखे०गुणं  
तम्हि संखे०ज्जगुणं कायव्वं । आणदादि णवगेवज्जा त्ति छव्वीसं पयडीणं विहत्तिभंगो ।  
सम्म०-सम्मामि० सच्चथोवा असंखे०भागवट्ठि० । असंखे०गुणवट्ठि० असंखे०-  
गुणा । संखे०भागवट्ठि० असंखे०गुणा । संखे०गुणवट्ठि० संखे०गुणा । संखे०  
भागहाणि० असंखे०गुणा । अवत्त० असंखे०गुणा । असंखे०भागहाणि० असंखे०ज-  
गुणा । अणुद्दिसादि सच्चट्ठे त्ति विहत्तिभंगो । णवरि सम्म० संखे०ज्जगुणहाणी० णत्थि ।  
एवं जाव० ।

एव वट्ठिसंक्रमो समत्तो ।

एत्थ भवसिद्धिएदरपाओग्गट्ठिदिसंक्रमट्ठाणाणि विहत्तिभंगादो थोवविसेसाणु-  
विट्ठाणि सच्चकम्माणमणुगंतव्वाणि ।

एव ट्ठिदिसंक्रमो समत्तो ।



संक्रामक जीव संख्यातगुणे हैं । उनसे संख्यातगुणहानिके संक्रामक जीव असंख्यातगुणे हैं । उनसे  
संख्यातभागहानिके संक्रामक जीव असंख्यातगुणे हैं । उनसे असंख्यातभागहानिके संक्रामक जीव  
असंख्यातगुणे हैं । इसीप्रकार मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यनियोंमें जानना चाहिए । किन्तु इतनी  
विशेषता है कि जहाँ असंख्यानगुणा है वहाँ संख्यातगुणा करना चाहिए । अनात कल्पसे लेकर  
नौ त्रैवेयक तकके देवोंमें छव्वीस प्रकृतियोंका भंग स्थितिबिभक्तिके समान है । सम्यक्त्व और  
सम्यग्मिथ्यात्वकी असंख्यातभागवृद्धिके संक्रामक जीव सबसे थोड़े हैं । उनसे असंख्यातगुणवृद्धिके  
संक्रामक जीव असंख्यातगुणे हैं । उनसे संख्यातभागवृद्धिके संक्रामक जीव असंख्यातगुणे हैं ।  
उनसे संख्यातगुणवृद्धिके संक्रामक जीव संख्यातगुणे हैं । उनसे संख्यातभागहानिके संक्रामक जीव  
असंख्यातगुणे हैं । उनसे अवक्तव्यपदके संक्रामक जीव असंख्यातगुणे हैं । उनसे असंख्यातभाग-  
हानिके संक्रामक जीव असंख्यातगुणे हैं । अनुदिरासे लेकर-सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें स्थिति-  
बिभक्तिके समान भंग है । किन्तु इतनी विशेषता है किन्तु इनमें सम्यक्त्वकी संख्यातगुणहानि नहीं  
है । इसी प्रकार अनाहारक भागणा'त्तक जानना चाहिए ।

इस प्रकार वृद्धिसंक्रम समाप्त हुआ ।

यहाँ पर सब कर्मोंके भवसिद्ध और इतर जीवोंके योग्य स्थितिसंक्रमस्थान स्थितिविभक्तिके  
थोड़ीसी विशेषताको लिए हुए जानना चाहिए ।

इस प्रकार स्थितिसंक्रम समाप्त हुआ ।



